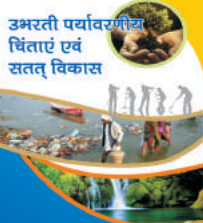
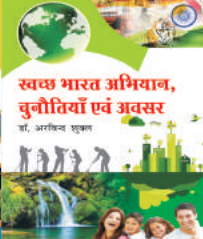


भारत में समाजवाद दशा एवं दिशा  डॉ. बिरेंद्र सिंह यादव	डॉ. राममनोहर लोहिया समाजवादी विमर्श  डॉ. बिरेंद्र सिंह यादव	 डॉ. राममनोहर लोहिया वैचारिक विमर्श डॉ. बिरेंद्र सिंह यादव	 डॉ. राममनोहर लोहिया का समाजवाद एवं सामाजिक समरसता डॉ. बिरेंद्र सिंह यादव
नई सदी में पर्यावरण चिन्तन के वैश्व परिदृश्य  डॉ. सी. आर. शुक्ल	जायसी और कबीर सामाजिक संस्कृति को समझने में  डॉ. सी. आर. शुक्ल	 डॉ. अम्बेडकर वैचारिकी एवं दलित विमर्श डॉ. कालीचरण 'लेहो'	 मैत्रेयी पुरी का कथा साहित्य में नारी डॉ. भारती
उभरती पर्यावरणीय चिन्ताएं एवं सतत विकास  डॉ. अरविन्द शुक्ल	स्वच्छ भारत अभियान, चुनौतियाँ एवं अवसर  डॉ. अरविन्द शुक्ल	हिन्दी के व्यंग्य लेखन में शारद 'जोशी' का योगदान  डॉ. जयजयराज आनन्द	बाल समस्याएं कारण और निदान  डॉ. जयजयराज आनन्द
भारतीय राजनीतिक सामाजिक समस्याएँ  डॉ. श्रीमती राजेशा जैन	भारत में उच्च शिक्षा दशा एवं चुनौतियाँ  डॉ. अमिता कुमारा झाक	बाल सतरसई प्रबोधिनी  स्वाप्नी विजयानन्द डॉ. राज बहोरा विपारी	साठोत्तरी लेखिकाओं का स्त्री विमर्श  डॉ. लक्ष्मी देवी

आराधना ब्रदर्स प्रकाशक एवं वितरक

124/152-सी ब्लाक, गोविन्द नगर, कानपुर-208 006 (उ.प्र.)
 दूरभाष : 09935007102, 09935007101, 0512-2651490
 Email : aradhanabooks@rediffmail.com

कृतिका वर्ष : 9 संयुक्तांक : 17-18 जनवरी-दिसम्बर 2016 **कृतिका**

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

वर्ष : 9 संयुक्तांक : 17-18

कृतिका

जनवरी-दिसम्बर 2016

साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी
 एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक
 अन्तर्राष्ट्रीय रेफ्रीड शोध पत्रिका



कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वाल्यूम : 17-18, वर्ष : 09, जनवरी-दिसम्बर 2016

देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की

अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 09

अंक : 17-18

जनवरी-दिसम्बर 2016

प्रधान सम्पादक

मनोज कुमार यादव

पूर्व सदस्य

उ.प्र. माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड, इलाहाबाद (उ. प्र.)

सम्पादक

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

एसोसिएट प्रोफेसर – हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग

डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, लखनऊ, 226 017 (उ. प्र.)

सम्पर्क – 07607782917, 09415924888

Email : dr.virendrayadav@gmail.com • Email : virendra_kritika@rediffmail.com

Email : kritika_orai@rediffmail.com • http://kritika-shodh.blogspot.com

सह-सम्पादक

नीलम यादव

303 तीसरा तल, टाईप फाईव, विश्वविद्यालय परिसर

डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, लखनऊ – 226 017

प्रबन्धन

आराधना ब्रदर्स

(प्रकाशक एवं वितरक)

124 / 152- सी ब्लॉक, गोविन्दनगर, कानपुर-208 006, उ.प्र.

दूरभाष –09935007102, 05122651490

Email : aradhanabooks@rediffmail.com

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वाल्यूम : 17-18, वर्ष : 09, जनवरी-दिसम्बर 2016

देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 09	अंक : 17-18	जनवरी-दिसम्बर 2016
सामान्य अंक	:	60.00 रुपये
इस अंक की सहयोग राशि	:	400.00 रुपये
यू. एस. 25 \$		यूरो 40 \$
व्यक्तिगत सदस्यों के लिये		
पाँच वर्ष के लिये	:	3000 रुपये (डाक व्यय सहित)
आजीवन	:	6500 रुपये (डाक व्यय सहित)
संस्थाओं के लिये		
प्रति अंक	:	500 रुपये (डाक व्यय सहित)
पाँच वर्ष के लिये	:	5000 रुपये (डाक व्यय सहित)
आजीवन	:	10000 रुपये (डाक व्यय सहित)

विषेय : सभी भुगतान नकद/आर.टी.जी.एस./बैंक ड्राफ्ट/चेक 'सम्पादक कृतिका' के नाम Payable at Lucknow भेजें। नकद जमा (R.T.G.S.) हेतु भारतीय स्टेट बैंक – मुख्य शाखा लखनऊ के A/C 30358537228 IFSC No. - SBIN0000125 में जमा कर सकते हैं। (नकद जमा हेतु बैंक कमीशन 50 रु. अतिरिक्त जमा करें।)

- ☞ विधिकवादों के लिये क्षेत्र, उरई न्यायालय के अधीन होंगे।
- ☞ कृतिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से सम्पादक मण्डल (कृतिका परिवार) की सहमति अनिवार्य नहीं है।
- ☞ शोध पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिये सम्पादक मंडल की लिखित अनुमति अनिवार्य है। कृतिका के सम्पादन, प्रकाशन व प्रबंधन से जुड़े समस्त पद अवैतनिक हैं।

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा महक कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स, 15, आजाद नगर, उरई (जालौन) से मुद्रित करवाकर 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) से प्रकाशित।

सम्पादक—डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वाल्यूम : 17-18, वर्ष : 09, जनवरी-दिसम्बर 2016

कृतिका : एक परिचय

शोध एवं अनुसंधान गतिविधियों के एकीकृत अध्ययन के लिये युवा शोधार्थियों, अध्येताओं को शोध के नवीन अवसरों को उपलब्ध कराने हेतु कृतिका शोध पत्रिका की परिकल्पना की गई। यह एक अन्तर्राष्ट्रीय अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका है। कृतिका का सम्पादक मण्डल देश एवं विदेश के विभिन्न राज्यों के विषय विशेषज्ञों की सहभागिता के आधार पर कार्य कर रहा है। मानविकी एवं समाज विज्ञान में शोध के नवीन अवसरों की भागीरथी प्रवाहित करने के उद्देश्य से सहकारिता के आधार पर इस शोध पत्रिका का प्रचार सम्पूर्ण भारत के साथ-साथ सात समुन्दर पार यू. एस. ए., लंदन, आस्ट्रेलिया, जापान, जर्मनी, मॉरीशस आदि के शोध निदेशक एवं शोधार्थियों का कृतिका में रचनात्मक सहयोग प्राप्त है।

कृतिका शोध पत्रिका का एक दूसरा उद्देश्य मानविकी एवं समाज विज्ञान के अलावा विषयों की सीमाओं से हटकर स्वतंत्र रूप से गहन एवं मौलिक शोध की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना है ताकि शोध पत्र न केवल गम्भीर अध्येताओं के लिये उपयोगी हो ; बल्कि यह जनसामान्य में नवीन जानकारी, शोध के प्रति उत्सुकता एवं जागरूकता का परिचायक भी सिद्ध हो। साथ ही यह व्यावहारिक धरातल पर उपयोगी भी हो। कृतिका में इन्हीं विचारों को दृष्टिगत रखते हुये साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान के विषयों के अलावा हम विज्ञान एवं अन्य विषयों के शोध पत्र भी आमंत्रित करते हैं। उत्तर आधुनिकता एवं भूमण्डलीकरण के इस दौर में वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं से सम्बन्धित विषयों पर समय-समय पर कृतिका परिवार विषय-विशेष पर विशेषांक केन्द्रित अंक भी निकलता है जिसकी सूचना कृतिका शोध पत्रिका में एवं अलग से पत्रों के माध्यम से शोध अध्येताओं एवं जिज्ञासु युवा रचनाकार्मियों को समय-समय पर दी जायेगी।

सामान्य निर्देश

रचनाकारों/शोध अध्येताओं से विनम्र अनुरोध :

- ☞ कृतिका साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान का एक अर्द्धवार्षिक शोधपरक अनुष्ठान है जो युवा अध्येताओं, शोधार्थियों एवं खोजकर्ताओं का अपना मंच है। अपने मौलिक एवं नवीन अन्वेषणात्मक रचनाओं के सहयोग से इसे सम्बल प्रदान करें।
- ☞ मानविकी एवं समाज विज्ञान से सम्बन्धित सभी विषयों की मौलिक रचनायें विषय विशेषज्ञों की सहमति से ही इसमें प्रकाशित की जाती हैं।
- ☞ कृतिका में प्रकाशित शोध पत्र देश एवं विदेश के विषय विशेषज्ञों के पास चयन के लिए प्रेषित किये जाते हैं। इसलिये शोध पत्र/आलेख लिखते समय संदर्भों का स्पष्ट उल्लेख करें, पुस्तक का संदर्भ, पत्र-पत्रिका का संदर्भ, प्रकाशन, वर्ष एवं संस्करण का उल्लेख आवश्यक है। शोध पत्र/आलेख की शब्द सीमा दो हजार शब्दों से अधिक नहीं होनी चाहिये। यदि शब्द सीमा अधिक है तो सम्पादक मण्डल को उसमें संशोधन, संक्षिप्तीकरण का अधिकार सुरक्षित रहेगा।
- ☞ कृपया अपनी शोध रचनाएं एवं आलेख प्रेषित करते समय अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त, छायाचित्र प्रेषित करें। रचना के शोध संक्षेप सार का उद्देश्य, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता एवम् उपयोगिता को अवश्य दर्शायें।
- ☞ कृतिका में पुस्तक समीक्षा के लिये चर्चित एवं महत्वपूर्ण पुस्तकों/पत्रिकाओं पर समीक्षात्मक आलेख आमंत्रित हैं। समीक्षात्मक आलेख के साथ पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां रजिस्टर्ड डाक से प्रेषित करें।
- ☞ स्तरीय पुस्तक की समीक्षा के लिये समीक्ष्य पुस्तक की दो प्रतियों के साथ लेखक अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त एवं छायाचित्र तथा पुस्तक का संक्षेपण पंजीयन डाक से सम्पादक के पते से प्रेषित करें। समीक्षा की स्थिति में शोध पत्रिका का अंक सम्बन्धित लेखक के पते पर भेजा जायेगा।
- ☞ किसी भी दशा में शोध पत्र/आलेख की प्रति वापस (स्वीकृति/अस्वीकृति की स्थिति में) नहीं प्रेषित की जा सकती है। इसलिये कृपया एक प्रति अपने पास सुरक्षित अवश्य रखें।
- ☞ कृतिका एक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका है। कृपया रचना प्रेषित करते समय यह भलीभाँति तय कर लें कि यह शोध पत्र/आलेख/रचना आपकी अपनी मौलिक कृति है। और कृतिका के मापदण्डों के अनुकूल है कि नहीं। कृतिका परिवार आपके नये अकादमिक सुझावों एवं प्रतिक्रियाओं का सदैव स्वागत करेगा।
- ☞ रचनायें कम्प्यूटर से मुद्रित अथवा कृति देव 10 में 14 फांट साइज में MS-Word Software में टाइप करके ई-मेल करें या साथ में सीडी एवं रचना का प्रिन्ट अवश्य भेजें।

—कृतिका परिवार

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वाल्यूम : 17-18, वर्ष : 09, जनवरी-दिसम्बर 2016

देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 09

अंक : 17-18

जनवरी-दिसम्बर 2016

अनुक्रमणिका

शीर्षक	लेखक	पृ.सं.
सम्पादकीय.....		i-v

सुलगते सवाल

1. भारतीय विदेश नीति के बदलते आयाम एवं चुनौतियाँ	मनोज कुमार यादव	1
2. सामाजिक मूल्य और मिलावट की पराकाष्ठा	डॉ. अंजना वर्मा	7
3. अध्यापकों की भूमिका और दायित्व	डॉ. अनीता यादव	13
4. वर्तमान परिदृश्य में शिक्षा के बदलते बहुमुखी आयामों की विवेचना	डॉ. हर्षकुमार	17
5. मीडिया की वर्तमान स्थिति : चिन्तन चिन्ता के विविध आयाम	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	23
6. यौन अपराध-बलात्कार (धारा 376)	डॉ. दुर्गा, डॉ. शारदा दुबे	31
7. पर्यावरण क्षरण और मानवाधिकार	डॉ. प्रतिभा, डॉ. अनुपमा	37
8. बदलते परिदृश्य में अध्यात्म व मीडिया की भूमिका	डॉ. रामप्रताप सिंह	40
9. भारतीय राजनीति में अपराधीकरण और भ्रष्टाचार के विविध सन्दर्भ	डॉ. अरविन्द कुमार शुक्ल	43

हाशिए का विमर्श : संघर्ष और मुक्ति के नवीन क्षितिज

10. दलित कविता में मानवीय मूल्य	डॉ. कमलेश सिंह नेगी	49
11. आदिवासी चेतना का स्वर और हिन्दी कथा साहित्य	डॉ. रवि कुमार यादव	54
12. दलित-विमर्श की दृष्टि से राजेन्द्र यादव के उपन्यास	डॉ. शोभारानी सिंह चौधरी	59
13. दलित साहित्य का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य : एक मूल्यांकन	डॉ. जितेन्द्र कुमार परमार	63

आधी दुनिया का स्याह यथार्थ

14. महिलाओं के अधिकार एवं सामाजिक विधान	डॉ. निशा जैन	69

15. भारत में महिला सशक्तीकरण के उभरते क्षितिज एवं गहराती चुनौतियाँ	डॉ. उमारतन यादव	73
16. भारत में महिला उद्यमिता तथा सशक्तीकरण	शालिनी सिंह	78
17. संस्कृति साहित्य में नारी चिंतन	डॉ. जय सिंह	82
18. ग्रामीण महिलाओं के मतदान व्यवहार पर शिक्षा का प्रभाव	डॉ. सुजाता, डॉ. सपना कौर	86
19. मृदुला गर्ग रचित उपन्यासों में स्त्री-जीवन की टूटती वर्जनाएँ	सविता देवी	90
20. राजस्थानी फिल्मों में स्त्री चेतना	सुमन गुर्जर, डॉ. हेमा देवरानी	94
21. ऋता शुक्ला की अरुंधती : नारीवाद का नया विमर्श	सुषमा दुबे	97
22. नारी वेदना से रूबरू कराता उपन्यास 'मैंने नाता तोड़ा'	डॉ. अंजु थापा	100

भारतीय शिक्षा का वर्तमान परिदृश्य

23. शिक्षा का अधिकार और पंचायती राज	डॉ. हेमन्त कुमार मिश्रा	106
24. माध्यमिक शाला के विद्यार्थियों में सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के तहत प्रदत्त विषयवार प्रोजेक्ट कार्यों की प्रकृति एवं स्थिति का अध्ययन	डॉ. अखिल श्रीवास्तव	115

भारत के विकास में अग्रज एवं अनुज पीढ़ी का योगदान

25. बुद्ध देशना के संबाहक (सम्राट अशोक तक)	डॉ. ज्योति सिंह गौतम	126
26. राष्ट्र प्रेम व मानव कल्याण के संबाहक : स्वामी विवेकानन्द	डॉ. रामकुमार ओमरे, डॉ. हृदयकांत श्रीवास्तव	135
27. प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (सन् 1857) में नाना साहब का योगदान	डॉ. ममता गंगवार	137
28. युगचेतना के प्रतीक महात्मा गांधी	डॉ. विभा सिंह	143
29. गांधीवादी चिंतन में निहित प्राकृतिक संसाधन एवं पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा	डॉ. अनुपमा यादव	148
30. डॉ. भीमराव अम्बेडकर का समग्र दर्शन	डॉ. गीता यादव	152
31. डॉ. भीमराव अम्बेडकर का भारतीय नारी उत्थान में योगदान	जय सिंह	164

भारत में पर्यावरण के बदलते परिदृश्य : दशा एवं दिशा

32. मानव विकास का पर्यावरण पर प्रभाव (वैश्विक चिंतन का सामाजिक यथार्थ)	डॉ. मनजीत सिंह	167
33. प्राकृतिक आपदा, मानव अधिकार एवं बचाव के सुरक्षात्मक उपाय : एक आकलन	प्रेम प्रकाश यादव	170
34. हिन्दी कवियों की पर्यावरण संचेतना	डॉ. सविता मसीह	174
35. नदियाँ-गंगा एक विवेचनात्मक अध्ययन	संदीप कुमार सिंह	178

भारत में समाजवाद के बदलते परिदृश्य

36. समाजवाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि	डॉ. प्रज्ञा सहाय	190
37. भारत में समाजवाद : कल, आज और कल	सुनीता वर्मा	196

साहित्य का समकालीन विमर्श

38. संचार प्रौद्योगिकी और हिन्दी	डॉ. सियाराम	202
39. वैश्विक परिदृश्य में हिन्दी साहित्य और हिन्दी की स्थिति	डॉ. रजनी सिंह	207
40. "चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की कविताएँ और युग चेतना"	सत्येन्द्र कुमार शेन्डे	211
41. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी और उनकी सैद्धान्तिक समीक्षा	डॉ. अजिता दीक्षित	214
42. हरिकृष्ण 'प्रेमी' के नाटकों में वर्णित गीतों में राष्ट्रीय प्रेम	डॉ. आशा वर्मा	217
43. 'साकेत' में ललित कला सन्दर्भ	डॉ. अनामिका द्विवेदी	221
44. अज्ञेय : मुक्ति की अवधारणा और उपन्यास	डॉ. हेमलता सुमन	225
45. परशुराम शुक्ल के बाल साहित्य का शिल्प विधान	डॉ. आनन्द बक्षी	231
46. संस्कृत साहित्य में प्रेम तत्त्व	डॉ. वीरेन्द्र कुमार जोशी	240
47. अन्यात्ति कला भामिनी विलास के सन्दर्भ में	डॉ. पूजा श्रीवास्तव	248
48. कबीर और निराला के काव्य में स्वछंदता हेतु विद्रोह के स्वर	डॉ. गरिमा जैन	254
49. स्त्री आत्मबोध और कृष्णा सोबती का कथा साहित्य	डॉ. नीतू सिंह	258
50. छायावाद : आधुनिक हिन्दी शक्ति काव्य	निखिल उपाध्याय	261
51. आत्मजयी की अस्तित्ववादी चेतना	अश्विनी सिंह	265
52. काव्य में शब्द एवं शब्दार्थगत सौन्दर्य	डॉ. राकेश कुमार	271
53. हिन्दी के व्यंग्य लेखक	डॉ. शिवशंकर यादव	280
54. हिन्दी साहित्य में किंवदंती पुरुषों के पुनर्सृजन की परंपरा	डॉ. धनन्जय सिंह	284
55. नासिरा शर्मा कृत 'कुड़ियाँजान' में 'जल' की त्रासदी	कु. पूजा	290
56. रवीन्द्र कालिया की 'जरा सी रोशनी'	डॉ. कमलेश सिंह	296
57. भारतीय भाषाओं की लोकोक्तियों में जातीय द्वेष-भाव	डॉ. सतीश यादव	298
58. भोजपुरी लोकगीत में क्रान्ति-दूत: वीर कुँवर सिंह	डॉ. रामजीत, डॉ. सियाराम	308
59. मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में वर्तमान	डॉ. मीना सिंह गौर	312

भारतीय संस्कृति में चिन्तन के विविध धरातल

60. भारतीय संस्कृति में 'संस्कार एवं यज्ञ' की अवधारणा	डॉ. प्रीति वाधवानी	315
61. भारतीय संस्कृति में नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा	डॉ. अंजू लता	319

62. संस्कृत नाट्य एवं मानवाधिकार : एक विवेचन	डॉ. डॉली जैन	324

भारत में लोकतांत्रिक प्रणाली के विविध सरोकारों का मूल्यांकन

63. भारतीय लोकतन्त्र के बदलते सरोकार	डॉ. किशन यादव	327
64. आधुनिक लोकतंत्र और भारत : समस्या और समाधान	आदित्य कुमार	333

भारत में समकालीन चिन्तन के विविध आयाम

65. कौटिल्य के राजदर्शन का आधुनिक सन्दर्भ में मूल्यांकन	डॉ. कौशलेन्द्र दीक्षित	338
66. गांधी और खादी (एक विमर्श)	डॉ. अनुभा श्रीवास्तव	343
67. भारत छोड़ो आन्दोलन परिस्थितियाँ व कार्यक्रम	सुप्रिया वर्मा	352
68. उदर रोगों में पथ्य अपथ्य का महत्व	डॉ. वीरेन्द्र कुमार टम्टा	359
69. समकालीन सन्दर्भों में आधी दुनिया की चुनौतियाँ	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	363
70. बालश्रम एवं उदारीकरण की नीतियाँ	डॉ. संजू	369
71. पांचाल का ऐतिहासिक भूगोल	राज्यश्री शुक्ला	373
72. स्वर और लय द्वारा रस सौन्दर्य	डॉ. सुषमा पाठक	379
73. बाल श्रमिकों की स्थिति का अध्ययन (रीवा नगर के संदर्भ में)	डॉ. (श्रीमती) शाहेदा सिद्दीकी	382
74. वैश्वीकरण एवं सूक्ष्म वित्त का भारतीय महिलाओं में शक्तिकरण एक विश्लेषण	जितेन्द्र कुमार रामटेके	387
75. उरांव जनजाति में महिलाओं की सामाजिक स्थिति (बालाघाट के विशेष सन्दर्भ में)	डॉ. एस.पी. पाण्डेय, मनोज द्विवेदी	406

सम्पादकीय.....

परिवर्तन प्रकृति का नियम है अर्थात् बदलाव चाहे वह प्राकृतिक हो, राजनैतिक हो, सामाजिक हो, धार्मिक हो या आर्थिक हो, सदैव सदियों से होते रहे हैं। भारतीय उपमहाद्वीप भी इससे अछूता नहीं रहा है। भारत को विश्व गुरु का दर्जा दिया गया है और यह माना गया है कि सभ्यता और संस्कृति का विकास यहीं से हुआ है। वैदिक काल में ऋषियों ने तपस्या और ज्ञान के बल पर वेदों की रचना की। इन ग्रन्थों, उपनिषदों, पुराणों के माध्यम से समाज को मार्ग दर्शन देने का प्रयास किया है, संस्कृति को आधार प्रदान किया है। आज इसी सांस्कृतिक विरासत को साथ में लेकर हम नई सदी में प्रवेश कर रहे हैं इस सदी में जबकि परिवर्तन अति तीव्र हो रहे हैं। जो कल था वो आज नहीं है और जो आज है वह कल नहीं रहेगा। सम्पूर्ण विश्व एक गांव (Global village) के रूप में स्थापित हो चुका है। सूचना प्रौद्योगिकी ने दुनिया को बहुत छोटा बना दिया है। इस परिवर्तन ने मानव-मन मस्तिष्क पर इतना गहरा प्रभाव डाला है कि आज आधुनिकता और परिवर्तन के नाम पर प्रभावित हो रहे हैं वह है संस्कृति, विचार, मूल्य और संस्कार। आधुनिकता की अंधी दौड़ में आज जनजीवन को इतना प्रभावित कर दिया है कि हर व्यक्ति दूसरों से आगे निकलना चाहता है, होड़ मची है, अधिकाधिक धर्नाजन की और उनके उपभोग की। इस उपभोगवादी संस्कृति और विचारधारा ने हमारे मूल्यों को नष्ट कर दिया है। विलासिता के साधनों का आकर्षण इतना अधिक हो गया है कि कोई भी व्यक्ति ईमानदारी से अपना काम करना ही नहीं चाहता बल्कि हर व्यक्ति चाहता है कि उसके पास अधिकाधिक भोग के संसाधन हों, इसके लिये वह अनुचित कृत्यों को करने से भी हिचकता नहीं है, उसे कोई शर्मिंदगी नहीं रह गयी है, उसके लिए सामाजिक लोक-लाज और आदर्श अनुकरणीय जीवन तो अब इतिहास की बातें हो गई हैं। मानवीय मूल्यों का हास लगातार हो रहा है। मानवीयता, निस्वार्थ-प्रेम, वात्सल्य, भाईचारा शब्द तो शायद पाठ्यपुस्तकों की शोभा ही मात्र रह गए हैं। इन सबके बावजूद नई सदी के भारत में बहुतायत में दृष्टिगोचर हो रहा है—भ्रष्टाचार, अनैतिकता, अश्लीलता, भोढ़ापन, जो कि देखने को मिल रहा है, कहा जाता है कि कुछ पाने के लिये कुछ खोना पड़ता है। वर्तमान की स्थिति को देखकर मूल्यांकन करना कठिन नहीं है कि हम कुछ पाने के लिये बहुत कुछ या सब कुछ खो रहे हैं। हमें सोचना है कि हमें कैसा परिवेश हमारे पूर्वजों ने दिया था और हम क्या परिवेश देने का प्रयास कर रहे हैं अपनी आने वाली पीढ़ी के लिए। इस परिप्रेक्ष्य में हमें विचार करना है कि इस अल्प समय में जो परिवर्तन जिसे विकास का नाम दिया जा रहा है। आज के मानवीय समाज और प्रकृति के कितना अनुकूल है। यह आज के शोध का ज्वलंत विषय है।

यह सच है कि भौतिक प्रगति के क्षेत्र में भारत निरन्तर आगे बढ़ रहा है, पर सोचना यह है कि जिस अनुपात में जनसंख्या बढ़ी है क्या उसी अनुपात में आर्यभट्ट, वराहमिहिर, भास्कराचार्य, जगदीश चन्द्र बोस, भाभा, स्वामी विवेकानंद डॉ० भीमराव अम्बेडकर, डॉ० राममनोहर लोहिया आदि जैसे महान् वैज्ञानिक एवं चिन्तक भी बढ़ रहे हैं? साहित्य हो या विज्ञान, कला हो या भाषा, किसी भी क्षेत्र में हम अपने पैरों पर खड़े होने का सच्चा प्रयास कर रहे हैं? यदि नहीं, तो हमें यह मानना पड़ेगा कि इक्कीसवीं सदी का भारत शायद तकनीकी क्षेत्र में तो आगे बढ़ता रहेगा, किन्तु उसकी रीढ़ अर्थात् उसकी आध्यात्मिक एवं नैतिक शक्ति क्षीण होती जायेगी, जिससे की उसका पूर्णतः अपने पैरों पर खड़े रहना ही असम्भव हो जायेगा।

किसी भी राष्ट्र की राजनीतिक स्थिति के मूल्यांकन के लिये उन सभी घटकों के समग्र मूल्यांकन की आवश्यकता होती है, जिनसे राष्ट्र का निर्माण होता है, राष्ट्र की पहचान होती है और राष्ट्र का संचालन होता है। राष्ट्र मात्र एक विशेष भूभाग नहीं है, न ही एक विशेष संस्कृति, न ही उसका संचालन करने वाली शासन व्यवस्था, अपितु यह सभी घटक मिलकर एक स्वयंभू सार्वभौम राष्ट्र का निर्माण करते हैं। स्पष्ट है कि राजनीतिक दशा का

तात्पर्य राष्ट्र की भौगोलिक सीमाओं, सेना न्यायपालिका, विधायिका और सर्वोपरि उसके नागरिकों की आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षिक क्षमताओं से होता है। इसके मूल्यांकन के लिये राष्ट्र के इतिहास, उसकी सांस्कृतिक जिजीविषा एवं राज्य व्यवस्था के विषय अध्ययन एवं समालोचना की आवश्यकता होती है।

भारतीय गणतंत्र के लगभग छह दशकों का अनुभव बताता है कि गण पर तंत्र भारी पड़ रहा है आमजन को न तो खुशहाली मिली न सुरक्षा। देश की एकता, अखण्डता, सम्प्रभुता व संस्कृति निरंतर खतरे में है। जिहादी आतंकवाद हो या माओवादी नक्सलवाद दोनों भारत को रक्तंजित कर रहे हैं। सूचना प्रौद्योगिकी के बढ़ते दुरुपयोग और छोटे छोटे परिवारों के कारण हमारे नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्य दरक रहे हैं। व्यवस्था में भ्रष्टाचार का घुन इस कदर व्याप्त है कि अब सेना और न्यायपालिका भी उसकी चपेट में हैं, सामान्य पुलिस प्रशासन तो पहले ही उससे ग्रसित थे। शिक्षा-चिकित्सा जैसी मूलभूत आवश्यकताएँ सिर्फ धनवानों की पहुँच में रह गयी हैं क्योंकि निजीकरण के चलते विद्यालय और चिकित्सालय पंचतारा होटलों में परिवर्तित हो गये हैं और सरकारी विद्यालय और अस्पताल इस कदर बदहाल हैं कि वहाँ शिक्षा एवं चिकित्सा स्वयं मरणासन्न हैं। भारत के सौ-सवा सौ लोगों के अरबपति बन जाने पर इसके नीति-नियंता भले ही इतरा रहे हों कि भारत विश्व में अग्रणी अर्थशक्ति बनने को अग्रसर है, लेकिन राष्ट्र की लगभग आधी जनसंख्या अभी भी गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन पर विवश है। सुरसा के मुख के समान बढ़ती महंगाई ने दाल-रोटी खाने का मुहावरा भी झुठला दिया है। विकास की विडम्बना यह है कि माडलों पर आधारित विकास में औद्योगीकरण पर जोर देने के कारण हमारी कृषि व्यवस्था चौपट होती चली गई। इस कारण वर्तमान में किसान आत्महत्या करने पर विवश है। गावों में बेरोजगार हुये लोग शहरों की ओर पलायन करने पर और शहर अनियंत्रित जनसंख्या दबाव से झुगियों में परिवर्तित होते गये। इस तरह हमारा गणतंत्र जनाकाक्षाओं को पूर्ण करने में विफल रहा यही कारण है कि वह स्वराज्य को "सुराज" में नहीं बदल सका।

भारतीय राजनीति जो कभी लोकसेवा और राष्ट्रसाधना का पर्याय थी आज वोट के गणित में इस सीमा तक उलझी है कि नैतिकता को तिलांजलि दे, भाषावाद, क्षेत्रवाद, जातिवाद, साम्प्रदायिकता आदि वोट प्राप्ति के मुख्य सूत्र बन गये हैं। सत्ता स्वार्थों के लिये तंत्र का दुरुपयोग राजनीति का मूल मंत्र बन गया है। भारत में घोषित आपातकाल इसका ज्वलंत उदाहरण है। लज्जाहीनता की पराकाष्ठा तो यह है कि जिम्मेदार पदों पर रहकर हजारों करोड़ों के घोटाला करने वाले का खुलासा होने पर शर्मसार नहीं होता। निस्संदेह इसमें कोई कोई दो राय नहीं है कि हमारी निर्वाचन प्रणाली और संसदीय प्रणाली दोषपूर्ण है और उसका परिमार्जन आवश्यक है। आज राजनीति पर सत्ता स्वार्थ इस कदर हावी है कि वर्तमान राजनीतिज्ञों ने वोट के लिये राष्ट्रवाद की उपेक्षा कर राष्ट्र की एकता, अखण्डता, सम्प्रभुता और सुरक्षा को भी दांव पर लगा दिया है। जिहादी आतंकवाद पर नरम रवैया, राष्ट्रविरोधी कृत्यों में लिप्त दो करोड़ से भी अधिक बांग्लादेशी घुसपैठियों की अनदेखी, कश्मीर में अलगाववादी व पाकिस्तान समर्थक तत्वों के सामने नतमस्तक हो स्वायत्तता की तैयारी, चीन की तरफ से उत्पन्न सीमा संकट पर लापरवाही, शिक्षा व सामाजिक क्षेत्रों में सांस्कृतिक अवमूल्यन, ऐसे अनेक प्रसंग हैं जो राष्ट्रीय संदर्भ में राजनीतिक विफलता को उजागर तो करते ही हैं इसके साथ ही भारतीय जनमानस के धैर्य की परीक्षा भी करते हैं।

वर्तमान में हमारे लोकतंत्र का तीसरा स्तम्भ अर्थात् न्यायपालिका भी प्रश्नचिह्न के दायरे में आने के साथ ही निर्विवाद नहीं रह गयी है। उत्तर प्रदेश और बिहार के उच्च न्यायालयों पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गयीं हालिया टिप्पणियाँ इसका ज्वलंत प्रमाण हैं। वस्तुतः पिछले वर्षों की न्यायिक पहल के आभा मण्डल में न्यायाधीशों को आमजन की दृष्टि में मानवेतर श्रेणी में रख दिया था। इस कारण हम इस सत्य की अनदेखी करने लगे कि न्यायाधीश भी मानव हैं, वे भी मोहग्रस्त हो सकते हैं। कुछ मामलों में न्यायाधीशों की मानवीय दुर्बलताओं के प्रकरण सामने आने लगे हैं। पिछले कुछ वर्षों में न्यायाधीशों ने न्यायालय की अवमानना से जुड़े अधिकारों का दुरुपयोग किया है। एक ही मुद्दे पर निचली एवं उच्च अदालतों के फैसले अलग-अलग कैसे हो जाते हैं यह चिन्तन एवं

चिन्ता का विषय है। न्यायालयों को पुनः अपनी प्रतिष्ठा अर्जित करनी होगी। इसके लिये आवश्यक है कि वह प्रतिवर्ष अपनी सम्पत्ति की सार्वजनिक घोषणा करें। न्यायालयों को भी सूचना के अधिकार की परिधि में लाया जाये।

हमारे लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ भी पक्षपात एवं भ्रष्टाचार के अवमूल्यन से नहीं बचा है। पत्रकारिता प्रिंट मीडिया से निकलकर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के हाथों पहुँच गयी है जो केवल 'ब्रेकिंग न्यूज' के मकड़ जाल में उलझकर रह गया है। राष्ट्रीय महत्व के प्रसंगों का स्थान सनसनीखेज सेक्स कथाओं ने ले लिया है। केवल T.R.P. का धन्धा चल रहा है। हाल के समय में कुछ प्रमुख चैनलों के शीर्ष संवाददाताओं का एकाएक करोड़पति बन जाना इनकी सत्यनिष्ठा को संदिग्ध बना रहा है।

भूमण्डलीकरण, वस्तुतः भारतीय संस्कृति पर अनायास थोपने की एक सीधी साधी चाल है। स्वदेशी के ढोल पीटने वाले तथाकथित लोग अपने घर, परिवार, संस्कृति आचार-विचार, दैनिक उपयोग की वस्तुओं कार्य प्रणाली और विचारों से कितने स्वदेशी हैं, यह जग जाहिर है, भाषाई विखण्डन इतना अधिक बढ़ रहा है कि मात्र कुछ मिनट अंग्रेजी बोलने वाला व्यक्ति भी अगले कुछ मिनट में अपनी भाषा में आ जाता है। अपनी शिक्षा प्रणाली ज्ञान, विज्ञान, कार्य संस्कृति आदि का विकास, अपने ही संसाधनों एवं अपनी ही भाषा से करना अब समय की मांग ही नहीं हमारी अनिवार्यता महसूस की जाने लगी है। अपनी बोली एवं भाषा में अपनी मिटटी की खुशबू झलकती है। अतः हमें स्वयं चेतना जागृति करनी होगी।

भारत एक विशाल संघीय राष्ट्र है जो अनेक संस्कृतियों को अपने में संजोए हुए है। इसके प्रांतों में भिन्न-भिन्न जातियों, धर्मों, भाषाओं को बोलने वाले लोग निवास करते हैं। राष्ट्र की विशालता एवं प्रांतों के विकास का स्तर अलग-अलग होने से मूल्यों में विभिन्नता स्वभाविक है। ऐसे में जब राज्य एवं केन्द्र की विचारधारायें विरोधी होती हैं तो उस क्षेत्र के लोगों में भेद-भाव का एहसास होने के साथ ही वहाँ के लोगों में असन्तोष की भावना का जन्म होना स्वाभाविक है। इस असन्तोष को बढ़ावा देने में हमारी राजनैतिक व्यवस्था एवं चुनाव प्रक्रिया मुख्य रूप से उत्तरदायी है। यहाँ राजनीतिज्ञ चुनाव जीतने एवं सत्ता प्राप्त करने के लिए अदूरदर्शिता पूर्ण नीति अपनाते हैं। देश की एकता एवं अखण्डता पर ध्यान न देकर जन मानस की संवेदनशील भावनाओं को उद्वेलित करते हैं। साथ ही सांप्रदायिकता एवं क्षेत्रीयता जैसी भावनाओं को भड़का कर चुनाव जीतने का प्रयास करते हैं। जनमानस की यही असन्तोष की भावना राष्ट्र के लिए गंभीर खतरा पैदा कर देती है।

लेनिन ने कहा था—प्रत्येक क्रांति का मुख्य प्रश्न राजसत्ता का प्रश्न होता है। सभी राजनीतिक विचारधाराएँ जनसमर्थन जुटाती हैं, सत्ता चाहती हैं। यह सत्य है कि समाज में व्यक्ति भौतिकवादी सोच के कारण विलासपूर्ण जीवन जीने की इच्छा रखता है। तो स्वतः ही मानव की असीम, अनियंत्रित व लोभ लिप्सा रूपी लालसाओं से समाज में भ्रष्टाचार रूपी अंकुर जन्म लेता है, जो देखते ही देखते वट-वृक्ष में परिवर्तित होकर समाज में ऐसे ही अनेक वट वृक्षों की अपेक्षाएँ करता है। ताकि उनकी छाया में इन धिनौने कारनामों का संरक्षण व संवर्धन होता रहे। भ्रष्टाचार का सबसे बड़ा प्रभाव स्वयं व्यक्ति पर पड़ता है। वाह्य दृष्टि से सुख, समृद्धि व वैभव सम्पन्न जीवन के पीछे वह एक खोखला जीवन जीता है। जिसमें डर है, बेबसी है, खालीपन है, समाज एवं स्वयं अपने आप से? आखिर क्यों ?

वर्तमान इक्कीसवीं सदी भावी भारत का निर्माण करेगी, यह आज चिन्ता का विषय बना हुआ है। भारतीय समाज में भारत की गौरवमयी संस्कृति एवं नवीन मूल्यों का संघर्ष चरम सीमा पर है, आज समस्याएँ बहुत हैं। अतः सर्वप्रथम हमें स्वयं के द्वारा स्वयं को जानना होगा। हम प्राचीन काल से ही चिंतनशील प्राणी रहे हैं। ऋषियों, मनीषियों, योगियों, चिंतकों, एवं दार्शनिकों का यह वही देश है जहाँ कभी दूध-दही की नदियाँ सतत प्रवाहित होती थीं। सोने की चिड़िया कहलाने वाला यह देश विश्व गुरु कहलाता था। आज परिस्थितियाँ विपरीत हैं। कृषि

प्रधान कहे जाने वाले इस देश में मानवीय एवं प्राकृतिक प्रकोप बढ़ता जा रहा है। एक तरफ तो हम अन्तरिक्ष में जाने की बात करते हैं, तो दूसरी तरफ हम भूल जाते हैं कि इस एक अरब से अधिक की जनसंख्या वाले देश में हजारों परिवार ऐसे भी हैं जो अपने सदस्यों हेतु बड़ी मुश्किल से अजीविका जुटा पाते हैं। यद्यपि ऊँचे-2 महलों में रहने वाले कारधारी लोगों एवं सफेद पोशों के लिये यह मिथ्या खबर हो सकती है। समस्याओं को देखते हुये देश का राजनीति का नेतृत्व बौना साबित हो रहा है। नेताओं के ऊपर से लोगों का विश्वास उठता जा रहा है। क्योंकि आज की राजनीति सदियों तक उदरपूर्ति का साधन ही नहीं, सभी प्रकार अपराध एवं भ्रष्टाचार से निजात पाने की अन्तिम शरण स्थली भी हो गई है।

शिक्षा-ज्ञान को बेचकर अपना पेट पालने वाले शिक्षण केन्द्रों की भीड़ में नये-2 आकर्षण उत्पन्न किये जा रहे हैं। जिससे शिक्षा ज्ञान को बेचने वाली इन दुकानों की ओर विद्यार्थी नामक ग्राहक आकर्षित होते रहे और शिक्षा ज्ञान बेचने का धंधा फलता-फूलता रहा। इस धंधे में अपना पेट भरने की होड़ में सिर्फ शिक्षित बेरोजगारों ने जहाँ अपना भरपूर उपयोग किया है और अपनी रोजी रोटी कमाने का मार्ग बनाया, वहीं विद्यालयों का स्वामित्व प्राप्त व्यक्तियों ने बढ़ती बेरोजगारी का खुला लाभ उठाते हुए शिक्षित बेरोजगारों का खुलकर शोषण प्रारम्भ कर दिया जिसमें महिला बेरोजगारों की संख्या अधिकाधिक आज भी है तथा पढ़ने-लिखने के बावजूद रोजगार के अभाव और बेकारी इनकी स्थिति भिखारियों से भी अधिक दयनीय दिखाई देती है।

आज जिस प्रकार देश पर भ्रष्टाचार हावी है वह चिंतनीय है। बोफोर्स से चला यह सिलसिला चारा घोटाला, हवाला काण्ड, हर्षद मेहता, नितिन पारीख, अब्दुल करीम तेलगी, कॉमनवेल्थ गेम्स, 2जी स्पैक्ट्रम एवं यादव सिंह के प्रोजेक्टों तक पहुँच गया है। राजनीति पर भ्रष्टाचारी एवं अपराधी हावी हो रहे हैं। पहले नेताओं ने मतदान को प्रभावित करने के लिये बाहुबलियों का सहारा लिया अब बाहुबली स्वयं चुनाव लड़ रहे हैं और विधायिकाओं तक भी पहुँच रहे हैं। यह अपराधी बाहुबल और धनबल दोनों का सहारा लेते हैं।

उपरोक्त इन सब आशंकाओं के बावजूद यह कहा जा सकता है कि भारत का संस्थागत ढाँचा सूचना प्रौद्योगिकी की शक्ति पर सवार होकर अपना रूप बदल रहा है। यह अलग बात है कि क्षेत्रीय विविधता और प्रशासनिक इच्छाशक्ति के अनुसार बदलाव की गति अलग अलग होगी। कवि 'बायरन' ने फ्रेंच क्रांति के लिए कभी लिखा था कि एक सुहानी सुबह जब मैं जगा तो पाया कि दुनिया बदल चुकी थी। सूचना क्रांति भारत को इतने नाटकीय रूप में शायद न बदल पाए लेकिन इसे एकाधिकार और आभिजात्य से आजाद कर जन सुलभ अवश्य बना देगी।

ऐसा नहीं है कि वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य में सब कुछ स्याह ही है। निस्संदेह इसके कुछ उजले पक्ष भी हैं। भारतीय मेधा से भयभीत हो ओबामा का आउटसोर्सिंग पर प्रतिबन्ध, राष्ट्रमण्डल खेलों में मिली सफलता, सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हमारी विश्व विजय, सूचना के अधिकार के अधिकाधिक उपयोग से भ्रष्टाचार और घोटालों का पर्दाफाश होना, पंचायत एवं आम चुनावों में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी, दलित चेतना का निर्णायक उद्भव और बढ़ता मतदान प्रतिशत इनमें प्रमुख हैं। बालिका शिक्षा के प्रति बढ़ती जागरूकता और दिल्ली एवं बिहार का सकारात्मक जनादेश बदले भारत का दृश्य उपस्थित कर रहे हैं। शनैः शनैः ही सही सकारात्मक परिवर्तन हो रहे हैं। वस्तुतः गणतंत्र की सफलता की कुंजी तो जनगणमन के पास ही है। राजनीति लोक मंगलकारी हो और भारत को एक सम्पन्न, सम्प्रभु ही नहीं एक स्वाभिमानी राष्ट्र बनाने की हो, इस अति महत्वपूर्ण उद्देश्य के लिये तंत्र का परिमार्जन करते हुये उसका उपयोग हो, इसकी निगह बानी जनता जनार्दन को ही संभालनी होगी, उसे अपनी चुप्पी तोड़कर खड़ा होना होगा। जनता के सक्रिय सहयोग तथा सहभाग से ही हमारे सांस्कृतिक अधिष्ठान से प्रेरित राजनीति राष्ट्र के उन्नयन का हेतु बनेगी। यदि इक्कीसवीं सदी के भारत को सच्चे अर्थों में शक्तिशाली राष्ट्र बनाना है, प्रगति के सशक्त सोपान पर आगे बढ़ाना है, ऊँचा उठाना है तो भारत की आध्यात्मिक ऊर्जा का सहारा लेकर

सत्य पथ पर आगे बढ़ना होगा। वही भारत की सच्ची तस्वीर होगी, सच्चा रूप होगा।

एक सम्पादक के लिए अपने शुभचिंतकों, प्रशंसकों एवं पाठकों की प्रतिक्रिया ही सब कुछ होती है। इस बात को हम गर्व एवं फक्र के साथ कह-सकते हैं कि हमें इस सम्बन्ध में अपने बुद्धिजीवी मनीषी पाठकों से बहुत कुछ समय-समय पर मिल रहा है। इस सन्दर्भ में सम्पादित लेखों तथा सम्पादकीय में रचनात्मक और सकारात्मक बातें चिन्हित कर हमें पत्र, फोन और ई-मेल से अवगत कराते-रहते हैं सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये पाठकगढ़ न केवल हमारी प्रशंसा और तारीफ के पुल बांधते रहते हैं बल्कि वे हमारी गलतियों को भी बताते एवं एहसास कराते रहते हैं। ये सब प्रतिक्रियाएँ हमारी पूरी टीम का मार्गदर्शन कर हमें प्रोत्साहित कर नयी ताजगी एवं उर्जा का उत्साह कर और आगे कुछ नया करने को प्रेरित तथा उत्साहित कर हिम्मत बढ़ाती हैं और हाशिए पर कर दिए गये समुदाय के लिए नया संघर्ष करने को एक आत्मीय शक्ति भी प्रदान करती हैं। इस परिप्रेक्ष्य में मेरी व्यक्तिगत धारणा है कि जब कोई व्यक्ति स्वार्थ से परे रहकर जनहित के पक्ष में कार्य करने का संकल्प लेता है तो अदृश्य शक्तियाँ भी उसकी मदद करती हैं। इसी तरह से प्रस्तुत यह अंक कुछ नये मिथक, कुछ बुनियादी सरोकार तथा परम्परागत प्रथाओं को वर्तमान नजरिए से देखने की दृष्टि से आप सब पाठकों की अदालत में हाजिर है। आपके अन्तिम निर्णय को शिरोधार्य करने के साथ एक बात जरूर हम कहना चाहेंगे कि

ये और बात कि आंधी हमारे बस में नहीं,
मगर चिराग जलाना तो इख्तियार में है।।

सम्पादक मण्डल

भारतीय विदेश नीति का बदलता स्वरूप और चुनौतियाँ

मनोज कुमार

पूर्व सदस्य

उ.प्र. माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड, इलाहाबाद

प्रवक्ता—रामपाल त्रिवेदी इण्टर कॉलेज, गोसाई गंज, लखनऊ

विदेश नीति के अंतर्गत हम उन सभी दृष्टिकोणों तथा कार्यों को शामिल करते हैं जो एक देश दूसरे देश या देशों के प्रति करता है। व्यापक दृष्टि से विदेश नीति मानवीय सम्बन्धों का एक विशिष्ट पहलू है। सीमित अर्थों में दो राज्यों के आपसी सम्बन्धों का संचालन ही विदेश नीति है। एक राज्य अन्य राज्यों से किस प्रकार के सम्बन्ध रखकर अपना राष्ट्रीय हित प्राप्त कर सकता है यही विदेश नीति का मुख्य प्रयोजन होता है। श्लाइचर के शब्दों में – “व्यापक अर्थ में विदेश नीति उन उद्देश्यों, योजनाओं तथा क्रियाओं का सामूहिक रूप है जो एक राज्य अपने बाह्य सम्बन्धों को संचालित करने के लिए करता है।”¹ माडेल्स्की के अनुसार – “किसी राज्य की विदेश नीति का ध्येय अन्य राज्यों के व्यवहार में ऐसा परिवर्तन लाना होना चाहिए जो उस राज्य के अपने हितों के अनुकूल हो।”² यद्यपि यह कहना उचित नहीं होगा कि जो व्यवहार बदला नहीं जा सकता या जो परिवर्तन अपने अनुकूल नहीं है वह विदेश नीति के दायरे में नहीं आता। विदेश नीति का उद्देश्य, अन्य राज्यों के व्यवहार को विनियमित करना होना चाहिए न कि केवल परिवर्तित करना। विनियमन का अर्थ है दूसरे देशों के व्यवहार में ऐसा समायोजन करना कि वह हमारे हितों के लिए जहाँ तक सम्भव हो, अधिक से अधिक अनुकूल हो।

फेलिक्स ग्रास के अनुसार – “किसी राज्य के साथ कोई भी सम्बन्ध न रखने का फैसला भी एक प्रकार की विदेश नीति है।”³ उदाहरण के लिए भारत ने शीत युद्ध के अंत तक इजराइल के प्रति ऐसी ही विदेश नीति का पालन किया था। 1993 ई. में भारत ने इजराइल के प्रति अपनी विदेश-नीति में बदलाव किया और इजराइल के साथ सम्बन्धों को सुधारने के लिए प्रयास किया जिसमें निरंतरता बनी हुई है। संसार के सभी राज्य एक दूसरे के प्रति अपने आचरण को किसी अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के अंतर्गत संचालित करते हैं, परंतु इसके बावजूद कोई भी राज्य अपनी प्रभुसत्ता के साथ किसी प्रकार का समझौता करने को तैयार नहीं होता। इसके अतिरिक्त कोई भी राज्य अन्य राज्यों के प्रति अपनी विदेश नीति निर्धारित करते समय उन आंतरिक तथा बाह्य परिस्थितियों की उपेक्षा नहीं कर सकता जिसके अधीन उसे अपने आचरण को निश्चित करना है। इस प्रकार राज्यों की प्रभुसत्ता, राज्यों की पारस्परिक निर्भरता और राज्यों की आंतरिक तथा बाह्य परिस्थितियाँ मुख्य रूप से ऐसे तत्व हैं जिसके आधार पर उन सिद्धांतों का जन्म होता है जिसके आधार पर राष्ट्र अपनी विदेश नीति का स्वरूप निर्धारित करते हैं। भारत की विदेश नीति के स्वरूप को भी इसी आधार पर समझने का प्रयास करना चाहिए। परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है इसलिए बदलाव स्वभाविक होता है। राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्र के स्वहितों में परिवर्तन होने से किसी राष्ट्र की विदेश नीति समयानुकूल परिवर्तित होती है। भारतीय विदेश नीति शीत युद्ध के दौरान जिन सिद्धांतों और उद्देश्यों पर आधारित थी वे सिद्धांत और उद्देश्य शीत युद्ध के अंत के उपरांत एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था में संचालित नहीं हो सकते। विश्व में राजनीतिक और आर्थिक परिदृश्य में जो बदलाव 1990 ई. के उपरांत देखने को मिले उन बदलाव से भारतीय विदेश नीति स्वयं को अलग नहीं रख सकती थी। इसलिए बदलते परिदृश्य के अनुरूप भारतीय विदेश नीति में भी बदलाव हुए। इन बदलावों से भारतीय विदेश नीति के समक्ष नवीन चुनौतियाँ भी प्रकट हुई, उन चुनौतियों का सामना करना भारतीय विदेश नीति के लिए एक चुनौती है। किसी राष्ट्र की विदेश नीति अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के अनुरूप संचालित अवश्य होती है परंतु राष्ट्र की विदेश नीति कहाँ तक परिवर्तित होगी यह इस बात

पर निर्भर करेगा कि वह परिवर्तन उस राष्ट्र के राष्ट्रीय हितों को प्राप्त करने में कितना सक्षम है। भारतीय विदेश नीति इस विचार से पृथक नहीं हो सकती, यही कारण है कि भारतीय विदेश नीति अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में आये बदलाव के बावजूद वही तक परिवर्तित हुई जहाँ तक भारत के राष्ट्रीय हितों के लिए आवश्यक था। राष्ट्रीय हित विदेश नीति का सबसे प्रमुख उद्देश्य होता है।

राष्ट्रीय हित विभिन्न संदर्भों में विदेश नीति हेतु आवश्यक भूमिका निभाते हैं – प्रथम, ये विदेश नीति को अंतर्राष्ट्रीय वातावरण के संदर्भ में सामान्य अभिविन्यास प्रदान करते हैं। द्वितीय, यह निकट भविष्य की स्थिति में विदेश नीति को नियंत्रण करने वाले माप दण्डों का विकल्प प्रदान करते हैं। तृतीय, राष्ट्रीय हित विदेश नीति को निरंतरता प्रदान करते हैं। चतुर्थ, इन्हीं के आधार पर विदेश नीति बदलते हुए अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप में अपने आप को ढालने में सक्षम हो सकती है। पंचम, राष्ट्रीय हित विदेश नीति को मजबूत आधार प्रदान करते हैं क्योंकि यह समाज के समन्वित एवं सर्वसम्मति पर आधारित मूल्यों की अभिव्यक्ति होते हैं। अन्तता यह विदेश-नीति हेतु दिशा निर्देशन का कार्य करते हैं। स्पष्ट है कि विदेश नीति का स्वरूप राष्ट्रीय हितों से पृथक नहीं हो सकता। राष्ट्रीय हित किसी राष्ट्र की विदेश नीति का आधार है और विदेश नीति का सिद्धांत राष्ट्रीय हितों की पूर्ति का माध्यम है। राष्ट्रीय हित और अंतर्राष्ट्रीय विश्व व्यवस्था परस्पर पूरक है क्योंकि इनमें से किसी एक में बदलाव, दूसरे को प्रभावित करता है। 1990 ई. के उपरांत जो बदलाव हुए उसका प्रभाव राष्ट्रों की विदेश नीतियों पर भी पड़ा।

भारत की विदेश नीति का पुराना ढाँचा देश पर तब तक शासन करता रहा और ठीक-ठाक चला जब तक कि दूसरे विश्व युद्ध के बाद की व्यवस्था समाप्त नहीं हो गई। एक महाशक्ति तो खण्ड-खण्ड में विघटित हो गई। इस दौरान केवल शीतयुद्ध ही नहीं खत्म हुआ बल्कि सोवियत संघ भी खत्म हो गया। सोवियत संघ के विघटित हो जाने से और खाड़ी युद्ध ने दूसरे विश्व युद्ध के बाद से चली आ रही विश्व व्यवस्था के विघटन को नाटकीय तौर पर प्रकट कर दिया। बहुत अनिश्चित विश्व व्यवस्था द्वारा एक नये युग का आह्वान हुआ। विश्व को नई स्थिति का सामना करना पड़ा। भारत के साथ भी यही हुआ। भारत को बिल्कुल नये सिरे से और नये ढंग से सोचना पड़ा। बहुत सी पुरानी अवधारणाओं का स्थान पूर्णतः नई संकल्पनाओं ने ले लिया। विदेश नीति के लिए अधिक लचीले नतीजे देने वाले आर्थिक संघर्ष पहले की तुलना में ज्यादा जरूरी है। इस तरह भारत की विदेश नीति के लिए नये दिशा निर्देशों के आवश्यकता पड़ गई। परिवर्तन की मांग स्वाभाविक थी क्योंकि एक युग के तर्क दूसरे युग पर लागू नहीं हो सकते और न ही वर्तमान काल के तर्क बीते युग पर पिछले समय से प्रभावी रूप से लागू किये जा सकते हैं। जो आज अच्छा है, यह जरूरी नहीं कि कल के लिए वह अच्छा ही होगा। पीछे मुड़ने में ही सच्चाई की सम्भावना नहीं लगती। कुछ विश्लेषण इस घटना के बाद 'नेहरू ढाँचे' की संपूर्ण विदेश नीति पर व्यंग्य कस कर अधिक बुद्धिमान बनने की कोशिश कर रहे थे। खेमेबंदी की राजनीति से अलग रहने, गुटनिरपेक्षता, विश्वशांति की तलाश, उपनिवेशवाद और नस्लवाद के खिलाफ संघर्ष, आत्मनिर्णय की स्वायत्तता को बनाए रखने, स्वतंत्र विकास, भारत के हितों की रक्षा की कीमत पर सभी बड़ी शक्तियों से सहयोग, सुरक्षा और स्वतंत्रता, गुटनिरपेक्ष और विकासशील देशों के लिए सम्भावित कार्यों की सीमा तक अपेक्षित एकता – यह सब युद्धोत्तर काल के बाद की मौजूदा स्थिति के अवधारणात्मक ढाँचे के समाधान थे जो भारत की आजादी को सम्बृद्धि और सुरक्षा देने वाले थे। नया-नया आजाद हुआ यह देश जिसके पास बहुत थोड़ी सहनशक्ति थी और कोई विशेष आर्थिक लक्ष्य भी नहीं था फिर भी अंतर्राष्ट्रीय रंग भूमि में यह देश महत्वपूर्ण घटक सिद्ध हो सका (यह नेहरू ढाँचे की आधारभूत वैधता को प्रमाणित करता है, जैसा कि अक्सर निरूपित भी किया जाता है।)

वह युग अब इतिहास में बदल चुका है। बी.पी.दत्त से श्री मती इंदिरा गांधी ने कहा था – 'किसी को यह नहीं मान लेना चाहिए कि हम यहाँ खड़े हैं और हमेशा यहीं खड़े रहेंगे।' ⁴ हरहाल में जो लोग परिवर्तन का रोना रो रहे थे और पुराने ढाँचे से ही पूर्णता चिपके रहना चाहते थे, वे इतिहास से मुंह मोड़ रहे थे। वे यह विचार स्वीकार कर रहे थे कि नेहरू ने स्वयं एक कट्टरपंथी और अनैतिहासिक रुख अपनाकर उसे अस्वीकार कर दिया होता।

परिवर्तन को देश के द्वारा सामना की जा रही भू-राजनीति स्थिति में विश्व के सम्मुख उम्मीद जगाने वाली वास्तविक स्थिति से अवश्य सम्बंध रखना चाहिए, केवल सुदूर क्षेत्र से उठने वाली गड़गड़ाहटों और एक खास समय के अंक गहरे गुप्त प्रभाव वाली अंतर्राष्ट्रीय राजनीति से ही सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए।

शीत युद्ध के अंत के उपरान्त अंतर्राष्ट्रीय विश्व व्यवस्था में अनेक बदलाव देखने को मिलते हैं परंतु विश्वव्यवस्था को सबसे अधिक बदलने का कार्य आर्थिक क्षेत्र के द्वारा हुआ। इसी बदलाव के कारण अंतर्राष्ट्रीय राजनीति को सर्वाधिक रूप से आर्थिक कारकों ने प्रभावित किया जिसे हम भूमण्डलीयकरण या वैश्वीकरण का नाम देते हैं। भूमण्डलीयकरण से राष्ट्रों के बीच प्रतियोगिता किसी अन्य वस्तु के सापेक्ष आर्थिक आधार पर अंकित हो रही है। इसीलिए कहा जाता है कि आर्थिक संघर्ष ने राजनैतिक संघर्ष के ऊपर प्रमुखता हासिल कर ली है। यद्यपि राजनीतिक संघर्ष अभी समाप्त नहीं हुए हैं और निश्चय ही बहुत से देशों में राजनीतिक संघर्ष करीब-करीब तेज तथा सम्बंध समाप्त करा देने वाले थे, परंतु प्रजातीय और अन्य राजनीतिक गंदर के कारण टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो चले देशों को छोड़कर प्रायः हर देश आर्थिक विकास पर अपना ध्यान केन्द्रित कर रहे थे। यहाँ तक कि उनमें से बहुतों में राजनीतिक संघर्ष भी आर्थिक नीतियों के आस-पास ही जमा हुआ था। नए युग में कोई भी देश सार्थक अंतर्राष्ट्रीय भूमिका निभाने की आशा नहीं कर सकता, अगर वह अपने देश की आर्थिक समस्याओं का समाधान नहीं कर लेता और अपनी आर्थिक प्रगति का अच्छा उल्लेखनीय प्रदर्शन नहीं कर पाता। आर्थिक परिणाम ही अब विदेश नीति के सबसे महत्वपूर्ण बन गये हैं। बी.पी. दत्त से सामवादी पार्टी की केन्द्रीय समिति के एक वरिष्ठ कार्यकर्ता ने कहा था – “अगर आप के पास आर्थिक शक्ति नहीं तो कोई भी आप को गम्भीरता से नहीं लेगा।”⁵ यह आर्थिक मामले ही थे जिन्होंने विकसित विश्व को ही अपने अधीन कर लिया। विदेश नीति के उद्देश्यों में आर्थिक पक्ष कितना महत्वपूर्ण है। इस सम्बन्ध में जवाहर लाल नेहरू ने कहा था – “बिना आर्थिक प्रगति और देश की जनता के जीवन स्तर में कल्याणकारी तरक्की के सुरक्षा की बात करना मात्र असम्भव बात के पीछे भागना है।”⁶

बदलते विश्व के अनुरूप भारत की विदेश नीति ने स्वयं को ढालने का प्रयास किया क्योंकि भारत की विदेश नीति के पुराने ढांचे ने अपने तक भारत के लिए अच्छा काम किया था। लेकिन नई परिस्थिति में इसे अतिरिक्त खंभे की जरूरत थी। पुराने ढांचे के अनेक तत्व – जैसे निर्णय लेने की स्वायत्तता संदर्भ के रूप में भारत की आजादी को दृढ़ता प्रदान करना और गुट निरपेक्षता निश्चय ही हमारे मार्गदर्शन रहे परंतु भारत को अब इससे आगे जाने की और नये मोर्चेबंदी की जरूरत थी, इसीलिए पुराने मापदण्ड की जगह नये मापदण्ड को स्थापित करने की आवश्यकता थी। हम अतीत के बंदी नहीं बने रह सकते थे इन्हीं कारणों से पहले की तुलना में आज भारत की विदेश नीति में भारत के आर्थिक हितों को आग बढ़ाने की आवश्यकता है। आर्थिक नियोजन के दबाव सुरक्षा के दबाव से कम महत्वपूर्ण नहीं है, इसलिए इन्हें भारत की नीतियों को अवश्य प्रभावित करना चाहिए।

नई विश्वव्यवस्था के उदय से भारतीय विदेश नीति ने स्वयं को अनुकूल बनाने के लिए अनेक नीतिगत और व्यवहारिक परिणाम देखने को मिलते हैं। भारतीय विदेशनीति ने स्वयं को नई दिशा प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक परिवर्तन किये और स्वीकार भी किये। भारत ने वैश्वीकरण के अनुरूप ढालने के लिए आर्थिक उदारवादी नीतियों को स्वीकार किया जिससे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक प्रतिस्पर्धा में एक मुख्य कर्ता की भूमिका निभा सके। इन्हीं कारणों से भारत की अर्थव्यवस्था विश्व की चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। आर्थिक सम्बन्धों को प्रभावी और समयानुकूल बनाने के लिए भारतीय विदेशनीति अन्य देशों की विदेशनीतियों के साथ परिवर्तित दिखाई देती है, जहाँ भारतीय विदेश नीति अमेरिका के साथ आर्थिक संबंधों को अधिक तरजीह दे रही है वहीं भारत के पुराने मित्र रूस के साथ सम्बंधों में पहले की अपेक्षा शिथिलता देखने को मिलती है। इजराइल के साथ भारत के सम्बंधों में नयापन भारतीय विदेशनीति का बदलता चेहरा है। शीतयुद्ध के दौरान फिलिस्तीन और अन्य अरब राष्ट्रों के साथ भारत के सम्बन्ध, इजराइल के साथ सम्बन्ध बनाने से प्रभावित न हो

इसलिये भारत की विदेशनीति में इजराइल विशेष महत्वपूर्ण नहीं था। इसी प्रकार भारतीय विदेश नीति दक्षिण पूर्व एशिया एवं सुदूर पूर्व एशिया के देशों के साथ अच्छे सम्बन्धों को विकसित करने के लिए सार्थक पहल की। इसी का परिणाम है कि 'आशियान संगठन' में सम्मिलित देशों के साथ भारत के आर्थिक सम्बन्धों में सकारात्मक बदलाव देखने को मिलता है। चीन के साथ भारतीय विदेश नीति का बदलता स्वरूप इस ओर इंगित करता है कि भारत की विदेश नीति में जो बदलाव शीत युद्ध के अंत के बाद देखने को मिलते हैं। उन बदलावों में भारत के पड़ोसी राष्ट्रों के साथ ही महाशक्तियों के साथ भी समयानुकूल सकारात्मक बदलाव हुए हैं। 1991-1992 में भारत द्वारा उदारवादी आर्थिक नीतियों को अपनाने के बाद भारत की अर्थव्यवस्था मिश्रित अर्थव्यवस्था तो बनी रही लेकिन उसमें महत्वपूर्ण बदलाव अवश्य हुआ जहाँ पहले भारतीय अर्थव्यवस्था में समाजवादी व्यवस्था का पक्ष अधिक मजबूत था और पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का पक्ष कमजोर था। लेकिन नई आर्थिक नीतियों के लागू होने से भारतीय अर्थव्यवस्था में पूंजीवादी अर्थव्यवस्था अधिक मजबूत हुई है और समाजवादी अर्थव्यवस्था का पक्ष कमजोर हुआ है। इस बदलाव से भारतीय विदेशनीति पृथक् नहीं रहा सकती थी जिससे भारतीय विदेश नीति का स्वरूप बदलना स्वाभाविक और समय की मांग थी।

भारत की विदेश नीति के स्वरूप में समयानुकूल जो परिवर्तन हुए हैं उन परिवर्तनों का तात्पर्य यह नहीं हो सकता कि भारतीय विदेशनीति के समक्ष राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सब कुछ ठीक हो गया है। प्रत्येक परिवर्तन या बदलाव समय के अनुरूप कुछ समाधान या सकारात्मक पक्ष लेकर आता है तो वही बहुत सी नवीन समस्याएँ या चुनौतियाँ भी लेकर आता है। भारतीय विदेश नीति के सम्बन्ध में इस यथार्थ को स्वीकार किया जाना चाहिए। भारतीय विदेश नीति के समक्ष समय के अनुरूप अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर अनेक नई चुनौतियाँ उभरकर सामने आयी हैं। क्योंकि शक्ति का वैश्विक संतुलन बिगड़ रहा है। उभरते देश जैसे कि चीन और भारत महसूस करते हैं कि वह वैश्विक शासन संरचना पर्याप्त रूप से उनके हितों का प्रतिनिधित्व नहीं करते। और इन शासन संरचनाओं के मौजूदा प्रबंधक, संरचना के अंतर्गत इन बढ़ती शक्तियों के 'सहविकल्प' के मुद्दे का सामना कर रहे हैं।

शीत युद्ध के बाद की अवधि में, इसके विभिन्न चरणों के दौरान, कार्यवाही की अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए राजनीतिक और आर्थिक एजेण्डों को लागू करने के लिए भारत का लक्ष्य महाशक्ति के दबाव का विरोध करना, राजनीतिक, सैनिक और अर्धसैनिक, विध्वंसक गतिविधियों की पूरी रेंज का मुकाबला, रक्षा तैयारियों को बनाये रखना और हमारी तकनीकी आत्मनिर्भरता की सम्भावनाओं की सुरक्षा और सामाजिक आर्थिक विकास है। 1991 के बाद अपनी आशंका के विपरीत भारत के अमरीकी सम्बन्धों में काफी सुधार हुआ है क्योंकि एक स्थिर शक्ति के रूप में भारत को देखता है और उत्तरार्ध में चीन के खिलाफ जिसके साथ अपने सम्बन्ध काफी समय से खराब हैं, लाभ उठाना चाहता है। पूर्व दिशा में शक्ति के संतुलन के स्थानान्तरण से चीन को रोकना चाहता है। जिसके साथ भारत का एक जटिल रिस्ता है।

भारत का सुरक्षा वातावरण जटिल बना हुआ है। चीन और पाकिस्तान के साथ अस्थिर सीमा मुद्दे दैनिक आधार पर तनाव में रहते हैं। अफगानिस्तान में अंतर्राष्ट्रीय सैनिकों के वापसी होने के बाद अनिश्चितता का वातावरण बना हुआ है। नेपाल भी राजनीतिक रूप से अस्थिर बना हुआ है और मालदीव में अशांति बढ़ रही है। भारत श्रीलंका के बीच तमिल मुद्दा अभी भी अस्थिर बना हुआ है। बांग्लादेश आंतरिक राजनीतिक टकराव के कारण अस्थिर दौरे से गुजर रहा है। म्यांमार को अभी भी सेना के लोकतांत्रिक सरकार के साथ एक अनिश्चित और असहज संक्रमण हो रहा है। भारत पाकिस्तान के सम्बंध भारतीय विदेश नीति के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती बनी हुई है। पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवाद, कश्मीर सहित अनेक महत्वपूर्ण क्षेत्र ऐसे हैं जो भारत पाकिस्तान के बीच कटुतापूर्ण संबंधों को लेकर भारतीय विदेशनीति के समक्ष इनमें सुधार लाना एक बड़ी चुनौती है। यह चुनौती इसलिए और महत्वपूर्ण हो जाती है कि भारत पाकिस्तान दोनों ही परमाणु सम्पन्न राष्ट्र हैं इस वजह से दोनों राष्ट्रों के बीच टकराव की

स्थिति बेहद संवेदनशील है। भारतीय विदेशनीति और कूटनीति के लिए एक गंभीर समस्या है। इस समस्या का समाधान भारतीय विदेशनीति किस तरीके से समाधान कर पाती है। यह भारतीय कूटनीति की कारगर सम्भावनाओं पर निर्भर करेगा। परमाणु युग में परमाणु शस्त्रों का प्रयोग विशेष कर परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों के बीच एक साधन के रूप में युद्ध का विकल्प समाप्त हो चुका है। क्योंकि परमाणु युद्ध को 'आत्महत्या' के रूप में स्वीकार किया जाता है।

भारत की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि उसकी भौगोलिक सीमाओं का एक बड़ा भाग समुद्र से घिरा हुआ है। यह समुद्री क्षेत्र जहाँ भारत की सुरक्षा और सामरिक दृष्टि से मजबूती प्रदान करता तो है ही साथ ही इससे भारत की विदेश नीति के समक्ष नवीन चुनौतियाँ भी खड़ी हुई हैं। इसलिए भारत को निकट वर्तीय समुद्री क्षेत्र भारत के लिए विशेष महत्व का है। चीन की रणनीति भारत को भौगोलिक क्षेत्र के साथ-साथ समुद्री क्षेत्र के माध्यम से घेरने की है। भारत इस चुनौती को जानता है इसीलिए समुद्री तरफ भारत अपनी पहुँच को बढ़ाना चाहता है। यद्यपि बढ़ती पहुँच का अर्थ एक बार भौगोलिक दृष्टि से दूर समस्याएँ अब घर के करीब दिखाई देती हैं। चाहे वे उत्तरी अरब सागर, दक्षिणी चीन सागर, पूर्वी चीन सागर एवं हिंद महासागर एक सम्भावित तनाव की अवधि में प्रवेश कर रहा है। प्रवासी भारतीय विश्वभर में फैले हैं, विशेष रूप से मध्यपूर्व में जो महत्वपूर्ण ऊर्जा आपूर्ति का एक स्रोत है। विदेश नीति निर्माताओं को सूक्ष्म रूप से दुनियाभर के विकास घटनाक्रम के पालन करना आवश्यक है।

बहुपक्षीय स्तर पर, भारत ने वैश्विक संस्थाओं के सुधार के लिए अभियान चलाया है। संयुक्त राष्ट्र संघ, विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष विशेष रूप से ऐसी ही संस्थाएँ हैं जिनमें सुधार न केवल समय की मांग है बल्कि श्रेष्ठ वैश्विक लोकतांत्रिक दृष्टि से भी आवश्यक है। द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त विश्वव्यवस्था की जो संरचना थी वह 21वीं शदी की विश्व व्यवस्था की संरचना से मेल नहीं खाती आज का दौरे लोकतांत्रिक ढाँचे में और उचित सहभागिता में विश्वास करता है इसलिए अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के स्वरूप, संरचना में सुधार कर कुछ राष्ट्रों के एकाधिकार को समाप्त कर विकसित और विकासशील राष्ट्रों के समन्वयकारी दृष्टिकोण को स्वीकार करने की इच्छाशक्ति होनी चाहिए। विश्व के सभी राष्ट्रों की विश्वसंस्थाओं में उचित सहभागिता हो यह भारत की विदेश नीति के लिए चुनौती इसलिए और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है कि शीत युद्ध के दौरान भारत ने गुट निरपेक्ष आंदोलन के माध्यम से विकासशील देशों के हितों के लिए विश्व नेता के रूप में जिस भूमिका का निर्वहन किया था उसी भूमिका की आवश्यकता बदलती नवीन अंतर्राष्ट्रीय विश्व व्यवस्था के लिए होनी चाहिए। इस भूमिका की प्रभावशीलता भारत की विदेशनीति को एक महाशक्ति के रूप में प्रसारित करने के साथ-साथ विकासशील राष्ट्रों का समर्थन भी हासिल करने में सक्षम होगा, इस भूमिका को भारत की विदेशनीति जिस स्तर तक निभा सकेगी उसी के अनुरूप अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के प्रति भारत की भूमिका बढ़ सकेगी।

संस्थागत लचीलापन और आजादी के बाद से भारत की विदेश नीति के मार्गदर्शक सिद्धांतों ने अच्छी तरह से देश को खड़ा किया हुआ है। आज अनिश्चितता के समय में इन्हें सफलता के कारण के रूप में स्वीकार किया गया लेकिन तरलता और उभरती परिस्थितियों की अनिश्चितता ऐसी है कि भारत की विदेशनीति की स्थापन के घुमाव की ओर सदा आगे रहने के लिए और जानकारी संतुष्ट के इस युग में भारत के बाहर शक्तिशाली राय बनाते हल्कों द्वारा प्रेरित समूह विचार के नुकसान से बचने की आवश्यकता है इसलिए क्षमता निर्माण के हिस्से के रूप में भारत को 'पारम्परिक और गैर पारम्परिक सुरक्षा चुनौतियों को पूरा करने की आवश्यकता है। गैर पारम्परिक सुरक्षा चुनौतियाँ राजनीतिक अस्थिरता और पड़ोस के देशों में विश्वयुद्ध जलवायु परिवर्तन वैश्विक, आर्थिक समस्याएँ पारराष्ट्रीय अपराध राज्य प्राधिकरण की तकनीक उन्नति सहित सामाजिक मीडिया के माध्यम से व्यक्तियों या समूहों ... उत्पन्न होती है। इन गैर पारम्परिक द्वारा उत्पन्न विदेश नीति चुनौतियों को एक अलग तरह के कूटनीतिक प्रयास और क्षमता के विभिन्न प्रक्रमों की आवश्यकता होती है जो एक-एक गैर विरोधात्मक दृष्टिकोण से भी अमित्र सरकार पर आधारित है। इन विभिन्न तरह की चुनौतियों को पूरा करने के लिए संस्थागत क्षमता की विशेष

आवश्यकता होगी। क्षमता निर्माण में लागत में कटौती मुद्दों पर नियंत्रण की आवश्यकता है क्योंकि ये परिदृश्य के निर्माण के निरंतर अभ्यास से उत्पन्न होते हैं।

भारतीय विदेशनीति के प्रति वर्तमान राज्य सरकार की नीति पहले से चली आ रही नीति को आगे बढ़ाने की है यद्यपि वर्तमान सरकार का विदेशनीति के प्रति कुछ अंशों में बदलाव भी देखने को मिलता है इसलिए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने एक कार्यक्रम के दौरान भारतीय राजदूतों को सलाह दी कि भविष्य में भारत की भूमिका एक संतुलन शक्ति के बजाय एक प्रमुख शक्ति के रूप में हो मोदी सरकार ने आर्थिक कूटनीति पर बल दे कर अपनी प्राथमिकता को लागू करने के लिए 'मेक इन इण्डिया' के द्वारा इसे अच्छी तरह से स्वीकार किया है। यह अपनी पहली कूटनीतिक पहलों में से एक रूप में ध्वनि और व्ययहारिक सोच पर आधारित है। प्रधानमंत्री मोदी ने हाल ही में सागर यात्रा के द्वारा भारत के गहरे समुद्री हितों को रेखांकित किया है। प्रमुख वैश्विक शक्तियों के साथ नए नेतृत्व के द्वारा अपनायी गयी व्यस्त राजनीतिक व्यवस्था इस सोच की पुष्टि करता है कि वैश्विक करवटे इस युग में भारत का राष्ट्रीय हित केवल अपनी अंतराष्ट्रीय प्रतिष्ठा और प्रभाव को बढ़ाने से हो सकता है कि भारत के नेतृत्व के अपने वार्ताकारों की आँखों में एक ही समय में अपनी साख को बनाए रखने के लिए संस्थागत दक्षता और कूटनीतिक समझ रखने वालों से गठबंधन करना होगा।

भारतीय विदेशनीति का बदलता स्वरूप और उसके समक्ष उभरती नई चुनौतियाँ इस विचार को रेखांकित करता है कि समय और परिस्थिति के अनुरूप राष्ट्र को विदेशनीति का संचालन आवश्यक होता है क्योंकि किसी राष्ट्र को राष्ट्रीय हित उस राष्ट्र के लोगों के हितों पर आधारित होते हैं। लोगों के हित जरूरतों के अनुसार परिवर्तनीय हैं। यह बदलाव राष्ट्र की विदेशनीति को बाध्य करता है कि उसका उद्देश्य राष्ट्र के सामान्य सामूहिक हितों की पूर्ति करना होना चाहिए चाहे वे हित राजनीतिक, सामाजिक या आर्थिक हो। शीत युद्ध के उपरांत अंतराष्ट्रीय विश्व व्यवस्था जिस प्रकार परिवर्तित हुई है उस कारण से बहुत से विचारकों ने सम्पूर्ण विश्व के राष्ट्रों के बीच जो निकटता आयी है उसे विश्वगोष्ठ के रूप में प्रसारित किया है। यह बदलाव अंतराष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में भी देखने को मिलता है वर्तमान विश्वव्यवस्था एक ध्रुवीय विश्वव्यवस्था के रूप में अस्तित्व में है। इस नवीन व्यवस्था के अनुरूप भारत की विदेशनीति स्वयं के राष्ट्रीय हितों की पूर्ति किस प्रकार करती है यह विदेशनीति के लिए एक चुनौती है। इस समस्या का समाधान भारत की विदेश नीति अपने स्वरूप में गुणात्मक बदलाव करके ही कर सकती है। इसलिए भारत की विदेशनीति के स्वरूप में देशकाल की दृष्टि से बदलाव उचित ही कहा जाएगा। ऐसा बदलाव समय की मांग थी, जिससे भारत की विदेशनीति समयानुकूल चुनौतियों का सामना करने में सक्षम हो सके।

संदर्भ

1. शिक्षा.....एवं शुक्ला सुभाष, अंतराष्ट्रीय राजनीति के पृष्ठ-118
2. उपर्युक्त
3. उपर्युक्त, पृष्ठ-119
4. पी दत्त, वी.पी, बदलती दुनिया में भारत की विदेशनीति भाग-2, हिंदी माध्यम कार्यन्वय निर्देशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण 2003 पृष्ठ-2
5. उपर्युक्त, पृष्ठ-22
6. उपर्युक्त, पृष्ठ-24



सामाजिक मूल्य और मिलावट की पराकाष्ठा

डॉ. अंजना वर्मा

व्याख्याता समाजशास्त्र

बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राज.)

सामाजिक मूल्य समाज की व्यवस्था को सुचारु, संतुलित, नियन्त्रित एवं आदर्श बनाये रखने में योगदान करते हैं, सम्यता और संस्कृति के विकास में भी सामाजिक मूल्यों की भूमिका उल्लेखनीय रही है। सामाजिक मूल्य व्यक्ति के व्यवहार का मूल्यांकन करने का एक मापदण्ड हैं। यह एक प्रकार का पैमाना अथवा कसौटी है जो किसी व्यवहार को उचित/अनुचित, अपेक्षित/अनपेक्षित, अच्छा/बुरा, अनुकूल/प्रतिकूल के रूप में प्रमाणित कर सकता है। सामाजिक मूल्य संस्कृति द्वारा निर्धारित होते हैं अतः सांस्कृतिक भिन्नता के कारण मूल्यों में भी भिन्नता पाई जाती है। सामाजिक मूल्य अमूर्त एवं मानव मस्तिष्क से सम्बन्धित होते हैं। मूल्यों में स्थायित्व भी होता है तथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होते रहते हैं। भारतीय समाज आध्यात्म प्रधान समाज रहा है। यहाँ की परम्परागत समाज व्यवस्था में धर्म एवं धार्मिक कर्तव्यों के पालन को आवश्यक समझा गया है। धार्मिक उपदेश धर्म के अनुसार आचरण एवं कर्तव्य को आत्मसात् करना ही भारतीय सामाजिक मूल्य थे। धीरे-धीरे विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास हुआ। अनुभविता के आधार पर तार्किकता भी विकसित हुई। आध्यात्मिक मूल्यों के साथ भौतिकवादी मूल्यों का प्रादुर्भाव होने लगा। आध्यात्मिक मूल्यों में त्याग और पुरुषार्थ के बीच समन्वय की बात आती है जबकि भौतिकवादी मूल्य केवल पुरुषार्थ पर ही केन्द्रित हैं। ऐसी स्थिति में आध्यात्मिक मूल्यों और भौतिकवादी मूल्यों के बीच संघर्ष उत्पन्न हो जाता है इसे मूल्य संकट की स्थिति कहा जाता है। भौतिकवादी मूल्य उद्यम और धन उपार्जित करने के लिए प्रेरित करते हैं जबकि आध्यात्मिक मूल्य त्याग और तप को महत्व देते हैं।

जब से उदारीकरण की नीति लागू हुई तभी से निजीकरण और वैश्वीकरण की प्रक्रियाएँ भी तीव्र गति से प्रारम्भ हो गई। इन प्रक्रियाओं के प्रभाव से उपभोक्तावादी संस्कृति भी व्यापक रूप से प्रभावी हो गई। आज अर्थिक से अधिक अर्थोपार्जन और अधिक से अधिक व्यय करने की होड़ सी मची हुई है। इसी का परिणाम है मिलावट की पराकाष्ठा।

गैर कानूनी होने के बावजूद हमारे देश में मिलावट का कारोबार निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है खाने-पीने की चीजों, मिर्च-मसालों, तेल, घी, दूध, नकली दवाओं, सौन्दर्य-प्रसाधन, ऑटोमोबाइल, इलेक्ट्रॉनिक कल-पुर्जे, दूरसंचार से सम्बन्धित उपकरणों, नकली नोटों का अवैध कारोबार, हरी साग-सब्जियों को ताजा व चमकदार दिखाने में मिलावट आदि। मिलावट की पराकाष्ठा को निम्न क्षेत्रों में देखा जा सकता है—

खाद्यान्न में मिलावट — खाने-पीने की चीजों की शुद्धता तय करने के लिए भारत सरकार ने एगमार्क की मुहर और अन्य किसी उत्पाद को बाजार में उतारने से पहले भारतीय मानक ब्यूरो का प्रमाण पत्र हासिल करना अनिवार्य कर दिया गया है, लेकिन अगर कम्पनियाँ इन मानकों का पालन करती भी हैं तो आधुनिक तकनीकों का सहारा लेकर हू-ब-हू नकली सामान की पैकिंग तैयार कर ली जाती है। ऐसी हालत में उपभोक्ता का भ्रमित होना स्वाभाविक है फिर ज्यादा कमीशन के लोभ में दुकानदार भी ऐसे उत्पादों को बेचने में अधिक रुचि लेते हैं और ग्राहकों को भी रियायत दे देते हैं लोगों की थोड़े से पैसे बचाने की मानसिकता भी इस कारोबार को मदद पहुँचाती है इस तरह यह कारोबार फलता-फूलता जा रहा है। हरी साग-सब्जियाँ ताजा और चमकदार दिखें, इसके लिए सीसा और जिंक जैसी काफी नुक्सानदेह धातुओं का इस्तेमाल किया जाता है इससे मस्तिष्क आघात और पक्षाघात का खतरा रहता है। कुछ वर्ष पहले देश भर में दूध के नमूनों की जाँच की गई थी, जिसमें बड़ी मात्रा में डीडीटी

और मिथाइल साइक्लोहेक्जेन पाया गया। इन दोनों रसायनों से कैंसर व जन्मजात रोग हो जाते हैं। खाद्य-पदार्थों और पानी में अधिक मात्रा में कीटनाशकों के इस्तेमाल ने माँ के दूध तक को भी असुरक्षित बना दिया है यही नहीं, पशुओं पर किए गए अध्ययनों के अनुसार खाने-पीने की चीजों में थोड़ी मात्रा में की गई मिलावट भी कैंसर, पक्षाघात, अस्थिमज्जा की कोशिकाओं को नुकसान पहुँचाने के अलावा शुक्राणुओं की संख्या में कमी का कारण बन सकती है जाहिर है इस तरह के खतरों से अनजान आम लोग खाने-पीने की मिलावटी चीजों के चलते कई रोगों का शिकार हो जाते हैं।

सब्जियों को उगाने में रासायनिक खादों का इस्तेमाल और बाद में उन्हें सड़ने से बचाने के लिए उन पर किया जाने वाला रासायनिक लेप भी जन स्वास्थ्य के लिए भारी खतरा पैदा कर रहा है। नालों में उगाई जा रही संक्रमित सब्जियाँ और फल बाजारों में धड़ल्ले से बिक रहे हैं। सामान्यजन के पास सब्जियों को परखने की कोई कसौटी नहीं है कि यह नाले में उगायी गई या खेतों में। सरसों के तेल में आर्जीमोन या सत्यानाशी तेल की मिलावट से हृदय रोग, आँखों की बीमारी एवं अन्य महँगे खाद्य तेलों में घटिया सस्ते खनिज तेलों की गिरावट से किडनी रोग, कैंसर व त्वचा संबंधी रोग हो सकते हैं। उल्लेखनीय है कि सन् 1998 में मिलावटी सरसों तेल के इस्तेमाल से नई दिल्ली में ड्राप्सी नामक बीमारी फैली थी। इससे करीबन 2000 लोग प्रभावित हुए थे व लगभग 40 लोगों की मृत्यु हो गई थी। इसके बावजूद सरसों के तेल में मिलावट का सिलसिला अनवरत चालू है नकली घी का व्यापार भी बहुत प्रगति पर है नकली वस्तुएँ बनाने के कारखाने पकड़े जाते हैं, संबंधित दोषी भी पकड़े जाते हैं, किन्तु मिलावट का व्यापार बदस्तूर चालू रहता है। अरहर की दाल में खेरारी दाल लकवे का कारण बनती है। हल्दी में लैड क्रोमेट व मक्का का आटा मिलाने से रक्ताल्पता व कम दिखाई देने संबंधी रोग हो जाते हैं। चावल व दालों में मैटानिल पेलों नामक निषिद्ध पीले रंग की मिलावट होती है। काली मिर्च में पपीते के बीज, हींग में सेलखडी, नमक में खड़िया व काफी में चिकोरी की मिलावट तो आम बात है। गरम मसालों में चोकर, भूसी, लकड़ी का बुरादा, एसेस व रंग मिलाकर पैकेट बनाने के उद्योग तो आए दिन कई शहरों में पकड़े जाने के समाचार पढ़ने को मिलते हैं पर ये मिलावटी धंधे फिर भी पनपते ही जा रहे हैं। खाद्य पदार्थों में मिलावट एक अति गंभीर एवं संवेदनशील मामला है।

डिब्बाबंद खाद्य पदार्थों में मिलावट

उदारीकरण, वैश्वीकरण और बाजारीकरण के इस दौर में डिब्बाबंद खाद्य पदार्थ और बोतलबंद पानी या ठंडे पेय का प्रचलन कुछ ज्यादा ही बढ़ता जा रहा है जबकि डिब्बाबंद खाद्य पदार्थ और बोतलबंद पानी या शीतलपेय के उपभोग से कई तरह की बीमारियाँ शरीर में पनपने लगती हैं। इससे न सिर्फ मोटापा बढ़ता है, बल्कि कई बीमारियाँ भी शरीर में हो जाती हैं। मोटापे की वजह से कम उम्र में ही बच्चों की हड्डियाँ कमजोर पड़ने लगती हैं और जोड़ों में दर्द रहने लगता है। मधुमेह, पथरी और दिल की बीमारी जैसे रोग उन्हें अपनी चपेट में लेते हैं। जिनका सही समय पर पता भी नहीं चल पाता है। इस सबके बावजूद शहरों और महानगरों में जिस तरह से घर में पके भोजन के बजाए इस तरह के खान-पान के प्रति लोगों का झुकाव बढ़ा है उससे बड़ी संख्या में बच्चे कई रोगों के शिकार हो रहे हैं। लोग प्यास बुझाने के लिए बोतल में भरा पानी खरीदते हैं। इस बारे में अमेरिकी पर्यावरणविदों तक का कहना है कि बोतल बंद पानी सेहत का नया दुश्मन नम्बर वन है। सरकारी पेयजल के नल के बजाए बोतल बंद पानी फैशन और विलासिता के प्रतीक होने के साथ ही लोगों की मजबूरी बनता जा रहा है। बोतल में बंद हो जाने के बाद इस पानी में जीवाणुओं की संख्या कम होने के बजाय लगातार बढ़ती ही जाती है। इस प्रकार हर सूरत में यह पानी नल के पानी की तुलना में खराब गुणवत्ता वाला और सेहत के लिए हानिकारक है। इसी के मद्देनजर बच्चों के अधिकारों के लिए गठित राष्ट्रीय आयोग ने सभी राज्यों और केन्द्र की सरकार से कहा है कि वे सबसे पहले स्कूलों में इस तरह के डिब्बा बंद खाद्य पदार्थ और बोतलबंद पानी या शीतल पेय

की बिक्री पर रोक लगाएँ। इसके अलावा छात्रों के लिए पोषण से भरपूर भोजन का मानक तय करने और शारीरिक गतिविधियों को प्रोत्साहित करने की जरूरत है। कुछ लोगों का तर्क है कि व्यस्त और भागदौड़ की जिन्दगी में तैयार भोजन कई तरह की झंझटों से मुक्ति दिलाते हैं। लेकिन इस शौक और रुझान के खतरनाक नतीजे अब लोगों की सेहत पर साफ दिखाई देने लगे हैं। गर्भवती माताएँ अगर डिब्बाबंद भोजन का सेवन करती हैं तो पैदा होने वाला बच्चा मोटापे का शिकार हो सकता है। महानगरीय जीवन में हैसियत का दिखावा और बच्चों के प्रति प्यार—दुलार प्रकट करने की होड़ में बाजारु भोजन के प्रति उनकी ललक को पूरा करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। टेलीविजन और दूसरे संचार माध्यमों पर इनके विज्ञापनों और लुभावनी योजनाओं से प्रभावित होकर बच्चों में उन उत्पादों के प्रति स्वाभाविक ललक पैदा होती है। यहाँ तक की माता—पिता भी ऐसे मामलों में सतर्कता बरतने के बजाए वक्त की कमी का तर्क देकर अपने बच्चों को बाजारु भोजन के विज्ञापनों का शिकार होने देते हैं। डिब्बाबंद खाद्य पदार्थों का कारोबार करने वाली कम्पनियाँ अक्सर सेहत और पोषण को ध्यान में रखने का दावा करती हैं लेकिन तथ्य है कि ऐसे भोजन के कारण बच्चों के शरीर में कैल्शियम और लौहत्व की कमी पाई जाती है।

नियमों व कानूनों को ताक में रखकर देश में वर्षों से बच्चों के लिए डिब्बाबंद दूध धड़ल्ले से बन व बिक रहा है। सिर्फ दूध ही नहीं बल्कि खाद्य उत्पादों में प्रयुक्त होने वाले डेढ़ दर्जन से अधिक रसायनों के उपयोग में भी कानूनों की अनदेखी हो रही है। भले ही बच्चे देश का भविष्य हों, लेकिन उनकी जान की कीमत समझने को शायद सरकार भी तैयार नहीं है। केन्द्र सरकार ने अगस्त, 2006 में जो नया कानून बनाया उसमें सभी डिब्बाबंद खाद्य पदार्थों के लेबल पर उनमें शामिल तत्वों का उल्लेख अनिवार्य कर दिया गया। खाद्य अपमिश्रण निवारण कानून में यह नियम पहले से था, मगर बहुत से खाद्य पदार्थ इसके दायरे से बाहर थे। कुछ बड़ी कंपनियाँ जरूर इस शर्त का पालन करती थीं, मगर लघु उद्योगों के स्तर पर जैम, जैली, अचार, मुरब्बे वगैरह बनाने वाली कंपनियाँ प्रायः इसके प्रति लापरवाह दिखाई देती थीं। नया नियम लागू होने के बाद हर कंपनी के लिए अपने उत्पाद में इस्तेमाल की गई, सामग्री और उसमें मौजूद प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन, खनिज, लवण आदि की मात्रा का मुकम्मल ब्यौरा देना जरूरी होगा।

पिछले एक डेढ़ दशक में डिब्बाबंद खाद्य सामग्री का बाजार काफी तेजी से फैला है। घरेलू कारोबारियों के अलावा अनेक बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने भी इस क्षेत्र में काफी रुचि दिखाई है। मगर खाद्य अपमिश्रण निवारण कानून में कुछ नियमों की स्पष्ट व्याख्या न होने के कारण यह कंपनियाँ अपने उत्पाद में मौजूद सभी तत्वों की जानकारी देने से बचती रही है। वे डिब्बों पर केसरयुक्त या चाँदी युक्त जैसे विज्ञापनों के जरिए कुछ गुणकारी पदार्थों की घोषणा तो खूब करते हैं, पर जिन पदार्थों से स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर पड़ने की आशंका होती है, उनके बारे में बताने से परहेज करती है। चूँकि बड़ी कंपनियों को अपने उत्पाद बाजार में उतारने से पहले मानक ब्यूरो से प्रमाण—पत्र हासिल करना अनिवार्य होता है इसलिए वे लेबल पर मौजूद तत्वों के बारे में जानकारी प्रकाशित करती है। पर उनकी भाषा अक्सर अस्पष्ट होती है, जिन्हें पढ़कर आम आदमी के लिए उत्पाद में शामिल पदार्थों के बारे में अंदाजा लगाना कठिन होता है।

दवाओं में मिलावट

सन् 2006 में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अपने एक अध्ययन में कहा था कि भारत में बनने वाली करीब 35 प्रतिशत दवाइयाँ नकली होती हैं और वे सामान्य खड़िया या अन्य प्रकार की मिट्टी के अलावा कुछ नहीं होती हैं। नकली दवाओं के कारोबार पर नकेल कसना न सिर्फ राजस्व के नुकसान बल्कि लोगों की सेहत के साथ हो रहे खिलवाड़ को रोकने के लिए भी जरूरी है। नकली दवाओं के कारोबार को लेकर काफी समय से चिंता जताई जाती रही है। दवाओं के निर्माण की प्रक्रिया, उनके शोध और उत्पाद पर नियमित निगरानी नहीं रखी जाती है।

नतीजन अवैध कारोबार आसानी से बाजार में अपनी पैठ बना लेते हैं। ऐसे में स्वास्थ्य मंत्रालय की ओर से नमूनों की जाँच और व्यापक अध्ययन की पहल से नकली दवा बनाने और बेचने वालों पर कुछ अंकुश लगने की उम्मीद की जा सकती है। चूँकि वितरकों और विक्रेताओं को ये दवाएँ काफी कम कीमत पर उपलब्ध हो जाती हैं। इसलिए वे धंधे को बढ़ाने में सहायक होते हैं। यह सही है कि खुदरा विक्रेताओं पर नजर रखने के लिए हर क्षेत्र में अधिकारियों की नियुक्ति की गई है। मगर इनकी लापरवाही के चलते नकली दवाओं का धंधा बदस्तूर चलता रहता है। फिर यह समस्या महज दुकानों तक सीमित नहीं है। सरकारी अस्पतालों की थोक खरीद में भी ऐसी दवाओं की घुसपैठ है।

सन् 2007 में गाजियाबाद और नोएडा में नकली दवा बनाने वाले जो कारखाने पकड़े गए, जिनमें दवाओं के रेपर और पैकिंग आदि को देखने पर यह जज करने में सफल नहीं हो सकते कि नकली कौन सी है और असली दवा कौन सी है। दवाओं की पैकिंग असली दवाओं जैसी हूबहू देखने को मिलेगी किन्तु पैकिंग के अंदर कौन सी और क्या दवा है, इसके बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। दवाओं के मामले में लागत और विक्रय मूल्य के बीच भारी फर्क है। दवा बनाने पर आने वाली लागत पर तीन हजार प्रतिशत तक मुनाफा कमाया जाता है, जिसमें डॉक्टरों को दी जाने वाली भेंट और कमीशन आदि शामिल हैं। इस पर नकली उत्पाद बनाने से तो मुनाफे की मात्रा और भी बढ़ जाती है। रसायन और उर्वरक मंत्री रामविलास पासवान ने दवाओं की कीमतों को नियंत्रित करने के अनेक प्रयास किए हैं। लेकिन दवा माफिया रसूकात के आगे उनकी नहीं चल पा रही है। नकली दवाओं के सेवन से हर वर्ष हजारों लोगों की मौत हो जाती है।

दूध में मिलावट अर्थात् सिंथेटिक दूध

शहरों में पिछड़े हिस्सों, बस स्टैण्डों और रेलवे स्टेशनों के आस-पास के होटलों और रेलों में अनाधिकृत वेण्डरों द्वारा चाय में इस सिंथेटिक दूध का जमकर उपयोग किया जा रहा है, इसके अलावा धार्मिक स्थलों में विभिन्न अवसरों पर भीड़-भाड़ वाले समय में सिंथेटिक दूध ही चलता है। उत्तर प्रदेश के कम से कम 16 स्थानों जिनमें साहिबाबाद, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, बरेली, बागपता आदि प्रमुख हैं, में बड़े पैमाने पर सिंथेटिक दूध तैयार किया जाता है। इसके अलावा राजस्थान के अलवर जिले के लक्ष्मणगढ़, गोविन्दगढ़, रामगढ़, तिजारा, नौगांवा, कठूमर, खेडली, किशनगढ़बास सरीखें कस्बों में कृत्रिम दूध धड़ल्ले से तैयार होता है। इसी तरह भरतपुर जिले के डीग, कामां, कुम्हेर, नदबई, जुरहेरा आदि कस्बों में सिंथेटिक दूध का धंधा शिखर पर बताया जाता है। धंधे से जुड़े लोग प्रतिदिन टैंकरों व दूधियों के मार्फत दूध दिल्ली, गुडगाँव, गाजियाबाद आदि में खपाते हैं। पचास वर्षों में दुग्ध उत्पादन में पाँच गुनी वृद्धि हुई, वास्तव में ये आँकड़े सुखद हो सकते हैं। देश के दुग्ध उत्पादन में यह वृद्धि सत्तर के दशक में प्रारंभ हुए, ऑपरेशन फ्लड और सहकारिता का परिणाम हो सकता है। दुधारु पशुओं में मुख्यतः गाय और भैंस शामिल हैं। दुधारु पशुओं की संख्या में लगातार गिरावट आई है। दुधारु पशु तो लगातार घट रहे हैं फिर दुध का उत्पादन क्यों और कैसे बढ़ रहा है, दूध उत्पादन में आई इस आश्चर्यजनक वृद्धि का कोई न कोई, अप्रत्याशित कारण जरूर है। ऐसे में एक गैर-सरकारी संगठन भारतीय पशुधन विकास प्रतिष्ठान नई दिल्ली के इस आकलन पर गौर करना जरूरी हो जाता है कि देश में लगभग दो करोड़ टन सिंथेटिक दूध बिक रहा है। आज देश के बड़े हिस्से में असली दूध की बजाय बड़ी मात्रा में जहरीला सिंथेटिक दूध धड़ल्ले से बेचा जा रहा है। यह सिंथेटिक दूध सफेद पेंट, यूरिया, कास्टिक सोडा और कृत्रिम सुंगंध द्वारा बनाया जाता है, ये सभी रसायन अत्यंत खतरनाक होते हैं। यह दूध गंध और रूप में असली दूध से काफी सस्ता पड़ता है और गुणों में ? यह सिंथेटिक दूध अमृत गुण की बजाए जहर ही साबित होता है। वर्ष 1996 में कुरुक्षेत्र में पहली बार सिंथेटिक दूध की बिक्री की पहचान हुई थी तब से लेकर आज तक भी सिंथेटिक व मिलावटी दूध को रोकने के कोई खास कदम नहीं उठाये गये हैं। मध्यप्रदेश, राजस्थान, हरियाणा और उत्तरप्रदेश समेत अन्य कई राज्यों में बड़ी-बड़ी

डेरियाँ इस कार्य में संलिप्त पाई गई परन्तु मामले की लीपा-पोती के अलावा कोई सख्त कदम नहीं उठाए गए। यह सिंथेटिक दूध बाजार में गुपचुप अपनी पैठ बनाए हुए हैं।

त्यौहारों और शादियों के सीजन में जब दूध की माँग बढ़ जाती है तब भी इस सिंथेटिक दूध की खपत की जाती है। दूध के अलावा सिंथेटिक मावा भी बाजार में उपलब्ध है। यह सिंथेटिक दूध स्वास्थ्य के लिए अत्यंत घातक है। विभिन्न अध्ययनों से यह बात स्पष्ट है कि सफेद पेंट में उपस्थित रसायन किडनी और लीवर को ध्वस्त कर देते हैं तथा यूरिया और कास्टिक सोडा पाचन तंत्र को नुकसान पहुँचाते हैं। निश्चित है कि आज सिंथेटिक दूध में करोड़ों लोगों का स्वास्थ्य खतरे में है। इसके साथ ही पशुओं से दूध निकालने के लिए ऑक्सीटोसिन इंजेक्शन का उपयोग किया जा रहा है। ऑक्सीटोसिन इंजेक्शन में प्रयुक्त रसायन के अंश दूध से मानव शरीर में पहुँचकर कैंसर, किडनी, तंत्रिकातंत्र की बीमारियाँ, हार्मोन की गड़बड़ी तथा नपुंसकता जैसे रोगों को बढ़ावा दे रहे हैं। हालांकि ऑक्सीटोसिन इंजेक्शन का उपयोग प्रतिबंधित है, इसे बिना पशु चिकित्सक के पर्ची के दिया नहीं जा सकता है पर दूधवालों और डेरियों में इसका धड़ल्ले से उपयोग किया जा रहा है। मिलावटी दूध का सबसे घातक असर बच्चों पर होता है। लंबे समय तक अशुद्ध दूध के सेवन से कई तरह की बीमारियाँ मसलन भूख नहीं लगना, चिड़चिड़ापन, ध्यान केन्द्रित करने में परेशानी, कम उम्र में नजर का चश्मा चढ़ना, बढ़ती उम्र के साथ वजन व लंबाई नहीं बढ़ना जैसी समस्याओं से स्कूली बच्चे तेजी से ग्रसित हो रहे हैं।

मिठाइयों में मिलावट

मिठाइयों में खोए से बनी मिठाइयाँ सबसे ज्यादा एक-दूसरे को उपहार में दी जाती हैं। खोए से बनने वाली मिठाइयों में बर्फी, गुलाब जामुन, मलाई रोल, गुंजिया और कलाकंद प्रमुख हैं। इन मिठाइयों में प्रयोग होने वाला खोया खासतौर से मेरठ, मेवात, हाथरस, अलीगढ़, बागपत, बड़ौत, खुर्जा और हापुड़ से आता है जिसमें से अधिकांश खोया नकली होता है। नकली खोया मिल्क पाउडर, पानी, डालडा घी, मैदा और पीला रंग डालकर तैयार किया जाता है। नकली खोए से बनी मिठाइयाँ जल्द खटास मारने लगती हैं इसलिए उसमें ज्यादा चीनी डाली जाती हैं। यदि खटास ज्यादा आने लगे तो फिर उसमें चॉकलेट डालकर कोई न कोई खाने की अलग सामग्री बना ली जाती है। बाजार में उपलब्ध मिलावटी खोए से बनी मिठाइयों के सेवन से बीमारियाँ होने का अंदेशा बना रहता है। मिलावटी मिठाइयों से होने वाली बीमारियों को खतरनाक बताया गया है, क्योंकि ज्यादातर मिठाइयों में टिन और जिंक को मिलाकर चाँदी का वर्क लगाया जाता है, जो शरीर को सुस्त करता है। यदि लंबे समय तक सेवन करें तो दिल, दिमाग व शरीर के अंगों को कमजोर करता है। इन मिठाइयों में जो रंग व चमक डाली जाती है, उससे दाँतों को नुकसान पहुँचता है। इस तरह की मिठाइयों से पेट की कई बीमारियाँ होने का अंदेशा है।

मिलावट के माध्यम से उपभोक्ता आज सर्वाधिक रूप से शोषित किया जा रहा है। इसके सम्बन्ध में जितने भी कानून बने हुए हैं उनकी व्यावहारिक उपयोगिता प्रायः नहीं के बराबर है। इसकी एक बड़ी वजह उपभोक्ता अधिकारों के प्रति जागरूकता का अभाव है, जिसका फायदा नकली सामान बेचने वाले उठाते हैं। यहाँ तक कि तैयार खाद्य पदार्थ और दवाओं का कारोबार करने वाली बड़ी कम्पनियाँ भी अक्सर नियम कायदों की अनदेखी करती हुई पाई जाती है।

देश में खाद्य अपमिश्रण निरोधक कानून को बने करीब आधी सदी गुजर गई है, लेकिन मिलावट का धंधा सिकुड़ने के बजाए दिनों-दिन फलता-फूलता जा रहा है। कायदे-कानूनों की अपनी अहमियत है, मगर उससे ज्यादा जरूरी है, सभी स्तरों पर निरंतर निगरानी की व्यवस्था। अभी आमतौर से नगर निगम या पालिका से जुड़े अधिकारी ही खाद्य पदार्थों की जांच करते हैं। इन संस्थाओं में फ़ैले भ्रष्टाचार, इनकी कार्यशैली और धीमी रफ्तार से सब वाकिफ है। बेहतर हो कि सरकार देशव्यापी पैमाने की किसी ऐसी स्वतंत्र, पारदर्शी और कारगर संस्था का गठन करे जो तत्परता से और नियमित जाँच करे। मिलावटी, नकली और घटिया खाद्य पदार्थों के निर्माण और

बिक्री के लिए दोषी लोगों के मामलों की सुनवाई और जल्दी फैसला हो सके, इस ओर भी ध्यान दिए जाने की दरकार है। इसके लिए वांछनीय यह है कि मिलावट के मामलों के लिए अलग से फास्ट ट्रेक अदालतें स्थापित की जाएँ ताकि दोषी मिलावटियों के खिलाफ फैसले शीघ्र हों और उन्हें दण्डित किया जा सके। मिलावट के लिए पकड़े जाने वाले थोक व खुदरा विक्रेताओं को भविष्य में उसकी वस्तु का व्यापार करने का लाईसेन्स न दिया जाए। मिलावट का व्यापक भ्रष्टाचार रोकने के लिए जिम्मेदार विभागों के कर्मचारी भी इतने भरोसेमंद होने चाहिए कि वे रिश्वत के लालच में दोषियों को न छोड़े, क्योंकि ऐसे तत्व साँठ-गाँठ करने में भी पारंगत होते हैं तथा नगद नहीं तो कीमती उपहारों से जाँचकर्ताओं को कर्तव्य विमुख करने में कसर नहीं छोड़ते। साथ ही आज शिक्षा नीति में मानव मूल्यों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिये। आज विश्व जिस कगार पर बैठा है वह अत्यन्त भयावह है, उसका मन मस्तिष्क तनावग्रस्त है।

सन्दर्भ सूची

- खण्डेला मानचंद, सामाजिक अपराध एवं समाज विकास, अविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर
- डॉ. राजोरा, सुरेश चन्द्र, समकालीन भारत की सामाजिक समस्याएँ, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

पत्र-पत्रिकाएँ

- कुरुक्षेत्र
- योजना
- नवभारत टाइम्स
- दैनिक भास्कर
- राजस्थान पत्रिका
- दैनिक नवत्योजि



अध्यापकों की भूमिका और दायित्व

डॉ. (श्रीमती) अनीता यादव

प्रवक्ता-शिक्षा शास्त्र

महाराज सिंह स्मृति महाविद्यालय, इटौली, औरैया, उ०प्र०

गुरुः ब्रह्मः गुरुः विष्णुः, गुरुः साक्षात्महेश्वरः।

गुरुदेव जगत्सर्व, तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

उपर्युक्त पंक्तियां अध्यापक के महत्व को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त हैं। अध्यापक की शिक्षण में जो महत्ता व भूमिका की अपेक्षा की जाती है उससे उसके दायित्व भी बढ़ जाते हैं। अध्यापक के बारे में एच०जी० वेल्स का यह कथन कि— “अध्यापक इतिहास का वास्तविक निर्माता है।”¹ श्री जॉन एडेम्स के अनुसार— “शिक्षक मनुष्य का निर्माता है।”² स्पष्ट है कि शिक्षक के हाथ में वह शक्ति है जो बालक को पुनर्जन्म देती है, उसके जीवन में उन गुणों को भर देती है जिन्हें पाकर वह मानव बन जाता है। शिक्षा का केन्द्रिय घटक विद्यार्थी है और उन्हें सही दिशा निर्देशन करने वाला प्रमुख घटक अध्यापक है। शिक्षा के अनेक उद्देश्यों की पूर्ति इनके माध्यम से होती है। इन्हें प्रशिक्षित किया जाता है, उनकी सुविधा-असुविधा देखी जाती है। समाज के उनके प्रति कर्तव्य होता है और उनका भी समाज के प्रति उत्तरदायित्व रहता है। अध्यापक अपने दायित्वों का ठीक तरह से निर्वाह करने की कोशिश करते हैं। उसके द्वारा किये जाने वाले कार्य के लिए वेतन दिया जाता है। अध्यापक की यह जिम्मेदारी है कि कम से कम वह जितना वेतन लेता है उसके अनुकूल कार्य करता रहे। यह ध्यान देने योग्य बात है कि शिक्षा का क्षेत्र व्यवसाय या धन्धा नहीं है, वह तो समाज के विकास और सेवा का उपयुक्त क्षेत्र है। अध्यापक का कार्य व्यवसाय नहीं बल्कि सेवा है। जब इस कार्य को अध्यापक सेवा भाव से देखते हैं तब उनका दायित्व सफलता की ओर अग्रसर होता है। शिक्षा में अध्यापक ही सामाजिक विकास का सूत्रधार है। समाज की इच्छा, आकांक्षा, आवश्यकता, अपेक्षा और आदर्शों को सफल बनाने का कार्य अध्यापक ही करते हैं।

भारतीय संस्कृति में गुरु को उच्च स्थान प्राप्त है। उन्हें देवताओं के समकक्ष रखा जाता है। उनकी कृपा और आशीर्वाद के फलस्वरूप सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक मूल ज्ञान की प्राप्ति होती है। वर्तमान युग में इसके आगे वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्ति का माध्यम भी ही है। लेकिन प्राचीन युग में जो गुरु का स्थान था उसमें निरन्तर क्षरण हुआ। गुरु के अवमान तथा उसके स्थान के महत्व को कम करने के लिए शिक्षा व्यवस्था, विज्ञान, समाज, सरकार और नई शिक्षा नीतियां जिम्मेदार मानी जा सकती हैं। भारत में मैकाले की अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली पर आधारित हमारी शिक्षा प्रणाली में गुरु तथा अध्यापक का स्थान व्यवसायिकता के कारण महत्वहीन बन गया है। समाज में उनका मान-सम्मान और प्रतिष्ठा नष्ट-भ्रष्ट हो रही है। छात्र और उसके परिवार के लोग उसे अन्यों की तरह व्यवसायी मात्र समझने लगे हैं। इस प्रकार की परिस्थिति अध्यापक और समाज के लिए लाभप्रद नहीं हो सकती। शिक्षा में प्रवेश कर चुकी व्यवसायिकता ने अध्यापकों को मृतप्राय बना दिया है। इसके साथ-साथ व्यवसायिक दृष्टि रखने वाले अध्यापक अपनी जिम्मेदारियां और उत्तरदायित्व से विमुख होते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति बहुविध सामाजिक भूमिका निभाता है। अध्यापक की भूमिकाओं का वर्णन करते समय यहाँ इस बात का ध्यान रखना होगा कि अध्यापक के द्वारा व्यक्ति के रूप में उसके द्वारा निभाई जाने वाली भूमिकाओं की चर्चा करना यहाँ उचित नहीं होगा, बल्कि उन्हीं भूमिकाओं का विवेचन करेंगे जो वह केवल अध्यापक के रूप में निभाता है। अध्यापन एक जटिल और संश्लिष्ट प्रक्रिया है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें विद्यार्थी में सुनिश्चित अधिगम को बढ़ावा देने के प्रयोजन से अन्तः क्रिया के लिए नियन्त्रित परिवेश प्रदान किया जाता है। विद्यार्थियों

को प्रदत्त इस परिवेश के घटक हैं – विषयवस्तु, विशिष्ट अधिगम, अनुभवों का संगठनकर्ता और उनको प्रदान करने वाला अध्यापक, अधिगम अनुभव प्रदान करने के विविध तरीके और साधन तथा विद्यालय विन्यास। शिक्षक घटक कहलाने वाले ये सभी घटक विद्यार्थियों में पूर्व निर्दिष्ट वांछनीय परिवर्तन लाने के उद्देश्य से अन्योन्याश्रित और सम्बन्धित रूप से अन्तःक्रिया करते हैं। मानवीय और मानवोत्तर घटकों के बीच यह अन्तःक्रिया ही शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को अत्यन्त जटिल क्रिया बना देती है। अध्यापक की अध्यापक के रूप में भूमिका इतनी व्यापक है कि उस भूमिका को यहां संक्षिप्त रूप में विश्लेषित करना उचित होगा। संक्षेप में इस भूमिका को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से समझ सकते हैं –

1. शिक्षण निवेश के रूप में अध्यापक की भूमिका।
2. प्रबन्धक के रूप में अध्यापक की भूमिका। अध्यापक की इस भूमिका को निम्नलिखित चरणों में विभाजित कर सकते हैं – (क) शिक्षण-पूर्व चरण में अध्यापक की भूमिका। (ख) शिक्षण के दौरान अध्यापक की भूमिका। (ग) शिक्षणोत्तर चरण में अध्यापक की भूमिका।
3. कार्य संसाधक के रूप में अध्यापक की भूमिका।
4. उपबोधक के रूप में अध्यापक की भूमिका।
5. समुदाय में अध्यापक की भूमिका।

उपर्युक्त भूमिकाओं का उल्लेख जो किया गया है उन भूमिकाओं की व्यापकता इतनी अधिक विस्तृत और समीचीन है कि अध्यापक की इन भूमिकाओं के माध्यम से छात्र, समाज और राज्य-राष्ट्र के संकल्पना उस स्थिति तक पहुंचने में समर्थ हो सकती है जिसकी अपेक्षा बुद्धिजीवी वर्ग छात्र, समाज और राज्य-राष्ट्र से करता है। इन तीनों का सर्वोच्च उन्नयन काफी हद तक शिक्षक के द्वारा निभाई गई भूमिका पर निर्भर करता है। शिक्षण-प्रक्रिया के अन्तर्गत अध्यापक की भूमिकाओं पर हमने प्रक्रिया को शिक्षण पूर्व, शिक्षणगत और शिक्षणोत्तर चरणों में वर्गीकृत किया है। शिक्षण पूर्व चरण अध्यापक की भूमिका मूलतः प्रबन्धक/योजना निर्माणकर्ता/निर्णयकर्ता की होती है। इस चरण में अध्यापक, शैक्षणिक उद्देश्य निश्चित करता है। उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उपाय निर्धारित करता है और उद्देश्यों की समप्राप्ति की सीमा के मापन के लिए युक्तियां सोचता है। शिक्षणगत चरण में अथवा जब अध्यापक अपनी योजनाओं को कार्यरूप देता है तब वह सम्पूर्ण प्रक्रिया का एक घटक होता है। दूसरे शब्दों में वह शिक्षण-निवेश होता है। साथ ही वह प्रबन्धक भी हो जाता है, जब वह कार्ययोजनाओं में परिवर्तन करने का निश्चय करता है अथवा जब वह अगला कदम उठाने के लिए विद्यार्थियों की अनुक्रियाओं पर मनन करता है। इन भूमिकाओं के अतिरिक्त अध्यापक को कार्य संसाधक की भूमिका भी निभाती होती है, जब वह पृष्ठभूमि में रहते हुए विद्यार्थियों के अधिगम को वास्तविक रूप में उत्प्रेरित करता है या उन्हें मार्ग-दर्शन प्रदान करता है। यहाँ अध्यापक प्रत्यक्षतः व्यवस्था का एक अंग ही नहीं होता बल्कि अप्रत्यक्ष भूमिका निभाता है। अध्यापक की उपबोधक के रूप में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका भी होती है। जब कभी विद्यार्थी के समक्ष कोई समस्या आती है, चाहे व्यक्तिगत या अन्यथा हो अथवा शैक्षिक या सांवेगिक हो, उनसे निपटने के लिए अध्यापक उचित उपायों और अनुक्रियाओं को अपनाने में विद्यार्थियों की सहायता करता है।

शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापक की प्रभावी भूमिका के कारण ही उसे शिक्षा के प्रमुख प्रचारक तथा आधार के रूप में स्वीकार किया जाता है। बच्चों के भविष्य निर्माण और उनके माध्यम से सम्पूर्ण देश के भविष्य निर्माण के लिये आधार भूमि बनाने का कार्य अध्यापक करते हैं। वे न केवल शिष्य को संस्कारित करते हैं, बल्कि समाज का भी दिशा निर्देशन करते हैं। प्राचीन काल में राजनीतिक गुत्थियों को सुलझाने में उनकी भूमिका अग्रणी थी। यद्यपि आज यह परम्परा खण्डित हो गयी है। अध्यापकों के कार्य एवं दायित्व बंधनों के कारण सीमित बन गये हैं। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक का स्थान और दर्जा उतना महत्वपूर्ण नहीं रहा जितना होना चाहिए था। व्यवस्थापन और पदाधिकारियों के आदेशों का पालन करना उनका धर्म बन गया है। परिवार और वेतन के बीच फंसे अध्यापक मानसिक तौर से विकलांग होने लगे हैं जिसका सीधा असर बौद्धिक दृष्टि से अपने आपको सक्षम बनाने पर भी

पड़ता है और इसी प्रतिक्रिया स्वरूप अध्यापक भी उत्तरदायित्व एवं कार्यों के प्रति उदासीनता दिखाने लगे हैं। स्थानीय व्यवस्थापन, राजनीति, धर्म, जाति और गुटबाजी के कारण अध्यापकों को सीमाओं में बांधे रखा है। अवकाश से लेकर पढ़ाई और नियुक्ति से लेकर निष्कासन तक के सारे अधिकार व्यवस्थापन एवं व्यवस्थापन से जुड़े अन्य लोगों के हाथों में हैं। किसी भी महत्वपूर्ण निर्णय के लिए उन्हें आजादी नहीं दी गयी है। उन्हें सिर्फ आजादी इतनी है कि पाठ्यक्रम में जो विषय रखे गये हैं वही पढ़ाओ। शिक्षा शास्त्री तथा समाज अध्यापकों के उत्तरदायित्व एवं कार्यों पर विचार मंथन करता है लेकिन उनके प्रति अपने दायित्वों को जानबूझकर नजर अंदाज करता है। अध्यापकों को उनके हाल पर छोड़कर और उनका शोषण करते हुए दायित्व की बात करना समाज, व्यवस्थापन, सरकार और शोषण कर्ताओं की बेतुकी नीति का परिचायक है।

अध्यापकों की भूमिका, दायित्व, जिम्मेदारी और कार्य आपस में जुड़े होने के बावजूद अलग-अलग सूक्ष्म अस्तित्व बनाये हैं। अध्यापकों को निश्चित वेतन पर नियुक्ति होती है। जिस कार्य के लिए उन्हें नियुक्त किया जाता है उसको पूरा करना उनकी जिम्मेदारी होती है। अर्थात् वेतन के अनुरूप कार्य करते हुए वेतन को न्याय देना भी उनकी जिम्मेदारी होती है। गुरु तथा अध्यापकों की लम्बी परम्परा और इतिहास दायित्वों की बात को स्पष्टता से रेखांकित करता है कि अध्यापक के पास जो भी ज्ञान है वह छात्र के साथ समाज के लिए वितरित करना उसका दायित्व बनता है। छात्रों को पढ़ाई के अलावा उसे सामाजिक जीवन से सम्बन्धित ज्ञान की प्राप्ति करवाना तथा समाज में योगदान के लिए समर्थ बनाना अध्यापक का दायित्व है। उसका प्रस्तुत कार्य वेतन से कोई सम्बन्ध नहीं रखता है। क्योंकि वह अमूल्यवान की श्रेणी में आता है। अध्यापकों के वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, नैतिक, व्यवसायिक उत्तरदायित्व भी होते हैं। पढ़ना और पढ़ाना उनका कार्य तो है ही लेकिन बच्चे युवा पीढ़ी तथा समाज में उपयुक्त चीजों की सहायता से आदर्श एवं संस्कारों को निमित्त करना उनका दायित्व है। “अध्यापकों का दायित्व कमरे में बैठकर बच्चों को पढ़ाना ही नहीं होता बल्कि उसका दायित्व विद्यार्थियों का विकास करते हुए उनके सर्वांगीण व्यक्तित्व का निर्माण करना होता है।”³ स्पष्ट है आने वाले भविष्य में यही परिपूर्णतः प्राप्त कर चुके बच्चे और युवक, समाज की आधार भूमि बनते हैं। अपने ज्ञान तथा बुद्धि का समाज और राष्ट्र के विकास के लिए प्रयोग करते हैं जिससे सम्पूर्ण मानव जाति का विकास होता है। अध्यापकों के दायित्व विकास के लिये एक विशिष्ट वातावरण का निर्माण करना आवश्यक है अर्थात् समाज द्वारा उनको विशेष सुविधा उपलब्ध करानी चाहिए। प्रथमतः समाज में अध्यापकों का मान-सम्मान तथा उन्हें प्रतिष्ठित बनाने की आवश्यकता है। कार्य सक्षम और कुशल अध्यापकों की नियुक्ति कर उनकी कठिनाइयों को दूर करने और साधन सम्पन्न बनाने की आवश्यकता है। अध्यापक भी एक मनुष्य है अतः उसकी खामियां होना स्वाभाविक है, उनको दूर करने के लिए उन्हें संस्कारित किया जाना चाहिए। प्रशिक्षण देकर नैतिक, सामाजिक, व्यवसायिक आदि संस्कारों से उसे कुशल बनाने की आवश्यकता होती है “समाज में अध्यापक की भूमिका अदा करनी हो तो नियमित रूप से आत्म परीक्षण करते हुए आशावादी वृत्ति को तरोताजा रखने की आवश्यकता है, संस्था-चालक और अध्यक्ष को भी ध्यान रखना चाहिए कि यह सामूहिक कार्य है अतः इस सामूहिक कार्य के लिए उचित परिवेश का निर्माण करना और अध्यापकों को सहयोग देना उनका कर्तव्य है।”⁴ इससे स्पष्ट होता है कि अध्यापक समाज के प्रति और समाज उसके प्रति उत्तरदायी है। “शिक्षा व्यवस्था में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण घटक ‘शिक्षक’ है। शिक्षा से समाज ने जिस इच्छा, आकांक्षा और उद्देश्यों की पूर्ति की कामना की है वह शिक्षक पर निर्भर रहती है।”⁵ अतः अध्यापकों की सुविधा-असुविधा को सुलझाकर उसे मनोवैज्ञानिक और आर्थिक सहयोग देना सम्पूर्ण मानव जाति के हित में होता है।

अध्यापक के अनेक कार्य होते हैं और उन सभी कार्यों को सफलतापूर्वक निर्वहन करना उसका कार्य है। वह प्रशासन का एक अंग होने के कारण उसके दायित्व का कार्य सम्पूर्ण व्यवस्था को सफल बनाता है। “शासन व्यवस्था के दो स्पष्ट रूप होते हैं और होने चाहिए। पहला रूप राष्ट्र की समग्रता की अवधारणा से जुड़ा होता

है और दूसरा रूप स्थानीय आकांक्षाओं की पूर्ति एवं विकास से जुड़ा होता है।⁶ अध्यापक को दायित्व निभाने से राष्ट्रीयता को शक्ति प्राप्त होती है और समाज एवं स्थानीय आकांक्षाओं की पूर्ति होती है। “शिक्षा प्रणाली कोई भी या कैसी भी हो, उसकी प्रभावशीलता और सफलता उस प्रणाली के शिक्षकों के कार्य पर निर्भर है क्योंकि भावी पीढ़ी को शिक्षित करना समाज की आकांक्षाओं को प्रतिफलित करना है।”⁷ समकालीन व्यवस्था में नित नयी-नयी समस्याएँ एवं कार्यों की विविधता के फलस्वरूप विद्यार्थी और अध्यापक दोनों को, स्वयं को, समयानुकूल परिवर्तित करना होगा ऐसा करना उनके उद्देश्यों एवं दायित्वों के अनुकूल होगा। अध्यापकों की उदासीनता और विद्यार्थियों की दिशाहीनता वर्तमान युग में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रही है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि दोनों अपनी जिम्मेदारी को निभायें। अध्यापकों के कार्य में संस्कृति और रूढ़ि-परम्पराओं का अध्ययन कर निष्क्रिय परम्पराओं को त्याग करना तथा संस्कृति को गतिशील बनाना आदि का समावेश होता है। इसके साथ ही शिक्षा में निर्मित समस्या का अध्ययन करके अनुकूल शैक्षिक वातावरण को निर्मित करना उसका कार्य है। शैक्षिक साहित्य के आधार पर अद्यतन ज्ञान को विद्यार्थियों के सामने रखकर उनका उचित मूल्यांकन करते हुए सर्वांगीण विकास करने की क्षमता अध्यापक में होनी चाहिए। इस प्रकार शिक्षण कार्य को बार-बार करने व उसका अभ्यास करने से ही शिक्षक सफल अध्यापक बन सकता है।

अध्यापक भी एक आम इंसान है अतः सामान्य व्यक्ति की जो विशेषतायें हैं वही अध्यापक के व्यक्तित्व में दिखाई पड़ती हैं। यद्यपि कुछ ऐसी विशेषतायें जो उसे सामान्यजन से पृथक् करती हैं— संवेदनशीलता, आत्मीयता, परोपकारीवृत्ति, ममतामयीता, मानवतावादी वृत्ति, सीधे-सच्चे, प्रतिष्ठित, दया-करुणा, सहानुभूति, संघर्षशीलता, दायित्व के प्रति सजगता, मार्गदर्शकता, प्रवीणता, दक्षता, सक्रियता, मूल्यांकन परकता, परिवर्तनवादिता एवं विषय ज्ञान पर असाधारण प्रभुत्व आदि गुण अध्यापकों में होते हैं। इनकी सहायता से वह समाज में मान सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका है। समाज अध्यापकों के कंधों पर बच्चों के भविष्य निर्माण का भार सौंप कर निश्चित हो जाता है लेकिन अध्यापकों के प्रति अपने दायित्वों को भूल जाता है। समाज, सरकार और शिक्षा में तालमेल न होने के कारण अध्यापकों के सामाजिक स्थान एवं दर्जे में भारी गिरावट आयी है। अर्थ केन्द्रित व्यवस्था में मनुष्य सुख-सुविधा सम्पन्न होना चाहता है। अध्यापक अर्थाभाव के कारण पतित मार्गों से नई-नई सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है और समाज उसकी असुविधाओं को देखकर भी सुविधा देने में उदासीनता दिखाता है अर्थात् समाज अध्यापकों के प्रति उदासीन है और अध्यापक सामाजिक दायित्व को भूल चुका है। इस प्रकार की स्थिति न समाज, न देश, न ही भविष्य के लिए लाभकारी है और न ही अध्यापकों के लिये। अध्यापक जिस प्रकार के आदेश और संस्कार का रोपण करेंगे उसी प्रकार की फसल पायेंगे। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि अध्यापक और छात्र के सम्बन्ध में मौन संघर्ष की स्थिति पैदा हो रही है और धीरे-धीरे आत्मीयता में गिरावट जारी है। जिस प्रकार अध्यापक छात्र-प्रिय और छात्र श्रद्धावान होते हैं उसी प्रकार दोनों के सम्बन्धों में पतन तथा अवमान की स्थिति भी निर्मित हुई है।

संदर्भ सूची

1. मिश्रा डॉ० डी०सी० शिक्षा शास्त्र, अनुसंधान प्रकाशन कानपुर, प्रथम संस्करण 1999 ,पृष्ठ 92
2. उपयुक्त
3. म०गो० माली, चन्द्रकान्त घुमुटकर-शिक्षण के तत्वज्ञान, पृष्ठ-106
4. चंद्र कुमार ढांगे- शिक्षण आणि समाज शास्त्र, पृष्ठ-184
5. ग०वि० उनकोलकर-माध्यमिक शिक्षण, पृष्ठ-104
6. विजय अग्रवाल-अपने आस-पास, पृष्ठ-20
7. डा० ईश्वर दयाल गुप्त-आधुनिक भारतीय शिक्षा एवं समस्या चिंतन, पृष्ठ-220



वर्तमान परिदृश्य में शिक्षा के बदलते बहुमुखी आयामों की विवेचना

डॉ. हर्षकुमार

एसोसिएट प्रोफेसर-शारीरिक शिक्षा विभाग
तिलक महाविद्यालय, औरैया, उ.प्र.

भारतीय शिक्षा का इतिहास लगभग चार हजार साल से भी अधिक प्राचीन है। विशिष्ट जनों से आम लोगों तक शिक्षा को पहुँचाने में कई उतार-चढ़ाव भी देखने पड़े हैं। इसके माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी समाज की प्राचीन निधि का संरक्षण, संवर्धन एवं हस्तान्तरण होता रहा। भारतीय शिक्षा न केवल उच्च जीवनादर्श का उदाहरण है बल्कि मूल्यों का सच्चा प्रसारक भी है। सभी देशों में शिक्षा वहाँ के जीवन-दर्शन का प्रतिबिम्ब होता है। प्राचीन भारतीय शिक्षा प्राचीन भारत के जीवन-दर्शन को समझने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। हमारी प्राचीन शिक्षा का ही प्रभाव था कि संपूर्ण मध्य एशिया तक और वर्तमान में भी पाश्चात्य देशों तक हमारी संस्कृति का प्रचार हुआ। हमारी प्राचीन शिक्षा प्रणाली राष्ट्रीय उद्देश्यों से अलग न थी, वह राष्ट्र कल्याणकारी एवं व्यक्ति के आत्मिक एवं सामाजिक अभ्युत्थान में पूर्ण सहायक एवं सक्षम थी तथापि वर्ण – व्यवस्था की कठोरता, व्यावसायिक शिक्षा का अभाव तथा धर्म-केंद्रित शिक्षा इसके लिए नकारात्मक छवि लिए हुए थी। संयम, शील, चरित्र और संस्कार ये वे स्तंभ हैं जिन पर प्राचीन भारतीय शिक्षा टिकी थी। सत्यम्, शिवम् और सुंदरम् पर अधिष्ठित सांस्कृतिक चेतना इसकी आधारशिला थी। प्राचीन भारतीय समाज में धर्म इतना प्रभावी रहा कि जीवन की सभी क्रियाएँ, आचार, व्यवहार, चिंतन, मनन आदि सभी धर्म की परिधि में आते थे। धर्म के बाहर कोई क्रिया अथवा व्यापार नहीं हो सकता था। इस कारण शिक्षा में धर्म की भागीदारी बनी रही। तथापि नकारात्मक छवि के बावजूद शिक्षा की बेमिसाल परंपरा ने ही भारतीयों की आत्मा, शरीर, विचार तथा मस्तिष्क को शुद्ध, स्वस्थ, निर्मल एवं उर्वर बनाया।

‘शिक्षा’ शब्द अभ्यासार्थक ‘शिक्ष्’ धातु और मर्णार्थक ‘शक्’ धातु से निष्पन्न होता है। इसके अलावा स्वादिगण की शक्तिकर्मक ‘शक्’ धातु से भी इच्छागर्भित अर्थ में ‘शिक्षा’ शब्द निष्पन्न होता है। यह व्यक्ति के सर्वांगीण विकास तथा अपनी सभ्यता-संस्कृति से परिचित होने के लिए अनिवार्य है। शिक्षा वही है जो व्यक्ति में सद्विवेक जागृत करके उसे सदाचरण के लिए प्रेरित करे। प्राचीन भारतीय वाङ्मय शिक्षा के अर्थ और उद्देश्य को व्यापकता से अपने में समेटे हुए है। वेद, उपनिषद्, महाभारत इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

शिक्षां व्याख्यास्यामः। वर्णः स्वरः। मात्रा बलम्। साम सन्तानः।¹

इसके अनुसार जिससे वर्णादि का उच्चारण सीखा जाय उसे ‘शिक्षा’ कहते हैं अथवा जो सीखे जायें वे वर्ण आदि ही शिक्षा है। शिक्षा को ही ‘शिक्षा’ कहा गया है। शिक्षा शब्द में ईकार का दीर्घत्व वैदिक प्रक्रिया के अनुसार है।

श्रीमद्भगवद्गीता में ‘शिक्षा’ ज्ञान के अर्थ में संदर्भित है। भारतीय संस्कृति में शिक्षा को पवित्रतम प्रक्रिया माना गया है।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।²

स्वामी दयानन्द सरस्वती के शब्दों में – ‘जिस से विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेंद्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें उस को शिक्षा कहते हैं।’

गाँधी जी के अनुसार – ‘शिक्षा से मेरा तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं

सर्वोत्कृष्ट विकास से है।'

भारतीय शिक्षा न केवल आदर्शवादी रही है, बल्कि संस्कारों के माध्यम से आदर्श के अनुरूप जीवन-गठन की व्यवस्था को भी सुचारु रूप से चलाती रही है। डॉ. अनंत सदाशिव अल्तेकर ने शिक्षा के संदर्भ में लिखा है—'प्राचीन भारत में शिक्षा अंतर्ज्योति और शक्ति का स्रोत मानी जाती थी जो शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक शक्तियों के संतुलित विकास से हमारे स्वभाव में परिवर्तन करती तथा उसे श्रेष्ठ बनाती है। इस प्रकार शिक्षा हमें इस योग्य बनाती है कि हम समाज में एक विनीत और उपयोगी नागरिक के रूप में रह सकें। यह अप्रत्यक्ष रूप में हमें इहलोक और परलोक—दोनों में आत्मिक विकास में सहायता देती है।³ शिक्षा चेतना का संवर्धन करती है। इसके द्वारा प्राप्त प्रकाश से हमारे संशयों का उन्मूलन एवं कठिनाइयों का निवारण होता है। 'वस्तुतः शिक्षा कल्पवृक्ष की तरह मनुष्य की आशा-आकांक्षाओं को पूर्ण करने की शक्ति रखती है। मनुष्य की निरंतर प्रगति का कारण यह शिक्षा ही है।'⁴ इसलिए इसे मानव की उन्नति की कुंजी कहा जा सकता है।

शिक्षा के उद्देश्य⁵—

(1) विद्यार्थियों के जीवन में कर्तव्य के महत्व को स्थापित करना— श्री कृष्ण जी अर्जुन के माध्यम से स्वधर्म पालन से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं स्थापित करना चाहते हैं। कर्तव्य पालन करते समय फल की इच्छा का स्मरण मात्र भी कर्तव्य पालन की गंभीरता को प्रभावित करता है।

(2) वैयक्तिक और सामाजिक उद्देश्य में सामंजस्य की शक्ति उत्पन्न करना— गीता की उत्पत्ति ही अर्जुन के वैयक्तिक स्वतन्त्रता और सामाजिक उत्तरदायित्व के बीच असमंजस से हुई है। उसकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता उसे युद्ध से विमुख होने को कहती है पर सामाजिक उत्तरदायित्व की मांग थी कि शान्ति स्थापना हेतु अधर्मियों से युद्ध। इस असमंजस की स्थिति से उबारने में श्री कृष्ण उसका मार्गदर्शन करते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य वैयक्तिक और सामाजिक उत्तरदायित्वों के मध्य सामंजस्य स्थापित करना होना चाहिए।

(3) व्यक्तित्व का परिष्कार एवं विकास— सोलहवें अध्याय में दैवी एवं आसुरी लक्षणों की विस्तृत चर्चा की गयी है एवं कहा गया है कि हर व्यक्ति का व्यक्तित्व दैवी और आसुरी गुणों से युक्त होता है गुरु रूप में कृष्ण अर्जुन में निहित सात्विक शक्तियों को जागृत करते हैं। यह प्रत्येक गुरु को अपने शिष्य के लिए करना चाहिए। इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य शिष्य के व्यक्तित्व का विकास व परिष्कार होना चाहिए।

(4) तार्किक योग्यता एवं निर्णय लेने की क्षमता— अर्जुन युद्ध की सार्थकता पर संदेह व्यक्त करते हैं एवं दुविधा की स्थिति व्यक्त करते हैं। उनका यह संदेह व दुविधा ही गीता की जननी है। गुरु रूप में कृष्ण उन्हें आदेश नहीं देते अपितु उन्हें सत्यता से परिचित कराते हैं, ताकि विभिन्न विकल्पों में से चुनने में वह अपना निर्णय स्वयं ले सकें। निर्णय लेने का कार्य शिष्य ही करता है। हमारी शिक्षा का उद्देश्य भी ऐसा होना चाहिए जिसमें हम छात्र में स्वयं निर्णय लेने की क्षमता का विकास कर सकें।

(5) अज्ञानता को दूर कर सात्विक ज्ञान का विकास करना— गीता में कृष्ण अर्जुन के मोह व राग रूपी अज्ञानता को दूर कर उसे कर्तव्य पालन की ओर प्रेरित करते हैं। निष्कर्षतः शिक्षा का उद्देश्य अज्ञानता को दूर कर सात्विक ज्ञान देना होना चाहिए।

शिक्षा किसी भी व्यक्ति, समाज व राष्ट्र की प्राणवायु है एवं उसके सर्वांगीण विकास की धुरी (केन्द्र बिन्दु) है। उन्नत शिक्षा व ज्ञान विज्ञान के कारण ही भारत "विश्वगुरु" कहा जाता है आज जब भारतीय ज्ञान-विज्ञान का डंका पूरे विश्व में बज रहा है। विश्व के ज्यादातर देशों में भारतीय मेधा (प्रतिभा) अग्रणी भूमिका निभा रही है। ऐसे समय में जब हम पूरे विश्व को रास्ता दिखा रहे हों, यहाँ की प्रतिभा पलायन कर रही हो, जीवन के ज्यादातर क्षेत्रों में अनैतिकता, भ्रष्टाचार व अकर्मण्यता, लूटत-खसोट चरम सीमा पर पहुँच गई हो, देश-क्षेत्रवाद, भाषावाद,

नक्सलवाद, आतंकवाद, नेताखोरी, रिश्वतखोरी, आरक्षण, जातिवाद, साम्प्रदायिकता, भाई-भतीजावाद के जाल में फँसकर पतनोन्मुख है। ऐसे समय में यक्ष प्रश्न है कि आखिर हमारी शिक्षा में ऐसी कौन सी कमी/गड़बड़ी है जिसके कारण देश जीवन के ज्यादातर क्षेत्रों में पतनोन्मुख है? आत्मचिन्तन करने पर जबाब मिलता है कि हम संस्कारविहीन शिक्षा अपने नौनिहालों को दे रहे हैं।⁶ हालांकि नैतिक शिक्षा ऐच्छिक विषय के रूप में पाठ्यक्रम में शामिल हैं लेकिन उसे शायद ही किसी विद्यालय में मन से पढ़ाया जाता होगा। अध्यापकगण फर्जी ग्रेडिंग छात्र/छात्राओं के अंक-पत्रों में दर्शाकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर अपने आपको केवल वेतनभोगी/सुविधाभोगी सिद्ध कर देते हैं। पतन के गर्त में डूबते भारत को आज संस्कारित शिक्षा प्राप्त करने वाले संस्कारित युवा ही विश्व शीर्ष पर पहुँचा सकते हैं। शिक्षक तो शिल्पी है, राष्ट्रनिर्माता है, फिर इस संकटमय क्षण में हमारे शिक्षकों की भूमिका काफी हद तक बढ़ जाती है।

धर्म एवं अध्यात्म की सर्वप्रथम वैज्ञानिक व्याख्या करने वाले, युवाहृदय सम्राट स्वामी विवेकानन्द ने सत्य ही कहा था, “शिक्षा मात्र सूचनाओं का संग्रह नहीं है, जो ढूँस-ढूँस कर हमारे मस्तिष्क में भर दिये जायें, हमें जीवन निर्माण करने वाली तथा संस्कारित शिक्षा की परम आवश्यकता है।” जो कार्य मनुष्य को सुसंस्कृत या सम्य बनाता है, उसे संस्कार कहते हैं। संस्कार का अर्थ है— शुद्ध करना या परमार्जित करना। जैसे एक कुशल कारीगर/शिल्पी साधारण पत्थर को भी सुन्दर, दिव्य तथा भव्य प्रतिमा बना देता है, कारीगर हीरा को खान से निकालकर बहुमूल्य रत्न बना देता है, उसी प्रकार संस्कारों से मानव जीवन सुसंस्कृत व उत्कृष्ट बन जाता है।⁶ संस्कार किसी भी व्यक्ति को अपने दायित्वों को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में निःस्वार्थ भाव से पूरा करने की प्रेरण देते हैं। संस्कार वह प्रक्रिया है जिसे अपनाकर मनुष्य अपनी जीवन — यात्रा सफल बनाता है। मानवीय मूल्यों के आधार पर धर्म के दस लक्षण बताये गये हैं—

“धृतिःक्षमा, दमोस्तेयं शैचमिन्द्रिय निग्रहः।

धीर्विद्या, सत्यम्, अक्रोधो दशकं

धर्मलक्षणम्।।

अर्थात् धैर्य, क्षमा, दुष्प्रवृत्तियों का दमन, शुद्धता, इन्द्रिय संयम, बुद्धि, विद्या, सत्य तथा क्रोध न करना धर्म के दस लक्षण हैं। यदि मनुष्य इन गुणों को सच्चे हृदय व मन से आत्मसात् कर ले तो वह देवतुल्य हो जायेगा। शिक्षा में संस्कार बहुत जरूरी है। लॉर्ड मैकाले की बाबू पैदा करने वाली शिक्षा-प्रणाली को ढोते-ढोते ही हम बदहाल हुए हैं। लॉर्ड मैकाले द्वारा प्रतिपादित शिक्षा चन्द सिक्के या रोटी तो दे सकती है लेकिन आत्मसन्तुष्टि नहीं दे सकती। इसलिये देश, समाज व व्यक्ति को पतन के गर्त में डूबने से बचाने के लिये संस्कारित शिक्षा प्रदान कर संस्कारित युवाओं को खड़ा करना जरूरी है। संस्कारित युवा पूरे विश्व को आन्दोलित कर मार्गदर्शन देंगे तथा विश्व सिरमौर बनेंगे।

वर्तमान में शब्दिक ज्ञान पर अधिकार ही शिक्षा का मतलब हो गया है जबकि शिक्षा का वास्तविक अर्थ मूल्यों, मान्यताओं और प्रतिमानों को आत्मसात् करने के लिये युवाओं को तैयार करना और बदलते समय की आवश्यकताओं के अनुरूप भविष्य को तैयार करना है। वहीं वर्तमान शिक्षा केवल साक्षरों की बेरोजगार फौज तैयार कर रही है। जो युवा/छात्र आज उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं उनमें से आधे से अधिक क्या पढ़ रहे हैं, क्यों पढ़ रहे हैं, क्या वे जो पढ़ रहे हैं भविष्य में उसका उपयोग व्यवहारिक जीवन में कर पायेंगे, जैसे प्रश्नों के उत्तर देने में असमर्थ है। आधुनिक शिक्षा के संदर्भ में हैरी बैली ने कहा है कि “आधुनिक शिक्षा मानसिक दासता की जन्मदाता है।”⁷ “शिक्षा का सम्बंध समाज के उत्थान से माना जाता है। यह माना जाता रहा है कि समाज में शिक्षा के माध्यम से ही प्रगति सम्भव है। आधुनिकीकरण के मूल्यों की परानुभूति, उच्च गतिशीलता तथा उच्च सहभागिता आदि में शिक्षा की भूमिक को नकारा नहीं जा सकता”⁸। वर्तमान में हमें शिक्षा का यह स्वरूप दिखाई नहीं दे रहा बल्कि

शिक्षा मानव रूपी यंत्र बना रही है। हमें जरूरत है इंसानों की, नागरिकों की। हमारे समाज में डिग्री और पद व्यक्ति की पहचान बनते जा रहे हैं न की उनकी मनुष्यता। "शिक्षा ने कैरियर बनाम व्यक्तित्व को कैरियर अर्थात् पर्सनॉलिटी में ढाल दिया। जो दुनियावी ढंग से सफल हुआ, उसे ही व्यक्तित्ववान मानने का चलन शुरू हो गया। फिर तों कैरियर का मलतब निजी स्वार्थ और सफलताओं की किसी भी सूरत में पूर्ति हो गया।"⁹ परिणाम स्वरूप हम रचनात्मकता सृजनशीलता से भरे जिज्ञासु विद्यार्थियों को खोते जा रहे हैं। वैश्वीकरण के इस युग में यह केवल भारत की समस्या नहीं वरन् प्रायः हर देश शिक्षा से जुड़ी विभिन्न समस्याओं से जूझ रहा है।

"यह प्रश्न अब सारी दुनिया के सामने है कि ऐसा क्यों है? 21वीं सदी में शिक्षा कैसी हो? इस प्रश्न पर विचार करने के लिए यूनेस्को ने एक समिति का गठन किया जिसके अध्यक्ष डेलर्स थे। समिति ने पूर्ण विचारोंपरांत अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसका शीर्षक था "लर्निंग ट्रेजर विद इन" अर्थात् खजाना बाहर नहीं अंदर है। यह रिपोर्ट 1996 में प्रकाशित हुई थी। इस रिपोर्ट में जहां एक तरफ जो विसंगतियां हैं उनका विवेचन किया तो दूसरी ओर इक्कीसवीं शताब्दी के अंदर मानव जाति के सामने कौन कौन सी समस्याएं आने वाली हैं, जिनका उत्तर शिक्षा को देना पड़ेगा इसका भी विवेचन किया गया। रिपोर्ट में कहा गया है कि कुछ विरोधाभास एवं अंतर्द्वंद्व हैं आपस में हैं। इनके बीच में कैसे संतुलन करे इसका समाधान शिक्षा को निकालना पड़ेगा। ऐसे सात प्रकार के अंतर्द्वंद्वों का डेलर्स रिपोर्ट वर्णन करती है। जो इस प्रकार हैं:- वैश्वीकरण बनाम स्थानीयता, सार्वभौम बनाम आधुनिकता, परम्परा बनाम आधुनिकता, दूरगामी बनाम अल्पकालिक विचार; प्रतिस्पर्धा बनाम समानता, ज्ञान की उपलब्धता बनाम विचार ग्राह्यता की क्षमता, आध्यात्मिकता बनाम भौतिकवाद¹⁰। आज हम अपने चारों ओर इन्ही विरोधाभासों और अंतर्द्वंद्वों को फैला पाते हैं। और उनसे निकलना भी चाहते हैं। पर ऐसा हो नहीं पा रहा क्योंकि शिक्षा सीमित हो गई है और एक तंत्र में एक विभाग में निर्देशित होने लगी। फलस्वरूप शिक्षा का मूल उद्देश्य विलोपित हो गया।

जवाहर लाल नेहरू ने उच्च शिक्षा के मूल उद्देश्यों एवं राष्ट्रीय जीवन में उनकी भूमिका का वर्णन करते हुए कहा था कि विश्वविद्यालयों का अस्तित्व मानववाद के लिये, सहिष्णुता के लिए, विचारगत साहस तथा सत्य की खोज के लिये होता है। उसका यह लक्ष्य होता है कि मानव जाति और भी उच्चतर उद्देश्यों की ओर कदम बढ़ाये। राष्ट्र और जनता का श्रेय इसी में है कि विश्वविद्यालय अपने दायित्व का समुचित निर्वाह करते रहें।"¹¹ इस कथन से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय जीवन में निर्माण, राष्ट्र कल्याण की आकांक्षा और राष्ट्रीय शक्ति के संचयन तथा उपयोग में विश्वविद्यालयों की भूमिका महत्वपूर्ण है यह भूमिका तभी सफल हो सकती है जब विश्वविद्यालय जीवन के आधार भूत मूल्यों के प्रति निष्ठावान हों।

वास्तव में स्वतंत्रता के बाद भारत में उच्च शिक्षा का तीव्र दिशाहीन अनियोजित विकास हुआ। जिसके परिणाम स्वरूप उच्च शिक्षा का स्तर सतत गिरता गया। उच्च शिक्षा का मूल उद्देश्य मनुष्य को विवेकशील बनाना था। माना जाता है मनुष्यों में कुछ समान तो कुछ अलग-अलग विचार होते हैं। जहाँ समान विचारों से जीवन चलता है वहीं ये अलग विचार दुनिया को बदल देते हैं। यहां यह महत्वपूर्ण है कि ये परिवर्तन जिन्दगी का शाश्वत सत्य हैं और चुनौती भरे होते हैं। जिन्हें शिक्षा में नेताओं और नौकरशाहों के हस्तक्षेप ने प्रायः "यथास्थिति" तक सीमित कर दिया है। इसका उदाहरण है पाठ्यक्रम, कोर्स और पद्धति। सभी कुछ निर्देशित हो रहा है। स्वाभाविक है नवाचार का आभाव।

ऐसा नहीं है कि हम परिवर्तन के विरोधी हैं। शिक्षा जगत में आये दिशाहीन परिवर्तनों ने ही शिक्षा से विवेकशीलता और रचनात्मकता के स्थान पर बाजारवाद और मनुष्य के यंत्रीकरण को बढ़ावा दिया है। आज का युवा/छात्र राष्ट्रनिर्माण के स्थान पर स्वयं के निर्माण और संवेदशीलता की जगह मशीनी हो गया। तो उसके पीछे कहीं न कहीं उच्च शिक्षा का मार्गदर्शन ही है। उच्च शिक्षा का उद्देश्य नागरिक बनाना न होकर व्यवसायिक दक्षता और प्रतिस्पर्धा में आगे निकलना मात्र रह गया है।

इतना ही नहीं उच्च शिक्षा दो भागों में बंट गई है। एक तरफ जहां केवल ग्रेजुएट होने और उससे मिलने वाले लाभों को ध्यान में रखकर शिक्षा लेने वाले हैं, वहीं दूसरी ओर असीम महत्वकाक्षाओं से भरे, अपने आपको इस विश्व में स्थापित कर भौतिकतावाद का भरपूर उपभोग करने की इच्छा रखने वाले हैं। जो प्रायः व्यवसायिक शिक्षा को ही महत्व देते हैं। आज डाक्टर बनने की इच्छा या डाक्टर बनने वाला सेवा भाव से नहीं वरन् रोजगार की सुनिश्चितता से इसे चुन रहा है, इस तरह इंजीनियर, एम.बी.ए. या आर्ट्स से ग्रेजुएट्स का सपना राष्ट्र के विकास से नहीं वरन् स्वयं के विकास तक ही सीमित होता जा रहा है। इस दृष्टिकोण का प्रभाव एक व्यक्ति के रूप में उन पर भी पड़ता है जिसे हम देख पाते हैं कि केवल ग्रेजुएशन की इच्छा रखने वाले न तो अपने विषयों से संबंधित ज्ञान अर्जित करना चाहते हैं न अध्ययन से जुड़ाव। वे मात्र डिग्री के लिये “दस प्रश्न” पढ़कर पास होने के सरल रास्ते के राहगीर मात्र होते हैं जिन्हें न तो भाषा का ज्ञान होता है न विषय का। दूसरी ओर व्यवसायिक शिक्षा लेने वाले कठिन प्रतिस्पर्धा के चलते संवेदनहीनता से भरे और मात्र अपनी जीत तक सीमित। उन्हें देश दुनिया की विषमता पर परिस्थितियाँ भी प्रभावित नहीं कर सकती।

वैदिक और उपनिषद काल के बाद मौलिक और बहुदिश चिंतन से हम विमुख होते चले गए— यथास्थितिवाद, आज्ञापालन, अध्यानुकरण हमारी संस्कृति और शिक्षा के अंग बन गए। टीका, व्याख्या, अनुवाद और पुनरावृत्ति की अतिशयता ने मौलिकता और नवीनता से हमारा नाता तोड़ दिया और अभिव्यक्ति के खतरे उठाना हम ने प्रायः बंद कर दिया है।

आज भी शिक्षा अधिकारवाद, राष्ट्रवाद संवाद विमुखता से पीड़ित है। यहां प्रश्न पूछना शंका उठाना, जिरह—बहस करना वर्जित है। ऐसी शिक्षा मस्तिष्क का यंत्रीकरण और बुद्धि कर बधीकरण कर सकती है। मुक्ति के लिये संघर्ष की पतवार नहीं बन सकती। शायद यही सोच शिक्षा को व्यवसायीकरण की ओर ले जाती है। आज उच्च शिक्षा का दम व्यवसायीकरण के कमरों में दम तोड़ता नजर आ रहा है।

वास्तव में आज आने वाले कल की चुनौतियां हमसे “ज्ञान संग्रह” या केवल “सीखने” की नहीं बल्कि “चिंतन कौशल” की मांग कर रही है। आज की शिक्षा व्यवस्था में कक्षाएं “पाठ सुनने” के कमरे और छात्र “बासी तथ्यों” के निष्क्रिय उपभोक्ता बने हुये हैं। क्या हमारी उच्च शिक्षा का यही उद्देश्य था? यदि नहीं तो हमें उन कारणों को तलाशना होगा, जो उच्च शिक्षा को उसके मूल उद्देश्यों से भटका रहे हैं। ये कारण सिर्फ उतने नहीं हो सकते जो इस शोध पत्र में हों। उन कारणों में समय, स्थान और परिवेश लगातार कहीं वृद्धि तो कहीं कमी कर रहे हैं। सम्भवतः ये कारण निम्नांकित हो सकते हैं। स्कूली शिक्षा में नैतिक शिक्षा पर कम बल, फलस्वरूप नागरिक की जगह हम व्यक्ति बना रहे हैं। तथ्यगत जानकारी (आंकड़ों) पर बल जहां केवल पेपर बोलते हैं व्यवहारिकता नहीं। उदाहरणतः किसी क्षेत्र विशेष में यदि 100 बच्चे हैं तो कितनों ने स्कूल में एडमीशन लिया है यह महत्वपूर्ण होता है न कि वे स्कूल में क्या और कैसे पढ़ रहे हैं। यह रास्ता उच्च शिक्षा तक इसी प्रकार चलता है। बढ़ती जनसंख्या—जिसके कारण महाविद्यालयों विश्वविद्यालयों में छात्र—छात्राओं के स्थान पर केवल भीड़ नजर आती है। अब एक प्राध्यापक की क्षमता से पढ़ाई नहीं होती वरन् जितने आ जायें सभी को एडमीशन समानता के आधार पर दिया जाता है। छात्र संख्या तो बढ़ती जाती है पर फैंकल्टी नहीं। फलस्वरूप शिक्षण के अतिरिक्त अन्य समस्त दायित्वों का कार्यालयीन तरीकों से निर्वाहन न केवल काम के बोझ को बढ़ाता है साथ ही शैक्षणिक गतिविधियों को भी प्रभावित करता है। बढ़ती छात्र संख्या परन्तु कक्षाओं में कम उपस्थिति। शिक्षकों द्वारा या तो पुराने तरीकों से पढ़ाना या पढ़ाने में रुचि न दिखाना। छात्रों का रुझान केवल छात्रवृत्तियों तक। व्यवसायिक उच्च शिक्षा का महंगा होना। शिक्षा माध्यम से सम्बंधित समस्याएँ। परीक्षा आधारित व्यवस्था। बाजारवाद, भ्रष्टाचार, अनावश्यक प्रतिस्पर्धा। शिक्षा का व्यवसायीकरण। उद्देश्यहीनता— छात्र स्वयं नहीं जानते वे क्या, क्यों पढ़ रहे हैं। पाठ्यक्रमों की अनुपयोगिता। संरचनात्मक समस्याएँ — मूलभूत सुविधा — क्लासरूम, उपकरण आदि न होना। छात्र शिक्षकों के

मध्य संतुलित संबंधों का अभाव एवं फैकल्टी में ज्ञानार्जन के प्रति उदासीनता तथा राजनैतिक व प्रशासनिक हस्तक्षेप होने के साथ ही शिक्षा का निजीकरण—फलस्वरूप डिग्रियों की ब्रिकी और सामाजिक आर्थिक बाधाएँ—यथा बाल मजदूरी गरीबी, ड्राप आउट आदि।

इन्हीं सब कारणों से शिक्षा के स्तर में गिरावट आई है और कला व साहित्य के विद्यार्थी न तो भाषा और न ही साहित्य जान पा रहे हैं। न विज्ञान के विद्यार्थी विज्ञान सीख रहे हैं। कई विषय तो केवल डिग्रियों तक सिमट गये हैं। यही कारण है कि हम वैश्वीकरण के दौर में न तो बाजार के रूप में स्थापित हो पा रहे हैं न राष्ट्रनिर्माण हेतु नागरिक दे पा रहे हैं। महाविद्यालय केवल डिग्री देने वाली संस्थाएँ रह गये हैं और विद्यार्थी जितना दिग्भ्रमित नहीं है उससे कहीं ज्यादा वह दबाव में आता जा रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. तैत्तिरीयोपनिषद् 1:2:1
2. श्रीमद्भगवद्गीता 4:38
3. भारतीय शिक्षा के मूल तत्त्व, लज्जाराम तोमर, पृष्ठ—20, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली—55
4. शिक्षा का विकास, भगवान प्रसाद, पृष्ठ—10, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली
5. भारतीय शिक्षा : मुद्दे, विकल्प और नीतियाँ—डॉ वीरेन्द्र सिंह यादव, ओमेगा पब्लिकेशन्स, दरियागंज, दिल्ली, पृष्ठ 74—75
6. भारतीय शिक्षा : मुद्दे, विकल्प और नीतियाँ—डॉ वीरेन्द्र सिंह यादव, ओमेगा पब्लिकेशन्स, दरियागंज, दिल्ली, पृष्ठ 77—83
7. विजय प्रताप, लोकतंत्र अस्मिता के आईने में नयी किताब, 2004
8. योजना, मासिक पत्रिका, अक्टूबर 2009
9. राज एक्सप्रेस, 10 फरवरी 2012
10. सुरेश सोनी — शिक्षा और शिक्षकीय दायित्व
11. राकेश त्रिवेदी — भारतीय शिक्षा का इतिहास

अन्य सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ सूची—

- दुबे सत्यनारायण (शरतेन्दु) अध्यापक शिक्षा—शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
- त्यागी गुरुशरणदास— भारत में शिक्षा का विकास : दशा एवं दिशा।
- दृष्टि 2010—सम—सामयिकी घटना चक्र, घटना चक्र प्रकाशन, इलाहाबाद।
- भारतीय शिक्षा का विकास तथा समस्याएँ : एस0पी0 गुप्ता, शारदा प्रकाशन, इलाहाबाद।
- मनोरमा ईयर बुक — 2009
- पाठक पी0डी0 त्यागी, जी0एस0डी0, शिक्षा के सिद्धान्त, नवीनतम संस्करण 88—89
- रुहेला सत्यपाल : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार—प्रथम संस्करण 2010।
- लाल बिहारी रमन : भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं समस्याएँ—संस्करण 2001
- महात्मा गाँधी : अनासक्ति योग
- गीता रहस्य अथवा कर्मयोग शास्त्र—लोकमान्य तिलक मन्दिर, पूना।
- आधुनिक भारतीय शिक्षा : समस्याएँ और समाधान—रविन्द्र अग्निहोत्री।
- भारतीय शिक्षा का विकास एवं सामायिक समस्याएँ—डा0 मालती सारस्वत।
- शैक्षिक ज्ञान और वर्चस्व—प्रो0 कृष्ण कुमार।
- पाठक पी0डी0 त्यागी: जी0एस0डी0—शिक्षा के सिद्धान्त।



मीडिया की वर्तमान स्थिति : चिन्तन—चिन्ता के विविध आयाम

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

एसोसिएट प्रोफेसर—हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग

डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ उ.प्र.

भारतीय लोकतंत्र चार स्तम्भों पर टिका हुआ है जो इसकी सुरक्षा का उत्तरदायित्व निभाते हैं— विधायिका, न्यायपालिका, कार्यपालिका और प्रेस, जिसे आधुनिक युग में मीडिया की संज्ञा दी गयी है। इन चारों स्तम्भों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण भूमिका प्रेस की होती है। प्रेस अर्थात् मीडिया से सदैव यही अपेक्षा की जाती है कि वह जो भी कार्य करेगा, सहजता और निष्पक्षता के साथ करेगा। मीडिया एक ऐसा सशक्त माध्यम होता है जो सरकार और जनता के बीच मध्यस्थता का कार्य भी करता है। मीडिया सरकार की नीतियों को आम आदमी तक पहुँचाता है और आम आदमी की समस्याओं को सरकार तक पहुँचाता है। साधारण शब्दों में कहें तो मीडिया सरकार और आम आदमी के बीच मध्यस्थता का कार्य करता है। वास्तव में तथ्य ही समाचार हैं जो पाठक के जीवन, सुख—दुख, भावना और विचारों पर प्रभाव डालते हैं। ऐसी घटनाएँ और तथ्य ही समाचार पत्रों में रहते हैं। सामाजिक सरोकार के कारण ही पत्रकार को जनता की आँख और कान कहा जाता है।¹

पत्रकारिता का क्षेत्र वैचारिक और बुद्धिजीवी लोगों का क्षेत्र है इसलिए पत्रकारिता को संचार का सामाजिक विज्ञान और लोकसेवा का सशक्त माध्यम कहा जाता है। यह मानवधिकारों की सुरक्षा करता है तथा मानवाधिकारों के प्रति आम जनता में जागरूकता पैदा करता है। पत्रकारिता के बारे में एन.सी. पंत ने लिखा है कि पत्रकारिता का उद्देश्य संपूर्ण समाज में नवसंचार, सजीवता, जागरण, नवस्फूर्ति, सक्रियता एवं गतिमयता के संदेश का प्रचार और प्रसार करना है। मीडिया से हमेशा यही अपेक्षा की जाती है कि वह आम से लेकर खास जन तक को जागरूक करे और उनका मार्गदर्शन करे, इसके साथ ही वह राष्ट्र पर आने वाली किसी भी समस्या का समाधान अपने स्तर से करे किन्तु मीडिया का यह आदर्श रूप आज क्रूर भयावह रूप धारण करता जा रहा है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की बात करें तो मीडिया और समाज का संबंध शायद उतना ही पुराना है जितना पुराना समाज। मीडिया के चेहरे में कोई खास बदलाव नहीं आया है बल्कि यह कहना ज्यादा उचित होगा कि उसमें नए—नए आयाम जुड़ते गए। प्राचीन भारत में ही जब आर्यभट्ट, वराहमिहिर, भारद्वाज जैसे तत्ववेत्ताओं ने प्रकृति के रहस्यों को खोलना शुरू किया तो लोगों के देखने व समझने के नजरियों में आवश्यक बदलाव आया।

वर्तमान की यह जरूरत है कि मीडिया पर मीडिया के लोगों की एक मानिट्रिंग कमेटी हो जो उसकी सामाजिक जिम्मेदारी तय करे और उसे गलत रास्ते पर जाने से रोके। ये भी जरूरी है कि मीडिया को समाज पर हावी न होने दिया जाए वरन उसको समाज की आवश्यकताओं के हिसाब से दिशा दी जाए जिससे नई पीढ़ी को समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, जातपात, छुआछूत व मजहबी कट्टरपन आदि बुराइयों से लोहा लेने लायक बनाया जा सके। एक सर्वे के अनुसार ऐसा कहा जाता है कि सन् 1962 ई० से लेकर सन् 1972 ई० के बीच की सिविल सेवाओं में दाखिल हुए नौकरशाहों में कुछ ज्यादा ही ईमानदार और अपनी ड्यूटी को लेकर संजीदा निकले। इसका कारण भी मीडिया ही बताया जाता है। इन 10 वर्षों में भारत को लगातार 3 युद्धों का सामना करना पड़ा। मीडिया ने भी लगातार देशभक्ति की फिल्में, आकाशवाणी से लगातार देशभक्ति के गीतों का प्रसारण किया, जिसके चलते जो बच्चों को किशोरावस्था से लेकर लगातार दसियों साल देशभक्ति की विकसित की गई जिसका कुछ असर

उस समय के कुछ युवाओं में भी देखने को मिला। दरअसल हमें यह कतई नहीं समझना चाहिए कि मीडिया के हाईटेक होने से उसकी गुणवत्ता में बहुत सुधार आ गया है। आज विजुअल मीडिया और इंटरनेट से अश्लील दृश्यों को फिल्माकर पोर्नोग्राफी के बाजार के जरिए रोजगार के नए अवसर मुहैया करा रहा है। जिसके चलते मीडिया का उपयोग करने वाले अधिकतर लोग मानसिक विक्षिप्तता का शिकार हो रहे हैं। दरअसल यह एक आत्मघाती पथ है जहाँ हमें मीडिया पहुँचा रहा है। बीसवीं सदी में मीडिया का ही कमाल था जिसने लोकतांत्रिक राज व्यवस्था का भूमण्डलीकरण किया है। आज सौ से भी अधिक देशों में लोकतांत्रिक बयार बह रही है। जबकि सौ साल पहले दुनिया का एक भी देश सच्चे मायने में लोकतांत्रिक नहीं था। भारत भी उनमें शामिल है। इसी प्रकार और भी कई गंभीर और ज्वलंत समस्याएँ देश दुनिया में व्याप्त हैं जिनके सुधार के लिए मीडिया की महत्वपूर्ण और जायज भूमिका की दरकार आज भी लोगों की नजरों में है।

स्वतंत्रता मिलने से पहले मीडिया एक जुनून एक मिशन हुआ करता था। पत्रकार भले ही अंग्रेजों की गोलियाँ खा लेते थे परन्तु अपने कर्तव्य से पीछे नहीं हटते थे। उस समय की पत्रकारिता एक मिशन थी जिसका उद्देश्य अपने राष्ट्र और राष्ट्रवादियों की सुरक्षा में निहित था। परन्तु समय ने करवट ली। देश आजाद हुआ और उसके साथ ही मीडिया का चेहरा भी बदल गया। आज मीडिया एक मिशन नहीं बल्कि व्यवसाय है, पैसा कमाने का साधन है। आज मीडिया का बाजारीकरण हो रहा है। चुनावों में राजनीतिक दलों के साथ गठजोड़ करके और उनसे पैसा लेकर मीडिया उनकी सकारात्मक छवि को पेश करता है, न कि सच्चाई को। आम आदमी की समस्याओं से उसका कोई वास्ता नहीं रह गया है। “किसानों की आत्महत्या मीडिया के लिए एक सीधी और साधारण खबर है किन्तु रियलिटी शो, मनोरंजक कार्यक्रम आदि उसके लिए महत्वपूर्ण खबरें हैं।”²

अभी कुछ दिन पहले ही की बात है कि एक वरिष्ठ न्यायाधीश को यह कहना पड़ा कि क्या कोई कार्यक्रम ऐसा भी है जिसे पूरे परिवार के साथ मिल-बैठकर देखा जा सके? इस प्रश्न में पूरी तरह सच्चाई निहित है। व्यवसायिक प्रतिस्पर्धा की दौड़ में खबर को मसालेदार और चटपटा बनाने के लिए सच्चाई को तोड़मरोड़ कर प्रस्तुत करना, आकर्षण के लिए अश्लीलता को परोसना, एक ही खबर को पूरे दिन या कई दिनों तक प्रस्तुत करना न्यूज चैनलों के लिए आम बात है। धारावाहिकों को छोड़ दिया जाए तो बाकी पाश्चात्य चमक-दमक से ओत-प्रोत हैं जिससे हमारी संस्कृति, सभ्यता और इतिहास की जड़ें दिनो-दिन खोखला होती जा रही हैं और साथ में वर्तमान युवा पीढ़ी को गुमराह भी कर रही हैं जिसके कारण हम अपने आदर्श, मर्यादा, राष्ट्रप्रेम, समाज और संस्कृति से कटते जा रहे हैं।³

वर्तमान परिप्रेक्ष्य की बात की जाय तो आज भारतीय मीडिया और मनोरंजन उद्योग सबसे तेजी से विकसित हो रहे उद्योगों में से एक है। पहले जहाँ सरकार के नियंत्रण वाला दूरदर्शन नाम का सिर्फ एक चैनल था, वहीं अब देश भर में 400 चैनल काम कर रहे हैं। भारत में विभिन्न भाषाओं में एक हजार से ज्यादा फिल्में बनती हैं और करीब 10,000 से ज्यादा सिनेमा घर हैं।⁴ उद्योगों की परामर्श और लेखापरीक्षण सेवाएँ देने वाली संख्या प्राइस वाटरहाउस कूपर्स के अनुमानों के अनुसार 2010 के लिए भारतीय मीडिया और मनोरंजन उद्योग में आसार वृद्धि की है। वर्ष 2009 में जहाँ यह उद्योग 58,080 करोड़ रु. का था, वहीं 2005 में यह 35,650 करोड़ का था। इस प्रकार 2005 से 2009 तक वृद्धि दर 13 प्रतिशत रही। वर्ष 2008 में भारत में प्रिंट मीडिया उद्योग करीब 140.7 बिलियन डालर का था। हालांकि यह बढ़त 2007 के मुकाबले करीब 7 प्रतिशत ज्यादा थी।⁴ रजिस्ट्रार आफ न्यूज पेपर रिपोर्ट, जनवरी 2010 बात यहीं समाप्त नहीं हो बल्कि भारत में दो हजार से ज्यादा दैनिक एवं तीन हजार से ज्यादा साप्ताहिक अखबार निकलते हैं।⁵

प्रिंट मीडिया सामाजिक बुराइयों से लोगों को मुक्ति करने के लिए संकट निवारण का भी काम करता है और शोषित और उत्पीड़ित लोगों को सामाजिक न्याय देने की दिशा में आवाज उठाता है। लेकिन भूमण्डलीकरण के दौर

में प्रिंट मीडिया के व्यवसायिक नजरिये और व्यवसाय दोनों में बदलाव आने लगा है और लोकतंत्र का चौथा स्तंभ यानी मास मीडिया अपनी वॉचडॉग की भूमिका पूरी ईमानदारी से नहीं निभा पा रहा है। भारतीय प्रिंट मीडिया स्वतंत्रता से पूर्व एक मिशन था। आजादी के पश्चात यह पूर्णतः एक व्यवसाय बन गई है।

नेता, मंत्रियों व राजनीति की आपसी टीका-टिप्पणी से आम जनता का क्या सरोकार हो सकता है? इतनी देर यदि किसी राज्य या जिले की कोई गंभीर समस्या व उसके सुझाव के साथ यदि कोई पहल की जाए तो देश के हर किसान व मजदूरों की कायापलट हो सकती है। जैसे कि किसी फैशन शो के दौरान कैटवाक करते समय किसी युवती का अंगवस्त्र गिर जाता है या शरीर से खिसक जाता है तो चैनल उसे बार-बार दिखाकर आखिर क्या साबित करना चाहते हैं? यदि इतनी देर तक आवृत्ति किसी गांव की पतली व कच्ची सड़क, स्कूल विहीन बच्चे, शुद्ध पेयजल से वंचित दुर्गम और पिछड़े गांव की दशा को यदि बार-बार दिखाया जाए तो उनके विकास से जुड़े जन प्रतिनिधि व जिम्मेदार सरकारी एजेंसियों की नींद खुल सकती है और आपके चैनल की एक खास पहचान भी बनेगी। हो सकता है कि इस पहल में आपकी कोई विशेष कमाई त्वरित रूप से न हो।

सरकार द्वारा भी यह अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए कि हर एक समाचार चैनल सामाजिक, आर्थिक, शिक्षा, स्वास्थ्य, शुद्ध पेय जल या ऐसे कई ज्वलंत मुद्दों में से किसी एक को चुनकर प्रोजेक्ट स्वरूप उसे समाज के सामने लाए और उसकी प्रतिदिन की एक संक्षिप्त रिपोर्ट पेश करे। जनता की पोलिंग या व्यक्तिगत सुझाव और सहयोग की अपील की जा सकती है और क्रमशः उसके विकसित स्वरूप को बनाने की कोशिश की जानी चाहिए। इस प्रकार के नियम से देश की कई समस्याओं की व्यावहारिक दिक्कतें समाज और सरकार तक जा सकती हैं। शायद यही सही उचित भूमिका मीडिया की होनी चाहिए। सरकारी विज्ञापन या जनकल्याण के विज्ञापन केवल सरकारी चैनलों द्वारा ही दिखाए जाते हैं जबकि प्रत्येक टी.वी. चैनलों के लिए इसे अनिवार्य करने की आवश्यकता है।

आज के परिप्रेक्ष्य में विचार करें तो मीडिया की अतिवादिता का सबसे बड़ा कारण यह है कि हमारे सांस्कृतिक सरोकारों से उसका रिश्ता टूट चुका है जबकि विचार किया जाय तो संस्कृति ही वह कारगर तत्त्व है जो मीडिया के आचार-विचार को नियंत्रित और विकसित करती है। "अगर आज मीडिया के दैत्याकार चेहरे के भीतर विचार-तत्त्व गायब हो गया है तो इसलिए कि हर समय उसकी क्रूर अट्टहास, चीख ही सुनायी पड़ रही है। विचारों का क्षय कितना भयानक और क्रूर होता है, इसका अन्दाजा आज चौबीस घण्टे चलने वाली खबरिया चैनलों की चीत्कार में देख-सुन सकते हैं।"⁶

यह आकस्मिक नहीं है कि इन खबरिया चैनलों में देश की सांस्कृतिक सूचनाएँ न के बराबर हैं। अधिक से अधिक सांस्कृतिक खबरों के नाम पर त्योहारों, उत्सवों पर नाच-गानों के फूहड़ फुटेज दिखा दिये जाते हैं।

पिछले कुछ वर्षों में मीडिया में 'स्ट्रिंग आपरेशन' के नाम पर भ्रष्टाचार उजागर करने के कुछ प्रयास हुए पर कुछ दिनों में ही उनकी विश्वसनीयता समाप्त हो गयी है और आम धारणा यह बन गयी है कि वह किसी के द्वारा किसी के लिए प्रायोजित कार्य था। किसी समय 'पीत पत्रकारिता' की बात की जाती थी किन्तु अब पत्रकारिता के सभी अंग जिस तरह हित साध रहे हैं, उसमें पीला रंग सफेद तो नहीं हुआ पर पूरी तरह काला हो गया है। आज मीडिया दिशाहीन, दिग्भ्रमित और गैर-जिम्मेदार होता दिख रहा है। वह दुराहे पर खड़ा हो, ऐसा भी नहीं है, क्योंकि राह निर्धारित है और वह उस राह को अच्छी तरह जानता-पहचानता भी है। मीडिया को अपना कर्म बनाने के पूर्व वह इसी तयशुदा रास्ते पर चलने की कसम खा चुका है।

निजी प्रसारण संस्थाओं की राजनीतिक एषणा प्रकट रूप से दिखाई नहीं देती, लेकिन प्रसारणों में राजनीतिक दलों का बड़बोलापन एवं तीखी अभिव्यक्ति शैली को पीछे छोड़ते हुए एंकर या रिपोर्टर राजनीतिक नेताओं की भूमिका में दिखायी देते हैं। कभी-कभी यह प्रभाव इतना अधिक होता है कि आम दर्शक किसी राजनीतिक दल या सामाजिक संस्था का अनुगामी या प्रचारक समझ लेता है। यह स्थिति गठबंधन सरकारों के दौर में बढ़ रही

है। अशक्त सरकारें इन माध्यमों का उपयोग अपनी छवि सुधारने या आवश्यक बहुमत जुटाने या कदाचार को दबाने के लिए भी कर रही हैं। विदेशी दौरे, आयोगों व विविध समितियों की सदस्यता, आवास और वाहन सुविधा, फेलोशिप, पुरस्कार, प्रतिष्ठानों के लिए अनुदान, शासकीय सेवाओं में रोजगार, मुफ्त विद्युत या जल प्रदाय आदि अनेक रूपों में प्रसारण संस्थाओं या पत्रकारों की मदद करने के पीछे स्वस्थ पत्रकारिता का विकास कराना ही ध्येय नहीं बल्कि अपनी स्वार्थ की पूर्ति करना मात्र है।

शासन का कर्तव्य भी इस दिशा में वांछित है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के तुरन्त बाद तत्कालीन प्रधानमंत्री नेहरू जी ने पत्रकारिता और प्रेस के विकास के लिए बड़े स्तर पर प्रेस-संस्थानों को मुफ्त या प्रतीक मूल्य पर शहरों में बहुमूल्य जमीन उपलब्ध करायी थी। इस प्रक्रिया में उदारता के कारण प्रेस संस्थानों ने तेजी से अपना विकास भी किया। लेकिन इन सुविधाओं का उपयोग व्यापार एवं निजी आर्थिक लाभ के लिए नहीं किया। आज स्थिति इसके उलट प्रतीत होती है। हर प्रेस या चैनल प्रतिष्ठान, संस्थान का उपयोग उद्योग खड़ा करने या सरकार के समानान्तर, शक्तिशाली बनने की होड़ में लगे हैं।

मीडिया का धर्म तथ्यपूर्ण समाचार और निष्पक्ष विश्लेषण करना है, वह सरकार और जनता के बीच एक निर्णायक की भूमिका के समान है। वह स्वयं किसी पक्ष का भाग नहीं हो सकता है, तभी उसकी विश्वसनीयता बनी रह सकती है। निजी चैनलों में सत्ता संघर्ष और वर्चस्व की होड़ के कारण बड़बोलापन और वाक् अतिरेक इतना बढ़ रहा है कि यह कथन सत्य प्रतीत होता है— “खबरों में कोई सच्चाई नहीं है, क्योंकि सच्चाई कोई खबर नहीं बनाती।” समाचार चैनल समाचार के नाम पर लॉफ्टर चैलेन्ज, भूत-प्रेत की कथाएँ, शादी- विवाह, चुटकुले, रियलटी शो, फैशन परेड, धार्मिक चर्चा, ज्योतिष विद्या, तंत्र-मंत्र, गुस्ताखी माफ, हास-परिहास, प्रेस-प्रसंग, अवैध सम्बन्ध, विवाहेतर सम्बन्ध, फिल्मी कलाकारों का निजी जीवन, नृत्य-संगीत प्रतियोगिताएँ, प्रसारित सीरियलों के अंश, फिल्मों का प्रसारण, स्ट्रिंग-ऑपरेशन, राजनेताओं के व्यक्तिगत प्रसंग, चुनावी चौपाल, सौन्दर्य प्रसाधन, हर्बल चिकित्सा आदि अनेक कार्यक्रम समाचार की दृष्टि से नहीं वरन् टी0आर0पी0 बढ़ाने और लोगों का माखौल उड़ाने के लिए या राजनीति तथा शासन व्यवस्था की खिल्ली उड़ाने और उन्हें छोटा तथा निरर्थक सिद्ध करने के ध्येय से प्रसारित किया जाता है।

इसमें कोई दो राय नहीं कि मानव जीवन में मनोरंजन का महत्वपूर्ण स्थान होता है और उपरोक्त कार्यक्रमों की प्रासंगिकता अनुचित नहीं है किन्तु समाचार चैनल के दायरे में इसे लाना अनुचित है। मनोरंजन को प्रसारित करना है तो उसे समाचार के रूप में प्रचारित करना ठीक नहीं है। समाचार की गरिमा और महत्ता की बलि देकर मनोरंजन प्राप्त करना उचित नहीं। समाचार चैनल में कार्यरत प्रबुद्ध पत्रकारों की साख को इस प्रवृत्ति से बट्टा लग रहा है। इसी प्रकार अपराध, दंगा आदि पर लम्बे समय तक आँखों-देखे विवरण या समीक्षाएँ प्रसारित करना यथार्थ से दूर ले जाना है। समाचार को सनसनीखेज बनाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि तथ्य ही अपने आप में सनसनीपूर्ण होता है। अपराधों पर लम्बे कार्यक्रम दर्शक के मनोविज्ञान पर विपरीत असर डालते हैं। समाचार चैनल सत्ता से होड़ करने की प्रवृत्ति के कारण स्वयं सत्ताधीश होने और निर्णय देने तथा दण्ड की घोषणा करने की प्रवृत्ति के शिकार हो रहे हैं। सत्ता का केन्द्र राजनीति से खिसक कर इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों की ओर उन्मुख है। जनसामान्य के समक्ष यह माध्यम अपनी सत्ता की निरंकुशता सिद्ध करने में संलग्न है।

वास्तविकता चाहे जो भी हो और मीडिया को चौथा स्तम्भ जरूर कहा जाता है मगर वह ज्यों ही सत्ता बनने की कोशिश करती है, आदर्श लक्ष्य से च्युत हो जाती है। सत्ता पर हावी होने के लिए राजनीति के अलग-अलग दल बनते हैं, एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप किये जाते हैं, अवसरवादी समझौते होते हैं और कुर्सी पाने के बाद उसे बचाने के लिए न जाने कितने अनैतिक रास्तों से गुजरना पड़ता है। मगर मीडिया की यह प्रक्रिया नहीं है क्योंकि उसका लक्ष्य सत्ता बनना या सत्ता पर काबिज होना नहीं है। मीडिया किसी एक राजनीतिक दल के हित में नहीं

बल्कि आम-जन के हित में होती है; बहुजन नहीं, सर्वजन के हित में। अतः उसे सत्ता के जनमंगलकारी कार्यों का समर्थन करना चाहिए और उसमें सहयोगी की भूमिका भी निभानी चाहिए। मगर अफसोस है कि आज मीडिया अपना यह आदर्श और कर्तव्य भूल गयी है। परिणामस्वरूप उसका सबसे ज्यादा फायदा राजनीतिक और पूँजीवादी संस्थान उठा रहे हैं। प्रसिद्ध साहित्यकार विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के शब्दों में, “तमाम भ्रष्ट राजनीतिक नेता मीडिया के पंखों पर उड़ते हुए अपना जलवा दिखा रहे हैं और पूँजीवादी संस्थान अपनी काली कमाई का विस्तार कर रहे हैं।”⁷

आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता पर जोर-शोर से बहस करने वाली ‘मीडिया’ में ‘जातिवादी’ तेवर क्यों आ रहे हैं, यह भी सोचने वाला प्रश्न है? दरअसल ‘मीडिया’ का नियंत्रण जिस द्विज समाज के पास है उसकी सोच ही ‘मीडिया’ को ऐसा करने पर मजबूर करती है। हिन्दुओं में उस चेतना का सर्वथा अभाव है जिसे समाज-विज्ञानी ‘समग्र वर्ग की चेतना’ कहते हैं। उनकी चेतना सर्व वर्ग से सम्बन्धित नहीं है। हर एक हिन्दू में जो चेतना पायी जाती है, वह उसकी अपनी जाति के बारे में होती है। जब भी कोई समुदाय अपने स्वार्थ रक्षा की भावना से प्रेरित होता है, उसमें असामाजिकता की भावना पैदा हो जाती है। यह असामाजिकता की भावना ही अर्थात् अपने स्वार्थ की भावना, विभिन्न जातियों के एक दूसरे से अलग होने का ऐसा विशिष्ट लक्षण है जैसा कि अलग-अलग राष्ट्रों का।⁸ इस कथन में डॉ० अम्बेडकर ने जो सबसे महत्वपूर्ण बात ‘हिन्दू समाज’ के ऊपर कही है वह है—‘समग्र वर्ग की चेतना का अभाव’ अर्थात् “उसका हर विरोधी वर्ग स्वयं अपने लिए और अपने वर्ग की स्वार्थ पूर्ति के लिए जीना चाहता है”⁹

भारतीय समाज के इस मनोविज्ञान को जानने के बाद क्या यह आशा की जा सकती है कि ‘मीडिया’ निष्पक्ष भूमिका निभा पायेगी? शायद नहीं, क्योंकि भारतीय समाज की तरह ही भारतीय मीडिया में भी ‘समग्र वर्ग की चेतना का अभाव’ है।

‘मीडिया’ पर पक्षपाती होने का आरोप उस समय भी लगा जब ‘मण्डल विरोधी गतिविधियों’ को उसने अधिक कवरेज देकर भड़काऊ भूमिका निभाई, इस दौर की पत्रकारिता में दलित पत्रकार एच०एल० दुसाध ने “राष्ट्र के विचारों के निर्माण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले अखबारों की संपादकीयों और रिपोर्टों में आरक्षण विरोधियों के प्रति एक स्पष्ट सहानुभूतिशीलता” देखी, न सिर्फ पत्रकारिता बल्कि ‘इलेक्ट्रानिक मीडिया’ को भी कटघरे में खड़ा करते हुए उन्होंने कहा कि “विभिन्न टी०वी० चैनलों पर जो बहसें दिखाई जा रही हैं, उनमें ऐसे विषय चुने जा रहे हैं जिससे यही लगता है कि आरक्षण राष्ट्रहित में नहीं है।”¹⁰ इसी कारण ‘मीडिया’ के सम्बन्ध में मुकेश कुमार ने यह तथ्य उजागर किया कि “आरक्षण विरोधी आन्दोलन मीडिया की देन है, उसे मीडिया ने शुरू किया, बढ़ावा दिया और फिर चलाया।”¹¹

इसमें कोई दो राय नहीं कि मीडिया न सिर्फ आन्दोलन खड़ा कर सकती है बल्कि उसे पूरे वजूद के साथ संचालित भी कर सकती है। मीडिया की यह भूमिका सकारात्मक भी हो सकती है और नकारात्मक भी। स्पष्ट है कि मण्डल विरोधी गतिविधियों, आरक्षण विरोधी तेवरों के चलते इस मीडिया को दलित बुद्धिजीवियों ने नकारात्मक दृष्टि से देखा और जिस प्रकार डॉ० अम्बेडकर ने अपने दौर की मीडिया को पक्षपाती करार दिया था, उसी प्रकार इस मण्डल विरोधी दौर की मीडिया को भी पक्षपाती करार दिया। मीडिया के पक्षपात का सबसे बड़ा सबूत यह है कि “रिपोर्टिंग के तहत आरक्षण के विरोध में होने वाले प्रदर्शनों को बढ़ा-चढ़ा कर दिखाया गया, जबकि आरक्षण समर्थकों को बिल्कुल गायब कर दिया गया।”¹²

दलित एवं अन्य समाज के हाशिए के लोगों की आवाज को ‘मीडिया’ तरजीह क्यों नहीं देती? जबकि मीडिया का काम लाखों दबे-कुचले लोगों की आवाज को सामने लाना है। इसका प्रमुख कारण आबादी के अनुपात में दलित (एवं अन्य समाज के हाशिए) पत्रकार काफी कम तादात में हैं। “संख्या कम होने के कारण उनकी आवाज

कभी अर्थपूर्ण ढंग से सामने नहीं आ पाती क्योंकि पूरा मीडिया उच्च जाति के लोगों से भरा पड़ा है।”¹³

जाहिर है ‘मीडिया’ पर जिस वर्ग या जाति का नियंत्रण होगा वह उसी के हितों की प्रवक्ता होगी। इस सम्बन्ध में 2006 में स्वतंत्र पत्रकार अनिल चमड़िया, जीतेन्द्र कुमार और योगेन्द्र यादव ने मिलकर दिल्ली के ‘राष्ट्रीय मीडिया’ कहलाने वाले सैंतीस बड़े अखबार, पत्रिकाओं और टीवी0 चैनलों आदि के शीर्ष पदों पर आसन्न 315 पत्रकारों की सामाजिक पृष्ठभूमि का सर्वेक्षण किया। इस सर्वेक्षण के नतीजे बकौल योगेन्द्र यादव ‘बेहद दुखद थे’ क्योंकि “देश में क्या खबर बनेगी और क्या नहीं इसका फैसला करने वाले इन 315 लोगों में से सिर्फ 17 फीसदी महिलाएँ हैं। हिन्दू 90 फीसदी हैं तो मुसलमान सिर्फ 3 फीसदी। शीर्ष के पदों में से 85 फीसदी सवर्ण पत्रकार हैं। देश की आबादी में इस वर्ग का हिस्सा महज 16 फीसदी है, जबकि 49 फीसदी तो केवल ब्राह्मण हैं, इनमें से महज 7 फीसदी पिछड़ी जातियों से सम्बन्ध रखते हैं। इन तीन सौ पन्द्रह (315) लोगों में से देश की आबादी का एक चौथाई हिस्सा, यानि दलित और आदिवासी समाज से सम्बन्ध रखने वाला एक भी पत्रकार नहीं है।”¹⁴

पाश्चात्य देशों की सामाजिक व्यवस्था को अब वहाँ के लोग (पाश्चात्य जीवन शैली रास नहीं आ रही है) पसंद नहीं कर रहे हैं। फलतः इन देशों के लोगों को भारतीय शान्ति, सद्भावना और पारिवारिक जीवन आकृष्ट कर रहा है, ऐसी मान्यता वाले लोगों की संख्या करोड़ों में है। पाश्चात्य कामुकता एवं खुलेपन से पाश्चात्य समाज जहाँ टूट रहा है, वहीं ऐसी स्थिति में भारतीय मीडिया पाश्चात्य शैली को ही सजा-संवार कर दर्शकों को परोस रहा है। अनेक प्रमुख समाचारों के मुख पृष्ठों में तथा जितने भी रंगीन पृष्ठ छपते हैं, उनमें आधुनिक जीवन-शैली के नाम पर पाश्चात्य जीवन-शैली को ही बरीयता प्रदान की जाती है। समाजशास्त्रियों के सर्वेक्षण बताते हैं कि मेट्रो में आज शहरी से अधिक ग्रामीण लोग बसते जा रहे हैं। शहर में जो व्यभिचार अथवा आपराधिक घटनाएँ घट रही हैं, उनमें से अधिकतम मामलों में दोषी गरीब अथवा गरीबी रेखा से ठीक ऊपर वाले समाज के ही लोग हैं, जिनको चकाचौंध की दुनियाँ जल्दी और बिना मेहनत के चाहिए। ऐसे लोगों में लालच और लालसा की भावना भरने का सशक्त माध्यम का कार्य आज भारतीय मीडिया कर रहा है।

कुछ विशेष सम्पादकों का यह मानना है कि वर्तमान में पत्र-पत्रिकायें पढ़ने की नहीं, अपितु मात्र देखने की चीज हो गयी हैं। कुछ लोग इसे ड्राइंग रूम की शोभा मानते हैं, तो कोई कुछ और.....। उक्त सोच रखने वाले शायद यह भूल जाते हैं कि मीडिया अपने उद्देश्य से दूर होता जा रहा है। आखिर यह वही माध्यम है, जिन्होंने कभी क्रान्ति हेतु उपयुक्त वातावरण का सृजन करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था। क्या वैश्वीकरण, उदारीकरण और बाजारीकरण के नाम पर औद्योगिक एवं तकनीकी विकास की आड़ में संचार माध्यमों द्वारा संस्कृति के सरलीकरण के रूप में इनमें विकृति उत्पन्न करना किसी प्रकार की साजिश नहीं है? हमें नहीं भूलना चाहिए कि विकास एवं संस्कृति एक साथ कार्यरत होते हैं, जिनसे हमारे दैनन्दिन समस्याओं पर प्रकाश पड़ता है और समस्त मानवोचित सम्बन्धों एवं समस्याओं के समाधान में सहायता मिलती है। औद्योगिक एवं तकनीकी विकास मानव के समग्र विकास के एक माध्यम तो हो सकते हैं, किन्तु उनमें सांस्कृतिक तत्वों का समावेश नहीं होगा, तो दुष्परिणाम अवश्यम्भावी है।

अधिकतर ऐसा होता है कि आर्थिक लालच में मीडिया कर्मी व पत्रकार जन प्रतिनिधियों व सरकारी एजेंसी या सरकारी कर्मचारियों से सीधे तौर पर रिश्वत मांगते हैं। अब यदि उक्त संस्थाओं या व्यक्ति विशेष द्वारा अपनी कर्तव्यनिष्ठा या जिम्मेदारी के निर्वहन में जरा ढिलाई बरती गई तो उसे केवल समझाइस देकर सुधार करने का मौका दिया जाना चाहिए न कि सीधे तौर पर रुपए की मांग या पेपर में छापने की धमकी या चैनल में दिखाने का आतंक। इससे मीडिया की छवि धूमिल होती है और समस्या और विकराल होती है। हाँ यदि कोई गंभीर मामला पता चलता है तो उसे लोकतांत्रिक तरीके से सार्वजनिक किए जाने की आवश्यकता है। यही चतुर्थ स्तंभ की उचित भूमिका होनी चाहिए।

कुछ अपवादों को छोड़कर बात की जाए तो यह भारतीय लोकतंत्र को सुदृढ़ बनाए रखने का महत्वपूर्ण कार्य भी करता है। सूचना क्रान्ति के वर्तमान समय में मीडिया के प्रत्येक अंग ने जनता पर अपना अलग और विशिष्ट प्रभाव छोड़ा है। समाचार-पत्र अब भी विचारपत्र की भूमिका निभा रहे हैं। रेडियो के एफ0एम0 चैनलों ने तो मनोरंजन के क्षेत्र में क्रान्ति ला दी है। अखबार या रेडियो के बाद अगर टेलीविजन की बात करें तो टेलीविजन को पारम्परिक संचार माध्यमों का डिस्प्ले-विण्डो कहा जाता है। वास्तव में आज हम जो भी वैश्विक संस्कृति देख रहे हैं, वह टेलीविजन के वैश्वीकरण की देन है। इण्टरनेट का आलम यह है कि भारत में इसका प्रयोग विश्व स्तर पर नौवें क्रम में हो रहा है। जाहिर है कि अखबार, रेडियो, टेलीविजन, इण्टरनेट और मोबाइल प्रौद्योगिकी जैसे प्रत्येक संचार माध्यमों ने दर्शकों, पाठकों और श्रोताओं को अपनी-अपनी तरह से सूचित और प्रभावित किया है। प्रांजल धर के शब्दों में, “कनवर्जेंट मीडिया मुद्रित माध्यमों, श्रव्य माध्यमों और दृश्य-श्रव्य माध्यमों का एक ऐसा संगम है जहाँ मीडिया की शक्ति बहुत अधिक बढ़ जाती है।”¹⁵

यदि मीडिया समाज का आइना है तो इस आइने की विकृति को दूर करने के बारे में समाज को भी उपाय करना होगा तथा विदेशों में किये गये कुछ प्रयोगों, जैसे राष्ट्रीय निदेशक, लोकपाल, निजता पर सुविचारित कानून और विदेशी मिल्कियत की घुसपैठ पर नियंत्रण आदि विकल्प मौजूद हैं। इसके साथ ही यह भी नहीं भूलना चाहिए कि भारत में सामाजिक सरोकारों की अवहेलना नहीं की जा सकती है। हम आर्थिक और प्रौद्योगिक प्रगति के सहारे अपने लिए कितना ही आलीशान महल क्यों न खड़ा कर लें किन्तु उसकी सामाजिक नींव यदि कमजोर रही तो उसे ढहने में समय नहीं लगेगा। निस्संदेह मीडिया के अपने कम्पलसन्स और सीमाएँ हैं। जनता की रुचियों जैसे—राजनीति, क्रिकेट या टेनिस की सनसनी खबरों अथवा मनोरंजन के मसालों की वह अनदेखी नहीं कर सकता है किन्तु सामाजिक सरोकारों के लिए भी उसे कुछ गुंजाइश अवश्य रखनी एवं करनी चाहिए। जनता की रुचियों को ध्यान में रखकर यदि वह अप्रत्याशित रूप से लाभ कमाता है तो जनता के अस्तित्व से जुड़े सवाल को ध्यान में रखने के लिए उसे कुछ त्याग भी करना चाहिए। मीडिया को यह नहीं भूलना चाहिए कि समाज के अस्तित्व के साथ ही उसका भी अस्तित्व जुड़ा है। अगर समाज का अस्तित्व नहीं रहा तो उसका भी अस्तित्व नहीं रहेगा। साथ ही समाज को भी मीडिया में सुधार के प्रति गम्भीरता से विचार करना चाहिए।

मीडियाकर्मी आज निस्सीम हो चला है। किसी भी हद को छूना नहीं, पार करना उनका धर्म हो गया है। कैमरा एवं ख़बर के दरम्यान इस तरह का संयोजन बनाया जा रहा है कि मात्र आन्तरिक ही नहीं, प्रत्युत् अन्तरंग बातों को भी उभार कर रख दिया जाए। आधुनिक मीडिया प्रतिस्पर्द्धा में फंसे उस खिलाड़ी की भाँति हो गया है, जो कामयाबी पाने के लिए हर तरह के हथकण्डे अपनाता है। आज मीडिया ख़बरें दिखाता या छापता नहीं, अपितु गढ़ता है। समाज में बुराइयों, अनैतिकता को दूर करने वाले उदाहरणों को संकेतित करने के बजाए इनको उभारने का मंचन किया जा रहा है। भारत में इससे पहले ऐसा नहीं होता था। भ्रष्टाचार व घोटालों की खबरें छापी जाती थीं, किन्तु व्यभिचार एवं नंगा नाच नहीं उभारा जाता था। बलात्कार अथवा हत्या की खबरें भी एक मर्यादा के साथ छापी जाती थीं। आज तो इन सबको आइटम बनाकर प्रस्तुत किया जा रहा है। यहाँ तक कि स्त्री-पुरुष संबंधों को परिभाषित करने वाले ऐसे तथ्य सामने लाए जा रहे हैं, जिनकी जानकारी इस पीढ़ी से पहले शायद ही किसी को रही हो। कतिपय अपवाद हैं, पर आमतौर पर ज्यादातर मीडिया की यही स्थिति है।

मीडिया ने समाज को सही दिशा और गति प्रदान की है और वर्तमान में भी कर रहा है। परन्तु भविष्य में इसमें कुछ सुधार की अपेक्षाएँ जरूर हैं क्योंकि मीडिया का कार्य सिर्फ सूचना एवं मनोरंजन का ही नहीं बल्कि लोगों को हर क्षेत्र में जागरूक करते हुए स्वच्छ और नैतिक जनमत तैयार करने का कार्य भी करना है। लोग क्या चाहते हैं, यह जरूरी तो है परन्तु उसका समाज पर क्या असर पड़ेगा यह देखना उससे भी ज्यादा जरूरी है। इसी खोए हुए लक्ष्य को प्राप्त करने की आज महती आवश्यकता है।



सन्दर्भ ग्रन्थ

1. दौड़ तुकाराम, मास मीडिया और समाज-योजना, अगस्त 2011, प्रकाशन ,विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ0 38
2. मीडिया विमर्श, सितम्बर 2011, सं0 संजय द्विवेदी, पृ0 79
3. वर्मा अरुण कुमार, 'मीडिया एवं सामाजिक परिवर्तन' लेख-योजना, अगस्त 2011, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ0 34
4. प्राइसवाटर हाउस कूपर रिपोर्ट, जनवरी 2010
5. रजिस्ट्रार आफ न्यूज पेपर रिपोर्ट, जनवरी 2010
6. मीडिया विमर्श, जुलाई-दिसम्बर 2008, सं0 श्रीकान्त सिंह, पृ0 7
7. मीडिया विमर्श, जुलाई-दिसम्बर 2008, सं0 श्रीकान्त सिंह, पृ0 28
8. मण्डल-2 के आइने में डाइवर्सिटी की संभावना-एच0एल0 दुसाध, दुसाध प्रकाशन, ग्राम नरौली खेम, पो0 खुखुन्दू, देवरिया पिन-274501, उ0प्र0, संस्करण-2006, पृष्ठ-223
9. मण्डल-2 के आइने में डाइवर्सिटी की संभावना-एच0एल0 दुसाध, दुसाध प्रकाशन, ग्राम नरौली खेम, पो0 खुखुन्दू, देवरिया, पिन-274501, उ0प्र0, संस्करण-2006, पृष्ठ-223
10. मण्डल-2 के आइने में डाइवर्सिटी की संभावना-एच0एल0 दुसाध-दुसाध प्रकाशन, ग्राम नरौली खेम, पो0 खुखुन्दू, देवरिया, पिन-274501, उ0प्र0, संस्करण-2006, पृष्ठ-220
11. मुकेश कुमार-'मीडिया तुम्हारी जाति क्या है?'-हंस' सम्पादक-राजेन्द्र यादव, अक्षर प्रकाशन प्रा0लि0 2/36 अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 जुलाई 2006, पृष्ठ-92
12. हंस- सम्पादक-राजेन्द्र यादव, अक्षर प्रकाशन प्रा0लि0 2/36 अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 जुलाई 2006, पृष्ठ-92
13. मनिका चोपड़ा,लेख-आरक्षित आग्रहों का कवरेज' पुस्तक-'मण्डल-2 के आइने में डाइवर्सिटी की संभावना, दुसाध प्रकाशन, ग्राम नरौली खेम, पो0-खुखुन्दू, देवरिया-274501 उ0प्र0, संस्करण 2006 पृष्ठ-225
14. योगेन्द्र यादव, लेख-'साधु की जात, मीडिया की बात', पुस्तक-'मण्डल-2 के आइने में डाइवर्सिटी की संभावना' दुसाध प्रकाशन, ग्राम नरौली खेम, पो0-खुखुन्दू, देवरिया-274501 उ0प्र0, संस्करण 2006 पृष्ठ-234
15. दैनिक जागरण, 20 नवम्बर 2011, सम्पादकीय, लेखक- सुधांशु रंजन, पृ0 8



यौन अपराध—बलात्कार (धारा 376)

डॉ. दुर्गा बाजपेयी
विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र
शासकीय पातालेश्वर महाविद्यालय
मस्तूरी, जिला—बिलासपुर (छ.ग.)

डॉ. शारदा दुबे
विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र
राजीव गांधी शा. कला एवं वाणिज्य
महा. लोरमी, जिला—मुंगेली (छ.ग.)

बलात्कार एक ऐसी सामाजिक बुराई है जो केवल एक स्त्री को ही नहीं बल्कि उसके समूचे अस्तित्व, उसकी अस्मिता, समग्रतः उसके समस्त जीवन को ही छिन्न— भिन्न कर देती है। कानून की नजर में बलात्कार एक जघन्य अपराध है। महिलायें आये दिन इसका शिकार हो रही हैं सामाजिक रूढ़िवादिता से बचने के लिए इस बात को दबा देती हैं। इसकी खास वजह पुलिस एवं कोर्ट—कचहरी है। कुछ लोग पुलिस थानों में सूचना भी नहीं देते हैं।

“किसी महिला की इच्छा के विरुद्ध यदि कोई व्यक्ति उसके साथ शारीरिक संबंध स्थापित करता है उसे बलात्कार कहते हैं।”

भारतीय दंड संहिता 1860 की धारा 375 के अंतर्गत बलात्कार कब माना जाता है —

1. 15 वर्ष से कम उम्र न होने पर पत्नी के साथ किया गया शारीरिक संबंध बलात्कार नहीं कहलाता ।
2. अगर कोई पुरुष महिला की सहमति के बिना उसके साथ शारीरिक संबंध स्थापित करता है सहमति किसी तरह से डरा—धमका कर ली गई हो जैसे उसको मारने, घायल करने या उसके करीबी लोगों को मारने या घायल करने की धमकी देकर ली गई है।
3. यदि सहमति झूठे प्रलोभन, झूठे वादे तथा धोखेबाजी (जैसे की शादी का वादा , जमीन जायदाद का वादा आदि) से ली जाती है तो ऐसी सहमति को सहमति नहीं माना जायेगा।
4. नकली पति बनकर उसकी सहमति ली गई हो।
5. उसकी सहमति तब ली गई हो जब वह दिमागी रूप से कमजोर या पागल हो।
6. नशीले पदार्थ के सेवन के कारण वह होश में न हो तब उसकी सहमति ली गई हो।
7. 16 वर्ष से कम उम्र की लड़की के साथ किया गया शारीरिक संबंध बलात्कार की श्रेणी में आता है चाहे लड़की की सहमति हो तब भी।

बलात्कार के लिए सजा —

सात साल का कारावास जो बढ़कर 10 साल का भी हो सकता है। कुछ मामलों में इसे उम्र कैद में भी बदला जा सकता है इसके अलावा जुर्माना भी हो सकता है।

जिस महिला के साथ बलात्कार किया गया हो वह उसकी पत्नी हो या 12 साल से कम उम्र की न हो तब उस व्यक्ति को 2 साल का कारावास या जुर्माना या दोनों हो सकते हैं।

अगर न्यायालय 7 साल से कम की सजा देता है तो उसे लिखित रूप में उसका उचित कारण देना होगा। विशेष परिस्थितियाँ —

निम्न व्यक्तियों द्वारा किये गए बलात्कार की सजा कम से कम 10 साल का सश्रम कारावास, जिसे उम्र कैद तक बढ़ाया जा सकता है। अगर कोई पुलिस अधिकारी निम्न अवस्थाओं में बलात्कार करता है —

1. उस थाने के अंदर जिसका वह क्षेत्रधिकारी हो।
2. उन थानों के अंदर जो उसके अधिकार में हो।
3. वह महिला जो उसकी हिरासत में या उसके अधीनस्थ अधिकारी की हिरासत में हो।
4. लोक सेवक जो अपने अधिकारों का दुरुपयोग करके उसकी हिरासत में हो या उसके अधीनस्थ की हिरासत में होने वाली महिला के साथ बलात्कार करता है।
5. अस्पताल के प्रबंधक और कर्मचारियों द्वारा अपने अधिकारों का दुरुपयोग करते हुए उनकी हिरासत में जो महिलायें हो उनके साथ बलात्कार करता हो।
6. गर्भवती महिला के साथ जो बलात्कार करता हो।
7. जो सामूहिक बलात्कार करता हो।

निम्नलिखित परिस्थितियों में शारीरिक संबंध स्थापित करना अपराध माना जाता है :-

जो व्यक्ति कानूनी तौर पर अलग रह रहा हो परन्तु पत्नी की सहमति के बिना शारीरिक संबंध स्थापित करता हो उसको 2 साल का कारावास और जुर्माना भी हो सकता है।

लोक सेवक द्वारा अपने अधिकारों का दुरुपयोग करके नारी निकेतनों, बाल संरक्षण गृहों एवं कारावास, अस्पताल का प्रबंधक और कर्मचारियों द्वारा उनके संरक्षण में जो महिलायें हों, उनके साथ शारीरिक संबंध स्थापित करता हो ऐसे सभी अपराधों में 5 साल तक की सजा और जुर्माना दोनों भी हो सकते हैं।

बलात्कार की शिकार महिला द्वारा रखी जाने वाली सावधानी -

प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करवायें। बलात्कार होने के 24 घंटे के भीतर मेडिकल परीक्षण करवा लेना चाहिये। घटना के समय पहने हुए कपड़े धोये नहीं। डॉक्टरी जाँच के पहले नहायें नहीं, इससे सबूत मिट सकता है। यदि बलात्कारी को तुरंत हिरासत में ले लिया गया है तो उसकी भी मेडिकल जांच की मांग करनी चाहिये, ताकि सबूत मिल सके। बलात्कार स्थल से प्राप्त कोई भी सामान सिगरेट का टुकड़ा, चश्मा, रुमाल, घड़ी आदि पर अपना हाथ न लगायें उसे कपड़े से उठाकर पुलिस को दे दें। घटनास्थल की स्थिति ज्यों की त्यों रहने दें जब तक कि पुलिस की जांच न हो जायें क्योंकि वहां से वीर्य, खून के धब्बे बलात्कारी के बाल आदि पाये जाने की संभावना रहती है। यदि संभव हो तो बलात्कारी का हुलिया लिख लें। वह देखने में कैसा था, आवाज कैसी थी, कैसे कपड़े पहने था, उसकी कोई खास आदत या वाक्य आदि।

प्रथम सूचना रिपोर्ट लिखाते समय ध्यान देने योग्य बातें -

1. घटना की तारीख।
2. घटना का समय
3. घटना का स्थान अवश्य लिखायें।
4. रिपोर्ट लिखाने के बाद उसकी एक कॉपी अवश्य लें जो थाने द्वारा मुफ्त में दी जाती है।
5. पुलिस का कर्तव्य है कि वह पीड़ित महिला की डाक्टरी जाँच पंजीकृत डॉक्टर से या नजदीकी प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में करवाकर डॉक्टरी जाँच की कॉपी अवश्य लें।
6. बलात्कार के समय जो कपड़े पीड़ित महिला ने पहने हैं। डॉक्टरी जाँच के बाद पुलिस आपके सामने उन कपड़ों को सील बंद करेगी, जिसकी रसीद अवश्य ले लें।

वास्तव में जिस स्त्री का बलात्कार हुआ है वह इतनी घबराई हुई होती है कि वह सोच भी नहीं पाती कि

क्या करना है। फिर भी अपने को संभालकर पुलिस को तुरंत सूचना दें एक-दो दिन का भी समय लगाने पर घटना के निशान मिट जायेंगे और अपराध सिद्ध करना कठिन होगा। इसलिए दोस्त परिवार वालों को घटना की खबर दें।

डॉक्टर स्त्री की जाँच करेंगे। उसे लगने वाले खरोच, उसकी मानसिक स्थिति की जाँच, 16 वर्ष से कम उम्र की पीड़िता की हड्डी की विशेष परीक्षा करके उसके उम्र का अंदाजा भी लगा सकते हैं। योनि व वीर्य की जाँच कर स्त्री द्वारा लगाये गये आरोपों की सत्यता की जाँच करेंगे। यदि आरोपी तुरंत पकड़ा जाता है तो उसके कपड़ों और वीर्य की जाँच बाल, खून और चमड़ी की जाँच से पता चल सकता है कि यह वही आदमी है या नहीं। झगड़ों के निशान खरोच आदि भी हो सकते हैं। इसलिए यदि स्त्री तुरंत रिपोर्ट करती है तो अपराधी इन डॉक्टरों सबूतों के साथ पकड़ लिया जा सकता है।

यदि वह नहा लेता है या अपने कपड़े धो लेता है या बदल लेता है तो उसके शरीर पर लगे अपराध के निशान सबूतों को वह मिटा देगा इसलिए कार्यवाही करने में देर नहीं करनी चाहिये।

पुलिस की भूमिका –

पुलिस स्टेशन में पुलिस अधिकारी या दरोगा F.I.R. रिकार्ड बुक में लिखेगा। स्त्री को पढ़कर बतायेगा कि उसने क्या लिखा है। स्त्री को इस पर हस्ताक्षर या अंगूठा लगाने कहेगा, स्त्री को F.I.R. की एक प्रति देगा। अगर पुलिस स्टेशन का अधिकारी या दरोगा स्त्री की रिपोर्ट लिखने से इंकार करता है तो स्त्री को सारी घटना और दरोगा की मनाही के बारे में पुलिस अधीक्षक को पत्र लिखकर भेजना चाहिये। पत्र मिलने पर या तो वह स्वयं सारी जाँच करेंगे या किसी दूसरे अधिकारी या पुलिस कर्मी को जाँच के लिए कहेंगे। पुलिस अगर यह समझे कि रिपोर्ट लिखने के लिए पर्याप्त कारण नहीं है और मना कर दें तो स्त्री को चाहिये कि वह स्थानीय न्यायाधीश (मजिस्ट्रेट) को जाकर अपनी रिपोर्ट दे। अगर न्यायाधीश जरूरी समझे तो स्वयं मामले की छानबीन करेंगे या पुलिस को उचित कार्यवाही करने के लिए कहेंगे। मजिस्ट्रेट स्त्री के शरीर को न छू सकते हैं और न ही उनकी जाँच कर सकते हैं वह स्त्री और घटना गवाहों से सवाल पूछकर पूरी घटना की जानकारी लिख लेंगे, तत्पश्चात् वह स्वयं हस्ताक्षर करेंगे और स्त्री और बाकी गवाहों से भी हस्ताक्षर करावेंगे। यदि अपराध करने वाला पुरुष कॉफी ताकतवर और प्रभावशाली हो जिसके कारण पुलिस और स्थानीय मजिस्ट्रेट सभी स्त्री की रिपोर्ट लिखने से इंकार कर दे तो वह अपने राज्य के मुख्यमंत्री पुलिस महानिरीक्षक स्थानीय विधायक, कलेक्टर को अपनी बात बता सकती है राज्य महिला आयोग राष्ट्रीय महिला आयोग को पत्र लिख सकती है या समाचार पत्र को भी पत्र लिख सकती है। टी. वी., मीडिया में प्रसारित होने के बाद पुलिस जनमत के दबाव में F.I.R. दर्ज करने के लिए बाध्य हो जाती है। पुलिस स्त्री को पुलिस स्टेशन या घटना स्थल जरूरत पड़ने पर बुला सकती है परन्तु स्त्री आने से मना कर दे तो पुलिस को उसके घर जाना पड़ेगा, यदि वह स्त्री को थाना आने के लिए बाध्य करता है पुलिस के विरुद्ध कार्यवाही की जा सकती है, उसे दंडित किया जा सकता है।

कोर्ट में स्त्री की ओर से सरकारी वकील केस लड़ेगा, स्त्री चाहे तो अपनी ओर से सरकारी वकील की मदद के लिए एक अलग से वकील रख सकती है। बलात्कार के मामले की सुनवाई एक बंद कमरे में होती है। इसका मतलब है कि किसी व्यक्ति को वहाँ उपस्थित रहने की अनुमति नहीं होती।

बलात्कार के कारण पीड़िता को मानसिक शारीरिक और सामाजिक सभी प्रकार की चोट सहनी पड़ती है। हद तो तब हो जाती है जब न्यायालय में उसे शर्मसार होना पड़ता है। बलात्कार जितना जघन्य कुकृत्य होता है उतनी ही लम्बी इससे संबंधित न्याय प्रक्रिया होती थी निर्भया कांड (दिल्ली) के पश्चात् इसे फास्ट ट्रैक कोर्ट से कराने की व्यवस्था की गई है ताकि न्यायालय की लंबी और जटिल प्रक्रिया से बचाकर पीड़िता को सही अर्थों में न्याय दिलाया जा सके।

एक महिला जिसके साथ बलात्कार जैसी जघन्य हिंसा हो जाये, वह जिन्दा लाश के सदृश्य हो जाती है। उसकी गलती न होने पर भी समाज की नजरों में वही अपराधी होती है। शील कौमार्य या यौन शुचिता जैसी सामाजिक मान्यतायें बलात्कार की शिकार महिला को मनोदैहिक रूप से तोड़ कर रख देती है।

स्त्री का बलात्कार जैसे सामाजिक अपराध में कोई भी पुरुष अपनी घृणित, कुत्सित, गन्दी मानसिकता से अपने अहंकार में डूबकर किसी भी स्त्री का बलात्कार करता है, स्त्री के प्रति पुरुषों की मानसिकता इतनी खराब हो चुकी है कि वह यह नहीं देखता कि यह स्त्री किस उम्र की है। यह एक बालिका है या प्रौढ़? वह सिर्फ स्त्री देह को पाना चाहता है उसे स्त्री के रंग-रूप, जाति, धर्म, आयु, शारीरिक सौष्ठव किसी बात की परवाह नहीं होती वह कामांध होता है। खेत में, सड़क में, घर में सभी जगह स्त्री की अस्मत् लूटी जा रही है।

वर्तमान में बलात्कार पिता, सौतेले पिता, भाई, जेठ, देवर, ससुर, चाचा, पड़ोसी, मकान मालिक, नियोक्ता, अन्य रिश्तेदार आदि के द्वारा बड़े परिमाण पर किये जा रहे हैं अपरिचित के द्वारा या सामूहिक बलात्कार की घटना परिस्थितिजन्य है। 7 माह की बच्ची से लेकर 70 वर्षीया वृद्धा तक की इस घटना की शिकार होने की समान संभावना है। स्त्रियाँ घर में, पार्क में, बस में, रेल में, कार में, सुनसान जगह पर कहीं भी सुरक्षित नहीं है।

दिल्ली में हुए निर्भया दुष्कर्म मामले में शामिल किशोर ने नृशंसता की हद पार करते हुए उसके साथ न केवल दुष्कर्म किया बल्कि छड़ से उसकी आंते निकालने जैसी क्रूरता भी दिखायी थी। तब यह सवाल उठा था कि इस किशोर को आम कानून के तहत मुकदमा चलाकर सख्त सजा सुनायी जाए या नाबालिग होने के कारण उसे बाल सुधार गृह भेज दिया जाए। हालांकि बहस के दौरान सभी के जेहन में यही बात थी कि निर्भया कांड में नाबालिग अपराधी का व्यवहार भी वयस्क अपराधियों जितना ही क्रूर और अमानवीय था और उसे भी सजा मिलनी चाहिये। सवाल था कि क्या उस पर बाल कानून के हिसाब से मुकदमा चलाया जाय और सिर्फ उम्र कम होने के एक मात्र आधार पर उसके साथ नरमी बरती जाए। हाल ही में लोकसभा में पारित नया बाल न्याय कानून जिसके तहत गंभीर अपराध में 16 से 18 वर्ष का नाबालिग शामिल होने पर बाल न्याय बोर्ड तय करेगा कि उस पर वयस्क अपराधियों पर लागू होने वाली धारा के तहत मुकदमा चलाया जाए या नहीं। यह नया कानून नाबालिग अपराधियों के खिलाफ सख्ती ला सकेगा या कानूनी पेचीदगियों में दम तोड़ देगा। यह कानून सामाजिक बदलाव के कारण संभव हो सका है। जनता की ओर से पुरजोर आवाज उठी थी, युवा वर्ग सड़क पर था, आक्रोशित था और इसे सुना गया और यह बदलाव आया।

स्त्रियाँ बस में, रेल में, पार्क में, घर में, कार्यालय में, सड़क पर कहीं भी सुरक्षित नहीं हैं, हर जगह उनके साथ अपराध की संभावना है। इस जघन्य कृत्य में प्रभावशाली लोगों को बचाने के लिए पुलिस और न्यायालय ने भी बीच का एक रास्ता निकाल लिया था वह है समझौता। जिस बच्ची की किशोरी या स्त्री की इज्जत पर हमला कर तार-तार किया हो जो जिन्दा लाश सदृश्य हो गयी हो जिसे घर-बाहर सभी जगह लोगों की भद्दी निगाहों का सामना करना पड़ रहा हो जिसके जीवित रहने का एक मात्र लक्ष्य अपराधी को सजा दिलाना हो उसे बलपूर्वक “समझौता” का रास्ता दिखाया जाता है।

परंतु सुप्रीम कोर्ट ने दुष्कर्म के मामलों में साफ कहा है कि इसमें किसी भी तरह से अपराधी को दी गई सजा से समझौता नहीं हो सकता।

मध्यप्रदेश बनाम मदनलाल के मामले में निर्णय देते हुए न्यायाधीश ने म.प्र. उच्च न्यायालय के निर्णय को दरकिनार कर दिया। मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय ने गुना सत्र न्यायालय द्वारा धारा 376 (दुष्कर्म) के अंतर्गत दी गई सजा को धारा 354 (छेड़छाड़) के तहत बदल दिया था। इस निर्णय के विरुद्ध पुलिस ने सुप्रीम कोर्ट में अपील की। मामला इस प्रकार है आरोपी के विरुद्ध सात साल की बच्ची से दुष्कर्म का मामला चल रहा था, 2008 में दुष्कर्म किया गया। आरोपी को कठोर कारावास की सजा दी। उच्च न्यायालय ने धारा 354 के तहत आरोपी को

बदल दिया और पूर्व में सजा भुगत लेने के एवज ने दोषी को रिहा कर दिया। सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश ने निचली अदालत के निर्णय का समर्थन करते हुए उच्च न्यायालय के फैसले को दरकिनार कर दिया। न्यायाधीश ने इस निर्णय में टिप्पणी की कई बार अदालतें अपीलीय स्तर पर हस्तक्षेप कर इस तरह के पूर्वाग्रहों से ग्रस्त होकर निर्णय लिख देते हैं कि विशेषकर आपराधिक न्याय व्यवस्था की आत्मा ही मर जाती है। उच्च न्यायालय द्वारा सजा रद्द करने का विश्लेषण करते हुए न्यायाधीश ने लिखा, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश ने अपने निर्णय में मात्र इतना लिखकर कि अभियोजन पक्ष ने इतने गवाह प्रस्तुत किए व दस्तावेज दाखिल किये। ऐसा करना अपील न्यायालय के लिए कतई उचित नहीं है और मामले को उच्च न्यायालय वापस भेजा। यूं तो न्यायाधीश इतने पर ही सुनवाई समाप्त कर सकते थे, परंतु उन्होंने निर्णय में आगे लिखा कि ऐसा लगता है, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश आरोपी और पीड़िता के माता-पिता के बीच हुए समझौते से अत्यधिक प्रभावित हो गए। समझौते की दरखास्त निचली अदालत के सामने भी लगाई गई थी परंतु निचली अदालत ने दरखास्त खरिज कर दी थी।

दुष्कर्म एक ऐसा अपराध है जिसमें समझौता हो ही नहीं सकता और यह अपराध समाज के विरुद्ध है तथा यह ऐसा विषय नहीं है जिसे पार्टियों के समझौते अथवा निपटाने के लिए छोड़ दिया जाय। न्याय के हित में तथा पीड़ित को अनावश्यक दबाव व उत्पीड़न से बचाने के लिए आवश्यक है कि पार्टियों के बीच समझौते पर कतई ध्यान नहीं दिया जाय। समझौते के कारण कम सजा नहीं दी जा सकती। यह महिला शरीर के खिलाफ अपराध है जिसे वे मंदिर मानते हैं। यह अपराध जिंदगी का दम घोटती है और समाज में प्रतिष्ठा खराब कर देती है। सबसे अधिक महत्व महिला सम्मान का है। कई बार अपराधी द्वारा पीड़ित से विवाह कर सात्वना देने का प्रयास होता है जबकि वास्तविकता यह है कि पीड़ित पर ऐसा कर अप्रत्यक्ष दबाव बनाया जाता है। माया त्यागी (नागपत्त), भंवरीबाई (राजस्थान), झांसो बाई (लखीरपुर) पुलिस द्वारा बलात्कार की घटनाओं, नेताओं के द्वारा बलात्कार की घटनायें विभिन्न सेलिब्रिटी द्वारा घरेलु नौकरानियों का यौन शोषण, महिला मरीजों के साथ दिल्ली का सफदरगंज अस्पताल बाड़ा हिन्दु राव, अस्पताल, बिलासपुर का अपोलो अस्पताल, कानपुर के हैलट अस्पताल में अकाल मृत्यु की शिकार महिलाओं के शव के साथ बलात्कार, मुंबई में नर्स अरुणा शामदार की घटना जिसमें राष्ट्रपति से अस्पताल के कर्मचारियों ने इच्छा मृत्यु की मांग की थी, जो पूरी नहीं हुई और इस घटना में अस्पताल के सफाई कर्मी द्वारा लोहे के सांकल से नर्स का गला कसकर उसके साथ बलात्कार किया गया था। जिसमें 42 वर्ष कोमा में रहने के बाद उसकी मौत हुई। दिल्ली का निर्भया कांड, बस में, ट्रेन में, घर में पार्क में, सार्वजनिक स्थान में कार्यस्थल पर और सबसे अधिक अभी स्कूलों में बच्चियाँ असुरक्षित हैं। स्त्रियों को केवल “देह” मानने की यह जो प्रवृत्ति वर्तमान में बढ़ी है, उसके कारण व्याभिचार की घटनाओं की बाढ़ आ गई है। रिश्ते-नाते तार-तार हो गए हैं। राष्ट्रीय अपराध अन्वेषण ब्यूरो के अनुसार भारत में प्रतिदिन 93 महिलाओं के साथ बलात्कार की घटना घटित होती है (2014), दिल्ली भारत में सबसे अधिक बलात्कार वाला शहर है (1441), मुंबई (392), जयपुर (192), मध्य प्रदेश बलात्कार के मामलों में सबसे अधिक संख्या वाला राज्य है (4335), राजस्थान (3285), महाराष्ट्र (3063), यह तो थानों में दर्ज मामलों के रिकार्ड है। भारत जैसे मान्यताओं और मर्यादा वाले देश में सामाजिक प्रताड़ना, निश्कासन व उपेक्षा के भय से बलात्कार के प्रकरणों को दबाया जाता है।

महिला पार्षदों के साथ पुरुष पार्षदों द्वारा सामूहिक दृष्टकृत्य (नारनौल) बेटी की आबरू बचाने के बदले माँ को वहशियों के सुपुर्द करना (गाजियाबाद) हरियाणा के सिरसा जिले के मंडी दबवाली में सबजज के अर्दली नथे सिंह की पत्नी शीला के साथ पुलिसकर्मियों द्वारा बलात्कार और उसके बाद जीप से गिराकर उसकी हत्या कर सबूत मिटाने की कोशिश (17 जुलाई 1980) अधिकारी जनप्रतिनिधि, मंत्री, पूंजीपति आदि मुखरता के साथ इस प्रकार के यौनाचार में लिप्त होने के बाद भी समाज में शान से घूमते हैं। पिता और भाई तथा निकट के संबंधियों द्वारा दुष्कर्म, धर्म की आड़ में तथा कथित आश्रमों में यौनाचार, अंजना मिश्रा बलात्कार प्रकरण (उड़ीसा)।

संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट के अनुसार भारतीय महिलाओं के खिलाफ होने वाले यौन शोषण में 40% की वृद्धि हुई है।

अक्सर लोग इस प्रकार की घटना पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहते हैं कि महिलाएँ अर्धनग्न उत्तेजक पोशाकों और अपने हावभाव से स्वयं बलात्कारी को निमंत्रण देती हैं, जबकि बच्चियाँ और विकलांग (अंधी, गूंगी), विक्षिप्त महिलायें, नगरों के फुटपाथ पर सोने वाली गंदी भिखारिणें भी इस दृष्कृत्य की शिकार हो रही हैं, इसलिए यह धारणा भ्रामक है।

अधिकतर इन घटनाओं के पीछे पारिवारिक, व्यक्तिगत रंजिश, वर्ग विद्वेष, असफल प्रेम या प्रेम में धोखे के कारण बदले की भावना, महिलाओं का असुरक्षित हाल में रहना और अकेले आने जाने की स्थितियाँ हैं। प्रायः ग्रामीण क्षेत्रों में शौचालयों के अभाव में सुबह घुप अंधेरे या सांझ ढले घरों से निकलकर खाली पड़ी भूमि या खेत में बैठने वाली महिला बलात्कार की शिकार होती हैं। रायपुर (छत्तीसगढ़) में अटारी गांव में पति के साथ जाती महिला के साथ पति के सामने बलात्कार, सूने स्थान पर प्रेमी – प्रेमिका के जाने पर प्रेमी के सामने प्रेमिका से बलात्कार, भाई-बहन के साथ जाने पर भाई के सामने बहन से बलात्कार ये ऐसी घटनायें हैं, जिन्होंने पुरुषों के साथ जाने पर महिलाओं के सुरक्षित होने पर सवालिया निशान लगा दिया है।

मनुस्मृति में महिलाओं के लिए जो व्यवस्था की गई थी कि महिलाओं को सदैव किसी न किसी के संरक्षण में रहना है। वह अकेले असुरक्षित है वर्तमान पाश्चात्य चकाचौंध से प्रभावित इस समाज में वह असत्य साबित हो रहा है।

पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने ।

पुत्राश्च स्थाविरे भावेन स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति ।।

कभी सुनसान जगहों पर ही होने वाला बलात्कार आज महानगरों में सड़कों पर चलती गाड़ियों तक में होने लगा है।

समाज, कानून एवं जनजागरुकता सबके मिले जुले प्रयासों से एक ऐसे समाज की आवश्यकता है जिससे गांधी जी का यह स्वप्न पूरा हो सके कि “स्वतंत्र भारत को ऐसा होना चाहिये कि कोई महिला कश्मीर से कन्या कुमारी तक अकेली घूम ले और उसके साथ कोई अशोभनीय घटना न हो।”

संदर्भ ग्रंथ

1. शर्मा प्रज्ञा 2001 (भारतीय समाज में नारी) नारी अपराध : एक विवेचन, जयपुर, पोइन्टर पब्लिशर्स
2. कुमार राज, 2007 नारी शोषण, समस्याएँ एवं समाधान नई दिल्ली, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस।
3. डॉ. सियाराम 2013 : स्त्री विमर्श के विविध संदर्भ, ओमेगा प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. शर्मा रमा एवं एम.के.मिश्रा, नारी शोषण आइने और आयाम, नई दिल्ली अर्जुन, पब्लिशिंग हाऊस।
5. नियाय मितान (न्याय मित्र) छत्तीसगढ़ राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण बिलासपुर द्वारा प्रकाशित।



पर्यावरण क्षरण और मानवाधिकार

डॉ. प्रतिभा यादव

प्राध्यापक

शास. महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर
स्वशासी महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

डॉ. अनुपमा यादव

सहा. प्राध्यापक

शास. स्नातकोत्तर महा.,
भेल, भोपाल (म.प्र.)

मानवीय गरिमा मानवाधिकारों की अवधारणा का केन्द्र बिन्दु है, जो हमें मानव के व्यक्तित्व के ऐसे आयामों के प्रति सचेत करती है, जो अभावों के कारण व्यक्तित्व विकास पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। "मानवाधिकारों के सम्बन्ध में वर्तमान चिंतन मानव क्षमताओं की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए समुचित संसाधनों को उपलब्ध कराते हुए जीवन के स्तर को अति उन्नत बनाने के लिए विश्व स्तर पर किये जा रहे कार्यों की सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक समीक्षा से सम्बन्धित है।" पर्यावरण एक ऐसा शब्द है, जो जीवन के सभी क्षेत्रों से गहरा सम्बन्ध रखता है। मनुष्य का जीवन पर्यावरण से ही संचालित होता है। पर्यावरण से ही भरण-पोषण कर वह अपना विकास करता है और अपने अधिकारों को संरक्षित करता है, किन्तु आज पर्यावरण विनाश सम्पूर्ण विश्व के लिए चिन्ता का विषय बन गया है। चिन्तन इस बात को लेकर है कि मनुष्य और पर्यावरण की दूरियां क्यों बढ़ती जा रही हैं? मनुष्य अपने उपभोग और स्वार्थ के लिए प्राकृतिक धरोहरों के साथ छेड़खानी क्यों कर रहा है? वैश्वीकरण और उदारीकरण के इस युग में मनुष्य प्रकृति और पर्यावरण के प्रति असंवेदनशील क्यों हो गया है? मनुष्य और प्रकृति के बीच बढ़ती दूरियां विश्व बिरादरी के लिए गहरे संकट का अंदेशा है।

इतिहास साक्षी रहा है कि भारत में हमेशा पर्यावरण की कल्पना भारतीय संस्कृत में सदैव प्रकृति से की गई है।¹ हमारी संस्कृति में प्रातःकाल से लेकर सायं तक विभिन्न रूपों में पर्यावरण की स्तुति की गई है। वेद, पुराण, उपनिषद्, ऋग्वेद आदि में पर्यावरण को अत्यधिक महत्व दिया गया है। इसमें ऋषियों ने यह उद्गार दिये हैं कि "माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्याः"² भारत में प्राचीन काल से ही प्रत्येक व्यक्ति का धर्म प्रकृति का संरक्षण और उसकी पूजा करना था। ऋषियों ने वन विनाश और पेड़ों के काटने के विरुद्ध चेतावनी दी थी। उनका विचार था, इससे वर्षा कम होगी। वैदिक काल में भी कुछ भविष्यदर्शी इस सम्बन्ध में पहले से ही सजग थे। उन्हें चिन्ता थी कि लोग अपने क्रिया-कलापों द्वारा प्रकृति को क्षति न पहुंचायें तथा पृथ्वी जो कि हर प्रकार के पदार्थों से भरपूर उसे क्षतिग्रस्त करके उसके उपहारों से वंचित न हो जाये।³ महान् चिन्तक चाणक्य ने तो पर्यावरण की सुरक्षा एवं पारिस्थितिक संतुलन को बनाये रखने की दृष्टि से इसके सम्बन्ध में वृहत् नियम भी बनाये। इसमें उन्होंने "वनस्पतियों तथा भूमि के संरक्षण संबंधी आचार संहिताओं के साथ-साथ पशुओं के प्रति क्रूर व्यवहार को भी वर्जित किया।"⁴

इस प्रकार भारत में प्राचीन काल से ही अनेक रीतियां तथा प्रथाएं प्रचलित रही हैं, जो कि पर्यावरण के संरक्षण तथा प्रकृति व मानव जाति के मध्य पारिस्थितिकीय संतुलन बनाये रखने में सहायक रही हैं। साथ ही साथ उन्होंने मानव की आंतरिक प्रवृत्ति को प्रेरित भी किया कि वे प्राकृतिक पदार्थों को प्राकृतिक दशाओं में रहने दें। इसी कारण "व्यक्ति यह जानता था कि उसका कर्तव्य पर्यावरण का संरक्षण करना है और तदनुसार वह कार्य करता था।"⁵ किन्तु मानव की विकास यात्रा को यदि देखें तो बदलते परिवेश में मानव और प्रकृति के सम्बन्धों में बदलाव देखने को मिलता रहा है। प्रकृति के बीच चिंपांजी से आदिमानव और आदिमानव से आधुनिक मानव की विकास यात्रा को देखें तो ज्ञात होगा कि आदिमानव ने प्रकृति के बीच रहकर प्राकृतिक सोपानों को अपनी समग्र आवश्यकताओं की पूर्ति का एकमात्र साधन माना था, वहीं आदिमानव से आधुनिक मानव के रूप में विकास के रास्ते में मनुष्य का सम्पर्क सम्पत्ति, परिवार, विज्ञान से हुआ, तभी से इसी मनुष्य ने अपनी अति आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति के स्रोतों का दोहन नहीं, शोषण करना प्रारंभ किया और यहीं से शुरू हुई मनुष्य की प्रकृत के विरुद्ध यात्रा।

योगेश कुमार शर्मा ने अपनी पुस्तक 'पर्यावरण मानव संधान और विकास' में लिखा है कि "जबसे मनुष्य ने पृथ्वी पर रहना प्रारंभ किया है, तब से लेकर आज तक, भिन्न-भिन्न स्थानों पर मनुष्य और पर्यावरण के सम्बन्ध बदलते रहे हैं।"⁶ आदिमानव ने पर्यावरण को ही प्रभावी माना था। उस समय उसके पास पर्यावरण की बाधाओं को दूर करने के लिए उपकरण भी नहीं थे। उसे पर्यावरण के अनुकूल बनना पड़ा। जब मनुष्य के पास पत्थरों और धातुओं से उपकरण भी नहीं थे। उसे पर्यावरण पर उसके प्रभाव का अनुभव किया जाने लगा। इनसे वह पेड़ों को कटाने में समर्थ हो गया। इतना होने पर भी पर्यावरण पर उसका प्रभाव नगण्य ही था।

औद्योगिक क्रांति ने तो विश्व का परिदृश्य ही बदल दिया। इससे मिली यांत्रिक शक्ति, वाष्प इंजन तथा मशीनों के आविष्कार, धातुओं के अधिकाधिक प्रयोग आदि से मनुष्य को पर्यावरण में परिवर्तन करने के अवसर मिलने लगे और यहीं से वह अपनी आवश्यकताओं के अनुसार पर्यावरण को बदलने का एक सक्रिय कारक बन गया और बस शुरू हो गई पर्यावरण विनाश की लीला। जैसे-जैसे मनुष्य विकास, आनंद और उपभोग के पथ पर बढ़ता गया, नैतिकता और विधान निर्माण के सिद्धांत बदलते गये। तकनीकी ज्ञान ने दुनिया की सीमाओं को सीमित कर दिया। मनुष्य को मनुष्य से दूर कर दिया। पर्यावरण को दूषित कर दिया। मनुष्य ने भी अपने को उच्चता के आसन पर बिठा अपनी अलंकारिक मूर्खता को ओढ़े रखा। इन सब पृष्ठभूमियों में यदि सर्वाधिक उत्प्रेरित एवं उद्बलित किसी को किया है, तो वह है मानव अधिकार।

वर्तमान समय में विश्व में लोकप्रिय होती "भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया, जहां एक ओर पूर्ण रूप से बाजार उदारीकरण, निजी अर्थव्यवस्था के गुणगान पर आधारित है, वहीं दूसरी ओर इसका सबसे नकारात्मक प्रभाव मानवाधिकारों पर पड़ा है।"⁷ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि देखें तो पर्यावरण और मानव का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है, किन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया के चलते प्राकृतिक संसाधनों की सुविधा और सामुदायिक अधिकार दोनों ही प्रतिस्पर्धा के शिकार हो गये हैं। फलतः इनसे सम्बद्ध मानवाधिकारों का उल्लंघन हो रहा है। अनेक अध्ययनों, सर्वेक्षणों से यह बात सामने आ रही है कि विकासशील देशों पर कर्ज का बोझ है और इस कर्ज को चुकाने के लिए ये देश प्राकृतिक संसाधनों को विकसित राष्ट्रों तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को सस्ते दामों पर वनों की कटाई तथा खनन की अनुमति दे देते हैं। प्राकृतिक संसाधनों के निजीकरण की नीति से पर्यावरण क्षतिग्रस्त हो रहा है। वन समाप्त हो रहे हैं। तेल और खनिजों की खोज के कार्यों से प्राकृतिक संतुलन बिगड़ रहा है। जल प्रदूषित और जमीन नष्ट हो रही है। भूमण्डलीकरण के इस दौर में विश्व समाज का यदि आंकलन किया जाये, तो करीब एक अरब दस करोड़ लोगों के पास पीने के लिए पर्याप्त और स्वच्छ पानी नहीं है।⁸ सरकार और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा खनिजों के अंधाधुन्ध दोहन से भी पर्यावरण क्षतिग्रस्त हो रहा है। एक ओर "ग्लोबल वॉर्मिंग" के लिए उत्तरदायी विकसित राष्ट्र विश्व के खनिज ईंधन का आधे से अधिक हिस्सा उपयोग कर लेते हैं, दूसरी ओर अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए गरीब लोग अपने दुर्लभ संसाधनों को जरूरत से ज्यादा उपयोग करने पर मजबूर हो जाते हैं। आज यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं कि अन्तर्राष्ट्रीय समाज, समुदायों की लापरवाही एवं निहित स्वार्थों के कारण विश्व में जो गरीबी, भुखमरी पनपी है, उसने मानवाधिकारों की समस्त घोषणाओं को अर्थहीन बना दिया है। विश्व स्तर पर जलवायु के बदलाव से उत्पादन समस्याओं ने भी मानवाधिकारों को प्रभावित किया है। "इसके लिए भी मनुष्य की उपभोक्तावादी संस्कृति जिम्मेदार है।"⁹ जलवायु परिवर्तन से सूखे और तूफान का असर संसार के कमजोर वर्ग पर ही पड़ रहा है। उसके जीवन यापन के अधिकार प्रभावित हो रहे हैं। प्राकृतिक संसाधनों की तुलना में मानव की निरंतर बढ़ती संख्या से भविष्य एक गंभीर समस्या की तरफ अग्रसर होता जा रहा है। जनसंख्या विस्फोट ने पानी की शुद्धता एवं नदियों को ज्यादा दूषित कर दिया है। 'संतोषम् परम् सुखम्' भारतीय समाज का एक ऐसा दर्शन था, जिसमें शहरीकरण को बढ़ावा देने के बजाय व्यक्ति अपने प्रयास को लेकर संतुष्ट था, पर जैसे-जैसे मानव को यह लगा कि विश्व में वह क्या नहीं कर सकता और वह अपने भाग्य का निर्माता तो स्वयं है। इस विमर्श ने संतोष के दर्शन में परिवर्तन करके मनुष्य को आर्थिक दर्शन का ऐसा सहज सा दिखने वाला पथ-प्रशस्त किया कि सभी मनुष्य संतोष से ज्यादा आर्थिकी उपलब्धता को अपना ध्येय समझने लगे। इसी

कारण धीरे-धीरे शहरीकरण का विस्तार होने लगा। पर इसका सबसे बड़ा दुष्प्रभाव पानी पर पड़ा। लगातार बढ़ती जनसंख्या उसी के अनुरूप उसकी आवश्यकताओं एवं वर्षा की अनिश्चितता ने नदियों के जल को घर से निकलने वाले प्रदूषित जल की धारा ज्यादा बना दिया, जिससे एक संक्रमण की स्थिति पैदा हो गयी। इसके लिए बड़ी-बड़ी जल विद्युत परियोजनाएं एवं औद्योगीकरण भी जिम्मेदार है। भारत में वनाच्छादित क्षेत्र 20 प्रतिशत है, जबकि आदर्श स्थिति 33 प्रतिशत मानी गई है। अवैध लकड़ी कटाई, खदानों के पट्टे, चरनोई की भूमिका, अतिक्रमण इसके लिए उत्तरदायी है।

पंजाब, गुजरात, राजस्थान, हरियाणा में घरेलू एवं सिंचाई परियोजनाओं द्वारा भूमिगत जल का इतना अधिक दोहन किया गया है कि 2015 तक वर्तमान क्षमता का 85 प्रतिशत से अधिक जल निकल चुका होगा। भारत में वायु प्रदूषण से बच्चों, ग्रामीणों, निर्धनों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है। कृषि कार्य में प्रयुक्त कीटनाशक जल के बहाव से भी मानव का स्वास्थ्य प्रभावित हो रहा है। न्यायमूर्ति लाहोटी ने हमारे यहां होने वाली ऋतु परिवर्तन को लेकर कहा था कि हमारे यहां ऋतु परिवर्तन भी मौत का पैगाम लेकर आता है, क्योंकि यहां पर कई लोगों के पास सिर ढांकने के लिए मकान नहीं हैं, जिसके कारण वे नारकीय जीवन जीने के लिए विवश हैं, जिससे वर्षा ऋतु में अधिक वर्षा से, ग्रीष्मकाल में लू लगने से, शीतकाल में ठंड की वजह से आये दिन काल के मुंह में समा जाते हैं।¹⁰

यह सम्पूर्ण स्थिति पर्यावरण, जलापूर्ति, स्वच्छता, शुद्ध वायु एवं मानवाधिकारों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के स्वरूप को उजागर करती है। साथ पर्यावरण प्रदूषण को रोकने एवं उसके संरक्षण, संवर्द्धन हेतु विश्व मानवता को प्रेरित करती है, क्योंकि यह केवल भारत की नहीं अपितु पूरे विश्व की समस्या है। पर्यावरण एवं मानवाधिकार संरक्षण हेतु आज न केवल राष्ट्रीय स्तर पर वरन् अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक प्रयास किये जाने प्रारंभ हो गये हैं, क्योंकि पर्यावरण विशेषज्ञ, स्वैच्छिक संगठन एवं पूरे जनमानस ने यह अनुभव करना शुरू कर दिया है कि मानव जाति को पर्यावरण के अधीन ही रहना पड़ेगा। वह पर्यावरण के विपरीत जाकर कभी भी सुखी नहीं रह सकता। अतः आज इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि चहुँमुखी विकास तो हो, लेकिन ऐसा विकास ना हो कि पर्यावरण को हानि पहुँचे। इसी विचारधारा के चलते केन्द्र व राज्य सरकारों ने पर्यावरण प्रबंधन अध्ययन को पाठ्यक्रम में अनिवार्यतः शामिल कर दिया है। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि हम सब जल, जमीन, हवा, पौधे व पूरे पर्यावरण के प्रति अपनेपन का भाव रखें, तभी हम सब अपना और अपने अधिकारों का संरक्षण कर सकेंगे। पर्यावरण संरक्षण के प्रति चेतना, मनुष्य के मन में प्रकृति के प्रति प्यार निष्ठा की भावना पैदा करना ही पर्यावरण संरक्षण का सबसे सार्थक उपाय है।

संदर्भ सूची

1. तैत्तिरीयोपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, अनु.-1(1)
2. अथर्ववेद-12.1.12
3. शर्मा, के.एन., वैदिक प्रास्पेक्टिव ओन द एनवायरमेंट दा टाईम्स ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, 2000 जून (पृष्ठ क्रमांक-14)
4. गुप्ता, व्ही.के., कौटिल्य जूरिस प्रूडेन्स, दिल्ली, 1987 (पेज 155 -156)
5. जैरीवाला, सी.एम. चैजिंग डार्इमेन्शन्स ऑफ इंडियन इन्वायरमेंट लॉ, इन.पी. सीलाकृष्णन, लॉ एण्ड इन्वायरमेंट, 1992 (पृष्ठ-27)
6. शर्मा, योगेश कुमार, पर्यावरण, मानव संसाधन और विकास पॉइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2004 (पृष्ठ 1-2)
7. डॉ. वर्मा, अम्बिका प्रसाद "छत्तीसगढ़ में मानव अधिकार" (पृष्ठ-135)
8. "ए जर्नल ऑफ एशिया फॉर डेमोक्रेसी एण्ड डेवलपमेंट" अक्टूबर- दिसम्बर 2008 (पृष्ठ 543)
9. "जलवायु परिवर्तन" ए जर्नल ऑफ एशिया फॉर डेमोक्रेसी एण्ड डेवलपमेंट, 2010 (पृष्ठ 109)
10. न्यूज लेटर- मानव अधिकार, म.प्र. मानव अधिकार आयोग का मासिक प्रकाशन, वर्ष-10 अंक, 12 दिसम्बर 2005



बदलते परिदृश्य में अध्यात्म व मीडिया की भूमिका

डॉ० रामप्रताप सिंह

असि० प्रो०-हिन्दी विभाग

डी०वी०पी०जी० कॉलेज, उरई (जालौन)

इक्कीसवीं सदी में ज्ञान-विज्ञान ने मानव जीवन को बहुत ही सरल बना दिया है। इस तकनीक एवं प्रौद्योगिकी ने जहाँ बेहतर सुविधाएं उपलब्ध करायी हैं, वहीं अस्त्र-शस्त्रों की होड़ ने दुनिया को शस्त्रागार बना दिया है। चारों ओर हिंसा-प्रतिहिंसा का वातावरण है। पूरा विश्व आतंकवाद से जूझ रहा है। परिवार, समाज, राष्ट्र में कहीं भी व्यक्ति अपने को प्रसन्न व सुखी नहीं अनुभव कर रहा है। आये दिन अखबार हिंसा की खबरों से परे रहते हैं। ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि हम कैसे अपने आपको प्रसन्न व सुखी जीवन जियें, जिससे एक बेहतर परिवार तथा समाज का निर्माण किया जा सके। अतः यह निश्चित है कि अध्यात्म के सिवा कोई विकल्प नहीं है। यूनेस्को का मानना है कि "मनुष्य को शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ होने के लिए आध्यात्मिक होना आवश्यक है।" किन्तु वह अध्यात्म नहीं, जो मनुष्य या समाज को अन्धविश्वासी बनाये बल्कि सही मायने में अध्यात्म से परिचित कराये, मैं कौन हूँ ? इस ब्रह्माण्ड में जितने जड़ व सजीव प्राणि हैं, उनके प्रति मेरी क्या भूमिका है। इस ब्रह्माण्ड में मुझे ही मनुष्य बनने का अवसर प्राप्त है। प्रकृति ने मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ मस्तिष्क दिया, आखिर उसकी कोई सार्थकता है ?

भूमण्डलीकरण व उपभोक्तावादी समाज में पदार्थ की सत्ता सबसे महत्वपूर्ण है। इस समाज में जहाँ अर्थ ही सबसे बड़ा मूल्य है। उपभोग की वस्तुएं ही व्यक्ति के स्तर का पैमाना हैं, वहाँ चिन्ता होना स्वाभाविक है। ब्राण्ड के इस भोगवादी क्षणों में मनुष्य स्वयं ब्राण्ड के रूप में तब्दील हो गया है। उसे अपने अन्दर सुख न प्राप्त कर वह मिथ्या वस्तुओं में ही सुख प्राप्त करना चाहता है। ऐसी परिस्थिति में दुनिया को बेहतर बनाने के लिए चिन्तित होना स्वाभाविक है।

अध्यात्म हमें बताता है कि इस विशाल ब्रह्माण्ड में हम प्रकृति के अंश मात्र हैं। इस धरती पर जितने प्राणी हैं, सबको जीने का अधिकार है। जितने भी प्रकार के जीव-जन्तु, वनस्पति हैं, पृथ्वी ही सबका घर है। किन्तु भोग की अनियंत्रित लिप्सा के कारण प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन हो रहा है। जिसके कारण पर्यावरण प्रदूषित होता जा रहा है। ओजोन परत का क्षरण हो रहा है, जो हम सभी के लिए सुरक्षा कवज का कार्य करता है। जल संकट उत्पन्न हो रहा है। ऐसी परिस्थिति में पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व का खतरा उत्पन्न हो गया है। निश्चित रूप से इस विषम परिस्थिति में अध्यात्म ही हमारे अन्दर वह मूल्य की चेतना भरता है। जिससे पृथ्वी पर जीवन को बचाया जा सकता है।

भारत में संत परम्परा ने बिना किसी लाभ के अपने उपदेशों का प्रचार-प्रसार किया, लोक को बेहतर बनाने के लिए सत्य, अहिंसा जैसे मूल्यों से परिचित कराया। अपने कष्ट भोग कर दुनिया को बेहतर बनाने का मिशन जिनका सपना था, वे किसी धर्म, मजहब, पंथ में बाँध नहीं सके। मानवता ही उनका सबसे बड़ा मूल्य था। उन मानवीय मूल्यों के लिए वे संत किसी प्रकार के समझौता करने के लिये तैयार था। राज्य को सत्ता से उन्हें तनिक भी भय था। यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इक्कीसवीं सदी में जहाँ साहित्यकार व मीडिया सत्ता को खुश करने के लिए कुछ भी कर सकते हैं, वहाँ मीडिया भी कटघरे में खड़ी हो जाती है, क्योंकि भारत में पत्रकारिता एक व्यवसाय के रूप में नहीं वरन् समाज सेवा व मिशन हुआ करता था। आजादी का संघर्ष इस बात की गवाही

देता है। आज जब देखता हूँ, सत्ता व पैसे के लिए मीडिया क्या-क्या कर रही है? तो बड़ा ही दुख होता है और मुझे कुम्भनदास याद आते हैं, जो कहते हैं—

संतन कहा सीकरी सो काम, आवत जात पनहिया टूटी,
बिसर गयो हरिनाम।

समय परिवर्तनशील है। निश्चित रूप से आज हम बाजार से नहीं बच सकते। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान पत्रकारिता का जैसा स्वरूप था, शायद स्वतंत्रता के उपरान्त मीडिया के स्वरूप में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है। मीडिया के लिए आज तकनीक जरूरी है और इस भूमण्डलीकरण, बाजारवाद तथा उदारीकरण के कारण चैनलों के इस युद्ध में बाजार से पीछा छुड़ाना सम्भव नहीं है। किन्तु एक बेहतर समाज के लिए यह आवश्यक है कि मीडिया बाजार में रहकर भी बाजार का अंग न बने।

लोकतंत्र में मीडिया को चौथा स्तम्भ कहा जाता है। अतः राष्ट्र, समाज, देश के लिए यह जरूरी है कि मीडिया अपने दायित्वों का भलीभाँति निर्वहन करे। स्वस्थ समाज और राष्ट्र के लिए यह आवश्यक है कि मीडिया जनता को जागरूक करे, जिससे वे अच्छे जनप्रतिनिधि चुनें, जो देश को एक बेहतर सरकार दे सके। जब तक व्यक्ति का अन्तःकरण पवित्र नहीं होगा, तब तक एक व्यक्ति दूसरे का शोषण करता रहेगा। जब व्यक्ति एक अच्छा इंसान नहीं होगा, एक अच्छा नागरिक नहीं होगा, तब तक वह एक अच्छा नेता कैसे हो सकता है, अच्छा पत्रकार कैसे हो सकता है। किन्तु बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है कि मीडिया एक उद्योग बन गया है। “दिलीप मण्डल कहते हैं, स्वतंत्र भारत में मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ जैसी चीज मानने वालों को भारत सरकार की इस व्याख्या से तकलीफ हो सकती है कि पत्रकारिता और मीडिया एक ही कैटेगरी में हैं और यह सेवाकार्य नहीं एक उद्योग है। मीडिया कम्पनियों का कारोबार करोड़ों में नहीं अरबों में आंका जाता है। जहाँ तक निजी क्षेत्र के मास मीडिया का सवाल है, यह पूरी तरह से कार्पोरेट संचालित है, बल्कि वह खुद ही कार्पोरेट है।”¹

टी०वी०, रेडियो, इण्टरनेट मीडिया के ही इलेक्ट्रॉनिक अवतार हैं। इस माध्यम ने दर्शक के दिल व दिमाग को परिवर्तित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जहाँ यह माध्यम सूचना देने, शिक्षा देने व स्वस्थ मनोरंजन कराके हमारे जीवन को बेहतर बनाता है। जीवन के नीरसता के क्षणों में उल्लास का रंग भरता है, किन्तु आज यह सवाल पैदा होता है कि इलेक्ट्रॉनिक चैनलों की बाढ़ ने सनसनी खेज व चटपटी खबरें ही दर्शकों को परोस रहा है। “अधिकांश कार्यक्रम या तो रोमानी भावनाओं को हवा देते हैं या मात्र मनोरंजन के नाम पर भौड़ापन ही दर्शकों को परोस रहे हैं। चैनलों के अन्दर का पूरा प्रयास, एक ऐसे वातावरण के निर्माण में संलग्न है जिसके पीछे कोई सामाजिक दायित्व की सोच ही नहीं है। विज्ञापन एक स्थापित साम्राज्य की तरह आम आदमी के आस्वादन को परित्यक्त की बजाय उसे एक छिछली मानसिकता की ओर ले जा रहा है।”²

किसी भी देश के निर्माण में भावी पीढ़ी को दरकिनार नहीं किया जा सकता। कहा जाता है कि आज का बच्चा कल का नागरिक है। “किन्तु खेद है कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया चैनल युद्ध की इस संस्कृति में पर्दे पर हमें कभी क्षुद्र ढोंग, कभी-कभी बेहद क्रूरता, कभी अन्याय की ऐसी घटनाएँ उकेर रहे हैं, जिन्हें देखकर हम संवेदनशीलता के भावों को उजागर ही नहीं कर पाते। क्यों बच्चे दूरदर्शन के चैनलों से इतने सम्मोहित हैं ? क्यों बच्चे इतने तर्क शून्य हो गये हैं? ये पढ़ाई से दूर तो हुए ही, जिन्दगी से जुड़े खेलकूद के स्वास्थ्य चैनलों से इनका वास्ता नहीं।”³ इसी कारण आये दिन कोई-कोई आयुशी खबरों में जगह बना लेती है। कोई न कोई निर्भया किशोर युवकों द्वारा बलात्कार की शिकार हो जाती है। अतः आज आवश्यक है कि पत्रकारिता में अध्यात्मिक मूल्यों को महत्व दिया जाये।

आध्यात्म कोई चमत्कार नहीं है, कोई सम्मोहन नहीं है, कोई तांत्रिक साधना नहीं है, कोई पाखण्ड नहीं है, किसी सम्प्रदाय का ध्वजवाहक नहीं है, वरन् जीवन के रहस्य को जानने का मूल मंत्र है। आत्मा और परमात्मा

के महामिलन की पुण्यस्थली है। अध्यात्म वैसे ही है जैसे ऑक्सीजन। जिस तरह हम ऑक्सीजन को देख नहीं सकते, छू नहीं सकते, उसकी मात्र अनुभूति कर सकते हैं। आध्यात्मिक बोध के कारण व्यक्ति इस ब्रह्माण्ड का एक अंश बन जाता है। वह न हिन्दू होता है न मुसलमान, न सिक्ख, न ईसाई। वह न मजदूर है, न मालिक, न राजा, न प्रजा। किन्तु अध्यात्म के नाम पर ठगी का व्यापार करने वालों के प्रति भी जनता को जागरुक करना होगा।

अतः आज यह आवश्यक है कि मीडिया बाजार में रहकर भी बाजारवाद के खिलाफ अपनी लेखनी चलाये। इलेक्ट्रानिक माध्यम की जिम्मेदारी और अधिक है, क्योंकि वे मीडिया के प्रभावशाली हथियार हैं, जिनकी पहुँच जन-जन तक है। इक्कीसवीं सदी में हिंसा, प्रतिहिंसा के इस युग में अध्यात्म ही हमें सुख शान्ति से भरा, उमंग से ओतप्रोत, उल्लास के रंग से परिपूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा दे सकता है। “आज हम तनाव एवं हिंसा पूर्ण समाज में जी रहे हैं। हिंसा और तनावपूर्ण वातावरण से मुक्त होने के लिए आध्यात्म ही एक कारगर साधन है। वैज्ञानिक चकाचौंध में धर्म, संस्कृति तथा नैतिकता को नये सन्दर्भ और नये आयाम चाहिए।”⁴ अतः मीडिया की जिम्मेदारी है कि समाज को बेहतर बनाने के लिए बाजार में रहकर भी बाजार का अंग न बनें।

सन्दर्भ सूची

1. न्यू मीडिया: इण्टरनेट की भाषायी चुनौतियाँ और सम्भावनाएं, पृष्ठ-50
2. सांस्कृतिक पत्रकारिता- डॉ० टी०डी०एस० आलोक, पृष्ठ-27
3. सांस्कृतिक पत्रकारिता- डॉ० टी०डी०एस० आलोक, पृष्ठ-27
4. हिन्दी पत्रकारिता- विविध आयाम- सं० वेदप्रताप वैदिक, पृष्ठ-412



भारतीय राजनीति में अपराधीकरण और भ्रष्टाचार के विविध संदर्भ

अरविन्द कुमार शुक्ल

असिस्टेंट प्रोफेसर – राजनीति विज्ञान

राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बिंदकी, फतेहपुर (उ०प्र०)

राजनीति किसी राज्य, राष्ट्र, संस्था का सरकार द्वारा अपने कार्य संचालन के लिए नियत की गई पद्धति का द्योतन है। भारतीय राजनीति धर्मनिरपेक्ष होते हुए भी नैतिकता और मानवीय आदर्शों से संलिप्त रही है। उसके मूलभूत ढाँचे में आज भी कोई परिवर्तन नहीं किया गया, लेकिन परिदृश्य बताते हैं कि हमें कहाँ जाना था और भटक कर कहाँ पहुँच गए हैं। एक समय था जब तप-त्याग-विविधा का पथ हमारा राजमार्ग था। बलिदान के लिए तत्परता हमारी प्रकृति थी। ईमानदारी हमारी ललक थी पर दृश्येषु लोण्ठवत् हमारी घोशणा थी। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् हमारे पग इन्हीं रास्तों पर चले। राष्ट्र का संचालन जिन हाथों में था, वे तपे-तपाए जेलों के दुःसह कष्ट झेले दृढ़ प्रतिज्ञ नेतृत्वकर्ता थे, राष्ट्रभक्त थें। वह पीढ़ी जब तक रही, राष्ट्र का निर्माण त्वरित गति से होता रहा। कहाँ हम खड़े होने लायक नहीं थें, दौड़ने लगे। भारत ने अणु-युग में प्रवेश किया। अन्तरिक्ष में हमने दीर्घ छलांग लगाई। सूचना तकनीकी में विश्व में हमने सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन किया, किन्तु अचानक यह क्या हो गया कि राजनीति में स्वार्थाध लोग घुस आए, अपराधियों की यह पनाहगाह हो गई और भ्रष्टाचार ने हर जगह अपने पैर मजबूती से खड़े कर लिए।

इसके लिए कौन दोषी हैं ? 'यथा राजा तथा प्रजा' के सूत्र के अनुसार तो दोष राज-व्यवस्था को ही है। लोकतंत्र में वास्तविक सत्ता कहने को जनता के हाथ में है, पर आज यह स्थिति है कि आम जनता का भले से भला, श्रेष्ठ, योग्य से योग्य, महान, कर्मठ, ईमानदार व्यक्ति क्या, विधान सभा सदस्य या संसद सदस्य पद के लिए खड़े होने का साहस कर सकता है और यदि खड़ा भी हो, क्षीण धनबल के अभाव में क्या वह वोट बटोरने की स्थिति में पहुँच सकता है। नहीं, नहीं, नहीं : उस बेचारे की तो जमानत भी नहीं बच सकती। आज वही इन पदों का हकदार है, जिसने भ्रष्टाचार के बल पर अरबों-खरबों की कमाई का विशाल प्रासाद निर्मित कर अपने आस-पास अपने शक्तिशाली समर्थकों का हुजूम खड़ा कर रखा हो, जो अपराध-जगत का सिरमौर हो, जिसने अनाचार की सारी हदें तोड़कर रख दी हो। तभी तो आज विधान सभाओं और संसद में इतनी विशाल मात्रा में अपराधों के तमगों से सुसज्जित माननीय मौजूद हो चुके हैं और लगातार अपनी मौजूदगी में बेतहाशा वृद्धि कर रहे हैं। यह कौन नहीं जानता? वर्तमान लोकसभा में ही आपराधिक पृष्ठभूमि के सांसदों की संख्या लगभग 150 है जबकि इसके पूर्ववर्ती लोकसभा में यह संख्या लगभग 128 थी।

भ्रष्टाचार और अपराध में अन्योन्याश्रित संबंध है। राजनीति में आपराधिक पृष्ठभूमि के माननीयों की संख्या में जिस गति से वृद्धि होगी, भ्रष्टाचार उसी गति से बढ़ेगा और भ्रष्टाचार में जैसे-जैसे वृद्धि होगी, अपराध उसी रफ्तार से बढ़ेंगे। अपराध और भ्रष्टाचार एक दूसरे पर पलते हैं। ये वह जीवाणु हैं, जिनकी वृद्धि अपरिवर्तित होती है, असीम होती है। भारतीय राजनीति में दलों की अपरिहार्यता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी राजनीतिक दलों का डंका बज रहा है। हर राजनीतिक दल का अन्तिम लक्ष्य सत्ता हथियाना और सत्ता के बल पर अपनी धाक जमाना होता है। इसके लिए उन्हें जमीन-आसमान के कुलाबे एक करने पड़ते हैं। जाति, धर्म, क्षेत्र के सौमनस्य को इस प्रकार तोड़ा-मरोड़ा जाता है कि युगों से चली आ रही समरसता का सर्वनाश

हो जाता है। झूठ, छल, कपट, आश्वासन वह भी ऐसे आश्वासन, जिनका रूपाचित किया जाना संभव ही नहीं होता। हर दल के अस्त्र होते हैं। इन सब का प्रयोग भारतीय राजनीति में अब इतना खुल कर होने लगा है कि देखा नहीं जाता।

स्वतंत्रता के बाद पहले अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के आरक्षण को सन् 1965 तक के लिए लागू किया गया था, जो हर दस वर्ष बाद बढ़ता गया और अब तक अमर है, जब सत्ता हाथ से खिसकते दिखी तो सत्ताधारियों ने इन्हीं जातियों की सरकारी नौकरियों में प्रमोशन में आरक्षण लागू कर संविधान की धजियाँ उड़ा दीं। न्यायपालिका ने विरोध किया तो संविधान बदल दिया, जिस पर अभी भी माथा-पच्ची चल रही है।

अभी तक केवल आरक्षण अनुसूचित जाति को लाभ पहुँचाता था, पर जब इससे दलों को राहत न मिली तो, अन्य पिछड़ी जाति के आरक्षण का शस्त्र उछाला और उसमें उन्हें सफलता मिल गई। अब समाज तीन भागों में बँट गया और राजनेताओं को सत्ता हथियाने के सरल गुण प्राप्त हो गए। गुणा-भाग लगाने के नये समीकरण बने। लेकिन केवल इतने से जब सत्ता दूर होते दिखी तो वोटों की खरीद-फरोख्त का नया द्वार खोला गया और जब चुनाव महँगे हो गए तो अपराध जगत के बाहुबलियों से साँठ-गाँठ का सरलतम उपाय खोजने में देर न लगी। अब जो अपराधी पहले सरकारों से डरकर दुबके रहते थे, सरकार बन गए और उन्होंने सफेदपोश अपराध की ऐसी झड़ी लगाई कि त्राहि-त्राहि मच गई। भ्रष्टाचार को तो आना ही था, सो वह फौज-पाटे के साथ आया और सम्पूर्ण भारतीय राजनीति को तहस-नहस कर रख दिया। आज दुनिया की निगाह में हम अत्यंत भ्रष्ट राष्ट्र के नागरिक हैं और अनेक सम व विशम विचारों के दलों की मिली-जुली सरकारों के पृथक से शिकार हैं।

भ्रष्टजनों के सरकार में सम्मिलित हो जाने से सरकार के अनेक विभाग भ्रष्टाचार की लपेट में आ रहे हैं, उनकी जाँच सी0बी0आई0 करती है, जो स्पष्ट है, स्वतंत्र नहीं है। केन्द्र का उस पर दबाव सर्वविदित है। अभी हाल में सर्वोच्च न्यायालय ने केन्द्र सरकार पर बड़ी तल्लख टिप्पणी की है और स्पष्ट कहा है कि जुलाई तक सी0बी0आई0 को स्वायत्ता दे दी जानी चाहिये। देखें अब क्या होता है? जब तक भ्रष्टाचारियों को कड़े से कड़ा दण्ड नहीं मिलेगा, वे भ्रष्टाचार का पोषण वैसे ही करते रहेंगे और अपराधी राजनीति में घुसकर राजनीति का कबाड़ा करते रहेंगे।

भ्रष्टाचार से कमाए गए पैसे को जब काले धन के रूप में विदेशों में जमा कर दिया जाता है तो देश के चलते-फिरते धन में क्षीणता आ जाती है। अतिरिक्त नोट छापे जाते हैं और मुद्रास्फीति बढ़ती है। भ्रष्टाचार के पैसे को जब बाजार में झोंक दिया जाता है तो महँगाई बेतहाशा बढ़ती है, जो गरीबों के लिए असह्य पीड़ा का कारण बनती है। विगत कई वर्षों से इसी कारण महँगाई बढ़ रही है और गरीबी की रेखा के नीचे जीवन-यापन करने वालों का जीवन दुरुह हो रहा है। भ्रष्टाचारियों की कोठियाँ पर कोठियाँ,, महँगे महाविद्यालय, विशाल ट्रस्ट, महँगे होटल, बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियाँ खुल रही हैं और गरीब व किसान आवश्यक सुविधाओं के तक के लिए तरस रहे हैं। उनकी कोई सुनने वाला नहीं है। मर्यादा को लेकर उनमें से कितने आत्म-हत्या कर रहे हैं, कितने जीते-जी नरक भोग रहे हैं, यह तो गाँवों की पड़ताल करने पर ही देखा जा सकता है। पर इसके लिए वक्त सरकार में से किसके पास है। भ्रष्टाचार ने आम जनता की कमर तोड़ कर रख दी है।

वर्तमान परिदृश्य में मानव-समाज अनेक जटिल समस्याओं के दौर से गुजर रहा है। जिनमें अपराध एक प्रमुख समस्या है, हालांकि अपराध जैसी समस्याएँ कोई नई बात नहीं है, यह तब से विद्यमान है, जब से मानव समाज की रचना हुई है, और इन्हीं समस्याओं से निपटने के लिए मनुष्य ने अपने लिए नैतिक आदर्श और सामाजिक नियम बनाये, जिसका पालन करना, प्रत्येक मनुष्य का नैतिक धर्म बताया गया। हालांकि प्राचीनकाल में आपराधिक घटनाएं यदा-कदा ही सुनी जाती थी और अपराध की प्रवृत्ति भी आज से पृथक थी, लेकिन वर्तमान भौतिकवादी दुनिया में ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानों अपराध का समाजीकरण सा हो रहा हो, लोगों में इंसानियत समाप्त प्रायः सी है, संस्कार नष्ट हो रहे हैं, नैतिकता दम तोड़ गयी है और ईमानदारी व समर्पण समाप्त हो गया है। इतना ही

नहीं बुद्धिजीवी और सामाजिक सरोकार रखने वाले लोगों का दायरा भी अनवरत सिमटता जा रहा है अथवा वह हाशिये पर जा रहे हैं या जा चुके हैं, समाज में कुटिल, अपराधी, क्रूर और भ्रष्टाचार में लिप्त लोगों को आदर एवं सम्मान मिल रहा है।

शक्ति, सत्ता और धनबल में समझौता सा हो गया है, यानि यह एक दूसरे में समयानुकूल परिवर्तित होते रहते हैं। शक्ति बल प्रयोग की योग्यता है न कि उसका वास्तविक प्रयोग है, जबकि सत्ता का धर्म सामंती होता है। प्राचीन काल से आज तक इनसे राज्य का निर्माण हुआ है। आज जब पूंजीवादी शक्ति की प्रधानता बढ़ गयी है, और सामंतवादी शक्ति सुप्त अवस्था में चली गयी है, तब पूंजीवादी लोकतंत्र, पुराने सामंतवाद को कमजोर करने के लिए एक दूसरे को धन से मदद करते हैं और उसे बाहुबल (गुंडों) के रूप में इस्तेमाल भी करते हैं, इसी नई अवस्था को राजनीति का अपराधीकरण कहते हैं, यानि राजनीतिक सत्ता में बने रहने के लिए अपराध का ही सहारा लेती है। लेकिन कुछ समय बाद यही गुंडा (अपराधी) जब राजनीति में प्रवेश कर सांसद और विधायक बन जाता तो है वह अवस्था राजनीति का अपराधीकरण नहीं बल्कि अपराधी का राजनीतिकरण है।

अपराधी भी दो प्रकार के होते हैं एक आर्थिक अपराधी और दूसरा शारीरिक अपराधी और दोनों ही अपराधी एक दूसरे के सहयोगी होते हैं। इस प्रकार भारतीय राजनीति का आज का यथार्थ यदि किन्हीं दो शब्दों से परिभाषित हो सकता है तो वह हैं— अपराधीकरण और भ्रष्टाचार ? पिछली शताब्दी के आठवें दशक में भारतीय समाज-वैज्ञानिकों ने पहली बार इस पनपती हुई, कष्टप्रद व्यवहार प्रणाली की ओर इशारा किया था और यह चिंता जताई थी कि कहीं इस प्रक्रिया में हम अपने लोकतंत्र को ही प्रतिस्थापित न कर दें। चुनावों में होने वाला अनाप-शनाप खर्च और उसके लिए इकट्ठा किया गया काला धन, लाठी के बल पर डलवाये गए वोट, पोलिंग बूथों पर जबरन कब्जा और जाली मतदान, और जीतकर आए, ऐसे जनप्रतिनिधि जिन्हें न तो शासन का अनुभव था और न ही संविधान की समझ और जिनकी ख्याति का माध्यम थे, मात्र उनके आपराधिक कुकर्म—हत्याएँ, लूटपाट, डकैती, भाईगिरी, और हफ्ता वसूली, ये सब राजनीति के अपराधीकरण के सूचक होते जा रहे हैं।

सामान्यतया लोगों का मानना है कि यदि अपराधियों को फांसी हो जाए, प्रशासन सख्त हो जाए, तो अपराधों का बंद हो जाएगा? तो यह सही नहीं होगा, क्योंकि लोग अपराध करने के लिए नए-नए तरीके खोज लेंगे, क्योंकि इनके पीछे मुख्य कारण है समाज का दूषित वातावरण, उनकी दूषित मानसिकता, समाज में नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का पतन और इन मूल्यों के अभाव के पीछे कारण, जीवन से धर्म व नैतिकता का निकल जाना। जिसके आधार पर मानव अपने अंदर उच्च आदर्शों को स्थापित करता है। किंतु आज हमारे समाज का मुख्य लक्ष्य है, पैसा कमाना, क्योंकि ये भौतिक सुख-सुविधा देने में समर्थ है। बच्चों के माता-पिता और उनके शिक्षक का ध्यान केवल इस बात पर है कि वह परीक्षा में अच्छा नंबर लाएं, अच्छी नौकरी पाएं और ज्यादा से ज्यादा पैसा कमाएं भले वे अच्छे एक अच्छे नागरिक ना बन पाएं। आज के बच्चों का आदर्श स्वामी विवेकानंद और महात्मा गांधी नहीं बल्कि बहुत पैसा कमाने वाला व्यक्ति होता है, चाहे वह पैसे किसी भी तरीके से कमाता हो।

राजनेताओं और सरकारी अफसरों में व्याप्त भ्रष्टाचार जिससे सरकार को करोड़ों रूपयों का नुकसान होता है। ऐसे उदाहरणों की भरमार है। भ्रष्टाचार पर ढेरों ग्रंथ लिखे जा सकते हैं। राजनीति में हिंसक साधनों का और काले धन का बढ़ता हुआ उपयोग भी किसी से छुपा नहीं है। अपराधियों का राजनीति में प्रवेश एक अलग बात हो गई है। हमारी विधायिकाएं दुश्चरित्रों का आश्रय-स्थल बनकर रह गई हैं। चुनावों में होने वाला बेहिसाब खर्च, इतना पैसा कहां से आता है? और जब कोई प्रत्याशी इतने धन का निवेश करता है, तो सत्ता में आने पर वह मूल धन के साथ पूरा ब्याज भी वसूल करता है।

अब तो यह भी तय समझा जाना चाहिए कि इन भ्रष्टाचारियों ने जिनमें नेता, अधिकारी, इनके चमचे, इनके रिश्तेदार आदि सभी शामिल हैं के विरुद्ध यदि किसी ईमानदार अधिकारी, पत्रकार अथवा सामाजिक कार्यकर्ता ने

उंगली उठाई तो उसे भी मंजुनाथन, सत्येंद्र दुबे तथा अमित जेठवा आदि राष्ट्रभक्तों की ही तरह अपनी जान गंवानी पड़ सकती है। जिहाजा अब यदि देश को भ्रष्टाचार मुक्त बनाना है तो सर्वप्रथम देश की राजनीति से भ्रष्ट राजनीतिज्ञों का सफाया करने की जरूरत है। जनता तथा आम मतदाता यह बहुत अच्छी तरह जानता है कि उसके क्षेत्र की पंचायत से लेकर संसद तक का नुमाईदा राजनीति के क्षेत्र में अपनी सक्रियता अथवा अपने निर्वाचन से पूर्व क्या आर्थिक हैसियत रखता था और अब कुछ ही समय में अथवा कुछ ही वर्षों में वह आर्थिक रूप से कितना संपन्न हो चुका है।

मंहगाई के इस दौर में जबकि एक व्यक्ति का रोटी खाना व साधारण तरीके से उसका परिवार चलाना दूभर हो रहा है, ऐसे में जनता के समक्ष चुनाव के समय हाथ जोड़ने वाला तथा स्वयं को समाजसेवी बताने का ढोंग करने वाला कोई राजनैतिक कार्यकर्ता यदि आए दिन अपनी संपत्ति बढ़ाता ही जा रहा है अथवा उसका रहन-सहन असाधारण होता जा रहा है तो जनता को स्वयं समझ लेना चाहिए कि अमुक व्यक्ति, समाजसेवी या नेता नहीं बल्कि हमारे देश में लगी भ्रष्टाचार रूपी दीमकों के झुंड का ही एक प्रमुख हिस्सा है और ऐसी दीमकों को अपने मतों द्वारा मसल देने में ही जनता, समाज तथा देश का कल्याण निहित है।

अपराधियों एवं भ्रष्टाचारियों को संसद और विधान सभाओं में जाने से रोकने के लिए देश की जनता का जागरूक होना अति आवश्यक है, अगर वे दागी लोगों को वोट न दें तो इससे निजात पाया जा सकता है, इस समय आशा की किरण देशभर का युवा है और उम्मीद अब इस देश के युवाओं से है, जो हिम्मत कर स्वच्छ छवि के लोगों को वोट देकर अपराधियों को सबक सिखा सकते हैं। अन्यथा इस देश में देर-सबेर हर तरह के अपराधियों का बोलबाला हो जाएगा। समय आ गया है जब इस दिशा में कोई ठोस कदम उठाया जाए। हालांकि समाज में परिवर्तन कई दिशाओं से आता है। कुछ परिवर्तन अपेक्षित होते हैं, कुछ संभावित और कुछ ऐसे जिनकी पहले से कोई कल्पना भी नहीं होती।

सन्दर्भ सूची

1. चंदन मित्रा, भ्रष्ट समाज, किताब घर प्रकाशन, अंसारो रोड, नई दिल्ली, 2010, पृ0सं0-18
2. देव प्रकाश चौधरी, लोकनायक अन्ना हजारे और जन लोकपाल बिल, नई दिल्ली, हिन्द पाकेट बुक्स ,जोर बाग लेन, 2011, पृ0सं0-69.74
3. प्रतियोगिता दर्पण, उपकार प्रकाशन, आगरा, जुलाई, 2006, पृष्ठ 2284, 85, 86 जनवरी-2008, पृष्ठ-1047, 48, 49, 50 फरवरी-2007 पृष्ठ-1247
4. भारत 2012, प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली पृष्ठ, 354, 55, 57
5. सी0एम0 झा, भ्रष्टाचार : समस्या और समाधान, राधा कृष्ण प्रकाशन ,जगतपुरी, दिल्ली, 2004, पृष्ठ संख्या-32,33,34
6. prernamagazine.com/april-september-2011/vimarsh3.html?
7. भारत 2013, प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, पृष्ठ 254, 55, 57
8. राजनीति का अपराधीकरण या अपराध का राजनीतिकरण
<http://www-deshbandhu-co-in/newsdetail/4185/9/199>
9. <http://www.visfot.com/old12/index.php?news=874>
10. edfilenews.blogspot.com/2011/11/blog-post.html?
11. hi.wikipedia.org/wiki/????_???_??????
12. orum.jagranjunction.com/author/forum/
13. Corruption in India By K. N. Gupta –foreword in N. vital ..Anmol publications PVT. LTD. New delhi p-27-56
14. hi.wikipedia.org/wiki/????_???_????????????
15. www.himanshushekhhar.in/??-??????-??-????????-??/?

16. www.pravakta.com/raja-bhaiya-mere-symptom-disease-criminalization-o...?
17. Corruption in Indian politics and bureaucracy-Satyavan Bhatnagar, S. K. Sharma, Panjab University. Directorate of Correspondence Courses - 1991 - 199 pages - Snippet view Ess Ess Publications, 1991 Original from ISBN 8170001234, 9788170001232 p-43-87
18. राजनीति की कठपुतली बन गये हैं नेता
http://dr-mahesh-parimal.blogspot.in/2010/01/blog-post_07.html
19. शर्मा शशि, राजनीतिक समाजशास्त्र की रुपरेखा, PHI Learning Pvt. Ltd.delhi, ISBN- 8120339827, 9788120339828
20. राजनीति का अपराधीकरण
<http://hullchal.blogspot.in/2009/02/blog-post.html>
21. http://dr-mahesh-parimal.blogspot.in/2010/01/blog-post_07.html
22. <http://forum.jagranjunction.com/2011/04/16/to-save-democracy-aamran-anshan-is-blackmailing/>
23. www.nawya.in/editorial-articles/.../????-???-?????????-2.htm
24. www.janokti.com/discussion.../????-???-?????????-??-??/?
25. realtime.wsj.com/india/2011/10/.../????-???-?????????-2...?
26. samajikbhrstachar.blogspot.com
27. limtykhare.blogspot.com/2010_06_21_archive.html?
28. www.pravasiduniya.com/tag/????-???-?????????-??-???
29. राजनीति का अपराधीकरण या अपराध का राजनीतिकरण
30. <http://www-deshbandhu-co-in/newsdetail/4185/9/199>
31. Corruption in India By K. N. Gupta –foreword in N. vital ..Anmol publications PVT. LTD. New delhi p-27-56
32. Corruption in Indian politics and bureaucracy-Satyavan Bhatnagar, S. K. Sharma, Panjab University. Directorate of Correspondence Courses - 1991 - 199 pages - Snippet view Ess Ess Publications, 1991 Original from ISBN 8170001234, 9788170001232 p-43-87
33. jktuhfr dh dBiqrh cu x;s gSa usrk
http://dr-mahesh-parimal.blogspot.in/2010/01/blog-post_07.html
34. http://www.hindimedia.in/content/view/690/43/index.php?option=com_content&task=view&id=15185&Itemid=86
35. http://bhadas4india.com/index.php?option=com_content&view=article&id=223:2011-06-12-17-53-41&catid=34:headline
36. शर्मा शशि, राजनीतिक समाजशास्त्र की रुपरेखा, PHI Learning Pvt. Ltd.delhi, ISBN- 8120339827, 9788120339828
37. Bhaskar.com
38. दैनिक जागरण, 30 –01–2013, कानपुर संस्करण
39. अमर उजाला, 03–02–2012, कानपुर संस्करण
40. द हिन्दू, 17–02–2013, दिल्ली संस्करण
41. दैनिक जागरण, 11 –04–2013, कानपुर संस्करण
42. दैनिक जागरण, 28 –02–2013, कानपुर संस्करण
43. दैनिक जागरण, 17 –04–2013, कानपुर संस्करण
44. दैनिक जागरण, 04 –01–2013, कानपुर संस्करण
45. अमर उजाला, 04–02–2012, कानपुर संस्करण

46. अमर उजाला, 09-02-2013, कानपुर संस्करण
47. द हिन्दू, 17-02-2013, दिल्ली संस्करण
48. द हिन्दू, 10-03-2013, दिल्ली संस्करण
49. द हिन्दू, 19-02-2013, दिल्ली संस्करण
50. द हिन्दू, 20-02-2013, दिल्ली संस्करण
51. द हिन्दू, 02-05-2013, दिल्ली संस्करण
52. राष्ट्रीय सहारा, 29-01-2013, कानपुर
53. अमर उजाला, 03-02-2012, कानपुर संस्करण
54. अमर उजाला, 07-04-2012, कानपुर संस्करण
55. दैनिक आज, 19 -03-2012, कानपुर संस्करण
56. दैनिक हिन्दुस्तान, 21 -02-2013, कानपुर संस्करण
57. दैनिक हिन्दुस्तान, 03 -04-2013, कानपुर संस्करण
58. दैनिक हिन्दुस्तान, 28 -01-2013, कानपुर संस्करण



दलित कविता में मानवीय मूल्य

डॉ. कमलेश सिंह नेगी

सहायक प्राध्यापक—हिन्दी,

चन्द्रशेखर आजाद शासकीय स्नातकोत्तर अग्रणी महाविद्यालय सीहोर, मध्यप्रदेश

एवं

एसोसिएट, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान राष्ट्रपति निवास शिमला, हिमाचल प्रदेश

दलित कविता उस तरह की कविता नहीं है, जैसे आमतौर पर कोई प्रेम या विरह में पागल होकर गुनगुनाने लगता है। यह वह कविता भी नहीं है, जो पेड़ पौधों, फूलों, नदियों, झरनों और पर्वत मालाओं की चित्रकारी में लिखी जाती है। यह किसी का शोकगीत और प्रशस्तिगान भी नहीं है। दरअसल यह वह कविता है, जिसे शोषित, पीड़ित दलित अपने दर्द को अभिव्यक्त करने के लिए लिखता है। यह वह कविता है, जिसमें दलित कवि अपने जीवन के संघर्ष को उतारता है। यह दमन, अत्याचार, अपमान और शोषण के खिलाफ युद्धगान है। यह स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व भाव की स्थापना और लोकतन्त्र की प्रतिष्ठा करती है, इसलिये इसमें समतामूलक और समाजवादी समाज की परिकल्पना है। संक्षेप में, दलित कविता जाति और वर्ग—विहीन समाज की स्थापना करने वाली दलितों द्वारा लिखी गयी क्रान्तिकारी कविता है।

दलित कविता ने अपनी एक विकास—यात्रा तय की है, जिसमें वैचारिकता, जीवन—संघर्ष, विद्रोह, आक्रोश, नकार, छद्म सांस्कृतिक प्रेम, राजनीतिक प्रपंच, वर्ण—विद्वेष, जाति के सवाल, साहित्यिक छल आदि विषय बार—बार दस्तक देते हैं, जो दलित कविता की विकास यात्रा के विभिन्न पड़ावों से होकर गुजरते हैं।

दलित कविता के मूल में मनुष्य होता है, तो वह उत्पीड़न और असमानता के प्रति अपना विरोध दर्ज करेगा ही। जिसमें प्रतिरोध आना स्वाभाविक है। जो दलित कवि की अभिव्यक्ति को यथार्थ के निकट ले जाता है। उसके अपने अंतर्विरोध भी हैं, जो कविता में छिपते नहीं हैं, वे स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त होते हैं। इसीलिए कहा जाता है कि दलित कविता मानवीय मूल्यों और मनुष्य की अस्मिता के साथ खड़ी है।

जिस विषमतामूलक समाज में एक दलित संघर्षरत है, वहाँ मनुष्य की मनुष्यता की बात करना अकल्पनीय लगता है। इसीलिए सामाजिकता में समताभाव को मानवीय पक्ष में परिवर्तित करना दलित कविता की आंतरिक अनुभूति है, जिसे अभिव्यक्त करने में गहन वेदना से गुजरना पड़ता है। भारतीय जीवन का सांस्कृतिक पक्ष दलित को उसके भीतर हीनता बोध पैदा करते रहने में ही अपना श्रेष्ठत्व पाता है। लेकिन एक दलित के लिए यह श्रेष्ठत्व दासता और गुलामी का प्रतीक है। जिसके लिए हर पल दलित को अपने 'स्व' की ही नहीं समूचे दलित समाज को पीड़ादायक स्थितियों से गुजरना पड़ता है। हिन्दी के आलोचक कविता को जिस रूप में भी ग्रहण करें और साहित्यिक मापदंडों से उसकी व्याख्या करें, लेकिन दलित जीवन की त्रासद स्थितियां उसे संस्पर्श किये बगैर ही निकल जाती हैं। इसीलिए वह आलोचक अपनी बौद्धिकता के छद्म में दलित कविता पर कुछ ऐसे आरोपण करता है कि दलित कविता में भटकाव की गुंजाइश बनने की स्थितियां उत्पन्न होने की संभावनाएं दिखायी देने लगती हैं। इसीलिए दलित कविता को डॉ. अम्बेडकर के जीवन—दर्शन, अतीत की भयावहता और बुद्ध के मानवीय दर्शन को हर पल सामने रखने की जरूरत पड़ती है।

कवि 'असंग घोष' भारतीय समाज में बनी जाति—व्यवस्था के कारण, जाति के नाम पर उनके साथ दुर्व्यवहार होता है। इसी से वे अपनी जाति से पीछा छुड़ाना चाहते हैं। परन्तु हिन्दू धर्म के द्वारा बनाई गई 'कम्बख्त' जाति उनसे कुछ इस प्रकार चिपक गई है कि लाख कोशिश करें इससे अलग होने की लेकिन तुम्हारा घाघ पुरोधा

जासूसी कर मेरी जाति खोज लाता है इसलिए धर्म तुम्हें तिलांजलि देता हूँ? यथा—

“तुम भी एक हो
मेरे पैदा होने के बाद
जाति के साथ
चिपकने वाले
कम्बख्त जाति को
मैं त्याग नहीं सकता
तुम्हें क्यों न छोड़ूँ
लो
मैं तुम्हें तिलांजलि देता हूँ।”¹

कवि ने ईश्वर को भी अपनी कलम से साफ कर दिया है, जो उसकी दृष्टि में शोषकों के स्वार्थ की उपज है। वह ‘ईश्वर नहीं है’ कविता में लिखा है—

“देखता हूँ जब भी
किसी गरीब की पीठ पर
शोषण के बेरहम निशान
उठते हैं मेरे मस्तिष्क में प्रश्न
ईश्वर हो ही नहीं सकता
मुझे लगता है
ईश्वर कुछ लोगों के स्वार्थ की उपज है।”²

दलित कवि की दृष्टि से ‘गाँव’ क्या हैसियत रखते हैं और दलितों को गाँव से क्यों डर लगता है। डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय गाँवों को जाति-व्यवस्था के कारखाने कहा है। इसका एक मार्मिक चित्र हमें मलखान सिंह की ‘एक पूरी उम्र’ कविता में मिलता है। यथा—

“यकीन मानिये
उस आदमखोर गाँव में
मुझे डर लगता है।
लगता है कि अभी बस अभी
ठकुराईसी मेड़ चीखेगी
मैं अधसौँच ही
खेत से उठ जाऊँगा।
कि अभी बस अभी
हवेली घुड़केगी,
मैं बेगार में पकड़ा जाऊँगा।”³

गाँव को रेखांकित करने वाली उनकी सबसे अच्छी कविता ‘हमारे गाँव में’ है। कवि मलखान सिंह अपने गाँव का परिचय इस तरह कराते हैं —

“हमारे गाँव में भी

कुछ हरि होते हैं
कुछ जन होते हैं

जो हरि होते हैं
वह जन के साथ
न उठते हैं/न बैठते हैं/न खाते हैं/
न पीते हैं
यहाँ तक कि जून की
परछाई तक से परहेज करते हैं।

वे इस परिचय को और आगे बढ़ाते हुए कहते हैं—

हमारे गाँव में नम्रता
जन की खास पहचान है
और उद्दण्डता हरि का बाँकपन
तभी तो वह बोहरे का लौंडा
जो ढंग से नाड़ा भी नहीं खोल पाता
को दूर से आता देख
मेरे बाबा
'कुँवरजू पाँव लागू' कहता है
और वह अशिष्ट
अपना हर सवाल
तू से शुरू करता है
तू पर ही खत्म करता है।'⁴

यहाँ दलित एकलव्य पुराने जंग लगे तीरों को आग में नहीं तपा रहा है, बल्कि ब्राह्मणवाद के शास्त्रों को आग के हवाले कर रहा है। जिस ईश्वर को ब्राह्मणवाद ने शास्त्रों का निर्माता कहा है, दलित कवि ने उसी ईश्वर के खिलाफ बिगुल बजाया है। दलित कवि मलखान सिंह ने ईश्वर के इतिहास तक को पकड़ लिया है। ब्राह्मणवादी रक्षा के निमित्त अवतार लेने वाले ईश्वर का इतिहास दलित वर्गों के लिये कितना पीड़ादायी है, उसका वर्णन हमें उनकी 'आखिरी जंग' कविता में मिलता है। यथा —

“ओ परमेश्वर
कितनी पशुता से रौंदा है हमें
तेरे इतिहास ने
देख, हमारे चेहरों को देख
भूख की मार के निशान
साफ दिखायी देंगे 'तुझे'
हमारी पीठ को सहलाने पर
बबूल के कांटों से दोनों
मुट्ठियाँ भर जायेंगी तेरी।”⁵

जिस तरह दलित कवि हीरा डोम ने भगवान की 'भक्तवत्सल' की छवि को तोड़ा था, उसी तरह यहाँ मलखान सिंह ने भगवान के दीनबन्धु और न्यायकर्ता की छवि को तोड़ा है। यथा—

“हमारी बस्ती में/खांसती—बोझा ढोती
लाशों को देख/जिन्दा रहने का साहस ही

खो बैठेगा तू।
हम फिर भी जिन्दा हैं
और तू चुप है/गूंगे की तरह चुप
गोया तू मुसिफ नहीं
शैतान का ही वंशज है।”⁶

उर्दू शायरी में खुदा को ‘लामकां’ कहा गया है, अर्थात् जिसका कहीं आवास नहीं है। मन्दिर हों या मठ सभी ‘लामकां’ हैं, जिनका ‘लामकां’ से कोई वास्ता नहीं हो सकता है। कबीर भी कहते हैं कि ईश्वर मन्दिर, काबा और कैलाश में नहीं, बल्कि आदमी के दिल में रहता है। इसलिये कवि ठीक कहता है कि ईश्वर को जब मन्दिर और मठ में सीमित कर दिया जाता है, तो वह मर जाता है। यथा—

“ईश्वर की मौत
उस दिन होती है
जब बनता है कोई मन्दिर या मठ।”

अन्त में कवि ईश्वर के अस्तित्व का खण्डन करते हुए बहुत ही तार्किक सवाल उठाता है—

“ईश्वर की मौत उस पल होती है
जब मेरे भीतर उभरता है सवाल—
ईश्वर का जन्म
किस माँ की कोख से हुआ था?
ईश्वर का बाप कौन?”

इन गरीब दलितों को सवर्णों की व्यवस्था में क्या-क्या झेलना पड़ा, इसका मार्मिक वर्णन जयप्रकाश कर्दम ने ‘बेमानी है आजादी’ कविता में किया है। यथा —

“नहीं निकल सकता जो आज भी
पहनकर नये कपड़े
नहीं निकल सकती जिसकी
घोड़ी पर बारात
नहीं बैठ सकता जो आज भी
सवर्णों के सामने खाट पर
साठ साल का बूढ़ा भी
दुध-मुंह बच्चों तक को
मिमिया कर कहता है ‘बाप’।
नहीं कर सकता
अपनी इच्छा और पसन्द का काम।
छोटे से कर्ज के बदले
लिख देता है
कई पीढ़ियों की जिन्दगी
साहूगार के नाम।
गांव की पंचायत है जिसकी सुप्रीम कोर्ट

जी रहा है जो स्वराज में भी
गुलामों सी जिन्दगी।”⁷

भारतीय संविधान में स्वतंत्रता, समानता और सामाजिक न्याय की व्यवस्थाएं आकर्षित करती हैं, लेकिन भारतीय समाज में दलित वर्गों और शोषितों के प्रति वही दासता-असमानता और अन्याय की व्यवस्था आज भी जीवित है। कवि इसके लिये संविधान को नहीं, द्विज शोषक वर्ग को दोषी मानता है। ‘कब तक चलेगा’ कविता में कवि ईश गंगानियां कहते हैं—

“भारतीय संविधान मना चुका है
अपनी स्वर्ण जयन्ती भी/लेकिन आज भी
न्याय की आंख पर/पट्टी बँधी है
तभी तो इक्कीसवीं सदी में भी
द्विज ही बने हैं इसकी आंखें...
कवि पूछता है—
आखिर न्याय को
अंधा बनाने का ढोंग
कब तक चलेगा?”⁸

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि दलित कविता का सम्पूर्ण इतिहास मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करता है। संवैधानिक अधिकारों की रक्षा करता है। एक सच्चे मनुष्य के रूप में उसके मानवीय अधिकारों की पड़ताल करता है। सदियों से उपेक्षा का शिकार हुए मनुष्य के मनुष्यत्व को दबाया गया, उसे दलित कविता ने पुनः स्थापित कर इक्कीसवीं सदी के वैश्विक सरोकारों से जोड़ा है। निःसन्देह सच्चे अर्थों में दलित कविता ने भारतीय समाज में एक स्वस्थ ‘मानवीय मूल्यों’ का शंखनाद किया है।

सन्दर्भ सूची

1. असंग घोष : दलित निर्वाचित कविताएं, धर्म, पृष्ठ सं. 120—121
2. आक्रोश (कविता संग्रह) — डॉ. सी.बी. भारती, लोक सूचक प्रकाशन, नीम करोरी, जिला फर्रुखाबाद, उ.प्र., प्र.सं. 1996, पृ. 49
3. सुनो ब्राह्मण (कविता संग्रह) — मलखान सिंह, परिवेश प्रकाशन, शक्ति नगर, चंदौसी, मुरादाबाद, उ.प्र., प्र.सं. 1996, पृष्ठ—1 और 2
4. सुनो ब्राह्मण (कविता संग्रह)— मलखान सिंह, परिवेश प्रकाशन, शक्ति नगर, चंदौसी मुरादाबाद, उ. प्र., प्रथम संस्करण—1996, पृष्ठ—64—65
5. सुनो ब्राह्मण (कविता संग्रह) — मलखान सिंह, परिवेश प्रकाशन, शक्ति नगर, चंदौसी मुरादाबाद, उ.प्र., प्र.सं. 1996, पृष्ठ—18
6. सुनो ब्राह्मण (कविता संग्रह) — मलखान सिंह, परिवेश प्रकाशन, शक्ति नगर, चंदौसी मुरादाबाद, उ.प्र., प्र.सं. 1996, पृष्ठ—19
7. गूँगा नहीं था मैं (कविता संग्रह) — जयप्रकाश कर्दम, अतिशय प्रकाशन, हरिनगर, दिल्ली, प्र.सं. 1997, पृष्ठ—36
8. हार नहीं मानूँगा (कविता संग्रह) — ईश कुमार गंगानिया, अतिशय प्रकाशन, हरिनगर, दिल्ली, प्र.सं. 2000, पृष्ठ—64



आदिवासी चेतना का स्वर और हिन्दी कथा साहित्य

डॉ. रवि कुमार यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी)

राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर (उ.प्र.)

महिलाएँ, दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक व अति पिछड़े अन्य वर्ग को हाशिये के समाज में शामिल किया गया है। यहां 'हाशिये' शब्द का अभिप्राय समझ लेना आवश्यक है अन्यथा इनको आधार बनाकर लिखे गये साहित्य का सही मूल्यांकन करना मुश्किल हो जायेगा। किसी पृष्ठ में लेखन का टंकण करने से पूर्व शीर्ष एवं परम्परा अनुसार मुख्य रूप से बायीं ओर कुछ जगह छोड़ी जाती है और इस छूटी हुई जगह को हाशिया कहा जाता है। इस दृष्टि से देखा जाये तो राष्ट्र में कुछ समाज/समुदाय विकास की दृष्टि से पीछे छूट गये हैं। इन पीछे छूटे हुए समाज/समुदाय को ही हाशिये का समाज कहा गया है। डॉ. हरिराम मीणा जी ने अपनी पुस्तक 'आदिवासी दुनिया' में 'हाशिये के समाज' की सामान्यीकृत परिभाषा देते हुये कहा है कि 'किसी भी राष्ट्र समाज के उन घटकों के मानव समुदाय के सम्मिलित समाज को हाशिये का समाज कहा गया है जो समाज के अगुवा तबके की तुलना में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्तर पर किन्ही कारणों से पीछे रह गया है।' (पृष्ठ सं० 2) इस तरह दलित, दमित, शोषित व धर्म के स्तर पर अल्पसंख्यक घटकों का बृहत् समाज हाशिये का समाज बनता है। इसी श्रेणी में हम आदिवासी समाज को सम्मिलित कर सकते हैं। अब प्रश्न उठता है कि आदिवासी कौन हैं? इस प्रश्न का उत्तर हरिराम मीणा जी ने देते हुये कहा है कि "आर्य-अनार्य श्रृंखला के दौरान जो जनसमूह विजेताओं के पकड़ से बाहर खदेड़ दिये गये या बचकर दूरदराज के सुरक्षित दुर्गम जंगलों और पहाड़ों में शरण लेने को विवश हुए वे आज के आदिवासी कहे जा सकते हैं।"

अब जब हम आदिवासी समाज को उनके जनजीवन के चित्रण को हिन्दी साहित्य में तलाशते हैं तो पाते हैं कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में इन्हें उचित स्थान प्रदान नहीं किया गया है। आदिवासी साहित्य पर हिन्दी लेखकों ने ध्यान नहीं दिया है। आदिवासी संस्कृति से परिचित करवाने में हिन्दी साहित्य कमजोर हैं। जितना साहित्य हिन्दी में अनेक विषयों पर पाया जाता है उसकी अपेक्षा में आदिवासी साहित्य काफी कम है। 'आदिवासी साहित्य' यानि जिसमें उनकी अपनी भाषा में लोकगीत, कथाएँ, प्रथाएँ आदि का वर्णन होता है वही आदिवासी साहित्य कहा जाता है।"

जब हम भारतीय हिन्दी साहित्य पढ़ते हैं तो उसमें हम बाहर से आने वाले और यहाँ आकर बसने वाले लोगों का ही साहित्य पढ़ते हैं। पर जो यहां आदिम है जिनका अपना इतिहास है अपनी कथाएं हैं, साहस हैं, शौर्य है। ऐसे लोगों को साहित्य से परे रखा गया। हिन्दी साहित्य में रामायण, महाभारत के दो तीन पात्रों को छोड़कर आदिवासी जनजीवन सीधे इतिहास के आधुनिक काल में चित्रित होता हुआ नजर आता है। आदिकाल और मध्यकाल में आदिवासी जनजीवन साहित्य से बिल्कुल नदारद है। हिन्दी साहित्य में आदिवासी जनजीवन नदारद होने का तात्पर्य यह नहीं है कि आदिवासी जनजीवन पर किसी अन्य भाषा में भी कुछ नहीं लिखा गया होगा। अगर हम आदिवासी साहित्य का इतिहास पढ़ें तो ज्ञात होगा कि हिन्दी साहित्य में किस अमूल्य निधि का अभाव है। इस अभाव की पूर्ति का प्रयास आधुनिक काल में कई लेखकों द्वारा किया जाने लगा। कुछ हिन्दी साहित्यकारों की नजर आदिवासी समाज और उनके जनजीवन की विषमताओं पर पड़ने लगी थी। आदिवासी जनजीवन के चित्रण का यह प्रथम प्रयास महत्वपूर्ण व सराहनीय है। गैर आदिवासी रचनाकारों ने आदिवासियों पर जो साहित्य रचा उससे आदिवासी भले ही पूर्ण सहमत ना हो किन्तु इससे उस साहित्य को हम अनदेखा नहीं कर सकते।

वर्तमान समय जो कि शिक्षा का समय है ऐसा समय जब हाशिये के समाज स्वयं को मुख्यधारा में लाने का प्रयास कर रहे हैं, ऐसे समय में आदिवासी समाज भी अब स्वयं की पहचान कर मुख्यधारा के साथ चलने को कदम बढ़ा रहा है।

आज के समय में आदिवासी, लेखक रचनाकार हिन्दी लेखकों की तुलना में भले ही कम हो, पर वे इस कार्य में लगे हुए हैं और समय की धारा के साथ कदम मिलाना चाहते हैं। वे कल, आज और कल को जोड़कर चलाने की प्रक्रिया में लगे हुये हैं। राजनैतिक चेतना और शिक्षा के विस्तार के साथ आदिवासियों को भी अपनी भाषा और संस्कृति की अच्छाइयां नजर आने लगीं। आज तक आदिवासी जीवन की व्याख्या करने वाले तथा उनके सलाहकार गैर आदिवासी ही रहे हैं। गैर आदिवासी रचनाकारों ने आदिवासियों पर जो भी लिखा उससे आदिवासी सहमत नहीं हैं। अतः आदिवासी अब स्वयं आगे बढ़कर अपना स्वर साहित्य में मुखरित कर रहे हैं। उन्होंने जब अपने इतिहास को, मौखिक साहित्य को गीतों, कहानियों को जाना, हिन्दी साहित्य को जाना तब उन्हें लगा ये तो हमारे पास भी है। किन्तु लिखित साहित्य की शुरुआत तो आधुनिक शिक्षा के बाद ही हुई। जो साहित्य, संस्कृति को संजोकर रखता है, वह जीवन में अस्मिता जगाता है। साहित्य हमारे जीवन को दिशा और गति देता है। अविकसित समूहों को अपना हितार्थ समझाने के लिए ज्योतिबा राव फुले, बाबा साहेब अम्बेडकर, विरसा मुंडा जैसे विचारक पैदा हुए और अविकसित समूह के हितार्थ का साहित्य रचा जाने लगा। आदिवासियों के अनगिनत आन्दोलनों से अनेक सृजनशील लेखक एवं विचारक पैदा हुए। हिन्दी में आदिवासी साहित्य की धारणा बन रही है। परम्परा और आधुनिकता का विकास और विनाश का मुख्य धारा की संस्कृति और आदिवासी मूल्य बोध का अस्तित्व, पहचान और विकास का जो द्वंद्व है, इन सबके बीच 'आदिवासी राजनीति, साहित्य, संस्कृति' की एक नयी अवधारणा के निर्माण का यह दौर है। कोई भी अभिव्यक्ति 'स्व' के बिना सम्भव नहीं है। आदिवासी अब साहित्य में स्वानुभूति का स्वर लिख रहे हैं। आदिवासी ये मानते हैं कि गैर-आदिवासियों ने आदिवासी जीवन को उपभोक्ता, मानसिकता की नजरों से देखा है। हिन्दी साहित्य में आदिवासी जीवन का उज्ज्वल पक्ष उन्हें कम ही दिखायी देता है। इसी कमी को दूर करने के लिये आज आदिवासी स्वयं चेतना का स्वर साहित्य में उत्पन्न कर रहे हैं। आज आदिवासी साहित्य 90 भाषाओं में लिखा जाने लगा है। यह लेखन हिन्दी में भी प्रचुर मात्रा में हो रहा है। आज आदिवासियों में चेतना जागी है। वह नई विचारधाराओं और क्रान्तियों से परिचित हुआ है जिनके परिपेक्ष्य में वह अपनी नई पुरानी स्थितियों को तौलने लगा है। उसमें अपने होने न होने, अपने हकों के अस्तित्व की वर्तमान स्थिति, अपने साथ हुये भेदभाव व अन्याय का बोध भी जगा है। यही बोध उसके साहित्य में नजर आ रहा है। आदिवासी लेखन की उभरती चेतना का एक सटीक चित्रण हमें वाहरु सोनवणे की 'स्टेज' नाम की कविता की इन पंक्तियों में मिलता है—

“हम स्टेज पर गये ही नहीं
जो हमारे नाम पर बनायी गयी थी
हमे बुलाया भी नहीं गया
उंगली के इशारे से
हमारी जगह हमें दिखा दी गई
हम वहीं बैठ गये
हमें खूब शाबासी मिली
और 'वे' स्टेज पर खड़े होकर
हमारा दुःख हमें ही बताते रहे
“हमारा दुःख अपना ही रहा
जो कभी उनका हुआ नहीं

हम बड़बड़ाएं
अपनी शंकाएं जताईं
'वे' कान देकर सुनते रहे और हुंकारे
हमारे कान पकड़कर हमें धमकाया
"माफी मांगों नहीं तो!"

यह कविता आदिवासी लेखन में उभर रही चेतना को परिभाषित और उस लेखन की जरूरत को रेखांकित करती है। दूसरों द्वारा अपने दुःख की चर्चा की बजाय, अपना दुःख खुद व्यक्त करने की चेतना के साथ-साथ ही जगी सदियों की चुप्पी तोड़कर प्रस्थापितों द्वारा घेरे गये दायरे और लक्ष्मण रेखाएं तोड़ने की चेतना। इस चेतना के साथ अपने लोक साहित्य की समृद्ध परम्परा को स्रोत बनाते हुये आदिवासियों ने समकालीन साहित्य की शुरुआत की।

आदिवासी लेखन की चेतना का उभार बहुमुखी व्यापक और यथार्थपरक है। यह प्रतिबद्ध लेखन है जिसका लक्ष्य समाज और मानव का कल्याण है। जो जनतांत्रिक है और समता, बराबरी, भाईचारा में विश्वास रखता है। शिक्षा के महत्व को समझते हुए यह लेखन साक्षरता, चेतना और जन जागृति के अभियान के साथ आगे बढ़ रहा है।

साहित्य की अनेक विधाओं में आदिवासी चेतना का स्वर मुखरित होने लगा है। कहानी, कविता, निबन्ध, नाटक, उपन्यास, संस्मरण, आत्मकथा आदि में आदिवासियों की चेतना सिर उठाती नजर आने लगी है।

सबसे पहले बात करते हैं कहानियों में चित्रित आदिवासी समाज की, आदिवासी जीवन की हिन्दी साहित्य में आदिवासी अंचल की कहानियों के क्रमिक विकास का इतिवृत्त जुटाना बहुत मुश्किल है। सन 1954 में योगेन्द्र नाथ सिन्हा का पहला कहानी संग्रह छपा था, 'पहाड़ की पुकार' जिसमें सोलह कहानियां आदिवासी अंचल की छपी थीं। सन् 1956 में सिन्हा की दो कहानी संग्रह और आये 'दुंभी हो' और 'मूँछ की लड़ाई' / सिन्हा के इन तीन कहानी संग्रह में कुल सत्ताईस कहानियां ऐसी हैं जो हो, मुण्डा, उरांव, खड़िया समुदाय की मर्मस्पर्शी कथा कहती है। इसके बावजूद उस पहली कहानी की खोज जारी है। एक शोध अध्ययन में 'मोहनलाल महतो 'वियोगी' के सन् 1929 में प्रकाशित कहानी संग्रह 'वनवासनी सुंदरी' का उल्लेख हुआ है। जिसमें एक आदिवासी कन्या की प्रेमकथा अंकित है। कृष्णराज गुप्त की माने तो रांची से निकलने वाली 'छोटानागपुर पत्रिका' के सन् 1924 में प्रकाशित अंक में छपी बैद्यनाथ पोद्दार की एक कहानी को यह श्रेय दिया जा सकता है। भले ही आदिवासी जीवन को केन्द्र में लेकर लिखी गयी पहली कहानी के विषय में मतभेद हो किन्तु आजादी के बाद इन आदिवासियों पर तत्कालीन रचनाकारों का ध्यान जाने लगा था और उन्होंने समाज के हाशिये पर पड़े आदिवासियों को अपनी रचनाओं के केन्द्र में लाना आरम्भ कर दिया था। आजादी के बाद कुछ रचनाकारों ने आदिवासी अंचल को अपनी कहानी का विषय बनाया और वर्तमान समय में तो इसकी संख्या बड़े स्तर पर पहुँच गई। इस संख्या के विस्तार के परिणामस्वरूप आज 'आदिवासी विमर्श' की चर्चा जोरों पर है।

सन 1959 में राजेन्द्र अवस्थी के कहानी संग्रह 'महुआ' 'आम के जंगल' प्रकाशित हुये जिनमें तत्कालीन छत्तीसगढ़ के बस्तर इलाके के आदिवासी अंचल की परम्पराओं, रीति रिवाजों, लोकविश्वासों, सामाजिक संगठनों, सांस्कृतिक उत्सवों, पर्वों और त्योहारों का रोचक चित्रण किया गया है। नमिता सिंह का कहानी संकलन 'जंगल गाथा' में आदिवासी जीवन का चित्रण मिलता है। उसी प्रकार कृष्णा अग्निहोत्री का कहानी संग्रह 'जिन्दा आदमी' की दो कहानियाँ "काटों के झुरमुट" और 'रमकलिया' में मध्यप्रदेश की आदिवासी जिन्दगी की भयावह तस्वीर उकेरी गई है। इनके अतिरिक्त अनेक समर्थ कहानीकारों ने आदिवासी जीवन की विभिन्न स्थितियों पर गंभीरता से लिखा है। इनमें राकेश वत्स, संजीव, राकेश कुमार सिंह तेजिन्दर, अरुण प्रकाश की 'बेला एक्का लौट रही है', शंकर लाल मीणा की 'कहानी के बाहर की मनीष राय, शंकर लाल मीणा, भगवान दास मोरवाल, भाल चन्द्र जोशी, रणेन्द्र, प्रत्यक्षा

तक की युवा पीढ़ी शामिल है। राकेश वत्स की 'अवशेष' स्वयं प्रकाश की 'बलि' मनीष राय की 'शिलान्यास' कहानी आदिवासी समाज की स्त्री शोषण, गरीबी, लाचारी, जीवन-संघर्ष और आस्तित्व की लड़ाई को प्रस्तुत किया गया है। मेहरुन्निसा परवेज का कहानी संग्रह 'मेरी बस्तर की कहानियाँ' की कुछ कहानियाँ औरत आदिवासी जीवन पर लिखी गयी हैं।

'टीस', 'घर को चलो दुलारी बाई', 'दुनियाँ की सबसे हसीन औरत', संजीव कही आदिवासी जीवन पर लिखी कहानियाँ हैं। उन्होने अपनी कहानियों में आदिवासी जनजीवन का चित्रण अत्यन्त सूक्ष्मता से करके उन्हें विश्वसनीय तथा सराहनीय बनाया है।

उपन्यासों में आदिवासी जीवन की बात की जाये कि आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी का पहला उपन्यास कौन सा है तो इस विषय में कहानी जितनी मुश्किलें नहीं होगी। आदिवासी जीवन से सम्बन्धित प्रथम उपन्यास 'वसन्तमालती' सन् 1899 में आया। इसके पश्चात 1904 में मन्नन द्विवेदी का 'रामलाल', सन् 1907 में अयोध्या सिंह उपाध्याय का 'अधखिला फूल', 1909 में रामचीज सिंह का 'बनविहंगिनी', 1915 में ब्रजनन्दन सहाय द्वारा लिखित उपन्यास 'अरण्य बाला', 1947 में वृन्दावन लाल वर्मा का ऐतिहासिक उपन्यास 'कचनार' प्रकाशित हुआ। इन सभी उपन्यासों में आदिवासी जीवन की झांकियाँ अथवा झलकियाँ दिखाई देती हैं। किन्तु 1952 में देवेन्द्र सत्यार्थी का उपन्यास 'रथ के पहिये' प्रकाशित हुआ जो पूर्णतः आदिवासी जीवन को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। अतः हम औपचारिक तौर पर इस उपन्यास को प्रथम आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यास का दर्जा दे सकते हैं। इसके बाद फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यास 'मैला आंचल' (1954) में आदिवासी जनजाति के जीवन को अंकित किया गया है। योगेन्द्र नाथ सिन्हा के दो उपन्यास 'वनलक्ष्मी' (1956) और 'वन के मन में' (1960) 'हो' आदिवासी जीवन पर आधारित हैं। रांगेय राघव का 1957 में प्रकाशित उपन्यास 'कब तक पुकारूँ' जयराम पेशा नट-करनट को आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास है। इसके अतिरिक्त शिवप्रसाद सिंह का 'शैलूश' भी नटों के कबीलाई जीवन को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। पर अगर हरिराम मीणा जी की माने तो "नृत्य शास्त्रियों, समाज वैज्ञानिकों एवं भारतीय संविधान के प्रावधानों के तहत नट समुदाय को आदिवासी नहीं माना गया है। इसलिये इन उपन्यासों को आदिवासी जीवन पर केन्द्रित उपन्यास नहीं कहा जा सकता" (आदिवासी दुनियाँ, पृष्ठ 192) इसी प्रकार मणि मधुकर का उपन्यास 'पिंजरे में पन्ना' (1981) जो कि खानाबदोश समुदाय राजस्थान के गाड़ियाँ लुहारों पर केन्द्रित है, उसे भी हरिराम मीणा जी आदिवासी उपन्यासों की सीमा से बाहर मानते हैं।

राजेन्द्र अवस्थी के उपन्यास 'सूरज किरण की छाँव' (1958) और 'जंगल के फूल' (1969) आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यास हैं। नागार्जुन का 'वरुण के बेटे' (1957) और उदय शंकर भट्टा का 'सागर लहरें और मनुष्य' उपन्यास मछुआरों को केन्द्र में रखकर लिखे गये उपन्यास हैं। हिमांशु जोशी ने आदिवासियों पर खूब लेखनी चलाई। उनके उपन्यास 'अरण्य' (1973), 'कगार की आग' (1978), 'सु-राज' (1992), 'समय साक्षी है', 'महासागर' आदिवासी जनजीवन को केन्द्र में रखकर लिखे गये हैं। 'किसनगढ़ के अहेरी' (1981), 'धार' (1990), 'सावधान नीचे आग है' (1998), 'पांव तले की दूब' (1995) संजीव के आदिवासी जीवन पर लिखे गये उपन्यास हैं। जय प्रकाश भारती का 'कोहरे में खाये चांदी के पहाड़' (1959), वीरेन्द्र जैन का 'पार और 'डूब', पुन्नी सिंह का 'सहराना', प्रकाश मिश्र के 'जहाँ बॉस फूलते हैं', 'रूपतिल्ली की कथा', मनमोहन पाठक का 'गगन घटा घहरानी', विनोद कुमार का 'समर शेष है', राकेश कुमार सिंह के 'पठार पर कोहरा', 'जो इतिहास में नहीं है', पीटर पाल एक्का का 'जंगल के गीत', 'मौनघाटी', मधु कांकरिया का 'खुले गगन के लाल सितारे', हरिराम मीणा का 'धूणी तये तीर', मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबूतरी' और 'इदन्नम', हबीब कैफी का 'गमना' राकेश वत्स का 'जंगल के आस-पास' भगवान दास मोरवाल का 'रेत' और 'काला पहाड़' तेजिन्दर का 'काला पादरी', मधुकर सिंह का 'बाजत अनहद ढोल', सोहन शर्मा का 'मीणा घाटी' जैसे और भी कई उपन्यास हैं जो आदिवासी जनजीवन की सभ्यता, संस्कृति, परम्परा,

मान्यता, मूल्य रीति-रिवाज ही नहीं उनके जीवन की विशमता, निर्धरता, अधिकारों के प्रति अज्ञानता, अशिक्षा, अंधविश्वास से रूबरू करवाते हुये उनके संघर्ष और उससे उत्पन्न चेतना तक के सफर को पाठकों के सामने लाकर खड़ा कर देती है और सभ्य समाज के मान में आदिवासियों की जो झूठी और धुंधली तस्वीर है उस पर से परत दर परत धूल हटाने का कार्य इन उपन्यासों द्वारा किया गया है। उपन्यासों के इस क्रम में एक बात देखने में आयी है कि हिन्दी उपन्यासों आदिवासी जीवन में पहले जो रोमांस और कल्पना मुख्यतया उभर कर सामने आती थी धीरे धीरे वह रोमांस, पीड़ा और शोषण तथा कल्पना वास्तविकता में तब्दील होती गई। पहले आदिवासियों को शोषित होते हुये अथवा आपराधिक जनजाति के रूप में चित्रित किया जाता था किन्तु समय के साथ उन्हें संघर्ष करते और चेतना युक्त होते दिखाना उपन्यासकारों का एक सराहनीय कार्य है।

हिन्दी कथा साहित्य में आदिवासी चेतना का स्वर जोरों से सुनाई देने लगा है। कथा साहित्य में अब वास्तविक पात्रों को गढ़ा जाने लगा है। अब आदिवासी पात्र रोमांस में डूबे हुये शोषित मजदूर के रूप में चित्रित और आपराधिक जनजाति के रूप में ही चित्रित नहीं हो रहे हैं। कथा साहित्य में अब इन आदिवासियों को उनके मूल रूप में अर्थात् समता और विषमता दोनों रूप में दिखाया जाने लगा है। आदिवासियों से जुड़ी दो प्रमुख समस्याएं—नक्सलवाद और विस्थापन पर अब लेखकों की दृष्टि जाने लगी है और आदिवासियों की ये दो समस्यायें हिन्दी कथा साहित्य के केन्द्र में शनैः शनैः अपना स्थान बना चुकी है। तमाम साहित्य अब आदिवासी के पक्ष में खड़ा दिखायी देता है। और पाठक वर्ग को आदिवासियों के प्रति संवेदनशील बना रहा है। इस क्रम में आदिवासी स्वयं की अपनी पीड़ा अपने शब्दों में व्यक्त करने लगा है। और हिन्दी लेखकों को ये बताने का प्रयास करता जान पड़ता है कि दूर से दूख को देखना और दूख को स्वयं भोगना अलग-अलग बात है। यही अन्तर शायद गैर आदिवासी साहित्यकार और आदिवासी साहित्यकारों में देखने को मिलता है।



दलित-विमर्श की दृष्टि से राजेन्द्र यादव के उपन्यास

डॉ० शोभारानी सिंह चौधरी
हिन्दी विभाग,
तिलक महाविद्यालय, औरैया (उ.प्र.)

राजेन्द्र यादव ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने दलित विमर्श को प्रमुखता से उठाया है। दलितों के प्रति परंपरावादी सोच ने सदैव घृणास्पद वातावरण बनाकर घेरा बन्दी कर रखी है। उसे तोड़ने और समाप्त करने के लिए यादव जी ने मुहिम चलाकर दलित विमर्श को शक्ति प्रदान की। साहित्य में 'दलित विमर्श' के मुख्यधारा में आने के संबंध में राजेन्द्र यादव का मानना है कि कोई भी परिवर्तन तिथि-तारीखों के हिसाब से नहीं आता है। जो भी परिवर्तन हम देखते हैं चाहे वह साहित्य में हों या समाज में, वह धीरे-धीरे निरंतर विकास करके ही हमारे सामने आते हैं। राजेन्द्र यादव दलित विमर्श के प्रति प्रतिबद्ध रचनाकार हैं। इनके कहानी साहित्य में और हंस की सम्पादकीय में विस्तृत दलित विमर्श उपलब्ध है। उपन्यास साहित्य में उनके दलित-विमर्श को उतना स्थान नहीं मिला जितना कहानियों में है फिर भी कहीं-कहीं कुछ उपन्यासों में जो देखा उसी का यथावत चित्रण कर रूढ़ि वर्चस्ववाद को नकारकर प्रगतिवादी विचारधारा को आगे बढ़ाया है।

राजेन्द्र यादव जी ने दलितों पर केन्द्रित कोई स्वतंत्र उपन्यास नहीं लिखा है। इनके उपन्यासों में कहीं-कहीं ऐसे प्रसंग समाहित हैं जो दलित विमर्श को उद्घाटित करते हैं। 'सारा आकाश' उपन्यास में एक पंजाबी शरणार्थी को मंदिर के पुजारियों ने इसलिए प्रताड़ित किया क्योंकि वह मंदिर के प्रांगण में घुस आया था और प्रसाद माँग रहा था। हृदयविहीन व आचरणहीन पुजारियों का यह चित्रण अविस्मरणीय छाप छोड़ता है। इस संबंध में समर का कथन है—“.....कमीज-पाजामा पहने एक निहायत ही कमजोर, मरा, भिनकता-सा पंजाबी शरणार्थी मंदिर में घुस आया था और प्रसाद माँग रहा था। पुजारी जी ने बाहर बरगद के नीचे जलती धूनी की लकड़ी से उसे कुत्ते की तरह जैसे मार-मारकर भगाया—उस दृश्य से मेरे मन में कुछ फट गया। बोला मैं कुछ नहीं, सिर्फ देखता रहा....”¹ इस प्रसंग से पुजारियों का वास्तविक चरित्र उद्घाटित होता है।

इसी उपन्यास में पंडित नवलकिशोर और समर के बाबूजी के संवादों द्वारा भारतीय परम्पराओं का समर्थन करते हुए नई पीढ़ी की प्रगतिवादी सोच को निन्दनीय बताया गया है। भारतीय सभ्यता और पश्चिमी सभ्यता की तुलना करते हुए समर के बाबूजी कहते हैं—“और सच पूछा जाय तो अपनी भारतीय सभ्यता को यह सभ्यता पा थोड़े ही सकती है! यों हाथ-पाँव चाहे जितने मार ले। आजकल तो पता नहीं चलता कि यह दुनिया किस रसातल में जाकर टिकेगी! और भाई साहब, दोष किसे दें? सब अपने किए का फल है। जो मार्ग हजारों साल सोच-समझकर अपने ऋषि-मुनियों ने बनाया, उसे तो आज के लड़के कहते हैं, ये जंगलियों के बनाए गए नियम हैं। बोलो, अपने पुरखों को जंगली कहते हुए तुम्हें शर्म भी नहीं आती! और साहब, मानना पड़ेगा उनके दिमाग को! एक-एक नियम क्या सोचकर बनाया है कि दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। जातियाँ बनाई, सबके कर्म निर्धारित किए ... सब अपने कायदों में चलें तो यह सब चीखपुकार....”² (क्यों सुनाई पड़े।) इस प्रकार स्पष्ट है कि यही जातिवादी सोच ही दलित शोषण का मुख्य कारण है और दलित विमर्श संबंधी विचारक इस सामन्तवादी सोच का स्पष्ट विरोध करते हैं। आज भी हमारे समाज में जाति-पाँति की व्यवस्था विद्यमान है और हमारा अधिकांश रूढ़िवादी समाज आज भी इन्हीं मूल्यों को धारण किए हुए है। इस तथ्य को 'सारा आकाश' में उद्घाटित किया गया है।

‘उखड़े हुए लोग’ में सूरज अपनी जिंदगी की कहानी शरद और जया से नदी के किनारे बम्बई जैसे शहरों के परिवर्तित सामाजिक परिदृश्य के संबंध में कहता है—“एक चीज ने मुझे कभी बाधा नहीं पहुँचाई—वैसे बम्बई जैसे शहर में यह चीज सामने आती भी नहीं है, वह यह भावना कि मेरी जाति यह है और मैं यह काम कर रहा हूँ, या कि कोई परिचित देख लेगा? तो क्या कहेगा? रोज दिन-भर मेहनत करना और शाम को चौपाटी या ‘नारीमन पॉइंट’ पर जा पड़ना।”³ आगे वह मुम्बई में अपने द्वारा किये गये कार्यों के विषय में कहता है—“मैंने पत्रकारिता सीखी, कुछ समय निकालकर हम लोग मजदूरों और भंगी-बस्तियों में पढ़ाने जाते थे। इसी काल में जीवन को देखने का मेरा सारा दृष्टिकोण ही बदल गया...”⁴ इस प्रकार स्पष्ट है कि सूरज जैसे पात्रों के माध्यम से यादव जी ने जाति-पाँति के उन्मूलन का सन्देश दिया है।

नेता भइया देशबन्धु, शरद को गीता के महत्त्व को समझाते हुए कहता है कि, “अभी उसी दिन की तो बात है, जिस दिन आप आए थे उससे दो-तीन दिन पहले की; एक सार्वजनिक मीटिंग थी, मैं प्रेसीडेंट था। तभी मैंने बताया था कि विश्व-शान्ति का एकमात्र उपाय गीता है। यही वह सन्देश है जो ‘भारत’ विश्व को दे सकता है, मानव-जाति को दे सकता है। कुत्ता, हाथी, ब्राह्मण, चांडाल सभी में एक ही आत्मा को समझो।...कहाँ है आपके रूस और चीन में साम्यवाद, जिसमें श्वपच और द्विज सबके भीतर एक ही आत्मा की प्रतिष्ठा करके आन्तरिक और सार्वभौमिक सत्य की व्याख्या की गई हो?”⁵ इस प्रकार यादव जी नेता भइया देशबन्धु के माध्यम से सभी प्राणियों में एक ही आत्मा होने की बात कहते हैं। उनके दलित विमर्श में भी यह तथ्य दृष्टिगोचर होता है जो मानव को मानव मानने की बात करता है, न कि शूद्र, पंडित, वैश्य आदि।

प्रोफेसर कपिल की धर्मपत्नी रुढ़िवादी, अन्धविश्वासी, छुआछूत, जातिपाँति और भेदभाव को मानने वाली हैं। उनके यहाँ आयोजित दावत में सूरज, शरद और जया पहुँचे तो बड़ी आवभगत हुई पर प्रोफेसरनी के व्यवहार ने धर्मनिरपेक्षता को तार-तार कर डाला। जया ने महरी के पास से लोटा उठाकर घड़े से पानी भर लिया था। चौका से ही प्रोफेसरनी सुधा पर दहाड़ी, “सुधा, पानी तुम खुद क्यों नहीं ले लेती होगी, उन्हें क्यों तंग कर रही होगी?” “...सुधा तुम अंधी हो रही होगी, मेरा दस आने का घड़ा खराब कर दिया—जाने कौन जात की होगी, यह कमबख्त रौंड़। पता नहीं, जाने कौन जात है? इन लोगों की शादी थोड़े हुई है?”⁶ इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रोफेसरनी जाति-पाँति को मानने वाली है और वह नए प्रतिमानों की आलोचना भी करती है। राजेन्द्र जी ने प्रस्तुत उपन्यास में प्रोफेसरनी के माध्यम से रुढ़िवादी समाज का सफल चित्रण किया है।

उपन्यास ‘शह और मात’ में प्रिंसेज अपर्णा उच्चकुल में जन्मी है किंतु वह प्रगतिवादी विचारधारा में विश्वास रखती है और अस्पृश्यता एवं ऊँच-नीच को नहीं मानती है। इस संबंध में वह सुजाता से कहती है—“.....आजकल प्रगतिवाद का युग है, और आपकी निगाहों में हम लोग शोशक, अत्याचारी और सांमत-पँजीपति, जाने क्या-क्या हैं। इसलिए आपको हमसे मिलने में शर्म भी लग सकती है....” देखिए, वह एक पूरे वर्ग और व्यवस्था की बात है, इसके लिए कोई एक व्यक्ति क्यों सजा भोगे? अच्छे-से-अच्छे व्यक्ति की नीयत में इसलिए विश्वास न किया जाए कि वह किसी विशेष वर्ग में पैदा हुआ है, यह सिद्धांत मैं नहीं मानती। यह तो वही पुराना जात-पांत वाला पचड़ा आ गया कि शूद्र के घर में पैदा व्यक्ति के सारे गुणों को नजरअंदाज कर दिया और उसे सारे अधिकारों से वंचित कर दिया।”⁷

इसी उपन्यास में राजेन्द्र जी उदय के माध्यम से कहते हैं कि हमारे समाज में ‘आदमी को आदमी के रूप में’ नहीं समझा जाता है उसी के शब्दों में—“आदर्श या किसी बाहरी अंकुश की झोंक में मानव-हृदय की सच्ची भावनाओं, अनुभूतियों और उनकी सम्भावनाओं को जान-बूझकर भुला देने को मैं बेईमानी मानता हूँ। हमारे यहाँ, चूँकि जीवन के मान-मूल्य बहुत ही शाब्दिक, मिथ्या, खोखले और आडम्बरपूर्ण रहे हैं, इसलिए उसके लिए बहुत

ही बड़े साहस और बहुत ही क्रूर ईमानदारी की जरूरत है। यहाँ तो आदमी को आदमी के रूप में लिया ही नहीं जाता, उसकी सारी प्रतिष्ठा या तो उसे बाहरी धार्मिक, नैतिक और सामाजिक ढकोसलों पर होती है, या सबके ऊपर धन पर।...विदेशों में आदमी को नापने के लिए धर्म और खाने-पीने-रहने के ढकोसले नहीं हैं। इसलिए हम खुद मानते हैं कि वहाँ का सामान्य आदमी यहाँ के साधारण आदमी से ज्यादा ईमानदार है, वहाँ की बनी चीज यहाँ की चीज से हर हालत में बेहतर है। इतना तो कम-से-कम विश्वास होता है कि जो चीज हम खरीद रहे हैं, वही हमें मिल रही है। यहाँ तो आप पेंसलीन खरीदने जाइए और आपको विश्वास नहीं होगा कि आप शीशी में दवा लाए हैं या शुद्ध गंगा-जल! हम लोग कहीं भी तो ईमानदार नहीं हैं—झूठे, मक्कार, खोखले, कमजोर, और कुंद—जहन और बातें वेदों से कम की करना नहीं चाहते।⁸ स्पष्ट है कि प्रस्तुत कथन हमारे समाज का परम्परावाद एवं संकुचित सौंच को उजागर करता है, जो दलित विमर्श की आवश्यक शर्त है।

‘एक इंच मुस्कान’ का नायक अमर अनजानी प्रेयसी अमला को पत्र लिखता है और उसको समझाता है कि आप कुछ भी हो, आप मेरे लिए सिर्फ निर्मल अमला हो! मुझे परम्परावादी रूढ़ि धर्म, जाति-पांति भेदभाव से कोई भी मतलब नहीं। अमर के शब्दों में—“शायद दो सौ साल की गुलामी के संस्कार ही हैं कि हमारा समाज अनेक कुण्ठाओं और विकृतियों का शिकार है, वर्ना मैं तो इसमें कतई जाति-पांति या ऊँच-नीच नहीं देखता। तुम्हारे पास पारखी की निगाह है और मेरे पास कलम; हमारे बीच कोई जाति नहीं आएगी...। जब मैं तुम्हें नहीं जानता था और तुम्हारे पत्रों से तुम्हें किसी कॉलेज में पढ़ने वाली लड़की समझता था—तब भी शायद तुम्हारी बातों को इतनी ही गम्भीरता से लेता था। किसी को ‘बड़ा आदमी’ पाकर उसके प्रति ‘विशेष’ भाव रखना उसी गुलामी के लक्षण हैं। जब तुम ‘सामान्य’ लड़की थीं तब भी मेरे लिए उतनी ही विशेष थी...।⁹ प्रस्तुत कथन समतावादी सौंच को स्पष्ट करता है।

शैलेन्द्र प्रगतिवादी विचारधारा का कट्टर विरोधी है। वह चाहता है कि भारत देश की यथास्थिति बनी रहे ताकि परम्परावादी रूढ़ियों की धाराएँ बहती रहें। यथार्थ के प्रयोग के विषय में कहता है कि “शिक्षित होने का अर्थ है, अपने को समझना, जिससे देश में परिवर्तन हों, उन्नतिमूलक, पर बताओ, कितनी उन्नति हो रही है? जो कुछ थोड़ी सी अँग्रेजी पढ़ गए हैं वह अपनी साहिबी में मस्त हैं। अपने को एक विशिष्ट वर्ग का समझ बैठे हैं। वह अपने को सीधा ‘लन्दन रिटर्न’ ही समझते हैं। दूसरा वर्ग मध्यम श्रेणी के नौकरी पेशा लोगों का। परिस्थितियों में जकड़े हुए वह अपने को भूले हुए से प्रवाह में बह रहे हैं। सभ्य बनने की धुन में। इस प्रकार सैकड़ों वर्ग बन गए हैं अलग-अलग। एक दूसरे को हम घृणा और क्षुद्रता से देखते हैं, कितनी खाई बन गई है एक-दूसरे के बीच में जबकि शिक्षा का अर्थ है संगठित होना तो शिक्षा का अर्थ तो यह नहीं है।¹⁰

इससे स्पष्ट होता है कि जात-पाँत की व्यवस्था हमारे समाज में प्राचीनकाल से ही समायी हुई है किंतु पढ़े-लिखे लोगों के कारण भी हमारे समाज में वर्ग भेद उत्पन्न हो गया है जिसे यादव जी ने अपने उपन्यास ‘एक था शैलेन्द्र’ में सफलतापूर्वक दर्शाया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राजेन्द्र यादव जी ने दलित-विमर्श पर एक भी उपन्यास की रचना नहीं की है किंतु उनका दलित संबंधी चिंतन कहीं-कहीं उपन्यासों में अवश्य दिखाई देता है। राजेन्द्र जी के उपन्यासों में उनका ‘दलित विमर्श’ प्रासंगिक रूप में दृष्टिगोचर होता है जिसके चित्रण में उपन्यासकार सफल कहा जा सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. सारा आकाश-राजेन्द्र यादव, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002, संस्करण 2008 ई., पृ. 39 ।

2. सारा आकाश—राजेन्द्र यादव, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली—110002, संस्करण 2008 ई., पृ. 100 ।
3. उखड़े हुये लोग—राजेन्द्र यादव, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली—110002, संस्करण 2007 ई., पृ. 241—42 ।
4. उखड़े हुये लोग—राजेन्द्र यादव, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली—110002, संस्करण 2007 ई., पृ. 243 ।
5. उखड़े हुये लोग—राजेन्द्र यादव, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली—110002, संस्करण 2007 ई., पृ. 111 ।
6. उखड़े हुये लोग—राजेन्द्र यादव, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली—110002, संस्करण 2007 ई., पृ. 214 ।
7. शह और मात—राजेन्द्र यादव, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1—बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली—110002, संस्करण पहली आवृत्ति 2005, पृ. 100 ।
8. शह और मात—राजेन्द्र यादव, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1—बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली—110002, संस्करण पहली आवृत्ति 2005, पृ. 111—112 ।
9. एक इंच मुस्कान—राजेन्द्र यादव, राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली—110 006, संस्करण 2006, पृ. 65 ।
10. एक था शैलेन्द्र—राजेन्द्र यादव, वाणी प्रकाशन, 21—ए, दरियागंज, नयी दिल्ली—110 002, संस्करण 2006, पृ. 126 ।



दलित साहित्य का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य : एक मूल्यांकन

डॉ. जितेन्द्र कुमार परमार

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी)

राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर (उ.प्र.)

जॉर्ज लुकाँच ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'स्टडीज इन योरोपियन रियलिज्म' में एक स्थान पर लिखा है कि हमारी संस्कृति इस समय एक अन्धेरी सुरंग के बीच से गुजर रही है। इस सच्चाई को झुठलाया नहीं जा सकता। परन्तु इतिहास-दर्शन के ऊपर यह बताने का दायित्व है कि यह हमारी अन्तिम नियति है या हम इससे बाहर आ जायेंगे और प्रकाश के साथ हमारा फिर साक्षात्कार हो जायेगा। बुर्जुआ सौन्दर्यशास्त्रियों का तो मानना यह है कि इसके चंगुल से निकलने का अब कोई भी रास्ता शेष नहीं है जबकि मार्क्सवादी इतिहास-दर्शन मनुष्य जाति के विकास की प्रक्रिया में इसे एक ऐसा मोड़ मानता है जिससे होकर हम अनिवार्यतः एक सार्थक गन्तव्य तक पहुँचेंगे। परन्तु जिस संस्कृति के अन्धकार से निकलकर प्रकाश से साक्षात्कार की बात लुकाच करते हैं। वह दरअसल है क्या? उसकी प्रकृति क्या है? समकालीन परिवेश में उसकी उपस्थिति किन मूल्यों, प्रतिमानों को दर्शा रही है? उनका आम लोगों—विशेषकर दलितों, पिछड़ों, आदिवासियों और स्त्रियों की जीवन स्थितियों पर क्या, कैसा प्रभाव पड़ रहा है? इस तरह के प्रश्नों पर गम्भीरता के साथ चिन्तन—मनन और परस्पर संवाद की आवश्यकता आज शिद्दत के साथ अहम हो गई है।

भारतीय साहित्य में दलित विमर्श आधुनिक काल में ही नहीं वरन् भारतीय साहित्य के आरम्भ से ही इसके अंकुरण के बीज मिलते हैं। आदिकवि बाल्मीकि ने दलित जीवन को अनुभूत किया। मध्यकालीन संत कवि कबीर, रविदास, तुकाराम, चोखेमल, नामदेव आदि दलित जीवन की पीड़ा से भलीभाँति परिचित थे। वर्तमान सन्दर्भों में भारतीय दलित साहित्य का प्रारम्भ मराठी भाषा से माना जाता है। सन् 1960 ई० के आस-पास 'दलित' शब्द ने अपनी विशेष पहचान बनायी। मराठी दलित साहित्य ने आत्मकथा को एक नया आयाम प्रदान किया। मराठी दलित लेखकों रमाबाई रानाडे, शरण कुमार ने जिस प्रकार अपनी आत्मकथाएँ लिखीं, वे उनकी पीढ़ी की संवेदनशील अभिव्यक्ति से श्रेष्ठ साहित्यिक उपलब्धियाँ बन गईं। संविधान निर्माता एवं प्रसिद्ध समाज चिन्तक डॉ० भीमराव अम्बेडकर की प्रेरणा से दलित चिन्तन का अखिल भारतीय स्तर पर प्रचार—प्रसार हुआ। महात्मा फुले और डॉ० अम्बेडकर जैसे योग्य नेताओं ने स्वतन्त्र भारत की संविधान सभा को दलितों के लिए राजकीय समाजवाद का माडल लागू करने का ज्ञापन दिया था।

समाज में कुछ ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जो अपने परिवेश, धार्मिक मान्यताओं एवं सांस्कृतिक मूल्यों को स्वीकार नहीं करते। अगर वे साधारण व्यक्ति हुये तो ऐसी स्थिति में समाज उनका बहिष्कार करता है यदि वे असाधारण व्यक्ति हैं तथा नये समाज एवं नवीन मूल्यों की कल्पना करते हैं जिससे बहुसंख्यक समाज का कल्याण हो तो वे लोग क्रान्तिदृष्टा बन जाते हैं। ऐसे विशिष्ट व्यक्ति जन सहयोग मिलने पर अपेक्षित परिवर्तन लाने में सफल भी होते हैं। आदिकालीन साहित्य के बौद्ध, जैन, नाथ, सिद्ध कवियों का व्यक्तित्व इसी प्रकार असाधारण था जिन्होंने भारतीय सामाजिक व्यवस्था की आधारशिला वर्णाश्रम धर्म को प्रभावित ही नहीं किया वरन् उसमें युगानुरूप परिवर्तन भी किया। दलितवर्ग समाज का मेरुदण्ड माने जाने के साथ ही यह वह वर्ग है जो समाज के उत्पादक, शिल्पी एवं श्रमिक वर्ग का कार्य करता है किन्तु विडम्बना यह है कि यह ही आगे चल कर अस्पृश्य एवं दलित हो जाते हैं। विडम्बना की बात यह है कि इस जाति को सम्पूर्ण मानवीय अधिकारों से वंचित कर दिया गया। इन्हें न सम्पत्ति रखने का अधिकार है और न शिक्षा प्राप्त करने का। कठोर परिश्रम के पश्चात् भी भर पेट भोजन प्राप्त

करना इनके लिए स्वप्नवत् था।¹

तत्कालीन समय में सम्पूर्ण सम्मान एवं ऐश्वर्य जैसे सुख केवल उच्च वर्ग के लोगों के लिए ही सुरक्षित था और इस सुविधा भोगी उच्चवर्गीय सवर्ण जाति का लक्ष्य केवल येन-केन-प्रकारेण दलित जाति का शारीरिक एवं मानसिक शोषण करना मात्र था जिसके परिणाम स्वरूप दलितों को न जाने कितनी पीड़ा, अपमान और उपेक्षा के दंश झेलने पड़ते थे, मनुस्मृति इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है, इसमें स्पष्ट कहा गया है कि ब्राह्मणों की सेवा करना ही शूद्र का विशिष्ट कर्म है और उसका भरण-पोषण ब्राह्मण का जूठा अन्न, पुराना वस्त्र, सारहीन अन्न, पुराना ओढ़ना-बिछौना देकर करना चाहिए जिसको हम हिन्दू समाज का वीभत्स रूप कर सकते हैं।

उच्छिष्टमन्नं दातव्यं जीर्णानि वसनानि च।

पुलाकाश्चैव धन्याः जीर्णश्चैव परिच्छदाः।²

शाब्दिक दृष्टि से दलित शब्द का अर्थ है 'दबाया हुआ' या 'कुचला हुआ' होता है लेकिन सामाजिक सन्दर्भों पर दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं कि जब किसी सबल वर्ग के द्वारा अधीनस्थ वर्ग के अधिकारों का हनन किया जाता है तो वहीं से दलित का जन्म होता है। समाज के सर्वाधिक उपेक्षित वर्ग को इस श्रेणी में रखा जाता है। आज दलित वर्ग में जो आक्रोश दिखाई देता है, उसका यही कारण है।

भारतीय समाज में सुव्यवस्थित वर्ण व्यवस्था की परिकल्पना वेदों में ही वर्णित है, जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति बिना ईर्ष्याभाव के उन्नति का अधिकारी है। वर्ण शब्द की व्युत्पत्ति 'वृज वरणेज धातु से हुई है जिसका अभिप्राय है-वरण करना या चुन लेना। आचार्य यास्क ने भी 'वर्णज शब्द की व्युत्पत्ति वृ धातु से ही की है- 'वर्णो वृणोतेःज -³ वर्ण शब्द अनेकार्थवाची है। ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर इसका प्रयोग रंग या प्रकाश अर्थ में मिलता है।⁴

भारतीय इतिहास में ऋग्वैदिक काल से ही सामाजिक जीवन में वर्ण भेद की झँकी तो देखने को मिलती है लेकिन जातिगत भेदभाव नहीं दिखाई पड़ता। प्रारम्भ में गौरवर्ण के आर्य श्रेष्ठ व श्याम वर्ण के अनार्य 'दस्यु' कहलाये परन्तु कालान्तर में सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने हेतु आर्यों के समाज का भी विभाजन हो गया जिसके द्वारा आर्यों के आधार पर समाज को चार वर्णों में बांटा गया। सर्वप्रथम ऋग्वेद के दसवें मण्डल के पुरुष सूक्त में एक परमपुरुष की परिकल्पना की गई जिसके चरणों के रूप में शूद्रों को माना गया। इसमें मुख ब्राह्मण, भुजाएँ क्षत्रिय तथा जंघा वैश्य का प्रतीक है। इस प्रकार इस व्यवस्था को प्रतिपादित करने के पीछे सम्पूर्ण शरीर रूपी समाज का निर्माण करना था। ऋग्वैदिक काल में यह व्यवस्था जिसने समाज को चार वर्णों में बाँटा - कर्म प्रधान थी। कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छा एवं योग्यता के आधार पर कार्य चुन सकता है। ऋग्वेद में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। एक स्थान पर वर्णन है कि मैं एक कवि हूँ, मेरे पिता एक वैद्य हैं, मेरी माता आटा पीसती है। साधन भिन्न हैं परन्तु हम सभी धन की कामना करते हैं। अतः स्पष्ट है कि प्रारम्भ में व्यवसाय जन्म के आधार पर नहीं वरन् कर्म के आधार पर निर्भर था।

दलित विमर्श को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने से यह जानकारी हासिल होती है कि प्राचीन काल में दलितों को कर्म के अनुसार उच्च स्थान प्राप्त थे, रामायण रचयिता वाल्मीकि निम्न जाति से थे। महाभारत रचयिता व्यास एक धीवर कन्या से उत्पन्न हुए थे। महात्मा विदुर दासी पुत्र थे। रैदास जाटव थे। कबीर जुलाहा थे। सेन भगत नाई थे। ये सब प्रख्यात भगवत भक्त हुए, जिन्हें ईश्वर की प्राप्ति हुई है। कर्मानुसार शूद्र वर्ण उच्च वर्ण प्राप्त कर सकता था तो उच्च वर्ण निम्न वर्ण को प्राप्त करते थे। यथा पुराणों के आधार पर कुछ राजा क्षत्रिय से सूद्र हो गये। उस समय एक ही परिवार के लोग भिन्न वर्ण के हो सकते थे, अन्तर्वर्ण विवाह का भी प्रचलन था। द्विजों और शूद्रों के मध्य विवाह सम्बन्ध स्थापित होते थे। यथा महाभारत में धीवर कन्या सत्यवती का शान्तनु से विवाह, भीम का हिडिम्बा से विवाह। विभिन्न वर्णों के बीच खान-पान के सन्दर्भ में हम राम का उदाहरण देखते हैं जिन्होंने

भिलनी के झूठे बेर खाकर अतिथ्य स्वीकार किया था। जात-पात, उच्चता, निम्नता, स्पृश्यता-अस्पृश्यता जैसी घृणित भावनाओं का अस्तित्व नहीं था। व्यक्ति की श्रेष्ठता गुणों से आंकी जाती थी।

इस सम्बन्ध में श्री पी०वी० काणे का विचार है कि –आरम्भ में वर्ण शब्द का प्रयोग गौर-वर्ण आर्यों तथा कृष्ण-वर्ण दासों, या दस्युओं के लिये होता था, बाद में वर्ण शब्द का प्रयोग ब्राह्मणादि, वर्गों के लिये किया जाने लगा।⁵ परवर्ती ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों एवम् धर्मसूत्रों में भी वर्ण शब्द ब्राह्मणादि चार वर्णों का ही द्योतक है।⁶ चत्वारो वै वर्णा ब्राह्मणो राजन्यो वैश्यः शूद्राः, चत्वारो वै वर्णा तदेतद् ब्रह्म क्षत्रं विदूः शूद्रः

डॉ० राजबली पाण्डेय ने 'वर्ण शब्द के सम्बन्ध में हिन्दू धर्म कोश में लिखा है – 'चार श्रेणियों में विभक्त भारत का मानव वर्ग। यह सामाजिक संस्था है। इसका अर्थ है, प्रकृति के आधार पर गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार अपनी वृत्ति (व्यवसाय) का चुनाव करना।⁷ यहाँ यह भी कहना उचित है कि मानव समूह की आवश्यकताओं को देखते हुए उसके चार विभाजन हुए। सबसे बड़ी आवश्यकता शिक्षा की थी, इसके लिए ब्राह्मण वर्ण बना। राष्ट्र की रक्षा, प्रजा की रक्षा दूसरी आवश्यकता थी। इस काम में कुशल बाहुबल को विवेक से काम में लाने वाले क्षत्रिय वर्ण की उत्पत्ति हुई। शिक्षा और रक्षा से भी अधिक आवश्यक वस्तु थी जीविका। अन्न के बिना प्राणी जी नहीं सकता, पशुओं के बिना खेती नहीं हो सकती थी। चारों वर्णों को अन्न, दूध, घी, कपड़े लत्ते आदि वस्तुएँ चाहिए। इन वस्तुओं को उपजाना तैयार करना फिर जिसकी जिसे जरूरत हो, उसके पास पहुँचाना, यह सारा काम प्रजा के सबसे बड़े समुदाय के सिर पर रखा गया। इसके लिए वैश्यों का वर्ण बना। किसान, व्यापारी, ग्वाले, कारीगर, दुकानदार बनजारे ये सभी वैश्य हुए। शिक्षक को, रक्षक को, वैश्य को छोटे मोटे कामों में सहायक और सेवक की आवश्यकता थी। धावक व हरकारे की, हरवाहे की, पालकी ढोने वाले की, पशु चराने वाले की, लकड़ी काटने वाले की, पानी भरने, बरतन माजने वाले की, कपड़े धोने वाले की आवश्यकता थी। ये आवश्यकताएँ शूद्रों ने पूरी की। इस प्रकार प्रजा समुदाय की सभी आवश्यकताएँ प्रजा में पारस्परिक कर्म-विभाग से पूरी हुई।⁸

मनुस्मृति के अनुसार जन्मना जायते शूद्रः कर्मणा द्विज उच्यते। अर्थात् मनुष्य जन्म से शूद्र ही पैदा होता है। गुण, कर्म, स्वभाव और संस्कारों से द्विज कहलाता है। परन्तु उत्तर ऋग्वैदिक काल में सरल वैदिक धर्म कर्मकाण्ड प्रधान हो गया जिससे समाज पर भी इसका प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। शूद्रों व स्त्रियों से शिक्षा का अधिकार छीनकर उन्हें पूरी तरह उच्च वर्ग की सत्ता के अधीन कर दिया गया। इतिहास साक्षी है कि शासन सदैव ब्राह्मण, क्षत्रिय वर्ग के हाथ में रहा। यही कारण है कि सर्वोच्चता के क्रम में अधिकांशतः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र या क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र लिखा मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि ऊपर के दो वर्ण तो ऊपर नीचे होते रहे परन्तु शूद्र हमेशा निम्न स्थान पर ही रहे। उत्तर ऋग्वैदिक काल के समाज में एक नवीन वर्ग 'पुरोहित' का उदय हुआ जिसने अपनी सर्वोच्चता स्थापित करने के लिए धर्म को पूरी तरह कर्मकाण्डों से मुक्त कर दिया जिसके परिणाम स्वरूप शूद्र निम्नतर स्थिति तक पहुँच गये। अब उसका एक मात्र कार्य तीनों उच्च वर्णों के लोगों की सेवा करना ही समझा जाता था। जन्म के आधार पर कार्य का निर्धारण हो गया और इस प्रकार जातियों का निर्माण हो गया।

हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य के उद्भव और विकास के विषय में डॉ० नरहरिदास वणकर लिखते हैं— "हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य का उद्भव सितम्बर सन् 1914 ई० की 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हीराडोम की कविता 'अछूत की शिकायत' से दलित लेखन की शुरुआत मानी जाती है।"⁹ इस सम्बन्ध में वेदों का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि वहाँ समाज के किसी भी वर्ग के प्रति उपेक्षित भाव नहीं था। वर्ण व्यवस्था का मूल पुरुष-सूक्त है। चारों वेदों में उपलब्ध इस सूक्त के माध्यम से सहयोग, समता, सम्वेदनशीलता का उपदेश दिया गया है। तत्कालीन समाज की सावयव कल्पना में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र का समान महत्त्व है। उत्तर वैदिककाल में शूद्रों की दयनीय स्थिति मिलती है। वैदिक विधानों में शूद्र की उपेक्षा की गयी है, परन्तु कतिपय प्रसंगों में उसके महत्त्व का भी उल्लेख है। कर्म के अनुसार ही वर्ण-व्यवस्था का उल्लेख मिलता है। कालान्तर

में जब गुण का स्थान जन्म ने ले लिया तभी से मानो वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था में परिवर्तित हो गयी और ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य स्वयं को क्रमशः पूज्य, शक्तिशाली व सम्पन्न समझने लगे। शूद्र तीनों वर्णों द्वारा उपेक्षित हो गये। यहीं से दलितों के आहत मन में आक्रोश का जन्म हुआ। हिन्दी साहित्य में दलित-चिन्तन की परम्परा का विकास स्वतः स्फूर्त रूप से नहीं हुआ है। वरन् यह मराठी साहित्य की दलित चेतना से उत्प्रेरित होकर सामने आई है। सर्वप्रथम दलित-चेतना मराठी साहित्य में आयी। पुनः यह कन्नड, उड़िया, गुजराती, बंगाली आदि से होकर हिन्दी साहित्य में भी आयी।¹⁰

अब प्रश्न उठता है कि समाज और साहित्य में हलचल पैदा कर देने वाला दलित साहित्य, दलित-विमर्श, दलित चिन्तन तथा दलित चेतना आखिर है क्या? दलित विमर्श दो शब्दों से मिलकर बना। दलित का अर्थ है—रौंदा, कुचला दबाया हुआ, या पदाक्रांत और विमर्श का अर्थ है—विचार, विवेचन समीक्षा, परीक्षण या तर्क आदि। इस प्रकार 'दलित-विमर्श' का अर्थ हुआ—हिन्दुओं में वे शूद्र जिन्हें अन्य जातियों के समान अधिकार प्राप्त नहीं हैं ऐसे लोगों के बारे में विचार, विवेचन, समीक्षा और परीक्षण करना ही दलित-विमर्श है। सांस्कृतिक गतिविधियों में भिन्न-भिन्न रूप से सम्बद्ध होते हुए भी दलित साहित्य की अपनी अलग पहचान है। वह पूरी तरह से समाज पर आधारित है। सामाजिक समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व तथा वर्ण-व्यवस्था के खिलाफ स्वर बुलंद करना ही इसका आधार है। और सामाजिक परिवर्तन ही इसका प्रमुख उद्देश्य है। दलित साहित्य के प्रवर्तक डॉ० वानखेड़े माने जाते हैं, जिन्होंने सन् 1965-66 ई० के दौरान आयोजित साहित्य-सम्मेलन में दलित लेखक श्री बाबूराव बागुल के उपन्यास सूड़ (प्रतिशोध) की प्रस्तावना में दलित साहित्य को परिभाषित करते हुए, लिखा था कि "दलित लेखकों द्वारा दलितों के विषय में लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है।" उनका मानना है कि "गैर-दलित साहित्यकार, 'दलित विमर्श' अथवा दलित चेतना को तोड़मोड़ कर पेश कर रहे हैं। दलित साहित्यकारों की दृष्टि में दलित-विमर्श का वास्तविक अर्थ गैर-दलित साहित्यकारों द्वारा दलित समाज के लोगों के प्रति दुःख दर्द के प्रति सहानुभूति दिखाना या ज्यादा से ज्यादा उनके उत्पीड़न-शोषण की स्थितियों की जानकारी देना है।"¹¹ देखा जाए तो "बाल्मीकि और कबीर, रैदास भी दलित वर्ग के थे, लेकिन उनका साहित्य दलित साहित्य नहीं है।"¹² सबसे महत्वपूर्ण यह है कि हिन्दी साहित्य में प्रेमचन्द्र, निराला, हजारी प्रसाद द्विवेदी नागार्जुन, मुक्तिबोध, धूमिल आदि के दलित चिन्तन को नकारा नहीं जा सकता।"¹³

आधुनिक काल में बाबासाहब अम्बेडकर ने दलितों को सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक शैक्षिक, आदि अधिकारों हेतु अनेक आन्दोलनों को प्रारम्भ किया। उन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार कर इन आन्दोलनों को बल प्रदान किया। उतना ही नहीं भारतीय समाज में समानता लाने हेतु संविधान निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। हिन्दी की विभिन्न विधाओं में हमें दलित या दलित विमर्श दिखलायी पड़ता है। हिन्दी दलित साहित्य में दलित जीवन को आधार बनाकर अनेक तरह का साहित्य सृजन किया गया।

दरअसल दलितों की कमजोरी यह रही है कि उन्होंने हिन्दू धर्म के मातहत अपनी दुर्दशा को तो शिद्दत से महसूस किया पर अपने लिये अपना कोई ऐसा वैकल्पिक धर्म स्थापित करने का प्रयास नहीं किया जिसमें उन्हें सम्मानजनक हैसियत मिल पाती, वे अपने देवी, देवताओं, पूजा, अनुष्ठान, रीति-रिवाज, अपनी संस्कृति निर्मित कर पाते। वे मन्दिरों में प्रवेश पाने, सनातन देवी-देवताओं को पूज पाने, सवर्णों की तरह घोड़ी पर चढ़कर ब्याह करवाने या सती होने का प्रयास करते हुए उन्हीं की नकल करने पर उतारू रहे जिनको वे अपनी दुर्दशा का कारण मानते थे। इस बारे में काँचा इलैया की सोच अधिक यथार्थपरक रही है। आपका मानना है कि जब तक हिन्दू धर्म में सुधार नहीं होता वह प्रगतिशील व आधुनिक बन ही नहीं सकता। दलित बहुजन के देवी-देवताओं 'पोचम्मा' और 'पोटूराजू' लोगों की रोजाना की जिन्दगी से जुड़े हैं। इनकी मान्यता उनके बीच अधिक है। हिन्दुओं के देवी-देवता और धर्मशास्त्र जीवन के यथार्थ से कटे हैं। वे आत्मा, परमात्मा, माया, मोक्ष जैसे जीवन में काम न आने वाले, हवाई

विषयों पर केन्द्रित हैं। वे लोगों को जीवन से पलायन की सीख देते हैं जबकि इनके देवी-देवता उत्पादन केन्द्रित हैं। ये श्रम और संघर्ष के सहारे जीने की प्रेरणा देते हैं। काँचा जोर देकर कहते हैं कि उनका श्रम और संघर्ष का पोषक जीवन दर्शन हिन्दू धर्म और कर्म विहीन, भाग्यधारिता, पलायनवादी दर्शन से हर तरह बेहतर है। इसीलिए मुझे अपना धर्म छोड़कर हिन्दू होना स्वीकार नहीं है। काश, दलित समुदाय भी इस तरह की सोच को अपना लेता।¹⁴

दलित समाज के लिए इस समय आर्थिक उदारीकरण आड़े आ रहा है जिससे यह रोजी-रोटी की समस्या को विकराल बना रहा है तो दूसरी ओर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद उसकी निजी पहचान को नष्ट करने पर उतारू है। ये दोनों चुनौतियाँ उसके अस्तित्व को ही खतरे में डालने पर अमादा हैं। जब जीवन ही संकट में होगा तब आन्दोलन और लेखन के प्रयास कैसे सार्थक होंगे इसे आज गम्भीरता से लेने की महती आवश्यकता है। इस नये आर्थिक माहौल में आरक्षण का प्रावधान केवल मुट्ठी भर अभिजात दलितों को लाभ पहुँचाने लायक रह जायेगा। वैसे तो अब तक भी इससे उन दलितों को सबसे कम लाभ मिला था जो लाइन में सबसे अन्त में खड़े थे पर अब वह स्थिति भी नहीं रहेगी। क्योंकि सरकारी सेवा क्षेत्र निरन्तर सिकुड़ता जा रहा है और आगे चलकर गिनी-चुनी नौकरियों को छोड़कर सारी सेवाएँ निजी हाथों और वहाँ से भी बहुराष्ट्रीय एजेन्सियों के पास धीरे-धीरे खिसकती चली जा रही है। नौकरियों की कमी और सेवाओं का निजीकरण निश्चित रूप से प्रतिद्वन्द्विता को इतना कठिन बना दे रहे हैं कि सफलता कठिन होती जा रही है। उस मेरिट के ऊँचे उठते ग्राफ में दलित कितनी हाजरी दर्ज करा सकेंगे इसका अन्दाज लगाना कोई अधिक मुश्किल काम नहीं है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ या कॉर्पोरेट सेक्टर किसी कीमत पर योग्यता के मामले में समझौता नहीं करेंगे क्योंकि उनका मुख्य उद्देश्य मुनाफा कमाना है खैरात बाँटना नहीं है। और आप चाहें कि सरकार उन्हें दबाकर ऐसा करवा लेगी तो इस भ्रम में किसी को नहीं रहना चाहिए क्योंकि अब बनने वाली सरकारों में ऐसी दृढ़ इच्छा शक्ति है ही नहीं, जो इन पर दबाव डाल सकें। दूसरे, सरकार और उनके समर्थक जिस विकास के सबजबाग दिखलाकर चुनाव जीतते हैं उसका सारा दारोमदार इन्हीं के हाथों में रहता है। ये भला उनकी इच्छा के विपरीत कोई कदम कैसे उठा सकते हैं। जहाँ तक बात न्याय संगत भूमि सुधारों को लागू करने की है यह सच्चाई अब किसी के लिए अनजानी नहीं रह गई है कि कृषि कर्म अब लाभदायी उद्यम नहीं रह गया है। कृषि योग्य भूमि को हर राज्य की सरकार बड़े इजारेदारों को बेच रही है। बंजर, ऊबड़-खाबड़, और पथरीली जमीन को लेकर दलित भला क्या लाभ अर्जित कर सकेंगे? इसलिए उन्हें पहले अपनी रोजी-रोटी, अपना अस्तित्व बचाने के लिए कोई कारगर रणनीति बनानी होगी तभी उनका आन्दोलन गति पकड़ेगा और उनका लेखन प्रभावशाली होगा। अब परम्परावाद एवं मनुवाद से भी बड़ी चुनौती उनके सामने उस खुली अर्थव्यवस्था की है जो उन्हें ही नहीं सारे कामगार वर्ग को बेरोजगार बना ऐसी गरीबी की ओर धकेल रही है जिसका अन्त आत्महत्या के अलावा दूसरा नहीं है। क्या यह नहीं हो सकता है कि दलित समाज अब अन्य जातियों, धर्मों के भी वंचित लोगों को अपने साथ मिलाकर इस नई इजारेदारी के खिलाफ लड़ाई लड़ने की कार्य योजना बनाये?

भारत में जातिगत फैली धार्मिक विचारधारा के लिए जिम्मेदार उच्च वर्ग और निम्न वर्ग में दोनों में इस दर्दनाक परिस्थितियों को बदलना होगा। दोनों ही वर्ग चाहे सवर्ण हो या दलित इससे छुटकारा पाना चाहते हैं। दलितों को आज आर्थिक रूप से सम्पन्न होने की महती आवश्यकता है जिससे वे अपनी नयी पहचान बना सकें। इसके लिए केन्द्रीय सरकार को भी आगे आना होगा।

वर्तमान में दलित समाज को धार्मिक विचारधारा और मानवता के साथ-साथ अब मानवाधिकारों के शिक्षण एवं प्रशिक्षण की अधिक जरूरत है। चूंकि अभी तक वे अंधविश्वास से घिरे हुए थे, अब उनमें आधुनिक व तार्किक सोच का संचार करना होगा। जब तक दलित स्वयं अपने आपको नहीं पहचानेंगे, अपने आत्मसम्मान को नहीं ढूँढ़ेंगे तब तक वे वहीं के वहीं रहेंगे। इसलिए दलितों को स्वयं आगे आना होगा। किसी भी समाज में कोई भी लड़ाई जुड़कर लड़ी जाती है, टुकड़ों में नहीं। दलित-समूह भारतीय समाज का एक बहुत बड़ा अभिन्न हिस्सा है। अतः

जातीय संरचना को नष्ट किए बगैर हमारा सामूहिक विकास सम्भव नहीं हो पायेगा और जब तक सामूहिक विकास नहीं होगा तब तक राष्ट्र का विकास सम्भव नहीं होगा।

इसे सकारात्मक ही कहा जाएगा कि दलित लेखन कुछ अपवादों को छोड़कर समाज के विकास की आवाज को बुलंद कर रही है। हालांकि कुछ अपवादों को छोड़कर सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय मानवतावादी दृष्टिकोण को आधार बनाकर ही लिखा गया है इसे दलित साहित्यकारों को भी ध्यान रखना होगा “दलित लेखकों को भी दलित समाज की वर्ण व्यवस्था को, समाप्त करना होगा क्योंकि इसे मात्र द्विजों, सवर्णों ने ही नहीं वरन् दलितों की अपनी मानसिकता ने भी आहत किया है। दलित साहित्यकारों द्वारा खड़ी की जा रही दीवार साहित्य-समाज दोनों के लिए घातक सिद्ध होगी। इन्हें समझना होगा कि साहित्य किसी एक वर्ग विशेष की जागीर नहीं जो उसी वर्ग के व्यक्ति को खेलने का अधिकार देती हो। साहित्य में इस प्रकार की सोच साहित्य के लिए तो घातक तो है ही दलित विमर्श, दलित साहित्य की धारा लिए भी खतरनाक है। दलित-विमर्श के नाम पर दलितों द्वारा कुछ भी लिख देने का दलित साहित्यकारों का दंभ दलित-चेतना की राह में अवरोध पैदा करेगा, सामाजिक विद्वेष को बढ़ायेगा, साहित्य वर्ग-जाति बनाकर लेखन साम्प्रदायिकता को जन्म देगा जो कम से कम समाज और साहित्य के लिए लाभप्रद नहीं है।”¹⁵

अन्त में कहा जा सकता कि जाति-वर्ण व्यवस्था की विसंगतियों को त्यागने में ही दोनों वर्गों (सवर्णों-दलितों) की भलाई है। क्योंकि जब तक यह व्यवस्था चलती रहेगी तब तक दोनों वर्ग कुछ न कुछ गँवाते ही रहेंगे। अतः जाति-वर्ण भेद के खातमें के लिए दोनों वर्गों को ही आगे आना होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. विप्रसवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते-मनुस्मृति-10/123
2. मनुस्मृति-10/125
3. निरुक्त 3/2, हलायुधकोश, पृ० 591, संस्कृत हिन्दीकोश, पृ० 901, वाचस्पत्यम् पृ० 4850, शब्दकल्पद्रुम, चतुर्थ भाग, पृ० 277
4. ऋग्वेद 1/7/3/7
5. धर्म शास्त्र का इतिहास: अनुवादक -अर्जुन चौबे काश्यप प्रथम भाग, पृ० 110
6. शतपथब्राह्मण 5/5/4/9, बृहदारण्यक उपनिषद् 1/4/15, चत्वारो वर्णाः ब्राह्मण क्षत्रिय विदूषूद्राः, बौधायन धर्मसूत्र 18/16/1, चत्वारो वर्णा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्राः, आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1/1/1/4
7. हिन्दू धर्म कोश-डॉ० राजबली पाण्डेय, पृ० 575
8. हिन्दू धर्म कोश-डॉ० राजबली पाण्डेय, पृ० 576
9. दलित विमर्श-डॉ० नरसिंह दास वणकर, पृ० 68
10. रामचन्द्र सरोज: कल के लिए-जु०-सि० 2006
11. हिन्दी अनुशीलन-दलित चिंतन का दूसरा पहलू, पृ० 101
12. शैलेश मटियानी-कथाक्रम: अप्रैल-जून 2003, पृ० 4
13. हरि नारायण ठाकुर आज कल : दिस० 3003, पृ० 7
14. हस्तक्षेप, राष्ट्रीय संहारा, 18 जनवरी, 1997
15. हिन्दी अनुशीलन -दलित चिंतन का दूसरा पहलू, पृ० 105



महिलाओं के अधिकार एवं सामाजिक विधान

डॉ० निशा जैन

सहायक प्राध्यापक समाजशास्त्र
शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना (म.प्र.)

भारतीय नारी हमारी संस्कृति और परम्परा धरोहर की वाहक रही है। कई उतार चढ़ावों के बावजूद उन सर्वोत्कृष्ट मूल्यों, मानकों और आदर्शों को जिसमें हमारी सम्यता जीवित, पुष्पित व पल्लवित रही है अगली पीढ़ी को हस्तान्तरित करने की जिम्मेदारी उन्हीं की रही है। विश्व जननी नारी भारतीय समाज और परिवार की न केवल महत्वपूर्ण कड़ी, बल्कि समाजीकरण की प्रक्रिया के विकास की सशक्त माध्यम होने के बाद भी भारतीय समाज में एक लम्बे समय से अवमानना, यातना, शोषण का शिकार होती रही है। रूढ़िवादी विचारधारा, संस्थागत रिवाजों एवं समाज में प्रचलित प्रतिमानों ने नारी के उत्पीड़न में निरंतर वृद्धि की है। ऐसे रूढ़िवादी परम्पराओं एवं विश्वासों तथा प्रथाओं में जकड़े हुए समाज को रातों रात नहीं बदला जा सकता है और न ही इनके विरुद्ध प्रबल जनमत तैयार करना सरल है।

महिलाओं की स्थिति किसी भी समाज के विकास के लिए प्रगति के निर्धारण का महत्वपूर्ण मानदंड होती है। उनकी शैक्षिक दशा राजनीतिक एवं सामाजिक निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया में उनकी भूमिका एवं उनके सामाजिक अधिकार उनकी स्थिति को जानने का संकेत है। महिलाओं के विकास और उनके अधिकारों की रक्षा के लिए संयुक्त राष्ट्र महासभा में 18 दिसम्बर 1979 को महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव को समाप्त करने के बारे में प्रस्ताव पारित किया गया जो 3 सितंबर 1981 में प्रभावी हुआ।

महिला अधिकारिता को लेकर संपूर्ण विश्व की जागरूकता एवं प्रयासों के बावजूद महिलाओं की स्थिति दयम दर्जे की बनी हुई है “महिला अधिकारिता” का अर्थ—“ऐसी प्रक्रिया से है। जिसमें महिलाओं की अपने आप को संगठित करने की क्षमता विकसित एवं सुदृढ़ होती है।” महिला अधिकारिता को जब तक हम सिर्फ वैधानिक एवं संवैधानिक अधिकारों से जोड़ कर देखते रहेगे। तब तक महिलाओं की स्थिति को सुदृढ़ता मिलना मुश्किल है। वैधानिक एवं संवैधानिक अधिकारों के साथ-साथ जब तक महिलाएं स्वयं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं होगी तब तक महिला अधिकारिता का प्रश्न अधूरा रहेगा।

भारत में महिला कल्याण संबंधी गतिविधियों को संस्थागत ढांचा उपलब्ध कराने और संवैधानिक सुरक्षा उपलब्ध कराने हेतु अनेकों प्रयास किए गए। आजादी के बाद से ही महिलाओं का विकास देश की आयोजन प्रणाली का केन्द्रीय विषय रहा है। 1970 के दशक जहां कल्याण की अवधारणा बनाई गई वहीं 1980 के दशक में विकास पर बल दिया गया। 1990 के दशक से निरंतर महिला अधिकारिता पर बल दिया जा रहे हैं। जिससे महिलाएं निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल हो और नीति निर्माण के स्तर पर भी उनकी सहभागिता बढ़े।

वर्तमान युग में लोकप्रिय होती जनतंत्र प्रणाली व लोककल्याणकारी राज्य के सिद्धांत में महिला विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ है अतः उन्हें सुप्तावस्था से जागृत करने के लिए कई समाज सेवक व बुद्धिजीवी वर्ग सामने आए। कानूनी प्रावधान व योजनाएँ बनीं। स्वैच्छिक संगठनों ने पहल की, तब कहीं जाकर कुछ महिलाएं अपने अधिकारों के प्रति जाग्रत हुईं। उन्हें एहसास होने लगा कि उनके अधिकारों का हनन हो रहा है लेकिन तब तक रूढ़िगत समाज की जड़े काफी गहरी हो चुकी थी। संकुचित सोच व मानसिकता के दायरे में आकर महिलाओं को अपने अधिकारों को पाने की धारणा कशमसाने लगी। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात महिला उत्पीड़न एवं शोषण रोकने हेतु

समय—समय पर कानून बनाए गए। संवैधानिक अधिकारों के आश्वासन के अतिरिक्त राज्य सरकारों को भी यह अधिकार दिए गए कि वे समय—समय पर ऐसे विधान लागू करें जो स्त्रियों के साथ व्यवहार में भी उन्हें वरीयता दी जाए। इस आधार पर सरकार समय समय पर ऐसे वैधानिक उपाय करती रही है जिससे सामाजिक व्यवस्था एवं न्याय बना रहे। गत तीन या चार दशकों में काफी संख्या में महिला अधिकार संबंधी विधान लागू किए गए एवं कुछ में सुधार किए गए हैं। जिनसे महिलाओं के समान स्तर एवं अवसरों को सुनिश्चित किया गया है। इन विधानों का मूल्यांकन तीन स्तरों पर किया जा सकता है:—

01 सामाजिक विधान

02 आर्थिक विधान

03 राजनैतिक विधान

सामाजिक विधान :— महिलाओं से संबंधित तथा सामाजिक कानूनों से संबंधित चार प्रमुख मामले हैं—

01 विवाह

02 बच्चा गोद लेना

03 संरक्षता

04 गर्भपात

विवाह संबंधी समस्या

01 जीवन साथी का चुनाव

02 विवाह की आयु

03 बहु पत्नि विवाह

04 नियोग्य विवाह

05 निस्प्रभावी विवाह

06 विवाह विच्छेद

07 दाम्पत्य अधिकार

08 गुजारा भत्ता

09 बच्चे का संरक्षण

10 दहेज

11 पुनर्विवाह

समाज में महिलाओं को शोषण से मुक्ति दिलाने हेतु कुछ लागू हो चुके विधान निम्नानुसार हैं—

1955 का हिन्दू विवाह अधिनियम

1954 का विशेष विवाह अधिनियम

1956 का पुनर्विवाह अधिनियम

1956 का बच्चों को गोद लेने संबंधी अधिनियम

1970 में गर्भपात को वैधानिक दृष्टि से अपराध मानना

1971 में चिकित्सा गर्भ समापन अधिनियम

2005 में घरेलू हिंसा अधिनियम

1961 दहेज विरोधी अधिनियम

1966 भ्रूण हत्या निषेध अधिनियम

1929 बाल विवाह अवरोध अधिनियम

1978 बाल विवाह अवरोध संशोधित अधिनियम

धारा 359, धारा 360, धारा 361, धारा 363, धारा 375 के अनुसार छेड़छाड़ अपहरण एवं बलात्कार संबंधी कानूनी प्रावधान

समाज में महिलाओं की स्थिति को सुदृढ़ करने एवं विकास की मुख्य की धारा से जोड़ने में ये कानून कारगर साबित होंगे।

आर्थिक विधान :- महिलाओं से संबंधित आर्थिक विधान के माध्यम से महिलाओं को आर्थिक धरातल पर सुदृढ़ता प्रदान कर पुरुषों के बराबर लाने का प्रयास किया गया। आर्थिक विधानों से संबंधित विषय है—

01सम्पत्ति का अधिकार

02समान पारिक्रमिक

03कार्यकरने की दशाएं

04प्रसूति लाभ

05कार्य सुरक्षा

एक महिला के सम्पत्ति अधिकार का अर्थ है इसकी पत्नी, पुत्री, विधवा तथा माँ के रूप में सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त करना। इस संबंध में कामकाज महिलाओं को समाज में आर्थिक समानता के अधिकार के लिए संवैधानिक रूप से अनेक कानून बनाए जो इस प्रकार हैं:—

011956 हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम

021976 समान पारिक्रमिक अधिनियम

031948 फैक्ट्री अधिनियम

04 पैतृक सम्पत्ति में अधिकार अधिनियम

051997 कामकाजी महिलाओं को बुनियादी अधिकार अधिनियम

1976 समान पारिक्रमिक अधिनियम के अंतर्गत भर्ती एवं सेवा शर्तों में महिला और पुरुष भेदभाव दूर करने का भी प्रावधान है। कामकाजी महिलाओं के अधिकारों को संरक्षण हेतु केन्द्र सरकार ने पांचवे वेतन आयोग की सिफारिशों को स्वीकार करते हुए कामकाजी महिलाओं के लिए कई ऐसी बातों को नियमों में बदला है ऐसे विभाग एवं सार्वजनिक संस्थाएं जहां महिला कर्मचारियों की संख्या अधिक है उन जगह पर बच्चों के लिए क्रेश खोलना अनिवार्य बनाया गया है। महिलाओं को एक दिन में अधिकतम 9 घण्टे तथा रात्रि 10 बजे से प्रातः 5 बजे के बीच कोई भी कार्य न देने का प्रावधान भी इस कानून में है।

राजनैतिक अधिकार :- भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त महिलाओं को दो प्रमुख अधिकार हैं महिलाओं को मताधिकार और विधान मण्डल के लिए योग्यता महिला मताधिकार की मांग सर्वप्रथम 1917 में की गई थी किन्तु साउथ फ्रेन्चाइज कमेटी ने 1918 में इस मांग को अस्वीकार कर दिया। 1919 में सरकार ने राज्य सरकारों को अधिकार दे दिया कि वे स्त्री मताधिकार के संबंध में अपने अलग विधान लागू करें। इस प्रकार के विधान समस्त राज्य में पारित किए गए। 1935 के भारत सरकार अधिनियम में शैक्षणिक योग्यता के आधार पर स्त्री मताधिकार प्रदान

किया गया। फलस्वरूप 1937 में 56 महिलाओं ने चुनाव के माध्यम से विधान मण्डलों ने प्रवेश किया स्वतंत्रता के बाद स्त्री मतदाताओं की संख्या तथा राज्य विधान मण्डलों तथा लोकसभा में महिला प्रतिनिधियों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई है।

यह सत्य है कि महिला अधिकारिता के संबंध में इन संवैधानिक विधानों से उनकी स्थिति में बुनियादी बदलाव आया है। वास्तविकता यह है कि समस्त सरकारी प्रयास व कानून तभी सफल हो सकते हैं जब परिवार व समाज का हर व्यक्ति पूर्वाग्रहों से मुक्त हो और महिलाओं के प्रति स्वस्थ व व्यापक दृष्टिकोण अपनाए। हमें अपनी मानसिकता को बदलना होगा और जो हमारे संस्कार परंपराएं और सोच के दायरे हैं उनसे निकल कर एक नई सोच पर अमल करें तभी हम अपने लक्ष्य को प्राप्त कर पाएंगे। समूचे विवेक और समूची सृजन शक्ति अपनी संवेदनशीलता, ममता और करुणा को एक साथ एकत्रित कर अपने लिए, पुरुष के लिए और संपूर्ण मानव सभ्यता के लिए सही दिशा की घोषणा करें। साथ ही हमें इस बात से भी सहमत होना पड़ेगा कि वैधानिक उपायों से उनकी स्थिति व उनकी दशा को ऊंचा नहीं किया जा सकता बल्कि संयुक्त प्रयास से ही हमारे समाज में महिलाओं को अधिकार एवं न्याय मिल सकता है।

संदर्भ सूची

1. राम आहूजा : महिलाओं के अधिकार, रावत पब्लिकेशन, जयपुर 1992
2. राम आहूजा : भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रावत पब्लिकेशन, जयपुर 1999
3. योजना : अगस्त 2004
4. योजना अक्टूबर 2006



भारत में महिला सशक्तीकरण के उभरते क्षितिज एवं गहराती चुनौतियाँ

डॉ० उमारतन यादव

एसोसिएट प्रोफेसर-अर्थशास्त्र विभाग
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी, उ.प्र.

प्रकृति ने सृष्टि के संचालन के लिये नर एवं नारी को उत्पन्न किया है। ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। पुरुष के बिना नारी अधूरी है और नारी के बिना पुरुष। नारी समस्त प्रगति की मूलाधार है नारी शक्ति का सधन पुंज है। यह शक्ति जिस रूप में प्रकट होती है वह उसी रूप में परिलक्षित होती है। विकास पथ पर समाज रूपी पक्षी के ये दोनों पंख हैं। किन्तु कुछ भिन्नता दोनों में प्रकृति प्रदत्त है। स्त्री कोमल है, तथा पुरुष कठोर, इसी कोमलता के कारण उसे सुरक्षा की आवश्यकता होती है। स्त्री केवल पत्नी ही नहीं अपितु योग्यमित्र, परामर्शदात्री, सहायिका, माता के समान उस पर सर्वस्व न्योछावर करने वाली तथा सेविका की भाँति सच्ची सेवा करने वाली है। गृहस्थी का कोई भी कार्य उसकी सम्मति के बिना नहीं हो सकता। किन्तु भारतीय समाज में नारी की स्थिति सदैव एक समान न होकर बड़े उतार चढ़ावों से गुजरी है।

काल प्रवाह के साथ नारी के कल्याणकारी स्वरूप का क्षरण होता गया और एक समय आया जब कबीर आदि संतों ने उसको समस्त पापों का मूल मानकर सर्वथा निंद्य एवं त्याज्य बता दिया। हम आज भी नहीं समझ पा रहे हैं कि ऐसा क्यों सम्भव हुआ? माता को नरक का द्वार अथवा संसार-सागर में निवास करने वाली छाया ग्राहिणी राक्षसी कहकर नारी की निन्दा क्यों की गयी? नारी को दासीमात्र एवं भोग्या बना दिया गया, उसे विवशता की बेड़ियों में जकड़ दिया गया। वह अविद्या एवं अज्ञान के गर्त में डूब गयी। महाकवि तुलसीदास ने “कत विधि सृजी नारी जग माहि, पराधीन सपनेहु सुख नाहि।” कहकर नारी विवशता की दयनीयता को व्यक्त किया है। आधुनिक काल में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने चिरपीड़ा एवं कष्ट को नारी की नियति मानकर उसके प्रति हार्दिक संवेदना प्रकट की और नारी को करुणा के आलम्बन रूप में प्रतिष्ठित कर दिया—“अबला जीवन हाय तुम्हारी यहा कहानी। आँचल में है दूध और आँखों में पानी।” कवि जयशंकर प्रसाद ने बादलों के पीछे से झाँकती हुई किरण के रूप में नारी के कल्याणकारी स्वरूप का दर्शन किया और समाज को सावधान करते हुए कहा कि—“जिसे तुम समझे हो अभिशाप, जगत् की ज्वालाओं का मूल, ईश का वह रहस्य वरदान, कभी मत इसको जाओ मूल।”

किसी भी राष्ट्र की परंपरा और संस्कृति उस राष्ट्र की महिलाओं से परिलक्षित होती है। महिलाएँ समाज की रचनात्मक शक्ति होती हैं। आने वाले कल को सुधारने के लिए हमें आज की महिला की स्थिति में सुधार लाना होगा। इसके लिए हमें रूढ़िवादी दृष्टिकोण से उबरकर एक नया विकासवादी दृष्टिकोण अपनाना होगा। महिला अधिकारों के संरक्षण के लिए बनाए गए विभिन्न कानूनों को हमें पूरी ईमानदारी और सक्रियता से लागू करना होगा। इसके साथ-साथ हमें घरेलू तथा सामाजिक स्तर पर जागरूकता लाने का प्रयास करना होगा। शिक्षा के स्तर पर भी अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है। शिक्षा एक ऐसा कारगर अस्त्र है जो संपूर्ण सामाजिक ढांचे को बदल सकता है। ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र में स्त्री शिक्षा के ढांचे में अभी भी कमियाँ हैं। ठोस तथा यथार्थवादी पहल के द्वारा महिलाओं को एक उत्साहवर्द्धक सामाजिक वातावरण उपलब्ध कराया जा सकता है। हमें यह ध्यान रखना होगा कि महिलाओं में अपार क्षमता निहित है। इन्हें सबल और सशक्त बना कर हम देश को सामाजिक, आर्थिक, और

राजनैतिक रूप से सुदृढ़ बना सकते हैं। देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू जी का यह कथन आज भी प्रासंगिक है कि – “जब महिलाएं आगे बढ़ती हैं, तो परिवार आगे बढ़ता है, समाज आगे बढ़ता है और राष्ट्र भी तेजी से आगे की ओर अग्रसर होता है।”¹

यदि देखा जाए तो आधुनिक काल की अपेक्षा प्राचीन भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति अधिक दृढ़ थी, उन्हें पुरुषों के समान अधिकार भी प्राप्त थे तथा समस्त सामाजिक-धार्मिक कार्य-कलापों में उनकी सहभागिता अनिवार्य थी। गार्गी, अपाला, विद्योत्तमा जैसी विदूषी नारियां इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। कालांतर में भारत पर होने वाले लगातार विदेशी आक्रमणों के परिणामस्वरूप धीरे-धीरे महिलाओं की स्थिति में गिरावट आयी और वर्तमान में स्थिति यह है कि हम महिलाओं के सशक्तीकरण पर चर्चा कर रहे हैं, अर्थात् जो नारी स्वयं में शक्तिस्वरूपा है, अन्नपूर्णा है, सृष्टि का प्रमुख आधार है, उसके सशक्तीकरण पर विचार-विमर्श किया जा रहा है। यही तथ्य स्वयं में उसकी ह्यसमान स्थिति का द्योतक है।

वस्तुतः भारत का सामाजिक ढांचा ही महिलाओं और पुरुषों के लिए पृथक-पृथक भूमिकाओं का निर्धारण करता है, जिसके दुर्भाग्यपूर्ण परिणामस्वरूप वर्तमान में प्रत्येक स्तर पर महिलाओं के साथ भेदभाव किया जाता है। आज अमेरिका सहित विश्व का कोई भी राष्ट्र यह दावा कर पाने में सर्वथा असमर्थ है कि उसके यहाँ किसी भी रूप में महिलाओं का उत्पीड़न नहीं किया जाता। वर्तमान में महिलाएँ तृतीय विश्व की भांति हैं, जहाँ उनके अधिकार सीमित और कर्तव्य असीमित हैं।

लम्बे संघर्ष के पश्चात भारतीय महिलाओं ने समाज में अपनी स्थिति में सुधार ला पाने और समाज में अपना कुछ स्थान बनाने में सफलता अर्जित की है। महिलाओं की स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन दृष्टिगत हो रहे हैं, किन्तु इन परिवर्तनों की गति काफी धीमी है। महिलाओं के सशक्तीकरण का प्रश्न ही सामाजिक न्याय, लोकतंत्र एवं समेकित सामाजिक विकास के दर्शन पर आधारित है।

सशक्तीकरण वह बहु-आयामी प्रक्रिया है, जो कि महिलाओं में सामाजिक, आर्थिक, संसाधनों पर नियंत्रण स्थापित करने की क्षमता का पर्याप्त विकास करने का प्रयत्न करती है। सशक्तीकरण से अभिप्राय शक्ति का अधिक ग्रहण मात्र नहीं है अपितु इसके द्वारा उनसे शक्ति के प्रयोग की क्षमता का समुचित विकास किया जाता है। महिलाओं को सामाजिक हाशिए से हटाकर समाज की मुख्य धारा में लाना, निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना, उनमें पराश्रितता की भावना और हीन भावना को समाप्त करना ही सशक्तीकरण है।

भारतीय संविधान के भाग तीन में मौलिक अधिकारों व भाग चार में राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धान्त के द्वारा स्त्री-पुरुष की समानता की बात की गयी है लेकिन वास्तविक धरातल में देखें तो महिलाओं की पुरुषों के समकक्ष स्थिति कभी पूर्णरूप से नहीं दिखाई देती है। भारतीय स्त्रियों को घर के अन्दर ही 18 घण्टे काम करना पड़ता है, उन्हें विश्राम का भी समय नहीं मिलता। पिछड़ी, दलित व अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित परिवारों की महिलाओं को समान कार्य के लिये समान मजदूरी नहीं मिलती। कन्या भ्रूण हत्या, छेड़छाड़, महिलाओं के अधिकारों का प्रयोग उनके परिजनों द्वारा किया जाना, शराबी पति के द्वारा अपनी पत्नी को शारीरिक व मानसिक यातनायें देना, विधवा विवाह न होना, दहेज की लालसा के कारण वर के परिवार के सदस्यों द्वारा वधू का वध करना या उसे आत्महत्या के लिए प्रेरित करना व लड़के-लड़की को समान न समझना आदि समस्यायें समाज में मौजूद हैं। अतः आवश्यकता है ग्रामीण स्त्रियों के मानवाधिकारों की रक्षा के लिए स्त्रियों को आर्थिक, सामाजिक व शैक्षणिक आदि स्थितियों में सुधार करना। इसके लिए पुरुषों की मानसिकता को भी बदलना है। “समाज में जो कानून बनाये गये हैं उनको सफल बनाने के लिए असली लड़ाई हर महिला को स्वयं लड़नी पड़ेगी। महिलाओं के अधिकारों का हनन करने की चेष्टा समाज में ही होती है, ऐसे समय में पीड़ित महिला को अपनी आवाज स्वयं उठानी होगी ताकि वे स्वयं न्याय प्राप्त कर सकें साथ ही दूसरों के लिए प्रेरणास्रोत बन सकें। महिला सशक्तीकरण सिर्फ कागजों पर

न हो बल्कि इसमें पूरे समाज की भागीदारी होनी चाहिए। घर की माताओं को अपनी बेटियों को महत्व देकर उन्हें ऐसी परिपक्व सोच वाली नई पीढ़ी के रूप में तैयार करना होगा जो अपने साथ-साथ समाज को नई दिशा दे सकें।²

संसार में अपनी तकलीफ सबसे बढ़ी और भयावह लगती है, किन्तु जब आप पृथक—पृथक नारियों की स्थिति को देखेंगे और उसके आंसुओं के राज को जानना चाहेंगे, तो आपको लगेगा कि आपका गम, आपका दर्द उन दर्दों के सामने कम है। अगर प्रमुख रूप से एक नारी की आप बीती सुन सकें तो उस दशा में या तो आप दंग रह जाएंगे या समाज के प्रति आक्रोश एवं घृणा आपके अन्दर उत्पन्न होगा। विश्व के सभी देशों में पुरुष, नारी के कौमार्य को बहुत ऊँचा आंकता है और इसी को महत्व देकर उसका आदर भी करता है, किन्तु वहीं पुरुष पैशाचिक कामुकता से वशीभूत होकर उसी कौमार्य को भंग करता है और नारी के शील के साथ खिलवाड़ कर अपनी क्षणिक पशुवत तुष्टि के पीछे उस नारी की अस्मिता को क्षत-विक्षत कर देता है, जहां न आयु बंधन है और न धर्म की कोई सीमा है, न सौंदर्य का कोई मापदण्ड है और न जाति की कोई मर्यादा।

भारत जैसे मान्यताओं एवं मर्यादा वाले देश में सामाजिक प्रताड़ना, निष्कासन एवं उपेक्षा के भय से बलात्कार जैसे प्रकरणों को दबाया जाता है। पुलिस में रिपोर्ट अधिकांश प्रकरणों में बदनामी के भय से नहीं की जाती है। अन्वेषण एवं अभियोजन द्वारा अपराध के तरीकों से भी क्षुब्ध होकर बलात्कार की शिकार और अधिक बदनामी से बचने के लिये गवाही देते समय तथ्यों को छिपा लेती हैं, क्योंकि विरोधी पक्ष का अभिभाषक अपनी बहस में बहुत ही गवेषणात्मक प्रश्न पूछता है, जो कि लोक लाज की परिधि में उत्तर देते समय भारतीय नारी के वश की बात नहीं रह जाती है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारी आधी दुनिया नारी से बनी है। समाचार पत्र—पत्रिकाओं में प्रतिदिन प्रकाशित खबरें—एक महिला के साथ बलात्कार किया, पुलिस वालों द्वारा महिला के साथ बलात्कार किया गया, चार वर्ष से कुकर्म करने के आरोप में पिता गिरफ्तार, शादी और नौकरी का झांसा देकर सामूहिक बलात्कार, मालिक को खुश करने के लिये पत्नी की इज्जत दांव पर लगाना, महिला मजदूर के साथ बलात्कार, सामूहिक बलात्कार, दहेज के लिए बहू से बलात्कार, चलती बस एवं ट्रेन, में बलात्कार, विवाहिता के साथ सामूहिक बलात्कार का मामला आदि प्रकरण एक सभ्य नागरिक के रोंगटे खड़े कर देने में सक्षम हैं।

आज जहाँ महिला उत्पीड़न, बलात्कार एवं हत्या जैसे अपराधों व हिंसात्मक गतिविधियों में लगातार वृद्धि हुई है, वहीं कानून और व्यवस्था की धज्जियां भी उड़ी हैं। यह एक चौंका देने वाला तथ्य है कि भारत में पिछले दो दशकों में बलात्कार एवं उत्पीड़न के मामलों में वृद्धि हुई है। आज स्थिति यह है कि बलात्कार के बड़े-बड़े अपराधी समाज में निर्भय होकर घूमते रहते हैं। अगर कोई उनका विरोध भी करता है, तो वे लचर कानून व्यवस्था का फायदा उठाकर विरोधी को कमजोर कर देते हैं या उसे समाप्त ही कर देते हैं और अनेक मामलों में नामजद होने के बाद भी अदालतों द्वारा निर्दोष करार दिये जाने के बाद छोड़ दिये जाते हैं। इसी का परिणाम है कि अपराध एवं हिंसा का ग्राफ दिन पर दिन बढ़ता ही जा रहा है। “नारी के जीवन की विडम्बना यह है कि वह पुरुष को जन्म देकर तथा उसको सर्वसमर्थ बनाकर अपने को उसके प्रति समर्पित कर देती है। इसी से सबला होते हुए वह भी अबला कही जाती है। सामाजिक धरातल पर न केवल भेद-भाव का शिकार होती है वरन् उसे द्वितीय श्रेणी के नागरिक का दर्ज भी प्रदान कर दिया जाता है।”³

इक्कीसवीं सदी महिलाओं की सदी है। इसे परिवर्तन की आहट ही कहा जाएगा कि महिलायें सफलता के शिखर पर आरूढ़ हो रही हैं कामयाबी के साथ उनकी सामाजिक व आर्थिक तस्वीर लगातार बदल रही है समाज के सभी पुरुष वर्चस्व वाले क्षेत्रों में महिलाओं ने शानदार प्रवेश किया है। “वैश्विक परिदृश्य में उनका ग्राफ कितना ऊँचा उठा है। आज कुछ क्षेत्र तो ऐसे हैं जहाँ सिर्फ महिलाओं का ही चयन किया जाता है। वर्तमान स्थिति में नारी

ने जो साहस का परिचय दिया है वह आश्चर्यजनक है।¹⁴ समाज के हर क्षेत्र में उनका परोक्ष अपरोक्ष रूप से प्रवेश हो चुका है। आज तो कई ऐसी संस्थाएँ हैं जिन्हें केवल नारी ही संचालित कर रही है जिस नारी को मध्य युग में बेड़ियों से जकड़ दिया गया था उस युग से आज तक उसके संघर्ष की कहानी बड़ी ही लंबी एवं चुनौतीपूर्ण है, परन्तु वह सफल हुई है और आगे भी सफल होगी, यह दैवीय योजना है चाहकर भी कोई उसके बढ़ते कदमों को थाम नहीं सकता है यही नारी की भव्यता है और यह अत्यन्त सुखद भी है।

महिला सशक्तीकरण के इस युग में प्रचार एवं प्रसार का महान परिवर्तन करने वाली प्रक्रिया एवं स्वच्छ बयार चल रही है। इसलिये यदि नारी सही अर्थों में शिक्षित हो जाय, जग जाय, अपने कर्तव्य को पहचाने तो इस पुरुष प्रधान समाज में वह दोयम दर्जे की नागरिक नहीं रहेगी। शिक्षा और आर्थिक स्वावलम्बन ही समाज में नारी की दिशा और दशा को बदलने में सक्षम होंगे, तभी समाज का सही संतुलन एवं विकास होगा।

सरकार महिलाओं की स्थिति को लेकर गंभीर है पर समस्या की असल जड़ पुरुष अपने व्यवहार को बदलने को तैयार नहीं हैं। वह अपने एकाधिकार को लेकर टस से मस नहीं होना चाहता। लड़की को वस्तु समझने की उसकी सोच वही है। छेड़खानी करना, बलात्कार करना, बदतमीजी करना यानी शारीरिक और मानसिक प्रताड़ना उसकी फितरत है जिसे बदलने में अभी वक्त लगेगा। सरकार अब छेड़खानी को गैरजमानती अपराध बनाने पर विचार कर रही है। कानून मंत्रालय अब सेक्सुअल क्राइम बिल नाम से एक विधेयक का मसौदा तैयार कर रही है। इसी में छेड़छाड़ को गैर जमानती और काग्नजिबल बनाने को प्रस्ताव है। अब तक आई पी सी की धारा 354 के तहत छेड़छाड़ का जुर्म साबित होने पर अधिकतम तीन साल तक की सजा का प्रावधान है। इसी वजह से आरोपित व्यक्ति को आसानी से जमानत मिल जाती है।

महिलाओं के प्रति बात छेड़छाड़ तक ही सीमित नहीं रहती। इधर सामाजिक ढांचे में काफी बदलाव हुआ है। पति-पत्नी में तलाक की बढ़ती घटनाएँ विवाह संस्था पर प्रश्नचिह्न लगा रही हैं। स्वतंत्रता और खुले पैसे ने ताकत का अहसास कराया है तो दूसरी ओर धैर्य में बेहद कमी आई है। पत्नी यदि पति पर एकाधिकार चाहती है तो पति भी उसे उसके इशारों पर नचाना चाहता है। जहाँ अहं टकराए वहाँ घर टूटा। आज तलाक लेने-देने में ज्यादा वक्त नहीं लगता और एक बार नहीं दो-तीन बार तलाक लिया-दिया जाता है। कारण कुछ भी हो पर हकीकत यह है कि यहाँ भी स्त्री घाटे में रहती है। तलाकशुदा स्त्री का विवाह इतनी आसानी से नहीं होता जबकि तलाकशुदा पुरुष का विवाह शीघ्र हो जाता है साथ ही उसे कुँआरी लड़की भी मिल जाती है। क्या यही है 21वीं सदी में महिला शसक्तीकरण के बढ़ते कदम ?

स्त्री के लिए कानून की बौछार करने से कोई फायदा नहीं जब तक कि स्त्री स्वयं मजबूत न बने। आर्थिक आधार उसे संबल देता है पर मनमानी की हद तक नहीं क्योंकि अभी भी स्त्री के नौकरी करने या न करने का निर्णय उसके घर के पुरुषों पर निर्भर करता है। स्त्री की मजाल नहीं कि वह पुरुष को किसी भी गलत काम से रोके, फिर भी स्त्री की मजाल है कि वह हर गलत काम का विरोध करे। स्त्री यदि चाहे तो हर गलत बात का सख्ती से विरोध कर सकती है। जरूरत है गुट बनाने की। यदि स्त्री गुटबंदी करके शराब के ठेके तोड़ सकती है तो गली की रुचिका का साथ क्यों नहीं दे सकती ? हर गली, नुककड़ पर स्त्री चौपालें क्यों नहीं जमती ? क्यों नहीं शहरों में नारी संगठन किसी स्त्री के साथ हुए हादसे का विरोध करने सड़कों पर उतर आते ? कानून के बना देने मात्र से न्याय नहीं मिलता। जरूरत है संगठन की, शक्ति की और हौसले की। बहरे समाज को नींद से जगाने का वक्त आ गया है। अब हर स्त्री को जागना होगा। हर स्त्री को।

डॉ० राम मनोहर लोहिया ने भी कहा था कि, “यदि सचमुच बराबरी के आदर्श को मानते हो अथवा समाज की पुनर्रचना बराबरी के आधार पर करना चाहते हो तो फिर मर्द को औरत के मामले में अपने दिमाग को बिल्कुल बदल देना होगा”। अतः इसी संदर्भ में मैं कहना चाहती हूँ कि यह सार्वभौमिक सत्य है कि कोई भी कानून सहृदयता,

सौम्यता, दयालुता के भाव को उत्पन्न नहीं कर सकता। ये गुण तो अच्छी परवरिश, मूल्य आधारित शिक्षा और प्रत्येक के लिए समभाव वाली दृष्टि से ही उत्पन्न होते हैं। इन गुणों के बल पर ही हम उन्हें समाज में आत्म-सम्मान दिला सकेंगे। “कानून सिर्फ राह दिखा सकता है। क्या गलत है, क्या सही? इसके लिये समाज का नजरिया बदलना अति आवश्यक है।”⁵

इतना, कितना, जितना भी आगे बढ़ने के बाद आज सच्चाई यह है कि हजारों वर्षों की यह मान्यता कि स्त्री को पुरुष के संरक्षण की आवश्यकता होती है आज भी यह परिवर्तित नहीं है और इस कारण वह दोहरे भार से दबती जा रही है। वर्तमान समय में भी उसको समाज में दोगुना दर्जे का स्थान मिला हुआ है। “आज भी उसको अपने अधिकारों के लिये लड़ना पड़ता है। पुरुष आज भी उसके साथ समय मिलने पर अत्याचार, शोषण, अनाचार कर रहा है उसकी जब चाहे तब बेइज्जती करने से नहीं चूक रहा है उसको नारी का हर क्षेत्र में आगे बढ़ना हजम नहीं हो रहा है।”⁶

जबकि 21 वीं शताब्दी के हमारे समाज में आज भी यौन अपराध की शिकार स्त्री को ही दोषी ठहराया जाता है न कि उस पुरुष को जो कि यह दुष्कृत्य करता है या करने का प्रयास करता है। अधिक अच्छा तो यह होगा कि पुरुष नारी को भी अपने समकक्ष माने, वह केवल वाणी से ही नहीं बल्कि उसके व्यवहार में भी वह दिखाई पड़े, उसे समान दर्जा दे अन्यथा अबला और असमर्थ कहते रहने से तो वह सचमुच ही नारी को पंगु बनाता रहेगा। अपने उद्धार के लिए मातृत्व को स्वयं भी जागरूक होना पड़ेगा। उसे अपने अस्तित्व को समझते हुए मातृत्व के महान पद की प्रतिष्ठा को पुनर्जीवित रखने के लिए उसे सीता, गौरी, दुर्गा, काली सी शक्ति क्षमता और कर्तव्य का उत्तरदायित्व ग्रहण करना होगा। अपने आपको आदर्श गुणों का आधार बनाना होगा, तभी वह गिरी हुई अवस्था से उठ सकती है। समाज में अपना अधिकार पूर्ण स्थान प्राप्त कर सकती है।

सन्दर्भ सूची

1. सशक्तिकरण की ओर बढ़ते भारतीय महिलाओं के स्वर्णिम कदम—डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव, प्रकाशक, विष्टा इन्टरनेशनल पब्लिकेशन हाउस, यमुना विहार, दिल्ली, पृ० 234—240
2. क्या महिलायें फिर से चार दीवारी के भीतर सिमट जायें, राष्ट्रीय सहारा, 24 जून, 2000, पृ० 3
3. सशक्तिकरण की ओर बढ़ते भारतीय महिलाओं के स्वर्णिम कदम—डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव, प्रकाशक, विष्टा इन्टरनेशनल पब्लिकेशन हाउस, यमुना विहार, दिल्ली, पृ० 1—3
4. सशक्तिकरण की ओर बढ़ते भारतीय महिलाओं के स्वर्णिम कदम—डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव, प्रकाशक, विष्टा इन्टरनेशनल पब्लिकेशन हाउस, यमुना विहार, दिल्ली, पृ० 20—21
5. लिंग भेदरहित समाज बनाने का बीड़ा—राष्ट्रीय सहारा, 24 जून, 2000, पृ० 2
6. इक्कीसवीं सदी की नारी सर्वत्र वर्चस्व, इक्कीसवीं सदी का भारत, मुद्दे विकल्प और नीतियाँ— डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली



भारत में महिला उद्यमिता तथा सशक्तिकरण

शालिनी सिंह

प्रवक्ता बी0 एड0

शहीद मंगल पाण्डे राजकीय, महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ (उ0प्र0)

नारी ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट कृति एवं एवं सृष्टि का उद्गम श्रोत है विश्व प्रकृति नारी के रूप में मूर्त होकर नर के लिए अनन्त काल से प्रेरणा व शक्ति का साधन रही है। भारत में प्राचीन काल से ही महिलाओं को महत्वपूर्ण स्थान व गौरव प्राप्त रहा है। उपनिषदों में अर्द्धनारीश्वर की कल्पना करते हुये नारी को पुरुष के समान मानकर उसके महत्व को प्रतिपादित किया है। समाज के निर्माण में महिला एवं पुरुष समान भूमिका का निर्वहन करते हैं यह भी सत्य है कि वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं कोई भी एक को नकार कर दूसरे को स्वीकार कर विकसित नहीं हो सकता। यह भी सत्य है कि वास्तविक विकास पुरुष तथा नारी के समान रूप से विकसित हुये बिना सम्भव नहीं है। मानव समाज के विकास एवं निर्माण में चिरकाल से ही स्त्री और पुरुष महत्वपूर्ण योगदान देते रहे हैं। किसी एक की अनुपस्थिति में सृष्टि का निर्माण और समाज की परिकल्पना नहीं की जा सकती। महिलाओं को समाज का आधा अंग माना गया है महिलाओं के बिना किसी भी समाज के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। अरस्तू के कथनानुसार—“नारी की उन्नति तथा अवनति पर ही राष्ट्र की उन्नति तथा अवनति निर्भर है।” किसी भी राष्ट्र के विकास में नारी का उतना ही महत्वपूर्ण स्थान होता है जितना पुरुष का। वह भी समाज के सभी कार्यों में अपना महत्वपूर्ण योगदान देती रही है। यह भी सत्य है कि वास्तविक विकास पुरुष तथा नारी के समान रूप से विकसित हुये बिना नहीं हो सकता।

भारतीय समाज में नारी की स्थिति समय के साथ-साथ उतार चढ़ाव से परिपूर्ण रही है सभी युगों में नारी की स्थिति एक जैसी नहीं रही। हमारी प्राचीन व्यवस्था में नारियों को उच्च स्थिति प्राप्त थी, उन्हें सुख, वैभव, शान्ति, शक्ति व ज्ञान का प्रतीक माना जाता था। वह भी समाज के सभी सार्वजनिक कार्यों में पुरुषों के साथ समान रूप से भागीदारी लेती थीं लेकिन कालान्तर में उनकी स्थिति में निरन्तर गिरावट आई और 19वीं शताब्दी के आरम्भ काल तक भारतीय नारी अपनी स्थिति के पतन की चरम सीमा पर पहुँच गयी परन्तु आधुनिक काल के आविर्भाव के साथ एक स्थिर व्यवस्था से छूटकर देश को एक न्यूनतम गत्यात्मकता का अनुभव हुआ। परम्पराएं टूटने लगीं, नये परिवेश में ऐतिहासिक मांग के फलस्वरूप समाज एक नये रूप में बदलने लगा इसी के अनुरूप नारी की परम्परागत छवि भी बदलती व निखरती गयी। आज के परिप्रेक्ष्य में उसने न केवल अपनी शक्ति को पहचाना है बल्कि पुरुषों को हर कदम पर पीछे भी छोड़ा है। आज नारी ने घर की दहलीज को लाँघकर परिवार के साथ-साथ कई क्षेत्रों में न सिर्फ अपनी पहिचान बनाई है अपितु बड़ी शान से पुरुषों से आगे निकल गयी हैं। वह शिक्षा, साहस, ओजस्विता, विलक्षण प्रतिभा व कार्य क्षमता के बल पर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र तकनीकी, शिक्षा, चिकित्सा, कला, न्याय व्यवस्था, सिविल सेवा तथा व्यापारिक प्रतिष्ठानों आदि में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही हैं। फिर चाहे बात शिक्षा की हो या रोजगार की प्रतियोगिता की हो या परिवार की जिम्मेदारी की या फिर देश के बागडोर की। 20वीं और 21वीं शताब्दी तो श्रेष्ठ और महान नारियों की जन्मदायिनी है। महिलाएं न सिर्फ राष्ट्रीय बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भी अपनी पहिचान बना चुकी हैं फिर चाहे वे कम्पनियों के शीर्ष पर बैठी महिलाएं हों या मोमबत्ती अचार, पापड, अगरबत्ती, टिफिन बनाने वाली या फिर व्यूटी एवं कार्समैटिक सेंटर चलाने वाली, कंटेनिंग या बुटिक आदि लघु उद्योगों से जुड़ी महिलाएं। हर क्षेत्र में कार्यकुशलता एवं कर्मठता के बल पर बुलन्दियों को छूती हुयी सम्मानित और प्रतिष्ठित हो रही हैं। आज नारी ने अपनी शक्ति से यह साबित कर दिया है कि वह घर चलाने के साथ-साथ

देश को भी बड़ी कुशलता से चला सकती हैं। 16 फरवरी 1975 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के अवसर पर तत्कालीन प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी ने महिलाओं की उद्यमिता के विषय में कहा था— “ ऐसा कोई काम नहीं जिसे महिलाएं पुरुषों के साथ कन्धा मिलाकर नहीं कर सकती विश्व की समस्या का समाधान करने के लिये नारी जाग्रति परम आवश्यक है। जब तक समाज में उनका उचित स्थान नहीं मिल जाता तब तक कोई समाज या देश उन्नति नहीं कर सकता, कैसी भी प्रगति तब तक असम्भव है जब तक संसार की आधी जनसंख्या अर्थात् नारी जाति का उसमें सहयोग न हो।”

संसार में महिलाएं आबादी का आधा हिस्सा हैं इसलिए आर्थिक और सामाजिक प्रगति के लिये महिला उद्यमिता पर बल दिया जा रहा है। 5वीं पंचवर्षीय योजना (1974 से 1979 तक) के बाद भारतीय नारी सशक्तिकरण में विशेष जोर दिया गया। सरकार ने महिलाओं की मानसिकता को महसूस किया है और महिलाएं भी आर्थिक रूप से सशक्त होने के लिये उद्यमिता की ओर आकर्षित हुयी हैं। महिलाओं को सशक्त बनाने के लिये डॉ० ए०पी०जे० अब्दुल कलाम ने कहा है कि— “देश की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिये महिलाओं को सशक्त बनाना आवश्यक है, उनके नेतृत्व से एक अच्छे परिवार का निर्माण होगा और उनके विचार परिवार की उन्नति करेंगे और वह तभी सम्भव होगा जब महिलाएं आर्थिक रूप से मजबूत होंगी।”

महिला के विकास के लिये आज महिला सशक्ति करण की आवश्यकता है, महिला सशक्तिकरण एक ऐसी मानसिक अवस्था है जो कुछ विशेष उद्यमिताओं, आन्तरिक कुशलताओं और शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि परिस्थितियों पर निर्भर करती है जिसके लिये समाज आवश्यक कानूनों, सुरक्षात्मक प्रावधानों और उनके भली-भांति क्रियान्वयन हेतु सक्षम प्रशासनिक व्यवस्था होना परम आवश्यक है। महिला सशक्तिकरण का अर्थ एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में भी लगाया जाता है जिसमें महिलाओं को अपने आप को संगठित करने की क्षमता बढ़ती है, वे सामाजिक, आर्थिक स्थिति व परिवार तथा समाज में भूमिका के आधार पर निर्धारित सम्बन्धों को दरकिनार करते हुये आत्मनिर्भरता विकसित करती हैं। इसके अन्तर्गत विकल्पों के चयन और संसाधनों के नियन्त्रण को उनकी क्षमता के साथ-साथ परिवार और समुदाय के साथ सहभागिता पूर्ण सम्बन्धों का लाभ उठाने की क्षमता भी शामिल है।

आज भारत सरकार द्वारा महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण के लिये उनके विकास व कल्याणकारी योजनाओं को चलाया जा रहा है जैसे— काम के बदले अनाज योजना 1997, अन्त्योदय कार्यक्रम 1978, ग्रामीण क्षेत्र में महिला व बालविकास कार्यक्रम 1982, ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद 1986, महिलाओं हेतु प्रशिक्षण एवं रोजगार कार्यक्रम 1987, स्वर्णजयन्ती स्वरोजगार योजना 1999 से 2000, प्रधानमन्त्री ग्रामोदय योजना 1999 से 2000, अन्त्योदय योजना 2000, सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना 2005, भारत निर्माण योजना 2006, स्वालम्बन योजना 2006, किशोरी शक्ति योजना 2006, उज्ज्वला योजना 2007, सबला योजना 2010, बालश्रम योजना, आंगनबाड़ी योजना, सामूहिक विकास योजना आदि।

वर्ष 1986-87 में कृषि, दुग्ध उत्पादन, पशुपालन, मछली पालन, खादी, ग्रामोद्योग, रेशम विकास आदि में रोजगार देने के लिये नारी प्रशिक्षण और रोजगार कार्यक्रम चलाये गये। वर्ष 2001 में भारत सरकार ने अनेक योजनाएं चलायीं। महिलाओं के आर्थिक विकास के लिये समान वेतन अधिनियम 1979, मातृत्व हितलाभ अधिनियम 1976, किशोरी शक्ति योजना 2001, स्वयं सिद्ध योजना, आंगनबाड़ी योजना, बालविकास योजनाएं आदि प्रमुख योजनाएं चल रही हैं। महिला सशक्ति करण हेतु वर्ष 2001 में महिला उत्थान नीति की घोषणा की गयी जिसके प्रमुख बिन्दु हैं—

1. देश में महिलाओं के लिये ऐसा वातावरण तैयार करना जिसमें उन्हें लगे कि वे आर्थिक व सामाजिक नीतियों में सहभागी हैं।

2. मानव अधिकारों का प्रयोग करने हेतु महिलाओं को सक्षम बनाना व उन्हें पुरुषों के साथ सभी क्षेत्रों में आधारभूत स्वतंत्रता का समान रूप से सहभागी बनाना।
3. देश में महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार तथा सामाजिक सुरक्षा में सहभागिता सुनिश्चित करना।
4. महिलाओं के प्रति किसी तरह के भेदभाव को दूर करने के लिये कानूनी प्रणाली और सामुदायिक प्रक्रिया विकसित करना।
5. देश के सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक जीवन में महिलाओं को बराबर भागीदार बनाना।
6. समाज में महिलाओं के प्रति व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिये महिलाओं व पुरुषों के बराबर की भागीदारी को बढ़ावा देना।

देश के आर्थिक विकास में महिलाओं का योगदान नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता है। महिलाओं के कदम भारतीय सेवा, राजनीति, रक्षा, पंचायती व्यवस्था, रेलवे, व्यापार जगत आदि सभी क्षेत्रों में बढे हैं। जो पहले उनके लिये अबूझ व दूर की बात होती थी। वर्ष 2001 में अनुमान लगाया गया है कि देश में महिलाओं के कुल 1063721 उद्यम हैं। रितु डाल्मिया, सुशमापुरी, सुजाता केशवानी, दीपा मेहता, ऊषा सुन्दरम्, नीरा जैन, सबरजीत कौर, देविना मेहरा, ललिता खनीजा, मेहर शारिक आदि स्त्रियां आज सफल उद्यमी हैं। भारतीय महिला उद्यमी शशि सिंह (भारतीय महिला उद्यमी संघ की प्रमुख) के अनुसार – भारतीय महिला उद्यमी दुनिया के किसी भी देश की महिला उद्यमियों से टक्कर ले सकती है। आज विभिन्न क्षेत्रों जैसे प्रशासन, चिकित्सा शिक्षा उद्योग, तकनीकी शिक्षा, आईटी0 इण्डस्ट्री तथा व्यवसाय आदि में महिलाओं की बढ़ोत्तरी हुयी है।

एक रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2005 में 11 करोड़ 30 लाख महिलाएं असंगठित अर्थ व्यवस्था में कार्य कर रही हैं इन महिलाओं की भारतीय अर्थव्यवस्था के सकल घरेलू उत्पाद में 10 फीसदी हिस्सेदारी है यानी 5607 अरब। देश की 96 फीसदी महिला श्रम शक्ति असंगठित क्षेत्रों में काम करती है इसमें 77 फीसदी महिलायें कृषि तथा 10 फीसदी मैनुफक्चरिंग तथा 4 फीसदी व्यापार तथा होटल में काम करती हैं।

भारतीय न्यायपालिका में भी पहले की अपेक्षा महिला न्यायाधीशों की संख्या बढ़ी है। फातिमा बीबी सर्वोच्च न्यायालय की प्रथम महिला न्यायाधीश हुईं। इनके पश्चात बी0 सुजाता मनोहर तथा 2005 में जस्टिस रूपा पाल न्यायाधीश बनी। वकालत जैसे चुनौती पूर्ण व्यवसाय में भी महिलाओं ने अपनी पहचान बनाई है।

महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण में शिक्षा का सबसे प्रमुख योगदान है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात वर्ष 1951 में जहां महिला साक्षरता दर 8.86 प्रतिशत थी वहीं सन 2011 में बढ़कर 65.46 प्रतिशत तक पहुंच गयी है।

इसी प्रकार पंचायती राजव्यवस्था में स्वायत्तशासी निकायों में महिलाओं के लिये 33 फीसदी सीटें आरक्षित किये जाने से महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी 4.5 से बढ़कर 25.40 प्रतिशत हो गयी है।

भारतीय रक्षा सेवा में थल सेना में महिलाओं की भागीदारी 2.65 प्रतिशत तथा नौ सेना में 3 प्रतिशत तथा वायु सेना में 6.7 फीसदी है।

2010 में भारत में सम्पन्न हुये राष्ट्रमण्डल खेलों में भारत की स्वर्ण पदक तालिका में करीब 34 प्रतिशत स्वर्ण पदक महिलाओं ने जीते। इसी प्रकार कुल रजत पदकों में से 40 फीसदी तथा कांस्य पदकों में से 34 प्रतिशत महिला खिलाडियों ने जीते— सायना नेहवाल, सानिया मिर्जा, अंजली भागवत, पी0टी0 ऊषा, अन्जु बॉबी जार्ज, डोला बनर्जी, सुनीता राव, एम0 सी0 मैरीकॉम आदि ने खेल जगत की बुलन्दियों को छूकर भारतीय महिलाओं का सिर समस्त विश्व में ऊंचा उठाया है।

उद्योग जगत में भी महिलाओं की पकड़ क्रमशः मजबूत होती दिख रही है। आई0टी0 इण्डस्ट्री में 1981 में जहां पुरुषों के मुकाबले सिर्फ 19.7 प्रतिशत महिलायें कार्यरत थीं वहीं 1991 में यह संख्या 22.7 फीसदी तक पहुँच

गयी। नौसकाम के आंकड़ों के अनुसार पिछले 2 वर्षों में भारत में महिला रोजगार में 18 फीसदी तक वृद्धि दर्ज की गयी है। ऐसा अनुमान है कि वर्ष 2010 तक महिला टेक्नीशियनों की संख्या लगभग 50 फीसदी तक हो चुकी है। साफ्टवेयर उद्योग में भी महिलाओं का अनुपात 76:36 हो चुका है।

महिला उद्यमियों में स्वाती पिरामिल जहां एसोचैम की अध्यक्ष बनी, वहीं इन्दिरा नूयी यू0एस0 इण्डिया बिजनेस काउंसिल की चेयरमैन के साथ ही पेप्सिको की सी0ई0ओ0 तक पहुँची। इसी तरह महिला उद्यमियों में भारत की सर्वाधिक धनी महिला (2004) किरण मजूमदार शाह ने बायोकान इण्डिया की नीव डाली जहाँ कैंसर तथा डायबिटीज आदि रोगों की दवाइयों का निर्माण किया जाता है।

ये कुछ ऐसे चुनिन्दा उदाहरण हैं जो इस ओर स्पष्ट संकेत करते हैं कि कई दशक पूर्व अबला तथा शक्तिहीन समझी जाने वाली नारी अब सफलता के नये कीर्तिमान स्थापित कर रही हैं। जहाँ महिला आर्थिक रूप से स्वावलम्बी, आत्म विश्वासी तथा जीवन के प्रति सकारात्मक सौचयुक्त बनी है वहीं उसने विकास कार्यों में भी अपनी सुस्पष्ट भागीदारी सुनिश्चित की है।

भारत सरकार की महिलाओं के विकास की अनेकों योजनाओं के परिणाम स्वरूप विकास के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं ने अपनी सफलता का परचम लहराया है परन्तु फिर भी अभी ऐसे अनेक क्षेत्र विद्यमान हैं जहाँ महिलाओं की भागीदारी नगण्य है अतः आवश्यकता इस बात की है कि विकास कार्यक्रमों के साथ ही साथ महिला जागरूकता तथा समाज सुधार की दिशा में वांछनीय प्रयास किये जायें ताकि महिला विकास के अवरूद्ध मार्गों को खोलने में मदद मिल सके।

राष्ट्र के विकास में महिलाओं के बहुमूल्य योगदान को नकारा नहीं जा सकता अतः स्पष्ट है कि नारी में योग्यता की कोई कमी नहीं है जरूरत सिर्फ उन्हें प्रेरित करने तथा उनमें आत्मविश्वास पैदा करने की है।

संक्षेप में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में समय-समय पर आयोजित संगोष्ठियों तथा सम्मेलनों में महिला सशक्तिकरण पर किये गये विचारों से इस बात को बल मिलता है कि यह वर्तमान समय की जरूरत है परन्तु मात्र लम्बे चौड़े व्याख्यानों से महिलाओं का उत्थान होने वाला नहीं है बल्कि इसके लिये हमें सार्थक प्रयासों की जरूरत है। विकासशील तथा समता पूर्ण समाज में नारी को उचित स्थान देना ही होगा क्योंकि महिला तथा विकास के बीच अन्तरंग सम्बन्ध है। महिला केवल विकास से प्रभावित ही नहीं होती अपितु उसे प्रभावित करने की अद्भुत क्षमता भी रखती है। इसके बिना राष्ट्र का संतुलित विकास असम्भव है देश के नव निर्माण तथा अनिवार्य आर्थिक विकास के लिए नारी को और अधिक सशक्त करना ही होगा।

सन्दर्भ सूची

- कुरुक्षेत्र, मार्च 2009, मासिक पत्रिका।
- गुप्ता, एस0पी0 : “भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास तथा समस्याएं” शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
- योजना, मई 2010, मासिक पत्रिका।
- पाण्डेय, राजीव : “महिला उद्यमिता ” साहित्य संस्थान, गाजियाबाद।
- डॉ0 सिंह, निशान्त : “भारतीय महिलाएं— एक सामाजिक अध्ययन” ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
- संचार बुलेटिन, त्रैमासिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका, संचार एजुकेशनल एण्ड रिसर्च फाउण्डेशन, लखनऊ।



संस्कृति साहित्य में नारी चिन्तन

डॉ. जय सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग

राजकीय महिला महाविद्यालय, अम्बारी, जिला-आजमगढ़ (उ०प्र०)

भारतीय संस्कृति और सभ्यता में नारी का विशेष स्थान रहा है। यह उदारता, वात्सल्य, प्रेम के साथ दृढ़ता, रौद्रता एवं आपत्ति काल में सदा सत्यरूपा दृष्टिगोचर होती है नाना रूप धारिणी नारी के विषय में भारतीय साहित्य भरा पड़ा है। शान्तिकाल में यदि यह शरदकालीन जाह्नवीतुल्य है तो क्रोध और युद्ध में भैरवी और महाकाली भी है, उस समय इसके सम्मुख नर क्या दनुज और असुर भी पराभव प्राप्त करते हैं। लालन-पालन के समय यह जननीरूपा, रक्षा के समय भगिनीरूप और सृष्टि के साथ भार्य (पत्नी) रूप में है और जब यह अपना क्षेत्र विस्तार करके शासिका रूप में आती है तब अहिल्याबाई, लक्ष्मीबाई जैसी वीरांगनाओं का रूप धारण करती है। यह नारी जब शक्तिपुंज होकर शरणागतों की रक्षा करती हैं तो वह महाकाली दिखाई देती है। इतना ही नहीं, सुख, शान्ति और समृद्धि काल में यही नारी महालक्ष्मी है तो एक ओर शैशव से लेकर वृद्धावस्था तक ज्ञानदात्री सरस्वतीरूपा है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में वागम्बरणी देवी वाक् सुक्त के अनुसार उसी का उद्घोष करती है कि मैं ही सब कुछ हूँ। विदुषी गार्गी, मैत्रेयी का नाम सर्वविदित है, भक्ति के क्षेत्र में मीरा, तो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिये सरोजनी नायडू, सुभद्रा कुमारी चौहान, इन्दिरा गाँधी जैसी नारियों से भारत का इतिहास मण्डित है।

नारी का एक सामान्य स्वरूप भी है, जो प्रायः सर्वत्र देखा जाता है और उस रूप में भी उसे देवांशविभूषिता ही माना गया है, इसलिए यह प्रशंसा या उपदेश है – “यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।”¹ स्त्री समस्त प्रकृति जीवों की पोषिका है। नारी सृष्टि करती है एवं मानवोत्थान की प्रधान है। स्मृतियों का कथन है कि पुरुष अधूरा उत्पन्न होता है, विवाहोपरान्त पत्नी उसे पूर्ण करती है, इसलिए वह अर्धाङ्गिनी होकर पुरुष को वह गृही बनाती है तथा सन्तति देकर सृष्टि का कार्य करती है। ऐतरेय एवं मनुस्मृति ने उसे जाया कहा है, क्योंकि पति स्त्री के गर्भ से पुत्र स्वरूप जन्म लेता है –

“आत्मा वै जायते पुत्रः”! महाभारत काल में भी गृहणी को गृह कहा गया है इसके बिना घर का कोई स्वरूप नहीं है। यह गृहलक्ष्मी या गृहशोभा है।

पतिः भार्या सम्प्रविश्य गर्भो जायते

जाया यास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः॥ (मनु. 918)

अनेकानेक प्रमाणों से प्रमाणित है कि प्राचीनकाल से ही भारतीय समाज में नारी का स्थान पुरुष से आगे हैं। सम्भवतः देव माने जाने वाले राम, कृष्ण, शिव आदि अपने आगे अपनी अर्धाङ्गिनी का नाम रखना उचित समझते थे। सीता, राधा, उमा आदि सदैव पूजनीय रही हैं। यह सब अवस्था शान्ति और समृद्धि काल की थी, किन्तु अशान्ति काल में, युद्ध काल में उनकी रक्षा का भार पुरुष समाज पर रहा। स्त्री का अपमान मृत्यु का आमन्त्रण था, रामायण में रावण, महाभारत में दुर्योधन इसके प्रमाण हैं। मध्यकाल में जब भारत पर आक्रान्ताओं के विनाशकारी आक्रमण होने लगे, भारतीय संस्कृति को नष्ट करने के प्रयास निर्दयतापूर्वक किये जाने लगे, तब भारतीय संस्कृति की मूल पोषिका नारी के जीवन में नियन्त्रण की श्रृंखलायें डाली जाने लगीं, यह सब समाज में योजनाबद्ध क्रिया थी।

स्मृतिकालीन समाज में स्त्रियों का एक सामान्य स्थान था, सम्भवतः उपेक्षित सा था। इसलिए इस स्मृति में कुछ आचार सम्बन्धी नियमों पर तो प्रकाश डाला गया है, किन्तु शिक्षा- दीक्षा रहन-सहन आदि पर प्रकाश नहीं

है, यह मात्र गृहस्थ जीवन तक ही सीमित है। उस काल में समाज के द्वारा स्त्री-शिक्षा की क्या व्यवस्था थी, कुछ नहीं कहा जा सकता, जब कि वैदिक काल में स्त्रियाँ वेद की ऋचायें पढ़ती थीं, धार्मिक कृत्यों में भाग लेती थी, किन्तु स्मृति काल में ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी शिक्षा पर कोई ध्यान नहीं दिया जा सका। सम्भवतः बाल्यावस्था में विवाह कर दिया जाता था। यह गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने की व्यवस्था थी, इसलिए शिक्षा का अवसर ही नहीं दिया गया। इनको तो केवल पति सेवा, गृहस्थ धर्म का पालन, अतिथि सेवा सौंप दी गयी थी। मनु ने जहाँ पिता, भाई, पति को स्त्रियों का आदर करने का उपदेश दिया, वही याज्ञवल्क्य स्त्रियों की पूर्ण सुरक्षा और सम्मान करने को कहकर अपना दायित्व पूर्ण समझते। स्मृतिकार स्त्रियों का परम धर्म बताते हुए लिखते हैं कि

भार्या को पति के अनुरूप आचरण करने वाली, सास, ससुर, गुरु, देवता तथा अतिथि का सत्कार करने वाली, मितव्ययी, गुप्ता भण्डार वाली तथा मांगलिक कार्यों को करने वाली होना चाहिये।² इसका तात्पर्य है कि इस काल में सेवा, सत्कार, पूजा आदि ही स्त्री की रह गया था। दक्ष, याज्ञवल्क्य, व्यास आदि सभी स्मृतिकार इस पर एकमत हैं।³

सत्योपस्करा दष्टा व्ययपराङ्मुखी।

कुर्याच्छ्वशुरयोः पादवन्दनं भर्तृतत्परा॥

इससे यह भी तात्पर्य निकलता है कि समस्त विचारकों और समाज की ऐसी मानसिकता हो गयी थी। वैसे स्वागत, सत्कार करना समाजसेवा है, लेकिन स्त्रियों को ही क्यों, पुरुषों के द्वारा लिखी गयी, इसलिये पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया गया है। जब स्त्री ही गृहिणी है, वही घर है, तब गृहकार्यों में कुशलता, परिवार के सदस्यों से विनम्र व्यवहार, गृहस्थी का कुशल संचालन ही कार्य-क्षेत्र है। इस समय वह प्रियवादिनी, परिश्रमी तो होगी ही, पुनः उसको निर्धारण करने का प्रयोजन समझ में नहीं आता। दक्षस्मृति का कथन है कि सर्वगुणसम्पन्न स्त्री, स्त्री नहीं देवी है। स्मृतिकारों ने देवी, लक्ष्मी आदि मधुर एवं शिष्ट शब्दों के द्वारा नारी जाति के साथ छल किया है। व्यासस्मृति का कथन है कि स्त्री को कभी उच्च स्वर में कठोर और अप्रिय वचन नहीं बोलना चाहिये। इससे यह भी ध्वनि निकलती है। कि पुरुष चाहे कितने ही उच्च स्वर से कठोरता पूर्वक क्रूर शब्दों का प्रयोग करता रहे, उसे स्वतन्त्रता है। तथा नारी नारी न होकर मूक पशु के समान प्रातः काल से कार्य करते हुए सब कुछ सुनती और सहन करती रहे।

स्त्री सदा स्वयं परिवार की सेवा में, समाज में समर्पित रही है, आज भी है और स्मृतिकाल में भी थी, उसमें भी गुण-दोषों का मिश्रण रहा है। स्मृतिकारों का कथन है तो स्तुत्य है कि मनुष्यों को दोषों से दूर रहने का प्रयास करना चाहिये। यथा— मद्यपान, दुर्जन— संसर्ग, असमय शयन आदि दोष है, इन दोनों का यथाशक्ति त्यागना गुण है, इन्हें त्यागने के लिये शुक्राचार्य, मनु याज्ञवल्क्य, पराशर आदि सभी ने कहा है।⁴

पर्दा—प्रथा भारतीय समाज में रामायण और महाभारत काल से ही प्रविष्ट थी और यह शायद पुरुषों के रुपलोभ एवं कुदृष्टि से बचने का प्रयास था क्योंकि स्त्री की लज्जा एवं शालीनता अपना विशेष गुण है।

व्यसनेषु न कृच्छेषु न युद्धेषु स्वयंवरे।

न क्रतौ नो विवाहे वा दर्शनं दृश्यते स्त्रियां॥

(युद्ध काण्ड 116/28)

धर्मा स्त्रियं सभापूर्वं व नयन्तीति न श्रुतम्

स नष्टः कौरवेवेषु पूर्वो धर्मः सनातनः॥

(महा.सभापर्व 69/9)

स्मृति काल में पर्दा—प्रथा थी या नहीं, इसका उल्लेख नहीं है। केवल पति के प्रवास काल में झरोखों आदि पर न खड़ा रहने को कहा गया है। कुछ स्मृतियाँ उसे क्रीड़ा, कौतुक, शरीर—सज्जा एवं उत्सवों में सम्मिलित होने को भी मना करती हैं। इसकी पुष्टि शुक्रनीति में भी की गयी है। ऐसा प्रतीत होता है कि पति—प्रवास में उसे जीवन से नीरस रहने को कहा गया है जब कि ऐसे समय में पति का भी दायित्व परिवार के प्रति होना चाहिए। यह तो

एक प्रकार से सिद्ध करता है कि पति ही उसका जीवन, उत्सव, सज्जा सब कुछ था।

अन्य स्मृतियों की भाँति विष्णुस्मृति काल में भी स्त्री-जीवन कभी भी स्वतन्त्र नहीं था, वह बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक पिता, पति एवं पुत्रों के ही आधीन रहती थी।

सर्वकर्मस्वतन्त्रता। बाल्ययौवनवार्द्धक्येष्वपि पितृभर्तुपत्राधीनता (वि. स्मृति पृ० 466)

इससे स्मृतिकार ने तर्क दिया है कि स्त्रियों की यत्न पूर्वक रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि अरक्षित स्त्री पति एवं पितृकुल दोनों को ही पतित कर देती है।¹⁵ कालिदास जी ने भी पौंचवें अंक में ऐसा ही विचार प्रकट किया है। ऐसा लगता है कि सभी स्मृतिकार स्त्री-स्वतन्त्रता के शत्रु थे, यदि चरित्र रक्षा ही उद्देश्य था, तब इतना सशक्त नहीं होना चाहिए। भारतीय नारी का चरित्र कभी नीचा नहीं रहा या फिर इसी प्रकार की घोषणायें पुरुषों के लिये भी होनी चाहिये, क्योंकि पतन उभयपक्षी भी हो सकता है। उस काल में सम्भवतः सती प्रथा भी थी, क्योंकि स्मृतिकार ने एक स्थान पर संकेत दिया है कि पति की मृत्यु हो जाने पर ब्रह्मचर्य का पालन अथवा चिता पर आरोहण स्त्री को करना चाहिये।

मृते भर्तरि ब्रह्मचर्यं तदन्वारोहणं वा

(वि.स्मृति मृ. 466)

इसी प्रकार का मत पाराशरस्मृति में भी स्पष्ट है तथा शुक्रनीति में भी इस कथन की पुष्टि की गयी है। यह भी समाज की क्रूरता का परिचायक है और सृष्टि की अवरोधक है, क्योंकि कोई भी सभ्य समाज जीवित जीव को जलाने की अनुमति नहीं देगा। यह क्रूरता ही थी, जो कालान्तर में राजा राम मोहन राय के द्वारा विरोध में प्रकट हुई और आज रोक दी गयी है।

स्मृतिकार पति से पृथक् स्त्री को कोई अधिकार नहीं देता। स्मृतिकार प्रति से पृथक् के व्रत, उपवास आदि नहीं मान उन्होंने तो नरकभय दिखाकर यह कह दिया कि पति के जीवित रहते हुए जो स्त्री व्रत, उपवास करती है, वह पति की आयु का हरण करते हुये नरक जाती है। मनु याज्ञवल्क्य तथा अत्रिस्मृतियों ने भी इस कथन की पुष्टि की है। सभी स्मृतिकारों ने उसके व्रत, उपवास के अधिकारो को छीन कर केवल पतिरूपी खूँटें से ही बाँध दिया था, जो भी कुछ करे वह पतिसेवा में ही लगी रही है उसे सेवा की गठरी बना दिया गया था। भाव यह है कि स्मृतिकाल में स्त्री ब्रतोपवास से अथवा धार्मिक भावना से रहित कर दी गयी थी। इन स्मृतियों में स्त्री की पवित्रता अपवित्रता पर विशेष बल दिया गया है, रजोदर्शन पर सभी कार्य त्याज्य थे, जो चतुर्थ दिवस तक सीमित थे।

संस्कृत साहित्य में बहु पत्नी प्रथा का भी वर्णन मिलता है। समाज में सम्भवतः बहुपत्नी-प्रभा भी थी, क्योंकि एक स्थान पर वर्णन मिलता है कि यदि बहुत सी सवर्ण भार्या हो, तो उसे ज्येष्ठ के साथ ही धर्म-कर्म करना विहित है। इससे स्पष्ट है कि ज्येष्ठ पत्नी ही प्रधान होती थी। उसे अन्य पत्नियों की अपेक्षा अधिक अधिकार प्राप्त थे। ब्राह्मण की शूद्र पत्नी कभी भी धर्म में सहायक नहीं बनती थी। इसका तात्पर्य है कि उस काल में भी असवर्ण विवाह होते रहे, जैसे कि स्मृति से संकेत मिलता है, किन्तु उन्हें सवर्ण पत्नी के समान अधिकार प्राप्त नहीं थे। ऐसा ही विचार मनु, याज्ञवल्क्य, व्यास आदि स्मृतियों में मिलता है।

सर्वासु बहुभार्यासु विद्यमानासु ज्येष्ठया सह धर्मकार्यं कुर्यात् (वि. स्मृति पृ. 467)

नानावर्णासु भार्यासु सवर्णा सहचारिणी।

धर्म्या धर्मेषु धर्मिष्ठा ज्येष्ठा तस्य स्वजातिषु।।

(वेद व्यास2/12)

निष्कर्ष रूप में यही कहना होगा कि संस्कृत साहित्य में स्त्रियों का सामान्य स्थान था, शिक्षारहित परतन्त्र जीवन व्यतीत करना पड़ता था, उनके लिये सर्वत्र समाज में कर्तव्य ही कर्तव्य थे, जिनमें सेवा प्रथम थी। पति अनुकूल रहने की शिक्षा और वातावरण उपस्थित था, तीनों अवस्था में किसी न किसी रूप में पिता, पति, पुत्र के

अधीन थी। संस्कृत साहित्य में स्त्रियां की सुरक्षा का पूर्ण दायित्व पुरुषों पर था। वर्तमान में स्त्रियों की वह दशा नहीं है। उन्हें पुरुष समाज के समान ही अधिकार प्राप्त हैं। वह प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के कन्धा मिला कर कार्य कर रही है। समाज निर्माण में पूर्ण सहयोग दे रही है। यथार्थ में तो वह वर्तमान में ही अर्धांगिनी सिद्ध हो रही है।

सन्दर्भ सूची

1. मनुस्मृति
2. वेदव्यास स्मृति
3. विष्णु स्मृति
4. ऐतरेय ब्राह्मण
5. अभिज्ञान शाकुन्तल
6. रामायण



ग्रामीण महिलाओं के मतदान व्यवहार पर शिक्षा का प्रभाव

डॉ. सुजाता सेम्युएल

सहायक प्राध्यापक

शासकीय पतालेश्वर कला एवं वाणिज्य
महाविद्यालय, मस्तूरी, जिला-बिलासपुर

डॉ. सपना कॉर

सहायक प्राध्यापक

शासकीय महाविद्यालय, अरमरीकला,
जिला- बालोद

प्रस्तावना : स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था स्थापित हुई तथा संविधान की प्रस्तावना में “प्रतिष्ठा तथा अवसर की समता” तथा “व्यक्ति की गरिमा” आदि वाक्यांशों का प्रयोग कर यह स्पष्ट किया गया है कि सभी को विकास के समान अवसर उपलब्ध है लेकिन भारतीय समाज में महिलाएं विशेषकर ग्रामीण महिलाएं अशिक्षा, आत्मविश्वास में कमी तथा राजनीतिक प्रशिक्षण व जागरूकता के अभाव में राजनीतिक गतिविधियों में कम भाग लेती हैं। राजनीतिक क्षेत्र में इनकी सर्वाधिक सहभागिता मतदाता के रूप में होती है। मतदान करते समय मतदाता के मूल्यों को प्रभावित करनेवाले चर और उनका मतदाताओं के निर्णय निर्माण प्रक्रिया पर प्रभाव मतदान व्यवहार कहलाता है।

पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना के बाद भी ग्रामीण महिलाएं वर्तमान समय में व्यक्तिगत, पारिवारिक सामाजिक सांस्कृतिक व आर्थिक कारणों से राजनीतिक रूप से कम सक्रिय हैं और चुनावों के माध्यम से पद प्राप्त कर निर्णय निर्माण प्रक्रिया व नीतियों के निर्माण में उनकी सहभागिता अत्यंत अल्प है तथा मतदान करते समय भी परिवार के अन्य सदस्यों के निर्णय से प्रभावित होती हैं परन्तु जैसे जैसे ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के प्रसार हो रहा है ग्रामीण महिलाओं की स्थिति में भी परिवर्तन आता जा रहा है। मतदाता के रूप में ग्रामीण महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता पर शिक्षा के प्रभाव का अध्ययन प्रस्तुत शोध पत्र में किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य :-

(1) ग्रामीण महिलाओं के मतदान व्यवहार पर शिक्षा के प्रभाव से होनेवाले जागरूकता के स्तर को ज्ञात करना।

(2) मतदाता के रूप में लिए जानेवाले निर्णय की स्वतंत्रता पर शिक्षा के प्रभाव का विश्लेषण करना।

(3) विविध राजनीतिक दलों के कार्यक्रमों व घोषणापत्रों के विषय में जानकारी व उनका मूल्यांकन करने की क्षमता पर पड़नेवाले शिक्षा के प्रभाव को ज्ञात करना।

(4) मतदान के समय दिए जाने वाले आर्थिक प्रलोभनों पर शिक्षा के प्रभाव का विश्लेषण करना।

प्रस्तावित अध्ययन की शोध पद्धति :-

- शोध कार्य हेतु छत्तीसगढ़ राज्य के दुर्ग जिले के पाटन विकासखण्ड का चयन किया गया है, जिसमें कुल ग्राम 157 व ग्राम पंचायत की संख्या 102 है।
- कुल ग्राम पंचायतों का 15 प्रतिशत अर्थात् 15 गावों का चयन अध्ययन हेतु किया गया है
- प्रत्येक गावों से 06 ऐसे उत्तरदाताओं का चयन किया गया है जो स्नातकोत्तर तक शिक्षित हैं, अर्थात् कुल 90 उत्तरदाताओं का चयन अध्ययन हेतु किया गया है।
- चयनित उत्तरदाता पंचायत चुनावों में किसी न किसी पद पर प्रत्याशी के रूप खड़ी हुई है तथा उनका प्रत्यक्ष संपर्क ग्रामीण महिला मतदाताओं से है।

शोध परिकल्पना :-

- अशिक्षित मतदाताओं की तुलना में शिक्षित मतदाता पर आर्थिक प्रलोभनों का प्रभाव कम पड़ता है ।
- शिक्षित ग्रामीण महिलाएँ इच्छित प्रत्याशी को मत देने संबंधी निर्णय अधिक स्वतंत्रतापूर्वक लेती हैं ।
- शिक्षित ग्रामीण महिला मतदाताओं के कारण ग्रामीण नेतृत्व में सकारात्मक परिवर्तन हुआ है और ग्रामीण विकास में वृद्धि हुई है ।

अध्ययन विषय का महत्व –

- मतदान संबंधी समस्याओं के समाधान में शिक्षा की भूमिका ज्ञात करने में अध्ययन उपयोगी सिद्ध होगा
- प्रस्तुत अध्ययन ग्रामीण महिलाओं के मतदान व्यवहार में शिक्षा के प्रभाव से आने वाले परिवर्तनों को समझाने में सहायक होगा ।
- परंपरागत ग्रामीण समाज के मतदान व्यवहार पर शिक्षा के कारण उत्पन्न होने वाले परिवर्तन को ज्ञात करने में अध्ययन उपयोगी सिद्ध होगा ।
- मतदान करते समय ग्रामीण महिलाओं द्वारा स्वतंत्रतापूर्वक मतदान करने की क्षमता पर पड़ने वाले शिक्षा के प्रभाव का आंकलन करने में अध्ययन सहायक होगा ।

निष्कर्ष –

प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण के आधार पर निम्न निष्कर्षों की प्राप्ति हुई है –

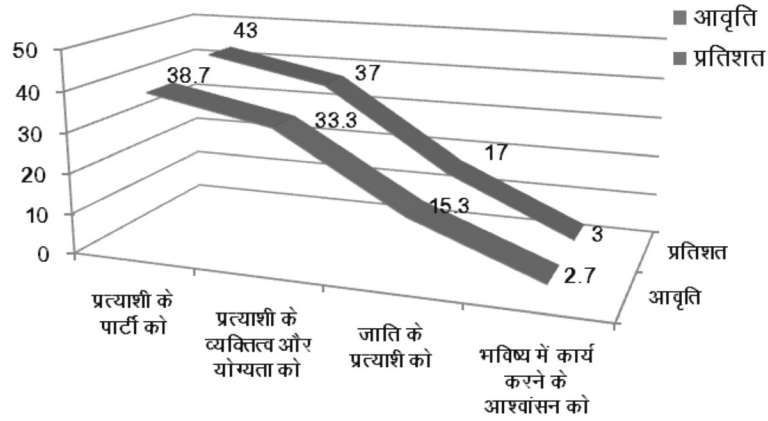
- 67 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि शिक्षा व राजनीतिक जागरूकता के प्रभाव से पंचायतों को सुदृढ़ करके गाँवों की समस्याओं का समाधान किया जा सकता है ।
- 56 प्रतिशत उत्तरदाताओं को विभिन्न राजनीतिक दलों के कार्यक्रमों की जानकारी थी ।
- 62 प्रतिशत उत्तरदाताओं को राजनीतिक दलों के घोषणा पत्रों के मुख्य मुख्य बातों की ही जानकारी थी ।
- 82 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि शिक्षित मतदाता सही नेतृत्व का चयन कर विभिन्न समस्याओं का समाधान कर सकता है ।
- मतदान करते समय 43 प्रतिशत उत्तरदाता प्रत्याशी के पार्टी को, 37 प्रतिशत उत्तरदाता प्रत्याशी के व्यक्तित्व और योग्यता को, 17 प्रतिशत उत्तरदाता अपनी जाति के प्रत्याशी को तथा 3 प्रतिशत उत्तरदाता भविष्य में कार्य करने के आश्वासन को आधार मानकर मतदान करती हैं ।

मतदान करते समय उत्तरदाताओं द्वारा प्रत्याशी चयन के आधार से संबंधित आंकड़े निम्न तालिका में प्रदर्शित हैं ।

मतदान करते समय प्रत्याशियों के चयन का आधार

क्रमांक मतदान करते समय प्रत्याशियों के चयन का आधार	आवृत्ति	प्रतिशत
1. प्रत्याशी के पार्टी को	38.7	43
2. प्रत्याशी के व्यक्तित्व और योग्यता को	33.3	37
3. जाति के प्रत्याशी को	15.3	17
4. भविष्य में कार्य करने के आश्वासन को	2.7	03
योग	90	100

इसे ग्राफ के माध्यम से इस प्रकार प्रदर्शित किया गया है।

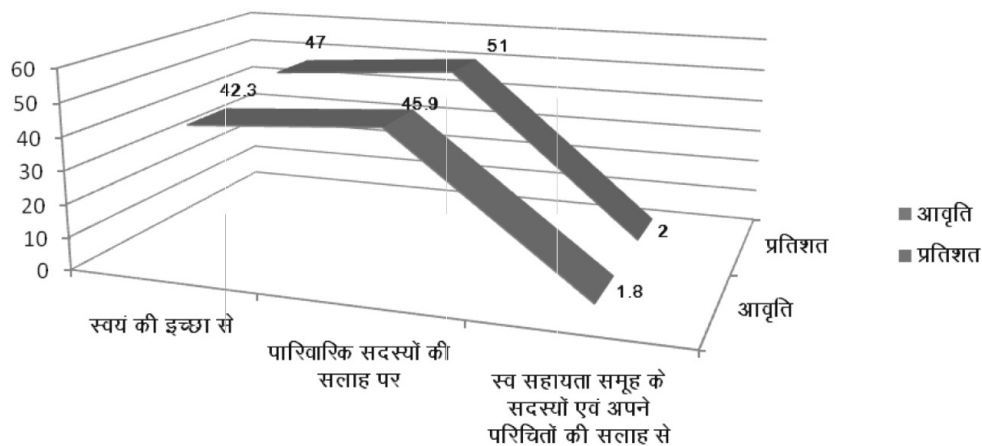


- 68 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि अशिक्षित मतदाताओं को प्रत्याशियों द्वारा अधिक आर्थिक प्रलोभन दिए जाते हैं जबकि 32 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि आर्थिक प्रलोभन शिक्षित और अशिक्षित दोनों प्रकार के मतदाताओं को दिए जाते हैं।
- मतदान करने संबंधी निर्णय लेने के विषय में 47 प्रतिशत उत्तरदाता स्वयं की इच्छा से मतदान करती हैं जबकि 51 प्रतिशत मतदाता पारिवारिक सदस्यों की सलाह पर तथा शेष 02 प्रतिशत उत्तरदाता अपने स्व सहायता समूह के सदस्यों की एवं अपने परिचितों की सलाह से मतदान करती हैं।

मतदान करने संबंधी निर्णय लेने के आधार विषयक आंकड़े निम्न तालिका में प्रदर्शित हैं।

क्रमांक	मतदान करने का निर्णय लेने का आधार	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	स्वयं की इच्छा से	42.3	47
2.	पारिवारिक सदस्यों की सलाह पर	45.9	51
3.	स्व सहायता समूह के सदस्यों एवं अपने परिचितों की सलाह से	1.8	02
	योग	90	100

इसे ग्राफ के माध्यम से इस प्रकार प्रदर्शित किया गया है।



- 92 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि शिक्षित होने कारण उन्हें राजनीतिक लाभ मिला है, केवल 8 प्रतिशत उत्तरदाताओं को कोई राजनीतिक लाभ नहीं मिला है।
- जिन उत्तरदाताओं को राजनीतिक लाभ मिला उनमें 39 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि वे स्थानीय समस्याओं को समझने के योग्य हुई है, 28 प्रतिशत का मत है कि उन्हें प्रत्याशी के योग्य माना गया तथा 25 प्रतिशत का मत है की शिक्षित होने के कारण उनमें आत्मविश्वास और नेतृत्व क्षमता का विकास हुआ है।

प्रस्तुत अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि ग्रामीण महिलाओं के मतदान व्यवहार पर शिक्षा का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है और वे मतदान करते समय स्थानीय व राष्ट्रीय समस्याओं के विषय में जागरुक रहती है उनपर आर्थिक प्रलोभनों का प्रभाव कम पड़ता है और वे क्षेत्रीय और राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए शिक्षा को महत्वपूर्ण मानती है।



मृदुला गर्ग रचित उपन्यासों में स्त्री-जीवन की टूटती वर्जनाएं

सविता देवी

शोधार्थी

श्री वेंकटेश्वरा विश्वविद्यालय, गजरौला, अमरोहा (उत्तर प्रदेश)

मकान नं. 49, मुकेश कालोनी, बल्लबगढ़, फरीदाबाद-121004

मृदुला गर्ग साहित्य जगत में एक सुपरिचित नाम हैं। इन्हें हाल ही में इनके उपन्यास 'मिलजुल मन' के लिए 'साहित्य अकादमी सम्मान' से नवाजा गया है। इन्होंने अब तक सात उपन्यासों, लगभग नब्बे कहानियां, तीन नाटक, दो निबंध-संग्रह और एक व्यंग्य संग्रह की रचना की है। कहानी संग्रहों में हरी बिंदी, डैफोडिल जल रहे हैं, वह मैं ही थी, शहर के नाम, समागम आदि विशेष चर्चित रहे। इसके अतिरिक्त कितनी कैदें, टुकड़ा-टुकड़ा आदमी, ग्लेशियर से, उर्फ सैम, मेरे देश की मिट्टी, अहा आदि कहानी-संग्रह भी उनकी लेखनी से रचे कहानी संग्रह हैं।

इनके उपन्यासों में चित्रित स्त्री पात्रों ने समय-समय पर समाज द्वारा खींची लक्ष्मण-रेखा को पार करने का दुस्साहस किया है। समय की बहती धारा में स्त्री-समाज में काफी बदलाव आए हैं और साहित्यकारों की धारदार कलम की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। अपने समय की लगभग सभी महिला साहित्यकारों ने अपने स्त्री पात्रों की सोच को बदलाव के लिए अपने साहित्य में प्रयुक्त किया है। मृदुला गर्ग ने भी अपने उपन्यासों में स्त्री-जीवन की टूटती वर्जनाओं को अपनी कलम की आवाज दी है जिसकी छनक से भारतीय समाज का ताना-बाना हिल कर रह गया। भारतीय समाज सदा से पुरुषप्रधान समाज रहा है जहां स्त्री को पुरुष की प्रतिछाया बन कर जीना पड़ता है। स्त्री सदा से पुरुष के हाथों का खिलौना रही है। जब-जब उसने पुरुष की उंगलियों में फंसी अपनी डोर को खोलने का प्रयास किया तब-तब वह पहले से अधिक उंगलियों में कसी जाने लगी। इसके बावजूद पुरुष की हथेली डोरी के खिंचवा से छिल अवश्य गई।

मृदुला गर्ग के प्रथम उपन्यास 'अनित्य' की चर्चा करें तो इसमें भी स्त्री-समाज की टूटती वर्जनाओं की छनक सुनाई देती है। यह उपन्यास वर्ष 1980 में राजनैतिक पृष्ठभूमि पर रचा गया। इसके कुछ पात्र महाजनी संस्कृति को समर्पित हैं तो कुछ भगतसिंह से प्रेरित हैं। स्वतंत्रता-पूर्व एवं स्वतंत्रता-पश्चात के भारतीय समाज का तुलनात्मक अध्ययन इसमें परिलक्षित होता है। इसमें स्त्री-पात्र 'संगीता' जो अविजित के घर में पनाह लेती है और उससे उम्र में भी बहुत छोटी है, अविजित से दैहिक संबंध बनाती है जब वह मेरठ में उसकी बीमार मां का हालचाल जानते अस्पताल जाता है और वापसी में उसे घर छोड़ता है।

'उसे ठीक से याद नहीं... शायद उसके ओठों की कड़ी गिरफ्त में आने पर संगीता चौंक उठी थी और उसे परे धकेलने की कोशिश भी की थी उसने, पर... बहुत देर हो चुकी थी।' (अनित्य, पृ.156)

इसमें संगीता ने विवाह-पूर्व अपने आश्रयदाता अविजित से संबंध बनाए जो हमारे भारतीय समाज में वर्जित है हालांकि उपन्यास में संगीता का झुकाव और उसकी स्वयं को अविजित से छुड़ाने का प्रयास भी परिलक्षित हुआ है लेकिन वर्जना टूटी भले असहमति से। हमारे समाज में आज भी विवाह-पूर्व यौन संबंधों को अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता भले ही लिव-इन रिलेशन का चलन चला हो।

मृदुला गर्ग रचित दूसरा उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' त्रिकोणात्मक प्रेम आधारित उपन्यास है। इस उपन्यास की कहानी तीन पात्रों के इर्द-गिर्द घूमती है। जितेन, मधुकर और मनीशा। जितेन और मनीशा पति-पत्नी हैं। इनके जीवन में तीसरा प्रवेश करता है और विवाहेत्तर संबंधों की शुरुआत होती है। वह तीसरा है 'मधुकर' जो

मनीशा का सहकर्मी है और दोनों एक ही कालेज में पढ़ाते हैं। जितेन अपनी पत्नी मनीशा के प्रति लापरवाह है लेकिन अपने काम के प्रति पूरी तरह समर्पित है। यही वजह है जो मनीशा को उससे दूर ले जाती है और मधुकर के करीब। मनीशा और मधुकर एक-दूसरे के इतने करीब आ जाते हैं कि मनीशा जितेन से तलाक लेने का निर्णय लेती है। उपन्यास का अंत यहीं नहीं होता। जितेन उसे सहजता से तलाक दे देता है और मनीशा मधुकर से विवाह कर लेती है।

कहानी में अप्रत्याशित मोड़ तब आता है जब मनीशा अपने तलाक के चार वर्ष बाद अपने पूर्व-पति जितेन से नैनीताल में अनायास किताबों की एक दुकान पर मिलती है। उनके बीच सुप्त प्रेम पुनः जागृत हो उठता है। वह जितेन से मुलाकातें बढ़ाने लगती है और जितेन उसे कहता है कि वह अब भी उसे चाहता है। हद तो तब होती है जब वह दिल्ली वापस आकर भी उसे भुला नहीं पाती और उसके फोन की प्रतीक्षा करती है। लगभग छः महीने बाद जितेन दिल्ली आता है और उसे होटल में मिलने के लिए बुलाता है। मनीशा उससे मिलने जाती है और वहां उसके संबंध उससे बनते हैं। मनीशा को विवाहेत्तर संबंध भला लगता है। वापस लौटने पर एक बहस में मधुकर उसे जता देता है कि वह जितेन जैसा नहीं यानी वह स्त्री-स्वातंत्र्य में विश्वास नहीं रखता और न आजाद प्रेम में।

इस उपन्यास में मनीशा एक समय में दो पुरुषों के साथ संबंध रखती है। भारतीय समाज इस बात की इजाजत कदापि नहीं देता। पुरुषों के मामले में समाज नर्म रवैया अख्तियार करता है। पुरुषों को नाजायज संबंध रखने की छूट है लेकिन स्त्री को ऐसे संबंध रखने पर कतई माफ नहीं किया जा सकता। मनीषा पति के होते प्रेमी बनाती है और पति से तलाक होने पर पति बन चुके प्रेमी को धोखा देकर पुनः अपने पूर्व पति की बांहों में पहुंच जाती है। यहां स्त्री पात्र मनीषा ने सामाजिक वर्जना को खूब-खूब तोड़ा है और अपने-आप को नैतिकता के खांचे से मुक्त किया है। हमारा समाज इसे सहज ही व्यभिचार की संज्ञा दे सकता है लेकिन एक सवाल आज भी स्त्री इस समाज से पूछती है कि जब मधुकर प्रेमिका से पत्नी बन चुकी मनीशा से कहता है कि वह स्त्री-स्वातंत्र्य में विश्वास नहीं रखता और न ही विश्वासघात सहन करेगा तब उसकी मनीशा की ओर उठी उंगली अपनी ओर उस वक्त क्यों न तनी जब मनीशा अपने पति से विश्वासघात कर उसके साथ प्रेम की पींगें बढ़ा रही थी।

सुप्रतिष्ठित लेखिका मृदुला जी ने अपने उपन्यासों में स्त्री जीवन की वर्जनाओं को तोड़ने का दुस्साहस किया और एक सफल लेखक की यही पहचान होती है कि वह शब्दों को हथियार बना निडरता से अपना रास्ता तो तय करता ही है और साथ ही बाकियों के लिए भी पथ-प्रदर्शक का काम करता है। अपने उपन्यास 'कठगुलाब' में मृदुला जी ने स्त्री-समाज के भीतर उग रहे बदलाव को अपने चार स्त्री-पात्रों के माध्यम से दर्शाया है। 'कठगुलाब' के चार स्त्री पात्र स्मिता, मारियान, नर्मदा और असीमा हैं। चारों ही अलग-अलग पृष्ठभूमि से आई महिलाएं हैं जो पुरुष-समाज की सताई हैं। चारों ही वर्जनाओं को सहने के लिए अभिषिप्त हैं लेकिन अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार अपने अस्तित्व को बचाने के लिए संघर्ष कर रही हैं।

स्मिता मां-बाप की मृत्योपरांत अपने बड़ी बहन नमिता के घर रहने आती है जहां उसे अपने जीजा की हवस का शिकार बनना पड़ता है। वही स्मिता बगावत करके अकेली अमेरिका चली जाती है। हमारे समाज में अकेली औरत का रहना बड़ा मुश्किल है। वहीं स्मिता अपने दम पर उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिए अकेली अमेरिका की ओर प्रस्थान करती है। यही वह वर्जना है जिसे स्मिता तोड़ती है। यहां स्मिता अपना उपचार मनोचिकित्सक जिम जारविस से करवाती है। जिम जारविस उसका डाक्टर होते हुए पति बन जाता है जो उपचार द्वारा उसे अतीत में घटित दुर्घटनाओं से छुटकारा दिलाने में काफी हद तक कामयाब हो जाता है। समय के साथ स्मिता को जिम में कामुक पति का अक्स दिखाई देने लगता है। वह तंग आ जाती है। एक दिन इसी क्रम में उसने जिम के वार से बचने के लिए उसकी बेल्ट से पिटाई कर दी। इसके बाद अपनी कार्यस्थली 'रिलीफ फोर एब्यूज्ड विमेन' में

शरण ली। यहां उसने भारतीय समाज द्वारा बांधी वर्जना को तोड़ा और अपने पति की पिटाई की।

उपन्यास की दूसरी पात्र मारियान अमेरिकन थी। उसके लेखक पति ने झूठा वायदा कर उससे उपन्यास लिखने की सामग्री एकत्र करवाई, उसका उपयोग किया और अपने नाम से उपन्यास प्रकाशित करवाया। इस दौरान अपनी तीन महिला मित्रों से प्रयोग के नाम पर संबंध भी बनाए। प्रेम में छली गई स्त्री मारियान ने उससे तलाक लिया और बाद में दूसरा विवाह किया व चार उपन्यासों की रचयिता बनी। स्त्री समाज की बंदिशों को मानने से सदैव इन्कार करती है फिर जब उसे इनके कारण दम घुटता प्रतीत होता है तो वह पूरी ताकत लगा स्व अस्तित्व बचाने का प्रयास करती है। मारियान ने भी यही किया।

तीसरी महिला पात्र नर्मदा स्मिता की बहन नमिता के घर काम करने वाली बाई है। वह निम्न वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली मुखर स्त्री है जिसने जीवन भर संघर्ष किया। उसका घर परिवार न बसा। वह ताउम्र बेऔलाद अकेली ही रही। 'स्त्री को बचपन में पिता का, जवानी में पति का और बुढ़ापे में पुत्र का सहारा चाहिए', ऐसा हमारे भारतीय समाज का कहना है लेकिन नर्मदा के रूप में पाठकों का ऐसे स्त्री पात्र से सामना हुआ जिसे बचपन में पिता का साया न मिला, जवानी में पति का साथ न मिला और बुढ़ापे में वह बेऔलाद ही रही। इस प्रकार एक अकेली स्त्री ने अपने दम पर पूरा जीवन काट लिया।

चौथी पात्र 'असीमा' स्मिता की सहेली है जो बचपन से ही दबंग रही क्योंकि उसके पिता ने दूसरी के चक्कर में उसकी सीधी-सादी मां को छोड़ दिया। असीमा इस उपन्यास की सर्वाधिक सशक्त पात्र है। सबसे पहला कदम वह समाज के खिलाफ उस वक्त उठाती है जब वह अपने पिता का दिया नाम 'सीमा' अस्वीकार कर देती है और खुद ही अपना नाम असीमा कर लेती है क्योंकि उसे किसी सीमा में बंधकर रहना गवारा नहीं। उसे अपने कामुक पिता से नफरत थी। फिर जब उसका भाई असीम अठारह बरस का होने पर पिता के पास मुंबई गया तो अमीर पिता का होकर रह गया क्योंकि उसे पैसा चाहिए। वह अपने भाई से भी घृणा करने लगी क्योंकि उसके भाई ने पैसों के लालच में अपनी मां को छोड़ दिया।

इस उपन्यास की पांचवीं महिला पात्र के रूप में स्मिता की पुत्री नीरजा उभर कर सामने आई जो आज की युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती है और अपने से उम्र में काफी बड़े विपिन के साथ 'लिव इन' में रहना शुरू कर देती है।

संपूर्ण उपन्यास में महिला पात्रों ने सामाजिक वर्जनाओं को अपने-अपने ढंग से जिया और अपनी क्षमताओं के हिसाब से तोड़ने में भी सफलता अर्जित की। इसी उपन्यास को वर्ष 2004 में व्यास सम्मान से नवाजा गया।

मृदुला जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से स्त्री समाज पर लगे प्रतिबंधों के खिलाफ बेबाकी से कलम चलाई है। उनकी बेबाक कलम की नोक से 'चितकोबरा' नामक उपन्यास का जन्म हुआ। यह उपन्यास वर्ष 1979 में अस्तित्व में आया। उस समय स्त्री-पुरुष संबंधों का बेबाकी से वर्णन शायद ही किसी लेखिका की कलम से हुआ था। इससे पहले किसी लेखिका ने ऐसा दुस्साहस नहीं किया ऐसा भी नहीं। इस उपन्यास की पृष्ठभूमि यह थी कि यह एक पादरी और एक साधारण महिला के प्रेम की गाथा थी। प्रेम भी ऐसा जो मन की संकरी गलियों से होता हुआ देह के गलियारों तक आ पहुंचा। यह एक विवाहेत्तर प्रेम-संबंध की कहानी है।

इसकी मलिला पात्र मनु अपने पति महेश के अलावा पादरी रिचर्ड से प्रेम करने लगती है जिसे वह जमशेदपुर में नाटकों के मंचन के दौरान मिली थी। पादरी के प्रति उसका आकर्षण इतना गहरा था कि वह उसके साथ दैनिक स्तर पर जुड़ जाती है। उपन्यास में मनु और रिचर्ड के संबंधों को बेबाकी से नहीं उभारा गया बल्कि मनु और उसके पति महेश के अंतरंग क्षणों को कलम ने साहस के साथ पन्नों पर उभारा है जिसके कारण पुलिस मृदुला जी को गिरफ्तार करने उनके आवास तक जा पहुंची थी।

मनु एक दिन रिचर्ड से कहती है—“मैं एक दिन शराब पीना चाहती हूँ।” फिर कहती है—“मैं सचमुच पीना चाहती हूँ। इतनी कि धुत हो जाऊँ। मैं जानना चाहती हूँ, लोग शराब क्यों पीते हैं और यह भी कि धुत होकर मैं क्या करूँगी।” (चितकोबरा, पृ.49) इसमें स्त्री उन्मुक्तता को दर्शाया गया है कि स्त्री जब पुरुष मित्र बनाती है तो उनके साथ ऐसे विचार भी बांटती है जो वह किसी के साथ नहीं बांट सकती, न अपने पति के साथ और न अपनी किसी महिला-मित्र के साथ।

इस उपन्यास की विशेषता यह है कि मृदुला जी ने जो भी लिखा सत्यता के साथ लिखा और पूरा लिखा। अधूरेपन की कहीं कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी। पृष्ठ 98 पर उन्होंने पति-पत्नी के बीच अंतरंग संबंधों की विवेचना खुलकर की और यही उन्मुक्तता उनकी गिरफ्तारी का वारंट लेकर आई। जिस खुलेपन के साथ उपन्यास की पात्र मनु ने पति और प्रेमी को संतुष्ट रखा उसे होंठों तक लाना हमारे समाज में वर्जित माना जाता है और इस वर्जना को मृदुला गर्ग ने अपनी स्त्री-पात्रों के माध्यम से बार-बार तोड़ा है।

इनके आत्मकथात्मक उपन्यास ‘मिलजुल मन’ में भी वर्जनाओं को तोड़ने का वर्णन मिला है। यह उपन्यास दो बहनों और उनके पिता के संबंधों की गाथा है। इसकी पात्र मोगरा ने ऐसे व्यक्ति से प्यार किया जो उसकी बड़ी बहन से प्रेम करता था और उसके माध्यम से वह प्रेम की पींगे बढ़ाता है। इसी दौरान गुल का विवाह उसके प्रेमी शमित से हो जाता है। इस उपन्यास में मोगरा ने स्वीकार किया कि भले ही वह अपनी बहन से हर मामले में उन्नीस ही रही पर प्यार उसने उसके प्रेमी से पति बने शमित से उससे ज्यादा किया। हमारे समाज में जीजा-साली के बीच छेड़छाड़ की घटनाएं अक्सर सुनने में आती हैं लेकिन एक ही शख्स से दो बहने प्रेम करें और समाज के सामने स्वीकारने की हिम्मत भी रखें ऐसा सुनने में कहीं नहीं आता। लेखिका ने इसे स्वीकारा है कि उपन्यास के बहाने उन्होंने पहली बार अपने नाजायज इश्क की परतें खोली हैं। “पहली बार अपने नाजायज प्यार के बारे में ज़बान खोली है।” (मिलजुल मन, पृष्ठ 320)

मृदुला गर्ग के संपूर्ण उपन्यासों की पड़ताल करते हुए यह निश्कर्ष निकला कि उनके पांच उपन्यासों में स्त्री पात्रों ने वर्जनाओं को तोड़ा है। उनके उपन्यास ‘मैं और मैं’ तथा ‘वंशज’ उपन्यासों को छोड़ दिया जाए तो बाकी पांचों उपन्यासों की लगभग सभी नायिकाओं ने अपने-अपने मोर्चे संभाले हैं। जब तक समाज स्त्री के प्रति दोहरा आचरण करना नहीं छोड़ेगा तब तक स्त्री अपने ऊपर लादी वर्जनाओं को तोड़ती रहेंगी।

संदर्भ सूची

1. अनित्य, मृदुला गर्ग
2. उसके हिस्से की धूप, मृदुला गर्ग
3. कठगुलाब, मृदुला गर्ग
4. चितकोबरा, मृदुला गर्ग
5. मिलजुल मन, मृदुला गर्ग



राजस्थानी फिल्मों में स्त्री चेतना

सुमन गुर्जर

शोधार्थी

बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान

डॉ. हेमा देवरानी

शोध निर्देशिका

भारत में सिनेमा का उद्भव 20वीं शताब्दी के प्रारंभ के साथ ही हो गया। सन् 1913 में पहली फिल्म 'राजा हरिश्चन्द्र' प्रदर्शित हुई। भारतीय फिल्मों के पितामह दादासाहेब फाल्के थे। 1913 के बाद से ही भारतीय सिनेमा निरंतर उन्नति के पथ पर अग्रसर है। इस सिनेमा ने देश-विदेश में अपनी अलग पहचान बनायी थी। इसके साथ ही भारत के क्षेत्रीय सिनेमा ने भी अपना परचम देश-विदेशों में फहराया है। क्षेत्रीय सिनेमा के रूप में राजस्थानी सिनेमा ने भी अपना अलग मुकाम बनाया है। राजस्थानी भाषा की फिल्मों का निर्माण 1942 में फिल्म 'नजराना' से प्रारंभ हुआ। यह फिल्म हिन्दी में भी बनी जिसके नायक महीपाल थे। 1942 से 2015 तक के 73 वर्षों में राजस्थानी फिल्मों ने लगभग 150 का आंकड़ा पार कर लिया है। ये फिल्में समकालीन सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक व्यवस्था का आईना होती हैं, साथ ही उस व्यवस्था में समय के साथ आवश्यक परिवर्तनों का माध्यम भी होती हैं। फिल्मों की कहानी सामाजिक ताने-बाने से ही बुनी होती है। उदाहरण के तौर पर झाँसी की रानी, इंदिरा गांधी आदि पर बनने वाली फिल्में महिलाओं में देशभक्ति का जज्बा पैदा करती है तो मदर टेरेसा आदि पर बनने वाली फिल्में निस्वार्थभाव से समाज की सेवा करने की भावना पैदा करती है। मीरा बाई पर आधारित फिल्म महिलाओं में भक्ति की भावना जागृत करती है तथा वीरांगना पन्नाधाय पर केन्द्रित फिल्में अनुपम त्याग, स्वाभिमानी, स्वामी-शक्ति का विकास करती हैं।

साहित्य व फिल्में सामाजिक आईना होती हैं, अंतर केवल यह है कि साहित्य केवल शिक्षित लोगों तक ही पहुँच पाता है जबकि फिल्म का प्रभाव अशिक्षित ग्रामीण, बच्चों, वृद्ध सभी तरह के लोगों पर होता है। अर्थात् साहित्य की पहुँच शिक्षा प्राप्त लोगों तक होती है। फिल्म का श्रव्य-दृश्य माध्यम होने के कारण यह समस्त लाभों को अपने संचित किए हुए महिला, पुरुष, ग्रामीण, शहरी प्रत्येक उम्र, धर्म के लोगों तक अपनी पहुँच रखता है। साथ ही सामान्य सी दिखने वाली घटनाओं के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन के उद्देश्य को पूरा करता है।

राजस्थानी फिल्मों का निर्माण स्वतंत्रता संग्राम से थोड़ा ही पहले हुआ था। स्वतंत्रता संग्राम में स्त्री-पुरुषों ने अपना जमकर योगदान दिया था। पुरुषों के साथ महिलाओं ने भी अपना बलिदान देश के लिए हंसते-हंसते दिया है। राजस्थान में भी स्त्रियों ने स्वतंत्रता संग्राम में तन-मन-धन से सहयोग किया। उसमें नारायणी वर्मा, रतन शास्त्री, अंजना चौधरी जैसी विदुषी महिलाएं भी थी। महिलाओं में जागृति तो स्वतंत्रता से पूर्व ही आ गई थी लेकिन उनमें चेतना जगाने का कार्य राजस्थानी फिल्मों ने भी समान रूप से किया है। राजस्थानी फिल्मों में नानीबाई को मायरो (1963), बाबा रामदेव (1963), राधू की लिछमी (1996), गूजरी (2009), लाडो मरुधरा की शान (2011), फौजी की फौमिली (1, 2), एजुकेटेड बीनणी (2013), जीवती रे बेटी (2014) इन फिल्मों ने समाज में न केवल जागृति लायी हैं बल्कि स्त्री चेतना को भी बढ़ावा दिया है।

फिल्म 'नानी बाई को मायरो' (1963) में निर्मित मायरो (भात) को लेकर है जो कि राजस्थानी संस्कृति का एक महत्वपूर्ण भाग है। इसमें भाई बहन के प्रति प्रेम व कर्तव्य को दिखाया है। यह फिल्म सामाजिक रीति-रिवाज और महिलाओं की ताउम्र मायके वालों पर निर्भरता को बताती है। इसे धर्म से भी जोड़कर नारी उत्थान हेतु भगवान श्री कृष्ण की महिमा का मंडन किया गया। अर्थात् राजस्थानी संस्कृति में मायरा बेटी के लिए उसके पीहर की इज्जत का सवाल होता है।

फिल्म 'बाबा रामदेव' (1963) में मेघवाल जाति की डालीबाई का उत्थान बाबा रामदेव के द्वारा दिखाया गया है। इन दोनों फिल्मों में स्त्री चेतना स्वप्रेरित न होकर ईश्वर प्रेरित है क्योंकि स्त्री अपना उत्थान स्वयं न करके किसी लौकिक शक्ति पर आश्रित रहती है। लेकिन धीरे-धीरे समय में बदलाव आया है। पहले की तरह रीति-रिवाजों का व कुरीतियों का महिलाओं ने जमकर विरोध किया है। 1988 के दशक में बनी फिल्म 'राम चनणा' में रामू जो कि निम्न जाति का होता है तथा चनणा उच्च कुल की होती है वे एक-दूसरे से प्रेम करते हैं। दोनों का विवाह ही उनके परिवार वाले अलग-अलग जगह करना चाहते हैं। लेकिन नायिका चनणा अपने माँ-बाप को ऐसा करने के लिए मना करती है तथा रामू के साथ ही विवाह करने के लिए जोर डालती है। इस फिल्म के माध्यम से यह बताया गया है कि अब स्त्रियाँ जाति-पाति का विरोध करती हैं तथा जिससे प्रेम होता है उससे ही विवाह करना चाहती हैं। अर्थात् जब यह फिल्म बनी थी तब तक महिलाएं अपने माँ-बाप के सामने विवाह जैसे विषयों पर चर्चा नहीं करती थी। लेकिन फिल्म नायिका चनणा इन बातों की परवाह ना करते हुए माँ-बाप का खुलकर विरोध करती है तथा रामू से विवाह करती है।

फिल्म 'राधू की लिछमी' (1996) संपत्ति के अधिकार के हनन होने से रोकती है। फिल्म नायक राधू बहुत ही सीधा व अनपढ़ नवयुवक है लेकिन नायिका लिछमी पढ़ी-लिखी व चतुर स्त्री है। राधू के चाचा-चाची व मामाजी के द्वारा होने वाले शोषण तथा सारी जायदाद हड़पने पर लिछमी उनका विरोध करती है। उन पर कानूनी कार्यवाही करते हुए अपनी संपत्ति वापस प्राप्त करती है तथा ससम्मान अपने घर में रहती है। फिल्म के माध्यम से बताया गया है कि वर्तमान में स्त्रियाँ अपने अधिकारों को लेकर सचेत हैं वह कानूनी दाव-पेंच भी जानती हैं उन पर होने वाले आकस्मिक आक्रमण का भी वह डटकर मुकाबला करती हैं।

समाज में धीरे-धीरे परिवर्तन आ रहा है। आम परिस्थितियाँ बदलने लगी हैं। पुरानी राजस्थानी फिल्मों में प्रायः 'स्त्री-चेतना' का अभाव दिखाई देता है। आधुनिक फिल्मों में स्त्री के विविध पहलुओं को उजागर करने का प्रयास किया गया है। स्त्री की दशा, अवमानना, संघर्ष, बलात्कार, पारिवारिक उत्पीड़न, नारी-उत्थान, भ्रूण-हत्या आदि को लेकर फिल्में बनाई जा रही हैं। स्त्री आज नये ही अवतार में प्रस्तुत हो रही है आज वह पुरुषों की तरह स्वतंत्र निर्णय लेती है। स्वावलंबी होकर परिवार को पालने में पुरुष का साथ देती है। वह किसी पर आश्रित नहीं रहना चाहती तथा शोषण का खुलकर प्रतिरोध करती है।

2009 में बनी फिल्म 'गूजरी' गूजर-मीणा भाई-भाई की नायिका 'गूजरी' भ्रष्टाचार, शोषण का विरोध करती है। सामंत के द्वारा गांव के भोले-भाले लोगों पर होने वाले अत्याचार का बदला लेती है। वह दुश्मनों से मैदान में या दुर्गा की तरह लड़ती है व जीतती है। गूजरी ईंट का जवाब पत्थर से देती है वह पुरुष की तरह हर काम करने में सक्षम है।

फिल्म 'भंवरी' (भवरी) में प्रचलित स्थिति का वर्णन किया गया है कि सम्पन्न लोगों की किस प्रकार छोटे लोग चापलूसी करते हैं तथा अपने परिवार की बहन-बेटियों की इज्जत को नीलाम कर देते हैं। इस फिल्म में दिखाया गया है कि फिल्म की नायिका 'भवरी' एक शिक्षित लड़की है वह जब अपनी बहिन के घर जाती है तो उसका जीजा अपनी शाली को बहला-फुसलाकर सामंत के हवाले कर देता है जो कि एक बहुत ही गिरा हुआ व दुष्कर्मी प्रवृत्ति का होता है वह भंवरी के साथ जबरदस्ती दुष्कर्म करने की कोशिश करता है। लेकिन भंवरी उसका विरोध करती है तथा अपनी इज्जत बचाने के लिए स्वयं ही मौत को गले लगा लेती है। 'भवरी' अपने ऊपर होने वाले शोषण का मरते दम तक विरोध करती है।

2013 में बनी फिल्म 'एजुकेटेड बीनणी' की नायिका उच्च शिक्षा प्राप्त है। यह फिल्म स्त्री को शिक्षित होने का संदेश देती है। क्योंकि छोरा हो या छोरी पढ़ना सबके लिए जरूरी है। यह पहली राजस्थानी फिल्म है जिसे पूरी तरह आधुनिक तकनीक को आधार बनाकर बनाई गई है। फिल्म आज की युवा पीढ़ी तथा पुरानी पीढ़ी के

विचारों में टकराव तथा उनके बीच के सामंजस्य को ध्यान में रखकर बनाई गई है। फिल्म की नायिका रोशनी जो कि उच्च शिक्षित होने के साथ ही एक थियेटर चलाती है तथा उसमें एक्टिंग भी करती है। परंतु इतने गुणों के बावजूद भी वो अपाहिज सास-ससुर व बेटे का पालन-पोषण करना अपना उत्तरदायित्व समझती है। एक हादसे में उसके पति के याददाश्त खो देने पर वह सास-ससुर को सहारा देने के लिए आगे आती है। एक बहू के घर के कर्तव्यों का निर्वाह करने के साथ ही पति के कारोबार को संभालने का संकल्प लेती है। वह विपरीत परिस्थितियों में भी नहीं घबराती है तथा मुसीबतों का डटकर सामना करती है। परिवार का संबल बनकर उभरती है।

वहीं 2014 में बनी फिल्म 'जीवती रे बेटे' में बेटे बचाओ का संदेश दिया गया है। यह फिल्म भ्रूण में बालिकाओं की हत्या और घटते लिंगानुपात को संबोधित करती है। क्योंकि आज सरकार भी बेटियों को बचाने को लेकर जागरूक है वह भी भ्रूण हत्या का विरोध करती है तथा जनता को बेटे बचाने के लिए भिन्न-भिन्न तरह से समझा रही है। वहीं इस फिल्म के माध्यम से बेटे को बचाने पर जोर दिया गया है। फिल्म में 'नायिका' जो कि एक बेटे है तथा मूक बधिर है लेकिन उसका पिता उसे हर तरह से सक्षम बनाता है तथा वह बड़ी होकर उच्च पदासीन होकर अपने पिता का सहारा बनती है।

पहले जो कार्य साहित्य के माध्यम से किया जाता था। वही फिल्में भी स्त्रियों में चेतना जगाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वर्तमान समय में बालिकाएं अन्तरिक्ष तक अपना परचम लहरा रही हैं। पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही हैं। यह सब फिल्मों के माध्यम से जागरूकता फैलाने के कारण आसान हो गया है।

संदर्भ सूची

1. हिन्दी सिनेमा बीसवीं से इक्कीसवीं सदी तक – प्रगतिशील वसुधा, सम्पादक, हरिशंकर परसाई।
2. फिल्म –नानी बाई को मायरो (1963), बाबा रामदेव (1963), रामू चनणा (1984), राधू की लिछमी (1996), गूजरी (2009) गूजर मीणा भाई-भाई, भंवरी (2012), एजुकेटेड बीनणी (2013), जीवती रे बेटे (2014)।
3. मधुमती (अक्टूबर-नवम्बर 2014) – भारतीय साहित्य में चलचित्र का योगदान, श्रीमती श्वेता माहेश्वरी।
4. हिन्दी साहित्य और सिनेमा – विवेक दूबे



ऋता शुक्ला की अरुंधती : नारीवाद का नया विमर्श

सुषमा दुबे
शोधार्थी

दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर

भारतीय साहित्य के उपन्यास में स्त्री पात्रों के साथ शुरू से एक बड़ी बिडम्बना रही है कि पुरुष लेखकों ने अपनी रचनाओं में उन्हें उचित स्थान नहीं प्रदान किया, यदि किया भी तो वह सम्मान नहीं प्रदान किया जिसके वो योग्य थीं। भारत के स्वतंत्र होने से पूर्व और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के लेखकों की रचनाओं में स्त्री पात्रों को तिरस्कार के सिवा अन्य कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। परन्तु कुछ समय पश्चात् धीरे-धीरे लेखकों ने अपनी रचनाओं में नारी को स्थान देना आरम्भ किया परन्तु उनके चरित्र के सहारे उन्होंने अपनी रचनाओं में तत्कालीन भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक कुरीतियों को दर्शाने का कार्य किया।

फ्रेंच नारीवाद सिद्धान्त के अस्तित्व में आने के बाद सम्पूर्ण विश्व के साहित्य में एक परिवर्तन की लहर सी आ गई और इसके परिणाम स्वरूप लेखकों ने अपनी रचनाओं में स्त्री पात्रों को सम्मानजनक स्थान देना आरम्भ किया। लैंगिंग विभेद एक बड़ी समस्या थी। समाज प्रगति कर रहा था परन्तु तब भी नारी को समानता का अधिकार अभी पूर्ण रूपेण नहीं मिल पाया था। समानता का सिद्धान्त भारत में अन्य देशों की अपेक्षा काफी समय पश्चात् आया। प्राचीन भारत में वेदों, उपनिषदों और पुराणों में स्त्री को देवी का स्थान दिया गया था। समाज में उसे पुरुषों से श्रेष्ठ माना जाता था। परन्तु यह सम्प्रत्यय अब धूमिल-सा हो गया था। भारतीय सांस्कृतिक व्यवस्था में अब स्त्री का स्थान बदल गया था, वह पुरुष की बंदिनी और भोग का उपकरण मात्र बन कर रह गई थी।

इस दौर में कुछ भारतीय महिला लेखकों ने पहल करने का कार्य किया। उन्होंने अपनी रचनाओं में स्त्री पात्रों को मुख्य पात्र के रूप में प्रस्तुत करना आरम्भ किया। इनमें अंग्रेजी साहित्य की लेखिका कमला मार्कण्डेय, अनीता देसाई, शोभा डे, मंजूला पदमनाभन और हिन्दी साहित्य की प्रभा खेतान, उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग, कृष्णा सोबती, ममता कालिया आदि के नाम अग्रणी हैं। उन्होंने इन स्त्री पात्रों को भारतीय संस्कृति की कुरीतियों और मिथकों से अलग कर उनके चरित्र को और परिमार्जित करने का कार्य किया।

इसके परिणाम स्वरूप सभी भाषाओं में लिखने वाले पुरुष और महिला लेखकों ने अपनी रचनाओं में स्त्री पात्रों को मुख्य पात्र के रूप में प्रस्तुत करना आरम्भ कर दिया। महिला और पुरुष लेखकों ने अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किये गये स्त्री पात्रों के माध्यम से एक समान विचार समाज के समक्ष रखा कि स्त्री का स्थान पुरुष से नीचे नहीं अपितु उसके समानतर है। स्त्री समाज की दूसरे दर्जे की नागरिक नहीं है अपितु कई क्षेत्रों में वह पुरुषों से भी बेहतर हैं। नारी ही हैं जिसके भीतर सहनशीलता, सहिष्णुता, धैर्य और संघर्ष करने की क्षमता है। भारतीय लेखकों ने भारतीय नारी के इस अद्भुत रूप को अपनी रचना में उजागर किया जबकि पाश्चात्य लेखकों ने भी नारी को महत्वपूर्ण मान कर अपनी रचना में स्थान दिया परन्तु पश्चिमी सभ्यता का प्रतिनिधित्व करने वाली नारी भारतीय नारी से भिन्न थी। भारतीय लेखकों ने भारतीय नारी को संतोषी, सहनशीलता और सबला की प्रतिमूर्ति के रूप में प्रस्तुत किया।

नारीवाद : एक नई दिशा —

नारीवाद राजनैतिक आंदोलन का एक सामाजिक सिद्धान्त है, जो स्त्रियों के अनुभव से जन्य है। नारीवाद आदर्श का मूल कथ्य यही है कि स्त्री और पुरुष के अधिकारों में किसी भी प्रकार की भिन्नता न हो। उन दोनों के ही सामाजिक, आर्थिक, कानूनी अधिकार समान हो। प्रत्येक युग का साहित्य समाज का दर्पण रहा है परन्तु

इसके साथ ही वह संवेदनाओं का भी दर्पण है। 'नारीवाद' स्त्री-विमर्श का छोटा पहलू है जिस प्रकार दलितवाद में गैर-दलितों के लिए कोई स्थान नहीं है उसी प्रकार स्त्री-विमर्श में यह धारणा है कि स्त्री के विषय में पुरुष की मानसिकता शत्रुपक्ष जैसी है।

स्त्री-विमर्श से तात्पर्य है कि किसी रचना के सभी पात्रों में से मुख्य स्त्री पात्र को चुनकर उसका सम्पूर्ण अध्ययन किया जाना। यह अध्ययन दो प्रकार का हो सकता है, प्रथम रूप में किसी रचना की स्त्री पात्र अपने जीवन में आदि से अन्त तक संघर्ष करती है और लोगों की उपेक्षाओं को सहकर मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। इसका प्रमुख उदाहरण उपन्यासकार जैनेन्द्र के स्त्री पात्र हैं जो समाज से अलग होकर दुःख सहते हैं और पाठक के मन में अपने लिए करुणा का भाव उत्पन्न करते हैं। द्वितीय रूप में वही स्त्री पात्र कथा के आरम्भ में संघर्ष करती है परन्तु अन्त में वह एक सबल, जागरूक और आत्मनिर्भर स्त्री के रूप में पाठकों के सामने आती है। स्त्री-विमर्श के अध्ययन का यह द्वितीय रूप आज 21वीं सदी में एक नई परिपाटी का निर्माण कर रहा है। कई लेखकों ने इस परिपाटी को अपना कर अपनी रचनाएँ की हैं इसका सबसे जीवन्त उदाहरण उपन्यासकार ऋता शुक्ल की कृति 'अरुंधती' है।

अरुंधती : एक परिचय —

इस पारिवारिक उपन्यास 'अरुंधती' की मुख्य नायिका अरुंधती है, जिसका सम्पूर्ण जीवन विषाद, पीड़ा एवं दुःख भोगते ही बीता, परन्तु तब भी वह अपने संस्कारों को सुरक्षित रखते हुए न केवल अपना जीवन बल्कि अन्य अनेक लोगों के जीवन को भी सुन्दर एवं संस्कारवान बनाने में लगी रहती है। अरुंधती स्वयं कहती है "मैं अरुंधती, राय सोमेश्वर की अनचाही संतान.....।"¹ उसके इस कथन से स्पष्ट होता है कि उसे सदा अपने परिवार और पिता की उपेक्षा का शिकार बनना पड़ता है। जब वो आठवीं कक्षा में थी तब शुभांकर मामा ने उसके हाथ की रेखाएँ पढ़ी और अरुंधती की माता से कहा—"निरन्तर संघर्ष से भरा जीवन होगा तुम्हारी इस धिया का, प्रतिकूलता के शिलाखण्डों से हर क्षण जूझती रहेगी यह।"²

अरुंधती का जीवन शुरू से ही संघर्षमय रहा था। उसके पिता राय सोमेश्वर एक विलासी प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। वे अरुंधती के आगे पढ़ने के पक्ष में नहीं थे। उनकी विलासी प्रवृत्ति के कारण अरुंधती के छोटे भाई श्रीधर ने कीटनाशक दवा खाकर आत्महत्या कर ली थी। पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर राय सोमेश्वर को आघात पहुँचा और इसका परिणाम यह हुआ कि वह विक्षिप्त हो गये। कुछ दिनों के पश्चात् उनकी संदेहास्पद परिस्थितियों में मृत्यु हो गई। इसके उपरान्त अरुंधती माँ के साथ शुभांकर मामा के यहाँ चली आई वहीं उसकी मुलाकात उसके भावी पति विश्वजीत से हुई। विश्वजीत अरुंधती को 'अरुन' कहा करते थे वह 'अरुन' से प्रेम करते थे—"अरुन.....मैं विश्वजीत तुम्हें आश्वस्त करना चाहता हूँ कि इस धरती को क्या, ब्रह्माण्ड के किसी कोने में जाना पड़े तो भी तुम्हें साथ लिए बगैर.....।"³

विवाहोपरान्त भी अरुंधती को खुशियाँ नसीब न हुई, उसे पति के भारी वियोग से गुजरना पड़ता है। इस कठिन परिस्थिति में भी वह अपना धैर्य नहीं खोती और आश्रम के नवीन अंकुरों के पालन-पोषण में लग जाती है।

एक लम्बी प्रतीक्षा के बाद विश्वजीत वापस लौटते हैं परन्तु एक विकृत चेतना के साथ "स्याह पड़ गई शरीर की रंगत, झॉइयों से भरा पिचका हुआ काला चेहरा, बाल खूँट की तरह खड़े.....हाथ-पैरों में बेशुमार गाँठें, गालों की हड्डियाँ डरावने पन की हद तक बाहर निकली हुई।"⁴ अरुंधती विश्वजीत की सेवा करती हुई अपनी आश्रम की सभी जिम्मेदारियों और कर्तव्यों का निर्वाह करती है।

अरुंधती दर्शनशास्त्र की विदुषी थी। उसकी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थी। 'भारतीय प्राच्य विद्या' नामक पुस्तक का समस्त कार्यभार अरुंधती ने संभाला था।

परन्तु पुस्तक के लेखक के रूप में अरुंधती अपने नाम से पूर्व विश्वजीत का नाम अंकित करती है।

इस सम्बन्ध में अरुंधती की पुत्री शिंजिनी कहती है “सामवेद के मंत्रों सी समय पर टिकी रहने वाली अविचलित भाव से अपने कर्तव्य का निर्वाह करने वाली मेरी माँ है लेकिन.....पापा को छोड़कर भला उनके जीवन की कोई और गति है क्या ? दादी माँ पापा की पुस्तक का प्रकाशन माँ ने करवाया पर सारी प्रशंसा पापा को मिली, माँ को तो कोई श्रेय तक नहीं मिला।”⁵

इस पारिवारिक उपन्यास में उठाया गया मुद्दा कि महिलाओं को उनके प्रयास के अनुरूप उचित सम्मान नहीं मिल पाता यह विचारणीय है।

अरुंधती : विजयी चरित्र –

प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका कथावस्तु के लिए नायक नहीं अपितु नायिका का चयन करती है, जो जीवन में संघर्ष करने के बाद भी अपने लक्ष्य को अर्जित करती है जबकि अरुंधती का भाई श्रीधर पुरुष होते हुए भी संघर्ष नहीं करता और अपने जीवन का अन्त कर लेता है। राय सोमेश्वर के रूप में वो उन पुरुषों की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहती हैं, जो स्त्री को केवल भोग की थाली समझते हैं। कथावस्तु के अन्त में अरुंधती और विश्वजीत दोनों मिलकर एक आश्रम की स्थापना करते हैं जो तपित-शपित नवजातों की शरण-स्थली बनती है। आश्रम अरुंधती द्वारा बनाया गया एक नया संसार है जिसकी धुरी वह है। इस आश्रम की वह सृष्टिकर्ता है, आश्रम के माध्यम से वह ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ के भारतीय दर्शन को सार्थकता प्रदान करती है। यह आश्रम जिस प्रकार नये संसार का प्रतीक स्वरूप है वैसे ही अरुंधती नारी शक्ति का प्रतीक है, केवल वही एक नये संसार को स्थापित करने की शक्ति रखती है। अरुंधती के चरित्र में महिला सबलीकरण का स्वर सुनाई देता है। वह पुत्री है, पत्नी है, माँ है परन्तु वह सबला है अबला नहीं। वह अपने जीवन में संघर्ष कर अपने लक्ष्य तक पहुँच कर एक विजयी पात्र के रूप में सामने आती है। ऋता शुक्ल की यह कृति ‘नारीवाद’ को एक मुखर स्वर प्रदान करती है। ऋता शुक्ल यहाँ स्पष्ट करती है कि संघर्ष करने की क्षमता केवल स्त्री में ही है। अरुंधती अपने संघर्ष के माध्यम से पाठकों के मन में करुणा उत्पन्न नहीं करती अपितु समाज के समक्ष स्त्री के एक शिक्षित व जागरूक रूप को प्रदर्शित करती है जो अपने अधिकारों के प्रति सदैव सचेत रहती है।

जीवन की एक परिभाषा संघर्ष भी है। जीवन पथ पर विजय प्राप्त करने हेतु सदैव संघर्ष करना पड़ता है। अरुंधती इसी संघर्ष को अपनी शक्ति बना कर एक विजयी चरित्र के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होती है। इस उपन्यास में दर्शाया गया है कि विषम परिस्थितियों में जब पुरुष पात्र श्रीधर अशक्त होकर जीवन का अन्त कर लेता है तब ‘अरुंधती’ स्त्री पात्र होते हुए सशक्त रहती है और अपने लक्ष्य को प्राप्त करती है।

ऋता शुक्ल की अरुंधती कल्पनाओं में नहीं अपितु यथार्थ जीवन में कठिनाईयों का सामना करते हुए एक आदर्श चरित्र के रूप में अपनी प्राण-प्रतिष्ठा करती है। वह एक नया आश्रम जो उसका संसार है, बसा कर यह संदेश देती है कि इस ब्रह्माण्ड में नारी के बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। स्त्री ही है जो सभी के जीवन का आधार है वह पुरुष पर निर्भर नहीं है अपितु पुरुष उसके बिना अपूर्ण है। अर्थात् नारी इस ब्रह्माण्ड की धुरी है, और उसके बिना जीवन की कल्पना निराधार है।

संदर्भ सूची

1. शुक्ला, ऋता (2009), अरुंधती, दिल्ली साहित्य प्रकाशन
2. अरुंधती ऋता शुक्ल, पृष्ठ 12
3. अरुंधती ऋता शुक्ल, पृष्ठ 61
4. अरुंधती ऋता शुक्ल, पृष्ठ 90
5. अरुंधती ऋता शुक्ल, पृष्ठ 164



नारी वेदना से रूबरू कराता उपन्यास 'मैंने नाता तोड़ा'

डॉ. अंजु थापा

विभागाध्यक्ष, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू-180006

विभिन्न युगों के कालखण्डों के साथ नारी की स्थिति, उसकी शक्ति, उसके कर्तव्य व अधिकारों में परिवर्तन होते आये हैं। जैसे-जैसे युग बदले वैसे-वैसे नारी की छवि भी बदली। समाज में नारी की स्थिति दोयम दर्जे की होती चली गयी और वह धार्मिक बन्धनों, रूढ़ि परम्पराओं और परिवार के धार्मिक बन्धनों में बंदी होकर रह गई। कहने को अनेक विशेषण उसके नाम के आगे जोड़ दिये गये वह दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी, सीता, पार्वती, काली है, मां शक्ति का प्रतीक है परन्तु यथार्थ जीवन में उसी को सती किया गया। बचपन में पिता के, विवाह पश्चात् पति और वृद्धावस्था में पुत्रों के साथ नारी का व्यक्तित्व कर्तव्यों के अतार्किक बंधनों में बंधकर रह गया। इस स्थिति व परिस्थिति में नारी चेतना का जन्म ही नहीं हुआ, क्योंकि उसे बचपन से ही यह शिक्षा दी जाती रही है कि उसे अपने परिवार की मान्यताओं, विश्वासों, परम्पराओं और आदर्शों को बिना किसी बहस के स्वीकार करना है जैसे स्त्री तो सब कुछ सहने के लिए ही बनी है। सहनशीलता उसका गहना है। इसका परिणाम यह हुआ कि वह सदियों से पुरुषों की दासी बन कर रह गई। उसके एहसास का 'मैं' निजीपन, अपनापन, अपने व्यक्तित्व को पहचानने का अवसर उसे दिया ही नहीं गया। पारिवारिक व सामाजिक परिस्थिति में और धार्मिक बन्धनों के जाल में बिना अस्तित्व के फंसी रही। वह छटपटाती रही, कराहती रही, घुटती रही। संपूर्ण जीवन मौन रहकर सहती रही। हजारों वर्षों तक उसका उत्पीड़न होता रहा और यह समाज पितृसत्तात्मक शक्ति के ढाचे के विरुद्ध खड़ा नहीं हुआ, कारण पुरुष ही तो मूलतः केन्द्र में रहा। डॉ. राधाकृष्णन कहते हैं कि "किसी भी देश की वास्तविक महिला की स्थिति का अनुमान उस देश की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सारिणी को देखकर लगाया जा सकता है। व्यक्ति उत्तरदायी है कि उसने नारी के लिए बहुत से विचारों को गढ़ा है, जो उसके सौंदर्य और अस्मिता को बताते हैं, वहीं वह पुरुष से भिन्न भी है।"¹

समय की परिस्थितियां बदलाव को उत्पन्न करती हैं। इस दृष्टि से 'सिमोन द बोउआर' ने अपनी पुस्तक 'दि सेकन्ड सेक्स' में सिमोन ने दुनिया में प्रायः सब जगह स्त्री के प्रति अपनाए गए दोहरे मानदण्डों की भर्त्सना की है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि स्त्री की मुक्ति का मार्ग स्त्री के अपने संघर्ष से ही निकलेगी। यह अकारण नहीं है कि सिमोन स्त्री की स्थिति की तुलना नीग्रो की स्थिति से करती हैं। वे एक नीग्रो और एक स्त्री की स्थिति में गहरी समानता देखती हैं वे लिखती हैं, "दोनों ही जातियां आज पितृसत्ता से मुक्त हो रही हैं और इसके भूतपूर्व स्वामी इन्हें पुरानी जगह रखना चाहते हैं" अन्य मानव प्राणियों की भांति स्त्री भी एक स्वतन्त्र और स्वायत्त जीव है लेकिन सदियों से पुरुष अपनी जरूरतों और स्वार्थों के अनुकूल उसे गढ़ता रहा है। सिमोन की प्रसिद्ध उक्ति है, "स्त्री पैदा नहीं होती, बनाई जाती है।"² यह उक्ति एक तथ्य की प्रतीक है कि एक लम्बे समय तक परिवर्तन की चुनौतियों को जिस जोश-खरोश से स्त्री-समाज को ग्रहण करना चाहिए था, करने में असमर्थ रही और पुरुषों की दासी बनकर रह गई। नारी में चेतना तो जन्मी, पर हुंकार नहीं भर सकी। वह परिवार की जड़ रूढ़ियों और परम्पराओं के विरुद्ध वह चुनौती नहीं बन सकी, पर आक्रोश की चिंगारी कहीं न कहीं सुलग रही थी और अपने को मुक्त करने की सदियों की छटपटाहट उसमें करवटें ले रही थी। मैत्रेयी पुष्पा कहती हैं, "ईश्वर ने सृष्टि रचते वक्त स्त्री पुरुष में कोई भेदभाव नहीं किया। मनुष्य ने सहूलियत के लिए काम बांट लिए। धीरे-धीरे साथ में अधिकार भी बंट गए। स्त्री जागी और उसने बंद दरवाजों पर दस्तक देना शुरू कर दिया। दरवाजे पूरी तरह

से खुले भले न हो लेकिन ताज़ी हवा आने लायक झरोखा जरूर बन गया है।³

दो दशकों में वैश्वीकरण के अप्रत्यक्ष आन्दोलन ने आर्थिक-सामाजिक ढांचे को परिवर्तित ही नहीं किया, वरन् स्त्री की आर्थिक-सामाजिक चेतना ने मानसिक चेतना को शक्ति प्रदान की। अपनी रूढ़िवादी और परम्परावादी सोच व मानसिकता को बदलने के लिए ऐसे अर्थ-प्रधान बाज़ार का निर्माण किया, जिसमें बाज़ार की प्रतिस्पर्धा में प्रवेश करने के लिए जी-जान से वह तैयार हो गई। स्वतन्त्र भारत महिला सशक्तिकरण का पक्षधर होने लगा। पुरुष से हीनतर समझी जाने वाली स्त्री की स्थिति में पुनः विचार किया जाने लगा और जैविक स्वरूप के अतिरिक्त उसका वर्चस्व और उसकी शक्ति पहचानी जाने लगी। सीमा ओझा के शब्दों में, “जिस तेजस्वी व्यक्तित्व का नाम ध्यान में आता है, वह है मीरा, जिन्होंने मध्यकाल के सामन्ती समाज पितृसत्तात्मक समाज में विद्रोह का झंडा बुलन्द किया और अपने समय को झकझोर कर रख दिया। मीरा ने समाज द्वारा स्थापित मूल्यों व मान्यताओं को ललकारा और अपने विद्रोही तेवरों के सहारे अपनी अनोखी पहचान बनाई। मीरा के बाद आधुनिक समय में जो अत्यन्त महत्वपूर्ण नाम सामने आते हैं, वे हैं महादेवी वर्मा और वात्सल्य की प्रतिमूर्ति सुभद्रा कुमारी चौहान। महादेवी जी ने जहां पुरुष समाज के बंधनों को अस्वीकार करते हुए स्त्री होने की करुणा को चित्रित किया वहीं सुभद्रा जी ने स्त्रीत्व के उल्लास और क्रांतिमय तरलता को शब्द देते हुए स्त्रीत्व की गरिमा को नई ऊंचाई दी।”⁴ आज नारी को उन ढोंगी और अंधविश्वास से भरे मूल्यों को त्यागना होगा। दूसरी ओर पुरुष को मानसिक रूप से तैयार करना होगा कि नारी मात्र देह सौन्दर्य की वस्तु नहीं है बल्कि भविष्य की पीढ़ी की मां है। उसके समर्थ होने से ही परिवार, समाज व देश शक्तिशाली बनेगा। अतः प्रगतिशील लेखकों, विचारकों, चिन्तकों ने यह सोचना आरम्भ किया कि नारी को अनन्तकाल से जो अधिकार प्राप्त नहीं हुए हैं, वे क्यों नहीं हुए अथवा उनकी उपेक्षा पुरुष समाज ने क्यों की? जबकि वह नियम कानून, आचार-संहिता आदि का निर्माता है। शनैः शनैः नारी अस्मिता पर तीखे और धारदार लेख लिखे जाने लगे। आज नारी अस्मिता का प्रश्न नारी अस्तित्व से सीधा जुड़ गया है। नारी अस्मिता का बोध उन परतों को खोलता है, जहां नारी के साथ तरह-तरह के अत्याचार होते रहे हैं। पुरुष अपने अधिकारों के तहत ऐसा करता रहा। यह कैसा अमानवीय विचार था कि जैसे नारी प्रताड़ित करने के लिए ही बनी है। उसका हर हाल में शोषण होना ही है। वह केवल भोग की वस्तु है। देह का सौन्दर्य नहीं है, हमारे उससे तो मां, पत्नी, बहन और न जाने कितने रिश्ते जुड़े हैं। निश्चय ही नारी अस्मिता को बन्धक बनाने वाला गुनहगार केवल पुरुष है और केवल पुरुष है। मार्क्स ने भी कहा है “मानवता का प्रथम शोषण पुरुषों द्वारा स्त्रियों के शोषण से प्रारम्भ होता है।”⁵ पुरुष की मानसिकता को बदले और स्त्री मुक्त नहीं हो सकती, क्योंकि वह ही येन-केन प्रकारेण स्त्री को दबाकर अपने अधीन रखता है। पुरुष समाज के स्त्री के प्रति जो संकीर्ण विचार हैं, उन्हें बदलना होगा। इस भावना से ही स्त्री व पुरुष के मध्य समानता का भाव उत्पन्न होगा। कहना ही होगा कि नारी के व्यक्तित्व का विकास परिवार, समाज और राष्ट्र के विकास की नींव है। यह बात साहित्यकारों की समझ में आ रही है। वह भगवान और धर्म की नैतिकता से आतंकित नहीं है, वह पुरुष के भय से आक्रान्त भी नहीं है। न वह देवी है, वरन् सामान्य सहज मानवीय है। किन्तु फिर भी कहीं-कहीं परम्परागत विचारधारा और विचार से नारी पीड़ित है। जिसका वर्णन आधुनिक कथा-साहित्य में मुखरित हुआ है। विशेषतः नारी लेखिकाओं के कथा-लेखनी में इस ओर विशेष उल्लेख है।⁶ स्त्री-साहित्यकार स्त्रियों की विभिन्न समस्याओं को उजागर कर रही हैं। सदियों से स्त्री की जो उपेक्षा की गई है उसका यथार्थ उनके साहित्य में चुनौती के रूप में उभरा और वह पुरुष और पितृसत्तात्मक समाज की आलोचना करने में कोई कसर नहीं रख रही हैं। प्रभा खेतान, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, नासिरा शर्मा, मधु कांकरिया, सुषम बेदी आदि लेखिकायें स्त्री के विभिन्न पक्ष को अपनी सशक्त कलम से उजागर कर रही हैं। स्त्री तो सदैव साहित्य के केन्द्र में रही है पर प्रत्येक युग में उसे देखने की दृष्टि भिन्न-भिन्न रही है। फिर भी यह सत्य है कि आधुनिक महिला कलमकार महिला जगत के यथार्थ की बखिया उधेड़ने में संकोच नहीं करती हैं और यह विशेषता रही है कि उन्होंने स्त्री जीवन से जुड़ी सभी समस्याओं को एक नए रूप में प्रस्तुत

किया है। यथार्थ जगत के अपने अनुभव या स्वयं सर्वेक्षण करके स्त्री के अन्दरूनी और बाह्यजगत को जानने का प्रयास किया है। डॉ. रोहिणी अग्रवाल अपनी पुस्तक 'स्त्री लेखन : स्वप्न और संकल्प' में लिखती हैं, "स्त्री लेखन आकांक्षाओं का दर्पण है। यह स्त्री की मानवीय इयत्ता को पाने और जीने का स्वप्न है : मुक्ति की राहों के अन्वेषण का संघर्ष है; और उन राहों पर अविराम चलने की संकल्प दृढ़ता भी। स्त्री लेखन पारम्परिक 'माइंड सैट' से लड़ने की कोशिश में परम्परा और 'माइंड सैट' दोनों की ताकत को एक ठोस सामाजिक-मानसिक सच्चाई और चुनौती के रूप में सतह पर लाता है।"⁷

2009 में प्रकाशित सुषम बेदी का उपन्यास 'मैंने नाता तोड़ा' भारतीय समाज की परम्परागत असलियत की गहरी पड़ताल करता हुआ एक औरत का आत्मकथन है। इस उपन्यास को पढ़ने के उपरान्त यह पता चलता है कि किस प्रकार एक मात्र चौदह साल की बच्ची का जीवन एक दुर्घटना से पूरी तरह बदल जाता है। उपन्यास की रितु के अतीत का वह हिस्सा उसे संपूर्ण जीवन की खुशी को स्वीकार नहीं करने देता है। उपन्यास उस भारतीय जीवन की गाथा है जहाँ नारी को लिंग-भेद की समस्या का तो सामना करना ही पड़ता है साथ ही बलात्कार जैसी पीड़ा का दंश सहने वाली अबोध बालिका का जीवन मौत से भी बदतर स्थितियों से गुज़रते हुए दिखाया है। रितु का यह कहना, "चौदहवें साल ने अचानक मुझको बड़ा कर दिया था। इस तरह बड़ा कि ज़िन्दगी का रुख ही पलट गया।"⁸ उपन्यास शुरू होता है इस प्रकार कि रितु के पिता का तबादला ऐसे स्थान पर होता है जहाँ स्कूल, कॉलेज या हॉस्टल की सुविधा नहीं है। पढ़ाई के लिए रितु को फुफेरे अंकल के पास छोड़ दिया जाता है। रितु को जिसके पास उसकी सुरक्षा के मद्देनज़र छोड़ा जाता है वही उसके साथ बदनियती अर्थात् बलात्कार करता है और वह अबोध बालिका अपने को बचा नहीं पाती है और फिर भेज दिया जाता है उसे उसके पिता के घर बदचलन का ठप्पा लगा कर। बलात्कार को एक 'ऐक्सिडेंट' के रूप में देखना चाहिए, न कि सर्वस्व लुट जाने के रूप में। इसके बाद तो एक-एक करके सारे रिश्ते झूठे साबित होने लगते हैं। सारे रिश्ते-नाते रितु के छूटते चले जाते हैं और धीरे-धीरे रितु अकेली होती चली जाती है। उसके प्रति सबका व्यवहार बदला-बदला सा है। कोई उससे बात तक नहीं करता है। परिवार वालों के व्यवहार से रितु को लगता जैसे कि उसने ही कुछ ऐसा किया है। रितु की अवसाद भरी ज़िन्दगी माता-पिता, भाई-बहन सभी को अपनी जकड़ में ले लेती है। कोई उससे इस बारे में चर्चा नहीं करता, "कोई यह बात अपने आप से उठाता नहीं है जैसे कि कभी कुछ हुआ ही न हो कि बात करने से बात की हस्ती खत्म हो जाएगी।"⁹ बलात्कार नारी की अस्मिता पर सीधा चोट करता है। प्रख्यात लेखिका मृदुला गर्ग इस समस्या की ओर समाज का ध्यान आकर्षित करती है, "बलात्कार स्त्री को असुरक्षित महसूस करवाते हैं। उसके स्वाभिमान व अस्मिता का हनन करते हैं।"¹⁰ समाज के कोण से देखें तो बलात्कार ही मात्र ऐसा अपराध है जिसमें समाज की दृष्टि बलात्कार की शिकार स्त्री की ओर टिकती है। स्त्री दोषी ठहराई जाती है। सामाजिक लांछना, अपमान स्त्री के हिस्से में आता है। यह उपन्यास बलात्कार का परिणाम मानसिक स्तर पर झेलने वाली स्त्री का यथार्थ विस्तार पाता है।

कितना दर्द है रितु की इन बातों में, "कितना बदल गया था सब कुछ। मैं अब वह रितु नहीं थी। यह रितु के शरीर का खोल भर था। वह रितु कहीं चली गयी जो यहाँ रहा करती थी। सचमुच लौट नहीं पायेगी वह रितु। मेरे भीतर कुछ भर रहा था। मेरी इच्छाएँ मेरे अपने होने के प्रति उत्साह, जीने की आकांक्षा मर रही थी।"¹¹ रितु अक्सर सोचती, "कभी छूटेगा यह दाग। कभी छूट पायेगा यह मैल! अब तो कभी नहीं मिटा पाऊंगी यह पत्थर की लकीर! और यह कष्ट यह घाव भर पायेगा कभी।"¹² और आत्म मंथन करते हुए अपने में हिम्मत जुटाती, खुद को समझाती यह सोचने का प्रयत्न करती कि उसके साथ कुछ नहीं हुआ है जो कुछ हुआ है इस शरीर के साथ हुआ है सोचती सब कुछ पीछे छोड़ नयी ज़िन्दगी शुरू की जा सकती है। विडम्बना देखिए जिस समय रितु को परिवार एवं पारिवारिक सदस्यों की एवं उनकी सहानुभूति की सबसे अधिक आवश्यकता थी उस समय उसे खोटा सिक्का मान लिया जाता है। बार-बार "पता नहीं अब तेरा क्या होगा?"¹³ जैसे वाक्य बोल उसकी आत्मा छलनी

करते रहते। माता-पिता रितु को खोटा सिक्का समझ किसी तरह कुरूप-से-कुरूप लड़के के साथ विवाह कर देना चाहते ताकि इस मुसीबत से उन्हें छुटकारा मिल जाए। उसका सारा आत्मविश्वास भंग हो गया था, व्यक्तित्व खंडित हो गया था। बरसों बरस वह किसी से अपनी बात, अपना दुख-दर्द सांझा नहीं कर पाती है। रितु को लगने लगता जैसे वह कोई खोटा सिक्का है जिसे जो भी ले जाए, जो भी दाम लगा ले, वही ठीक। फायदा ही है उसके जाने में, “क्योंकि सचमुच का कन्याधन तो वह है नहीं। खोट का माल जिस दाम भी बिक जाये वह लाभ मानो।”¹⁴

उपन्यास आगे बढ़ता है पिता का तबादला दिल्ली होने पर। वह तमाम दुख-दर्द को मिटाने के लिए कॉलेज में दाखिला लेती है। कॉलेज में प्रोफेसर अनिरुद्ध के संपर्क में आकर रितु का खोया हुआ आत्मविश्वास लौटने लगता है। वह साहित्य में रुचि लेती है। ‘रेप, इंसेस्ट वैटर वीमेन राइटिंग आउट द पेन’ में मिरियम कॉल मैन हैरिस बताती हैं कि “लिखना भी इस हादसे से उभरने का एक जरिया बन सकता है।” रितु भी लिख कर कुछ हद तक राहत पाती है ऐसे में अनिरुद्ध उसका हौसला बढ़ाता, “पाजिटिवली सोचा करो अपने आप को लेकर। हर इन्सान सम्भावनाओं से भरा होता है। सही वक्त, सही मौका, सही दिशा मिलने पर वही पूरी तरह पनपता है। तुमको सही वक्त मिल रहा है। अपने आप पर भरोसा रखो। तुम बहुत तरक्की करने वाली हो। कभी अपना आत्मविश्वास मत खोना।”¹⁵ ऐसे में निकटता बढ़ती है अनिरुद्ध रितु के पिता से विवाह की बात करता है तो वे रितु को डांटते हैं कि उन्होंने उसे कॉलेज पढ़ने भेजा था, इश्क लड़ाने नहीं और अक्सर उसे ताना दिया जाता कि, “कानपुर में भी यही किया तूने, अब दिल्ली में भी यही हाल। तू निकम्मी की निकम्मी ही रहेगी।”¹⁶ परन्तु रितु का हौसला पस्त नहीं होता। सेक्रेटेरियल कोर्स का नाम सुनते ही भड़क उठे पिता का क्रोध भी उसे उसके फैसले से पीछे नहीं हटने देता। सेक्रेटेरियल का कोर्स कर वह केनेडियन दूतावास में काम करने लगती है। नौकरी मिलते ही उसका रहा सहा डर भी खत्म हो जाता है, “अगर मैं आपकी आँख में खटकती हूँ तो मैं अलग भी रह सकती हूँ।”¹⁷ कहकर पिता को चेतावनी भी देती है और यही हौसला उसे अनिरुद्ध की ओर अमेरिका ले जाता है इस सोच के साथ कि अब उसकी जिन्दगी बदल जाएगी। पुरानी बातों से उसका नाता टूट जाएगा और ऐसा होता भी है। विवाह बेदी के समय उसके समक्ष रीति-रिवाजों एवं संस्कारों का राक्षस खड़ा हो जाता है उसके मन में द्वंद चलता है कि वह तो अब कन्या नहीं है, उसका कन्यादान कैसे होगा। वह अनिरुद्ध को धोखा दे रही है। बहन के मुख से सुनी बात का उसे स्मरण हो आया, “विवाह बेदी पर तो कन्या बैठती है। लेकिन कन्या तो दूध की धुली साफ-सुथरी। अस्पर्शिता। अनछुई। मुझे कन्या कहाँ रहने दिया उस राक्षस ने।”¹⁸ विवाहोपरांत जब भी अनिरुद्ध उसके निकट आता उसे लगता कोई उसका दम घोट रहा है। वह समान्य नहीं हो पाती है। अपना अवमूल्यन करती रहती है। रितु एक निहत्थे सैनिक की तरह जीवन रूपी लड़ाई के मैदान की ओर बढ़ती तो है परन्तु दुश्मन की गोलियों के वार से धराशायी होने लगती। वह अक्सर पीड़ा से कराह उठती, “सारी धूल मेरी ही झोली में क्यों? क्यों मैं नहीं वैसा मुक्त जीवन जी पायी जो किसी भी साधारण लड़की को नसीब होना चाहिए। क्यों मेरी पीड़ा इतनी अदृश्य है? किसी को दिखाई क्यों नहीं देती।”¹⁹ और अक्सर सोचती क्या एक पुरुष या एक पति इस पीड़ा का स्वरूप समझ सकता है? या कि नैतिकता के पलड़ों पर ही तोलना होता है उसे सब कुछ।²⁰ अन्ततः ‘मैंने नाता तोड़ा’ का निर्णय ले लेती है, वह नाता तोड़ती है “उस चुप्पी से, जो औरत को अपने पर होने वाले अनाचार को जबान नहीं देने देती” उन विश्वासों से, उन ऊलजलूल मान्यताओं से जो आज भी औरत को उसी तरह विषाक्त, परिहार्य देखती है, जैसे मुझे देखा गया था।”²¹ इस चुप्पी को तोड़ने में सहायक बनता है उसका पति अनिरुद्ध। अनिरुद्ध रितु के व्यक्तित्व को नया मोड़ देता है। उसके सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार के कारण रितु अपने जीवन की त्रासदी को बता पाती है और उसे जीवन की इस काली छाया से उबरने में सहायता करता है। एक बलात्कृत लड़की की आत्मा (जो उसकी पत्नी है) में खुदी किरचों को निकालने का प्रयास करता है। उसे छटपटाहट, बेबसी, अपनी नज़रों में गिरने, जीवन की खुशियों को नकारने परन्तु जिजीविषा बनाए रखने में सफल होता है। अनिरुद्ध रितु को समझाते

हुए कहता है, "एक किशोरी अगर मर्द की वहशत का शिकार होती है तो दोष लड़की का नहीं होता ... पता नहीं लोगों के पास एक घिसा-पीटा मानदंड क्यों होता है ... इस सीता को तो रावण ने छू दिया है।"²² यहीं से शुरू होती है रितु की अभिशप्त से सशक्त होने की गाथा।

वास्तव में परिवार नारी का मूल केन्द्र है, जहां उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। उसे एहसास कराया जाता है कि भविष्य में उसे किस प्रकार के उत्तरदायित्वों का सामना करना पड़ेगा। इसलिए उसे परिवार के उस परम्परागत ढांचे में पाला जाता है, जहां स्त्री की नैतिकता, आदर्श, मूल्य और समस्त भविष्य के सपने पति के परिवार में देखे जाएंगे। परन्तु उपन्यास का अनिरुद्ध पति के परम्परागत रूप को तोड़ते हुए रितु को सशक्त ही नहीं बनाता अपितु उसे जीवन के काले अंधियारे से बाहर भी ले आता है। तभी तो रितु के मुख से निकलता है, "अनी ही गुरु था मेरा और अनी ही हमसफर, साथी।"²³ जहां लेखिका वहशी अंकल एवं परम्परागत एवं संकीर्ण विचारों से पोषित पिता का चित्रण करती है तो वहीं अनिरुद्ध जैसे पात्र की रचना भी करती है जो रितु को आत्म-निर्भर एवं आत्म-विश्वासी बनाता है। इतना आत्म-विश्वासी कि वही रितु जो परिवार की नज़रों में खोटा सिक्का थी वही अमेरिकन एक्सप्रेस बैंक की वाईस प्रेसिडेंट बनती है। रितु सोचती है, "आज की रितु और उस रितु में कितना ज़मीन-आसमान का अन्तर आ गया है। जिस तरह से मेरी सोच बदली है, नज़रिया बदला है, कभी कल्पना नहीं कर सकती थी कि उस बेवकूफ, जर्जर आत्म-विश्वासी, निखद रितु के भीतर से यह वाली रितु भी निकल सकती थी। कभी सोचती थी कि इतना ऊपर उठ सकूंगी मैं। आसमान की इतनी ऊँचाई को छू सकूंगी।"²⁴

यह भी एक सच्चाई है कि जब तक समाज में पितृसत्तात्मक मानसिकता रहेगी इस सोच में परिवर्तन आने वाला नहीं है। स्त्री को भी इस मानसिक जकड़न से खुद को अलग करना होगा। खुल कर बात करके ही उसे अपना आत्मबल पुनः प्राप्त करना होगा और अपने आत्मबल के महत्व को समझना होगा। अनिरुद्ध जैसे व्यक्ति इस समाज में विरले ही मिलेंगे तभी तो रितु द्वारा कही गई पंक्तियां इसकी सार्थकता सिद्ध करती हैं, "अनी मुझे तुमने, बहुत आशावादी बनाया है। आशा की किरणें क्या पता कभी फूटती ही न। लेकिन यह भी मानती हूँ कि अपनी किस्मत तो अपने हाथ से बनायी है मैंने मैं हिम्मत करके यहाँ न आती तो क्या कुछ होता मेरा?"²⁵ इस उपन्यास के सन्दर्भ में यह बात सार्थक हो उठती है कि यदि पुरुष सहयोगी बनकर नारी के व्यक्तित्व को गढ़ने लग जाए तो परिवार, समाज व देश प्रगति के पथ पर अग्रसर होता जाएगा। उपन्यास की रितु अंत में उस नदी के समान गतिमान है जो अपनी गति पर ही केन्द्रित हो जो इस गति का हिस्सा नहीं बन पाता पीछे छूट जाता है। "नदी जो बड़ी-बड़ी चट्टानों को तोड़ नहीं पायी तो रास्ता बदल लिया? बहती रही, अपना रास्ता खुद बनाती रही। अभी भी नये रास्ते खोजने है मुझे। जो आशीर्वाद साथ हैं वे हवा के झोंके बन मुझे सहारा देते रहेंगे, मेरी गति में वृद्धि करते रहेंगे, कभी फूलों की तरह मेरा श्रृंगार बन जायेंगे, कभी दिये बन मेरे अन्तर्जगत को रोशन करते रहेंगे। जो रोड़े-पत्थर रास्ता अटकायेंगे, उन्हें पार कर जाऊँगी। गति थमेगी नहीं।"²⁶ अन्त में साहिर द्वारा लिखित इन पंक्तियों के माध्यम से इस शोध पत्र का समापन करती हूँ।

"इन काली सदियों के सर से

जब रात का आंचल ढलकेगा

जब दुख के बादल पिघलेंगे

जब सुख का सागर छलकेगा

जब अम्बर झूम के नाचेगा

जब धरती नगमे गाएगी

वह सुबह कभी तो आएगी।"

 सन्दर्भ

1. ग्रेट वीमन ऑफ इण्डिया, सर्वपल्ली राधाकृष्णन सं. स्वामी माधवनन्दन, पृ.-गपग
2. द सेंकड सेक्स, सीमोन द बोउवार, पृ.-301
3. वनिता, जून 2013, पृ. 172
4. आजकल, सीमा ओझा, पृ.-21
5. चिंतन-सृजन, प्रो. रामजी सिंह, पृ.-251
6. आधुनिक समाज की नारी चेतना, सुशीला शर्मा, पृ.-178
7. स्त्री-लेखन : स्वप्न और संकल्प, डॉ. रोहिणी अग्रवाल, पृ.-05
8. मैंने नाता तोड़ा, पृ.-07
9. मैंने नाता तोड़ा, पृ.-
10. संचेतना, मृदुला गर्ग, पृ.-71
11. मैंने नाता तोड़ा, पृ.-67
12. मैंने नाता तोड़ा, पृ.-32
13. मैंने नाता तोड़ा, पृ.-72
14. मैंने नाता तोड़ा, पृ.-74
15. मैंने नाता तोड़ा, पृ.-96
16. मैंने नाता तोड़ा, पृ.-102
17. मैंने नाता तोड़ा, पृ.-107
18. मैंने नाता तोड़ा, पृ.-134
19. मैंने नाता तोड़ा, पृ.-108
20. मैंने नाता तोड़ा, पृ.-141
21. मैंने नाता तोड़ा, पृ.-224
22. मैंने नाता तोड़ा, पृ.-115
23. मैंने नाता तोड़ा, पृ.-186
24. मैंने नाता तोड़ा, पृ.-218-20
25. मैंने नाता तोड़ा, पृ.-221
26. मैंने नाता तोड़ा, पृ.-243



शिक्षा का अधिकार और पंचायतीराज संस्थाएँ

डॉ. हेमन्त कुमार मिश्रा
पोस्ट डॉक्टोरल फेलो, समाजशास्त्र
आई.सी.एस.एस.आर., नई दिल्ली

शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 भारतीय शिक्षा इतिहास का प्रमुख मौलिक बदलाव की दिशा में एक उल्लेखनीय कदम है। इस अधिनियम के कार्यान्वयन में स्थानीय प्राधिकार की भूमिका को महत्वपूर्ण माना गया है और उसके अधिकार एवं कर्तव्यों की स्पष्ट व्याख्या की गई है। शिक्षा के अधिकार के कार्यान्वयन में विभिन्न समस्याओं पर हर रोज चर्चा हो रही है। दूसरी ओर व्यावहारिक रूप में, सामान्य तौर पर पाया गया है कि पंचायतीराज संस्थाएँ अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों से या तो अनभिज्ञ हैं अथवा पूर्णतः सक्रिय न होकर औपचारिकताओं का निर्वाह कर रही हैं। मुख्यतया इनका कार्य रख-रखाव से अधिक जुड़ गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में इस सम्पूर्ण सन्दर्भ में शिक्षा का अधिकार अधिनियम के कार्यान्वयन में पंचायतीराज संस्थाओं की भूमिका का समालोचनात्मक अध्ययन किया गया है।

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही देश को विकास के मार्ग पर अग्रसर करने हेतु पंचायतीराज संस्थाओं की आवश्यकता महसूस की गई और इसी क्रम में पंचायतीराज की पुनर्स्थापना के लिए बलवंत राय मेहता समिति (1957) गठित की गई थी। जिसने अपनी सिफारिशों में त्रि-स्तरीय पंचायतीराज व्यवस्था शुरू करने की बात की। बलवंत राय मेहता समिति सभी विकास एवं कल्याणकारी योजनाओं का क्रियान्वयन स्थानीय संस्थाओं के माध्यम से चाहती थी। अतः समिति ने सामाजिक शिक्षा को स्थानीय पंचायतीराज के कार्यों में शामिल किया था। किन्तु कुछ राजनैतिक कारणों से इसकी सिफारिशों को नजरअंदाज कर दिया गया और अशोक मेहता समिति (1977) का गठन किया गया, उसने भी सिफारिश की कि इन संस्थाओं को बदलती परिस्थितियों और नये संदर्भों में व्यापक स्तर पर कार्य सौंपे जायें। इसके अलावा भी सरकार ने कुछ समितियाँ गठित कीं जैसे— हनुमंत राव समिति व जी0वी0के0 राव समिति आदि। तत्पश्चात् गठित हनुमंत राव समिति (1983) ने पुरजोर शब्दों में कहा कि स्थानीय स्तर पर योजना की दृष्टि से जनभागीदारी को विकास की दृष्टि से अधिक माना जाना चाहिए। इसी प्रकार जी0वी0के0 राव समिति (1985) ने भी जिला स्तर की योजना बनाने में जन सामान्य की भागीदारी पर जोर दिया और कहा कि इसमें स्थानीय संस्थाओं की स्वायत्तता, प्रशासनिक दक्षता तथा योजना के सूक्ष्म पहलुओं को समझने की क्षमता में वृद्धि होगी।

इन विभिन्न समितियों की सिफारिशों के फलस्वरूप ही भारतीय संविधान में 73वाँ और 74वाँ संशोधन किया गया और 24 अप्रैल, 1993 को 'पंचायतीराज अधिनियम' बना। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा स्वतंत्र भारत में पंचायतीराज व्यवस्था को वैधानिक स्तर प्रदान किया गया। इस अधिनियम के द्वारा संविधान के भाग 9 में 16 अनुच्छेदों व 11वीं अनुसूची को शामिल किया गया। इसी प्रकार अप्रैल 1994 में 74वाँ संशोधन किया गया और इससे संबंधित विषयों को 12वीं अनुसूची में जगह दी गई। संविधान में सम्मिलित 11वीं व 12वीं अनुसूची में सामाजिक न्याय एवं आर्थिक विकास के उद्देश्यों की प्रतिपूर्ति हेतु 29 विषयों को सूचीबद्ध किया है, जिन पर पंचायतीराज संस्थाओं को कार्य करना है। शिक्षा से संबंधित इसमें विषय हैं— शिक्षा, जिसके अंतर्गत प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय भी हैं, तकनीकी प्रशिक्षण और व्यावसायिक शिक्षा। प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा, पुस्तकालय, महिला और बाल विकास, समाज कल्याण जिसके अंतर्गत विकलांगों और मानसिक रूप से मंद व्यक्तियों का कल्याण भी है, दुर्बल वर्गों का और विशिष्टतया अनुसूचित जातियों और जनजातियों का कल्याण।

इस तरह ये अनुसूचियाँ संपूर्ण विकास के प्रतिमान का प्रतिबिंब हैं।

पंचायती राज की स्थापना के साथ-साथ सरकार ने शिक्षा के विकास पर अलग से भी ध्यान देने का प्रयास किया और इस संदर्भ में कुछ आयोगों की नियुक्ति की जिनमें से कुछ की सिफारिशों की तो कुछ संशोधनों के साथ स्वीकार कर लिया और कुछ को नकार दिया गया। कोठारी कमीशन (1964-66) ने अपनी संस्तुतियों में यह स्वीकार किया कि शिक्षा अवश्य ही राज्य सरकारों की जिम्मेदारी है तथापि यह राष्ट्रीय महत्त्व का विषय भी है और शिक्षा के कुछ बड़े क्षेत्रों में राष्ट्रीय स्तर पर ही निर्णय करने होंगे। साथ ही यह भी याद रखना होगा कि चूंकि शिक्षा का संबंध प्रत्येक माता-पिता और परिवार से है अतः उस जन साधारण के निकट संपर्क में रखना चाहिए और उसका सर्वोत्तम प्रशासन स्थानीय जनसमुदाय के द्वारा अथवा उसके घनिष्ठ सहयोग से ही संचालित हो सकता है। जहाँ तक स्कूली शिक्षा की बात है वह प्रमुखतः स्थानीय सरकार और राज्य की साझेदारी है। इस प्रकार सरकार को केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारें, स्थानीय स्वायत्त निकाय और स्वैच्छिक संस्थाओं के कार्य क्षेत्र को निर्धारित कर देना चाहिए। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में राष्ट्रीय स्तर पर इस संबंध में विचार किया गया है कि पूरे देश में प्राथमिक विद्यालयों की दशा को सुधारने के लिए एक क्रमिक अभियान संचालित किया जायेगा, जिसका सांकेतिक नाम 'ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड' होगा। इस कार्य में शासन, स्थानीय निकाय, स्वयं सेवी संस्थाओं और सामान्य व्यक्तियों की पूरी भागीदारी ली जायेगी। अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों को चलाने का अधिकतर कार्य स्वयंसेवी संस्थाएँ और पंचायती राज की संस्थाएँ करेंगी। शिक्षा की आयोजना और प्रबंध में लोक भागीदारी को प्रधानता दी जायेगी। विकेन्द्रीकरण तथा शिक्षा संस्थाओं में स्वायत्तता की भावना उत्पन्न की जायेगी।

73वें एवं 74वें संविधान के संदर्भ में "शिक्षा का विकेन्द्रित प्रबंध" पर CAGE कमेटी 1993 में श्री वीरप्पा मोइली की अध्यक्षता में बनाई थी और इस समिति ने पंचायती राज संस्थाओं के तीनों स्तरों के लिए शिक्षा प्रबंध संबंधी व्यापक दिशा-निर्देश बनाए। इस समिति ने मुख्यतः ग्रामीण शिक्षा पर बल दिया और कहा था कि गाँव में समुदाय के सहयोग से पूर्व बाल अवस्था शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा, औपचारिक शिक्षा व प्रौढ़ शिक्षा को प्रयोजित किया जा सकता है। साथ ही ग्राम पंचायत, पंचायत समिति, जिला परिषद की स्थानीय शिक्षा समिति भी बनानी चाहिए। जो कि ग्रामीण समुदाय में अध्यापक और समुदाय की सहभागिता बढ़ाए। उसने यह भी कहा कि न केवल स्थानीय स्तर पर बल्कि राज्य सरकारों को भी पंचायती राज संस्थाओं के कार्य की रूपरेखा बनानी चाहिए और सभी क्षेत्रों में इनको पर्यवेक्षण और अवशिष्ट शक्तियाँ भी संबंधित संदर्भ में देनी चाहिए। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की कार्यक्रम रूपरेखा 2005 ने व्यापक स्तर पर विवेचना की है कि पंचायती राज संस्थाओं के क्रियाकलापों में अस्पष्टता और दोहराव है। इन कार्यक्रमों में ग्राम सभा की कोई भागीदारी नहीं है और न ही पंचायती राज संस्थाओं तथा शैक्षिक नौकरशाही के बीच भूमिका की कोई निश्चित सीमा है। कार्यों और उपलब्ध धन को लेकर कोई समन्वय नहीं है। अभी भी विद्यालय समुदाय तक नहीं पहुँचे हैं। विकेन्द्रीकरण का मतलब है, इमारत के बजाए विद्यालय समुदाय के नजदीक आये। आवश्यक लचीलापन और स्वायत्तता, शिक्षा व्यवस्था में जरूरी है जो कि योजना बनाने, निधि वितरित करने, प्रशासनिक नियम निर्देश बनाने, अकादमिक सहायता करने और स्वायत्त निर्णय प्रक्रिया में निचले स्तर पर बहुत सहायता करेंगी।

इसी प्रकार प्रधानमंत्री श्री मनमोहन सिंह ने भी 24 अप्रैल, 2008 को जिला परिषद् व पंचायत समिति अध्यक्षों के राष्ट्रीय सम्मेलन में कहा था कि पंचायतें 'सभी के लिए शिक्षा' अभियान में स्थानीय स्कूलों के प्रबंध में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। इन प्रयासों के तहत अब हम देश के सभी रिहायशी भागों में स्कूल खोल सकते हैं। हमने पूरे देश में मीड-डे मिल योजना शुरू की है और पंचायतें इसके कार्यान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। पोषण खाद्य कार्यक्रमों में भी खास ध्यान देने की जरूरत है। अंतर्निहित बाल विकास योजना में भी स्थानीय पंचायतों को शामिल करना चाहिए। इस तरह पंचायतों की सहभागिता को सीधे तौर पर शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे

कार्यक्रमों में महत्त्व दिया जा रहा है। इस तरह से पंचायती राज और शिक्षा : एक संभावित अवधारणा के रूप में उभरी हैं। अमर्त्य सेन, ज्यां द्रेज़ (2000) आदि का मानना है कि ग्रामीण स्कूलों के अध्यापकों के अनुपस्थित रहने की समस्या का समाधान सबसे निकटस्थ संस्था अर्थात् स्थानीय जन समुदाय के सहयोग के बिना संभव नहीं हो सकता। इसलिए ग्रामीण शिक्षक को स्थानीय स्वशासन के प्रति जवाबदेह बनाना जरूरी है।

इस प्रकार शिक्षा में सामुदायिक सहभागिता नीति प्रारूप निर्माण, संसाधनों की गतिशीलता, पाठ्यचर्या विकास, अध्यापकों की नियुक्ति व पदावनति, पर्यवेक्षण, वेतन का भुगतान, अध्यापक प्रशिक्षण, पाठ्य पुस्तकें तैयार करना, पाठ्य पुस्तकों का वितरण, प्रमाणीकरण, निर्माण और मरम्मत इत्यादि विषयों में सामुदायिक सहभागिता का महत्त्व है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009

भारतीय संविधान की धारा 45 में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा को राज्य का एक नीति-निर्देशक सिद्धांत घोषित किया गया था, राज्य इस संविधान के कार्यान्वित किए जाने के समय से 10 वर्ष के अंदर सभी बच्चों के लिए, जब तक वे चौदह वर्ष की आयु पूर्ण कर लेंगे, निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा। लेकिन लगभग 63 वर्ष बीतने के बाद भी यह काम नहीं हो पाया है।

संसद ने 4 अगस्त, 2009 को बच्चों का निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम पारित किया। इसके साथ ही देश के प्रत्येक बच्चे को शिक्षा का मौलिक अधिकार प्राप्त हो गया है। इस अधिनियम के मुख्य प्रावधान निम्नलिखित हैं—

- 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों को अपने पड़ोस के विद्यालय में प्रारंभिक शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य रूप से पाने का अधिकार है।
- निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के लिए केन्द्र और राज्य सरकारों के दायित्व को रेखांकित किया गया है।
- निजी स्कूलों में गरीबों और वंचितों के बच्चों के लिए 25 फीसदी सीटों का आरक्षण जरूरी है। साथ ही विकलांगता से प्रभावित बच्चों की शिक्षा का प्रावधान भी किया गया है।
- अभिभावकों का यह दायित्व होगा कि वह 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों को विद्यालय में पढ़ने के लिए भर्ती कराएँ।
- विद्यालयों के काम-काज की निगरानी विद्यालय प्रबंधन समितियों के माध्यम से की जायेंगी।
- किसी भी बच्चे की प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण होने से पूर्व उसे बोर्ड की कोई भी परीक्षा नहीं देनी होगी। प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण करने वाले प्रत्येक बच्चे को प्रमाण-पत्र दिया जायेगा।
- अध्यापक-छात्र अनुपात सही रखना सरकारों का दायित्व होगा।
- शिक्षा की गुणवत्ता सुधारी जाये।
- स्कूल अध्यापकों को 5 साल के अंदर अध्यापक प्रशिक्षण डिग्री प्राप्त करनी आवश्यक है।
- स्कूल की भौतिक सुविधाओं को सुधारा जाये।
- वित्तीय भार राज्य व केन्द्र सरकारी की जिम्मेदारी है।
- प्रारंभिक शिक्षा की पाठ्यचर्या की विषय वस्तु और मूल्यांकन के लिए दिशा निर्देश दिये गये हैं।
- बाल अधिकार संरक्षण अधिनियम 2005 के प्रावधानों के अंतर्गत गठित राष्ट्रीय/राज्य बाल संरक्षण आयोग अपने निर्धारित कार्यों के अतिरिक्त इस अधिनियम के तहत प्रदत्त अधिकारों का परीक्षण और देखभाल की समीक्षा करेंगे और उन पर प्रभावी क्रियान्वयन के लिए सिफारिश करेंगे।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम-2009 में स्थानीय प्राधिकार संबंधी प्रावधान

अध्याय 1 में धारा 2 (h) में स्थानीय प्राधिकार का अर्थ है कि म्युनिसिपल कॉरपोरेशन, म्युनिसिपल काउंसिल, जिला परिषद्, नगर पंचायत, पंचायत और कोई नाम हो सकता है और इसमें अन्य प्राधिकार और निकाय शामिल हैं जो कि कानून द्वारा स्कूलों पर प्रशासनिक नियंत्रण के लिए सशक्त किया हो या कुछ समय के लिए किसी भी कानून के अंतर्गत स्थानीय प्राधिकार की तरह किसी भी शहर, टाउन या गांव में हो सकता है।

अध्याय 3 की धारा 6 में है कि इस अधिनियम के प्रावधानों के तहत समुचित सरकार और स्थानीय प्राधिकार पड़ोस और अपने क्षेत्र की सीमाओं में, जहाँ पर स्कूल नहीं हैं, इस अधिनियम के लागू होने के तीन साल की अवधि में स्कूल स्थापित करेगा। अध्याय 3 की धारा 9 में स्थानीय प्राधिकार के यह कर्तव्य बताये गये कि प्रत्येक स्थानीय प्राधिकार अपने क्षेत्र में प्रावधान करेगा कि—

- क. निःशुल्क और अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा प्रत्येक बच्चे को उपलब्ध कराना।
- ख. पड़ोस में विद्यालय की सुविधा सुनिश्चित करना।
- ग. यह सुनिश्चित करना कि कमजोर और वंचित बच्चों के साथ प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने में और उसे पूरी करने पर किसी भी तरह का कोई भेदभाव नहीं हो।
- घ. अपने क्षेत्राधिकार के अंतर्गत रहने वाले 14 वर्ष तक के बच्चों का रिकार्ड बनाए रखना।
- ङ. यह सुनिश्चित करना कि दाखिला का अनुवीक्षण, उपस्थिति और अपने क्षेत्राधिकार के अंतर्गत रहने वाला प्रत्येक बच्चा प्रारंभिक शिक्षा पूरी करे।
- च. विद्यालय भवन, शिक्षक और अधिगम सामग्री सहित आधारभूत संरचना की उपलब्धता सुनिश्चित करेगी।
- छ. विशेष प्रशिक्षण सुविधा उपलब्ध कराना।
- ज. अच्छी गुणवत्तापूर्ण प्रारंभिक शिक्षा मानक और प्रतिमानक के अनुसार उल्लिखित अनुसूची के अनुसार सुनिश्चित करना।
- झ. प्रारंभिक शिक्षा के अध्ययन के लिए पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रमों को समय पर निर्धारित करने को सुनिश्चित करना।
- ञ. शिक्षकों को प्रशिक्षण सुविधा उपलब्ध कराना।
- ट. प्रवासी परिवारों के बच्चों का दाखिला सुनिश्चित करना।
- ठ. अपने क्षेत्राधिकार के अंतर्गत स्कूलों की कार्यप्रणाली का अनुवीक्षण करना।
- ड. एकेडमिक कैलेंडर का निश्चय करना।

धारा 21 (1) स्कूल में एक स्कूल प्रबंध समिति का निर्माण किया जायेगा, जिसमें स्थानीय प्राधिकार के चयनित प्रतिनिधि, स्कूल में दाखिल बच्चों के अभिभावक और संरक्षक और शिक्षक होंगे। स्कूल विकास योजना उचित सरकार या स्थानीय प्राधिकार द्वारा बनाई व तैयार की गई योजनाओं और अनुदान के आधार पर बनाई जायेंगी।

धारा 21 (1) में कहा गया है कि स्कूल प्रबंध समिति निम्न कार्य करेगी—

- क. स्कूल की कार्यप्रणाली का अनुवीक्षण।
- ख. स्कूल विकास योजना का निर्माण व सिफारिश करना।
- ग. समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकार या किसी अन्य स्रोत से प्राप्त अनुदान के उपयोग का अनुवीक्षण करना।
- घ. दिये गये अन्य साधिकार कार्य करना।

धारा 25 (1) के अनुसार, यह अधिनियम लागू होने के छः महीने के अंदर समुचित सरकार और स्थानीय प्राधिकार यह सुनिश्चित करेगा कि छात्र-अध्यापक अनुपात उल्लिखित अनुसूची के अनुसार प्रत्येक स्कूल में बनाये रखे जायें।

धारा 26 के अनुसार, स्कूल स्थापित करने वाली नियोक्ता प्राधिकार जो कि स्वामित्व प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से समुचित सरकार या स्थानीय सरकार द्वारा वित्तपोषित है, यह सुनिश्चित करेगा कि उसके नियंत्रण में स्कूल में कुल संस्वीकृत पदों से दस प्रतिशत अधिक नहीं है।

धारा 32, में कहा है कि धारा 31 के उपबंधों के होते हुए भी यद्यपि स्थानीय प्राधिकार के क्षेत्राधिकार में बच्चों के अधिकार के अंतर्गत इस अधिनियम के अनुसार लिखित शिकायत कोई भी व्यक्ति कर सकता है।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय (विद्यालय शिक्षा और साक्षरता विभाग) की अधिसूचना (8 अप्रैल, 2010) में केन्द्रीय सरकार ने निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार 2009 की धारा 38 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए नियम बनाये हैं जिन्हें निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार नियम 2010 कहा गया है।

भाग-2 विद्यालय प्रबंध समिति के नियमों में कहा गया है कि इस समिति की सदस्य संख्या का 75 प्रतिशत बालकों के माता-पिता या संरक्षकों में से होगा। शेष 25 प्रतिशत में से एक तिहाई सदस्य स्थानीय प्राधिकार के निर्वाचित सदस्यों में से होंगे, जिनका विनिश्चय स्थानीय प्राधिकार द्वारा किया जायेगा।

विद्यालय प्रबंध समिति द्वारा विद्यालय विकास योजना तैयार करके अंत से पूर्व स्थानीय प्राधिकार को प्रस्तुत किया जायेगा।

भाग 3-5(1) निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार के अनुसार समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकारी के स्वामित्वाधीन और प्रबंधनाधीन किसी विद्यालय की विद्यालय प्रबंध समिति विशेष प्रशिक्षण की अपेक्षा करने वाले बालकों की पहचान करेगी और प्रशिक्षण आयोजित करेगी।

भाग 4-1(6) केन्द्रीय सरकार, समुचित सरकार और स्थानीय प्राधिकारी के कर्तव्य और उत्तरदायित्व निम्न हैं—

1. आसपास के क्षेत्र या सीमाएँ, जिनके भीतर समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकार द्वारा कोई विद्यालय स्थापित किया जाना है, कक्षा 1 से 5 के बालकों के लिए एक किलोमीटर व कक्षा 6 से 8 के बालकों के लिए 3 किलोमीटर की पैदल दूरी के भीतर स्थापित किया जाए।
2. समुचित सरकार या स्थानीय सरकार, जहाँ कहीं आवश्यक हो, उक्त विद्यालयों को प्रोन्नत कर सकती है।
3. कठिन भू-भाग, भूस्खलनों, बाढ़ के जोखिम, कम सड़कों वाले स्थानों में इस तरह विद्यालय अवस्थित करें, जिससे ऐसे खतरों से बच सकें।
4. यदि आस-पास के क्षेत्र या सीमाओं के भीतर कोई विद्यालय विद्यमान नहीं है तो समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकार विद्यालय में प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने के लिए निःशुल्क परिवहन और आवासीय सुविधाओं जैसी पर्याप्त व्यवस्थाएँ करेगा।
5. सघन जनसंख्या वाले स्थानों में, समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकार, ऐसे स्थानों में 6-14 वर्ष की आयु समूह के बालकों की संख्या को ध्यान में रखते हुए आस-पास के एक से अधिक विद्यालयों की स्थापना के बारे में विचार करेगा।
6. स्थानीय प्राधिकार आस-पास के ऐसे विद्यालयों का पता लगायेगा, जहाँ बालकों को प्रवेश दिया जा सकता है और प्रत्येक आवास के लिए ऐसी सूचना को सार्वजनिक करेगा।

7. ऐसी निःशक्तता से ग्रस्त बालकों के संबंध में, जो उन्हें विद्यालय में पहुँचने से रोकती है, समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकारी उन्हें विद्यालय में उपस्थित होने और प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने में समर्थ बनाने के लिए समुचित और सुरक्षित परिवहन व्यवस्था करने का प्रयास करेगा।

8. समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकार यह सुनिश्चित करेगा कि बालकों की विद्यालय तक पहुँच सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों से प्रतिबाधित न हो।

समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकारी यह सुनिश्चित करेगा कि विद्यालय में कोई भी बालक जाति, वर्ग, धार्मिक या लिंग संबंधी दुर्व्यवहार के आधीन नहीं हो। कमजोर वर्ग के किसी बालक और अलाभप्रद समूह के किसी बालक को कक्षा में, दोपहर के भोजन के दौरान, खेल के मैदानों में, सामान्य पेयजल और प्रसाधन सुविधाओं के उपयोग में तथा शौचालय या कक्षाओं की सफाई में अलग न रखा जाए या उसके विरुद्ध विभेद न किया जाए।

अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा अधिनियम के कार्यान्वयन में पंचायती राज संस्थाएँ अपनी निम्न भूमिकाओं का निर्वाह कर सकती हैं—

- शिक्षा के अधिकार का उद्देश्य है कि 6 से 14 वर्ष तक के बच्चे को प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य रूप से मिले। ग्राम पंचायतों के द्वारा विद्यालयों में बच्चों का पंजीकरण व दाखिला करवाने में बहुत मदद की जा सकती है। ग्राम सभा की बैठक में भी अभिभावकों को विद्यालयों में दाखिला के लिए प्रोत्साहित व अभिप्रेरित किया जा सकता है।
- पंचायती राज संस्थाओं द्वारा विद्यालय की बुनियादी आवश्यकताओं व सुविधाओं पर ध्यान दिया जाना जरूरी है। जैसे कि पीने का पानी, बिजली, खेल का मैदान, स्कूल जाने का रास्ता, भवनों की मरम्मत, शौचालय आदि। ताकि अभिभावक मात्र इस वजह से अपने बच्चों को स्कूल से दूर न रखें। बिहार शिक्षा परियोजना, हरियाणा प्राथमिक शिक्षा परियोजना, झारखंड शिक्षा परियोजना इत्यादि राज्य स्तरीय योजनाएँ इस दिशा में अधिक सक्रिय हैं।
- पंचायती राज संस्थाओं द्वारा अनुसूचित जाति/जनजाति, पिछड़े वर्ग के बच्चे, लड़कियों की शिक्षा, शारीरिक रूप से विकलांग, विशेष रूप से सहायता प्राप्त बच्चों की शिक्षा की ओर ध्यान दिया जा सकता है। ग्रामीण समाज में अभी भी अनुसूचित जाति/जनजाति के साथ सामाजिक भेदभाव विद्यमान है। लड़कियों को अभी भी विद्यालयों में नहीं भेजा जाता, क्योंकि वे घर का काम करती हैं या अपने छोटे भाई-बहनों की देखभाल करती हैं। विकलांग बच्चों को तो समाज का अंग ही नहीं माना जाता है। इस तरह की विद्यमान समस्याओं को समाप्त करके वंचित वर्ग को शिक्षा उपलब्ध करानी चाहिए। अभिभावकों को प्रेरित करके समुदाय में चेतना जागृत करके ग्राम पंचायतों द्वारा शिक्षा को सभी तक पहुँचाया जा सकता है।
- पंचायती राज संस्थाओं को ग्रामीण क्षेत्र के स्कूलों में गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। सरकारी स्कूलों में केवल औपचारिकतावश ही पढ़ाई होती है। बच्चों को केवल साक्षर नहीं बनाना है, बल्कि उसे आज के प्रतियोगिता से परिपूर्ण वातावरण के हिसाब से गुणवत्तापूर्ण व उपयोगी शिक्षा देना जरूरी है। किसान भी किसी तरह बच्चों की फीस का प्रबंध करके निजी स्कूलों में ही बच्चों को पढ़ाते हैं। सरकारी स्कूलों में अनुसूचित जाति व पिछड़े वर्ग के बच्चों की संख्या ज्यादा है। सरकारी स्कूलों में केवल वे ही बच्चे पढ़ रहे हैं जिनके अभिभावक प्राइवेट स्कूलों की फीस देने में असमर्थ हैं।
- पंचायती राज संस्थाओं की ग्राम स्तर, पंचायत समिति व जिला परिषद स्तर पर शिक्षा समितियाँ हैं। इन शिक्षा समितियों की बैठकों में स्थानीय विद्यालयों के अध्यापकों को आमंत्रित किया जा सकता है। इससे शिक्षा पर दोनों पक्ष समस्याओं व समाधान से ज्ञात हो सकते हैं।
- पंचायती राज संस्थाओं को समग्र ग्रामीण विकास पर ध्यान देना चाहिए, जिसमें सामाजिक, कल्याणकारी

- व विकास कार्य भी शामिल हों। केवल विद्यालय पर ध्यान देने से शिक्षा का विकास नहीं हो सकता है।
- भारत में सदियों से शिक्षा में समुदाय का पूर्ण रूप से सहयोग रहा है। लेकिन आज वर्तमान समय में ग्रामीण क्षेत्रों में भी विद्यालय को सरकारी दफ्तर की तरह समझा जाने लगा है जो कि ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा के लिए हानिकारक है। पंचायती राज संस्थाओं के द्वारा जन समुदाय में जागृति उत्पन्न करके शैक्षिक विकास कार्यों में पूर्ण जनसहभागिता ली जा सकती है।
 - सर्वशिक्षा अभियान कार्यक्रम में समुदाय की सहभागिता भी उसके प्रमुख उद्देश्यों में से एक है। सर्वशिक्षा अभियान के तहत स्कूलों में ग्राम शिक्षा समितियाँ व अन्य समितियाँ बनाई गई हैं। जिसमें पंचायती राज संस्थाओं की भी भागीदारी हो रही है।
 - ग्रामीण क्षेत्रों में यह भी देखा गया है कि गरीब एवं कमजोर वर्ग के परिवारों के बच्चे या तो स्कूल जाते नहीं, अथवा पढ़ाई अधूरी छोड़ देते हैं। इस समस्या के लिए गाँवों की आंगनबाड़ी की देख-रेख ग्राम पंचायतों द्वारा अच्छी तरह से की जानी चाहिए। पंचायती राज संस्थाएँ बचपनशाला केन्द्र भी चौपाल या सामुदायिक केन्द्रों में खोल सकती हैं।
 - ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा का जीवन की प्राथमिकता और अनिवार्य आवश्यकताओं से सीधा संबंध स्थापित किया जाना चाहिए। स्थान और ग्रामीण विद्यार्थियों की परिस्थिति के अनुरूप पाठ्यक्रम रखे जाने चाहिए। जैसे मिट्टी के बर्तन, लकड़ी का कार्य, कृषि, कुटीर उद्योगों से संबंधित विषय, मत्स्य पालन, मधुमक्खी पालन, पशु पालन इत्यादि को विद्यालय विषय के रूप में शामिल कर सकते हैं।
 - अध्यापक विकास में भी पंचायती राज संस्थाओं का सहयोग जरूरी है। पंचायती राज संस्थाओं के द्वारा अध्यापकों को संरक्षण दिया जाना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में अध्यापकों के आवास व अन्य सुविधाओं का पंचायती राज संस्थाओं के द्वारा प्रबंध किया जा सकता है।
 - विद्यालय में सांस्कृतिक कार्यक्रमों, त्यौहार, राष्ट्रीय उत्सव, खेल-कूद, मनोरंजन, मेले, नौटंकी, प्रदर्शनी, मण्डली, लोकगीत, नृत्य इत्यादि में पंचायती राज संस्थाएँ बड़े स्तर पर विद्यालय की मदद कर सकती हैं।
 - ज्यादातर शैक्षिक कार्यक्रमों/परियोजनाओं, सुविधाओं की ग्रामीण समुदाय के लोगों को जानकारी नहीं होती है। इस तरह के कार्यक्रमों का प्रचार व जानकारी ग्राम स्तर पर पंचायत द्वारा समुदाय को दी जा सकती है।
 - गाँवों में पुस्तकालय और वाचनालय पंचायती राज के प्रयासों द्वारा खोला जा सकता है। 73वें संविधान संशोधन के द्वारा भी यह जिम्मेदारी पंचायती राज को दी गई है।
 - पंचायती राज संस्थाओं की विद्यालयों के एकेडमिक कैलेण्डर तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका होनी चाहिए। विद्यालय का खुलने और बंद होने का समय, परीक्षाओं का समय, ग्रीष्मकालीन व शीतकालीन छुट्टियों का समय इत्यादि को सुनिश्चित करने में विद्यालय प्रशासन द्वारा पंचायती राज संस्थाओं की सहभागिता लेनी जरूरी है। गाँवों की खेती-बाड़ी, फसल की कटाई-जुताई, पशुपालन, खेत-खलिहान के मजदूर, भौगोलिक दशा इत्यादि को ध्यान में रखकर पंचायती राज संस्थाओं द्वारा एकेडमिक कैलेण्डर को तैयार किया जा सकता है।

वर्तमान में पंचायती राज संस्थाओं के समक्ष समस्याएँ व चुनौतियाँ

पंचायती राज व्यवस्था की अपनी अंतर्निहित समस्याएँ हैं जैसे कि इनके पास वित्तीय स्रोतों का अभाव, जटिल प्रशासनिक तंत्र की प्रक्रिया, महिला प्रतिनिधियों की निष्क्रिय सहभागिता, दलित नेतृत्व का प्रभावशाली नहीं होना, अफसरशाही का सख्त रवैया, युवा नेतृत्व की कमी, राजनीतिक दखलंदाजी इत्यादि ये सभी समस्याएँ किसी भी

विकास कार्यक्रम को बाधित करने के लिए अपने आपमें पर्याप्त हैं। इनमें सबसे बड़ी बात यह है कि इन्हें संवैधानिक दर्जा तो दिया गया परन्तु स्वतंत्रता नहीं मिल पायी।

पंचायती राज संस्थाओं को अपने शैक्षिक कार्यों व उत्तरदायित्व संबंधी अधिकारों की न तो स्पष्ट जानकारी है न ही ग्राम पंचायत स्तर पर स्कूलों में निरीक्षण व देख-रेख का कार्य सही ढंग से नहीं किया जा रहा है। ग्राम पंचायत केवल औपचारिकतापूर्वक निरीक्षण करती है। आज भी ग्रामीण विद्यालयों में पीने के पानी की समस्या, चारदीवारी, खेल का मैदान, विद्यालय जाने के रास्ते ठीक नहीं हैं जो की शोचनीय स्थिति है। पंचायती राज संस्थाओं के तीनों स्तर पर शैक्षिक, प्रशासनिक व आर्थिक जिससे शैक्षिक कार्यक्रमों के कार्यान्वयन व उत्तरदायित्व में अस्पष्टता रहती है।

पंचायती राज संस्थाओं व विद्यालयों के बीच आपसी सहयोग भी ज्यादा अच्छा नहीं है। ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों व जिला परिषदों की बैठकों में शिक्षा संबंधी चर्चा केवल निर्माण कार्यों और खर्च के हिसाब तक ही सीमित रहती हैं। बैठकों में अध्यापकों को नहीं बुलाया जाता है। इसके अलावा पंचायती राज संस्थाओं के सदस्यों के पास भी समय की कमी रहती है। ग्राम पंचायत के सदस्य खेती-बाड़ी के कार्यों में व्यस्त रहते हैं। महिलाएँ घर के कार्यों में ज्यादा व्यस्त रहती हैं। दलित वर्ग के प्रतिनिधि भी अपनी रोजी-रोटी के कार्यों में व्यस्त रहते हैं। इन कारणों से सदस्यों की सक्रिय भूमिका नहीं हो पा रही है।

शैक्षिक नौकरशाही के दृष्टिकोण से भी शैक्षिक विकेंद्रीकरण नहीं हो पा रहा है। शैक्षिक योजनाएँ सरकारी तंत्र से मुक्त नहीं हैं और दफ्तरी दृष्टिकोण से पंचायतों की रुचि व सहभागिता कम हुई है। शैक्षिक नौकरशाही अपनी शक्तियों का प्रत्यायोजन भी नहीं करना चाहती, इसके अलावा वह पंचायती राज संस्थाओं के सदस्यों पर विश्वास भी नहीं करती है। ग्रामीण जन पंचायती राज संस्थाओं को शासकीय एजेंसी जैसा मानते हैं।

ग्रामीण जनों की सरकार पर निर्भरता ज्यादा बढ़ गई है और सामुदायिक भावना की कमी हो रही है। अब विद्यालयों को भी सरकारी दफ्तर की तरह समझा जाने लगा है। इसके अलावा पंचायती राज संस्थाओं में गुटबाजी स्पष्ट तौर पर देखी जा सकती है, जिससे किसी भी कार्य को ठीक तरह से नहीं किया जा रहा है। पंचायती राज संस्थाओं को राजनीति का अखाड़ा बना लिया गया है। पंचायत समिति, जिला परिषद के सदस्य तो मिनी विधायक के समान हैं जो कि क्षेत्रीय राजनीति में अच्छी खासी पैठ रखते हैं। इस तरह से ये संस्थाएँ उद्देश्यों से भटक गई हैं जिससे विद्यालयों का शैक्षिक वातावरण भी प्रभावित हो रहा है।

ग्राम पंचायतों में ग्राम सभा सक्रिय नहीं है। ग्राम सभा केवल अपने कार्यों की कागजी कार्यवाही ही करती हैं।

ग्रामीण परिवेश में सामाजिक, आर्थिक शक्ति संरचना स्थानी स्तर पर प्रभावशाली है। आर्थिक असमानता ग्रामीण क्षेत्रों में वृहत स्तर पर है। गाँवों में जमीन का असमान वितरण पूरे भारत में एक गंभीर समस्या के रूप में आज भी विद्यमान है। इसलिए स्थानीय अभिजन अपने प्रभाव के कारण विभिन्न निर्णयों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं और सभी लोगों की विकास प्रक्रिया में भागीदारी संभव नहीं हो पाती है। शिक्षा व्यवस्था में भी यह संदर्भ महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

आज गाँवों में प्राइवेट स्कूलों की भीड़ बढ़ती जा रही है। सरकारी स्कूलों से प्राइवेट स्कूलों की ओर विद्यार्थियों का पलायन हो रहा है। ग्रामीण सरकारी स्कूलों में बच्चों की संख्या दिन-प्रतिदिन कम हो रही है। आम किसान व मजदूर भी प्राइवेट स्कूलों में अपने बच्चों को पढ़ाना चाहते हैं। सरकारी स्कूलों से ग्रामीणों का विश्वास उठता जा रहा है। शिक्षा में देखरेख व निरीक्षण की भूमिका पर यह समस्या पंचायतों के समक्ष चुनौती व सवाल खड़ा करती है।

निष्कर्ष :

अतः आज यह महत्वपूर्ण एवं जरूरी प्रतीत होता है कि अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा अधिनियम को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए त्रि-स्तरीय पंचायतों के निर्वाचित प्रतिनिधियों तथा शासकीय अधिकारियों को प्रभावी एवं व्यावहारिक प्रशिक्षण प्रदान किया जाये। शिक्षा के अधिकार के संदर्भ में पंचायती राज संस्थाओं को सही ज्ञान प्रदान किया जाये तथा पंचायती राज संस्थाओं को सरकारी तंत्र से मुक्त किया जाये।

ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा को सामूहिक उत्तरदायित्व के रूप में लिया जाना चाहिए। इसमें समुदाय/पंचायत, शिक्षक तथा अभिभावकों का समान उत्तरदायित्व है। शिक्षा के नियोजन और प्रबंध का विकेन्द्रीकरण भी आवश्यक है। शिक्षा का पाठ्यक्रम ग्रामीण स्थानीय जरूरतों के हिसाब से प्रासंगिक होना भी चाहिए तभी छात्रों की संख्या में वृद्धि संभव हो सकेगी। ग्रामीण विकास को हमें समग्र विकास की संकल्पना समझना होगा और ग्रामीण लोगों के मन में यह भावना भी जगानी होगी कि शिक्षा का संबंध केवल नौकरी से नहीं है, बल्कि यह अंतर्निहित गुणों का विकास भी करती है।

इस तरह ग्रामीण स्थानीय प्राधिकार के द्वारा ग्रामीण शिक्षा में सुधार लाया जा सकता है लेकिन साथ ही यह भी ध्यान रखना होगा कि विद्यालयों को राजनीतिक तथा पारिवारिक समस्याओं का अखाड़ा न बनने दें। इसके लिए आवश्यक है कि जन-प्रतिनिधि दृढ़ इच्छा शक्ति और स्पष्ट संकल्प के साथ विद्यालयों में शैक्षिक वातावरण तैयार करने को अपना कर्तव्य समझकर अपना योगदान दें।

संदर्भ :

- भारत का राजपत्र (2009); द राइट ऑफ चिल्ड्रन टू फ्री एण्ड कम्पलसरी एजुकेशन एक्ट 2009, नई दिल्ली : भारत सरकार, मिनिस्टरी ऑफ लॉ एण्ड जस्टिस, लेजिस्लेटिव डिपार्टमेंट
- पंचायती राज विभाग (2008); फिफ्थीन एनीवर्सरी चार्टर ऑन पंचायत राज इन्क्लुसिव ग्रोथ थू इन्क्लुसिव गर्वनेंस, नई दिल्ली : भारत सरकार, पंचायती राज विभाग
- एन.सी.ई.आर.टी. (2006); राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, नई दिल्ली, एनसीईआरटी संदर्शिका (2007); ग्राम शिक्षा समिति एवं ग्राम निर्माण समिति, चंडीगढ़: हरियाणा, प्राथमिक शिक्षा परियोजना परिषद्
- भास्कर राव, दिग्मूर्ति (2001); डिसेंट्रलाइजेशन मैनेजमेंट ऑफ एजुकेशन, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- सेन, अमर्त्य, द्रेज, ज्यां (2000); भारत विकास की दशाएँ, राजपाल एंड संस, दिल्ली।
- मैथ्यू जॉर्ज (2003); भारत में पंचायती राज परिप्रेक्ष्य और अनुभव, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, अश्वनी (2005); पंचायती राज और शिक्षा का प्रबंधन, परिप्रेक्ष्य पत्रिका, वर्ष 12, अंक 2, नई दिल्ली : नीपा।
- अश्वनी (2009); ग्रामीण शिक्षा में सामुदायिक सहभागिता, परिप्रेक्ष्य पत्रिका, वर्ष 16, अंक 1, नई दिल्ली : न्यूपा।
- एजुकेशन एण्ड नेशनल डेवलपमेंट, रिपोर्ट ऑफ द एजुकेशन कमीशन 1964-66, नई दिल्ली : एनसीईआरटी, पृष्ठ 415
- द राइट ऑफ चिल्ड्रेन टू फ्री एंड कम्पलसरी एजुकेशन बिल (2008), नई दिल्ली : एम.एच.आर.डी., पृष्ठ 6
- स्कूल इनडिस्पलीन- द केस स्टडी ऑफ एन इंस्टीट्यूशन, इन एजुकेशनल स्टडीज़ एण्ड इन्वेस्टिगेशन-1962, नई दिल्ली : एन.सी.ई.आर.टी., 141-47
- एम.एच.आर.डी. (1964-64); राष्ट्रीय शिक्षा आयोग, नई दिल्ली : भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय।
- एम.एच.आर.डी. (1986); नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति, नई दिल्ली : भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय।
- एम.एच.आर.डी. (1990); राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा समिति की रिपोर्ट (राममूर्ति समिति), नई दिल्ली : भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय।
- एम.एच.आर.डी. (1992); राष्ट्रीय शिक्षा नीति (संशोधित), नई दिल्ली : भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय।
- एम.एच.आर.डी. (1993); शिक्षा बिना बोझ के, नई दिल्ली : भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय।



माध्यमिक शाला के विद्यार्थियों में सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के तहत प्रदत्त विषयवार प्रोजेक्ट कार्यों⁹³ की प्रकृति एवं स्थिति का अध्ययन

डॉ. अखिल श्रीवास्तव

वरिष्ठ व्याख्याता एवं शोध प्रभारी

शासकीय अध्यापक शिक्षा महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

“मूल्यांकन में व्यक्ति अथवा समाज अथवा दोनों की दृष्टि से क्या अच्छा है अथवा क्या वांछनीय है का विचार तथा लक्ष्य निहित रहता है ।” एच.एस.रैमर्स एवं एन.एल.गेल

“शिक्षा परिपक्व मन का अपरिपक्व मन पर शिक्षण विधि द्वारा डाला गया एक योजनाबद्ध तथा व्यवस्थित प्रभाव है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति की व्यक्तिगत व सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक, आध्यात्मिक तथा सौन्दर्य बोध सम्बन्धी क्षमताओं का संतुलित व पूर्ण विकास होता है ।”

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 व बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के अनुसार बच्चों के अनिवार्य प्रवेश, अनिवार्य उपस्थिति, अनिवार्य ठहराव व अनिवार्य गुणवत्तायुक्त शिक्षा की बात कही गई है । परीक्षा पद्धति में सुधार व अमल हेतु सुझाव दिये गये हैं और सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन को उसकी पूरी आत्मा के साथ लागू करने की वकालत की गई है । जिससे कि बच्चों को इसके माध्यम से आगे बढ़ाया जा सके ।

अतः यह कहना गलत न होगा कि मूल्यांकन एक स्वतः परिभाषित शब्द है । मूल्यांकन से हमें गुणवत्ता एवं किसी प्रणाली की उपयोगिता के संदर्भ में ज्ञान प्राप्त होता है । मूल्यांकन की बात जब हम शिक्षा के क्षेत्र में करते हैं तो हम एक तंत्र, उस तंत्र में शिक्षा देने वाले, शिक्षा ग्रहण करने वाले, शिक्षा के साथ प्रयोग में लाये जा रहे इनपुट्स, यहाँ तक की शिक्षा के सम्बन्ध में बनाये गये नीति-निर्देशों का भी मूल्यांकन करते हैं । मूल्यांकन शासन और शिक्षाविदों द्वारा किये जा रहे प्रयासों का प्रतिफल हमारे सामने रखता है और बताता है कि हम कहाँ तक सफल हुए हैं । ‘क्रानबैक’ अनुसार –मूल्यांकन का सम्बन्ध सम्पूर्ण शिक्षा कार्य से है, इसका उद्देश्य शिक्षण में सुधार लाना है । यह उन कारणों, अभिवृत्तियों, स्वभाव, कौशल, बोध सौन्दर्यानुभूति का पता लगाने में समर्थ है जो छात्र में निहित है ।

➤ मूल्यांकन क्यों किया जाना चाहिये ?

मूल्यांकन करने के उद्देश्य निम्नानुसार हैं—

- कक्षा अनुरूप निर्धारित दक्षताओं से कितनी दक्षताएँ बच्चे ने सीखी हैं ?
- बच्चों द्वारा कितनी व कहाँ-कहाँ पर त्रुटियाँ की गयी हैं ?
- बच्चों ने क्या-क्या नहीं सीखा है ?
- बच्चों द्वारा सीख न पाने के क्या कारण हो सकते हैं ?
- किस विषय में एवं किस क्षेत्र में अतिरिक्त अभ्यास कराने की आवश्यकता है ?

अभिप्राय यह है कि मूल्यांकन के द्वारा बच्चों की उपलब्धियों के साथ-साथ उनकी कमजोरियों तथा कठिनाईयों का भी पता किया जाता है ।

➤ मूल्यांकन के प्रकार—

शिक्षा में मूल्यांकन दो प्रकार से किया जा रहा है—

1. सतत् मूल्यांकन
2. व्यापक मूल्यांकन

1. सतत् मूल्यांकन—

सतत् मूल्यांकन अधिक प्रभावशाली होता है, यदि एक कार्य योजना बनाकर प्रत्येक माह मूल्यांकन किया जाए, जिसमें —

- उस मूल्यांकन के लिये निर्धारित किये गये विषयवस्तु पर आधारित प्रश्न संकलित हों ।
- प्रश्नों एवं दक्षताओं के अनुसार अंक विभाजन कर लिया जावे ।
- मूल्यांकन के उपरान्त प्रश्नपत्र एवं उत्तरपुस्तिकाओं का विश्लेषण किया जाये जिसमें प्रश्नपत्रों के कठिनाई का स्तर ज्ञात हो सके एवं वह प्रश्न/विषयवस्तु ज्ञात हो सके जो बच्चों को समझ में नहीं आई ।
- विश्लेषण से प्राप्त कठिन बिन्दुओं अथवा कम उपलब्धि वाले अंशों को पहचान कर अगली परीक्षा में उनकी दक्षता भी प्राप्त की जा सके ।

इस प्रकार सत्र भर छात्र-छात्राओं का मूल्यांकन चलता रहता है । इसलिये इसे सतत् मूल्यांकन कहते हैं । सतत् मूल्यांकन सार्थक ज्ञान के लिये निदान-उपचार का पद प्रशस्त करता है ।

2. व्यापक मूल्यांकन —

सतत् मूल्यांकन अन्तर्गत मुख्यतया बच्चों में बौद्धिक स्तर अथवा ज्ञानात्मक क्षेत्रों का आंकलन करते आ रहे हैं । बच्चों के अन्दर छिपी अन्य प्रतिभाओं जैसे सामन्जस्य, नेतृत्व, सहयोग, सृजनात्मकता, अभिरुचि आदि का परीक्षण नहीं करते हैं, जबकि उक्त प्रतिभाओं को पहचानना, निखारना और उनका मूल्यांकन किया जाना बच्चों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकास के लिये अत्यन्त आवश्यक है । इसके मुद्देनजर राज्य शासन द्वारा संज्ञानात्मक क्षेत्रों के साथ-साथ असंज्ञानात्मक क्षेत्रों बाह्य सहगामी क्रियाओं को भी जोड़ा गया है । इनमें प्रोजेक्ट कार्य, मूल्य आधारित शिक्षा, जीवन कौशल सम्बन्धी कार्य मुख्य हैं ।

इस प्रकार जब हम छात्र-छात्राओं के बौद्धिक अभिरुचियों एवं समस्त व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते हैं, तो इसे व्यापक मूल्यांकन कहा जाता है ।

➤ मूल्यांकन कैसे करते हैं ?

मूल्यांकन निम्नानुसार किया जाना अधिक प्रभावशाली हो सकता है (आवश्यकतानुसार)

1. मौखिक मूल्यांकन
2. लिखित मूल्यांकन
3. पाठन या पाठों को पढ़वाकर
4. अभ्यास काँ जाँचकर
5. प्रोजेक्ट कार्य द्वारा
6. अनौपचारिक एवं अप्रत्यक्ष मूल्यांकन
7. खेलकूद एवं सांस्कृतिक गतिविधियों द्वारा
8. सृजनात्मक गतिविधि करवाकर

➤ सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति रुझान—

सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति रुझान हेतु निम्नानुसार कार्यवाहियां की जाना चाहिए ।

- शिक्षक और शाला प्रबन्धन की सहभागिता सुनिश्चित करना
- शिक्षक, अभिभावक और बच्चों में इसके प्रति जागरूकता लाने हेतु कार्यक्रमों का आयोजन करना एवं उनसे फीडबैक प्राप्त करना ।
- शिक्षकों के प्रशिक्षण सुनिश्चित करना ।
- पूर्व सेवाकालीन एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण में सतत् और व्यापक मूल्यांकन को प्रशिक्षण का अभिन्न अंग बनाना आदि-आदि ।

सतत् और व्यापक मूल्यांकन में बच्चों के सर्वांगीण विकास के मूल्यांकन के लिये निम्न उपकरण व तकनीकी प्रयोग में लाये जा सकते हैं –

- अवलोकन –

सत्र आरम्भ से अंत तक बच्चे के द्वारा की जा रही गतिविधियों पर नजर रखकर उसे और अधिक प्रेरित करना जिससे कि उसके प्रदर्शन में गुणवत्ता आये ।

- अवलोकन शेड्यूल–

अवलोकन शेड्यूल में वे गुण, व्यवहार होते हैं जिन्हें हम बच्चों में विकसित होता देखना चाहते हैं, जैसे–

स0क्र0	बच्चे का नाम	जोड़ना आता है	पढ़ना आता है	सही उच्चारण करना आता है	पहाड़े याद हैं
1	‘ए’	√	√	√	×
2	‘बी’	√	×	√	√

- चैक लिस्ट–

गुणों व व्यवहारों की एक ऐसी सूची जो हम बच्चों में विकसित होता देखना चाहते हैं । (यदि वे विकसित हो गये तो सही का निशान (✓) और नहीं तो (×) लगा देते हैं ।)

कथन	चैक लिस्ट
बालक ने गृहकार्य कर लिया है	()
वक्षा कार्य की कॉपी जँचवा ली है ।	()
प्रोजेक्ट कार्य पूरा कर लिया है ।	()

- रेटिंग स्केल –

गुण व व्यवहार को एक निश्चित मापदण्ड को विभिन्न डिग्री के आधार पर देखा जाता है जो 3 प्वाइंट या 5 प्वाइंट में हो सकता है ।

कथन	स्केल		
	हमेशा	कभी-कम	कभी-नहीं
गृहकार्य की कॉपी जँचवाता है ।			
ध्यान से सुनता है ।			

- पोर्टफोलियो –

पोर्टफोलियो भाषायी कौशल के साथ-साथ कला, चित्रकारी आदि के ऑकलन का महत्वपूर्ण और कारगर

तरीका है। सत्र भर बच्चों द्वारा की गई तरह-तरह की गतिविधियों द्वारा सृजित रचना, चित्रकारी, कहानी, कविता, गीत, पेंटिंग आदि को पोर्टफोलियों/फोल्डर में रखा जा सकता है। सम्बन्धित गतिविधि में प्राप्त अभिमतों से अपने-बच्चों के बारे में जानकारी मिलती रहती है।

शिक्षक पोर्टफोलियों/फोल्डर को केवल जाँच ही नहीं अपितु सीखने की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण उपकरण बना सकते हैं।

➤ एनेकडाटल रिकार्ड –

बच्चे के जीवन से सम्बन्धित कोई प्रेरक और वास्तविक घटना या कहानी/वर्णनात्मक रिपोर्टिंग प्रपत्र जिसमें बच्चे द्वारा प्रदर्शित व्यवहार, महत्वपूर्ण घटना आदि का दिन, दिनांक, समय, घटना का रिकार्ड पूरे साक्ष्य एवं प्रमाण के साथ एकत्रित किया जाता है।

स.क्र.	दिन	दिनांक	घटना का विवरण	प्रमाण	शिक्षक का अभिमत

➤ स्व मूल्यांकन –

बच्चे अपना मूल्यांकन स्वयं कर सकते हैं। बच्चे द्वारा किया गया मूल्यांकन शिक्षक के लिये मार्गदर्शन का कार्य कर सकता है। स्व मूल्यांकन में बच्चे अपेक्षित गुण एवं व्यवहार के विकसित होने पर सही एवं विकसित न होने पर गलत का निशान लगाते हैं।

स.क्र.	बच्चे का नाम	पहाड़े याद हैं	गृह कर्तव्य करती हूँ/ करता हूँ	रोजाना स्कूल आता हूँ/ आती हूँ	खेलों में भाग लेती हूँ/ लेता हूँ
1	‘सी’	×	√	√	√
2	‘डी’	√		√	

पुरानी परीक्षा पद्धति के स्थान पर सतत एवं व्यापक मूल्यांकन लाने के पीछे कारण है कि—

- 21वीं सदी को ज्ञान की सदी माना गया है। अतः नवाचार और समस्या निवारण की क्षमता का विकास बच्चों में किया जा सके।
- रटने-रटाने के स्थान पर सृजन, चिंतन, निर्णय, तर्क और विश्लेषण की क्षमता का विकास विद्यार्थियों में किया जा सके।
- परीक्षा के दबाव एवं तनाव को कम किया जा सके।
- प्रमाणपत्र में केवल सफल होने के स्थान पर दक्षता को पूर्ण करने सम्बंधी उल्लेख किया जा सके।

राष्ट्रीय पाठ्य चर्या की रूप रेखा 2005 के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास करना है। महात्मा गाँधी के कथनानुसार, “शिक्षा मानसिक, आध्यात्मिक और शारीरिक शक्तियों के विकास का साधन होना चाहिये। शिक्षा विद्यार्थियों के विकास का साधन है। विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से व्यक्तित्व विकास के शैक्षिक और सह शैक्षिक क्षेत्रों व व्यक्तिगत सामाजिक गुणों का सतत एवं व्यापक मूल्यांकन किया जाना अपेक्षित है।”

शैक्षिक क्षेत्रों का मूल्यांकन – लिखित मूल्यांकन के अतिरिक्त प्रोजेक्ट कार्य व उनका मूल्यांकन एवं प्रोजेक्ट

कार्य की योजना निम्नानुसार है –

- प्रोजेक्ट कार्य व उनका मूल्यांकन : कक्षा 6, 7 एवं 8 के प्रत्येक विषय में 20-20 अंकों का प्रोजेक्ट कार्य कराया जाये। प्रोजेक्ट कार्य हेतु राशि अधिकतम 1 हजार रुपये शालाना कन्टन्जेन्सी से व्यय की जा सकेगी।
- प्रोजेक्ट कार्य की कार्य योजना –

क्र.	गतिविधि	जिम्मेदारी										
1	प्रोजेक्ट कार्य का आबंटन – प्रत्येक समूह को विषयवार सुझावात्मक सूची में से एक प्रोजेक्ट कार्य करने हेतु इस प्रकार आबंटित किया जाये कि प्रत्येक समूह को अलग-अलग कार्य करने का अवसर प्राप्त हो।	विषय शिक्षक										
2	प्राजेक्ट कार्य करने की योजना बनवाना – आवंटित प्राजेक्ट कार्य पर कार्य करने हेतु प्रत्येक समूह के बच्चों के साथ विषय शिक्षक द्वारा चर्चा कराई जाये। बच्चों से ही चर्चा कर योजना बनवाई जाये व मार्गदर्शन देते हुये योजना को अंतिम रूप देकर सभी बच्चों को समझाया जाये।	विषय शिक्षक										
3.	सामग्री प्रबंधन – प्रोजेक्ट कार्य करने हेतु सभी विषयों के लिये अधिकमत राशि 1 हजार रुपये शालाना कंटनजेंन्सी से व्यय की जा सकेगी।	प्रधानाध्यापक (विषय शिक्षक की अनुशंसा के आधार पर)										
4.	प्राजेक्ट कार्य करने की योजना का क्रियान्वयन – विषय शिक्षक के साथ तय योजना के अनुसार समूह के सभी बच्चों द्वारा उन्हें आबंटित कार्य किया जायेगा।	विषय शिक्षक की मॉनीटरिंग में समूह के बच्चे।										
5.	साप्ताहिक /पाक्षिक प्रगति समीक्षा – विषय शिक्षक द्वारा समूहवार वारी-वारी से साप्ताहिक, पाक्षिक, प्रगति समीक्षा की जाये व आवश्यक मार्गदर्शन दिया जाये।	विषय शिक्षक एवं प्रधानाध्यापक										
6.	प्राजेक्ट कार्य का प्रस्तुतीकरण – प्रोजेक्ट कार्य को प्रत्येक समूह द्वारा निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर समूहवार बारी-बारी से प्रस्तुत किया जाये – - प्राजेक्ट कार्य का शीर्षक। - प्राजेक्ट कार्य में क्या-क्या किया गया। - क्या-क्या निष्कर्ष प्राप्त हुये।	विषय शिक्षक की मॉनीटरिंग में समूह के बच्चों द्वारा										
7.	प्राजेक्ट कार्य का मूल्यांकन – विषय शिक्षक द्वारा प्रोजेक्ट कार्य की शुरुआत से अंत तक की प्रक्रिया के दौरान अवलोकन के आधार पर निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर प्रोजेक्ट कार्य का मूल्यांकन किया जाये। <table><tr><th>मूल्यांकन के बिन्दु</th><th>अधिकतम अंक</th></tr><tr><td>योजना</td><td>04 अंक</td></tr><tr><td>बच्चों द्वारा किया गया वास्तविक कार्य</td><td>10 अंक</td></tr><tr><td>प्रस्तुतीकरण</td><td>06 अंक</td></tr><tr><td>कुल अंक</td><td>20 अंक</td></tr></table> एक समूह के सभी बच्चों को समान अंक दिये जायें।	मूल्यांकन के बिन्दु	अधिकतम अंक	योजना	04 अंक	बच्चों द्वारा किया गया वास्तविक कार्य	10 अंक	प्रस्तुतीकरण	06 अंक	कुल अंक	20 अंक	विषय शिक्षक
मूल्यांकन के बिन्दु	अधिकतम अंक											
योजना	04 अंक											
बच्चों द्वारा किया गया वास्तविक कार्य	10 अंक											
प्रस्तुतीकरण	06 अंक											
कुल अंक	20 अंक											

➤ मौखिक लिखित का अधिभार –

स.क्र.	कक्षा	मौखिक	लिखित	लिखित प्रश्न पत्रों की संख्या
1	6, 7, 8	10%	90%	कक्षानुसार सभी विषयों के पृथक-पृथक प्रश्न पत्र होंगे

➤ प्रश्न पत्र में उद्देश्यों का अधिभार –

कक्षा	ज्ञानात्मक	समस आधारित	अनुप्रयोग एवं कौशल
6, 7, 8	30%	40%	30%

➤ प्रश्न के प्रकार –

कक्षा	वस्तुनिष्ठ	अतिलघुत्तरीय	लघुत्तरीय	दीर्घ उत्तरीय
6,7,8	10%	20%	40%	30%

➤ प्रश्न पत्र में कठिनाई का स्तर –

	प्रश्नों का प्रतिशत
सरल प्रश्न	30%
सामान्य प्रश्न	50%
कठिन प्रश्न	20%

➤ शैक्षिक क्षेत्रों हेतु ग्रेडिंग का आधार निम्नानुसार है –

75–100 प्रतिशत	ए-ग्रेड	उत्कृष्ट
60–75 प्रतिशत	बी-ग्रेड	उत्तम
45–60 प्रतिशत	सी-ग्रेड	अच्छा
33–45 प्रतिशत	डी-ग्रेड	सामान्य
33 प्रतिशत से कम	ई ग्रेड	सुधार योग्य

➤ सह शैक्षिक क्षेत्रों व व्यक्तिगत-सामाजिक गुणों का मूल्यांकन इसके अंतर्गत मूल्यांकन के क्षेत्र निम्नानुसार है :-

क्र.	क्षेत्र	गतिविधि के दिन	निर्धारित अंक वर्ष भर लिये	मूल्यांकन उपकरण
1	साहित्यिक	सोमवार	20	अवलोकन
2	सांस्कृतिक	मंगलवार	20	चैकलिस्ट पोर्टफोलियो

3	वैज्ञानिक	बुधवार	20	
4	सृजनात्मकता	गुरुवार	20	
5	खेलकूद, योग, स्काउट, रेडक्रास	शुक्रवार-षनिवार	20	

उपरोक्त क्षेत्रों के मूल्यांकन बिन्दु निम्नानुसार हैं –

1. सहभागिता

2. विधान रूप प्रस्तुति

3. आत्मविश्वास

4. मौलिकता

ग्रेड देने का तरीका –

ए ग्रेड – उक्त चारों बिन्दु पाये जाने पर।

बी ग्रेड – उक्त तीन बिन्दु पाये जाने पर।

सी ग्रेड – दो बिन्दु पाये जाने पर।

डी ग्रेड – प्रथम बिन्दु पाये जाने पर।

ई ग्रेड – सहभागिता नहीं करने पर।

➤ व्यक्तिगत व सामाजिक गुण – इसके अंतर्गत गुणों का मूल्यांकन किया जाये –

क्र.	क्षेत्र	निर्धारित अंक वर्ष भर के लिये	गतिविधि के दिन	मूल्यांकन उपकरण
1	नियमितता	20	वर्ष भर समय-समय पर	अवलोकन, चैक लिस्ट, पोर्टफोलियो एनेकडॉटल
2	समयबद्धता	20		
3	स्वच्छता	20		
4	अनुशासन / कर्तव्यनिष्ठता	20		
5	सहयोग की भावना	20		
6	दायित्व के प्रति संवेदनशीलता	20		
7	नेतृत्व की क्षमता	20		
8	सत्यवादिता	20		
9	ईमानदारी	20		
10	अभिवृत्ति	20		

➤ ग्रेड देने का तरीका –

पूर्ण अपेक्षित व्यवहार – ए ग्रेड

संतोशप्रद व्यवहार – बी ग्रेड

आंशिक अपेक्षित व्यवहार	—	सी ग्रेड
औसत अपेक्षित व्यवहार	—	डी ग्रेड
अपेक्षित व्यवहार नहीं—		ई ग्रेड

➤ उद्देश्य (Objectives)

प्रदत्त शोध निम्नांकित उद्देश्यों पर आधारित है :—

1. माध्यमिक शालाओं के विद्यार्थियों के सतत मूल्यांकन की स्थिति को जानना।
2. माध्यमिक शालाओं के विद्यार्थियों के व्यापक मूल्यांकन की स्थिति को जानना।
3. सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के तहत विषयवार प्रोजेक्ट कार्यों की प्रकृति का अध्ययन करना।
4. सतत एवं व्यापक मूल्यांकन प्रक्रिया के तहत प्रोजेक्ट कार्यों की स्थिति का अध्ययन करना।

प्रस्तुत शोध अध्ययन उद्देश्य आधारित है। निर्धारित उद्देश्यों के आधार पर ही शोध उपकरणों का निर्माण कर प्रदत्तों का संग्रह किया गया है। अतः इस शोध अध्ययन में परिकल्पनाओं के निर्माण एवं निरीक्षण की आवश्यकता अनुभूत नहीं की गई है।

➤ शोध क्षेत्र का परिसीमन (Limitation and delimitation of Study)

प्रस्तुत शोध हेतु निम्नलिखित सीमायें निर्धारित की गई हैं —

1. शोध अध्ययन भिण्ड, दतिया, गुना, ग्वालियर, मुरैना व शिवपुरी जिलों तक सीमित रखा गया है।
2. शोध अध्ययन प्रत्येक जिले के दो विकास खण्डों तक सीमित रखा गया है।
3. शोध अध्ययन जिले चयनित विकासखण्ड की माध्यमिक शालाओं तक सीमित है।
4. शोध अध्ययन में प्रत्येक जिले के चयनित विकासखण्ड से 10—10 माध्यमिक शालाओं को लिया गया है।
5. चयनित शालाओं के समस्त शिक्षकों को अध्ययन हेतु लिया गया है।

अध्ययन केवल विषयवार प्रोजेक्ट कार्य की प्रकृति एवं स्थिति के अध्ययन तक सीमित है।

➤ न्यादर्श (Sample)

न्यादर्श इकाई : प्रस्तुत शोध अध्ययन में यादृच्छिक प्रतिचयन विधि से न्यादर्श का चयन निम्नानुसार किया गया है :—

चयनित न्यादर्श का विवरण

स.क्र.	जिला	चयनित विकास खण्ड / संख्या	माध्यमिक शालाओं की संख्या	शिक्षकों की संख्या
1.	भिण्ड	भिण्ड	10	चयनित शालाओं के समस्त शिक्षक / प्रधानाध्यापक
		अटेर	10	
2.	दतिया	दतिया	10	चयनित शालाओं के समस्त शिक्षक / प्रधानाध्यापक
		सेवड़ा	10	
3.	गुना	आरोन	10	चयनित शालाओं के समस्त शिक्षक / प्रधानाध्यापक
		चाचौड़ा	10	
4.	ग्वालियर	डबरा	10	चयनित शालाओं के समस्त शिक्षक / प्रधानाध्यापक
		भितरवार	10	

5.	मुरैना	मुरैना	2	10	चयनित शालाओं के समस्त शिक्षक / प्रधानाध्यापक
		पोरसा		10	
6.	शिवपुरी	शिवपुरी	2	10	चयनित शालाओं के समस्त शिक्षक / प्रधानाध्यापक
		करैरा		10	
		योग	12	120	

➤ उपकरण (Tools)

प्रस्तुत शोध अध्ययन में समंक संकलन के लिये उपकरण के रूप में प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है। शाला के विद्यार्थियों में सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के तहत प्रदत्त विषयवार प्रोजेक्ट कार्यों की प्रकृति एवं स्थिति को जानने के लिये अवलोकन प्रपत्र तथा शिक्षक/प्रधानाध्यापक हेतु प्रश्नावली तैयार की गई, जिनका उपयोग समंक संकलन में शोध उपकरण के रूप में किया गया है। शोधार्थी द्वारा निम्नलिखित प्रश्नावलियाँ एवं अवलोकन प्रपत्र तैयार किये गये हैं –

- शाला के लिये अवलोकन प्रपत्र
- प्रधानाध्यापक/शिक्षक प्रश्नावली।

उक्त शोध उपकरण शासकीय शिक्षा महाविद्यालय ग्वालियर में तैयार किये गये हैं, तदुपरांत राज्य शिक्षा केन्द्र भोपाल में आयोजित शोध कार्यशाला में अनुमोदन के बाद इसका शोध अध्ययन में उपयोग किया गया है।

➤ प्रयुक्त सांख्यिकी (Used Statistics)

प्रस्तुत शोध अध्ययन में –

- अवलोकन प्रपत्र के आधार पर विद्यार्थियों में सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के तहत प्रदत्त विषयवार प्रोजेक्ट कार्यों की प्रकृति एवं स्थिति को ज्ञात किया गया और उन्हें स्तम्भ आरेखों द्वारा प्रदर्शित किया गया है। प्रधानाध्यापक/शिक्षक प्रश्नावली द्वारा प्राप्त अभिमतों का संकलित कर प्रतिशत के आधार पर उनका विश्लेषण किया गया और उनके अभिमतों को साधारण स्तम्भ आरेखों द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

➤ मुख्य सम्प्राप्तियाँ, निष्कर्ष एवं सुझाव (Main Findings, Conclusion and Suggestions)

सम्पूर्ण अनुसंधान कार्य पर एक विहंगम दृष्टि डालते हुए यह जानने का प्रयास किया जा रहा है कि पूर्व निश्चित लक्ष्यों तथा उद्देश्यों की किस सीमा तक प्राप्ति हुई है, अर्थात् प्रस्तुत शोध की प्रमुख उपलब्धियाँ क्या हैं, तथा इस दिशा में आगे कौन-2 सी सम्भावनाएँ हैं इस पर प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तुत शोध “माध्यमिक शाला के विद्यार्थियों में सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के तहत प्रदत्त विषयवार प्रोजेक्ट कार्यों की प्रकृति एवं स्थिति का अध्ययन” में उद्देश्यवार प्राप्त मुख्य सम्प्राप्तियाँ निम्नानुसार हैं :—

प्रथम उद्देश्य – माध्यमिक शालाओं के विद्यार्थियों के सतत मूल्यांकन की स्थिति को जानना।
सम्प्राप्तियाँ—

- विद्यार्थियों का मूल्यांकन केवल 54.17% विद्यालयों में सी.सी.ई. के अनुसार होना पाया गया।
- 60.83% विद्यालयों में ही मूल्यांकन अभिलेख विधिवत संधारित हैं।
- 26.67% विद्यालयों के प्रश्न-पत्र ब्लू प्रिंट के आधार पर पाये गये।
- 20% विद्यालयों में ही मूल्यांकन उपरांत उत्तर पुस्तिकाओं का विश्लेषण किया जाता है।
- 18.33% विद्यालयों में उत्तर पुस्तिकाओं के विश्लेषण पश्चात् विशेष शिक्षण कराया जाता है।

द्वितीय उद्देश्य—माध्यमिक शालाओं के विद्यार्थियों की व्यापक मूल्यांकन की स्थिति को जानना।

सम्प्राप्तियाँ —

- विद्यालयों में साहित्यक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के संचालन की स्थिति क्रमशः 48.33% एवं 60% हैं जोकि संतोषजनक हैं।
- केवल 20.83% विद्यालयों में ही विज्ञान से संबंधित गतिविधियाँ संचालित होना पाया गया है।
- केवल 44.17% विद्यालयों में ही खेलकूद, योग, रेडक्रास/स्काउट की गतिविधियाँ विद्यार्थियों से करायी जाती हैं।
- 42.50% विद्यार्थियों की नियमित उपस्थिति संतोषजनक नहीं पायी गयी।
- 49.17% विद्यालयों में विद्यार्थियों एवं शिक्षकों में समयबद्धता की स्थिति संतोषजनक नहीं पायी गयी।
- केवल 59.17% विद्यालयों के विद्यार्थियों में अनुशासन व सहयोग की भावना की स्थिति संतोषजनक पायी गयी।
- 35% विद्यालयों के विद्यार्थियों में पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता एवं 36.67% विद्यालयों के विद्यार्थियों में नेतृत्व की क्षमता परिलक्षित हुई है।
- 65% विद्यार्थियों में सत्यवादिता, 66.67% विद्यार्थियों में ईमानदारी व अभिवृत्ति की स्थिति संतोषजनक पायी गयी। अर्थात् व्यापक मूल्यांकन की स्थिति में सुधार के और प्रयास की आवश्यकता है।

तृतीय उद्देश्य—सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के तहत विषयवार प्रोजेक्ट कार्यों की प्रकृति का अध्ययन करना।

सम्प्राप्तियाँ —

- 23.82% शिक्षक विद्यार्थियों को विषयवार प्रोजेक्ट कार्य का आबंटन करते हैं और विद्यार्थियों के साथ चर्चा करके प्रोजेक्ट कार्य की योजना बनाते हैं।
- 16.75% शिक्षक योजना बनाकर प्रोजेक्ट कार्य की स्थिति का आकलन करते हैं और विद्यार्थियों से दिये गये प्रोजेक्ट कार्य का प्रस्तुतीकरण कराते हैं।

उपर्युक्त विश्लेषणात्मक विवेचन से स्पष्ट है कि सिद्धांततः शिक्षक एवं प्रधान अध्यापक माध्यमिक शालाओं में विद्यार्थियों से विषयवार प्रोजेक्ट कार्य के क्रियान्वयन से विद्यार्थियों में सह शैक्षिक एवं व्यक्तिगत व सामाजिक गुणों का विकास होना स्वीकार करते हैं, किन्तु व्यावहारिक एवं प्रायोगिक रूप से माध्यमिक शालाओं में प्रोजेक्ट कार्य के क्रियान्वयन की स्थिति नगण्य है और इसकी प्रकृति का भी वैज्ञानिक स्वरूप परिलक्षित नहीं होता है।

चतुर्थ उद्देश्य—सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन प्रक्रिया के तहत प्रोजेक्ट कार्यों की स्थिति का अध्ययन करना।

सम्प्राप्तियाँ —

- 22.50% विद्यालयों में प्रोजेक्ट कार्य की स्थिति अच्छी है, 25.83% शालाओं में स्थिति संतोषजनक और 51.67% शालाओं में ठीक नहीं है।
- समूह में कार्य करने की स्थिति 28.33% विद्यालयों में अच्छी, 38.33% विद्यालयों में संतोषजनक और 33.33% विद्यालयों में ठीक नहीं है।
- 20.83% विद्यालयों के विद्यार्थियों में समस्या समाधान का गुण है, 29.17% विद्यालयों के छात्रों की स्थिति संतोषप्रद है और 50% शालाओं के छात्रों में इस गुण का विकास नहीं है।
- 13.33% शालाओं के छात्रों में स्वयं करके सीखने की लगन देखी गई, 22.50% शालाओं के छात्रों में स्थिति संतोषप्रद है जबकि 64.17% शालाओं के छात्रों में इस गुण का अभाव है।
- 16.67% विद्यालयों के छात्रों में प्रोजेक्ट कार्य के प्रति समझ एवं रुचि है, 23.33% शालाओं के छात्रों की

स्थिति संतोषप्रद है जबकि 60% शालाओं के विद्यार्थियों में इसका अभाव है।

उपर्युक्त विश्लेषणात्मक विवेचन से स्पष्ट है कि विद्यालयों में प्रोजेक्ट कार्य की स्थिति संतोषजनक नहीं है।

निष्कर्ष :- प्रस्तुत शोध प्रबंध में “माध्यमिक शाला के विद्यार्थियों में सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के तहत प्रदत्त विषयवार प्रोजेक्ट कार्यों की प्रकृति एवं स्थिति का अध्ययन” के अंतर्गत संकलित प्रदत्तों के विश्लेषण से प्राप्त संप्राप्तियों के आधार पर कहा जा सकता है कि शिक्षक सैद्धान्तिक रूप से माध्यमिक शालाओं में विषयवार प्रोजेक्ट कार्य के क्रियान्वयन से विद्यार्थियों में सहशैक्षिक (साहित्यिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक एवं खेलकूद, योग, स्काउट/रेडक्रास) तथा व्यक्तिगत एवं सामाजिक गुणों (नियमितता, समयबद्धता, स्वच्छता, अनुशासन/कर्तव्यनिष्ठता, सहयोग की भावना, पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता, नेतृत्व क्षमता, सत्यवादिता, ईमानदारी एवं अभिवृत्ति) का विकास होना स्वीकार करते हैं किन्तु शोधकर्ता द्वारा किये गये सूक्ष्म अवलोकन के दौरान परिलक्षित हुआ है कि व्यावहारिक एवं प्रायोगिक रूप से माध्यमिक शालाओं में प्रोजेक्ट कार्य की प्रकृति एवं स्थिति संतोषजनक नहीं है।

सुझाव (Suggestions) –

1. विद्यार्थियों की विद्यालय में नियमित उपस्थिति के लिये शिक्षकों व पालकों को प्रयास करने चाहिये यह प्रयास केवल कागजी न होकर ठोस होना चाहिये।
2. शिक्षकों को चाहिये कि वे स्वयं एवं विद्यार्थियों में खोजने, स्वयं करके सीखने व समूह में कार्य करने की प्रवृत्ति का विकास करें।
3. शिक्षक को विद्यार्थियों को वे ही प्रोजेक्ट कार्य देने चाहिए जो पूर्वज्ञान व कक्षा स्तरानुसार दक्षताओं पर आधारित हों एवं दैनिक जीवन से जुड़े हों।
4. सतत् और व्यापक मूल्यांकन के प्रति जागरूकता लाने हेतु शिक्षकों, अभिभावकों और बच्चों के लिए कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिए।
5. सतत और व्यापक मूल्यांकन के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए सुनियोजित मॉनीटरिंग और सुपरविजन प्रणाली का विकास करना चाहिए।
6. प्रोजेक्ट कार्य पर शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण कार्यशालाओं का आयोजन किया जाना चाहिए।
7. बच्चों द्वारा तैयार किये गये प्रोजेक्ट कार्यों की शाला, संकुल, जनपद व जिला स्तर पर प्रदर्शनी लगाई जानी चाहिए तथा सभी स्तरों पर ग्रेडिंग व पुरस्कार दिये जाने चाहिए।
8. शिक्षक कंटनजेंसी का उपयोग प्रोजेक्ट कार्य में शिक्षक कर सकते हैं।
9. राज्य शिक्षा केन्द्र स्तर से एक मॉड्यूल प्रोजेक्ट कार्य के लिये प्रकाशित होना चाहिये।
10. शैक्षिक पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रोजेक्ट कार्य तथा सह-शैक्षिक क्षेत्रों से संबंधित साहित्य समय समय पर प्रकाशित किया जाना चाहिये।

(10) कार्यवाही बिन्दु (Action Points)

स.क्र.	कार्यवाही हेतु विंदु	कार्यवाही का विवरण
1.	अभिभावक व बच्चों में सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के प्रति जागरूकता	राज्य, जिला एवं शाला स्तर से
2.	सतत और व्यापक मूल्यांकन का प्रभावी क्रियान्वयन	राज्य, जिला एवं शाला स्तर से
3.	माध्यमिक विद्यालयों में प्रोजेक्ट कार्यों का प्रभावी क्रियान्वयन	शाला स्तर से



बुद्ध देशना के संवाहक (सम्राट अशोक तक)

डॉ० ज्योति सिंह गौतम

असिस्टेंट प्रोफेसर

राजकीय महिला महाविद्यालय, झॉसी (उ०प्र०)

बुद्ध देशना का तात्पर्य है बुद्ध—वाणी, बुद्ध उपदेश, बुद्ध संदेश आदि और वाहक शब्द का आशय है बुद्ध संदेश को रचने की स्मृति पटल में समाहित करके, स्मरण करके, कण्ठाग्र करके जनता में ले जाने वाले।

मूल विषय पर कुछ कहने के पूर्व इस विषय को भी स्पष्ट करना समीचीन समझती हूँ कि बुद्ध उपदेशों को कण्ठाग्र करने की क्या आवश्यकता थी? अविलम्ब लिपिवद्ध क्यों नहीं किया गया? बुद्ध दर्शन पर बहुत शोधात्मक कार्य हुआ है? परन्तु मेरी दृष्टि में इस विषय पर विद्वानों की अपेक्षाकृत कम दृष्टि पहुंची है। उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर ऐसा प्रतीत हो रहा है कि बुद्ध को जितना परिश्रम 'बोधत्व' प्राप्त करने में करना पड़ा उससे अधिक श्रम अपने लोकोपकारी संदेश को जन साधारण के अंतर्गत तक संप्रेषण में करना पड़ा। ऐसा क्यों करना पड़ा? पालि महा व्याकरण के सर्जक डा० भिक्षु जगदीश कश्यप बताते हैं कि "उस समय वैदिक भाषा बोल-चाल की भाषा थी। वैदिक काल में आर्यों का जहाँ-जहाँ प्रसार हुआ वहाँ-वहाँ यह भाषा पहुंची। उस समय भाषा ने व्याकरण की बेड़ी नहीं पहनी थी। बोलने के समय लोगों को गलती हो जाने का डर नहीं लगता था। भावों की अधिक से अधिक अभिव्यंजना ही भाषा का अभिप्राय था।" उन्होंने आग्र लिखा कि "बोल-चाल की भाषा में रूपों की विभिन्नता हृदय से ज्यादा बढ़ गयी। यहाँ तक कि समाज को दैनिक व्यवहार में बड़ी कठिनाई पड़ने लगी। लोगों को अनुभव होने लगा कि यदि भाषा की इस उच्छृंखलता को रोक कर उसमें कुछ नियमन न किया गया तो कुछ समय के उपरान्त सामाजिक जीवन संभव हो जायेगा।"² भावाभिव्यक्ति का माध्यम भाषा होती है। भाषा की इस संक्रामक स्थिति में निश्चित ही समाज का 'जन साधारण' वर्ग किसी नवीन 'दर्शन' या संदेश को नहीं समझ सकता था। बुद्ध का उद्देश्य था कि उनका संदेश केवल प्रबुद्ध वर्ग तक ही सीमित न रह जाय। उनकी अपेक्षा थी कि उनका संदेश केवल प्रबुद्ध वर्ग तक ही सीमित न रह जाय। उनकी अपेक्षा थी कि उनका संदेश सूरज की किरण की तरह गरीब की झोपड़ी से लेकर अमीर के प्रासाद तक समान रूप से पहुंचे।

ऐसा भी नहीं था कि उस समय लिपिवद्ध करने की व्यवस्था नहीं थी। दीध निकाय में इसका उल्लेख है कि बुद्ध उपदेशों को वैदिक भाषा में छन्दबद्ध करके व्यवस्थित करने की बात कुछ भिक्षुओं ने इस प्रकार की थी—

"उस समय यमेड़-यमेड़ते नाम के दो भिक्षुओं ने बुद्ध से कहा, "भन्ते इस समय नाना नाम- गोत्र, सम्प्रदाय के लोग प्रब्रजित हो रहे हैं। वह अपनी भाषा में बुद्ध वचन को कहकर दूषित कर रहे हैं। अच्छा हो भन्ते हम बुद्ध वचन को छन्द में बना दें।" (छन्द-वैदिक भाषा के कठिन श्लोक)

"बुद्ध ने फटकारते हुए कहा-भिक्षुओ! यह अनुचित है- बुद्ध वचन को छन्द में न करना चाहिए, जो करेगा वह अपराधी होगा। भिक्षुओं अनुमति देता हूँ बुद्ध वचन अपनी भाषा में (सकाय निरुक्तियाँ) सीखने की।"³

"बुद्ध घोषाचार्य ने अपनी अट्ट कथा में "सकाय निरुक्तियाँ" (अपनी भाषा में) का अर्थ "मागधी भाषा में" बताया है।"⁴ उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट हो गया है कि बुद्ध ने भिक्षुओं को अपनी-अपनी भाषा में बुद्ध संदेश सीखने की इजाजत क्यों दी थी और वैदिक भाषा में छन्दबद्ध करना क्यों अनर्थ माना था? यदि बुद्ध ने अपने संदेशों को अपनी-अपनी भाषा में सीखने का प्रतिबंध न लगाया होता तो निश्चित ही बुद्ध वाणी लोकवाणी नहीं बन सकती थी। क्लिष्ट वैदिक भाषा के छन्दों में बुद्ध संदेश परिणित होने से वह विद्वानों तक ही सीमित रह जाते।

बुद्ध देशना के भण्डागारिक :-

बुद्ध देशना का भण्डागारिक वही हो सकता है, जो अहिर्निश बुद्ध के साथ रहा हो। उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर ज्ञात होता है कि बुद्ध के असंख्य भिक्षु थे जो उनके उपदेशों को सुनकर और उनको कंठाग्र कर समाज में मानव के कल्याणार्थ सम्प्रेषित कर रहे थे। इन भिक्षुओं में उनके सर्वश्रेष्ठ शिष्य थे सारिपुत्र।

धर्म सेनापति सारिपुत्र :-

तथागत बुद्ध के प्रमुख शिष्यों में से एक थे। “वे धर्म सेनापति इसलिए कहे जाते थे कि महाविजयी बुद्ध ने जिस धर्म साम्राज्य को स्थापित किया। सम्यक समबुद्ध ने जिस अनुत्तर धर्मचक्र को प्रवर्तित किया, उसे अनुप्रवर्तित (संचालित, प्रचारित) करते हुए सारिपुत्र ही विचरण करते थे। इसलिए उनकी ‘धर्मसेनापति’ संज्ञा साकि ही थी। बुद्ध यदि चक्रवर्ती हैं तो सारिपुत्र उनके सेनापति।”⁵

तथागत बुद्ध सारिपुत्र की बहुत प्रशंसा करते थे। एक बार भिक्षुओं की एक बड़ी सभा में सारिपुत्र को महाप्रज्ञों में अग्रणी उदघोषित किया (एतद्गम महापत्र) प्रज्ञा में बुद्ध सारिपुत्र को केवल अपने से नीचा मानते थे।⁶ मज्झिम निकाय में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि सारिपुत्र को तथागत बुद्ध भिक्षु धर्म का परम आदर्श मानते थे। “भिक्षु यदि किसी के विषय में यह ठीक से कहा जा सकता है कि इसे आर्यशील में स्वामित्व प्राप्त है, पारमिता प्राप्त है, आर्य समाधि में स्वामित्व प्राप्त है तथा परिपूर्णता प्राप्त है तो केवल सारिपुत्र के विषय में ही।” इतना ही नहीं “भिक्षुओं! यदि किसी के विषय में यह ठीक से कहा जा सकता है कि यह मुख से उत्पन्न धर्म निर्मित, धर्म दामाद (धर्म का वारिस), धनादि भागों से अलिप्त, औरस (हृदय से उत्पन्न) पुत्र है तो केवल सारिपुत्र के लिए ही ठीक है। भिक्षुओं! तथागत द्वारा चलाये धर्मचक्र को सारिपुत्र ठीक से अनुप्रवर्तित कर रहा है।”⁷

ऐसे ही बौद्ध वाङ्मय में सारिपुत्र की सर्वश्रेष्ठता के अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। सारिपुत्र का साक्ष्यों के आधार पर जीवन वृत्त इस प्रकार है— सारिपुत्र का जन्म राजगृह नगर के समीप उपतिष्ठ नामक ग्राम में जिसको नालक ग्राम भी कहा जाता है, ब्राह्मण कुल में हुआ था। इनके पिता का नाम बंगत और माता का नाम रूपसारि था। संस्कृत ग्रंथों में सारिपुत्र को ही शालिपुत्र शारिसुत और शारद्वती पुत्र कहा गया है। सारिपुत्र चार भाई थे। सारिपुत्र सबसे बड़े थे, चाला, उपचाला, और शिशूप चाला। सभी भाई बहनों ने प्रव्रजित होकर बुद्ध के धर्म चक्र प्रवर्तन में लीन रहे। सारिपुत्र बुद्ध से उम्र में बड़े थे। बुद्धचर्या में ऐसा उल्लेख मिलता है कि अंतिम समय में उन्होंने बुद्ध से कहा— “भते भगवान् अनुज्ञा सुगत अनुज्ञा दे, मेरा परिनिर्माण काल है। आयु संस्कार समाप्त हो चुका है।” भते नालक ग्राम में जन्म ग्रह है वहीं परिनिर्वाण करूंगा। “सारिपुत्र जिसका काल समझे वैसा कर (यस्स दानि त्वं सारिपुत्र काल (मज्झसीति)।.... “यह कह हाथ जोड़कर जब तक भगवान् नजर के सामने थे, विनापीठ दिखाये सामने मुख रखकर ही चलकर, बन्दना कर सारिपुत्र चल दिये। भिक्षु विलखकर चिल्लाने लगे, “स्थविर किसके हाथों में शास्ता को सौंपकर जा रहे हो।” सारिपुत्र का उनके लिए यही अंतिम संदेश था, “सबका यही गन्तव्य मार्ग है।” आवुसों! दशबल बुद्ध के विषय में लापरवाही मत करना।”

सारिपुत्र ने बुद्ध देशना को प्रकाश की भांति घर-घर तक भेजने के बुद्ध के संकल्प को पूरा करने में अपने जीवन को अर्पित तो किया ही था, साथ ही बुद्ध द्वारा प्रतिपादित दर्शन की जिसे उन्होंने कंठाग्र किया था अनेक पात्र व्यक्तियों को सुनाकर, उसे समझाकर समाज में इस दर्शन की धारा को निरंतर प्रवहमान रहने का यथा शक्ति प्रयास किया।

महामोदगल्यायन :-

नालक गांव के पास एक दूसरा गांव था, जिसका नाम था कोलित ग्राम। इस गांव का एक छोटा बालक सारिपुत्र का बड़ा घनिष्ठ मित्र था। इसका नाम था महायोदगल्यायन।

ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि दोनों की सात पीढ़ियों से घनिष्ट दोस्ती चली आ रही थी। इसलिए दोनों बालकों में घनिष्टता होना स्वाभाविक था। दोनों एक ही दिन पैदा हुए थे इसकी भी साक्ष्यों द्वारा पुष्टि होती है। दोनों एक साथ प्रव्रजित हुए यह भी सत्य है।¹⁰ मोदगल्यान आगे चलकर बुद्ध के दूसरे नम्बर के शिष्य हुए। सच्चविंगसुत्त (मज्झिम निकाय 3/4/11) में बुद्ध कहते हैं “भिक्षुओं! सारिपुत्र और मोदगल्यायन की सेवा करो, उनके पास जाओ। भिक्षुओं! सारिपुत्र और मोदगल्यायन आर्य सत्त्यों का विस्तारपूर्वक व्याख्यान कर सकते हैं, प्रकाशन कर सकते हैं। भिक्षुओं! जनमदाता की तरह सारिपुत्र हैं जन्म जो पैदा हो गये को पोसने वालों की तरह मोदगल्यायन।”¹¹

सारिपुत्र और मोदगल्यायन से बुद्ध कितने प्रभावित थे इस कथा से इसकी हकीकत स्थिति का पता चलता है। एक बार कुछ नये प्रव्रजित भिक्षु जो सारिपुत्र की अध्याक्षता में थे, शोर मचा रहे थे। शास्ता को यह बिल्कुल पसंद नहीं था। उन्होंने उन्हें बाहर निकल जाने को कहा सारिपुत्र भी बाहर निकल गये बाद में सारिपुत्र को बुलाकर पूछा यह बस उन्हें कैसा लगा? तो सारिपुत्र ने कहा “भंते मुझे ऐसा लगा कि भगवान भिक्षु संघ को निकाल कर अब निश्चिन्त हो जीवन में सुखपूर्वक बिहार करेंगे। शास्ता ने प्रेम विवश वाणी में कहा। ठहर सारिपुत्र ठहर। फिर ऐसा विचार मन में न लाना। महामोदगल्यायन से भी जब ऐसा ही पूछा तो उन्होंने कहा भंते मुझे ऐसा लगा था कि भगवान ने भिक्षु संघ को निकाल दिया अब आयुष्मान सारिपुत्र और मैं ही संघ को धारण करूंगा। शास्ता ने मोदगल्यायन को उत्तर का अनुमोदन करते हुए कहा, “साधु मोदगल्यायन। साधु मोदगल्यायन चाहें भिक्षु संघ को मैं धारण करूं, चाहे सारिपुत्र और मोदगल्यायन एक ही बात है।”¹²

इस दृष्टान्त से सिद्ध हो रहा है कि बुद्ध सारिपुत्र और महामोदगल्यायन को अपने ही सतर का समझते थे। मोदगल्यायन भी सारिपुत्र की भांति बुद्ध की धर्म देशना के रेष्ठ सम्वाहकों में से एक थे। या कहा जाये कि बुद्ध के बाद सारिपुत्र और मोदगल्यायन ही बुद्ध धर्म के आधार स्तम्भ थे।

महामोदगल्यायन का भी बुद्ध के परिनिर्वाण हो गया था। मिलिदि प्रश्न से ऐसा ज्ञात होता है। बुद्ध कहते हैं भिक्षुओं मेरे ऋद्धिमान भिक्षु श्रावकों में महामोदगल्यायन सबसे श्रेष्ठ है, इस पर भी वे चोरों के बीच में पड़कर डण्डों से कूटे जाकर सिर फट जाने, हड्डियों के चूर-चूर हो जाने तथा मास और नसों के पिस जाने से परिनिर्वाण को प्राप्त हुए थे।¹³

सारिपुत्र की भांति महामोदगल्यायन के बौद्ध साहित्य में और भी अनेक साक्ष्य उपलब्ध हैं, जो स्पष्ट करते हैं कि बुद्ध के वचनों को श्रवण कर उन्हें जन-जन तक पहुंचाने में और अपनी बौद्धिक क्षमता से उनके मूल भाव को विकृत होने से बचाने में अग्रणी रहे।

भण्डागारिक-भंते आनन्द :-

आनन्द भी भगवान बुद्ध के अत्यंत नजदीकी शिष्यों में माने जाते थे। आनन्द बुद्ध के सगोत्र भाई थे। कपिल वस्तु में शुद्धोधन के छोटे भाई अमृतौदन के आनन्द पुत्र थे। यद्यपि बुद्ध इस पारिवारिक सम्बन्धों से दूर जा चुके थे। बुद्धत्व प्राप्ति के उपरान्त दूसरे वर्ष बुद्ध कपिल वस्तु के समीप अनुपिया कस्बे में उपदेश कर रहे थे। शाक्य कुमारेणों को भी यहां बुद्ध के आने का संदेश मिला।

आनन्द की दीक्षा :-

विनय पिटक के चुल्लवग्ग में उल्लेख मिलता है कि इस अवसर पर “भदिय, शाक्य राजा अनुरुद्ध, आनन्द, भृगु, किम्बिल, देवदत्त और सातवां उपालि हज्जाम।..... वह दूर तक जा सेना को लौटा, दूसरे के राज्य में पहुंच, आभूषण उतार, उपरने में गठरी बांध उपालि से यों बोले-“भंते उपालि तुम लौटो।”¹⁴

उपालि आभूषणों का मोह छोड़ राजकुमारों के पीछे प्रव्रजित होने हेतु बुद्ध के पास चल दिये।

आनंद का जाति व्यवस्था का प्रहार :-

भारतीय वाङ्मय में सर्व प्रथम आनंद के नेतृत्व में शाक्य कुमारों ने जाति व्यवस्था पर प्रहार किया बौद्ध वाङ्मय के मूल ग्रन्थ विनय पिटक के चुल्लवग्ग से इस तथ्य की पुष्टि होती है- “भंते हम शाक्य अभिमानी होते हैं। यह उपालि नाई चिरकाल तक हमारा सेवक रहा है। इसे भगवान पहले प्रव्रजित कराये। जिससे हम इसका अभिवादन, प्रत्युत्थान (सम्मानार्थ खड़े होकर) हाथ जोड़े इस प्रकार हम शाक्यों का शाक्य होने का अभिमान मर्दित (चूर-चूर) होगा।”

“तब बुद्ध ने उपालि को पहले प्रव्रजित कराया पीछे उन शाक्य कुमारों को।”¹⁵

आनंद को भिक्षु संघ धर्म भण्डागारिक (धर्म भण्डागारिक) अर्थात् धर्म का भण्डारी कहकर पुकारता था। आनंद बहुश्रुत थे। अधिक सुनने वाले पण्डित थे। भगवान बुद्ध के सतत साथी होने के नाते बुद्ध वचन सबसे अधिक उन्होंने सुने थे और उन्हें अपनी स्मृति में सुरक्षित भी रखा था। कहा जाता है कि आनंद की स्मृण शक्ति बहुत तेज थी जो कुछ भगवान बोलते उसको वह याद कर लेते थे। ऐसा उल्लेख मिलता है कि एक से लेकर 60 हजार पंक्तियों की 15 हजार गाथाओं (श्लोकों) को भी सुनकर याद कर लेते थे। इसी कारण बुद्ध ने उन्हें अपने स्मृति मान, और बहुश्रुत भिक्षु शिष्यों में प्रधान कहा था। भिक्षुओं मेरे बहुश्रुत स्मृतिमान गतिमान और धृतिमान, भिक्षु शिष्यों में यह आनंद ही सर्वश्रेष्ठ है।¹⁶

आनंद के स्मृतिमान और बहुश्रुत होने से ही बौद्ध संघ में विशेष आदर नहीं हो सकता था इसलिए सारिपुत्र को उन्होंने धम्म का सेनापति कहा। आनंद में भण्डागारिक होने के आलावा और भी विशेष गुण थे, किन्तु विपश्यना में वे उतने बड़े-चड़े नहीं थे, जितने सारिपुत्र मोदगल्यायन, महाकश्यप या अन्य कई शिष्य। विनयपिटक में इस तथ्य की पुष्टि का आधार उपलब्ध है-

प्रथम संगीत की कार्यवाही के समय का उल्लेख इस प्रकार है- “भंते! यह आनंद यद्यपि शैक्ष्य (अन-अर्हत्) है, तो भी राग द्वेष, मोह, भय, कुमार्ग आदि से दूर है। उन्होंने भगवान के पास बहुत धर्म प्राप्त किया है। इसलिए भंते स्थविर आयुमान को भी चुने लें। तब आयुष्मान महाकश्यप ने भंते आनंद को भी चुन लिया।¹⁷

आनंदभण्डागारिक कैसे बनें ? :-

तथागत बुद्ध ने एक बार कहा, भिक्षुओं अब मैं वृद्ध हो गया हूँ। भिक्षुओं अब मेरे लिए एक परिचारक खोजो सारिपुत्र सहित सभी भिक्षुओं ने अपनी सेवाएँ अर्पित कीं, परन्तु बुद्ध ने नहीं स्वीकारा। आनंद ने सेवा के लिए स्वयं अपने को प्रसूत नहीं किया। आनंद का कहना था कि मांग कर सेवा का अधिकार पाया तो क्या पाया? भगवान चाहें तो स्वयं कहें। भगवान ने कहा! आनंद स्वयं ही जानकार मेरी सेवा करेगा। आनंद भी कम नहीं थे। तमाम शर्तों के साथ एक अदभुत शर्त रखी जिस कारण वह भण्डागारिक बनें। वह चाहते थे बुद्ध की देशना (उपदेश) मेरी उपस्थिति में दिए जाये, जिससे उनको कंटाग्र कर लोग कल्याण हेतु उन्हें संगृहीत किया जा सके। आनंद की इस तमन्ना को बुद्ध ने समझकर शत्रु स्वीकार कर ली शर्त यह थी “मेरी अनुपस्थिति में भी धर्मोपदेश आप जहां देंगे, उसे आकर मुझे भी अवश्य सुनाना होगा।”¹⁸ इस समय से लेकर भगवान के महापरिनिर्वाण के समय तक अर्थात् ठीक 25 वर्ष तक छाया की तरह अनुगमन करते हुए आनन्द बुद्ध की सेवा करते रहे। बुद्ध की सेवा को उन्होंने अपने जीवन का व्रत बना लिया था। रात में सोना भी इस कर्मयोगी को कहां था। भगवान महावीर का पासा में शरीर छोड़ने की सूचना सर्व प्रथम बुद्ध को आनंद ने दी थी।

थेर गाथा में एक ऐसा उल्लेख मिलता है, जिससे भंते आनन्द का अपार ज्ञान भण्डारी होना सिद्ध होता है, भगवान बुद्ध के साथ आनंद की इतनी अधिक धर्म चर्चा हुई कि अत्यंत संक्षेप में उसका बखान करना बहुत कठिन है। सुत्त पिटक के प्रथम चार निकायों में ऐसा मैंने सुना (एवं मैं सुत) इस प्रकार जो पहली आवाज सुनायी देती है वह आनंद की ही है। ऐसा हमें जानना चाहिए। कहा जाता है कि 82000 धर्म उपदेश आनंद ने स्वयं भगवान

से सुने थे और 2000 अनय शिष्यों से।¹⁹

भिक्षु आनंद के सम्बन्ध में सम्पूर्ण बौद्ध साहित्य में ऐसे अनेक साक्ष्य उपलब्ध हैं, जो यथार्थ में उनको बुद्ध वचनों को सर्वश्रेष्ठ संग्रहकर्ता सिद्ध करता है।

महाकाश्यप :-

सारिपुत्र, महामोगदल्यायन के समकक्ष ही बुद्ध के शीर्ष शिष्यों में महाकाश्यप की गणना होती है। बौद्ध वाङ्मय में महाकाश्यप की भी धर्म देशना के संग्रहण और प्रसारण में वही भूमिका समाहित नजर आती है, जो सारिपुत्र महामोगदल्यायन तथा आनंद की थी। सारिपुत्र और महामोगदल्यायन के परिनिर्वाण के उपरान्त साक्ष्यों से यह परिलक्षित हो रहा है कि बुद्ध के अंतिम समय आनंद और महाकाश्यप ही सबसे नजदीक थे। तथागत के परिनिर्वाण के समय की महाकाश्यप की महत्वपूर्ण स्थिति का उल्लेख 'दीर्घनिकाय' के 'महापरिनिबब्वान सुत' में उपलब्ध होता है। इसके अनुसार "तथागत के शरीर को उस समय चार मल्ल प्रमुख शिर से नहाकर, नया वस्त्र पहिन कर, भगवान की चिता को (चंदन आदि से) लेप करना चाहते थे। तब कुशीनारा के मल्लों ने आयुष्मान अनरुद्ध से पूछा क्या कारण है कि जिससे चार मल्ल प्रमुख नहीं लेप कर सकते हैं?"²⁰ अनरुद्ध भिक्षुओं से कहते हैं कि "आयुष्मान महाकाश्यप पांच सौ भिक्षुओं के महाभिक्षु संघ के साथ पावा और कुशीनारा के बीच रास्ते में आ रहे हैं। भगवान की चिता जब तक न जलेगी, जब तक आयुष्मान महाकाश्यप स्वयं भगवान के चरणों को शिर से बंदना न कर लेंगे।" "आयुष्मान महाकाश्यप और उन पांच सौ भिक्षुओं के बंदना कर लेते ही, भगवान की चिता स्वयं जल उठी।"²¹

महाकाश्यप की श्रेष्ठता का एक और महत्वपूर्ण साक्ष्य विनय पिटक के चुल्लवग्ग में समाहित है। इस साक्ष्य से प्रतीत होता है कि महाकाश्यप की साधना और अद्वितीय ज्ञान भण्डारण की क्षमता उनमें निहित थी। बुद्ध के शीर्ष शिष्यों में शामिल होने के वह पात्र थे। विनय पिटक में उल्लेख है कि "बुद्ध परिनिर्वाण के उपरान्त बुद्ध संदेशों में भिन्नता आने लगी थी। इस भिन्नता को दूर करने हेतु 'महाकाश्यप ने श्रेष्ठ भिक्षुओं से कहा कि 'अच्छा हो आवुसो! हम धम्म और विनय का संगायन-संपूर्ण श्रेष्ठ भिक्षु जिन्होंने बुद्ध वचन सुने और अपने अंतवश में समाहित किए वह एकत्रित होकर एक मत से बुद्ध के यथार्थ परक उपदेशों का संग्रह करें। सामने अधर्म प्रकट हो रहा है, धर्म हटाया जा रहा है, अविनय प्रकट हो रहा है, विनय हटाया जा रहा है। विनयवादी हीन हो रहे हैं।"²²

महाकाश्यप प्रथम संगीति के प्रमुख बने :-

महाकाश्यप की इस पीड़ादायी वाणी ने भिक्षुओं के अंतश को झकझोरा और उन्होंने महाकाश्यप को अधिकारी मानकर सर्वसम्मति से अनुरोध किया कि, "तो भंते, आप स्थविर भिक्षुओं को चुने।" तब आयुष्मान काश्यप ने एक कम पांच सौ अर्हत चुने। भिक्षुओं ने आयुष्मान महाकाश्यप से यह कहा! भंते यह आनंद यद्यपि अन-अर्हत हैं, तो भी राग, द्वेष, मोह, भय, कुकृत्य से विरत हैं। उन्होंने भगवान के पास बहुत धर्म और विनय प्राप्त किया है, इसलिए भंते स्थविर आनंद को भी चु लें।"²³ फिर आनंद स्थविर ने भिक्षुओं के बार-बार कहने पर संगीति में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया। क्योंकि उनके बिना वह हो नहीं सकती थी।"²⁴ संगीति के प्रारम्भ होने के पूर्व आनंद अर्हत हो चुके थे।²⁵

महाकाश्यप ने भिक्षु संघ का अनुरोध स्वीकार कर आनंद उपालि सहित 500 उच्चकोटि के भिक्षुओं की संगीति का आयोजन किया। यह संगीति रागृह के समीप सप्तपर्णि गुफा में आयोजित की गयी। "विनय जानने वालों में सर्वश्रेष्ठ उपालि ने उसका विनय पाठ किया, भगवान बुद्ध के बहुश्रुत शिष्यों में सर्वश्रेष्ठ धर्म के कोषाध्यक्ष आनंद से धर्म पूछा।" सर्वलोक हितैषी स्थविरों ने इस प्रकार सात मास में सारे संसार के हित के लिए धर्म संगीति समाप्त की। स्थविर महाकाश्यप ने सुगत के इस शासन को 5000 वर्ष तक स्थिर रहने के योग्य कर दिया।"²⁶

इस विश्लेषण से यह तथ्य उभर कर आ रहा है कि बुद्ध ने यद्यपि अपनी धर्म देशना का आधार सारिपुत्र

महामोदगल्यायन, महाकाश्यप और आनंद को माना है। उन्होंने अनेक स्थलों पर इन्हीं की श्रेष्ठता का वर्णन किया है। इसके उपरान्त बौद्ध साहित्य में उनके समकालीन संदेशवाहक महाकात्यायन, महाकोद्वित, महाकप्पिन, महाचुन्द, अनुरुद्ध, रेवत, उपालि, राहुल, आदि बहुत से स्थविर²⁷ चारिका (विचरण) करते हुए उनके उपदेशों को समान्य जनता हो या प्रबुद्ध वर्ग, सभी में समान रूप से सम्प्रेषित करते रहे।

द्वितीय धर्म संगीति :-

प्रथम बौद्ध संगीति उन अर्हत्तों द्वारा सम्पादित की गयी थी, जिन्होंने बुद्ध के सानिध्य में रहकर धम्म को श्रवण किया था अथवा सीखा था। दूसरी संगीति प्रथम संगीति के ठीक 100 वर्ष बाद वैशाली में आहूत की गयी।²⁸ दूसरी संगीति का उल्लेख विनय पिटक के चुल्लवग्ग में भी मिलता है।

द्वितीय संगीति का हेतु :-

बुद्ध उपदेश अलिखित थे। तमाम नये भिक्षु बौद्ध धम्म को जीवकोपार्जन का माध्यम बनाकर बुद्ध सिद्धांत को विकृत करने लगे थे। 'विनय पिटक' में इसका उल्लेख इस प्रकार है—

“वैशाली के वज्जिपुत्तक भिक्षु उपासथ (ब्रत) के दिन कांसे की थाली को पानी से भरकर भिक्षु संघ के बीच में रखकर आने जाने वाले वैशाली के उपासकों को कहते थे—“आवुसो! संघ को कर्षण उस समय के तांबे के सिक्के दो, अधेला दो, पाई दो, मासा भी दो। संघ के समान के काम आयेगा।”²⁹ इसी प्रकार के भिक्षुओं के ६ न कमाने की प्रथा का उल्लेख प्रसिद्ध बौद्ध ग्रंथ ‘महावंश’ में भी मिलता है।³⁰

कुछ भिक्षुओं की इस प्रवृत्ति को धर्मनिष्ठा विद्वान भिक्षुओं ने बौद्ध देशना के विकृत होने की आशंका से उसके मूलभावों को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से आयुष्मान यश काकण्डक पुत्र, इन्हीं के स्तर के आयुष्मान रेवत तथा आयुष्मान आनंद के शिष्य सर्वकामी³¹ तथा इन्हीं भिक्षुओं के स्तर के 700 भिक्षुओं की वैशाली में संगीति हुई, जिसकी अध्यक्षता आयुष्मान रेवत ने की। इस संगीति में भंते सर्वकामी, भंते यश और भंते रेवत ने बुद्ध देशना का पुनर्मूल्यांकन कर उसकी विषदता को यथा स्थिति बनाये रखने का उद्यम किया।

‘महावंश’ के अनुसार, “उन सबने कालाशोक की साक्षरता में बालुकाराम वैशाली में रेवत स्थविर की प्रधानता में धर्म संग्रह किया। जिस तरह पहले (पहली संगीति) धर्म का संग्रह किया गया वैसे ही धर्म को ग्रहण कर आठ मास में सङ्ग संगीति को समाप्त किया।”³² प्रधान रेवत थे परन्तु इस संगीति के उत्प्रेरक आयुष्मान यश थे।

तृतीय धर्म संगीति :-

द्वितीय बौद्ध संगीति तक बौद्ध दर्शन में ज्यादा मतभेद नजर नहीं आता है परन्तु तीसरी संगीति तक श्रवण परम्परा के आधार पर कोई भी विचार अपने मूल स्वरूप में नहीं रह सकते हैं यह अकाट्य सत्य है। बुद्ध दर्शन इस समय ऐसे निर्णायक बिन्दु पर था या यों कहा जाय कि समय की पुकार थी कि बुद्ध वचनों को लिपिबद्ध किया जाय।

तीसरी संगीति अशोकाराम में सम्राट अशोक की राजधानी पाटलिपुत्र में अशोक के गुरु अर्हत मोग्गलिपुत्ततिस्स की अध्यक्षता में हुई।³³ महास्थविर मोग्गलिपुत्ततिस्स ने संघ में से 1000 शङ्गभिज्ञ त्रिपिटक के ज्ञाता पटिसंभिदा (17अर्थ ज्ञान 2— धर्म ज्ञान 3— निरुक्ति ज्ञान 4— प्रतिभा ज्ञान) प्राप्त भिक्षुओं को संदर्भ संग्रह करने के लिए चुना और उनके साथ अशोकाराम में ही संदर्भ संग्रह (संगीति) किया।³³

संगीति का अभिप्राय :-

दीपवंश के अनुसार सम्राट अशोक के राज्यकाल में भगवान के निर्वाण के 260 वर्ष बाद अशोकाराम में 60000 भिक्षु बास करने लगे थे।³⁴ इसी प्रकार देश भर में भी भिक्षुओं की संख्या बढ़ गयी थी। भिक्षुओं का सम्मान भी बढ़ा था। जीविका चलाने हेतु तथा अनय मातावलम्बी लोग भिक्षु रूप में इस सुविधा और सम्मान का फायदा उठा

रहे थे। बौद्ध धर्म से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था उलट उसको विकृत कर रहे थे। “कुछ समय बाद पाटलिपुत्र के बिहारों में रहने वाले ‘धर्मिष्ठ’ तथा नकली भिक्षुओं में मतभेद हुआ। उसे किसी तरह शांत होते न देख मोग्गलिपुत्ततिस्स दुखी होकर पाटलिपुत्र छोड़ अहोगंग (हरिद्वार के समीप एक पर्वत) पर्वत पर चले गये।”³⁵

सम्राट अशोक के अनुनय विनय पर मोग्गलिपुत्ततिस्स तीसरी संगीति कर धर्म में विकृति दूर करने के लिए तैयार हुए।

संगीति का परिणाम :-

इस संगीति से बौद्ध धर्म में जो विकृति आ रही थी उसे दूर करने का प्रयास किया गया। “मोग्गलिपुत्ततिस्स ने अन्यवादों की तुलना में थेरवाद को स्थापित किया और इसके लिए ‘कथावस्तु’ नामक ग्रंथ की रचना की, जिसे ‘अभिधम्म पिटक’ में स्थान मिला। इसी संगीति के बाद बौद्ध धर्म के व्यापक प्रसार के लिए अनेक भिक्षु भिन्न-भिन्न देशों में भेजे गये।”³⁶ भेजे गये स्थविर—³⁷

मज्झांतिक स्थविर	—	कश्मीर और गांधार
महादेव स्थविर	—	महिष मण्डल (खान देश नर्मदा के दक्षिण में)
रक्षित स्थविर	—	बनवास में मैसूर का उत्तरीय भाग
धम्मरक्षित स्थविर	—	महाराष्ट्र
महारक्षित स्थविर	—	पवन देश (वेक्टेरिया)
माज्झेम स्थविर	—	हिमवंत (हिमालय प्रदेश)
सोड़ तथा उत्तर स्थविर	—	स्वर्ण भूमि (ब्रह्मा वर्तमान पेगु)
महेन्द्र, संघमित्रा, इंद्रीय	—	श्रीलंका
उन्तीय तथा भट्टसाल		

त्रिपिटक की रचना :-

इस संगीति का सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह हुआ कि, ‘बुद्ध वचन’ अभी तक अलिखित थे। आचार्य मोग्गलिपुत्ततिस्स ने बुद्ध वचनों को त्रिपिटक (तीन पिटाओं) के रूप में 1000 अर्हत्तों के साथ गहन विचार विमर्श के उपरान्त श्रवण और स्मरण शक्ति के आधार पर संकलित किया। यही संकलन लेकर ‘सम्राट की पुत्री संघमित्रा तथा पुत्र महेन्द्र सिंह द्वीप श्रीलंका गये यह दोनों बौद्ध धर्म को सुदृढ़ करने में देवानम्पियतिस्स (सम्राट अशोक) के अत्यंत सहायक हुए। ये अपने साथ त्रिपिटक के रूप में बुद्ध वचन की परम्परा ले गये थे। अभी तक सम्पूर्ण बुद्ध वचन की मौखिक परम्परा ही चलती रही। समयानुसार यह आवश्यकता समझा गयी कि स्मरण शक्ति के ह्रास होने पर कहीं लोग कुछ वचन को भूल न जाये। अतः इसे लिपिबद्ध किया गया। इसके साथ ही इन पर रचित अट्टकथायें भी लिपिबद्ध की गयी। यही चतुर्थ संगीति के नाम से विख्यात है। उस समय सिंहल के सम्राट ‘बट्टगामणि’ थे। बट्टगामणि का समय ईशा पूर्व 29 माना गया है।”³⁸

त्रिपिटक साहित्य एक दृष्टि में ³⁸ :-

1. सुत्तपिटक— पांच भागों में विभक्त

(1) दीघ निकाय	(2) मज्झिम निकाय	(3) संयुक्त निकाय
(4) अंगुत्तर निकाय	(5) खुददक निकाय	
खुददक निकाय में 15 ग्रंथ हैं—		
(1) खुददक पाठ	(2) धम्मपद	(3) उदान

(4) इतिवृत्तक	(5) सुत्तनिपात	(6) विमान वत्थु
(7) पेत वत्थु	(8) थेरगाथा	(9) थेरीगाथा
(10) जातक	(11) निददेश	(12) पटिसंभिदामग्ग
(13) अपदान	(14) बुद्धअंश	(15) परिया पिटक
2. विनय पिटक— पांच भागों में विभक्त
- | | | |
|--------------|---------------|-------------|
| (1) महावग्ग | (2) चुल्लवग्ग | (3) पराजिका |
| (4) पचित्तीय | (5) परिवार | |
3. अभिधम्म पिटक— सात भागों में विभक्त
- | | | |
|-------------------|---------------|--------------|
| (1) धम्म संगनी | (2) विभंग | (3) धातु कथा |
| (4) पुग्गल पज्जति | (5) कथा वस्तु | (6) यमक |

सर्वास्तवादी संगठित हुए :-

तृतीय संगीति के समय मोग्गलिपुत्ततिस्स ने जिन भिक्षुओं को अयोग्य घोषित किया या संघ से बाहर निकाला उनकी संख्या कम नहीं थी। यह संख्या 60000 तक पहुंच गयी थी⁴⁰ वे सभी पाटलिपुत्र से नालंदा गये और वहां जमा हुए। पाटिलीपुत्र से नालंदा सर्वासितवादियों का गढ़ बना। उन्होंने ने नालंदा में प्रथक संगीति की ये सर्वास्वादी नालंदा से दक्षिण गये और वहां से कश्मीर में फेले। क्रमशः मध्य एशिया और चीन गये।⁴¹

इस प्रकार मैं देखती हूँ कि सम्राट अशोक ने अपने गुरु मोग्गलिपुत्ततिस्स के सानिध्य में आकर उनके निर्देशानुसार बुद्ध वचनों को, बु0 संदेश को विशुद्ध और सार्वभौमिक बनाने में जो अनूठा प्रयास किया वह अद्वितीय कार्य था। सम्राट अशोक और उनके आचार्य तथा उनका सम्पूर्ण भिक्षु संघ बुद्ध देशना के सच्चे संदेश वाहक थे। सम्राट अशोक की इसी धर्मनिष्ठा ने उनको विश्व इतिहास में अशोक महान के पद से विभूषित किया।

सम्राट अशोक के बाद सर्वास्तिवादियों में कात्यायनीपुत्र के प्रयास तथा सम्राट कनिष्क के शासन में आचार्य व सुमित्र की अध्यक्षता में तथा आचार्य अश्वघोष की उपाध्यक्षी में एक संगीत बुलाने का उल्लेख मिलता है। बुद्ध प्रतिमाओं के स्थापित करने का प्रचलन कनिष्क ने ही प्रारम्भ किया। शून्यवाद के आचार्य नागार्जुन भी कनिष्क के समय के माने जाते हैं। मिलिंद और नागार्जुन समवाद इसी समय हुआ। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि सम्राट अशोक से आगे भी बौद्ध धर्म के महान प्रचारक इतिहास में नजर आते हैं। मैं अपने शिष्य की परिधि के अंदर ही रहना चाहूंगी। यह प्रथक शोध का विषय हैं बौ0 वाडमय समुद्र की भांति है। मेरी चाहत थी कि इस आलेख के माध्यम से जिस बुद्ध के दर्शन की व्याख्या करने में दिन में भी तारे नजर आते हैं। उस गम्भीर विषय को जिन ६ ऋग्निष्ठों ने अर्हत्तों ने एक दो वर्ष नहीं 400 वर्ष तक निरंतर अहिर्निश साधनारत रहकर पीढ़ी दर पीढ़ी श्रवण और स्मरण के आधार पर लोक कल्याणार्थ जीवित रखा, व्यवस्थित करके रखा, बार-बार संगीतियों के माध्यम से विकृत होने से रोका उनका भी शोधात्मक ब्यौरा, जीवन परिचय उनकी साधना को प्रबुद्ध जनों के दृष्टि पटल तक ले जाऊँ। यह कार्य इसी सोच का प्रतिफल है।

संदर्भ सूची

1. कश्यप डा0 जगदीश, 'पालि महा व्याकरण' प्रकाशक सुन्दरलाल जैन दिल्ली-6, 1963 पृ0 13
2. वही पृ0 22
3. विनयपिटक चुल्लवग्ग (हिन्दी संस्करण) त्रिपिटक प्रकाशन प्रतिष्ठान दीक्षा भूमि संदेश नागपुर- 2006, पृ0-508
4. कश्यप डा0 जगदीश 'पालि महा व्याकरण' प्रकाशन सुंदरलाल जैन दिल्ली- 1963 पृ0 6
5. उपाध्याय डा0 भरत सिंह, "बौद्ध धर्म के संदेश वाहक" बुद्ध भूमि प्रकाशन नागपुर 2005, पृ0 7

6. वही, पृ० 15
7. मज्झिम निकाय 3-2-1 भदंत आनंद कौशल्यायन अनुवाद-वही पृ० 16
8. बु० चार्य पृ० 513-514 वही, पृ० 55
9. धम्म पद अटट कथा जिल्द चौथी पृ० 164, वही, पृ० 10
10. डा० अम्बेडकर बुद्ध और उनका धम्म, पीपल्स एजुकेशन सोसायटी मुम्बई, 1986, पृ० 113
11. मज्झिम निकाय 3/4/11, वही, पृ० 17
12. (अ) मिलिंद प्रश्न, प्रकाशक भारतीय बौ० शिक्षा परिषद-श्रावस्ती उ०प्र०, 2000, पृ० 227
(ब) चातुम सुतन्त, मज्झिम निकाय 2/2/7
13. मिलिंद प्रश्न, प्रकाशक भारतीय बौ० शिक्षा परिषद श्रावस्ती उ०प्र० 2000 पृ० 229
14. विनय पिटक (चुल्लवग्ग) (हिन्दी संस्करण) त्रिपिटक प्रकाशन प्रतिष्ठान दीक्षा भूमि संदेश, नागपुर 2006, पृ० 544
15. वही, पृ० 544
16. उपाध्याय डा० भरत सिंह, बौद्ध धम्म के संदेश वाहक बुद्ध भूमि प्रकाशन नागपुर, 2005, पृ० 28
17. विनय पिटक (चुल्लवग्ग) त्रिपिटक प्रकाशन प्रतिष्ठान दीक्षा भूमि संदेश नागपुर 2006, पृ० 609
18. उपाध्याय डा० भरत सिंह, बौद्ध धम्म के संदेश वाहक बुद्ध भूमि प्रकाशन नागपुर, 2005, पृ० 31
19. थेर गाथा, 2024 (उत्तम भिक्षु द्वारा प्रकाशित, नागरी संस्करण, वही, पृ० 36
20. महापरिनिब्बान सुत्त दीध निकाय प्रकाशक भारतीय बौ० शिक्षा परिषद लखनऊ अनुवादक राहुल सांकृत्यायन और भिक्षु जगदीश कश्यप 2000, पृ० 149
21. वही, पृ० 150
22. विनय पिटक (चुल्लवग्ग) त्रिपिटक प्रकाशन प्रतिष्ठान दीक्षा भूमि संदेश नागपुर 2006, पृ० 609
23. वही, पृ० 609
24. महावंश अनुवादक भदंत आनंद कौशल्यायन बुद्ध भूमि प्रकाशन नागपुर 2000, पृ० 10
25. वही पृ० 11
26. वही पृ० 11
27. विनय पिटक (चुल्लवग्ग) त्रिपिटक प्रकाशन प्रतिष्ठान दीक्षा भूमि संदेश नागपुर 2006, पृ० 410
28. महावंश बुद्ध भूमि प्रकाशन नागपुर 2000, पृ० 16
29. विनय पिटक (चुल्लवग्ग) त्रिपिटक प्रकाशन प्रतिष्ठान दीक्षा भूमि संदेश नागपुर 2006, पृ० 617
30. महावंश बुद्ध भूमि प्रकाशन नागपुर 2000, पृ० 14
31. विनय पिटक (चुल्लवग्ग) त्रिपिटक प्रकाशन प्रतिष्ठान दीक्षा भूमि संदेश नागपुर 2006, पृ० 624
32. महावंश बुद्ध भूमि प्रकाशन नागपुर 2000, पृ० 17
33. मेघंकर डा० भदंत सावंगी, एशिया के महान बौद्ध सम्राट बुद्ध भूमि प्रकाशन नागपुर 2007, पृ० 15
34. दीप वंश बोलूम 21-22, वही, पृ० 13
35. वही, पृ० 14
36. सांकृत्यायन राहुल 'पालि साहित्य का इतिहास' प्रकाशक उ०प्र० हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृ० 2
37. मेघंकर डा० भदंत सावंगी, एशिया के महान बौद्ध सम्राट बुद्ध भूमि प्रकाशन नागपुर, 2007, पृ० 15
38. सांकृत्यायन राहुल 'पालि साहित्य का इतिहास' प्रकाशक उ०प्र० हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1992, पृ० 23
39. कौशल्यायन डा० भदंत आनंद 'बुद्ध का जनम सुखकर है समता प्रकाशन नागपुर 2002, पृ० 35
40. महावंश 'बुद्ध भूमि प्रकाशन नागपुर 2000, पृ० 32
41. सांकृत्यायन राहुल 'बुद्धचर्या, भूमिका, पृ०



राष्ट्र प्रेम व मानव कल्याण की भावनाओं ने स्वामी विवेकानन्द को महान बनाया

डॉ० रामकुमार ओमरे
उरई (जालौन)

डॉ० हृदयकान्त श्रीवास्तव
डी. वी. कालेज, उरई (जालौन)

स्वामी विवेकानन्द जी के मन के महासागर में मानव कल्याण व राष्ट्र प्रेम की भावनाओं के ज्वारभाटे ने उन्हें विश्व भ्रमण पर मजबूर किया। पूरे विश्व में मानव कल्याण के लिये जितना यथा संभव प्रयास हो सकता था उन्होंने अपने विचारों से उद्वेलित कर परिवर्तन का प्रयास किया। 31 मई 1863 से लेकर 30 दिसम्बर 1866 तक अविराम विश्व भ्रमण के बाद स्वदेश प्रेम की प्रबल भावना ने भारत के कल्याण के लिये शेष जीवन न्यौछावर कर दिया। यही उन्होंने अपने जीवन का उद्देश्य बनाया था जो जीवन यात्रा बन गया।

16 जनवरी 1867 ई० को कोलम्बो बन्दरगाह पर विश्व भ्रमण के बाद उतरने पर फ्लोरन्स हाल में “पूर्ण भूमि भारत वर्ष” पर भाषण दिये।

पश्चिमी देशों से लौटने के कुछ ही समय पहले एक अंग्रेज मित्र ने उनसे पूछा – स्वामी जी चार वर्षों तक विलास की लीला भूमि गौरवशाली महाशक्तिमान, पश्चिमी भूमि पर भ्रमण कर चुकने पर आपकी मात्र भूमि अब आपको कैसी लगेगी स्वामी जी का उत्तर महत्वपूर्ण था – “पश्चिम में आने से पहले भारत को मैं प्यार करता था, अब तो भारत की धूल ही मेरे लिये पवित्र है भारत की हवा अब मेरे लिये पावन है, भारत अब मेरे तीर्थ है।”²

स्वामी विवेकानन्द के हृदय में देश के लिये असीम प्रेम था, वह कभी स्वप्न में भी भारत एवं भारतवासियों की बुराई नहीं सुन सकते थे। इसका साक्षात् दर्शन निम्नलिखित उदाहरण से हो जाता है।

एक दिन लन्दन की सभा में जब स्वामी जी भारत के गौरव का वर्णन कर रहे थे, उस समय एक समालोचक ने प्रश्न किया “भारत के हिन्दुओं ने क्या लिखा है? वे आज तक किसी जाति पर विजय प्राप्त नहीं कर सके।”

स्वामी जी ने उत्तर दिया “नहीं कर सके, नहीं – कहिए कि उन्होंने की नहीं, और यही हिन्दू जाति का गौरव है कि उसने कभी दूसरी जाति के रक्त से पृथ्वी को रंजित नहीं किया वे दूसरों के देश पर अधिकार क्या करेंगे? तुच्छ धन की लालसा से? भगवान ने हमेशा से भारत को दाता के महिमा में आसन पर प्रतिष्ठित किया है। भारतवासी जगत के धर्मगुरु रहे हैं। वे दूसरों के धन को लूटने वाले रक्त पिपासु दस्यु न थे। इसीलिए मैं अपने पूर्वजों के गौरव से गर्भ का अनुभव करता हूँ।”

दूसरे व्यक्ति ने प्रश्न किया, “आपके पूर्वज यदि मानव समाज को धर्मदान देने के लिये इतने उग्र थे, तो वे इस देश में धर्म प्रचार करने के लिये क्यों नहीं आये?” मृदु हास्य से स्वामी जी ने उत्तर दिया, “उस समय तुम्हारे पूर्वज तो जंगली थे बर्बर थे, पत्तों के हरे रंग से अपने उलंग देहों को रंजित करके पर्वतों की गुफाओं में निवास करते थे, क्या भारतीय अरण्य में धर्म प्रचार करने आते?”³ यह था स्वामी विवेकानन्द का देश प्रेम और देश के प्रति उत्तरदायित्व की भावना।

कोलम्बो के बन्दरगाह से चलकर जब भारत को देखा आँखें नम हो गयीं। मात्र भूमि पर उतरते ही धूल को माथे पर लगाकर लौट गये। उनके मुख से अनायास शब्द निकले – “विदेशों में रहकर जो कुछ भी अपवित्रता मेरे शरीर या मन को छू गयी हो, भारत की इस पवित्र धूल के स्पर्श से वह सब नष्ट हो गयी है। माँ की गोद में मेरे सब कल्मश धुल गये।”⁴

अपने तन-मन और वाणी को जगद्धिताय अर्पित करो। तुमने पढ़ा है, मातृ देवो भवः, पितृ देवो भवः अपनी माता को ईश्वर समझो, अपने पिता को ईश्वर समझो – परन्तु मैं कहता हूँ दरिद्र देवो भवः, मूर्ख देवो भवः, गरीब, निरक्षर, मूर्ख और दुखी इन्हें अपना ईश्वर मानो। इनकी सेवा करना ही परम धर्म समझो।⁵

प्रेम ही मैदान जीतेगा। क्या तुम अपने भाई – मनुष्य – जाति को प्यार करते हो? ईश्वर को कहाँ ढूँढ़ने चलो हो.....ये सब गरीब, दुखी दुर्बल मानव, क्या ईश्वर नहीं है? इन्हीं की पूजा पहले क्यों नहीं करते? गंगा तट पर कुंआ खोदने क्यों जाते हो? प्रेम की असाध्य साधिनी शक्ति पर विश्वास करो।⁶

पहले कूर्म अवतार की पूजा करनी चाहिए। पेट है वह कूर्म इसे पहले ठण्डा किये बिना धर्म कर्म की बात कोई ग्रहण नहीं करेगा। देखते नहीं, पेट की चिन्ता से भारत बैचेन है।.....धर्म की बात सुनना हो तो पहले इस देश के लोगों के पेट की चिन्ता को दूर करना होगा। नही तो केवल व्याख्यान देने से विशेष लाभ न होगा। पहले रोटी और तब धर्म चाहिये। गरीब बेचारे भूखों मर रहे हैं, और हम उन्हें आवश्यकता से अधिक धर्मोपदेश दे रहे हैं, मत मतान्तरों से पेट नहीं भरता।

तुम लोगों के चतुर्दिक जो पशुवत भंगी डोम है, उनकी उन्नति के लिये तुम क्या कर रहे हो? उनके मुख में एक ग्रास अन्न देने के लिये क्या कर रहे हो?⁷

पशु प्रकृति लोग भी फोड़े के समान हमारे शरीर के ही अंग है। उन्हें खूब यत्न पूर्वक हमे अच्छा करना होगा। दुष्ट मनुष्य की भी ठीक इसी प्रकार लगातार सहायता करते रहो, जब तक कि वह सम्पूर्ण रूप से सुधर नहीं जाता एवं फिर से स्वस्थ और सुखी नहीं हो जाता।⁸

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सत्येन्द्रनाथ मजूमदार, विवेकानन्द चरित-पृष्ठ-317-18
2. स्वामी स्वानन्द, विवेकानन्द साहित्य, खण्ड-5, पृष्ठ-203
3. स्वामी निखिलानन्द-पूर्वोक्त, पृष्ठ-229
4. रामलाल, विश्व हिन्दु चेतना के प्रवर्तक स्वामी विवेकानन्द, पृष्ठ-210-11
5. स्वामी स्वानन्द, पूर्वोक्त खण्ड-4, पृष्ठ-310
6. वही – पृष्ठ-223
7. वही खण्ड-2, पृष्ठ-316
8. देववाणी-पृष्ठ-218



प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (सन् 1857) में नाना साहब का योगदान

डॉ. (श्रीमती) ममता गंगवार
एसो. प्रो. एवं विभागाध्यक्ष—इतिहास विभाग
महिला महाविद्यालय, किदवई नगर, कानपुर

सन् 1857 में लगभग पूरे उत्तर भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध क्रान्ति ज्योति जगकर लहर के रूप में चारों ओर फैल गई थी। प्रथम स्वातंत्र्य समर के इतिहास में कानपुर का महत्वपूर्ण स्थान है। सन् 1857 ई. की क्रान्ति में नाना साहेब, तात्या टोपे, अजीमुल्ला खाँ जैसे महान क्रान्तिपुत्रों ने कानपुर क्षेत्र में अंग्रेजों के विरुद्ध क्रान्ति का नेतृत्व किया। सन् 1857 ई. से स्वाधीनता प्राप्ति तक आन्दोलन में कानपुर की महत्वपूर्ण भूमिका रही, जिसमें प्रमुख नेतृत्वकर्ताओं के अतिरिक्त साधारण नागरिकों, नाविकों, सैनिकों, छात्रों आदि का भी आविस्मरणीय योगदान रहा है।

कानपुर में 04 जून, 1857 तक के सतत संघर्ष के बाद अंग्रेज अधिकारी समझ चुके थे कि विजय हासिल करना अत्यन्त कठिन है। “25 जून को क्रान्तिकारियों का स्वप्न पूर्ण हो गया और अंग्रेजों ने अपनी इस गद्दी पर श्वेत पताका फहरा दी।”¹ अर्थात् शान्ति के लिए सफेद झण्डा जनरल हवीलर ने किले के अन्दर से फहरा कर आत्मसमर्पण का संकेत दिया था। इसे देखकर नाना साहब ने युद्ध रोकने का आदेश दिया। उन्होंने एक महिला बन्दी के हाथ सर हवीलर को देने के लिए एक पत्र प्रेषित किया, जिसमें लिखा था— “महारानी विक्टोरिया के वे प्रजाजन, जिनका डलहौजी की रणनीति से कोई सम्बन्ध न हो तथा जो शस्त्र समर्पित कर आत्मसमर्पण करने को तैयार हो, उन्हें सकुशल प्रयाग पहुँचा दिया जायेगा।” इस पत्र पर अजीमुल्ला खाँ के हस्ताक्षर थे तथा नाना साहब के आदेशानुसार लिखा गया था² मौब्रे थामसन के अनुसार “पत्रवाहक महिला श्रीमती ग्रीनवे थीं, जो कानपुर के एक ऐसे धनी परिवार की थीं जो छावनियों में व्यापार करता था।”³ हवीलर को अब भी कलकत्ते से सहायता पहुँचाने की आशा थी। और वह नाना साहब से समझौता करने को तैयार नहीं था लेकिन सर मूर ने समझाया कि इज्जत के साथ आत्मसमर्पण के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं है। 26 जून को नाना साहब की ओर से अजीमुल्ला खाँ और ब्रिगेडियर ज्वाला प्रसाद तथा अंग्रेजों की ओर से कैप्टन मूरे व कैप्टन हवीटिंग तथा डाकखाने के साहब रोडे के मध्य एक समझौता हुआ, जिसके तहत अंग्रेजों को 40 बड़ी नौकाओं द्वारा 27 जून को सुरक्षित घाट से इलाहाबाद जाने की व्यवस्था की गई और दोनों ओर से समझौते में तय हुआ था कि अंग्रेज अपना स्थान, तोपें, बन्दूकें, रुपया—पैसा सब छोड़ देंगे।⁴ हर आदमी को अपने साथ एक—एक बन्दूक और साठ—साठ कारतूस ले जाने की इजाजत दी गई।⁵ घायलों, औरतों और बच्चों को सवारी दी जाये और खाने—पीने के सामान के साथ घाट पर नावें तैयार रहें, यह प्रस्ताव अजीमुल्ला, नाना के पास ले गये और उसी रात रवानगी की बात आई। लेकिन रक्षक सेना ने सुबह से पहले असमर्थता प्रकट की तथा अंग्रेज भी रात को जाने के लिए तैयार नहीं थे। अन्त में संदेशवाहक नाना की मौखिक स्वीकृति लाया, अन्त में टॉड उस कागज को लेकर नाना के घर गया और आत्मसमर्पण की उस सन्धि को नाना के हस्ताक्षर करा कर लौट आया। ब्रिटिश शिविर में ज्वाला प्रसाद ने अपने दो आदमियों को नाना की सच्चाई के प्रमाण रूप में बंधक रख दिया। अंग्रेजों ने तोपें नाना के पक्ष में सौंप दीं। कैप्टन टर्नर एवं लेफ्टिनेंट डेलाफास और गोड को नदी में नावों की तैयारी दिखाने के लिए ले जाया गया। उन्होंने वहाँ करीब चालीस देशी नावें “लंगर डाले और जाने के लिए तैयार देखीं, जिनमें से कुछ पर छतें थीं और शेष पर छतें लगाई जा रही थीं।”⁶

जैसे ही यह समाचार प्रसारित हुआ कि नाना साहब की कानपुर पर विजय पताका फहर—गई है, सभी दिशाओं से रणशूरों की टोलियां कानपुर की ओर प्रस्थान करने लगीं। प्रत्येक स्थान से युवाओं का आगमन कानपुर

में होने लगा। जिस गाँव से कोई नहीं आ सका तो वहाँ से धन-धान्य भेजा गया। सेवा भावना से प्रेरित लोगों के साथ ही पराधीनता से क्षुब्ध लोग भी आ रहे थे, जिनके स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रयास असफल हो गये थे। काशी और प्रयाग के हजारों सिपाही कानपुर आ पहुँचे, जिनके बच्चों व महिलाओं पर अंग्रेजों ने जघन्य अपराध किये थे। ऐसे अनेक युवा जिनके पिता अंग्रेजों के अत्याचार के शिकार बने व बधस्तम्भों पर लटका दिये गये थे वे पति व पिता भी जिनकी पत्नियों को जनरल नील की क्रोधाग्नि निगल गई थी। बेटियों, बालिकाओं के माता-पिता भी यहाँ पहुँचे, जिनकी बालिकाओं के केशों और वस्त्रों में आग लगाकर उन्हें जीवित जलाते समय अंग्रेज सैनिकों ने तुमुल करतलध्वनि कर अपना हर्ष व्यक्त किया था। जिनके राष्ट्र को अंग्रेजों ने दासता की लौह श्रृंखलाओं में जकड़ा था, वे सभी कानपुर में क्रान्ति ध्वज स्तम्भ के चतुर्दिक् एकत्रित होकर प्रतिरोध की घोषणाओं से दिगदिगन्त गुंजा रहे थे। जब विजय का समय समीप आ गया, किन्तु नाना साहब द्वारा अंग्रेजों को सकुशल इलाहाबाद पहुँचाना स्वीकार कर लिया गया, तो क्रान्तिकारी सैनिकों द्वारा उनके अपमानों का प्रतिशोध ले लिया जायेगा उनकी यह आशा धूल धूसरित हो गई। अतः उन्होंने अपनी अप्रसन्नता व्यक्त की। 'नावों की व्यवस्था'⁷ देखने गये अंग्रेजों ने सिपाहियों की कानाफूसी 'कत्ल-कत्ल' सुनी।⁸ ऐसा भी माना जाता है कि एक राज दरबारी पण्डित ने कहा कि – "अपने राष्ट्र के साथ विश्वासघात कर जिन्होंने उसे दासता की श्रृंखलाओं में जकड़ा है उनके सिर धड़ से प्रथक् कर देने में धर्म की दृष्टि से कोई पाप नहीं होता।"⁹

27 जून को प्रातः काल अंग्रेज इलाहाबाद जाने के लिए तैयार होने लगे तथा अपनी बहुमूल्य व आवश्यक चीजों को एकत्र करने लगे। कोई बहुमूल्य गहने, कोई शान्तिदायक धर्मग्रन्थ, कोई पिस्तौल और बन्दूक लेकर किले के बाहर स्त्री, पुरुष, बच्चे, बीमार सब मिलाकर 450 अंग्रेज गंगा के किनारे की ओर आये।¹⁰ इस समय अंग्रेजों में मुक्ति की प्रसन्नता तथा कहीं न कहीं असुरक्षा का भय तथा आतंक छिपा हुआ था क्योंकि उन्होंने भारतीयों पर बहुत अत्याचार किये थे। अंग्रेजों के गद्दी से निकलने पर "27 जून को अंग्रेजों की गद्दी पर फहराता हुआ यूनियन जैक नीचे उतार लिया गया और इस पर अब स्वातंत्र्य एवं स्वधर्म की पुनीत पताका गौरव सहित फहरा उठी थी।"¹¹ इस दिन सुबह 16 हाथी और 70 से 80 के बीच पालकियाँ निष्क्रान्तों को नावों तक ले जाने के लिए आईं। "सर हवीलर के लिए सुन्दर गजराज सजाया गया था, जो नाना साहब के महावत सहित गद्दी में प्रवेश कर झूम उठा था। ऐसी अपमान की घड़ी में उसे गज पर आरुढ़ होकर चलने में लज्जा अनुभव हुई अतः उसके लिए तत्कालीन एक पालकी की व्यवस्था कर दी।"¹²

गंगा तट गद्दी से डेढ़ मील की दूरी पर था। वहाँ तक अंग्रेजों को पहुँचाने की व्यवस्था कैप्टन मूर देख रहे थे। "एक बार में सभी अंग्रेज नहीं जा पाये स्वयं मूर दूसरे चक्कर में जा पाया। औरतों और बच्चों को हाथियों और बैलगाड़ियों पर बैठाया गया, जब आगे का दल चला गया तब सब छोटे-बड़े सशक्त पैदल गये।"¹³ पहले दल के रवाना हो जाने के बाद सिपाही उस स्थान पर आये। मौब्रे थामसन के अनुसार "उन्होंने अपने इन भूतपूर्व अफसरों की बावत पूछताछ की, जिनकी उन्हें याद आती रहती थी और उन्हें उनकी मृत्यु का समाचार पाकर बहुत दुःख हुआ।" थामसन के अनुसार – "मैंने 53वीं रेजीमेण्ट के एक सिपाही से पूछा क्या हम बिना छेड़छाड़ के इलाहाबाद पहुँच जायेंगे?" उसने अपना विश्वास प्रकट किया कि हमसे कोई छेड़छाड़ नहीं होगी, मैं समझता हूँ कि प्रस्तावित मारकाट की योजना की जानकारी केवल आयोजकों तक ही सीमित थी (यह भी हो सकता है कि वहाँ एकत्रित भीड़ ने अंग्रेजों के अत्याचारों के कारण यह उग्र रूप धारण कर लिया हो पहले से इसकी कोई योजना न रही हो)। निरीह, बूढ़ा सर .. हवीलर, उसकी पत्नी और पुत्री नावों तक पैदल गये। सबसे पीछे मेजर विवार्ट था, जो उस सुरक्षा स्थल से निकलने वाला अन्तिम अफसर था। कुछ विद्रोही सिपाहियों ने, जो पहले उसकी रेजीमेण्ट में थे, उसका सामान पहुँचाने का आग्रह किया। उन्होंने सन्दूक एक बैलगाड़ी पर लाद लिये और अत्यन्त आदर सहित मेजर की पत्नी और परिवार को नावों तक पहुँचाया।"¹⁴ नौ बजे तक सब लोग नावों में बैठ गये थे। रास्ते में अगर कुछ हुआ भी होगा तो मौब्रे थामसन और डेलफास को उसका पता नहीं था। नदी में पानी कम था, नावों तक जाने का कोई रास्ता नहीं था, पुरुषों, औरतों और बच्चों को पानी में से होकर जाना पड़ा।¹⁵ अंग्रेजों के पलायन के मौके

पर इलाहाबाद व वाराणसी से लौटे हुए सिपाहियों को तात्या टोपे ने सतर्कतावश घाट पर लगा रखा था।¹⁶ कोई सैनिक या व्यक्ति अंग्रेजों का नाव पर चढ़ने में मदद नहीं कर रहा था। गंगा में पानी कम होने के कारण बड़ी कठिनाइयों से सभी अंग्रेज नावों पर चढ़ पाये। “कर्नल एबर्ट इस समय घायल था, उसे डोली में डाल कर लाया जा रहा था। डोली रोक कर एक सिपाही ने प्रश्न किया – “रुचिकर लगा अथवा नहीं? इस रेजीमेण्ट का गणवेश कैसा है? यह कहकर उसने कर्नल को डोली से नीचे पटक दिया और उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। उसकी पत्नी भी वहीं थी। कुछ लोग बोल उठे, ‘तू नारी है, अतः जा तुझे प्राणदान दिये जा रहे हैं।’” किन्तु उस समय एक तरुण भीड़ को चीरता हुआ आगे आया और गरज उठा, “हटो जी स्त्री है, नारी जाति है, परन्तु है तो गोरी तथा उसे तत्काल यमलोक पहुँचा दो।” अभी वह अपना वाक्य पूर्ण नहीं कर पाया कि उस महिला को ठेर कर दिया गया।¹⁷

अंग्रेजों की समिति (डेलाफास और मौब्रे थामसन – दोनों प्रशिक्षित प्रेक्षक थे) ने माना कि समझौता मुताबित नावें, अनाज आदि पर्याप्त खाद्य सामग्री से युक्त थी। नौकाएँ चलने के लिए तैयार खड़ी थीं। थामसन ने लिखा कि ज्यों ही मेजर विवार्ट नौका पर बैठा – आज्ञा मिली चलो।” तात्या टोपे ने हाथ हिलाकर नावों को रवानगी का इशारा किया। इस समय अजीमुल्ला खाँ, बाला साहब घाट के किनारे स्थित हरदेव (शिव) मन्दिर¹⁸ की छत पर बैठे गतिविधियाँ देख रहे थे। नावों के चलते ही घाट में उपस्थित लोगों में से किसी ने बिगुल बजा दिया तथा जैसे ही नाविकों को बन्दूकों, तलवारों और संगीनों की खुखरियों की कुछ आवाज—सी सुनाई दी, अचानक नाविक नावें छोड़ कर तट की ओर भाग पड़े। नाविकों के कूद कर भागने से नावें हिलने-डुलने के कारण कुछ नावें पलट भी गईं। जिस नाव पर कर्नल टामसन बैठा था उस नाव के अंग्रेजों ने इन भागते हुए मल्लाहों पर गोलियाँ चला दीं। इनमें से कुछ तैर गये तो अनेक डूब गये तथा कुछ बन्दूक की गोली का शिकार हो गये। मांस पिण्ड, कटे शीश, छोटे केश, हाथ पैर और रक्त स्रोत से सम्पूर्ण गंगा रक्तवर्णी हो गई। अतः भीषण नरसंहार गंगा में हुआ। गंगा में छिपे लोग छिपे रहने की कोशिश में डूब गये और जिन्होंने निकलने व सांस लेने का प्रयास किया वह क्रान्तिकारियों की गोली के शिकार हो गये। प्रातः 10 बजे अपने राजमहल में श्रीमंत नाना साहब विचारमग्न पर मौन होकर चहल कदमी कर रहे थे तथा बेचैनी का अनुभव कर रहे थे। तभी एक अश्वरोही ने आकर सत्तीचौरा घाट पर हुए अंग्रेजों के हत्याकाण्ड की सूचना दी। नाना साहब ने सख्ती से आदेश दिया कि महिलाओं और बच्चों को कदापि न सताया जाए। अंग्रेज पुरुषों की बात अलग है। सिपाहियों को तत्काल मेरी इस आज्ञा से अवगत करवा दो।”¹⁹ अश्वरोही नाना साहब के आदेश लेकर सत्तीचौरा वापस पहुँचा उस समय विद्रोही सिपाही नरसंहार में लगे हुए थे कुछ गोरे उल्टी-पुल्टी व जलती हुई नौकाओं में प्राण त्याग रहे थे तो कुछ तैरते हुए तट की ओर भाग रहे थे। सिपाही उनका पीछ कर रहे थे। जनरल हवीलर प्रथम आघात में ही मारा गया, हैण्डरसन भी मौत का शिकार हो चुका था। नाना साहब का आदेश मिलते ही हत्याकाण्ड एकदम बन्द कर दिया गया।²⁰ नाविकों ने भागने से पहले अधिकांश नावों की फूस की छत पर जलता हुआ कोयला रख दिया था। नाविकों के जाते ही उन सैनिकों ने भी हम पर गोलियाँ बरसानी शुरू कर दी, जो मेजर विवार्ट को घाट तक लाये थे। नावों के जलने से जो अस्तव्यस्तता फैली उसके बावजूद हम यथासम्भव उन घुड़सवारों की गोलियों का जवाब देते रहे, जो कुल मिलाकर करीब 15 या 16 थे। लेकिन, हम पर गोलियाँ चलने के बाद ही वे एकदम चले गये।²¹ तब भयंकर हत्याकाण्ड शुरू हो गया। अंग्रेज नावों से उतर कर नावें ढकेलने की कोशिश कर रहे थे लेकिन बहुत सी नावें हिली तक नहीं। इधर उधर छिपे स्थान से गोली चलनी शुरू हो गई और नावों की फूस की छतें जलती रहीं। नावों के पीछे छिपी हुई औरतें और बच्चे गोलियों की वर्षा से बचने के लिए “टोड़ी तक पानी में खड़े हुए थे।” विवार्ट की नाव गहरे पानी में बह चली तथा उसकी फूस भी जली नहीं। मौब्रे थामसन तैर कर उसकी नाव पर गया और उसे ऊपर चढ़ा लिया गया। एक और नाव घाट से बहाव में बह चली लेकिन एक गोली ने उसको डुबो दिया उसके बचे यात्रियों को विवार्ट ने नाव पर चढ़ा लिया। हाथों और लकड़ियों की मदद से नाव को खतरे से बाहर निकाल ले जाने की कोशिश की लेकिन चारों तरफ से गोलियाँ चलती रहीं। लगभग दोपहर को वे लोग बड़ी तोपों की मार से बाहर निकल गये फिर भी सारा दिन उनका पीछा करने वाले गोलियों की बौछार उन पर करते रहे। रात

को उनकी नाव पर जलते हुए तीर फेंके और एक नाव में आग लगाने हेतु भेजा। अगले दिन सुबह नदी में नहाते हुए गाँव वालों ने उन्हें बता दिया कि नजफगढ़ में जमींदार बाबू रामबख्श उनका इन्तजार कर रहा है। करीब दो बजे उनकी नाव उस स्थान पर पहुँची पर रेत में फंस गई किनारे पर प्रतीक्षारत बन्दूकों से युक्त लोग एक तोप भी लाये लेकिन प्रकृति ने अंग्रेजों का साथ दिया और पानी बरस जाने के कारण तोप न चल सकी, शाम को कानपुर से सशस्त्र सैनिकों से भरी एक नाव आ गई पर वह भी रेत में फंस गई। दोनों ओर से संघर्ष चल रहा था। विवार्ट ने थामसन और डेलफास से कहा कि 12 अन्य व्यक्तियों के साथ उतर कर आक्रमणकारियों पर हमला बोल दें। पीछा करने वालों से बचने के लिए उस दल ने एक मन्दिर में शरण ली वहाँ उन्हें खाने को कुछ न मिला। एक गड्ढे में थोड़ा सा गन्दा पानी था उसी से उन्होंने अपनी प्यास बुझाई। उन्हें यह मन्दिर भी छोड़ना पड़ा और नदी की ओर चल दिये। अब उनकी संख्या सिर्फ सात रह गई थी। दो व्यक्ति तैरते हुए गोली का शिकार बने और तीसरा रेतीले किनारे पर पहुँचा। उसके सिर में चोट लग गई, अन्त में पीछा करने वालों ने पीछा करना छोड़ दिया। तीन घण्टे तैरने के बाद बचे हुए लोगों ने आराम करने का निश्चय किया वे किनारे पर गले तक पानी में जान बचाये बैठे थे तभी वहाँ मुरानमऊ का दिग्विजय सिंह जो अवध का जमींदार था, ने 29 जून की शाम को इन चारों अंग्रेजों (थामसन के शरीर पर केवल एक कमीज थी, डेलफास की कमर पर एक कपड़ा बंधा था, सल्लिवन और मर्फी के शरीर पर कुछ भी नहीं था की स्थिति में थे) की जान बचाई और स्वागत किया तथा अंग्रेजों को अपने यहाँ शरण देकर एक माह रखा और फिर इलाहाबाद पहुँचा दिया।²² डेलफास के अनुसार, “नदी के दूसरे किनारे सिर्फ तीन नावें सुरक्षित पहुँची लेकिन बहुत से घुड़सवारों और पैदलों की देखरेख में दो तोपें वहाँ भी मौजूद थीं। बहाव की तरफ एक मील तक जाते हुए हमारे छोटे से दल के आधे व्यक्ति हताहत हो चुके थे और हमारी दो नावें उलट गई थीं।”²³

सत्ती चौरा घाट पर 27 जून को नाना साहब के आदेश से नरसंहार बन्द किया गया और 125 महिलाओं और बच्चों को गंगा से बाहर निकाल कर लाया गया और बन्दी बनाकर तत्काल कोठी (बीबीघर) में डाल दिया गया। बन्दियों का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता था। बड़ों का खाना और बच्चों के दूध का प्रबन्ध था तथा एक बेगम उनकी निरीक्षिका थी, अन्य सुविधाएँ भी उन्हें प्राप्त थीं। बचे हुए अंग्रेजों को एक लाइन में खड़ा कर के मृत्यु दण्ड सुना दिया गया। उनमें से एक-एक अंग्रेज ने अपनी प्रार्थना पुस्तक के कुछ भाग पढ़कर सुनाने की अनुमति मांगी जो उसे दी गई। यहाँ धर्म का सम्मान करते हुए इस विद्रोह के वातावरण में भी भारतीयों ने अपनी धार्मिक उदारता का परिचय दिया। लेकिन प्रार्थना समाप्त होते ही सभी अंग्रेजों को मार दिया गया। 40 नौकाओं में से केवल एक नौका दुर्विजय सिंह की कृपा के परिणामस्वरूप बच पाई थी। शायद यह उपरोक्त दिग्विजय सिंह वाली ही नौका थी। श्री बाला जी हार्डीकर ने जनरल हवीलर की 17-18 वर्ष की द्वितीय पुत्री के विषय में लिखा है कि विद्रोही सिपाहियों में अली खाँ नामक घुड़सवार सेना का अफसर हवीलर पुत्री को लेकर चला गया था। कानपुर पर पुनः विजय प्राप्त करने के बाद मिस हवीलर की बहुत खोज की गई पर उसे ढूँढ़ा नहीं जा सका। फार्वेस मिचल के “संस्मरण” में यह घटना वर्णित है कि अंग्रेजी सेना जब कानपुर विजय कर लखनऊ जा रही थी तब उन्नाव में क्रान्तिकारियों का एक गुप्तचर मुहम्मद अली पकड़ा गया। फांसी से पूर्व अपनी अन्तिम रात्रि को फार्वेसमिचल से उसकी वार्तालाप हुई तो उसने बताया कि हवीलर की पुत्री आज इस क्षण भी लखनऊ में जीवित है। जिस व्यक्ति ने उसकी रक्षा की उसके साथ उसने मुस्लिम धर्म स्वीकार कर अपना विवाह कर लिया है। लखनऊ पर अपना अधिकार करने पर मिस हवीलर को बहुत ढूँढ़ा पर वह सदा के लिए विलुप्त हो गई।²⁵

कानपुर के लिए यह अत्यन्त गौरव की बात थी कि जिन सशक्त अंग्रेजों का दबदबा पूरे भारत पर था, यहाँ भारतीयों की शिकस्त में आये तथा आत्मसमर्पण करने के लिए विवश हुए। कानपुर की यह सफलता इतिहास में अपना अविस्मरणीय स्थान रखने वाली सिद्ध हुई। 7 जून को एक हजार अंग्रेज नर-नारी तथा बालक आदि थे। 30 जून तक उनमें से केवल 4 पुरुष व 125 स्त्रियाँ व बच्चे शेष रह गये थे। ऐसा निराधार आरोप भारतीयों यहाँ तक कि नाना साहब पर भी लगाये गये कि महिलाओं के साथ निर्लज्जतापूर्ण व्यवहार किया गया है। अंग्रेजों की

विशेष समिति ने इन्हें निराधार बताया।²⁶

1857 के भीषण संघर्ष में विश्वासघात की नीति मानने वाले जिन क्रूर शत्रुओं ने व्यक्ति, राष्ट्र और धर्म को भी पददलित कर दिया था, उनकी तुलना में नाना साहब ने एक प्रतिशत भी उग्रता और क्रूरता प्रदर्शित नहीं की। अंग्रेजों द्वारा लिखित इतिहास में यह तथ्य सामने आते हैं कि ऐसी ही परिस्थितियों में और उत्तेजना के दिनों में स्वतः इंग्लैण्ड ने भारत, आस्ट्रिया ने इटली, स्पेन ने मूरिश लोगों और यूनान ने तुर्कों पर इससे भी सौ गुनी क्रूरता का प्रदर्शन किया था।²⁷

30 जून, 1857 सायं 5 बजे नाना साहब ने अपना राजदरबार आयोजित किया। इस अवसर पर सैनिकों का एक स्नेह सम्मेलन भी आयोजित किया गया, जिसमें 6 रेजीमेन्ट, 2 अश्वारोही रेजीमेन्ट तथा स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने वाले क्रान्तिकारी दल अपनी-अपनी पताकाओं सहित उपस्थित हुए, तोपखाने को भी सम्मान योग्य स्थान दिया गया। लोकप्रिय बालासाहब के आगमन पर जय-जयकार किया गया। कार्यवाही में पूर्व दिल्ली सम्राट के नाम पर 101 तोपों की मानवन्दना (सलामी) दी गई। अतः हिन्दू मुस्लिम पूरी तरह से एक हो गये थे। नाना साहब के आगमन पर 21 तोपों की सलामी²⁸ दी गई। श्रीमंत नाना साहब के भाई बालासाहब तथा भतीजे रावसाहब का भी स्वागत किया गया तथा सम्मान में 17 तोपें दागी गई। अपने सम्मान के उत्तर में नाना साहब ने कहा विजय में सभी का योगदान है। प्रत्येक द्वारा अर्जित यश का समागम ही इस विजय के रूप में उपलब्ध हुआ है।²⁹ यह नाना साहब के बड़प्पन को उजागर करने वाले शब्द थे। तात्या टोपे के आगमन पर भी 11 तोपों की सलामी दी गई। इस प्रकार कानपुर में तोपों की गर्जना और स्वतन्त्रता के ओजपूर्ण गीत गूँज उठे और यह दृश्य देखकर दिशा-दिशा निहाल हो उठी। शाम होने पर सभी सैनिक अपनी छावनी की ओर लौट गये।³⁰ नाना साहब व बालासाहब ब्रह्मवर्त के सुप्रसिद्ध तीर्थ क्षेत्र की ओर चले गये।³¹ 01 जुलाई राज्याभिषेक की तिथि निर्धारित हुई। धूमधूपन्त नाना साहब के सिंहासनारोहण के दिन राजमहल की शोभा अवर्णनीय थी। पेशवा का प्राचीन ऐतिहासिक सिंहासन सभा भवन में स्थापित किया गया। चारों ओर प्रजाजनों का जयकारा गूँज रहा था, तोपों की आवाज से दशों दिशाएँ कम्पायमान हो रही थी। पुरोहितों के मंत्रों से अभिशिक्त होकर नाना साहब ने बिटूर में राजतिलक धारण किया।³² 32 उस दिन कानपुर के सहस्रों लोगों ने उन्हें उपहार भी भेंट किये।³³ हिन्दू जनता के मुख से निकल रहा था कि “आज राजा रामचन्द्र की विजय होने के उपरान्त पुनः रामराज्य की स्थापना हो गई है।”³⁴ एक लम्बे समय के उपरान्त पुनः स्वधर्म व स्वराज्य की मंगल सुगन्ध चारों ओर व्याप्त हो गई है। मराठों का जो राज्यसिंहासन रायगढ़ से उठा दिया गया था। वह अब अंग्रेजों के रक्त से भूमि सिंचन करने के उपरान्त ब्रह्मवर्त में पुनः स्थापित किया गया है। ऐसी पेशवाई की जय हो, स्वतंत्रता की देवी की जय हो, स्वतंत्रता अजर-अमर रहे।

संदर्भ

1. श्री तात्या टोपे की जुबानी इस घटना का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया था। (1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर— विनायक दामोदर सावरकर, पृ. 213 से, राजधानी ग्रंथागार, नई दिल्ली, 14, 1966)
2. सावरकर, विनायक दामोदर—1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर—पृ. 213-14 राजधानी ग्रंथागार, नई दिल्ली, 14, 1966,
3. थामसन — दि स्टोरी ऑफ कानपुर, पृ. 148-49. इस विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। फारेस्ट ने कालिका प्रसाद के आधार पर कहा है कि हवीलर के पास पत्र ले जाने वाली श्रीमती जैकब थी। फारेस्ट — ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन म्यूटिनी जिल्द -1 पृ. 451, शेफर्ड ने उस महिला के विषय में पहले कहा कि खबरों के मुताबिक (ए पर्सनल नरेटिव, पृ. 70) श्रीमती ग्रीनवे को एक पत्र लेकर भेजा गया था। लेकिन बाद में स्वीकार कर लिखा है कि श्रीमती हेनरी जैकब उस शर्तनामों को जनरल हवीलर के पास लें गई (ए पर्सनल नरेटिव, पृ. 71) लेफ्टिनेन्ट थामसन ने उस महिला को उस स्थान में आने में मदद की थी और उसका निश्चित मत है कि शान्ति का प्रस्ताव लाने वाली श्रीमती ग्रीनवे ही थीं। कालिका प्रसाद और उनमें समर्थकों की अपेक्षा सुरेन्द्रनाथ सेन ने भी श्रीमती ग्रीनवे को ही पत्रवाहक माना (अठारह सौ सत्तावन — सुरेन्द्र नाथ सेन, पब्लिकेशन्स डिवीजन — सूचना एवं प्रसार मंत्रालय, भारत सरकार — पृ. 148 से),
4. दि मॉरल — हिन्दी साप्ताहिक, रजत जयन्ती विशिष्ट अंक (1979-2004), पृ. 106
5. द्विवेदी, शिव नारायण— सन् 1857 के गदर का इतिहास भाग-2, पृ. 640-641, हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, 125, हरिसन

रोड, कलकत्ता-पौष, 1979.

6. थामसन - दि स्टोरी ऑफ कानपुर, पृ. 156, इस सम्बन्ध में भी विद्वानों में अलग-अलग मत हैं। शैफर्ड के अनुसार सीमा शुल्क घाट पर 24 नावें पकड़ ली गईं और उन्हें यात्रा के लिए तैयार कर लिया गया (शैफर्ड - ए पर्सनल नरेटिव, पृ. 72) सुरेन्द्र नाथ सेन, अठारह सौ सत्तावन- प्रका. सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 15 अगस्त 1957)। ऐसा कहा जाता है कि अंग्रेजों ने इस घटना के प्रतिशोध में सत्तीचौरा घाट पर ब्रिगेडियर ज्वाला प्रसाद को 21 मई, 1860 को फाँसी दी तथा इसी स्थान पर समाधान, बुद्धू चौधरी व लोचन मल्लाह, जिन्होंने नावें उपलब्ध कराई थीं को फाँसी पर लटका दिया (कानपुर नगर परिक्रमा- सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, कानपुर पृ. 07),
7. दैनिक जागरण - रजत जयंती अंक - पृ. 97 लेख कानपुर के दो महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थल - श्रीनिवास बालाजी हार्डीकर। नावों की व्यवस्था नाना साहब के आदेशानुसार तात्या टोपे ने की थी। उन्होंने सत्तीचौरा गाँव के मुखिया समाधान से अंग्रेजों की इलाहाबाद तक की यात्रा के लिए नावों की व्यवस्था करने का आदेश दिया था।
8. सावरकर, विनायक दामोदर - उपरोक्त, पृ. 215.
9. ट्रेवेलियन - कानपुर - से.
10. द्विवेदी, शिवनारायण - उपरोक्त .पृ. 642-43
11. सावरकर, विनायक दामोदर, उपरोक्त, पृ. 216.
12. उपरोक्त, पृ. 216.
13. सेन, सुरेन्द्रनाथ - उपरोक्त - पृ. 149.
14. थामसन - दि स्टोरी ऑफ कानपुर - पृ. 163-65.
15. सावरकर, विनायक दामोदर, उपरोक्त, पृ. 217.
16. कानपुर नगर परिक्रमा - 2004 सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, कानपुर - पृ. 163-65
17. सावरकर विनायक दामोदर, उपरोक्त पृ. 217.
18. सत्तीचौरा घाट का हरदेव मन्दिर समाधान से पहले मुखिया रह चुके धनी मल्लाह हरदेव ने बनवाया था। अंग्रेजों ने कानपुर पर पुनः विजय के पश्चात् इस मन्दिर की मूर्ति निकाल कर बाहर फेंक दी थी। कुछ लोगों ने रात के अंधेरे में इस मूर्ति को चुपचाप उठाकर छिपा लिया इनमें से एक मूर्ति सांवलिया शाह की थी, जो बाद में गोलाघाट में स्थापित की गई (रजत जयंती अंक-दैनिक जागरण-पृ. 97. लेख उपरोक्त - हार्डीकर)
19. विभिन्न इतिहासकारों का मानना है कि नाना साहब ने समाचार पाते ही उन्हें यह आदेश दिया था। के. एवम् मेलसन कृत म्यूटिनी - खण्ड - 2, पृ. 248 पर यह अंकित है तथा फारेस्ट स्टेट पेपर्स में भी अंकित है।
20. सावरकर, विनायक दामोदर उपरोक्त, पृ. 218.
21. थामसन मौब्रे - दि स्टोरी ऑफ कानपुर, पृ. 166-67.
22. सेन, सुरेन्द्रनाथ- उपरोक्त - पृ. 150-51.
23. डेलफास - ऐनल्स ऑफ द इण्डियन रिवेलियन - पृ. 648.
24. सावरकर, विनायक दामोदर - उपरोक्त, पृ. 218
25. हार्डीकर, श्रीनिवास बालाजी - 1857 की चिनगारियाँ, पृ. 10-12, प्रकाशन साहित्य निकेतन, कानपुर, 15 अगस्त 1957
26. म्योर प्रतिवेदन तथा विल्सन तथा मैलसन प्रतिवेदन - इण्डियन म्यूटिनी, खण्ड-2, पृ. 267
27. सावरकर, विनायक दामोदर - उपरोक्त, पृ. 219
28. संभवतः 21 दिन के घेरे की स्थिति में इन तोपों के दागने की संख्या निर्धारित की गई होगी।
29. ट्रेवेलियन - कानपुर - पृ. 293
30. सावरकर, विनायक दामोदर - उपरोक्त, पृ. 221
31. उपरोक्त, पृ. 221
32. द्विवेदी, शिवनारायण - उपरोक्त, पृ. 655
33. ट्रेवेलियन - कानपुर - पृ. 293
34. सरकालिन - नेरेटिव



युगचेतना के प्रतीक महात्मा गांधी

डॉ. विभा सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर-हिन्दी विभाग

महिला महाविद्यालय, किदवई नगर, कानपुर

मूल्यों और सिद्धान्तों के लिए समर्पित एक दिव्य आत्मा के रूप में गांधी ने एक रोशनी बनकर इस राष्ट्र की जर्जर होती हुई दैहिक और मानसिक स्थितियों को संवारने के लिए अपना जीवन समर्पित किया। इस सम्पूर्ण समर्पण यात्रा में उनके साथ सत्य, अहिंसा, प्रेम, अस्तेय और अपरिग्रह के बोधक मंत्र उनकी शक्ति भी बने और सहारा भी। गांधी के विचारों का संसार अत्यधिक विस्तृत और गहन है।

गांधी से महात्मा बने सत्याग्रही ने भारत लौटने पर उनका 'सत्याग्रह' जिस विराटता को समर्पित रहा उसमें किसानों, मजदूरों, वकीलों, शिक्षकों, स्त्रियों और हर वर्ग, जाति, धर्म और सम्प्रदाय के लोगों की सहभागिता ने विश्वभर में नये-नये मूल्यों के सहारे आन्दोलित इतिहास को नया स्वरूप दिया। कभी असहयोग के रूप में और कभी सविनय अवज्ञा के रूप में जिस सत्याग्रह को स्वीकारा उसमें कहीं भी और कभी न कटुता थी और न प्रतिकार और प्रतिशोध की भावना थी। गांधी इसी मानसिकता के साथ दीर्घगामी यशस्विता के बोधक बने।

गांधी के जीवनकाल में सत्याग्रह की कसौटी पर 'चौरीचौरा', 'साम्प्रदायिक परिनिर्णय', 'पूना पैक्ट' और 'देश विभाजन' जैसे घनघोर निराशा के प्रसंग आये लेकिन गांधी का 'सत्य' न कमजोर पड़ा और न दिशा भ्रमित हुयी। उनके प्रयासों से देश के असंख्य लोगों को 'खादी' का उपहार मिला। खादी उनके लिए 'वस्त्र नहीं विचार हैं' का विराट आर्थिक तंत्र बना। विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार से लेकिन स्वदेशी वस्तुओं और विचारों को अपनाने की पहल उनके जीवन का अपराजेय मंत्र बना। 'मैनचेस्टर और लंकाशायर' के बड़े-बड़े कारखाने बंद हुए और शुरू हुआ आर्थिक और राजनैतिक आजादी का एक बड़ा युद्ध।

गांधी ने इस लड़ाई को 'सर्वधर्म सम्भाव', 'साम्प्रदायिक एकता', 'महिला उत्थान', 'हरिजन कल्याण', जैसे जटिल प्रसंगों के साथ जोड़कर देश की आजादी के स्वप्न को साकार किया। भाषाई आधार पर 'हिन्दी' को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार की बात दोहराई। गरीबों को भूख से मुक्ति दिलाने का आह्वान किया। गैर बराबरी को समाप्त करने की अपूर्व जिज्ञासा पैदा की। गांधी जी ने अपने विचार को सजीव करने के लिए 'स्वदेशी मंत्र' समाज को दिया। कोई भी देश अपने अस्तित्व को तभी बचा सकता है जबकि वह मूल रूप से इस स्वदेशी भावना को अंगीकार कर ले। स्वदेशी केवल भावना ही नहीं बल्कि एक वास्तविकता है जिसको जीवन के सभी क्षेत्रों में निष्पादित किया जा सकता है। स्वदेशी मान्यता को भावना रूप में स्वीकार करने का कारण मुख्य रूप से यह है कि गांधीजी देश को आत्मनिर्भर देखना चाहते थे।

गांधी जी युग पुरुष थे। महात्मा गांधी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा— "सब धर्मों का लक्ष्य एक ही है। आभ्यन्तर जीवन, ईश्वर में आत्मा का जीवन, एक महान सत्य है। शेष सब कुछ बाह्य..... अहिंसा अन्य धर्मों के प्रति हमें वही आदर करना सिखाती है जो हम अपने धर्म के प्रति करते हैं। मैं अन्य मतों का भी उतना ही आदर करता हूँ, जितना अपने मत का।" मैं यह भी प्रार्थना करता हूँ कि दूसरे लोग अपने धर्म में अपने व्यक्तित्व की चरम सीमा तक उन्नति करें, जिससे एक ईसाई, एक अच्छा ईसाई बन सके और एक मुसलमान, एक अच्छा मुसलमान। मेरा विश्वास है कि परमात्मा हमसे एक दिन यह पूछेगा कि हम क्या हैं और क्या करते हैं, न कि वह नाम जो हमने अपने को और अपने कामों को दे रखा है।" गांधी जी के लिए सभी धर्म सच्चे हैं, सभी धर्मों में कोई न कोई खराबी

है और सभी धर्म गांधी जी को उतने ही प्रिय रहे, जितना हिन्दू धर्म। गांधी जी की इस अनुभूति की आधार शिला में निष्कल भावना का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

गांधी जी जब द० अफ्रीका में थे तभी उनका जीवन सरलता और सादगी की अनुकृति बनने लगा था। गांधी जी पर स्पष्ट रूप से यह प्रभाव टालस्टाय के जीवन का पड़ा। टालस्टाय एक अमीर वर्ग के सदस्य थे, सभी प्रकार के सुखों को उन्होंने भोगा था, अपरिमित सम्पदा के सामीप्य को भोगने के बाद भी टालस्टाय का चिंतन भ्रमित नहीं हुआ। उन्होंने अपने जीवन को ही अनुभूति के लिए प्रस्तुत किया। गांधी जी को टालस्टाय के जीवन में दो महत्वपूर्ण तथ्य मिले—प्रथम वह जैसा कहते थे वैसा ही करने वाले पुरुष थे—द्वितीय— उनकी सादगी अद्भुत थी। इन दो कारणों से टालस्टाय गांधी जी के लिए युग की सत्य मूर्ति बने। गांधी जी ने लिखा है—“उन्होंने सत्य को जैसा माना वैसा ही पालने का उग्र प्रयत्न किया। अहिंसा के विषय में जितना साहित्य टालस्टाय ने लिखा है, जहां तक मैं जानता हूं, उतना हृदयस्पर्शी साहित्य दूसरे किसी ने नहीं लिखा है, और उससे भी आगे जाकर मैं यह कह सकता हूं कि अहिंसा का सूक्ष्म प्रयत्न टालस्टाय ने किया था, उतना प्रयत्न करने वाला आज हिन्दुस्तान में कोई भी नहीं। ऐसे किसी आदमी को मैं नहीं जानता।”²

गांधी जी के दैनिक जीवन में ‘प्रार्थना’ का विशेष महत्व रहा है हृदय की पवित्रता के लिए गांधी जी ने प्रार्थना की शुद्धि का एक मार्ग बनाया है। उनके अनुसार— “प्रार्थना या उपवास शुद्धि की एक अत्यन्त शक्तिशाली प्रक्रिया है और जो चीज शुद्ध करती है वह अवश्य ही हमें हमारा कर्तव्य अधिक अच्छी तरह करने और अपना लक्ष्य सिद्ध करने के लिए समर्थ बनाती है।” प्रार्थना हमें एकाग्र बनाए रखती है तथा ईश्वर के साथ हमारा एकाकार कराती है। प्रार्थना उस शान्त मनःस्थिति का एक आभूषण है जिसमें मनुष्य दूषित इच्छाओं से मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा करता है। उनकी प्रार्थना में लोकाचार की अपेक्षा सदाचार की भावना मुखरित थी। यही कारण है कि उनकी प्रार्थना सभाओं में सभी धर्मावलम्बी भाग लेते थे।

गांधी जी ने अपने विचार को सजीव करने के लिए ‘स्वदेशी मंत्र’ समाज को दिया। कोई भी देश अपने अस्तित्व को तभी बचा सकता है जबकि वह मूलरूप से इस स्वदेशी भावना का अंगीकार कर ले। स्वदेशी केवल भावना ही नहीं बल्कि एक वास्तविकता है जिसको जीवन के सभी क्षेत्रों में निष्पादित किया जा सकता है। स्वदेशी मान्यता को भावना रूप में स्वीकार करने का कारण मुख्य रूप से यह है कि गांधी जी देश को आत्मनिर्भर देखना चाहते थे।

गांधी ने अहिंसा को व्यक्तिगत धरोहर की जगह सार्वजनिक धरोहर बनाकर पूरे भारत को नैतिक और आध्यात्मिक धरातल पर सरलता प्रदान की। गांधी जी को वही अहिंसा स्वीकार्य थी जो दूसरों का सहारा बने, कष्ट सहें और अत्याचारी के विरुद्ध संघर्ष करें, समर्पण नहीं।

अंग्रेजों के आगमन के साथ-साथ साम्प्रदायिकता के विष का प्रसार बहुविध हुआ। ‘विभाजित कर शासन करो’ की नीति के मूलरूप में इसी साम्प्रदायिकता के विस्तार का आधार हैं। अपनी कुटिल नीति के कारण अंग्रेजों ने दो बड़े सम्प्रदायों के मध्य आ रही एकता को छिन्न भिन्न कर दिया। यहीं से साम्प्रदायिक वैमनस्य के प्रसार का एक अविस्मरणीय अध्याय प्रारम्भ होता है। “अंग्रेजों को यह निश्चय हो गया था कि नई सत्ता के विस्तार तथा अस्तित्व के लिए मुसलमानों को कुचलना अनिवार्य है अतः उन्होंने जान बूझकर ऐसी नीति अपनाई जिससे कि मुसलमानों की आर्थिक अवस्था छिन्न-भिन्न हो जाए, उनकी प्रतिभा पर आघात पहुंचे और उनका पूर्णतः पतन सम्भव हो।”³ सर सय्यद अहमद ख़ाँ ने इस अलगाव के अध्याय को प्रिंसपल बैंक की सहायता से समाप्त कर दिया।

सम्प्रदायिकता के प्रसंग में अंग्रेज को अब जिन्ना एक ऐसे नेता के रूप में मिल गए थे जो मुसलमानों को कभी भी हिन्दुओं से मिलने नहीं देते थे। गांधी जी ने देश की अखण्डता, एकता और स्वतंत्रता के लिए जिन्ना की उग्रभावनाओं की किंचित मात्र चिंता नहीं की। देश में फैलते हुए वैमनस्य और हिंसा को रोकने के लिए जितने

अधिक प्रयास किए जा रहे थे, हिंसा का प्रसार उतना ही बढ़ रहा था। गृह युद्ध की आशंका से बचने के लिए राष्ट्रीय नेताओं ने विभाजन को स्वीकार किया। गांधी मौन रहे, विवशता ने उन्हें मौन रखा। पाकिस्तान का निर्माण हुआ। सम्पूर्ण जीवन को उन्होंने साम्प्रदायिक एकता के लिए अर्पित किया था। उनकी मृत्यु एक स्वधर्मी के हाथों से हुई। उनकी मृत्यु एकता के लिए एक वरदान है। विभिन्न सम्प्रदायों के कारुणिक रूदन उनके द्वारा साम्प्रदायिक एकता के लिए किए गए प्रयत्नों को स्पष्ट कर देते हैं। "मैं उन आठ मजदूरों को याद रखूंगा जिन्होंने यमुना के निकट सामान्य हरे मैदान में चिता तैयार करने में सहायता की थी। इन मजदूरों ने चिता पर चंदन की लकड़ियां रखते हुये मुझे बताया कि महात्मा जी से प्रेम करते थे क्योंकि वह मुसलमानों के सच्चे दोस्त थे।"⁴

दो सम्प्रदायों के मध्य एकता की आकांक्षा को उन्होंने केवल हृदय में ही धारण नहीं किया अपितु उसकी सफलता के लिए अनथक प्रयास किए। "अपने जीवन के अंतिम महीनों में साम्प्रदायिक कटुता मिटाने के लिए तथा सामान्य हित के लिए उन्होंने अपने शान्तिपूर्ण प्रभाव का प्रयोग किया और उसमें वह सफल हुए।"⁵ गांधी जी ने एकता की जो कल्पना की थी उसको साकार रूप देने से पहले ही देश का विभाजन हो गया। उनके साम्प्रदायिक एकता के आदर्शों को पूर्ण करने के लिए धर्म के उच्च आदर्शों को अंगीकार करना और धर्म के प्रति स्वभाव वृत्ति को जन्म देना अब भी आवश्यक हैं ऐसे कार्यों से पृथक रहना आवश्यक हैं जो दूसरे सम्प्रदाय के लोगों को ठेस पहुंचाते हों। भय के स्थान पर निर्भय होने की दीक्षा लेकर अविश्वास और संदेह को विश्वास और सहयोग की भाषा सीखना आवश्यक है। उनके व्यक्तिगत जीवन के मुखरित साम्प्रदायिक एकता की भावना सम्पूर्ण विश्व के कल्याण की प्रेरक शक्ति है। भारत ने धर्म निरपेक्षता का व्रत लिया है। शासन के सर्वोच्च पदों पर विभिन्न सम्प्रदाय के लोगों को बैठने का अवसर सहज रूप में उपलब्ध है किन्तु समाज में अभी भी विवादों में संघर्ष की स्थिति आ जाती है, हमें आज इसी स्थिति से बचना है।

गांधी जी की मानसिक रचना पूर्णतः धार्मिक और आचारात्मक है। "वे भद्र हैं क्योंकि वे सबके प्रति उदार हैं। सब उनकी शांति का लोहा मानते हैं क्योंकि उनके दर्शन और दैनिक व्यवहार में पूर्ण सामंजस्य के कारण ही उनका प्रभाव है। मूलतः जनता में उनका अटूट विश्वास है, परन्तु वे उनकी सेवा में विश्वास करते हैं, उसके शोषण द्वारा अपने यश और शक्ति के विस्तार में कदापि नहीं उनकी न्याय भावना कानून के विरुद्ध विद्रोह करती है और वह सामाजिक सम्बन्धों के आधार शास्त्र पर मूलतः आधारित है..... गांधी जी महात्मा हैं। उन्हें दी गई महात्मा की संज्ञा आकस्मिक नहीं हैं यह एक सार्थक नाम यानी 'इस्म बा मुसम्मा' है।..... गांधी जी उन अवतारों में से हैं जो संसार की शुद्धि के लिए और उसे पापों से छुड़ाने के लिए पृथ्वी पर अवतरित होते हैं। वे उसके सुधारक और संरक्षक के रूप में आते हैं।"⁶ उनके लिए व्यवहार और विचार में कोई अंतर नहीं था। गांधीजी साधनों की पवित्रता के आग्रह का मात्र समर्थन ही नहीं करते बल्कि उसके प्रतिपादन को अपने सिद्धान्तों का मूल आधार मानकर चलते हैं।

गांधी जी मूलतः एक धर्म पुरुष थे। नैतिकता के आवरण में उनकी मानव सेवा की इच्छा उन्हें राजनीति में ले आई। धार्मिक प्रवृत्तियों वाला राजनीतिज्ञ तटस्थ भाव से मानवजाति की सेवा करेगा। वह कुछ देने का प्रयास करेगा, छीनने का नहीं। गांधीजी ने धर्ममय राजनीति को अंगीकार कर संसार को एक नई दिशा की ओर ले जाने का प्रयास किया है। धोखे के आधार पर प्राप्त सत्ता से राजनीतिज्ञ सामान्य राजनीतिज्ञ से भिन्न मद-मोह में ग्रस्त हो जाते हैं और नीति के स्थान पर कूटनीति को पदासीन कर देते हैं। राजनीति, गांधी जी को धर्म और आचार शास्त्र के एक अंग के रूप में मान्य है। गांधीजी राजनीति में भी ऐसा ही आदर्श मानते हैं जिसके अनुसार मानव सेवा सम्भव हो सके जैसे उनके लिए धर्म भी मानव सेवा का अविभाज्य अंग है। वी.पी. वर्मा के अनुसार, "उनके लिए राजनीति ईश्वर की सेवा करने का एक मार्ग था।"⁷ यह तभी हो सकता है जब कि प्रत्येक मनुष्य स्वयं अपने कार्यों को शुद्ध बनाए। धर्म मनुष्य का इस शुद्धता के लिए आग्रह ही तो है, और यदि प्रत्येक राजनीतिज्ञ इस आग्रह

को स्वीकार कर ले तो मानवजाति सुखमय स्थिति में पहुंच सकता है।

गांधी जी के लिए सत्य धर्म है, अहिंसा कर्म है और सत्याग्रह साधन है। व्यवहारिक राजनीतिज्ञ के नाते उनके जीवन में इन्हीं तत्वों का समावेश मिलता है। यही कारण है कि गांधी जी के चिंतन में अनैतिक साधनों के लिए कोई स्थान नहीं है। गांधी जी के जीवन को भगवद्गीता के कर्म के संदेश ने जीवन भर अनुप्रेरित किया। इंग्लैंड जाने से पूर्व उन्होंने गीता को पढ़ा नहीं था, इसलिए दो थियोसोफिस्ट मित्रों की प्रेरणा से उन्होंने इस महान धर्म ग्रंथ का अध्ययन किया। गीता ने उन्हें नीति धर्म की शिक्षा दी। गांधी जी ने लिखा है— “इन श्लोकों का मेरे मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनकी ध्वनि मेरे कानों में गूंजती ही रहती है। भगवद्गीता अमूल्य ग्रंथ है, यह मुझे उस समय प्रतीत हुआ। वह मान्यता धीरे-धीरे बढ़ती गई और आज मैं तत्वज्ञान के लिए उसे सर्वोत्तम ग्रंथ मानता हूँ। निराशा के समय में इस ग्रंथ ने मेरी अमूल्य सहायता की है।”⁸ गांधी जी ने अपने दक्षिण अफ्रीका के प्रवास में इस ग्रंथ का नियमित पारायण किया। एक-एक श्लोक प्रतिदिन प्रातः स्नान के समय कंठस्थ करते। गीता उनके परवर्ती जीवन में ‘मार्गदर्शिका’, ‘आचरण संहिता’, ‘धर्मकोष’, ‘आत्मिक’, प्रेरणा का स्रोत, और संकट में सच्चा मित्र और सहायक थी। इस तथ्य को गांधी जी ने स्वीकार करते हुए कहा है, “जब मुझे प्रकाश की एक किरण भी कहीं दिखाई नहीं देती, मैं उसे भगवद्गीता में खोजता हूँ और उसके किसी श्लोक में चिह्नित आशा का संदेश मेरे भारी से भारी दुःख को चुटकियां बजाते दूर कर देता। अनंत दुःख, कष्ट और आपदाओं से भरे अपने जीवन में जो स्थिर और अविचलित रहा है, उसका सारा श्रेय भगवद्गीता को ही है।”⁹

प्राणी मात्र की एक रूपता के आदर्श ने गांधी के मन में अहिंसा को जन्म दिया। गीता के ‘अपरिग्रह’ और ‘समभाव’ शब्द ने उन्हें भौतिक वस्तुओं के परित्याग से अनुप्रेरित किया। गांधी जी ने सदैव यह स्वीकार किया। “हिन्दू धर्म, जिस रूप में मैं उसे समझ सका हूँ, मेरी आत्मा को संतुष्ट और परिपूर्ण करने वाला है और भगवद्गीता में मुझे जो शान्ति मिलती है वह तो मैं बाइबल के गिरिप्रवचन में भी नहीं पाता।” गीता से उन्होंने तर्क और न्याय की नीति और धर्म को ग्रहण किया, यही कारण है कि उन्होंने अमानवीय और अन्यायपूर्ण प्रथाओं का कभी समर्थन नहीं किया। एकता का व्यवहारिक आदर्श लेकर गांधीजी ने जिस प्रकार अस्पृश्यता के कलंक को मिटाने के लिए धर्म को शुद्धता प्रदान की, उसी प्रकार गांधीजी बड़े सम्प्रदायों के बीच एकता चाहते थे। भारत में प्रधानतम दो धर्मानुयायी रहते हैं। हिन्दू धर्म के अनुयायी, तथा इस्लाम धर्म के अनुयायी। इन दोनों धर्मों की अपनी अपनी मान्यताओं के कारण ही दोनों धर्म रुढ़ियों को ग्रहण करते चले आ रहे हैं। यद्यपि साम्प्रदायिक एकता की इच्छा रखने वाले इस महान संत के सामने ही देश विभाजित हुआ, किन्तु विभाजन के बाद भी भारत में रहे मुसलमान सदभावना के प्रसार को पाकर हिन्दुओं के समीप्य का सुख भोग सके, गांधी जी की यह जीवन पर्यन्त इच्छा रही।

फिरोज शाह मेहता ने उन्हें भारतीय स्वाधीनता संग्राम का वीर तथा भारत सरकार ने उन्हें ‘हिन्द केसरी’ की उपाधि से सम्मानित किया। गांधी के यह सभी सम्मान उनकी उस महान प्रयोगशाला के प्रयोगों की उपलब्धि थे जो उन्होंने प्रवासी भारतीय के रूप में किए थे। जब वह डरबन से भारत लौटने लगे तब उन्होंने अपनी सेवाओं के लिए मिले, स्वर्णभूषणों को प्रवासी भारतीयों का एक ट्रस्ट बनाकर उसे सौंप दिए। इस प्रकार उन्होंने मोह की दीवार को प्रत्येक स्थल से गिरा दिया था। अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को सार्वजनिक सेवा के लिए समर्पित करके उन्होंने सेवा के नए प्रतिमानों का निर्माण किया। अहिंसा, सत्य और प्रेम के विधान ने उन्हें सत्याग्रह की दीक्षा दी थी। आश्रम जीवन उनके लिए परिवार हो गया था जब सर्व-धर्म समभाव तथा अस्पृश्य समाज की सेवा के आदर्श व्यवहार रूप में मुखरित थे। यह प्रयोग उनके लिए उपलब्धि भी थे, और प्रेरणा भी।

गांधी के बाद का भारत जिस तीव्रगति से गांधी और अहिंसा को भूला वह दुर्भाग्य स्थिति का पर्याय है। गांधी का विचार समय और परिस्थितियों के संदर्भ में आज ओझिल होता हुआ अनुभव होता है। गांधी जी के विचारों के अनुकरण से हम राष्ट्रीय जीवन में व्याप्त हिंसा, घृणा, अविश्वास और अहंकार पर टिकी हुई वर्तमान सभ्यता

के विविध दोषों को सरलता से दूर कर सकते हैं। समाज में बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार, व्याभिचार और हिंसा का व्यापक स्वरूप बदलते हुए जीवन मूल्यों का ही परिणाम है। गांधी जी पूर्णरूपेण जीवन मूल्यों पर आधारित जीवन दर्शन को प्रस्तुत करते हैं। वर्तमान शताब्दी का संघर्ष जीवन मूल्यों का ही संघर्ष है। इसमें नैतिकता का समावेश उपयोगी और अपेक्षित है। गांधीजी को हमें एक विचार और संस्था के रूप में जीवित रखने के लिए इस सबके साथ-साथ अपने दृष्टिकोण को सबसे पहले बदलना आवश्यक है।

संदर्भ सूची

1. सम्पादित-गांधी : संस्मरण और विचार, पृ0-37
2. वही, पृ0-40
3. एन्ड्रूज, सी0एफ0- 'महात्मा गांधीज आइडियाज', पृ0-53-54
4. स्टीमसन, रोवर्ट-लिसनर, पृ0-206
5. प्रधानमंत्री एटली की श्रद्धांजली- 'हिन्दुस्तार', 1 फरवरी 1948
6. सीता रमैया , (डॉ0) - पट्टाभी 'गांधी और गांधीवाद', पृ0-20-21
7. वर्मा, वी0पी0- 'दि0 पालिटिकल फिलॉसफी ऑफ महात्मा गांधी एण्ड सर्वोदय', पृ0- 12
8. गांधी, मोहनदास करमचन्द- 'सत्य के प्रयोग', पृ0-90
9. नेल्सन जी- स्पीचिज एण्ड राइटिंग्स ऑफ महात्मा गांधी, पृ0-1061



गांधीवादी चिंतन में निहित प्राकृतिक संसाधन एवं पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा

डॉ. अनुपमा यादव

सहायक प्राध्यापक – राजनीति विज्ञान
शासकीय स्नातकोत्तर महा., भेल, भोपाल (म.प्र.)

पृथ्वी का धरातल और उसके सारे प्राकृतिक संसाधन, उसकी सारी प्राकृतिक दशाएं, प्राकृतिक शक्तियां मानव जीवन को न केवल प्रभावित करती हैं वरन् वे उसके जीवन का आधार होती हैं। प्रकृति से हमारा सम्बन्ध हमेशा से गहरा रहा है प्रकृति ने जीव-जन्तुओं, वनस्पति, नदी, पहाड़, वायु, जल, खनिज सम्पदा आदि की रचना इसलिए की ताकि पर्यावरण संतुलित एवं संरक्षित रहे हमारे धर्मग्रंथों एवं महापुरुषों ने भी हमेशा यही संदेश दिया कि भारतीय मूल्य प्रकृति को पोषण करने का है दोहन करने या शोषण करने का नहीं।

महात्मा गांधी कोई पर्यावरणविद् या अर्थशास्त्री नहीं थे ना ही इसके नियमों एवं सिद्धान्तों में उनकी कोई अभिरुचि थी किन्तु समय-समय पर भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के संदर्भ में उन्होंने जो स्पष्ट दिशा-निर्देश दिये वे बाद में आदर्श तो बने ही साथ ही उनमें पर्यावरण एवं प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की आदर्श भावना भी दृष्टिगोचर हुई, उनका मानना था कि “भारत गाँवों में बसता है, इसलिए उन्होंने गाँवों को प्राथमिक इकाई के रूप में माना उनके अनुसार भारत के पुनर्निर्माण का आधार गाँव ही हो सकते हैं। इसलिए ग्रामीण विकास पर उन्होंने सबसे ज्यादा जोर दिया उनका मानना था कि ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले गरीब लोग महिलायें आदि अपनी विभिन्न जरूरतों जैसे-खाना, ईंधन, औषधि, लकड़ी, जल आदि प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर रहकर जीवन-यापन करते हैं। पारम्परिक रूप से उनकी जीवनचर्या भी प्राकृतिक नियमों द्वारा संचालित होती हैं। प्रकृति के करीब होने के कारण प्राकृतिक संसाधनों के विषय में मूलभूत जानकारी उसके दोहन उसके संरक्षण तथा उसके सतत पोषणीय प्रबंधन का ज्ञान उन्हें अधिक रहता है यद्यपि उनका यह ज्ञान श्रृंखलाबद्ध न होकर बिखरा रहता है किन्तु उसके संरक्षण के प्रति वे सचेत भी रहते हैं। इसीलिए वे गाँवों को राष्ट्रीय पुरुषार्थ का प्रारम्भिक बिन्दू मानते थे स्वावलम्बी गाँवों का चित्र उपस्थित करते हुए उन्होंने कहा कि “मेरे ग्राम स्वराज्य का आदर्श यह है कि प्रत्येक ग्राम एक पूर्ण गणराज्य हो। अपनी आवश्यक वस्तुओं के लिए यह अपने पड़ोसियों पर निर्भर न रहे। इस प्रकार के प्रत्येक ग्राम का पहला काम होगा खाने के लिए अन्न और कपड़ों के लिए रूई की फसल उत्पन्न करना”¹ गांधी जी कहते थे कि “देश में निर्मित वस्तुओं के उपभोग से देश के निवासियों में राष्ट्रभक्ति की भावना भी प्रबल होगी और आत्मनिर्भरता एवं सहभागिता भी बढ़ेगी।”

उन्होंने अपने आर्थिक विचारों में श्रम को उच्च स्थान दिया वे श्रम को एक प्राकृतिक नियम मानते थे। उनका मानना था कि श्रम न केवल शरीर को स्वस्थ रखता है बल्कि मस्तिष्क को भी प्रेरित करता है। धन के महत्व को स्वीकार करने के बावजूद भी वे उसे साधन ही मानते थे। उनका कहना था कि—“जीने के लिए खाओ, खाने के लिए मत जियो” यद्यपि आधुनिक समाज में उपभोग के स्तर में गुणात्मक वृद्धि को आर्थिक संवृद्धि का मापदण्ड माना जाता है परन्तु गांधी दर्शन में उपभोग, एक साधन मात्र ही है न कि पूंजीवादी व्यवस्था के समान साध्य।²

वे मशीनीकरण पर आधारित औद्योगीकरण के विरोधी थे। उनका कहना था—‘इसने मानव को गुलाम बना दिया है, जिससे एक तो मानव का शारीरिक एवं नैतिक पतन हुआ है और दूसरा मानवीय समाज में आर्थिक सहयोग

के स्थान पर आर्थिक प्रतियोगिता को बढ़ावा मिलने से पारिस्थितिकी असंतुलन की समस्या जन्मी है वे भारत जैसे श्रम प्रधान देश में श्रम प्रधान उद्योगों के बदले पूंजी प्रधान वृहद् उद्योगों के विकास का विरोध करते थे। उनका कहना था कि—“यंत्रीकरण उस देश—विदेश के लिए उपयुक्त हो सकता है, जिस देश में श्रम की कमी एवं पूंजी की प्रचुरता हो। भारत जैसे देश में जहां श्रम का आधिक्य एवं पूंजी की न्यूनता है, भारी मशीनों एवं यंत्रों का प्रयोग मानवीय अस्तित्व के लिए पूर्णतया अभिशाप है। इसीलिए उन्होंने आर्थिक विकेन्द्रीकरण में विश्वास रखते हुए लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना पर जोर दिया। इसी लक्ष्य से गांधी ने खादी का इतना अधिक प्रचार किया।”³ उनके विचारों में खादी एक महत्वपूर्ण स्थान रखती थी। उनका कहना था—एक तो यह हमारा देशी गृह उद्योग है। दूसरे किसान अपने फुर्सत के समय को यों ही ना गवां दें। इसी कारण गांधी ने खादी को अपने स्वदेशी सिद्धान्त का एक महत्वपूर्ण हिस्सा माना था।⁴ इस प्रकार मशीनीकरण का विरोध एवं श्रम की महत्ता को स्वीकार कर उन्होंने अंत तक पूंजी प्रधान तकनीक के बदले श्रम प्रधान तकनीक के विकास एवं प्रचार—प्रसार का प्रबल पक्ष लेकर शोषणविहीन, पर्यावरण प्रदूषण मुक्त आर्थिक विकास पर जोर दिया। उनका स्पष्ट मत था कि—“मिलों और शहरों के बढ़ने से हिन्दुस्तान के करोड़ों लोगों की समृद्धि नहीं बढ़ेगी।”⁵ चरखे को वे आत्मशक्ति आत्मनिर्भरता का प्रतीक मानते थे। उनका कहना था कि—“जीवनदायी चरखे के द्वारा करोड़ों लोगों के लिए निराशा का अंधकार आशा के प्रकाश में बदला जा सकता है।”⁶ गांधीजी का यह भी विश्वास था कि ग्रामोद्योगों का पुनरुद्धार करके हम विकास भी कर लेंगे और भौतिकवादी संस्कृति से दूरी भी बना लेंगे। इनको बढ़ावा देने से अन्य सार्वजनिक उद्योग अपने आप पुनर्जीवित हो जायेंगे।”⁷

निःसंदेह गांधी द्वारा प्रस्तुत आर्थिक चिन्तन में प्रगति की निरन्तरता बनाये रखने के लिए विकास एवं प्रकृति के बीच एक सकारात्मक समझौतावादी दर्शन दृष्टिगोचर होता है। यह सत्य है कि पर्यावरण और विकास का सम्बन्ध आदिकाल से चला आ रहा है। किन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जब बड़े स्तर पर औद्योगीकरण बढ़ा और बड़े स्तर पर जीवाश्म ईंधन, रासायनिक पदार्थों, परमाणु रिएक्टर्स का बढ़ता उपयोग, जंगलों की अंधाधुन्ध कटाई, प्रकृति का अनुचित दोहन इतने तेजी से होने लगा कि जिससे मानव जीवन के अस्तित्व के लिए ही चुनौती बन गई। इससे न केवल मरुस्थलों में वृद्धि हुई बल्कि भूमि की उपजाऊ क्षमता भी कम हुई। संयुक्त राष्ट्र ग्रुप की रिपोर्ट में तो यह तक कह दिया गया कि—“इसमें कोई संदेह की गुंजाइश नहीं है कि प्राकृतिक संसाधनों की कमी और पारिस्थितिक दबाव भविष्य में मानव और देशों के कल्याण के लिए वास्तविक खतरे हैं।”⁸ औद्योगीकरण एवं उपभोक्तावादी, सुख, वैभव, आर्थिक विकास की इस मानवीय प्रवृत्ति ने प्राकृतिक संसाधनों का इतना विदोहन किया कि जो पर्यावरण⁹ पहले उसके लिए वरदान हुआ करता था। आज वही उसके लिए दण्डक एवं विनाशक सिद्ध हो रहा है। पहले पर्यावरण से जो कच्चे संसाधन हमें आसानी से प्राप्त हो जाते थे आज उनमें इतनी कमी होती जा रही है कि जिसके कारण विकास प्रभावित हो रहा है।”¹⁰

यर्थाथता यह है कि औद्योगिक विकास ने जहां मानव जीवन को अधिकाधिक सुविधा सम्पन्न एवं आरामदायक बनाया है वहीं दुष्परिणाम पर्यावरण प्रदूषण के रूप में विश्व के समक्ष एक गम्भीर सोचनीय समस्या बनकर उभरा है। इसके दुष्प्रभावों से न केवल जलवायु में परिवर्तन हुआ है वरन् ऋतुओं में परिवर्तन, वर्षा की मात्रा में कमी, फल—फूल के पकने के समय परिवर्तन, पक्षियों के प्रवासन काल में परिवर्तन, मानवीय रोगों में वृद्धि, पशुओं के स्वास्थ्य पर प्रभाव, कृषि में बढ़ते रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों के प्रयोग ने सम्पूर्ण विश्व की मानवता को अपने अस्तित्व को बचाने के लिए सोचने के लिए विवश कर दिया। प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित दोहन से धीरे—धीरे संसाधनों पर दबाव पड़ने लगा। यह सत्य है कि वैदिककाल के बाद से ही भारत में संसाधनों पर दबाव पड़ने लगा था, किन्तु उस समय मात्र प्रत्यक्ष संसाधन विशेषकर खनिज संसाधनों का ही दोहन हुआ। लेकिन ईस्ट

इंडिया कम्पनी के बाद संसाधनों की लूट-खसोट का बीजारोपण शुरू हो गया। इसके बाद स्वतंत्र भारत तथा वर्तमान भारत में स्थिति और चिंतनीय होती गई। 1970 के दशक में प्रकाशित पुस्तक "द एन्वायरमेंटल हैडबुक" में कहा गया कि—"अनिवार्य कच्ची सामग्रियों (विविध खनिज, लकड़ी आदि) कृषिगत पदार्थ तथा ईंधन आपूर्ति (कोयला, पेट्रोल) के स्रोतों के क्षीण होने तथा वायु एवं जल के प्रदूषित होने के साथ बढ़ती जनसंख्या के भरण-पोषण का संकट मनुष्य जीवन की धरती पर से समाप्ति का घंटा बजा रहा है। 1972 में क्लब आफ रोम से सम्बद्ध विद्वानों ने "द लिमिट्स टू ग्रोथ" नामक पुस्तक प्रकाशित की तथा जनसंख्या एवं संसाधन के उत्पादन में उनकी मांग तथा खपत पर चिंता व्यक्त की तथा रिपोर्ट में कहा कि 2100 ई. के पूर्व निरन्तर द्विगुणित होती जनसंख्या एवं औद्योगिक उत्पादन वृद्धि अकस्मात् रुक जायेगी एवं संसाधन प्रायः समाप्त से हो जायेंगे।

वास्तव में वर्तमान स्थिति को यदि देखा जाए तो जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव प्राकृतिक संसाधनों पर तो पड़ता देखा जा रहा है। इसके दुष्प्रभाव भूमि संसाधन, जल संसाधन, वन संसाधन, आवासीय मांग कृषि उत्पादन, स्वास्थ्य पेयजल भोजन, शिक्षा तथा अन्य बुनियादी आवश्यकताओं पर पड़ रहा है। इसका प्रभाव न केवल उपर्युक्त संसाधनों तक ही सीमित है। वरन् इसका प्रभाव पर्यावरण तथा पारिस्थितिकी तंत्र जैसे—ओजोन, ग्लोबल वार्मिंग तथा मानसून की अनिश्चितता, सूखा, बाढ़ तथा संक्रामक बीमारियों पर भी पड़ा है। बढ़ती आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयत्न से न केवल भू-तत्वों का अधिकाधिक बलपूर्वक तात्कालिक स्वार्थ साधन के लिए गलत एवं विनाशकारी शोषण हो रहा है, वरन् ऐसे खनिजों का भी शोषण हो रहा है जो शीघ्र ही समाप्त होने के संकेत दे रहे हैं। निश्चय ही हम दिनों-दिन फैलती हुई एक जटिल और उलझी हुई दुनिया की ओर अग्रसर हो रहे हैं, जहां उन्नति की बेसब्र दौड़ में प्रकृति के बहुमूल्य साधनों का निर्माता से अपव्यय एवं अधिकाधिक उत्पादन की होड़ से पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। आज पहले से कहीं अधिक बड़े पैमाने पर गरीबी, बेरोजगारी, आर्थिक विषमता, निरक्षरता, भुखमरी, अकाल, भ्रष्टाचार, कुपोषण, शहरीकरण, अनियंत्रीकरण, मंहगाई, आतंकवाद, सामाजिक सम्बन्धों में गिरावट, विदेशी ऋणों एवं ब्याज का बढ़ता भार राजकोषीय घाटे में निरन्तर वृद्धि, सीमा पर बढ़ता तनाव, आर्थिक मंदी, बढ़ती हिंसा एवं वैमनस्य आदि अनेक समस्याओं से देश ग्रसित है। गांधीजी का स्पष्ट रूप से कहना था कि—"मैं अपना यह विश्वास घोषित कहना चाहूंगा कि विशाल उत्पादन की धुन ही संसार के संकट के लिए उत्तरदायी है।"¹³ दुनिया को यदि विनाश से बचाना है और देश को यदि इन समस्याओं से मुक्ति पाना है तो गांधीजी द्वारा दिखाया गया मार्ग ही सर्वोत्तम उपाय है। क्योंकि उनके विचारों में वृक्षारोपण, पशुपालन, मधुमक्खी पालन, कुटीर उद्योगों एवं हस्तकला जैसे—कृषि पर आधारित औद्योगिक विकास में पर्यावरण संरक्षण के स्पष्ट दर्शन होते हैं। देश के चतुर्दिश विकास के लिए उनका कहना था कि प्रकृति के साथ संघर्ष की अपेक्षा सहयोग द्वारा जीवन और अधिक मूल्यवान बनाया जा सकता है। इसीलिए उनका मानना था कि आर्थिक विकास की सम्पूर्ण योजनाएं संरक्षण पर आधारित होकर ही दीर्घजीवी हो सकती हैं। और मानव जाति को अर्थपूर्ण लाभ तभी प्राप्त हो सकता है जब इन योजनाओं का पर्यावरण पर बुरा प्रभाव न पड़े उन्होंने विकास के लिए पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता पर अत्यधिक बल दिया।

वस्तुतः गांधीजी का पर्यावरण सम्बन्धी चिंतन पाश्चात्य देशों के समान भौतिक सुख की प्राप्ति के लिए प्रकृति के साथ शोषणकारी प्रवृत्ति पर आधारित न होकर प्रकृति द्वारा प्रदत्त निःशुल्क संसाधनों का समुचित उपयोग मानव कल्याणमयी जीवन के लिए एक नैतिक अनुकूलता दोहन पर आधारित था। उनके विचारों की प्रासंगिकता से यह सत्यापित हो चुका है कि "गांधीवाद केवल नैतिक आग्रह ही नहीं है बल्कि एक संरक्षित पर्यावरण शास्त्र, विकसित अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र भी है जिसमें एक ओर तो आज के प्रदूषित जीवन की अनगिनत समस्याओं तथा सामाजिक आर्थिक जीवन में व्याप्त अनेक जटिलताओं का सम्यक सन्निहित है तो दूसरी ओर स्वच्छ निर्मल प्रकृति से सुखद मानवीय भविष्य के कल्याण के लिए सूक्ष्म दिशा दृष्टि जिसमें विकास एवं प्रकृति के बीच एक सकारात्मक समझौतावादी दर्शन दृष्टिगोचर होता है।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. डॉ. बी.एल. फड़िया—“आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन”, पृ-203
2. कुरुक्षेत्र, अक्टूबर 2007, वर्ष-53, अंक-12, पृ-64
3. शर्मा, ब्रह्मदत्त—“गांधी चिन्तन में राष्ट्रवाद”, पृ-84
4. प्रतापसिंह—“गांधी दर्शन”, पृ-87
5. मूलप्रश्न, नवम्बर-जनवरी 2010—“गांधी : चिन्तन व व्यवहारिक प्रयोग”, पृ- 33
6. यंग इंडिया, 27.08.1925, पृ-299
7. यंग इंडिया, 30.09.1926, पृ-341
8. सिंहल, एस.सी.—“लोक प्रशासन के प्रमुख विचार एवं मुद्दे”, पृ-221
9. “ए जर्नल ऑफ एशिया डेमोक्रेसी एंड डवलपमेन्ट”, खण्ड-9, अप्रैल-जून 2009, पृ-09
10. जैन, संजय, राणा रवीन्द्र सिंह द्विवेदी हरिश्चन्द्र—“लोक प्रशासन के नवीन बिन्दू”, पृ-574
11. “साइंस इंडिया राष्ट्रीय विज्ञान पत्रिका” वर्ष-4, अंक-9, अगस्त 2011, पृ-04
12. कुरुक्षेत्र, जून 2007, वर्ष-53, अंक-8, पृ-29
13. रचना, सितम्बर-अक्टूबर 2004, अंक-50, पृ-3



डॉ. भीमराव अम्बेडकर का समग्र दर्शन

डॉ. गीता यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर—राजनीति विज्ञान विभाग

टी.डी. कालेज, जौनपुर, उ.प्र.

बाबा साहब अपनी तुलना हज़रत मूसा से करते थे। हज़रत मूसा यहूदियों को मिश्र से फिलीस्तीन की स्वतन्त्र भूमि में ले गये थे। उन्होंने अपने लोगों को दासता से मुक्त भी किया और साथ ही धर्म तथा विधि के ऐसे नियम बनाकर दिये जिनसे वे अपनी भवितव्यता का निर्माण स्वयं कर सकें। इसमें कोई संदेह नहीं कि बाबा साहब ने भी दलितों के लिए सब कुछ वैसा ही किया। मनुस्मृति जलाकर परम्परागत अमानुषिक धर्म—नियमों के प्रतीकवत् ध्वंस से ही वे संतुष्ट न हुए, बल्कि स्वाधीन भारत का संविधान और 'हिन्दू कोड' बनाकर 'आधुनिक मनु' की उपाधि भी उन्होंने अर्जित की।

डॉ० अम्बेडकर की रोमांचक जीवनगाथा का सारांश इन शब्दों से बेहतर नहीं हो सकता कूड़ेखाने में पैदा होना, अस्पृश्य के रूप में जिंदगी की शुरुआत करना, बचपन में कुष्ठरोगी की भाँति बहिष्कृत किया जाना और पूरी युवावस्था में समाज से झिड़काया जाना, केशकर्तनालयों, उपाहारगृहों, वसतिगृहों, देवालयों, सरकारी कार्यालयों में हर समय अपमानित होकर गरदनियों पाना यह उनके जीवन का बड़ा कटु अनुभव है। रिश्तेदारों के भोज के डिब्बे ले जाना, विश्वविख्यात विश्वविद्यालयों में पर्याप्त दाना—पानी के बिना तड़पते हुए अध्ययन करना, कभी हाथ में शास्त्र लेकर तो कभी शस्त्र लेकर लड़ते—लड़ते जिंदगी की सीढ़ियाँ चढ़ना साथ में परिवार का धन नहीं, राजनीति में राजनीतिक उत्तराधिकार का सहारा नहीं, फिर भी कट्टर राजनीतिक विरोध और विपत्तियों की परवाह न करते हुए देश के प्रथम श्रेणी के लोगों में कीर्ति पाना यह बात सचमुच ही असाधारण और गौरवास्पद है। देश के विकास के सभी सपनों और योजनाओं में हिस्सा लेकर मतदान विचार विनिमय समिति, अर्थसमिति और संविधान समिति में कार्य करते हुए केन्द्र सरकार में मजदूर मंत्री होना, स्वतन्त्र देश का प्रथम विधि मंत्री होना और स्वाधीन देश के संविधान का मुख्य शिल्पी बनना — ये बातें अनन्य साधारण ही हैं। विशेषता यह कि जिस देश ने उन्हें पैरो तले रौंदा उसी देश में यह घटना हुई।

उनके व्यक्तित्व का पक्ष इस कार्य से भी सामने आता है। जब हम उनके संविधान सम्बन्धी योगदान को याद करते हैं। संविधान के रचना के पीछे उनके व्यक्तित्व की छाया आसानी से देखी जा सकती है। उन्होंने जिस विशाल कार्य को अपने ऊपर लिया उसका सम्पादन उन्होंने पूर्ण आस्था से किया और अपने राष्ट्र के हित को कभी भी नजरअंदाज नहीं किया एक वर्ग विशेष की समस्याओं से ग्रस्त होने के बावजूद भी, उन्होंने अपने देश की इज्जत और गरिमा को बनाये रखा और एक ऐसे संविधान को संभव बनाया जिसका अस्तित्व उनके विलक्षण तार्किक शक्ति के बिना सम्भव नहीं था, जैसा कि कहा गया है कि वे भारतीय संविधान के पिता ही नहीं जननी भी थे और अगर उन्होंने मात्र यही कार्य किया होता तब भी उनके योगदान पर प्रश्न चिन्ह नहीं लग सकता था। भारतीय संविधान के निर्माता के रूप में अम्बेडकर की सभी लोगों ने भूरि—भूरि प्रशंसा की प्रारूप समिति की अध्यक्षता स्वीकार करते वक्त, अम्बेडकर के विषय में कई लोगों की कुछ शंकायें थीं। कुछ लोगों का तो यह भी मत था कि उनके स्थान पर किसी ऐसे विदेशी की नियुक्ति की जाय जो अधिक सम्पन्न हो किन्तु कई लोगों ने इसको सही नहीं समझा और अन्त में अम्बेडकर को ही अध्यक्षता का कार्य सौंप दिया गया। इस अवसर का अम्बेडकर ने बहुत सही उपयोग किया और अपने आलोचकों को बता दिया कि उनके बारे में उन लोगों की शंकायें निराधार थीं। ये ही

आलोचक बाद में उनके प्रशंसक बन गये।

डॉ० भीमराव अम्बेडकर का नाम भारत के परिवर्तनवादी आंदोलनों के इतिहास में सदैव स्मरणीय रहेगा। वे भारत में दलित समाज के उद्धारक तथा पुरुषार्थ के प्रतीक थे। भारतीय समाज जो प्राचीनकाल से जाति और वर्ण में विभक्त था, उसके अस्वीकरण का जो सराहनीय प्रयास डॉ० अम्बेडकर ने किया वह भारतीय इतिहास का सुनहरा अध्याय है। प्राचीन काल से जन्म के अभिशाप से अभिशप्त वर्ग को डॉ० अम्बेडकर ने अपने साहसिक नेतृत्व से आगे बढ़ने की अदम्य शक्ति प्रदान की। डॉ० अम्बेडकर का व्यक्तित्व विद्वता, संगठन कौशल और प्रभावी नेतृत्व जैसे गुणों का संगम है। अस्पृश्यता के निवारण में तथा लाखों अस्पृश्यों में आत्मविश्वास और आत्मशक्ति जगाने में उनको जितनी सफलता मिली है उतनी किसी अन्य व्यक्ति को नहीं मिली। वे जीवन पर्यन्त दलितों, वंचितों, श्रमिकों किसानों एवं स्त्रियों के मानवीय अधिकारों के लिए संघर्षरत रहे। भारत के संविधान और विधि व्यवस्था पर डॉ० अम्बेडकर की प्रखर न्यायिक प्रज्ञा और विद्वत्ता की अमिट छाप है। उन्होंने अपनी बौद्धिक योग्यता तथा तार्किक शक्ति से संपूर्ण भारतवासियों को प्रभावित किया। जब उन्होंने समाज के खोखले आदर्शों के विरुद्ध बिगुल बजाया तब लोग श्रद्धा से उनके पीछे चल पड़े। डॉ० अम्बेडकर ने देश, समाज और जन-जन के बीच समानता, साहिष्णुता और सहधर्मिता का ऐसा बीजारोपण किया जिसे भारतवासी श्रद्धा और सम्मान के साथ याद करते रहेंगे।

डॉ० भीमराव अम्बेडकर का जन्म मध्य प्रदेश के इंदौर के निकट माहू छावनी में 14 अप्रैल, 1891 को समाज में अछूत और बहिष्कृत समझी जाने वाली 'महार जाति' के एक परिवार में हुआ था। महार मूलतः महाराष्ट्र की एक विशेष जाति है, जिसे देश की दूसरी अछूत जातियों की तरह शिक्षा प्राप्त करने, धार्मिक आचरण करने तथा ऊँची जातियों से मेल-जोल या सम्पर्क रखने की अनुमति नहीं थी। डॉ० अम्बेडकर के पिता का नाम रामजी सकपाल तथा माता का नाम भीमाबाई था। पिता के सेवा-निवृत्त वर्ष में 14वीं संतान के रूप में भीमराव का जन्म हुआ था। जब उनकी आयु मात्र पांच वर्ष की थी उनकी माता का स्वर्गवास हो गया। फलस्वरूप भीमराव का बचपन अपनी बुआ मीराबाई की देख-रेख में व्यतीत हुआ। रामजी सकपाल ब्रिटिश सेना में दूसरी बार ग्रेनेडियर रेजीमेंट में सूबेदार मेजर हो गये। उन्हें यह पद महु के सैनिक स्कूल में वर्षों तक प्रशिक्षक के पद पर कार्य करने के कारण प्राप्त हुआ था। सेना की नौकरी से पदावकाश प्राप्त करने के पश्चात् रामजी सकपाल को 1894 में रत्नागिरी जिले के लोक-निर्माण विभाग में स्टोरकीपर के रूप में पुनः सेवा में नियुक्त किया गया, जहाँ से वे बाद में सतारा स्थानान्तरित कर दिये गये।

सन् 1890 में भीमराव राजकीय विद्यालय सतारा में पहली कक्षा में भर्ती हुये। विद्यालय के रजिस्टर में उनका नाम भीमा रामजी अम्बावाड़ेकर दर्ज किया गया। चूँकि रत्नागिरी जिले में खेड़ा तालुके में अम्बावाड़े गांव में इनके दादा-परदादा रहते थे, इसलिए इन लोगों के नाम के साथ अम्बावाड़ेकर नाम जुड़ा करता था। किंतु विद्यालय में इन्हें पुत्रवत् प्यार करने वाले शिक्षक ने उच्चारण की दुरुहता के कारण अम्बेडकर कहना प्रारम्भ कर दिया जो अंत में प्रचलित रहा। सन् 1904 में भीमराव के पिता सेवा निवृत्त होकर बम्बई चले आये। भीमराव अभी हाईस्कूल की परीक्षा भी उत्तीर्ण नहीं कर पाये थे कि उनका रामाबाई नाम कन्या से सन् 1905 में विवाह हो गया। लेकिन उच्च शिक्षा प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा के कारण डॉ० अम्बेडकर ने बम्बई के एलफिन्स्टन हाईस्कूल में इसी वर्ष प्रवेश लिया। भीमराव को अद्भुत मेधाशक्ति प्राप्त थी जो उनके लिए वरदान सिद्ध हुयी। वह सदैव अपनी कक्षा में मेधावी छात्र हुआ करते थे। भीमराव ने अपनी लगन, प्रतिभा और दृढ़ संकल्प के बल पर सन् 1907 में मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। यह उपलब्धि उनके परिवार, जाति एवं गांव के लिए गौरव की बात थी। भीमराव आजीवन अपने शिक्षक रामचन्द्र भागवत की इन बातों से प्रेरणा प्राप्त करते रहे—“भीम, मैं जानता हूँ कि तुम अछूत हो। तुम्हारे साथ जो व्यवहार हो रहा है, उसका बदला क्रोध से नहीं, कार्य से लो। तुम इतना पढ़ो और ऐसा पढ़ो की सवर्ण तुम्हारा मुंह ताकता रह जायें। तुम यह दिखला दो कि अछूतों में भी हीरा होता है।” इण्टर

की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् बड़ौदा के महाराजा सियाजीराव गायकवाड़ द्वारा डॉ० अम्बेडकर को कालेज की शिक्षा प्राप्त करने के लिए विशेष छात्रवृत्ति दी गयी। सन् 1912 में भीमराव ने बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। परिवार के भरण पोषण के विचार से उन्होंने बड़ौदा राज्य की सेवा में प्रवेश किया।

महाराजा बड़ौदा प्रगतिवादी और उच्च विचारों के धनी थे। उन्होंने भीमराव की योग्यता को देखते हुए उनको अमेरिका जाकर अध्ययन करने के लिए चुन लिया। जुलाई 1913, में भीमराव ने अमेरिका के कोलम्बिया विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। उनके अध्ययन का प्रमुख विषय अर्थशास्त्र था। यहाँ स्वस्थ मन और मस्तिष्क से वे अध्ययन में जुट गये। 1915 में अर्थशास्त्र में एम०एम० की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने पी-एच०डी० के लिए कार्य प्रारम्भ किया। उनका शोध विषय “नेशनल डिविडेण्ड ऑफ इण्डिया: ए हिस्टोरिक एण्ड एनालीटिकल स्टडी” था। उन्होंने उक्त शोध जून 1916 में प्रस्तुत किया। उनका शोध प्रबन्ध चर्चा का विषय बन गया। बड़ौदा के महाराजा ने उक्त अवसर पर डॉ० अम्बेडकर को तार द्वारा बधाई संदेश दिया और इससे उनका स्वाभिमान और प्रसन्नता द्विगुणित हो गयी।

डॉ० अम्बेडकर जून 1916 में ही कोलम्बिया से लंदन आ गये थे। उन्होंने डी०एस-सी० उपाधि अर्जित करने के उद्देश्य से “लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स एण्ड पोलिटिकल साइन्स” में प्रवेश ले लिया। इस हेतु उन्होंने अथक परिश्रम करना प्रारम्भ कर दिया। इसी बीच उनको महाराजा बड़ौदा का आदेश मिला कि अनुबन्ध के अनुसार वे शीघ्र ही भारत लौटकर बड़ौदा आ जायें। डॉ० अम्बेडकर बड़ौदा राज्य में दस वर्ष सेवा करने के लिए वचनबद्ध थे। उन्हें इसी शर्त पर विदेश में शिक्षा प्राप्त करने के लिए आर्थिक सहायता दी गयी थी। अम्बेडकर को भारत लौट आना पड़ा लेकिन उन्होंने दृढ़ संकल्प कर लिया था कि वे अपने अध्ययन को पूर्ण करने हेतु लंदन अवश्य लौटेंगे। 21 अगस्त, 1917 को डॉ० अम्बेडकर लंदन से बम्बई लौट आये। महाराजा बड़ौदा का आदेश था कि डॉ० अम्बेडकर को लेने के लिए एक सेवक स्टेशन पहुंचे। लेकिन अस्पृश्य होने के कारण न तो उनकी अगवानी करने के लिए कोई स्टेशन पर आया और न ही उन्हें किसी होटल में रात्रि-विश्राम के लिए स्थान मिल सका। महाराजा बड़ौदा की इच्छा थी कि डॉ० अम्बेडकर को उनकी प्रतिभा और योग्यता के अनुरूप वित्त मन्त्री का पद दिया जाये लेकिन अन्य अधिकारियों के प्रबल विरोध के कारण उन्हें बड़ौदा का सेना सचिव बनाया गया। डॉ० अम्बेडकर ने अपना कार्यभार तो संभाल लिया लेकिन कार्यालय में उनके साथ अन्य लोगों का व्यवहार अत्यन्त अशोभनीय था।

अस्पृश्य होने के कारण कार्यालय के कर्मचारी उनकी मेज पर फाइल फेंक कर दिया करते थे तथा आदेश की अवहेलना करते थे। कार्यालय में उन्हें पीने का पानी भी उपलब्ध नहीं करवाया जाता था। अतः वे अपना खाली समय पुस्तकालय में बिताया करते थे। निराश होकर डॉ० अम्बेडकर ने अपना त्यागपत्र महाराजा को दे दिया और नवम्बर 1917 में बम्बई वापस लौट आये।

बड़ौदा छोड़ने के पश्चात् डॉ० अम्बेडकर के सामने पहली समस्या जीविकोपार्जन की थी। संघर्षरत डॉ० अम्बेडकर ने कुछ दिनों तक सिडेनहैम कॉलेज बम्बई में राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रोफेसर का कार्यभार भी संभाला लेकिन सहयोगियों के दुर्व्यवहार के कारण उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। बम्बई में उन्होंने ‘डिप्रेस्ट क्लासेज कान्फ्रेंस’ में सक्रिय रूप से भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। यही समय था जब उनका ब्राह्मण विरोध प्रखर रूप से सामने आया।

बड़ौदा कोल्हापुर नागपुर में कुछ समय बिताकर जुलाई 1920 में पुनः वे लंदन के लिए रवाना हो गये। लंदन पहुंचकर वे अपने डी०एस०सी० की उपाधि का अधूरा काम पूर्ण करने में लग गये। लंदन में उन्हें सन् 1923 में ‘डी०एस०सी०’ और ‘बार एट लॉ’ की उपाधियाँ प्राप्त हुईं। अपने शोध प्रबन्ध में उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा भारत के आर्थिक शोषण की स्पष्ट तस्वीर विश्व के सामने रखी थी। उन्होंने उस षडयन्त्र का पर्दाफाश किया था जिसके अन्तर्गत 1833 के अधिनियम द्वारा साम्राज्यवादी शासन के लिए वित्तीय प्रबन्ध किया गया था। शोध पत्र में उन्होंने ब्रिटिश नौकरशाही और उसके माध्यम से होने वाले साम्राज्यवादी शोषण की भर्त्सना की थी। इनके

शोध प्रबन्धों की विशेष चर्चा हुयी। वे एक साथ इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, कानून और संविधान के उद्भट विद्वान बन गये। अन्तः उच्च शिक्षा प्राप्त कर डॉ० अम्बेडकर अछूत, उपेक्षित और दलितों के लिए संघर्ष का मार्ग चुना और इसी मार्ग ने उनको महान बनाया। लंदन से लौटकर डॉ० अम्बेडकर ने वकालत प्रारम्भ कर दी। उन्हें वकालत के कार्य में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। सवर्ण उनके पास आने से कतराते थे और दलित वर्ग के लोग गरीब होते थे। अतः वे कम से कम शुल्क लेकर या निःशुल्क ही दलितों के केस लेकर वकालत करने लगे। 6-7 वर्ष के भीतर ही वे देश के प्रमुख वकीलों में गिने जाने लगे। उनका विधि-ज्ञान वृहद् था और अंग्रेजी भाषा पर उनकी बेजोड़ पकड़ थी। वकालत के साथ-साथ उन्होंने मानव इतिहास का अध्ययन वैदिक युग से 19वीं सदी तक “वर्ण-व्यवसाय” को रखकर किया। अन्तः वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि जब तक हिन्दू धर्म में वर्ण व्यवस्था जीवित रहेगी, तब तक अस्पृश्यता भी जीवित रहेगी। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था “अछूत समाज प्रगति में बाधक बनने वाला कोई भी व्यक्ति या संस्था हो, वह चाहे अछूत समाज की हो अथवा सवर्ण हिन्दू समाज की, उसका हमें तीव्र विरोध एवं निषेध करना चाहिए”। डॉ० अम्बेडकर दलित वर्ग के एक ऐसे नेता थे जिनके जीवन का उद्देश्य दलितों को सामाजिक समानता और न्याय दिलाना था। उन्होंने दलित सेवा हेतु “अन्त्यज संघ” और “बहिष्कृत हितकारिणी सभा(1924)” की स्थापना की। विभिन्न सम्मेलनों और मंचों से दलितों को जागृत करने का कार्य किया। अपनी सामाजिक और राजनीतिक यात्रा में विभिन्न पड़ावों को पार करते हुए डॉ० अम्बेडकर स्वतन्त्र भारत के प्रथम कानून मन्त्री बने। इस पद पर रहते हुए एक ओर उन्होंने जहां संविधान का प्रारूप तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, वहीं दूसरी ओर उन्होंने स्मृतिकालीन सामाजिक असमानताओं को दूर करने के लिए ‘हिन्दू कोड बिल’ का प्रारूप तैयार किया। राज्य सभा सदस्य के रूप में उन्होंने समय-समय पर जो विचार व्यक्त किये वह संसदीय बहस का स्वर्णिम अध्याय है। उनके संसदीय ज्ञान और अनुभव का लाभ भारत की भावी पीढ़ी सदैव उठाती रहेगी।

6 दिसम्बर, 1956 को पैंसठ वर्ष की आयु में दिल्ली में अलीपुर रोड स्थित अपने निवास पर इस महान आत्मा का महाप्रयाण हो गया। अपनी अत्यधिक राजनैतिक व्यस्तताओं के कारण वे अपने खराब स्वास्थ्य की देखभाल नहीं कर पाते थे। अम्बेडकर की मृत्यु से एक बहुत बड़े अध्याय का पटाक्षेप हुआ। एक ऐसा पुरुष जिसने साहस और तेजस्विता के साथ इस देश की पीड़ित और दबी मानवता का साहसिक नेतृत्व दिया, जिसके देदीप्यमान विचार एवं कृतित्व युगों तक दलित मानवता को न्याय दिलाने हेतु त्याग और उत्सर्ग का संदेश देता रहेगा।

डॉ० अम्बेडकर के व्यक्तित्व और कृतित्व का मूल्यांकन उनके व्यक्तिगत जीवन के कटु अनुभवों के आधार पर ही सम्भव है। भारत की जिस सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध उन्होंने संघर्ष किया, वे उस व्यवस्था से व्यक्तिगत रूप से पीड़ित थे। बाल्यावस्था से ही अम्बेडकर को अछूत होने की पीड़ा का अनुभव होने लगा था। महार जाति के होने के कारण कोई नाई उनके बाल काटने को तैयार नहीं होता था। भीमराव सहित इनके भाइयों के बाल इनकी माताश्री या बड़ी बहन काटा करती थीं। उनके सहपाठी, जो बौद्धिक क्षमता में उनसे कहीं नीचे थे उनसे दुर्व्यवहार किया करते थे। प्यास लगने पर वे अपने हाथों से या सवर्णों के कुएँ से पानी नहीं पी सकते थे क्योंकि इससे जल और बर्तन के स्पर्श होने का भय होता था। एक बार सार्वजनिक कुएं से पानी पीने के प्रयास में उन्हें मार खानी पड़ी थी। लेकिन अस्पृश्यता का पहला आघात उन्हें पंसारा रेलवे स्टेशन से गोरेगांव की यात्रा में लगा था। उन दिनों रामजी सकपाल गोरेगांव के पास कार्यरत थे। भीम अपने बड़े भाई तथा भतीजे के साथ पिताजी से मिलने गोरे गांव पहुंचे। उन तीनों को स्टेशन से गंतव्य तक पहुंचाने के लिए एक गाड़ीवान तैयार हो गया। सभी बैलगाड़ी में बैठकर गोरेगांव की ओर बढ़ चले। लेकिन गाड़ीवान को जब पता चला कि उसकी बैलगाड़ी पर अस्पृश्य परिवार यात्रा कर रहा है, तब अस्पृश्य के लिए गाड़ी हांकना गाड़ीवान को बहुत बुरा लगा। वह क्रोध से आग-बबूला हो गया और पूरे परिवार को गाड़ी से उतार दिया। किसी को इनपर दया नहीं आयी। तीनों रात के घने अंधेरे में भूखे-प्यासे अपने गंतव्य की ओर चल पड़े।

भीमराव कक्षा में सबसे मेधावी छात्र थे। अध्यापक उनकी मेधाशक्ति की प्रशंसा करते थे। एक बार एक अध्यापक ने भीम को ब्लैकबोर्ड पर रेखागणित के एक सिद्धान्त को सिद्ध करने के लिए बुलाया तो कक्षा के सभी सवर्ण विद्यार्थियों ने हो-हल्ला मचाकर उस ब्लैकबोर्ड के पास रखे गये अपने खाने के डिब्बों को तुरन्त हटा लिया ताकि उनका भोजन अस्पृश्य के छूने से अपवित्र न हो जाये। इसके बाद ही भीम उस सूत्र को ब्लैकबोर्ड पर हल कर सके।

बालपन में घटी इन घटनाओं से भीम का बाल-मन विद्रोही हो गया था। अस्पृश्य, अछूत, अपवित्र शब्द सुनकर उनका बाल मन बार-बार आहत होता था। शायद, इन्हीं शब्दों में बालक भीम ने मानव मुक्ति का सार्थक स्वप्न देखा हो। ये कुछ ऐसे अनुत्तरित शब्द थे जिनके अर्थों की खोज में भीम राव सदैव जुटे रहे। लेकिन उन्हें कुछ अध्यापक ऐसे भी मिले जिन्होंने उनके जीवन की दिशा ही बदल दी। प्यास लगने पर उनके कुछ दयावान साथी या विद्यालय का चपरासी उनके मुँह में ऊपर से पानी डाल दिया करते थे। जब उन्हें कहीं जाना होता था तब वे पैदल ही जाया करते थे क्योंकि कोई सवर्ण बैलगाड़ी वाला अछूत व्यक्ति को अपनी गाड़ी में नहीं बैठाता था। प्रबल इच्छा होते हुए भी डॉ० अम्बेडकर द्वितीय विषय के रूप में संस्कृत का अध्ययन नहीं कर पाये क्योंकि संस्कृत के हठधर्मी अध्यापक ने अछूत होने के कारण उन्हें संस्कृत पढ़ाने से अस्वीकार कर दिया। विवश होकर उन्हें संस्कृत के स्थान पर फारसी पढ़ना पड़ा। स्कूल के अद्विज बच्चों को अध्यापक से प्रश्न पूछने की मनाही थी। कक्षा में अछूत बच्चों को बैठाने की अलग व्यवस्था होती थी। अछूत बच्चे न तो सामूहिक रूप से बैठ सकते थे और न सामूहिक रूप से खेल सकते थे। स्कूल-कॉलेज में अम्बेडकर को निरन्तर अछूत होने का दंश झेलना पड़ता था। महाराजा बड़ौदा ने जब डॉ० अम्बेडकर को अपना वित्त मंत्री बनाना चाहा तब सवर्ण अधिकारियों ने इसका प्रबल विरोध किया। फलस्वरूप उन्हें डॉ० अम्बेडकर को अपना सेना सचिव बनाना पड़ा। कार्यालय में डॉ० अम्बेडकर को साथ अपमानजनक व्यवहार किया जाता था। उनके लिए 'चमार' जैसे शब्द का प्रयोग किया जाता था। निराश होकर डॉ० अम्बेडकर ने अपना त्यागपत्र महाराज को दे दिया। उन्होंने हिन्दू समाज में असमानता की खाई को पाटने एवं अछूतोंद्वारा के लिए हमेशा संलग्न रहने का दृढ़ संकल्प लिया। दलित सेवा और दलित हितों की रक्षा उनके जीवन का लक्ष्य बन गया।

यदि हम 1900 से 1923 तक डॉ० अम्बेडकर के व्यक्तिगत जीवन को समझने का प्रयास करें तो कई ऐसी घटनाओं तथा अनुभवों की जानकारी मिलती है जिसने उन्हें अत्यन्त कुंठाग्रस्त और व्यथित कर दिया। एक बौद्धिक और संवेदनशील व्यक्ति के लिए, चुपचाप सब कुछ सह लेना सम्भव नहीं था। प्रतिक्रिया स्वरूप वे ब्राह्मण और सवर्ण विरोधी बन गये। डॉ० अम्बेडकर अपनी भोगी हुयी पीड़ा को, सहे हुए आघातों को एवं अपमान के कड़वे घूटों को अपने भाषणों, लेखों एवं कार्यों के माध्यम से अभिव्यक्त किया। वे हिन्दू धर्म के संस्कार और वर्णाश्रम व्यवस्था के कटु आलोचक बन गये।

डॉ० अम्बेडकर ने सदैव इस बात को दुहराया कि उनके ऊपर गौतमबुद्ध, कबीरदास और ज्योतिबा फुले का प्रभाव था। कबीर ने उन्हें भक्ति मार्ग दिखलाया। ज्योतिबा फुले से उन्हें संघर्ष की प्रेरणा मिली। बुद्ध से उन्होंने मानसिक और कायिक शान्ति का मन्त्र प्राप्त किया। बुद्ध के आदर्शों पर चलकर ही उन्होंने सामूहिक धर्म परिवर्तन का कार्य किया तथा दलित उद्धार के लिए प्रेरित हुए। उन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवन में दलित उत्थान के लिए जो संघर्ष किया उसका एक महत्वपूर्ण कारण उन पर आंग्ल अमेरिकी उदार समाज का प्रभाव और पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा थी। वहां के लोकतन्त्र और सम्वैधानिक तन्त्र का गहन अध्ययन किया और उसे भारतीय परिवेश में उतारने का अथक प्रयास किया।

डॉ० अम्बेडकर के सामाजिक विचार और अछूतोंद्वारा आन्दोलन

डॉ० अम्बेडकर ने सामाजिक समानता और सामाजिक न्याय के संदर्भ में अपने विचार अत्यन्त दृढ़ता और

स्पष्टता के साथ व्यक्त किये हैं। उनका सर्वाधिक क्रोध हिन्दू समाज में व्याप्त जाति प्रथा, वर्ण व्यवस्था और उनसे उत्पन्न छूआ-छूत के प्रति था। डॉ० अम्बेडकर की मान्यता थी कि अस्पृश्यता जाति व्यवस्था की उपज है जब तक जातियाँ हैं तब तक अछूतों का उत्थान नहीं हो सकता। उनका मत था कि जाति व्यवस्था के बहाने भारत में प्राचीन से अनाचार का दौर चल रहा है। जाति प्रथा ने हिन्दुओं को एक संगठित समाज होने से रोका है। इस प्रथा के कारण हिन्दुओं में ऐक्य-भाव समाप्त हुआ है। अपने ही लोगों के प्रति अपना अपनत्व का भाव मर गया है। अम्बेडकर का मानना था कि शास्त्रों और स्मृतियों ने लोगों के मन में भर दिया है कि जाति प्रथा ईश्वर-प्रसूत है। जाति के आधार पर भेद शास्त्रों की देन है। अतः भेद को समाप्त करने के लिए शास्त्रों और स्मृतियों की सत्ता को नष्ट करना होगा। अम्बेडकर का स्पष्ट मत था कि हिन्दू समाज जाति विहीन होकर ही अपनी रक्षा कर सकता है। डॉ० अम्बेडकर का अपने विद्यार्थी जीवन में ही अस्पृश्यता सम्बन्धी भेद-भाव के कारण जिन अपमानपूर्वक व्यवहारों का सामना करना पड़ रहा था उनके कारण उनके मन में यह धारणा प्रबल हो गयी थी कि वर्तमान हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में दलितों का उत्थान सम्भव नहीं है। उस समय महात्मा ज्योतिबा फूले एकमात्र ऐसे समाज सुधारक थे, जो अस्पृश्य जातियों की दशा में सुधार लाने के लिए कार्य कर रहे थे। डॉ० अम्बेडकर ने महात्मा फूले से प्रेरणा लेकर हिन्दू सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष करने का संकल्प लिया।

भारत में समाज सुधार की प्रक्रिया लम्बे समय से चलती रही है। गुरु नानक, रामानुज, चैतन्य, कबीर, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, महात्माज्योतिबा फूले आदि सुधारकों ने समय-समय पर भारतीय समाज में व्याप्त विषमताओं और कुरीतियों को अपने-अपने ढंग से दूर करने का प्रयत्न किया था। इन सुधारकों ने मात्र उपदेश के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरीतियों का विरोध किया। यह अपेक्षाकृत नरम विरोध था। जिसमें किसी प्रकार का संघर्ष नहीं था। लेकिन डॉ० अम्बेडकर ने वर्ण और जाति पर आधारित हिन्दू सामाजिक व्यवस्था का मुखर और सक्रिय विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। विभिन्न हिन्दू धर्म ग्रन्थों का अध्ययन करके डॉ० अम्बेडकर को यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि विभिन्न स्मृतियों और शास्त्रों में दिये गये व्यवहार के नियम ही सामाजिक असमानता और अन्याय की जड़ हैं। इसी कारण महाड़ सम्मेलन में उन्होंने 25 दिसम्बर 1927 को 'मनुस्मृति' की होली जलाने का प्रस्ताव रखा।

डॉ० अम्बेडकर की मान्यता थी कि जब तक अस्पृश्यता का समूल नष्ट न कर दिया जायेगा, तब तक दलित वर्ग के लोगों का उद्धार सम्भव नहीं है। वे इस तथ्य से पूरी तरह से अवगत थे कि अछूत जातियों की दयनीय दशा का मुख्य कारण था। उनकी निर्धनता, निरक्षरता तथा गंदे एवं निम्न श्रेणी के कार्यों को करना था। उनका स्पष्ट मत था कि जाति प्रथा कुछ चालाक लोगों का षड्यंत्र था, जो किसी जाति विशेष का, शोषण करना चाहते थे। इस शोषण की भावना के कारण हिन्दू समाज मोटे तौर पर दो वर्गों में बँट गया— अवर्ण तथा सवर्ण। ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्यों ने मिलकर शूद्रों का शोषण करना प्रारम्भ कर दिया। इसमें ब्राह्मणों की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो गयी और वे अपने आप को ईश्वर का कृपा-पात्र मानने लगे। डॉ० अम्बेडकर ने अस्पृश्यता का अंत करने के लिए सवर्ण जातियों का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया अपनी जाति के लोगों को सलाह दी कि वे उन सभी कार्यों को करना छोड़ दें जिनकी वजह से उनको छोटा और अस्पृश्य समझा जाता है। वे जानते थे कि जब अछूत जातियाँ निम्न और गंदे कार्यों को करना छोड़ देगी तो उच्च जातियों को ये कार्य स्वयं ही करने पड़ेंगे, जिन्हें वे नीचा और त्याज्य समझते हैं। यही एक रास्ता है जो उन्हें बराबरी की ओर ले जाता है। यदि दलित लोग अपने निम्न और गंदे कार्य तथा हीनता की भावना को छोड़कर एक सम्मानपूर्ण जीवन जीने की दिशा में आगे बढ़ें तो वे स्वयं अपने जीवन की गुणवत्ता को बढ़ा सकते हैं। अपने लेखों और भाषणों के माध्यम से उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि 'अछूत जातियाँ अपनी दशा में सुधार करना चाहती हैं तो उन्हें घर-घर से जूठे भोजन को मांगने का प्रचलन छोड़ देना चाहिए, मरे हुये जानवरों की खाल निकालना बंद कर देना चाहिए तथा मैला ढोने या साफ

करने के कार्यों से धन उपार्जित नहीं करना चाहिए, जिनके कारण उन्हें दूसरे लोगों से सम्पर्क से वंचित रहना पड़ता है।" उनका दूसरा सुझाव अछूत जातियों को अपने आपको शिक्षित करने का था। दलितों की सामाजिक एवं शैक्षणिक स्थिति में सुधार हेतु डॉ० अम्बेडकर ने जुलाई 1924 में 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा तथा जुलाई 1928 में 'डिप्रेस्ड क्लासेस शिक्षा संस्था' की स्थापना की। इन संस्थाओं का उद्देश्य दलितों में आत्मसम्मान की भावना का संचार करना तथा शिक्षा प्राप्त करने की ओर उन्मुख करना था।

डॉ० अम्बेडकर ने दलित सेवा को अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया तथा वे जीवन भर अछूतोंद्वारा आंदोलन से जुड़े रहे। उन्होंने बम्बई में 'अन्त्यज संघ' की स्थापना की। इस संघ का मूल उद्देश्य तथा सामाजिक चेतना का संचार करना। डॉ० अम्बेडकर का विचार था कि यदि दलितों को अपनी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक स्थिति में सुधार करना है तो अधिक आवश्यक यह है कि वे अच्छे रोजगार के द्वारा अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार करें तथा अपने बच्चों को शिक्षा देना प्रारम्भ करें। इससे उनके जीवन स्तर और स्थिति में स्वयं सुधार होने लगेगा। उन्होंने दलितों से संगठित, शिक्षित एवं मानवाधिकारों के लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया। वे अछूतों की समस्या का हल क्रान्तिकारी ढंग से निकालना चाहते थे एवं अछूतों को दूसरों की दया पर जीवित नहीं देखना चाहते थे। उनका कहना था "आत्म सहायता ही सबसे उत्तम सहायता है।"

डॉ० अम्बेडकर ने अछूतों के लिए संघर्ष में अपनी लड़ाई सर्वण हिन्दूओं के विरुद्ध प्रारम्भ की। इस संघर्ष की प्रेरणा उन्हें महात्मा फुले के विचारों से प्राप्त हुई थी। दलितों के उत्थान के लिए वे सर्वण हिन्दूओं का विरोध आवश्यक मानते थे और इस विरोध को तब तक जारी रखना चाहते थे जब तक दलितों को समानता का स्तर प्राप्त न हो जाये। उन्होंने बम्बई विधानसभा के गैर ब्राह्मण दल के नेता श्री एस० के० बोले से सम्पर्क स्थापित किया और बम्बई सरकार से यह बात मनवा ली कि "महाराष्ट्र के दलित सभी सार्वजनिक स्थानों के पेयजल का उपयोग कर सकते हैं। कुओं और धर्मशालाओं का प्रयोग कर सकते हैं जिनका नियंत्रण सार्वजनिक संस्थाओं के हाथ में है तथा जिनका रख-रखाव जनता के पैसों से होता है। इसके साथ सार्वजनिक स्थल की सभी प्रकार का सुविधाओं से किसी हालत में दलितों को वंचित न कराया जाये। सार्वजनिक विद्यालयों, कोर्ट, कार्यालय और अस्पतालों में भी दलित समान रूप से जा सकते हैं। "कानून बन गया था मगर दलितों को इतना साहस नहीं था कि सार्वजनिक तालाब से पानी का उपयोग कर सके। महाड़ में अस्पृश्य परिषद की बैठक में (19 मार्च 1927) बाबा साहेब ने अपने अस्पृश्य भाइयों एवं बहनों से तीन वचन लिया—

1. मरे जीव का मांसाहार बंद करेंगे।
2. जूटे भोजन को स्वीकार नहीं करेंगे।
3. ऊँच-नीच की कल्पना मन से निकाल कर उच्च वर्ग का रहन सहन अपनायेंगे।

इसके साथ ही उन्होंने अस्पृश्यों को खेती करने की सलाह दी। 20 मार्च, 1927 को बाबा साहेब के नेतृत्व के लगभग पांच हजार लोगों का जुलूस चवदार तालाब के किनारे पहुँचा और तालाब में प्रवेश कर सभी लोगों ने शांतिपूर्ण जलाचमन किया। डॉ० अम्बेडकर के नेतृत्व में मार्च 1927 को 'दलित जाति परिषद' के पांच हजार अछूत सदस्यों ने प्रसिद्ध महाड़ बावड़ी में प्रवेश किया और सभी ने शांतिपूर्ण जलाचमन किया। डॉ० अम्बेडकर का यह कार्य परम्परावादी और रूढ़िग्रस्त सवर्णों पर गहरा प्रहार था। इससे उच्च जाति के लोगों में एक आक्रोश की भावना उत्पन्न हो गयी। कुछ असामाजिक तत्वों ने यह अफवाह फैला दी कि दलित दल के साथ अम्बेडकर निकट के वीरेश्वर मंदिर में प्रवेश करने जा रहे हैं। सनातनी अस्पृश्यों पर आक्रमण करने की तैयारी में जुट गये। जब अस्पृश्य समाज भोजन मंडप में बैठकर भोजन कर रहा था तब अचानक उपद्रवी तत्वों ने अस्पृश्यों पर लाठियों से प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया। डॉ० अम्बेडकर सहित कई लोग घायल हो गये। बाबा साहेब को पुलिस थाने में शरण लेनी पड़ी।

इस दुर्घटना की खबर सुनते ही अस्पृश्य प्रतिनिधि क्रोध में आग-बबूला हो उठे। वे जबावी हमले की तैयारी करने लगे। लेकिन बाबा साहेब ने अपने विवेक का परिचय देते हुये कहा—“अपने हाथ मत उठने दीजिए, अपने गुस्से को पी जाइए, मन शांत रखिये। हमें प्रतिघात नहीं करना है। इन सनातनियों को अहिंसा का शक्ति के दर्शन कराने होंगे।” उनकी यह आज्ञा सुनकर दस हजार अस्पृश्यों का समुदाय शांतिपूर्ण तरीके से कठिनाइयों का सामना करने के लिए तैयार हो गया। प्राणघातक प्रहार की स्थिति में भी उन्होंने अभूतपूर्व सहनशीलता का परिचय दिया। बाबा साहेब ने अपनी व्यवहारकुशलता में महाड़ में शांति भंग नहीं होने दिया। उपद्रवियों पर मुकदमा चला और 6 जून 1927 को नौ अभियुक्तों में से पांच को कठोर कारावास की सजा दी गयी। भारत में महाड़ सत्याग्रह दलित क्रान्ति का शुभारम्भ था। यह अस्पृश्य समाज की शक्ति का परीक्षण था। जिसमें वह सफल हुआ। महाड़ सत्याग्रह में पहली बार दलितों की मानसिक बेड़ियाँ टूटी थीं।

इस घटना के बाद अम्बेडकर के जीवन में भारी परिवर्तन आ गया। वे समझ गये थे कि दलितों को मानवीय अधिकार दिलाने के लिए अथक संघर्ष की आवश्यकता होगी और वे दलितों को संघर्ष के लिए संगठित करने लगे। महाड़ तालाब पर मुकदमा कई वर्षों तक चलता रहा। इस मुकदमे में पैरवी अम्बेडकर करते रहे। अन्तः मार्च 1936 को अछूतों के पक्ष में फैसला आ गया। इस तरह से महाड़ का संपूर्ण घटनाचक्र अछूतों के स्वाभिमान को जागृत करने वाला सिद्ध हुआ। इसके फलस्वरूप उन्होंने मुर्दा मांस खाना, मरे हुए पशुओं की खाल उतारना तथा सवर्णों से रोटी मांगकर खाना छोड़ दिया।

महाड़ सत्याग्रह के पश्चात् दलितों के लिए मानवीय अधिकारों की मांग हेतु नासिक सत्याग्रह की योजना बनायी गयी। मुख्य रूप से यह दलितों का मंदिर प्रवेश संबंधी आंदोलन था। इस सत्याग्रह का प्रारम्भ नासिक स्थित ‘काला राम’ मंदिर में प्रवेश से प्रारम्भ हुआ। नासिक हिन्दुओं का एक पवित्र तीर्थ स्थल है। वहां गोदावरी नदी के तट पर काला राम मंदिर है। जिसमें भगवान राम की काली पत्थर की मूर्ति प्रतिष्ठित है। रामनवमी के दिन यहां भारी मेला लगता है। श्रद्धालु गोदावरी में स्नान कर ‘काले राम’ की रथ यात्रा में सम्मिलित होते हैं। लेकिन दलितों को रथ यात्रा में सम्मिलित होने तथा रथ खींचने से वंचित रखा गया था। दलित 1929 से काला राम के दर्शन तथा रथ यात्रा में सम्मिलित होने का प्रयत्न कर रहे थे। अब तक महाड़ सत्याग्रह की चर्चा नासिक पहुंच चुकी थी। दलितों और वंचितों ने डॉ० अम्बेडकर को उनके अधिकारों को सुलभ कराने हेतु संघर्ष में उनका नेतृत्व करने के लिए आमंत्रित किया।

डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने काला राम मंदिर के प्रबन्धकों को नोटिस दिया कि 2 मार्च 1930 तक यदि मंदिर के द्वार दलितों के लिए नहीं खोले गये तो वे सत्याग्रह करेंगे। एक सत्याग्रह समिति बनी जिसमें लगभग 15000 लोगों ने सत्याग्रह में सम्मिलित होने का पंजीकरण कराया। 2 मार्च को नासिक में डॉ० अम्बेडकर की अध्यक्षता में सम्मेलन हुआ। दोपहर 3 बजे तय कार्यक्रम के अनुसार अस्पृश्यों का विशाल जन समूह अनुशासित एवं अहिंसक ढंग से काला राम मंदिर की ओर बढ़ने लगा। जब यह जुलूस डॉ० अम्बेडकर के नेतृत्व में काला राम मंदिर के समीप पहुंचा तब मंदिर के व्यवस्थापकों ने प्रवेश द्वार बंद कर दिये। निर्णय हुआ कि मंदिर प्रवेश तक सत्याग्रह जारी रहेगा। मंदिर के आस-पास यह सत्याग्रह एक माह तक चलता रहा। 9 अप्रैल रामनवमी के दिन डॉ० अम्बेडकर अपने युवा सहयोगियों के साथ उन स्थान पर उपस्थित थे जहां से रथ यात्रा प्रारम्भ होनी थी। सनातनियों और अस्पृश्यों में संघर्ष होने की पूरी संभावना थी। सत्याग्रहियों के नेता दादा साहेब गायकवाड ने डॉ० अम्बेडकर से सुरक्षित स्थान पर चले जाने की प्रार्थना की जिसे अम्बेडकर ने ठुकरा दिया। मंदिर से रथ निकलते ही सनातन हिन्दू डॉ० अम्बेडकर और सत्याग्रहियों पर टूट पड़े। अम्बेडकर सहित उनके सत्याग्रहियों को गंभीर चोटें लगीं। मंदिर प्रवेश को लेकर सत्याग्रह चलता रहा। फलस्वरूप मन्दिर के सभी दरवाजे 1935 तक बंद रहे। अन्तः मन्दिर प्रवेश कानून बन गया और अक्टूबर 1935 में कालाराम मन्दिर के दरवाजे अस्पृश्यों के लिए खुल गये। इस प्रकार नासिक सत्याग्रह समाप्त

हो गया। डॉ० अम्बेडकर यह अच्छी तरह से जानते थे कि मन्दिरों में प्रवेश से दलितों की निर्धनता और अशिक्षा का अन्त होने वाला नहीं है। जागृत दलितों को डॉ० अम्बेडकर ने संदेश दिया—“अब दलितों को मन्दिर प्रवेश जैसे सत्याग्रह आन्दोलन में अपने आप को बर्बाद न करके खाना, कपड़ा, मकान, शिक्षा, सम्मान, स्वास्थ्य, रक्षा, समानता, राजसत्ता, राजनीतिक अधिकारों को प्राप्त करने में अपनी शक्ति लगानी चाहिए। उनका मानना था कि केवल पूजा-पाठ और मन्दिर दर्शन से दलितों का कोई उद्धार होने वाला नहीं है। मन्दिरों में प्रवेश के आन्दोलन सवर्ण हिन्दू मानसिकता को झकझोरने और दलित आन्दोलन को अपने पैरों पर खड़ा करने के लिए है।”

सन् 1928 में अम्बेडकर ने ‘महार वतन’ की प्रणाली को लेकर संघर्ष किया। इस प्रणाली के अनुसार महारों को अत्यन्त कम पारिश्रमिक पर बंधुआ मजदूरों की तरह काम करना पड़ता था। उन्होंने कहा कि यदि इस प्रणाली का अन्त नहीं किया गया तो वे देशव्यापी आन्दोलन शुरू कर देंगे। उन्होंने 1928 में महाराष्ट्र विधान परिषद में इस काले कानून को बदल डालने का एक संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया। किन्तु यह विधेयक प्रवर समिति को सौंप दिया गया। इसने मूल विधेयक में अनेक संशोधन कर दिये जिससे डॉ० अम्बेडकर सहमत नहीं हुए। उन्होंने यह विधेयक वापस ले लिया। डॉ० अम्बेडकर इस प्रणाली के विरुद्ध जीवन पर्यन्त लड़ते रहें किन्तु ‘महार वतन’ का अंत तब हुआ जब सन् 1959 में डॉ० अम्बेडकर की मृत्यु हो गयी।

महाराष्ट्र सरकार ने 1930 में दलितों की शैक्षिक, सामाजिक तथा आर्थिक दशा के अध्ययन करने के लिए एक समिति का गठन किया और डॉ० अम्बेडकर इसके सदस्य नियुक्त हुए। समिति के सदस्य के रूप में उन्होंने दलित छात्रों के छात्रावास निर्माण, छात्रवृत्ति, सेना में प्रशिक्षण आदि की संस्तुति की। डॉ० अम्बेडकर ने यदि अछूतोंद्वारा का बीड़ा न उठाया होता तो भारतीय समाज में इस तिरस्कृत वर्ग को वह संवैधानिक आरक्षण न मिल पाता जो स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय इस वर्ग को दिया गया। वे हिन्दू समाज में छूआछूत समाप्त करने के लिए सत् प्रयत्नशील थे। उनका मत था कि हिन्दू समाज को दो सिद्धान्तों पर संगठित होना चाहिए, प्रथम समानता और दूसरा जातीयता का विनाश।

दलित वर्ग का प्रथम अधिवेशन 8 अगस्त, 1930 को नागपुर में हुआ। डॉ० अम्बेडकर ने इसकी अध्यक्षता की। डॉ० अम्बेडकर ने मंच से छूआछूत व्यवस्था को जाति व्यवस्था का कड़वा फल घोषित किया। उन्होंने पहले को समाप्त करने के लिए दूसरे को नष्ट करना आवश्यक बतलाया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् संविधान निर्माण के प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में डॉ० अम्बेडकर ने इस बात पर बल दिया कि कानून की दृष्टि से सभी नागरिकों को समानता का अधिकार मिलना आवश्यक है। उन्होंने सामाजिक लोकतन्त्र की एक नयी अवधारणा प्रस्तुत की। संविधान के अनुच्छेद 17 के द्वारा यह स्पष्ट कर दिया गया कि अस्पृश्यता का किसी रूप में प्रचलन निषिद्ध होगा। अनुच्छेद 29 में यह उल्लेख किया गया कि राज्य द्वारा पूर्ण अथवा आंशिक सहायता प्राप्त किसी भी शिक्षण संस्थान में किसी भी व्यक्ति को धर्म, जाति, वंश अथवा भाषा के आधार पर प्रवेश से नहीं रोका जा सकता। डॉ० अम्बेडकर ने दलित वर्ग के छात्रों को छात्रवृत्ति तथा सरकारी नौकरी में आरक्षण की माँग की।

सामाजिक न्याय तथा समानता के लिए डॉ० अम्बेडकर स्त्रियों की परिस्थिति में सुधार करना आवश्यक मानते थे। उन्हें इस बात का ज्ञान था स्त्रियों को शिक्षित किये बिना परिवार को शिक्षित नहीं किया जा सकता। उन्होंने 20 मार्च, 1927 को महाड़ में आयोजित एक सभा में स्त्रियों को सम्बोधित करते हुए समझाया कि “अपने आप को कभी अछूत मत समझो। साफ-सुथरा जीवन व्यतीत करो। ध्यान रखो कि जिस तरह के कपड़े सवर्ण स्त्रियाँ पहनती हैं आप भी उसी तरह के वस्त्र पहनो। इसकी कभी चिन्ता न करो कि तुम्हारे वस्त्र फटे-पुराने हैं। यह ध्यान रहे कि वे स्वच्छ हैं।” सन् 1927 में डॉ० अम्बेडकर मालाबार की कई अछूत बस्तियों में गये और स्त्रियों को अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए प्रेरित किया। उन्हें मृत पशुओं के मांस खाने तथा दूसरों के जूठन बटोरने से मना किया। डॉ० अम्बेडकर ने अर्द्धनग्न अछूत स्त्रियों को शरीर ढकने वाले वस्त्र पहनने की प्रेरणा दी। उन्होंने कहा कि—“अपने

पति, पुत्रों और सम्बन्धियों को यदि वे शराबी हो तो भोजन न दो। अपने बच्चों को स्कूल भेजो। शिक्षा जितनी पुरुषों के लिए आवश्यक है उतनी महिलाओं के लिए भी अनिवार्य है। यदि आप पढ़-लिख जायें तो बहुत उन्नति हो सकती है। आप जैसी होंगी वैसे ही आपके बच्चे होंगे। उनके जीवन को सच्चरित्र बनाओ पुत्र ऐसे होने चाहिए जो संसार में अपने चिह्न छोड़ जायें। डॉ० अम्बेडकर 'मनुस्मृति' के इस कथन के बहुत विरुद्ध थे कि—'बचपन में स्त्रियों की रक्षा पिता करे, यौवन में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र करें। इस प्रकार जीवन में स्त्रियों को कोई स्वतन्त्रता नहीं मिलनी चाहिए।'

स्त्रियों के प्रति उनके विचार इसी बात से स्पष्ट हो जाते हैं कि स्वतन्त्रता के तुरन्त बाद डॉ० अम्बेडकर ने एक व्यापक हिन्दू कोड बिल तैयार किया। जिसका उद्देश्य स्त्रियों को सम्मानजनक स्थिति प्रदान करना था। अम्बेडकर के आर्थिक विचार

डॉ० अम्बेडकर की चर्चा प्रायः उनके समाज-सुधार सम्बन्धी कार्यों के सन्दर्भ में होती है। उनका अछूतोंद्वारा का कार्यक्रम इतना विषद था कि उनके व्यक्तित्व के अनेक पक्ष अनछुये रह जाते हैं। विशेषकर आर्थिक प्रश्नों पर उनके विचारों की चर्चा कभी-कभी ही होती है। समग्र रूप से अर्थ सम्बन्धी सभी प्रश्नों पर उनके विचार कहीं एक जगह न तो संगृहीत है और न तो देश के सम्पूर्ण आर्थिक स्वरूप पर उन्होंने कोई व्यापक बात कही है। लेकिन संविधान सभा में अल्पसंख्यकों के प्रश्न पर विचार करने वाली समिति को एक ज्ञापन देकर तथा समय-समय पर अपने भाषणों में जो उन्होंने उल्लेख किये हैं उसके आधार पर हम कह सकते हैं कि आर्थिक प्रश्नों पर उनके विचार अत्यन्त स्पष्ट थे। उनके आर्थिक विचार लोकतांत्रिक समाजवाद में आस्था रखने वाले विचारकों से मेल खाते थे।

स्मरण रहे कि अम्बेडकर का मुख्य विषय अर्थशास्त्र ही था। अर्थशास्त्र के संदर्भ में ही उनको समाजशास्त्र के अध्ययन का भी सुअवसर मिला। उनके पास विदेशों की बड़ी-बड़ी उपाधियाँ थी जो अपने आप में एक गरीब तथा अछूत कहलाये जाने वाले व्यक्ति के लिए एक महान उपलब्धि थी। ये सभी उपलब्धियाँ अर्थशास्त्र के क्षेत्र में उनके शोध कार्यों पर प्राप्त की गई थी। उन्होंने भारतीय जन-जनजीवन के संदर्भ में अर्थशास्त्र के सिद्धान्त का गहन अध्ययन किया। इस विषय पर उन्होंने कई पुस्तकें तथा लेख लिखे। इन कृतियों का अर्थशास्त्र के संदर्भ में समुचित अध्ययन नहीं किया गया है। कई प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों का कहना है कि अगर अम्बेडकर का कार्य केवल अर्थशास्त्र के ही क्षेत्र में भी होता तो वे एक महान अर्थशास्त्री के रूप में प्रतिष्ठित हुए होते। यह दुर्भाग्य की बात है कि उनके व्यक्तित्व के इस पक्ष को प्रायः गौण मान लिया जाता है।

अम्बेडकर का मुख्य क्षेत्र भारतीय अर्थशास्त्र था। यह उनकी महान उपलब्धि है कि उन्होंने पश्चिमी सिद्धान्तों की सहायता से भारतीय अर्थशास्त्र का अध्ययन करने का प्रयास किया। इस विवेचन अध्ययन से उन्हें भारत के परम्परागत अर्थ-तन्त्र को समझने का अवसर मिला। वे प्रो० सेलिगमैन, प्रो० केन्नान तथा कई अन्य अमेरिका, इंग्लैण्ड तथा जर्मनी के अर्थशास्त्रियों के सम्पर्क में आये और उनकी सहायता से उन्होंने कई महत्वपूर्ण शोध किये।

अम्बेडकर का प्रथम उद्देश्य था कि भारतीय समाज में एकता के सिद्धान्त को विशेष दर्जा दिलवाना। वे यह जानते थे कि सामाजिक असमानता का मुख्य कारण आर्थिक शोषण है। जब तक अछूतों तथा दलितों की आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं किये जायेंगे, सामाजिक एकता का आदर्श प्राप्त नहीं किया जा सकता। वे कहा करते थे कि अछूत और दलित वर्ग के लोग इसलिए निर्धन हैं क्योंकि उनके लिए कई प्रकार के व्यवसायों के द्वार बन्द हैं। इनसे वहीं नीच समझे जाने वाले कार्य करवाये जाते हैं जिनमें शारीरिक श्रम तो बहुत है पर उनसे जीवन यापन पूरी तरह से नहीं हो पाता। इसके अलावा उनका ध्यान भारत की कृषि की समस्याओं की ओर भी गया। उन्होंने कहा कि कृषि योग्य भूमि का समुचित बंटवारा न होने के कारण भारत का दलित वर्ग हमेशा गरीबी के दलदल में फंसा रहा। इस समस्या के निदान के लिए उन्होंने भूमि-सुधार सम्बन्धी कानूनों को तुरन्त लागू किये जाने की

बात कही। उनका निश्चित मत था कि जब तक जमींदारी प्रथा का उन्मूलन नहीं होता, किसानों की गरीबी दूर नहीं की जा सकती। जब तक भूमिपति रहेंगे तब तक भूमिहीन किसान भी रहेंगे। जिन किसानों के पास भूमि होती भी है वह क्षेत्रफल में इतनी कम है कि वे चौथाई वर्ष का खाना भी इससे उपलब्ध नहीं कर सकते। इसलिए उनकी खुशहाली के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि जमींदारी प्रथा का अन्त किया जाय। इस विषय में तत्कालीन कई नेता भी उनके पक्षधर थे। यही कारण है कि इस प्रथा के उन्मूलन की दिशा में विस्तृत कार्यक्रम लागू किया गया।

अम्बेडकर ने कृषि सम्बन्धी कई विचारों को जनता के सम्मुख रखा। कुछ समय तक उन्होंने सहकारिता पर आधारित खेती की भी खूब चर्चा की। इस विषय में पं० जवाहर लाल नेहरू भी उनसे सहमत थे। कई अंचलों में इसके सफल प्रयोग भी किये गये, किन्तु इसका अधिक प्रसार नहीं हो सका। अम्बेडकर का मत था कि सहकारी खेती की प्रथा के माध्यम से भूमिहीन दलित किसानों की समस्या का समुचित हल निकाल सकेगा। एक समय तो वे कृषि के राष्ट्रीयकरण की बात भी करने लगे थे, किन्तु जब उनको यह अनुभव होने लगा कि इस प्रथा का रुख वैज्ञानिक समाजवाद की ओर मुड़ जाने का खतरा है, तो उन्होंने अपनी दलीलों को छोड़ दिया। वे अनुभव करते थे कि साम्यवादी तरीकों से भारत की समस्याओं का हल सम्भव नहीं है। सम्भवतः अन्त में वे कृषि के क्षेत्र में भी उस मिश्रित अर्थव्यवस्था के पक्षधर हो गये थे, जिसको नेहरू ने लागू किया और किसी हद तक उसके अच्छे परिणाम भी सामने आये।

अम्बेडकर एक ऐसे अर्थतन्त्र की कल्पना करते थे जिसके माध्यम से गरीबी का उन्मूलन तो हो ही, साथ ही कृषि तथा उद्योगों से पैदा की जाने वाली सम्पत्ति कुछ ही हाथों में केन्द्रित न हो जाये। अर्थशास्त्र के क्षेत्र में भी उनकी मूल चिन्ता का विषय अछूतोद्धार की समस्या ही थी। उन्होंने जिन आर्थिक परिवर्तनों की बात की, उनके पीछे भी यही भावना विद्यमान थी। वे देश की आर्थिक सम्पन्नता का मूल्य भी इसी आधार पर आंकते थे। वह अर्थव्यवस्था जो अपने आप में चाहे जितना सही हो, अगर उससे पिछड़ी जातियों के हितों का सम्पादन नहीं होता और सामाजिक न्याय का आदर्श नहीं प्राप्त होता तो ऐसी व्यवस्था अवांछनीय है।

अन्त में यह बात याद रखनी चाहिए कि अम्बेडकर का मुख्य विषय यद्यपि अर्थशास्त्र था, किन्तु वे सामाजिक समस्याओं से इस कदर जुड़ाते रहे कि वे अपने प्रिय विषय को अधिक समय न दे सके। फिर भी जब भी हम उनके इधर उधर बिखरे विचारों का अध्ययन करते हैं तो उनकी सूझ-बूझ का परिचय मिल जाता है।

सन्दर्भ—ग्रन्थ

1. भगवान दास, बाबा साहेब, डॉ. भीमराव अम्बेडकर, एक परिचय एक संदेश दलित लिबरेशन टूडे प्रकाशन, लखनऊ, 1998।
2. देवेन्द्र कुमार, देशन्तरी भारत के सामाजिक क्रान्तिकारी “दलित साहित्य प्रकाशन संस्थान”, नई दिल्ली, 2001।
3. आर. एस. गोरखा जीकट “डिले मौज आफ दलित मूवमेन्ट इन महाराष्ट्र” ई.वी. डब्ल्यू. प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994।
4. अम्बेडकर, गाँधी और दलित पत्रकारिता : श्यामराज सिंह बेचैन, 2010।
5. राज किशोर, दलित राजनीति समस्याएँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006।
6. राज किशोर, हरिजन संदलित, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004।
7. सुभाष कश्यप, हमारा संविधान, भारत का संविधान और संवैधानिक विधि, भारतीय संविधान, शासन और हम।
8. एस०पुरी, भारतीय राजनीति व्यवस्था अथवा भारतीय शासन एवं राजनीति 1976।
9. प्रतियोगिता दर्पण, राजनीति विज्ञान, अतिरिक्त अंक, 2007।
10. बी. आर. अम्बेडकर 2011 हिन्दी नारी का उत्थान और पतन तृतीय संस्करण सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली।
11. पी. डी. अग्निहोत्री, पतंजलि कालीन भारत।
12. हैन्सन पॉलिटिक्स एण्ड आइडियोलॉजी।

13. डॉ. बी. आर. अम्बेडकर, शुद्धों की खोज।
14. दलित और प्रजातांत्रिक क्रान्ति, गेट ओमवेट अनुवादक नरेश भार्गव उपनिवेशीय भारत में डॉ. अम्बेडकर एवं दलित आन्दोलन।
15. डॉ० विजय कुमार सन्देश, डॉ० नामवर, दलित चेतना और स्त्री विमर्श।
16. शंकरानन्द शास्त्री, युग पुरुष बाबा साहेब का जीवन संघर्ष एवं राष्ट्र सेवाएँ, नई दिल्ली।
17. बी. आर. अम्बेडकर, डॉ० अम्बेडकर के राजनैतिक विचार, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
18. प्रेमचन्द्र की कहानियों में दलित चेतना, पृष्ठ 8, सूर्यनारायण सुभे।
19. दैनिक जागरण, दैनिक समाचार पत्र, वाराणसी, दिनांक— 09.11.2010।
20. डॉ० बाबा साहब अम्बेडकर : लेख एवं भाषण—सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश।
21. डॉ० अम्बेडकर — कांग्रेस और गांधी के अछूतों के लिए क्या किया ? अनु० जगन्नाथ कुरीन—समता साहित्य प्रकाशन, लखनऊ 1988.
22. देवीदयाल, डॉ० बाबा साहब अम्बेडकर की दिनचर्या, श्रीमती उर्मिला प्रकाशन, मुनीरक, दिल्ली, 1991.
23. समतामूलक समाज एवम् सामाजिक परिवर्तन के युगपुरुष : डॉ० भीमराव अम्बेडकर, संपा० डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव, ओमेगा प्रकाशन, नई दिल्ली.
24. दलित उत्पीड़क विशेषांक, संपा० विजय प्रताप, मोहनदास, नैमिशराय, लोकायन, दिल्ली, 1990.
25. डॉ० धर्मवीर शास्त्री — डॉ० भीमराव अम्बेडकर और दलित आन्दोलन — शेष साहित्य प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, 1990.



डॉ. भीमराव अम्बेडकर का भारतीय नारी उत्थान में योगदान

जय सिंह

पुस्तकालयाध्यक्ष

राजकीय परास्नातक महाविद्यालय, हमीरपुर (उ.प्र.)

हिन्दू समाज में अछूतों के साथ अत्याचार इस कारण होता था कि वह निम्न वर्ग के हैं, परन्तु भारतीय नारी के साथ हर वर्ग, हर वर्ण में होने वाले अत्याचार को बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने अनुभव किया था। मनुस्मृति अछूतों तथा स्त्रियों दोनों के प्रति समान तिरस्कार को प्रदर्शित करती है।

मनुस्मृति के अनुसार—

“पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने।

रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा, न स्त्री स्वातन्त्र्य मर्हति”

अतः स्त्री को स्वतन्त्र कहना उचित नहीं है क्योंकि कौमार्यपन में उसे अपने पिता के अनुसार चलना पड़ता है, युवावस्था में पति रक्षा करता है और वृद्धावस्था में पुत्र का आश्रय। इस प्रकार नारी पुरुष की अधीनता में ही रहती आयी है।

डॉ. अम्बेडकर ने हिन्दू समाज के ऐसे परंपरागत विधान पर कठोर प्रहार करने के निमित्त 1920 में “मूक नायक” नामक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया। मूकनायक के माध्यम से उन्होंने जाति प्रथा में निहित आधारभूत अन्याय के विरुद्ध अपने विचार व्यक्त किये। उन्होंने 1924 में “बहिष्कृत हितकारिणी सभा” का गठन किया जिसका उद्देश्य अछूतों को शिक्षित करना एवं उनके अर्थिक स्तर को ऊँचा उठाना था। पत्र “बहिष्कृत भारत” में डॉ. अम्बेडकर ने लिखा कि “देवताओं के उपरान्त यदि कोई पूजनीय है तो वह स्त्रियाँ हैं।

डॉ. अम्बेडकर जानते थे कि दलितों की स्थिति में सुधार के लिये दलित समाज की स्त्रियाँ महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती हैं। 20 मार्च 1927 को महाड़ में आई हुयी स्त्रियों को संबोधित करते हुये डॉ. अम्बेडकर ने कहा — “कभी मत सोचो कि तुम अछूत हो। साफ—सुथरी रहो। जिस तरह के कपड़े सवर्ण स्त्रियाँ पहनती हैं, तुम भी पहनो। गले में ढेर सारी मालायें और हाथों में काँच या चाँदी की बड़ी—2 चूड़ियाँ ही आपके अछूतपन की पहचान हैं। गले में एक माला से अधिक की कोई जरूरत नहीं है। उससे पति की उम्र घटती है या बढ़ती है, शरीर का सौन्दर्य बढ़ता है ऐसी कोई बात नहीं है। गहनों से कपड़ों का ज्यादा महत्व है। इसलिये काँच या चाँदी के गहनों पर ज्यादा पैसे खर्च करने के बजाय अच्छे कपड़े पर पैसे खर्च कीजिए। गहना पहनना ही है तो सोने का पहनिये वरना मत पहनिये। उसी तरह साफ सुथरे रहने की पूरी कोशिश कीजिए।”

उन्होंने आगे कहा कि “आप घर की गृह देवी हैं। घर में कोई गलत काम न हो इसके लिए आपको सावधानी बरतनी चाहिये। यदि तुम्हारे पति और लड़के शराब पीते हैं, मरे हुये जानवरों का मांस खाते हैं, तो उन्हें खाना मत दो। अपने लड़के और लड़की को स्कूल भेजो। शिक्षा जितनी महापुरुषों के लिये जरूरी है उतनी ही स्त्रियों के लिये भी जरूरी है। यदि तुम पढ़ना लिखना जान जाओगी तो तुम्हारे बच्चे भी वैसे ही बनेंगे और तुम्हारी उन्नति होगी। तुम्हें अच्छे कार्यों की तरह अपना जीवन मोड़ना चाहिए।

डॉ. अम्बेडकर इस सिद्धान्त की भी आलोचना करते थे कि मनुष्य को इस संसार में जन्म के आधार पर पूर्व कर्मों के अनुसार सब कुछ प्राप्त होता है। उन्होंने कहा कि “हमें कर्म सिद्धान्त को त्याग देना चाहिए। यह भी गलत है कि माता—पिता अपने बच्चों को केवल जन्म ही देते हैं, भविष्य नहीं। माता पिता अपने बच्चों का भविष्य बना सकते हैं। यदि हम इस सिद्धान्त पर चल पड़े तो हम अति शीघ्र शुभ दिन देख सकते हैं। और यदि हम लड़कों

के साथ—2 लड़कियों की शिक्षा की ओर भी ध्यान देने लगे तो हम और भी शीघ्र प्रगति कर सकते हैं। इसलिये आपको अपने पड़ोसियों को समझाना होगा कि “विद्या पढ़ो, विद्वान बनो।” इस प्रकार के क्रांतिकारी और प्रगतिशील विचार डॉ. अम्बेडकर के थे जब उनकी आयु लगभग 23 वर्ष थी।

देश की अंतरिम सरकार में अपने कानून मंत्रीत्व के दौरान डॉ. अम्बेडकर ने हिन्दू कोड बिल बनाकर प्रस्तुत किया। एक अर्थ में यह कार्य संविधान निर्माण के कार्य से भी अधिक महत्वपूर्ण था। बी. कामथ ने हिन्दू कोड बिल की प्रशंसा करते हुये कहा कि इसे ‘भीम स्मृति’ की संज्ञा दी जानी चाहिए।

डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत हिन्दू कोड बिल की एक ओर व्यापक सराहना की गई, वहीं दूसरी ओर घोर आलोचना भी की गयी। इसी सन्दर्भ में हिन्दु महा सभा के नेता डॉ. एस. के मुखर्जी ने कहा कि हिन्दू समाज प्रगतिशील है एवं उसने अपने विरोधियों के दृष्टिकोण को भी अपनाया है। डॉ. मुखर्जी की इस टिप्पणी पर डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि हिन्दू समाज चाहे कुछ अपना ले, वह अपनी सामाजिक संरचना को कभी भी नहीं छोड़ सकेगा। इसके अन्तर्गत शूद्रों तथा महिलाओं की गुलामी कभी भी समाप्त नहीं हो सकेगी।

अतः महिलाओं की गुलामी और शूद्रों के उत्थान के लिये कानून का सहारा लेना ही पड़ेगा। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में हमने स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुत्व की चर्चा की है परन्तु विवाह का संस्कारिक विचार क्या है? पुरुषों के लिये विधुर विवाह की अनुमति तथा स्त्री अपने पति से किसी भी स्थिति में स्वतन्त्र नहीं हो सकती है, चाहे पति कितना भी निकृष्ट, खराब या अवांछनीय ही क्यों न हो। अतः इन्ही सब कारणों से महिलाओं के रक्षक के रूप के कानून को आना ही पड़ेगा।

डॉ. अम्बेडकर द्वारा संविधान एवं हिन्दू कोड बिल में नारी उत्थान के लिये किये प्रयासों को इस प्रकार समझा जा सकता है।

संविधान का अनुच्छेद 14 बताता है कि भारत क्षेत्र में किसी भी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से अथवा विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं किया जा सकता।

अनुच्छेद 15 (1) के अनुसार राज्य केवल धर्म, मूलवंश जाति, लिंग अथवा जन्म स्थान के आधार पर किसी नागरिक के विरुद्ध असमानता नहीं करेगा। अनुच्छेद 16 (1) के अनुसार राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से सम्बन्धित विषयों में सभी नागरिकों के लिये अवसर की समता होगी।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 (3) में इस बात को विशेषतया बताया गया है कि राज्यों को महिलाओं के लाभार्थ विशेष उपबंध बनाने की स्वीकृति है।

- संविधान का अनुच्छेद 39 (क) राज्य अपनी नीति का विशिष्टतया इस प्रकार संचालन करेगा कि पुरुष और स्त्री सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो। संविधान का अनुच्छेद 39 (घ) के अनुसार पुरुषों और स्त्रियों दोनों का समान कार्य के लिये समान वेतन हो।
- संविधान का अनुच्छेद 39 (ङ) यह बताता है कि राज्य को पुरुष व महिला मजदूरों के स्वास्थ्य व शक्ति की सुरक्षा करनी चाहिए।
- संविधान का अनुच्छेद 51 क (ङ) बताता है कि भारत के प्रत्येक नागरिक का यह पुनीत कर्तव्य होगा कि वह उन प्रथाओं का परित्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हो।
- संविधान का अनुच्छेद 23 और 24 से शोषण के विरुद्ध अधिकार प्राप्त हुये जिससे महिलाओं, बच्चों की खरीद-बिक्री बंद हुयी।
- हिन्दु विवाह अधिनियम 1955 से पूर्व जाति समता एक जायज विवाह के (लिये अनिवार्य था) उस समय अनुलोम विवाह (उच्च वर्ग का पुरुष और निम्न वर्ग की स्त्री) को मान्यता प्राप्त थी। जबकि प्रतिलोम विवाह

(निम्न वर्ग का पुरुष और उच्च वर्ग की स्त्री) बर्जित था। हिन्दु विवाह अधिनियम 1955 के बाद सारे मत भेद समाप्त हो गये।

— न्यायिक पृथक्करण की धारा 10 विवाह समाप्ति, तलाक का उपबन्ध करती है।

सन 1956 में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के अन्तर्गत पहली बार पिता की स्वअर्जित तथा पैतृक सम्पत्ति में लड़की को भी हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार दिया गया। धारा 23 स्त्री उत्तराधिकारी को उसकी इच्छा पर परिवार के घर में निवास करने का अधिकार प्रदान करती है, यदि वह अविवाहित, विवाहित, परित्यक्ता विधवा है। यह एक्ट हिन्दू स्त्री का सम्पत्ति के अवधारणा के लिये निम्न लिखित नियम बताता है—

इस अधिनियम की धारा 14 में यह उपबन्ध है कि जितनी संपत्ति एक स्त्री के कब्जे में होती है चाहे वह कब्जे काली संपत्ति इस अधिनियम के पूर्व की हो या बाद की हो “स्त्री धन” कहलाता है। इस पर स्त्री का पूर्ण अधिकार होता है।

हिन्दू दत्तक ग्रहण एवं और भरण—पोषण अधिनियम 1956 की धारा 18 निधारित करती है कि एक हिन्दू पत्नी का विवाह चाहे इसके पूर्वथा बाद में हुआ हो वह जीवन भर पति से भरण—पोषण प्राप्त कर सकती है।

न्यायालय की अनुमति से महिला संगठन किसी अंसतोष जनक फैसले के विरुद्ध न्यायालय में अपील कर सकती है। इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय नारी में आत्म निर्भरिता, आत्मविश्वास और आत्म सम्मान का संचार किया और शिक्षित बनी, संगठित रही और संघर्ष करो का मार्ग सुझाया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

अस्थान प्रो. प्रतिमा : भारतीय संस्कृति के सोपान, पृष्ठ — 144

वेचैन, श्यौराज सिंह : स्त्री विमर्श और पहली—दलित शिक्षिका साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, 2009 पृष्ठ — 65

रत्न नानक चंद : डॉ. अम्बेडकर जीवन के अंतिम कुछ वर्ष, (लास्ट फ्रयू इयर्स ऑफ डॉ. अम्बेडकर का हिन्दी अनुवाद) किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ — 30—34

वेयर एक्ट, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन इलाहाबाद , 2015

‘विमल कीर्ति’ में श्राम एल. जी.: और बाबा साहेब ने कहा (खण्ड—1) डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर के आलेख एवं अभिभाषण, पृष्ठ— 1920—1928 राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

कीर धनंजय: डॉ. अम्बेडकर—लाइफ एंड मिशन, पृष्ठ—417,418, 426, 427, 432, 433

तिलक रजनी : डॉ. अम्बेडकर और महिला आन्दोलन, बुक्स इंडिया प्रकाशन दिल्ली, 2012

मेघवाल बी.एल.: भारत रत्न डॉ. बी. आर. अम्बेडकर, पृष्ठ—126



मानव विकास का पर्यावरण पर प्रभाव (वैश्विक चिंतन का सामाजिक यथार्थ)

डॉ० मनजीत सिंह
जवाहर नवोदय विद्यालय, मल्हार, बिलासपुर (छ०ग०)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अपने दैनिक जीवन में समृद्ध होने के निमित्त नियमित प्रयास करता है और समाज में अपना अस्तित्व बनाये रखने का पुरजोर कोशिश भी करता है परंतु तथाकथित विकसित कहे जाने वाले जीवन से वह असंतुष्ट रहता है। यही कारण है कि—अधिकांश विकासशील देश अपने व्यक्तिशः उपभोग के बल पर विकसित होने का दंभ भरते हैं, जबकि वास्तविकता इससे अलग है। वास्तव में मानव विकास रोटी, कपड़ा, मकान सहित सुखदायक वस्तुओं को जुटाने के सम्मिलित प्रयास का परिणाम होता है, जिसका उद्देश्य जीवन की गुणवत्ता को सुधारना है। इसी आधार पर वैश्विक असमानता का पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार मानव विकास के सांस्कृतिक, सामाजिक कल्याण एवं राजनैतिक अधिकारों के लिए निमित्त मानकों में आँकड़ों की कालाबाजारी अधिक दिखती है वास्तविकता कम। इसी कारण मानव विकास के पर्यावरणीय प्रभाव के आकलन का यथार्थ परिस्थिकीय कारकों की अंतःक्रिया में अंतर्निहित है, जिसमें वायु, जलश्रोत, मौसम एवं जलवायु, भौम्याकृति, ऊर्जा एवं प्रकाश, जैवीय तत्व, मृदा—खनिज एवं चट्टानें इत्यादि संघटक स्वतः सम्मिलित हो जाते हैं।

सामान्यतः लोगों का मानना है कि विकास समृद्धि का वाहक होता है। मानव सभ्यता के विकास से ही पशुपालन, जंगलों को जलाने तथा बाद में औद्योगीकरण के बहाने जिस विकास की कहानी को निर्मित किया गया उससे विकास के बहाने विनाश की लीला ही प्रस्तुत होती गयी। विकास से संबंधित मानक पर्यावरणीय संतुलन को बनाये रखने में सक्षम है। पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ होता है—‘चारों तरफ’। दूसरे शब्दों में ‘पर्यावरण जैविक और अजैविक संघटकों का एक ऐसा समुच्चय है जो जीवधारियों के जीवन विकास के लिए अनुकूल निवास्य प्रदान करता है। इस निवास्य के लिए पर्यावरण के तत्व निरंतर क्रियाशील रहते हैं और आपस में आपसी तालमेल बनाये रखते हैं। जबकि पी. डी. शर्मा का कथन उचित है कि, “पर्यावरण अनेक वस्तुओं का जटिल रूप है प्रकाश, ताप, मिट्टी, जल आदि, जो किसी जीव को घेरे रहती हैं। कोई भी वाह्य बल, पदार्थ या दशा जो एक जीव को घेरे हुए है और किसी रूप में उसके जीवन को प्रभावित करती हैं, पर्यावरणीय कारक बन जाती है।”¹ ये कारक प्रत्यक्ष(प्रकाश, ताप, वायु की आर्द्रता, मृदा—वायु आदि) तथा अप्रत्यक्ष (भूमंडलीय बनावट) रूप में मानव विकास से प्रभावित करते हैं। अतः पर्यावरण के ह्रास के लिए मानव सबसे बड़ा कारण है। वनों की कटाई, औद्योगिक विकास, नगरीकरण और बढ़ती जनसंख्या के दबाव के कारण पर्यावरण घातक परिणामों को दिन प्रतिदिन आमंत्रित कर रहा है। भले ही जलवायु परिवर्तन पर आयोजित पेरिस सम्मेलन में वैश्विक करार के तहत सेंटर फार एनर्जी। एनवायरमेंट एंड वाटर (सीईईडब्ल्यू) की सीईओ अनुराधा घोष ने विश्व सौर संधि की पहल को कार्बन उत्सर्जन घटाने की दिशा में सबसे बड़ा कदम माना है क्योंकि वह मानती है कि भारत के नेतृत्व में यह समझौता विकसित एवं विकासशील देशों को नई राह दिखा सकता है। इसमें कम लागत पर स्वच्छ ऊर्जा के उत्पादन का संदेश निहित है। लेकिन एनवायरमेंट एंड वाटर (सीईईडब्ल्यू) की महानिदेशक सुनीता नारायण का कथन वैश्विक परिप्रेक्ष्य में सर्वथा तर्कसंगत है। बकौल उनका कथन है कि—विकसित देशों को खुद को अनुशासित करना होगा। अमेरिका अपनी जीवन शैली में बदलाव किये बगैर विकासशील देशों पर दबाव बना रहा है। यह न्यायपूर्ण नहीं।”² इस प्रकार

हमें अपने संपूर्ण ज्ञान का उपयोग उपचार खोजने में लगाना चाहिए जो सर्वोत्तम प्रचलन पद्धति (Old practice) को आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी से प्रदान किये जाने वाले लाभों के साथ जोड़ें। यहाँ नये आधुनिक तथा कम नुकसान करने वाले तरीकों को विकसित करने की आवश्यकता है, जो हमारी परंपरागत एवं पद्धतियों को कोई नुकसान नहीं पहुँचा सके। अतः मानवीय प्रयास ही पर्यावरणीय सतुलन की कुंजी है।

पी. डी शर्मा कहते हैं कि, “विकास का अधिकार एक मूल मानवीय अधिकार है। इतिहास की दुर्घटनाओं के द्वारा, विश्व के राष्ट्र विकास के विभिन्न स्तरों पर हैं। जब पश्चिमी देशों ने अपने आपको विकसित किया तब उन्होंने अपने क्रियाकलापों से पर्यावरण को होने वाले नुकसान को अनदेखा किया। आज हम जानते हैं कि पर्यावरण को नुकसान पहुँच रहा है फिर भी विकासशील देशों द्वारा ऐसे ही क्रियाकलाप अपनाये जा रहे हैं। इस तरह विश्व समाज, जो अमीर और गरीब व्यक्तियों में विभाजित है, का प्रतिपालन भविष्य नहीं हो सकता। इस प्रकार की परेशानी उत्पादन और उपभोग में अनियमितता के कारण हुई है, जिसे लम्बे समय तक समर्थन नहीं दिया जा सकता।”³ कहने का तात्पर्य है कि विकसित कहे जाने वाले देश और उसमें निवास करने वाले लोग ही पर्यावरण के सबसे बड़े दुश्मन हैं। अक्सर समाज में यह कहते सुना गया है कि—हमारे घर में फ्रीज है, टी वी है, ए सी है, चार गाड़ियाँ हैं और यहाँ तक कि आधुनिक सुख—सुविधाओं के लिए समस्त संसाधन उपलब्ध हैं। परंतु दूसरी तरफ भूख से तिलमिलाते नंग—धड़ंग बच्चे अपनी आजीविका के लिए संघर्षरत रहते हैं। अतः यह समस्या न एक व्यक्ति की है, न मनुष्य की, न गाँव की, न जिला की, न देश की अपितु संपूर्ण विश्व में व्याप्त है। इस संदर्भ में प्रश्न स्वाभाविक है कि—इससे निपटने के लिए अब तक जितने भी प्रयास हुए हैं, वे कमोबेश वास्तविक परिणाम से कोसों दूर क्यों हैं? इसके निमित्त जैव विविधता भी कम उत्तरदायी नहीं।

वैश्विक स्तर पर 5 जून 1972 से लेकर आज तक जैव विविधता को लेकर अनेक प्रयास किये गये। जिसमें स्टाकहोम समझौता (1972), पृथ्वी शिखर सम्मेलन (1992), कार्टजेना जैव सुरक्षा प्राटोकाल (29 जनवरी 2000)। इस विविधता एवं पर्यावरणीय असंतुलन का ही दुष्परिणाम ग्लोबल वार्मिंग के रूप में सभ्यता के विनाश का गाथा गढ़ रहा है। इसके निमित्त क्योटो प्रोटोकाल (1997), कानकुन सम्मेलन (कोप 16), संयुक्त राष्ट्र जलवायु सम्मेलन—1972, कोप—17 (डरबन सम्मेलन) कोप—19 वारसा, नागोया जैव विविधता सम्मेलन (18—29 अक्टूबर 2010) तथा ओजोन परत को क्षीण करने वाले पदार्थों के बारे में (ओजोन परत के संरक्षण के लिए वियना सम्मेलन में पारित प्रोटोकाल)⁴ अंतर्राष्ट्रीय संधि के रूप में हुए मॉट्रियल प्रोटोकाल सहित जितने भी समझौते हुए हैं, उनमें संधियों के माध्यम से निपटने का प्रयास किया गया और विश्व में परिवर्तित हो रही जीवन शैली पर चिंता जाहिर की गयी।

सामान्यतः हम ‘मेक इन इंडिया’ का सपना देखते हैं और बहुराष्ट्रीय कंपनियों को बढ़ावा देते हैं। इससे एक तरफ विकास का तथाकथित महल तो तैयार होता है लेकिन वह लाख के महल से भी कमजोर होता है। क्योंकि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वह पर्यावरणीय असंतुलन को बढ़ावा देता है। छत्तीसगढ़ को ‘धान का कटोरा’ कहा जाता है। हम यहाँ अक्सर देखते हैं कि—धान कटने के बाद यहाँ के किसान खेत में बचे फसलों को जलाते हैं। वह जली हुई फसल राख बनकर हवा के सहारे इधर से उधर उड़ती है। इससे कीड़े—मकोड़े भले मर जायें लेकिन इससे पर्यावरण प्रदूषित होकर सीधे तौर पर मानव जनसमुदाय को प्रभावित करते हैं। पंजाब और हरियाणा में 1960 की हरित क्रांति के बाद अनाज का अत्यधिक उत्पादन तो हो रहा है लेकिन वहाँ की मिट्टी विलाप कर रही है। अतः जैविक कृषि समय की मांग बन जाती है। इतना ही नहीं। भारत की बनी सब्जियाँ विश्व विकसित देश नहीं ले रहे क्योंकि उनका मानना है कि इसमें पेस्टिसाइड की मात्रा विद्यमान है। दैनिक जीवन में हम प्रत्येक दिन जहर खा रहे हैं। पालिस किया हुआ दाल—चावल—सब्जियाँ ही हमें आकर्षित करते हैं। लोग थोड़े से लालच के लिए

एक दूसरे को जहर पिलाने पर आमदा हैं। जीवन में चमक-दमक के लालच में आकर हम दूषित भोजन, दूषित जल, दूषित हवा लेने के किए स्वेच्छा से मजबूर हैं। जो प्रकृति हमें शुद्ध हवा देती है उसके लिए ए.सी. की क्या जरूरत? आज जो प्रकृति का निःशुल्क उपहार है, ऐसे उपहारों को दूध और पानी के बहाने खरादने की जरूरत पड़ रही है। अतः हमें ऐसे उपहारों की रक्षा करनी होगी, जिससे आने वाली पीढ़ी को हम उपहार भेंट कर सकें अन्यथा वह दिन दूर नहीं जब विश्व में प्रकृति ही कुरुक्षेत्र बन जाय तथा बीमार मानव और बीमार होने को मजबूर हो जाय।

सन्दर्भ सूची

1. पी. डी. शर्मा—पारिस्थिकी एवं पर्यावरण, रस्तोगी पब्लिकेशंस, मेरठ, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ—21
2. अमर उजाला, दैनिक समाचार पत्र, इंटरनेट संस्करण, दिनांक—02.12.2015
3. पी. डी. शर्मा—पारिस्थिकी एवं पर्यावरण, रस्तोगी पब्लिकेशंस, मेरठ, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ—446
4. क्रानिकल—विशेषांक, कोड 345, पृष्ठ—60



प्राकृतिक आपदा, मानव अधिकार एवं बचाव के सुरक्षात्मक उपाय : एक आकलन

प्रेम प्रकाश यादव

प्रवक्ता—लाइब्रेरी

राजकीय महाविद्यालय अकबरपुर, कानपुर देहात, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्राकृतिक आपदा अचानक उत्पन्न हुई उस परिस्थिति को कहते हैं जो मनुष्य के लिये ऐसी कठिनाइयाँ पैदा कर दे, जिसका सामना करना मुश्किल हो, जो जान-माल को भारी नुकसान पहुंचाये ।

आधुनिक मानव सभ्यता के जीवन को खतरे में डालने के लिये मनुष्य ही सबसे ज्यादा जिम्मेदार है इसका खास कारण यह है कि विकास के साथ ही पूर्ण सुरक्षा की कोई जिम्मेदारी सुनिश्चित नहीं की जाती है। असंतुलित विकास को अपनाकर प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध विदोहन किया जा रहा है। जिससे प्रकृति का सन्तुलन दिन प्रतिदिन बिगड़ता जा रहा है प्रकृति में निरन्तर बदलाव आ रहे हैं जैसे ऋतु परिवर्तन मानसून का समय से पूर्व आ जाना, भूस्खलन होना, बाढ़ आना, सूखा पड़ना और भूकम्प आदि धटनाओं का मानव जीवन पर दुष्प्रभाव पड़ रहा है।

यदि प्राकृतिक संसाधनों और पर्यावरण को लेकर विकसित और विकासशील देशों की सोच का तुलनात्मक अध्ययन करने से निष्कर्ष निकलता है कि विकसित देशों का मानना है कि प्राकृतिक संसाधनों को हमें एक धरोहर के रूप में आने वाली पीढ़ियों के लिये सुरक्षित रखना है लेकिन भारत सहित विकासशील देशों की सोच इसकी उलटी है कि प्राकृतिक संसाधन एवं पर्यावरण हमें अपने पूर्वजों से विरासत के रूप में प्राप्त हुआ है जिसका विदोहन विकास के लिये पूर्ण आजादी के साथ किया जा सकता है। भारत की प्राकृतिक संसाधनों के विदोहन एवं पर्यावरण को लेकर इसी अवधारणा का पक्षधर है जिसका परिणाम यह है कि अनियोजित विकास के नाम पर हमने अपनी आने वाली पीढ़ी का जीवन चक्र खतरे में डाल दिया है।

मानव को अपने विकास क्रम के प्रारम्भ से ही प्राकृतिक आपदाओं से दो-चार होना पड़ा है मगर हाल ही में कुछ दशकों में पर्यावरण प्रदूषण, वैश्विक तापन तथा अम्लीय वर्षा तथा जलवायु परिवर्तन के कारण मौसम, जलवायु तथा पारिस्थितिकी तंत्र में तेजी से गड़बड़ी उत्पन्न हो रही है इसके कारण भूकम्प, भूस्खलन, बाढ़, सूखा तथा सुनामी चक्रवात जैसी स्थितियाँ तथा प्राकृतिक आपदाएँ तेजी से बढ़ रही हैं।

प्राकृतिक आपदा उत्पन्न होने के कारण

1. प्रकृति तथा मानव के मध्य बिगड़ता असंतुलन ।
2. पर्यावरण के साथ मनुष्य का बिगड़ता व्यवहार ।
3. अनियोजित विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध विदोहन ।
4. भूगर्भीय हलचल के कारण भूकम्प जैसी धटनाओं से उत्पन्न स्थिति का प्रभाव ।
5. पर्यावरण असन्तुलन बिगड़ने के कारण बादल फटना और भूस्खलन, बाढ़ आदि का प्रभाव ।
6. जनसंख्या में वृद्धि के कारण मानव की प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ती निर्भरता के कारण उत्पन्न स्थिति ।
7. प्रकृति के हाल चाल एवं समझने में मानव समुदाय की अक्षमता के कारण उत्पन्न स्थिति ।

8. धरती तथा ब्रह्माण्ड में निरन्तर होने वाले परिवर्तनों को समझने में मानव की विफलता के कारण उत्पन्न स्थिति ।

9. पर्यावरण को अनदेखी करते हुये विकास की गति को बढ़ावा देना ।

मानव अधिकार – मानव अधिकार के उत्पत्ति की अवधारणा को देखा जाये तो प्रतीत होता है कि मानव अधिकार का विचार उतना ही पुराना है जितनी मानव सभ्यता । प्रत्येक समाज को चलाने के लिये कुछ नैतिक मापदण्डों की आवश्यकता होती है यदि कोई व्यक्ति नियमों का पालन नहीं करता है तो उसे नियमानुसार दण्ड का प्रावधान होना चाहिये । मानव बुद्धिमान तथा विवेकशील प्राणी है इसलिये उसको कुछ ऐसे मूल तथा अहरणीय अधिकार प्राप्त होते हैं जिसे सामान्यतया मानव अधिकार कहा जाता है ।

मानवाधिकार वह अधिकार है जो कि प्रत्येक व्यक्ति को प्रकृति प्रदत्त जीवन एवं स्वतन्त्रता का अधिकार एवं राज्य द्वारा प्रेरित बिना भेदभाव के उन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक अधिकारों से है जो व्यक्ति के विकास से जुड़े होते हैं जिसके अभाव में व्यक्ति शान्तिपूर्ण, गरिमामय एवं सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत नहीं कर सकता है इसलिये राज्य का कर्तव्य है कि वे जन्म से मृत्यु तक व्यक्ति के उपर्युक्त मानवाधिकारों का पूरा सम्मान करे जिससे प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी भेदभाव के एवं राज्य प्रदत्त अधिकारों के साथ सम्मानपूर्ण जीवन जी सकें ।

प्राकृतिक आपदा का मानव के साथ सम्बन्ध – प्राकृतिक आपदाओं का मानव के साथ धनिष्ठ सम्बन्ध है । मानव का प्रकृति के साथ जन्म से लेकर मरण तक सम्बन्ध रहता है । जिसके कारण व्यक्ति को जन्म से कुछ प्राकृतिक अधिकार (जीवन, स्वतन्त्रता एवं प्राकृतिक संसाधन) प्राप्त हो जाते हैं । जिसका व्यक्ति आजीवन निःशुल्क उपयोग एवं उपभोग कर सकता है । आधुनिकता के दौर में व्यक्ति ने प्राकृतिक अधिकारों के उपयोग एवं उपभोग का कोई आदर्श पैमाना नहीं बनाया है जिससे व्यक्ति का जीवन सुरक्षित हो जाये और प्राकृतिक अधिकार भी । व्यक्ति मानवाधिकार का उपयोग एवं उपभोग प्रकृति के निर्धारित नियमों के अनुसार कर सकता है जब भी व्यक्ति ने अनियोजित विकास की ओर कदम रखा है और प्रकृति के रूप को नहीं समझा है तभी प्रकृति ने मनुष्य के सामने विकराल रूप दिखाना शुरू कर दिया है । प्रकृति को जानने और समझने में मानव की चेतना ने सदियों से बड़ी भूल की है और धरातल में प्रकृति एक के बाद एक प्राकृतिक आपदा के रूप में भयंकर त्रासदी बनकर उत्पन्न हो रही है जिसने मानव समाज तथा उसके जीवन के प्राकृतिक अधिकारों को खतरों में डाल दिया है ।

भारत सहित विश्व के अलग-अलग भागों में प्राकृतिक आपदा से उत्पन्न त्रासदी से जीव प्राणियों में सबसे ज्यादा हानि मानव जाति को उठानी पड़ रही है । क्योंकि व्यक्ति सभी जीव प्राणियों में सबसे ज्यादा बुद्धिमान एवं चिंतनशील प्राणी होने के कारण जिन अधिकारों को प्राप्त करने के लिये आजीवन कभी प्रकृति के खिलाफ तो कभी राज्य के विरुद्ध संघर्ष करता दिखाई देता है । इससे प्राकृतिक आपदाओं का कहर दिनोदिन बढ़ता नजर आ रहा है । इसके पीछे सबसे महत्वपूर्ण कारण मनुष्य का अनियन्त्रित विकास है ।

प्राकृतिक आपदाओं का कहर सबसे अधिक पहाड़ों, तटीय क्षेत्रों, समुद्र के नजदीक दिखाई देता है । भारत का समूचा तटीय क्षेत्र चक्रवाती तूफानों के दायरे में आता है मगर पूर्वी तथा दक्षिणी पूर्वी क्षेत्र को इसका अधिक कहर झेलना पड़ता है । क्योंकि इस क्षेत्र में बंगाल की खाड़ी तथा दक्षिणी पूर्वी एशियाई समुद्र से उठने वाले भीषण चक्रवात तथा सुनामी का सामना करना पड़ता है ।

प्राकृतिक आपदाओं से बचाव के सरकारी प्रयास—

1. भारतीय मौसम विभाग— वर्ष 1875 में स्थापित भारतीय मौसम विभाग चक्रवातों या भीषण तूफानों की उत्पत्ति तथा उसकी दिशा के सम्बन्ध में सटीक पूर्वानुमानों से देश को होने वाली व्यापक जन-धन की हानि से बचाव करने में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है । भारतीय मौसम विभाग तथा इनसेट श्रेणी के कुछ उपग्रह प्रत्येक

आधा या एक घण्टे में मौसम सम्बन्धित नियमित जानकारी देते रहते हैं। साठ के दशक में भारतीय मौसम विभाग (IMD) कम्प्यूटर द्वारा वैश्विक आकड़ों के आदान-प्रदान करने वाला पहला भारतीय संस्थान बना। भारत विश्व के विकासशील देशों में अपना भूस्थिर उपग्रह विकसित करने वाला पहला देश है। इनसेट श्रेणी के भारतीय उपग्रह भारतीय क्षेत्र की निगरानी के अलावा मौसम तथा चक्रवात का तूफान से जुड़ी जानकारी भी उपलब्ध कराते हैं।

2. राष्ट्रीय आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण (NDMC) 23 दिसम्बर 2005 को तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की अध्यक्षता में राष्ट्रीय आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण का गठन किया गया। इसके अन्तर्गत ही राज्यों में भी राज्य आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण का प्रावधान बनाया गया जिनके प्रमुख राज्य के मुख्यमंत्री होते हैं। राष्ट्रीय आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण की अहम् जिम्मेदारी राज्यों से समन्वय स्थापित करके सभी राज्यों में मजबूत आपदा प्रबन्धन केन्द्र विकसित करना, आपदा प्रभावित क्षेत्रों की पहचान एवं वर्गीकरण करके वहाँ सुरक्षात्मक कदम उठाना तथा आपदा की आपातकालीन स्थिति में बिना वक्त गंवाये राहत व बचाव कार्य शुरू करना है।

3. राष्ट्रीय चक्रवात विपदा राहत परियोजना (NCRMP) –भारत में चक्रवात से हुये नुकसान को कम करने तथा राहत कार्यों को बढ़ाना देने के लिये गृहमंत्रालय के अधीन राष्ट्रीय चक्रवात विपदा राहत परियोजना (नेशनल सायक्लोन रिस्क मिटिगेशन प्रोजेक्ट) की स्थापना की गई इस परियोजना को वर्ष 2006 से राष्ट्रीय आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण के अन्तर्गत चलाया जा रहा है। इस परियोजना का मुख्य उद्देश्य भारत के तटीय क्षेत्रों में चक्रवात का प्रभाव कम करने के लिये आधारभूत संरचनाओं का विकास करना है।

प्राकृतिक आपदा से निपटने के कुछ अन्य महत्वपूर्ण उपाय—

1. इस राष्ट्रीय आपदा से निपटने के लिये विभिन्न स्तरों पर राष्ट्रव्यापी अभियान शुरू किये जाने चाहिये। इसके लिये केन्द्र सरकार को प्रभावी राष्ट्रव्यापी कार्ययोजना का निर्धारण तथा क्रियान्वयन करना चाहिये। केन्द्र सरकार से जुड़ी आपदा प्रबन्धन इकाइयों तथा वैज्ञानिक तथा तकनीकी संस्थानों को आपस में समन्वय स्थापित करते हुये लगातार सूचनाओं एवं आकड़ों का आदान-प्रदान करते रहना चाहिये। आपदा प्रबन्धन विभाग तथा इससे जुड़ी अन्य संस्थाओं को अत्याधुनिक सुविधाओं तथा संसाधनों से लैस किया जाना चाहिये। उच्च प्रशिक्षित तथा अत्याधुनिक साधन सम्पन्न आपदा प्रबन्धन दस्तों का गठन करना चाहिये जिससे विषम या आपातकालीन परिस्थितियों में उनका उपयोग किया जा सके।
2. परम्परागत तकनीकों तथा अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी के बेहतर समन्वय तथा इस्तेमाल करने से ही हम प्राकृतिक आपदाओं से अधिक कारगर ढंग से निपटने में सक्षम हो सकते हैं।
3. आपदा प्रबन्धन तथा पर्यावरण अध्ययन को स्कूल, कालेज, तथा विश्वविद्यालय पाठ्यक्रमों में शामिल करना अति आवश्यक है, साथ ही इस क्षेत्र में उच्चस्तरीय अनुसंधान तथा विकास कार्यों को बढ़ाना देना बेहद जरूरी है।
4. किसी भी प्रकार की प्राकृतिक आपदाओं से कारगर ढंग से निपटने के लिये जनजागरूकता का प्रसार करना अति आवश्यक है। लोगों को सर्वप्रथम अपने यहाँ की पारिस्थितिकी तथा भौगोलिक पर्यावरण के प्रति जागरूक व संवेदनशील होना जरूरी है। दूसरा आपदा जैसी आपातकालीन स्थितियों को बेहतर ढंग से सामना करने हेतु उन्हें प्रशिक्षित किया जाना चाहिये इसके लिये सरकार विभिन्न क्षेत्रों में समय-समय पर जनजागरूकता कार्यक्रमों, कार्यशालाओं, शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों, सेमिनारों, विचार-गोष्ठियों, रैलियों, प्रदर्शनियों, प्रोन्साहन कार्यक्रम तथा प्रतियोगिताओं का आयोजन कर सकती है या करनी चाहिये इसके अलावा प्रिन्ट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया एवं विभिन्न प्रकार (रेडियो, टी0वी0, पत्र-पत्रिका विज्ञापन, रोड विज्ञापन) के माध्यम से भी आपदा प्रबन्धन से जुड़ी जानकारी देकर जनजागरूकता बढ़ाई जा सकती

है।⁵ लोगो को अपने स्थानीय पर्यावरण के प्रति सचेत, संवेदनशील तथा जागरूक तथा जिम्मेदार होना चाहिये लोगो को यह भी बताना जरूरी है कि हमारा पर्यावरण कैसे प्राकृतिक आपदाओं से हमारी सुरक्षा करता है तथा पर्यावरण का संरक्षण, संवर्द्धन तथा समृद्ध बनाया जाना कितना जरूरी है। इस बात पर कोई दो राय नहीं है कि वैश्विक स्तर पर माननीय हस्तक्षेप के कारण जिस प्रकार पर्यावरण सन्तुलन तथा पारिस्थितिकी तंत्र को लगातार नुकसान पहुंचाया जा रहा है उससे न सिर्फ मौसम जलवायु तथा अन्य प्रकार की भौगोलिक परिस्थितियों में भयंकर परिवर्तन देखने को मिले हैं। बल्कि प्राकृतिक आपदाओं की दर तथा विनाशालीला भी बढ़ी है। अतः पर्यावरण को हुई क्षति के लिये परस्पर एक-दूसरे पर दोषारोपण करने के बजाय विश्व के सभी देशों को आपस में परस्पर समन्वय-सौहार्द तथा बेहतर तालमेल स्थापित करके इसकी भरपाई के लिये सम्मिलित प्रयास करने चाहिये यद्यपि आज हमारे लिये विकास जरूरी है लेकिन पर्यावरण का संरक्षण तथा संवर्द्धन उससे कहीं अधिक जरूरी है।

6. भारत को उपग्रह तथा रेडार प्रणाली तथा मौसम पूर्वानुमान प्रणाली को और अधिक विकसित तथा अत्याधुनिक बनाना बेहद जरूरी है। भारत के ध्रुवीय तथा सूचना संचार उपग्रह को विकसित देशों जैसे अत्याधुनिक बनाने के प्रयास होने चाहिये। वैश्विक संस्थाओं एवं देशों को आपस में बेहतर समन्वय, तकनीकी तथा सूचना के आदान-प्रदान से प्राकृतिक आपदाओं से सामूहिक ढंग से निपटने के लिये सार्थक प्रयास होने चाहिये। आपसी समन्वय, सहभागिता तथा प्रेमभाव से किसी भी आपदा का बेहतर ढंग से सामना किया जा सकता है।
7. पहले पर्यावरण बचायेंगे फिर विकास करेंगे तो प्राकृतिक आपदा की सम्भावना कम हो जायेगी यह सोच सभी मानव की होनी चाहिये।
8. किसी भी प्राकृतिक आपदा के बाद वास्तविक आपदा पीड़ितों की पहचान तथा उन्हें उचित समय या सही समय पर उचित राहत, पुनर्वास, विस्थापन तथा पुनर्निर्माण को लेकर सरकार की प्रभावी व्यवस्था होनी चाहिये।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि पर्यावरण का संरक्षण तथा संवर्द्धन सर्वप्रथम जरूरी है उसके बाद नियोजित विकास होना चाहिये जिससे राष्ट्र में कोई प्राकृतिक आपदा का सामना न करना पड़े। प्राकृतिक आपदा से निपटने हेतु देश के प्रत्येक नागरिक तथा सरकार को हमेशा तैयार रहना चाहिये। देश के शिक्षाविदों, समाजशास्त्रियों, वैज्ञानिकों, समाज-सेवकों, राजनीतिज्ञों तथा नीति-निर्धारकों तथा तकनीकी विशेषज्ञों का विश्वास है कि पर्यावरण को यदि बचायेंगे तो देश में प्राकृतिक आपदा का खतरा कम हो सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. पलाई, अरुण कुमार : भारत का राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
2. श्रीवास्तव, सुधारानी : भारत में मानवाधिकार की अवधारणा, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
3. समसामयिकी महासागर अक्टूबर 2014, फरवरी-2015, मार्च-2015, जुलाई-2015,
4. प्रतियोगिता दर्पण फरवरी-2014
5. प्रतियोगिता दर्पण फरवरी-2015
6. विभिन्न पत्र-पत्रिकाएँ।



हिन्दी कवियों की पर्यावरण संचेतना

डॉ० सविता मसीह

सहा.प्रा.हिन्दी

शासकीय स्नाकोत्तर महाविद्यालय, सिवनी, उ.प्र.

पर्यावरण और मानव का सम्बन्ध उतना ही प्राचीन है जितना कि जगत सृष्टि के उद्भव और विकास का इतिहास प्राचीन है। मानव प्रकृति की गोद में पल्लित होकर उसकी अद्भुत क्रियाकलापों से उसकी हृदयस्य भावनाओं प्रेम, उल्लास, विस्मय आदि का स्फुरण हुआ। प्रकृति और मानव का संबंध स्थायी है, चिरन्तन है। मुनष्य और प्रकृति के अटूट संबंध की अभिव्यक्ति धर्म, दर्शन, साहित्य और कला में हमेशा होती रही है। साहित्य मानव जीवन का प्रतिबिम्ब है उस प्रतिबिम्ब में उसकी सहचरी प्रकृति और उसके चारों ओर का वातावरण अभिव्यक्ति पाते हैं। भारतीय संस्कृति और साहित्य में पर्यावरणीय संचेतना मानव हृदय और काव्य के बीच संयोजक का कार्य करती रही है। अनेक कवियों की प्रेरणा रूपी प्रकृति स्रोत ही नहीं सौंदर्य का अक्षय भंडार कल्पना का अद्भुत लोप अनुभूति का अगाध सागर, विचारों की अटूट श्रृंखला भी रही है।

भारतीय कवियों ने प्रकृति के रमणीय रूप और उसके प्रदेश के प्रति अपनी कृतज्ञता और पूज्य भावना उन्मुक्त हृदय से व्यक्त की है। वैदिक साहित्य में पर्यावरण रूपी प्रकृति की स्तुति करते हुए ऋषियों-मुनियों ने पृथ्वी से पुत्र का संबंध और भूमि को माता का स्थान दिया है। प्रकृति में देवत्व को मानकर सूर्य, अग्नि, वायु, वरुण, पर्जन्य, ऊषा, पृथ्वी के साथ इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि के रूप में स्वास्थ्य शक्ति तथा शतायु जीवन की कामना की गई है। इस प्रकार पृथ्वी, वन, वृक्ष, नदी जलाशय, पशु-पक्षी आदि सभी पर्यावरण रूपी चक्र में देवभावना को व्यक्त किया गया है। देवताओं के वाहन भी पूजनीय रहे हैं। प्रथम पूज्य स्तुति श्री गणेश का वाहन मूषक है तथा कार्तिकेय का वाहन मयूर है। शिव जी नंदी पर सवार है तो दुर्गा सिंह पर, भगवान विष्णु का वाहन गरुण है, भैरव की सवारी कुत्ता है, तो लक्ष्मी उलूक पर। ब्रह्मा और सरस्वती का वाहन हंस है। इन देवताओं के वाहन की सवारी पशुओं की भोजन श्रृंखला भी एक-दूसरे से जुड़ती हुई पर्यावरण रूपी प्रकृति में जीओ और जीने दो का संदेश देती है। पौराणिक मान्यता अनुसार शेष नाग अपने फन पर पृथ्वी को धारण किये हैं तो सर्प शिव के गले का हार है। शिव की जटाओं से गंगा का उद्गम स्थल है तो हिमालय शिव का निवास है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति और अध्यात्म में जन-जीवन में प्रकृति, वनस्पति, पशु-पक्षियों के प्रति सम्मान साहचर्य और संरक्षण की भावना सदा से रही है।

भारतीय संस्कृति और साहित्य में पर्यावरण के आधार रहे पेड़-पौधों की उपयोगिता व्रत और त्यौहारों में आंवला, पीपल, तुलसी और वट आदि का महत्व पूजन विधान वर्णित है। इसी तरह तालाब-कुआ, बावड़ी, देवालय, वाटिका, उपवन आदि का भी चित्रण मिलता है। प्राकृतिक पर्यावरण रूपी संचेतना मानव और कवियों को आदिकाल से संवेदित करती रही है। आदि कवि बाल्मीकि ने पृथ्वी को दो सजीव प्राणियों में से नर क्रोच को बहेलिया द्वारा मारे जाने पर मादा क्रोची के विलाप ने उनके हृदय को इतना उद्वेलित कर दिया कि उनके करुणामय हृदय से व्याध के शापोद्गार निकल पड़े जो काव्य रूप थे—“माँ निषाद प्रतिष्ठाम त्वमृगमः शाश्वती समाः। यत्क्रौंच मिथुनादेवकमवधीःकाममोहितम्।”¹

वर्तमान युग में बहुत से कानूनी प्रावधानों के होने पर भी लोग वन्य-प्राणियों का शिकार अपने स्वार्थ साधन के लिए करते हैं। संस्कृत साहित्य में तपोवन संस्कृति में अहिंसा यम की चरितार्थता सिंह और मृग एक घाट

पर पानी पीते हैं से परिलक्षित होती है। महाकवि कालिदास ने 'रघुवंश' में नंदिनी गौ को रघुवंशी राजा दिलीप सिंह के समक्ष अपने शरीर को मांस पिंड की भांति डाल देने का प्राणोत्सर्ग का अप्रतिम उदाहरण प्रस्तुत किया है—“स नयस्त शस्त्रों हरये स्वदेह—मुपानयत् पिण्डमेवामिपस्या।” (रघुवंश—कालीदास) इस प्रकार स्पष्ट है कि वैदिक युग से लेकर अपभ्रंश युग तक के साहित्य में कवियों की पर्यावरण रूपी संचेतना भारतीय दर्शन, संस्कृति और जन—जीवन, वनस्पति, पशु—पक्षियों के प्रति सम्मान और साहचर्य और संरक्षण की भावना को प्रकट करती रही है।

वैज्ञानिक युग में आधुनिक तकनीकी और प्रौद्योगिकी ने सभ्यता के नाम पर प्रकृति को सहचरी न मानकर उसका अंधाधुंध दोहन शुरू कर दिया। विकास के चरम लक्ष्य की दौड़ में प्रकृति को भुला दिया उसने अपने अनुचित हस्तक्षेप से प्रकृति के पारिस्थितिकीय यंत्र को असंतुलित कर दिया। शहरीकरण और औद्योगीकरण ने पर्यावरण प्रदूषण के गंभीर संकट पैदा कर दिए। परिणामस्वरूप वर्तमान में जलवायु असंतुलन, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, बाढ़—सूखा, भूकंप, भूस्खलन, ग्लोबल वार्मिंग आदि समस्याओं से पर्यावरण जूझ रहा है।

साहित्य में पर्यावरण संचेतना वस्तुनिष्ठ न होकर आत्मनिष्ठ या वैषायिक पद्धति से अभिव्यक्ति पाती है। साहित्यकार तत्पुगीन परिवेश में पला—बढ़ा होने के कारण उसका प्रभाव ग्रहण करता है और उसे अपनी संवेदना या राग का विषय बनाकर अपनी रचनाओं में रूपायित करता है। परिवेश में उसका प्राकृतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पर्यावरण सम्मिलित होता है। यहां प्रकृति आलंवन, उद्दीपन, उपदेशात्मक, मानवीकरण आदि विभिन्न रूपों में चित्रित होती है। वस्तुतः साहित्य में प्राकृतिक पर्यावरण एक पृष्ठभूमि का काम करता है।

हिन्दी कवियों के काव्य में पर्यावरण रूपी संचेतना सदैव ही कृति विशेष में अभिव्यक्त जीवन या घटना या विषय सजीवता पाते रहे हैं। हिन्दी के प्रारंभिक कवियों के काव्य में प्रकृति चित्रण प्रायः उद्दीपन और उपमान रूप में हुआ है। मैथिल कोकिल विद्यापति ने प्रकृति सौंदर्य को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है—“फुटल कुसुम नव कुंज कुटीर वन कोकिल पंचम गावे रे । मलयानिल हिम सिखर सिधारल पिया निज देश न आवे रे।”²

मध्यकालीन कवियों में कबीर ने प्रकृति से संसार की नश्वरता का प्रतिपादन करते हुए अन्योक्ति कही है—“माली आवत देख के कलियां करें पुकार। फूले—फूले चुन लिए कालि हमारी बार।”

तुलसीदास ने प्रकृति का ऋतु चक्र का महत्व मानव स्वास्थ्य के लिए आवश्यक जानकर ‘मानस’ में पुष्प वाटिका की शोभा का वर्णन किया है—“भूप बागु बर देखेउ जाई। जहां बसन्त ऋतु रही लो भाई। लोग विटप मनोहर नाना। बरन—बरन बर बेलि बिताना। (मानस बालखण्ड का दोहा 226—3—8)

वनवासी श्रीराम ने चित्रकूट में प्राकृतिक आवास बनाया—“नाथ देखिहहिं विटप विसाला। पाकर जंबु रसाल तमाला। जिन्ह तरुबरन्ह मध्य बटु सोहा। मंजु विसाल देखि मन मोहा। ए तरु सरित समीप गोसाई। रघुवर पर्णकुटी जहँ छाई।

वहाँ सीता और लक्ष्मण ने भी विविध सुंदर वृक्ष अपने हाथों से लगाकर आधुनिक युग को वृक्षारोपण की जागरूकता की प्रेरणा दी है—“तुलसी तरुवर विविध सोहाए। कहूँ कहूँ सिय कहूँ लखन लगाय।” (मानस उ.का. दो. 7/5,6) रामराज्य के युग में पारिस्थितिक तंत्र के संतुलन का उल्लेख भी मिलता है—“रहहिं एक संग गज पंचानन। सागर निज मरजादा रहहीं। डारहिं रत्न तटिन्ह नर लहहीं। मांगे वारदि देंहि जल।” (मानस उ.का.दो. 22—23) रामचन्द्र के राज्य में कृष्ण भक्त कवियों के अराध्य देव की तो क्रीड़ा स्थलीय प्रकृति की रंगभूमि थी। सूरदास के ‘सूरसागर’ में कदम्ब, मधुबन, लताकुंज आदि का चित्रण प्रकृति के मनोरम दृश्य को उपस्थित करता है। महाकवि जायसी ने प्रकृति को उद्दीपन, उपमान प्रतीक आदि रूपों में प्रयुक्त किया। पद्मावत में पावस ऋतु के मादक रूप का वर्णन किया है—“रितु पावस बरसैं पिउ पावा। सावन भादो अति सुआबा। कोकिल बैन पति बग छूटी। घनि निसरी जेउं वीर बहूटी।”⁴

रीतिकालीन कवियों में बिहारी, सेनापति, देव, पद्माकर आदि कवियों ने प्रकृति को अनेक प्रकार से चित्रित किया है—“सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मद समीर। मन है जात आजी हवैं वा जमना के तीर। (बिहारी सतसई)

कवि पद्माकर ने बसन्त की सजीवता का चित्रण कितना हृदयगाही है—“कूलन में केलिन, कछारन में कुंजन में, क्यारन में कलिन—कुलीन किलकन्त है.....द्वार में दिसान में, दुनी में देश—देसन में। देखो दीप—दीपन में दीपत दिगंत हैं।” (पद्माकर)

आधुनिक कवियों में मैथिलीशरण गुप्त ने ‘पंचवटी’ में “चारू चन्द्र की चंचल किरणें खेल रही हैं, जल—थल में। स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है अवनि और अम्बर तल में।” आदि चित्रण में प्रकृति का शान्त कोमल एवं सुन्दर रूप की सर्जना को अपनाया है।

आधुनिक कवियों के काव्य में प्रकृति की छटा का चित्रण पर्याप्त सूक्ष्मता सरसता एवं विषदता से हुआ है। विशेषतः छायावादी काव्य तो प्रकृति के वैभव से परिपूर्ण प्रेरणादायक स्थली के रूप में चित्रित है—“उषा सुनहले तीर बरसती जय लक्ष्मी सी उदित हुई। उधर पराजित काल रात्रि भी जल में अन्त निहित हुई।” (जयशंकर प्रसाद)

प्रसाद कामायनी में ‘महा जल प्लावन में पंचभूत का भैरव मिश्रण’ जो देव जाति की यज्ञीय हिंसा जनित प्राकृतिक असंतुलन का परिणाम है। वे इड़ा सर्ग तकनीकी और वैज्ञानिक सभ्यता की यांत्रिकता से सावधान भी करते हैं जिसकी विभीषिका हम ई—कचरे तथा रसायनिक प्रदूषण के रूप में आज देख रहे हैं।” प्रसाद प्रकृति की नित्य नूतनता की चेतावनी स्वरूप में व्यक्त करते हुए कहते हैं—“प्रकृति के यौवन का श्रृंगार करेंगे कभी न बांसे फूल।” (कामायनी चिंता एवं इड़ा सर्ग)

मानव और प्रकृति का साहचर्य संबंध जोड़ते हुए छायावाद के प्रवृत्तक एवं प्रकृति के चितरे कवि सुमित्रानन्दनपंत का कथन है—“पावस ऋतु थी पर्वत प्रदेश, पल—पल प्रकृति वेश।” प्रसाद ने प्रकृति की आँख से मनुष्य को देखा था। पंत ने मनुष्य की आँख से प्रकृति को देखा। उन्होंने प्रकृति को वस्तुगत गरिमा दी। प्रकृति परिवर्तनशील है मानव जीवन और समाज भी।” (तारापथ—पंत)

“सुंदर है विहग, सुमन सुंदर, मानव तुम सबसे सुन्दरतम।”

पंत ने लिखा है—मेरा काव्य भू—जीवन, लोक मंगल और मानव मूल्यों का काव्य है।” (तारापथ—पंत)

महाकवि निराला ने ‘संध्या सुंदरी’ का मानकीकरण करते हुए प्रकृति को चित्रित किया है “दिवसावसान का समय मेघमय आसमान से उतर रही है वह संध्या सुंदरी परी सी, धीरे, धीरे, धीरे।” (राग—विराग— निराला)

निराला की ‘कुकरमुत्ता’, ‘नये पत्ते’, ‘जूही की कली’ आदि प्राकृतिक प्रतीक रूप को प्रकट करती है। महोदवी वर्मा स्वयं को नीर भरी दुख की बदली कहकर गौरव का अनुभव करती हैं। माखनलाल चतुर्वेदी की कविता ‘पुष्प की अभिलाषा’ मातृभूमि की रक्षा में बलिदानी वीरों के पथ में बिछ जाने की कामना से ओत—प्रोत है—“चाह नहीं सुरवाला के गहनों में गूँथा जाऊँ। चाह नहीं देवों के सिर पर चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ। मुझे तोड़ लेना वनमाली उस पथ पर देना तुम फेंक, मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक।” (पुष्प की अभिलाषा — मैथिलीशरण गुप्त)

प्रकृति में मानव के तथा मानव में प्रकृति के रूप—वैभव का दर्शन सर्वत्र उपलब्ध होता है। प्रयोगवादी कवि अज्ञेय ने ‘हरी घास पर क्षण भर’ कविता में प्रकृति का उपमान रूप में चित्रण किया है—“आज हम शहरातियों को / पालतू मालच पर सँवरी जूही के फूल से / सृष्टि के विस्तार का ऐश्वर्य का औदार्य का— कहाँ सच्चा, कहीं प्यारा एक प्रतीक / बिछली घास है या शरद की साँझ के सूने गगन की पीठिका पर / दौलती कलगी अकेले बाजरे की।” (हरी घास पर क्षण भर — अज्ञेय)। नागार्जुन ने प्रकृति सौंदर्य पर लिखा है अमल धवल गिरी के शिखरों पर बादल को घिरते देखते हैं जहाँ अपने ही परिमल से उन्मादित मृग भी विचरण करते हैं।

पर्यावरण के प्रति संवेदनहीन होती समाज व्यवस्था में मनुष्य को अपनी तात्कालिक इच्छाओं की तृप्ति की सामग्री चाहिये। जिस दौर में भूमण्डलीकरण, पूँजीवाद के असर से लोग एक निर्मम किस्म की व्यावसायिक होड़ में संलग्न हैं, रामचन्द्र के शब्दों में कहें—“विफलता का एक निराला ही विषण्ण सौंदर्य है। सुन्दरता प्रयत्नशील होने में है। गति में सुन्दरता रहती ही है, आगे चलकर चाहे यह सफल हो, चाहे विफल।”⁵ समकालीन धरातल पर वैश्वीकरण की अर्थव्यवस्था पर निराला के शब्द हैं—हमारा डूब रहा दिनमान/मास—मास, दिन—दिन प्रतिपल। उगल रहे हो गरल अनल। जलता यह जीवन असफल।”⁶ इसी गति या वास्तविकता और आकांक्षा के बीच सक्रिय कवि की पीड़ित विवेक चेतना ने पर्यावरण में होते जा रहे क्रूर प्रहार पर अभिव्यक्ति देते हुए राजेश जोशी का कविता संग्रह वसंत की छीजना और विष का बढ़ना में व्यक्त हुआ है—विक्षिप्त विजयोल्लास में ढिंढोरचियों का महादल गा रहा है, हर चीज का अंत करता सदी का अंत आ रहा है, चूहा चीते से पंजे लड़ा रहा है—ऐसा होता तो नहीं है पर हो रहा है—एक बाजारू व्यवस्था के आगे खड़े हैं हम निहत्थे आ रहा है सदी का अंत—कहां है / कहां है / कहां है बसंत?”⁷

निष्कर्ष स्वरूप पर्यावरण के प्रति हिन्दी कवियों की संचेतना एक ओर प्रेरक सजगता को व्यक्त करती हैं तो दूसरी पर्यावरण विनाश के उत्तरदायी कारणों की ओर संकेत कर रही है।

संदर्भ ग्रंथ

1. रचना (पत्रिका), अंक 111, नव-दिस. 2014, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
2. साहित्यिक निबंध का सातवां संस्करण—गणपतिचंद गुप्त, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. पहल पत्रिका, अंक 74, मई-जून-जुलाई 2003—संपादक ज्ञानरंजन, 101 रामनगर, जबलपुर।



नदियाँ—गंगा एक विवेचनात्मक अध्ययन

संदीप कुमार सिंह

711/2 ए0बी0नगर, उन्नाव, उ0प्र0

एक कथा के अनुसार माँ गंगा पहले स्वर्ग में तथा विष्णु के चरण से निकली ब्रह्म के कमंड में समायी थी। जब राजा सगर के 60,000 पुत्रों को कपिल ऋषि ने शाप से भष्म कर दिया, तब उनके उद्धार के लिये भगीरथ जी ने अपनी तपस्या से गंगाजी को स्वर्ग से पृथ्वी पर लाये। गंगा जब स्वर्ग से उतरी तब उन्हें शिव जी ने अपनी जटाओं में धारण किया। पृथ्वी पर आने के पश्चात गंगा भगीरथ के साथ गंगासागर जा रही थीं कि इसी बीच जहनु ऋषि ने उन्हें अपने योगबल से पी लिया और भगीरथ के बहुत प्रार्थना करने पर उन्हें अपने जानु(घुटने) से निकाला। पुराणों के अनुसार गंगा की तीन धारायें हैं एक स्वर्ग में, जिसे आकाश गंगा कहते हैं, दूसरी पृथ्वी पर और तीसरी पाताल में स्थित है। वहीं एक कथा में गंगा को ऋषिश्राप से सप्तर्षियों को मुक्ति दिलाने हेतु मानव रूप धारण कर विवाह बंधन में बंधकर सात पुत्रों (सप्तर्षियों) को जन्मदेकर शर्त के अनुसार उन्हें गंगा में डुबोकर मुक्ति प्रदान की। आठवें पुत्र भीष्म पितामह का त्यागकर पुनः अपने स्थान को लौट गयी।

गंगा की भौगोलिक स्थिति: विश्व की सैंतीसवीं और एशिया की सोलहवी लम्बी नदी के रूप में जानी वाली गंगा हिमालय के मुख से गंगासागर तक के लम्बे पथ पर अपने तट पर बसे उन्नतीस प्रथम एवं तेईस द्वितीय श्रेणी के नगरों के करोड़ों निवासियों की जीवनदायिनी होने के साथ ही राईन, बोल्गा, हांगहो, भीसीपीसी एवं नील जैसी विश्व की विशालतम एवं भारत माँ का दर्जा प्राप्त नदी है।

गंगा

1. लम्बाई —2510 कि०मी०
2. अपवाह बेसिन—(Drainage Basin) 10.5 लाख वर्ग कि०मी०
3. वार्षिक बहाव—(Annual Ruroff) 86,14040 लाखघन मीटर
4. प्रवाहदर—(Rate of flow) 12,500 घन मी० प्रमि से गंगा द्वारा भारत की 200 लाख हेक्टेयर भूमि की सिंचाई होती है जो भारत के कुल सिंचित क्षेत्रफल का 40 प्रतिशत है।

गोमुख से गंगासागर तक: 925 छोटी नदियों को अपने में समेटें यह नदी 28 प्रतिशत भारतीय क्षेत्र के दुर्गम मार्ग से निकलते हुये वरुणावत पर्वत की गोद में बसे उत्तरकाशी पहुचती है। उत्तरकाशी में घरासूँ, मल्डियाना, डंडला, गंगाक्षी आदि होते हुये भागीरथी—गंगा की यात्रा टिहरी की ओर बढ़ती है। तत्पश्चात देव प्रयाग अर्थात उत्तराखण्ड की आदि नदी अलकनदा का भागीरथी से मिलन केन्द्र यहाँ आकर चार प्रयागों, विष्णु प्रयाग, नन्द प्रयाग, कर्ण प्रयाग और रुद्र प्रयाग पर से क्रमशः विष्णु गंगा, मंदाकनी पिण्डर तथा नंदाकिनी की विशाल जलराशि को समेटकर अलकनंदा अपना सम्पूर्ण जल गंगा में मिला देती है। गंगा का नाम गंगा देव प्रयाग के बाद ही शुरू होता है। देव प्रयाग से ऋषिकेश से हरिद्वार देवस्थली हरिद्वार की महिमा तो भारतीय संस्कृति के प्रत्येक पक्ष से जुड़ी है। भगवान श्रीहरि हरिद्वार में वास करते हैं प्रायः एक साधारण व्यक्ति भी कहता है कि तीर्थ बड़ा केदार और पाप कटें हरिद्वार। श्रीपद्म पुराण में गंगास्नान एवं हरिद्वार का विशेष महत्व है। योगी धर्मशास्त्र की मान्यतानुसार हरिद्वार में पांच तीर्थ माने गये हैं। हरि की पौड़ी, कुशावर्त, बिल्लकेश्वर, नील पर्वत और कनखल। हरिद्वार में सैकड़ों मन्दिर हैं जैसे मायादेवी मन्दिर, मनसा देवी, चण्डीदेवी केन्द्र में गंगामाई का मन्दिर है। कुम्भ एवं

अर्धकुम्भ के पावन पर्वों का एक केन्द्र हरिद्वार भी है। कहा जाता है कि जब सूर्यमेश राशि पर और बृहस्पति कुम्भ राशि पर होते हैं तब गंगा की धारा अमृतमयी हो जाती है इस समय स्नान करने पर अमरफल प्राप्त होता है।

उत्तराखण्ड में गंगा और उसकी सहायक नदियाँ एवं अन्य पहाड़ी नदियाँ जैसे सत्यभामा, शारदा आदि नदियों के किनारे बसी कई बस्तियाँ धार्मिक स्थल भी हैं जहाँ किसी समय चीड़, देवदार, सनोबर, स्प्रूस तथा ओक के घने जंगलों में से होकर केवल पैदल ही पहुँचा जाता था जैसे तुगनाथ भारी हिम पात और वर्षा के कारण पहाड़ी प्रदेश में मनुष्य के लिये वहाँ बसना तथा खेती करना बहुत कठिन था, किन्तु हाल ही में पक्की सड़के बनने से वहाँ आवागमन सरल हो गया है। बिखरी हुई बस्तियाँ अब बड़े कस्बों में बदल गयी हैं। जैसे नई टिहरी की जनसंख्या सन् 1971 ई. से 1981 के बीच 125 प्रतिशत फिर 1981 ई. से 20 तक प्रतिशत अधिक हो गयी है। इस क्षेत्र के जंगल तेजी से समाप्त हो रहे हैं। वन सम्पदा का दोहन मकान बनाने, खेती के औजार बनाने, खेलकूद का सामान बनाने रेलवे स्लीपर बनाने, जलविद्युत शक्ति परियोजनाओं के लिये समाप्त की जा रही है। इसके साथ ही यहाँ की बस्ती जनसंख्या मोटे अनाज —(Millets) और गेहूँ की खेती के लिये अधिकाधिक भूमि साफ करके कृषि योग्य बना रही है। प्रायः ऐसा पहाड़ी क्षेत्र जो बनस्पति विहीन हो गया है। वहाँ पर भूस्खलन —(Land Slides) सामान्यतया होता है। विगत वर्ष वृक्षों के अभाव में केदारनाथ आपदा आयी। खड़ी चट्टानें टूटने तथा खिसकने के कारण पूरा केदारनाथ धाम त्रस्त हो गया और हजारों व्यक्ति काल के गाल में समा गये। नदी के तीव्र वेग से सड़कें, घर सब बह गये। तिरस्कार की मार से उत्पन्न केदारनाथ आपदा आमंत्रित आपदा: सर्वप्रथम बात सन् 1893 ई. की करतें हैं उत्तराखण्ड के चमोली में बहने वाली बिरही नदी में एक पहाड़ गिर गया बिरही आगे जाकर अलकनंदा में मिलती है जिसके भागीरथी में मेल के बाद बनी धारा को 'गंगा' कहा जाता है। बिरही में पहाड़ गिरने से एक विशाल झील बन गयी ताल के एक सिरे पर गौणा गाँव था और दूसरे पर दुर्मी इसी वजह से इसे कोई गौणाताल कहता तो कोई दुर्मी ताल। तत्काल ब्रिटिश शासकों ने उस ताल से उत्पन्न खतरे को भापते हुये दुर्मी में एक तारघर खोल दिया। तारघर से एक अंग्रेज कर्मचारी हर रोज पानी के स्तर की जानकारी नीचे बसे गाँवों में भेजता उनकी आशंका गलत नहीं थी। एक साल बाद 26 अगस्त 1894 को भारी वर्षा और पहाड़ घसकने से ताल का एक हिस्सा टुट गया और इसके करीब 15 करोड़ धन मीटर पानी था। भारी मात्रा में जलराशि बिरही की संकरी घाटी से होते हुये चमोली, कर्णप्रयाग, रुद्रप्रयाग, श्रीनगर, ऋषिकेश और हरिद्वार की ओर बढ़ा होगा लेकिन दस्तावेजों के अनुसार उस भारी जल प्रवाह से भले ही अलकनंदा घाटी में खेती और सम्पत्ति को भारी नुकसान हुआ लेकिन मौत सिर्फ एक हुयी थी। वह भी उस साधु की जो लाख समझाने के बावजूद जलसमाधि लेने पर अड़ा हुआ था। आज देश की स्वतन्त्रता के 67 वर्ष पूरे हो रहे हैं। उत्तराखण्ड राज्य को अलग राज्य बने भी 13 वर्ष पूर्ण हो गये लेकिन आपदाओं को सभालने के मामले में हम एक प्रकार से 1893 से भी पीछे जा चुके हैं। केदारनाथ में आये जलप्रलय का कारण बना गांधी सरोवर यानी चौरबाड़ी ताल केवल 400 मीटर लम्बा और 100 मीटर चौड़ा था तथा गहराई अधिकतम 02 मीटर थी। करीब सवा सदी पूर्व गौणाताल के आकार यह काफी छोटा था लेकिन उस 125 वर्ष पूर्व की घटना ने आज की तबाही को कहीं पीछे छोड़ दिया। कई-कई हजार मौतें एवं कई हजार करोड़ की क्षति हुयी।

वाडिया इन्स्टीट्यूट आफ हिमालयन जियोलॉजी के वैज्ञानिक डा० मनीष मेहता के शोध-पत्र के अनुसार चौरबाड़ी ताल 3000 साल पुराना था। इसके किनारों को थामने वाला मौरेन हिमनदों का चट्टान रूपी अवशेष 100 मीटर मोटाई का था तथा विगत कुछ वर्षों से रिस रहा था। ताल के नीचे रोज हजारों यात्री आते थे। फिर भी सरकार ने न तो इसके टूटने की सम्भावनाओं को परखा और न बचाव के उपाय किये उत्तरकाशी में दो साल से तबाही का कारण बन रही असिगंगा कामूल श्रोत भी डोडीताल नाम का एक तालाब ही है। उत्तराखण्ड की सभी नदियाँ जोन-5 के अन्तर्गत आती हैं।

हिमालय का कैलेण्डर लगभग दो करोड़ 30 लाख वर्ष पुराना है। वर्ष 2013 इस कैलेण्डर की एक बूंद की तरह है। बूंद का भी एक अस्तित्व होता है लेकिन हिमालय के सामने हमारा अस्तित्व एक बूंद भर भी नहीं है।

हिमालय तांडव का खेल खेल सकता है लेकिन हम 1893 की घटना से सबक लेकर सतर्कता रख सकते हैं। मगर सरकार एवं सरकारी मशीनरी सबक लेने को तैयार नहीं है। हिमालय का विकास विनाश का कारण बनने को तैयार है। राज्य में आपदा प्रबन्धन के ठोस इन्तजाम अब तक नहीं हो पाये। पिछले साढ़े तीन दशक में ही प्राकृतिक या दैवीय आपदा की करीब एक दर्जन से अधिक घटनाओं ने उत्तराखण्ड को झकझोरा है।

उत्तराखण्ड में आपदा की बड़ी घटनाएँ :

- 1978— उत्तरकाशी जिले की कनौजिया गाड में भूस्खलन से भारी नुकसान।
- 1980— उत्तरकाशी के ज्ञानसू कस्बे में बादल फटने से 28 लोगों की मौत व सम्पत्ति का भारी नुकसान।
- 1991— उत्तरकाशी में भूकम्प से भारी तबाही करीब 1000 लोगों की मृत्यु।
- 1991— उत्तरकाशी में भूकम्प से 768 लोगों की मृत्यु।
- 1998— चमोली जिले के मनसूना गाँव में भूस्खलन से पूरा गाँव जमीजोद 69 लोग की मृत्यु।
- 1998— पिथौरागढ़ के मालवा क्षेत्र में भूस्खलन से भारी तबाही 350 लोगों की मृत्यु।
- 1999— चमोली जिले में भूकम्प से भारी तबाही करीब 110 व्यक्तियों की मृत्यु।
- 2002— टिहरी में बूदाकेदार के समीप अगुंडा गाँव में भूस्खलन से लगभग पूरा गाँव तबाह 28 लोगों की मृत्यु।
- 2003— उत्तरकाशी शहर में तरुणावत पर्वत में हुये भूस्खलन से शहर के दर्जनों होटल व अन्य भवन जमीदोज।
- 2004— चमोली जिले में बामबगड व पिपलकोटी में भूस्खलन से बट्टी नाथ राजमार्ग का 300 मीटर हिस्सा पूरी तरह ध्वस्त 17 लोगों की मृत्यु।
- 2012— उत्तरकाशी जिले में असिगंगा व भागीरथी घाटी में बादल फटने से भारी तबाही 39 लोगों की मौत व दर्जनों मकान ध्वस्त। दो हाइड्रो प्रोजेक्ट को भी भारी क्षति। करीब 600 करोड़ की सम्पत्ति नष्ट।
- 2012— रुद्रप्रयाग जिले की ऊखीमठ तहसील में भूस्खलन से भारी तबाही, 76 लोगो की मृत्यु।
- 2012— यमुनोत्री में खराड़ी गाँव के पास चल रही एक बिजली परियोजना के कारण जान-माल का नुकसान हुआ।
- 16-17 जून-2013— केदारनाथ आपदा । कई हजार लोगो की मृत्यु एवं कई-कई करोड़ की सम्पत्ति नष्ट।

प्राकृतिक आपदा ने कई बार उत्तराखण्ड को खण्ड-खण्ड किया। केदारनाथ घाम की तरह बट्टीनाथ घाम भी कई बार नष्ट हुआ। उत्तराखण्ड की लोक परम्परा में यह किस्सा आम है कि जिस तरह हमारे शरीर में आँख के बचाव के लिये माथा, पलके और भौहें उपस्थित हैं ठीक उसी प्रकार बट्टीनाथ और केदारनाथ भी उत्तराखण्ड की आँखें हैं। पहले केदारनाथ में यात्री रात्रि को रुकते नहीं थे। प्रातः यात्रा शुरू करके दोपहर तक केदारनाथ पहुंचते थे और दर्शन करके लौट जाते हैं। लेकिन विकास के नामपर सड़के होटल, धर्मशालाएँ बनीं। धर्म भी एक अच्छा व्यापार बन गया। देवभूमि को पर्यटन भूमि में बदल दिया गया। गोमुख से 135 कि०मी. के क्षेत्र में अति सर्वेदनशील इस क्षेत्र में कभी-भी प्राकृतिक आपदा आ सकती है जिसे ध्यान में रखकर भविष्यबट्टी की परिकल्पना की गयी यह स्थल जोशीमठ से दाहिनी दिशा में है। अर्थात् आंशका की जा रही है कि भविष्य में बट्टीनाथ पहुंचने वाले सारे रास्ते बंद हो जायेंगे। भविष्यबट्टी की स्थापना भी 800-1000 वर्ष पूर्व हो गयी थी। बट्टीनाथ के रास्ते में एक जगह ऐसी है जहाँ से वाहन बहुत छोटे नजर आते हैं। यहाँ बहुत ऊँची दो पर्वत श्रृंखलाएँ हैं। ये 90 डिग्री पर खड़ी हैं। दोनों के बीच बहुत ही छोटी सड़क है। इस स्थान को चट्टमिला के नाम से लोग जानते हैं यह स्थल बट्टीनाथ जाने वाले रास्ते में पड़ता है। यही प्रकृति के अदभूत सौंदर्य और विकराल रूप दोनों के दर्शन होते हैं। इन श्रृंखलाओं को देखकर लगता है कि अगर यह दोनों मिल जाये तो क्या होगा क्योंकि अगर ऐसा हुआ तो बट्टीनाथ

धाम जाने के रास्ते बंद हो जायेंगे। उत्तराखण्ड के पर्वत युवा हैं और ऊपर की ओर बढ़ रहे हैं। इसी आंशका के फलस्वरूप यह स्थल चुना गया है। जहाँ बद्रीनाथ जी के दर्शन भविष्य शायद हो।

इसी प्रकार हमें भविष्य में केदारनाथ भी बनाने पड़ सकते हैं। परम्परागत ज्ञान और आधुनिक कानून का जो तिरस्कार हो रहा है उसकी कीमत चुकाने के लिये हम एक समाज रूप में अभिशप्त हैं। पुराणों में बद्रीनाथ व केदारनाथ के रूठने का उल्लेख मिलता है तथा गंगा के पुनः स्वर्ग में चले जाने का उल्लेख भी है।

गंगा गोमुख से गंगोत्री, भागीरथी, गौरीकुण्ड, रुद्रप्रयाद, हरिद्वार, गढ़मुक्तेश्वर, संगम, वाराणसी, सुल्तानगंज बिहार में जैसे ही राजमहल पहाड़ियों से निकलती है और पश्चिम बंगाल में प्रवेश करती है यह दो धाराओं में बंट जाती है। इसकी मुख्यधारा बांग्लादेश में पद्या कही जाती है। दक्षिण की ओर बहेती हुई दूसरी धारा पुनः भागीरथी कहलाती है जो नीचे जाकर हुगली केनाम से पुकारी जाती है। ग्वालुण्डों के पास ब्रह्मपुत्र (बांग्लादेश) में जिसे जमुना कहते हैं। पद्या से मिली है और आगे यह मेघना से मिलती है। इसके पश्चात यह असंख्य शाखाओं में विभाजित होकर विश्व के सबसे बड़े डेल्टाओं का निर्माण करती है। हजारों किलोमीटर की लम्बी यात्रा करके अन्त में गंगासागर में विलीन हो जाती है।

गंगा-यमुना का उपजाऊ मैदान— पर्वतीय तथा यमुना के अतिरिक्त अन्य सहायक नदियों के बेसिन को छोड़कर, गंगा के 10 प्रतिशत से भी कम उपजाऊ बाढ़कृत मैदान (Floodplain) में प्राकृतिक वन पाये जाते हैं। इस बेसिन में सबसे महत्वपूर्ण भूमि का उपयोग कृषि में होता है। जिसमें व्यापक तौर से सिंचाई होती है। यहाँ पर नहरों का जाल 19वीं शताब्दी में बिछाया गया था। 1853 में बनायी गयी ऊपरी गंग नहर नदी का 60 प्रतिशत जल 900 किमी तक ले जाती है जिससे लगभग 25 लाख हेक्टेयर भूमि में सिंचाई होती है। निचली गंग नहर 1000 किमी तक जाती है और इसका निर्माण 1872 में हुआ था। चौरस भू भाग बड़े जलाशयों के बनाने के लिये सहायक नहीं है किन्तु भूमिगत जल का व्यापक उपयोग कुओं द्वारा होता है। बेसिन की घनी जनसंख्या अधिक उपजाऊ भूमि पर निर्भर करती है। 100 से अधिक महत्वपूर्ण नगरीय केन्द्रों की उत्पत्ति व विकास केवल गंगा के तटों पर हुआ है तथा काफी अधिक है। सन् 1971 से 1981 के दशक में बेसिन की जनसंख्या में 26 प्रतिशत वृद्धि हुई जो सन 2011 तक बढ़कर 46 प्रतिशत हो गयी। नगरीय क्षेत्रों में यह वृद्धिदर अधिक ही हुई। गंगा का बेसिन भारत के आद्योगिक भागों में से एक है।

नदी के निर्णायक महत्व पर विचार करते हुये पं० जवाहर लाल नेहरू ने अपनी पुस्तक "भारत एक खोज में लिखा है कि "अपने उदगम से लेकर सागर तक, प्राचीन समय से आज तक गंगा की कहानी भारत की सभ्यता एवं संस्कृति की, साम्राज्यों के उत्थान व पतन की महान तथा गौरवशाली नगरो, मनुष्यों के साहसिक कार्यों तथा मानस के अन्वेषण की कहानी है।

अबुल फजल ने अपनी पुस्तक आइने-ए-अकबरी में लिखा है कि अकबर गंगा का जल ही पीना पसंद करते थे। यह निश्चित करने के लिये अकबर को लगातार शुद्धताजा गंगाजल मिलता रहे, एक अलग विभाग का गठन किया था। बाद में अकबर के उत्तराधिकारी जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब ने भी इसी परम्परा को जारी रखा।

वर्जिल और दांते जैसे साहित्यकारों ने भी अपने साहित्य में गंगा नदी का उल्लेख किया है।

प्रदूषित गंगा— आज की गंगा की कहानी प्रदूषण फैलाव की है। मानव की निरन्तर बढ़ती हुई आद्योगिक गतिविधियों ने जल की गुणवत्ता नष्ट कर उसे विषमुक्त बना दिया है। अनेक नगर जैसे हरिद्वार, कानपुर, इलाहाबाद, वाराणसी, पटना आदि प्राचीन धार्मिक स्थल हैं जहाँ विभिन्न पर्वों पर सारे भारत से आकर लाखों लोग स्नान करके धार्मिक कृत्यों व अनुष्ठानों को सम्पन्न करते हैं।

गंगा के घाटों पर दाह-संस्कार किये जाते हैं और लाखों शवों की राख नदी में बहा दी जाती है उदाहरण के लिये केवल मात्र वाराणसी में 35,000 से अधिक शवों को प्रतिवर्ष जलाया जाता है एवं 10 करोड़ लीटर दूषित

जल गंगा में प्रवाहित किया जाता है केवल घरेलू सीवेज ही गंगा में लगभग 75 प्रतिशत प्रदूषित भार का उत्तरदायी है। गंगा बेसिन में 12,000 एमएलडी घरेलू सीवेज है जबकि एसटीपी क्षमता 3750 एमएलडी है। केवल 30प्र0 में गंगा के प्रदूषित जल से 13 प्रतिशत रोगों में बढ़ोत्तरी हुई। यह बात विश्व बैंक की जल विकास रिपोर्ट में 2012 में कही गयी है।

औद्योगिक और घरेलू कचरे की बहुतायत ने इसे इस कदर प्रदूषित किया है कि इसका बायोलाजिकल आक्सीजन स्तर 3 डिग्री सामान्य से बढ़कर दो गुना छः डिग्री हो गया है। इसका कारण प्रत्येक दिन गंगा में दो करोड़ 90 लाख लीटर प्रदूषित कचरे का गिरना है। वैसे तो गंगा के आद्योगिक प्रदूषण शुरुआत हरिद्वार से ही हो जाती है। जहाँ लगभग एक हजार औद्योगिक इकाइयाँ—भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लि0 जैसी बड़ी कम्पनियों से लेकर कागज, कपड़ा, उन, इलेक्ट्रॉनिक्स रसायनिक खाद एवं कीटनाशकों की हजारों छोटी बड़ी इकाइयाँ जिंक,निकिल ,कैडमियम, कापर,लेड जैसी भारी घातुये अन्य पचासों रसायनिक पदार्थ सीधे गंगा में छोड़ देते हैं। एक आंकलन के अनुसार 60 टन रसायनिक खाद एवं नौ लाख टन कीटनाशक गंगा में प्रतिवर्ष डाले जाते हैं। कानपुर आते आते गंगा भीषण जहरीले प्रवाह में बदल जाती है। प्रस्तुत शोधपत्र में कानपुर नगर के जाजमऊ क्षेत्र को अध्ययन का आधार बनाया गया है। अध्ययन के अन्तर्गत जाजमऊ क्षेत्र की 200 महिलाओं से साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से तथ्यों का संकलन किया गया। सूचनादाताओं का चयन उद्देश्यपूर्ण एवं सुविधाजनक निर्देशन के आधार पर किया गया।

सारिणी

कथन	हाँ नहीं
1— क्या आपके नगर में गंगा के जल प्रदूषण की समस्या बढ़ी है?	200(100%) 00 (00%)
2— क्या आपको गंगा परियोजनाओं की जानकारी है ?	46 (23%) 154 (77%)
3— क्या गंगा कार्य योजना गंगा को प्रदूषण मुक्त करने में सहायक है?	58 (29%) 142 (71%)
4— क्या गंगा के संशोधित जल का खेती के लिये उपयोग सही है?	115 (57.5%) 85 (42.5%)
5— क्या आप विद्युत शवदाह योजना की पक्षधर हैं?	156 (78%) 44 (22%)
6— क्या औद्योगिक इकाइयों का निर्माण आबादी से दूर किया जाना चाहिये?	200 (100%) 00 (00%)
7— क्या औद्योगिक इकाइयों से निस्तारित रसायनिक द्रव व कचरा नियंत्रण के लिये सरकार ने प्रभावशाली कदम उठाये?	00 (00%) 200 (100%)
8— क्या गंगा परियोजनाओं के धन का बड़ी मात्रा में दुरुपयोग किया जाता है?	160 (80%) 40 (20%)

कानपुर जाजमऊ क्षेत्र के अध्ययन में देखा गया कि:—

- 1— सभी 100% महिलाओं का मानना है कि कानपुर नगर में गंगा का जल प्रदूषण दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है।
- 2— केवल मात्र 23% महिलाएँ ही सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं की पूर्ण जानकारी रखती हैं। 77% महिलाओं को गंगा परियोजनाओं की जानकारी नहीं है।
- 3— गंगा परियोजनाओं की सार्थकता पर अधिकतर महिलाओं का विपरीत मत है। 29% महिलाएँ ही यह मानती हैं कि गंगा कार्य योजना गंगा को प्रदूषण मुक्त करने में सहायक है।
- 4— 57.5% महिलाओं का मानना है कि गंगा के जल को संशोधित कर उसके पानी का सिंचाई के लिये प्रयोग करना सही है।

- 5- अध्ययन में आश्चर्यजनक परिणाम यह प्राप्त हुये हैं कि 78% महिलाएं विद्युत शवदार योजना की पक्षधर पायी गयी।
- 6- सम्पूर्ण 100% महिलाओं का मानना है कि औद्योगिक इकाइयों का निर्माण आबादी से दूर किया जाना चाहिये।
- 7- सरकार की औद्योगिक इकाइयों से निकलने वाले रसायनिक द्रव व कचड़े के नियंत्रण करके प्रयास परिपूर्ण नहीं है ऐसा 100% महिलाएं मानती है।
- 8- 80% महिलाएं गंगा परियोजनाओं के धन की दुरुपयोग पर सहमति देती है।

निष्कर्ष :- इस अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि आज भी गंगा परियोजनाओं की जानकारी महिलाओं को नहीं है। महिलायें संशोधित जलराशि को कृषि योग्य मानती है। औद्योगिक इकाइयों को गंगा से दूर करने की पक्षधर है। इन निष्कर्षों के आधार पर यह सुझाव दिये जा सकते हैं जैसे:- कानपुर नगर के सिर्फ एक क्षेत्र जाजमउ से ही कितना प्रदूषित और विषैला जलनदी में गिर रहा है। जाजमउ क्षेत्र के तीनों ट्रीटमेन्ट की क्षमता 170 एम0एल0डी0 गंदा पानी ट्रीट करने की है जबकि 420 एम0एल0डी0 सीवेज का पानी और करीब 25 एम0एल0डी0 का पानी जाजमउ से ही निकल रहा है। टेनरी का पानी ट्रीटमेन्ट किये सीधे नदी में जा रहा है।

- 1- गंगा की परियोजनाओं एवं प्रदूषण नियंत्रण से सम्बन्धित जानकारी रेडियो, टी0वी0 सोशल मीडिया से प्रसारित की जानी चाहियें।
- 2- अशिक्षित जनता को प्रदूषण न फैलने के प्रति जागरूक किया जाना चाहिये।
- 3- दूषित जल के शोधन के लिये विशेष प्रयास करने होंगे।
- 4- औद्योगिक इकाइयों को दूर करना ही होगा।
- 5- शव, पूजन सामग्री सीधे जल में प्रवाहित करने पर रोक लगानी चाहियें।

विषधारा में बदली नदी भारत की अन्य प्रदूषित हो चुकी नदियों जैसे यमुना, गोदावरी, सिन्धु, नर्मदा और कावेरी के सामने अपने अस्तित्व के लिये जूझ रही है। देश की 13 प्रमुख नदियों का अस्तित्व खतरे में है। कई नदियों में तो पानी इतना कम हो जाता है कि गर्मियों में वे सिर्फ शहरी और औद्योगिक कचरे का नाला बनकर ही रह जाती है। वैज्ञानिकों ने पाया कि है इन नदियों के प्रदूषित जल से उत्पन्न खाद्यान्न एवं जल सब्जियों का स्तर अत्यधिक है जिससे कैंसर, चर्मरोग, नर्वस सिस्टम, किडनी, लीवर का भारी क्षति पहुंचती है। विश्व बैंक की जल रिपोर्ट में कहा गया है कि प्रतिवर्ष पाँच करोड़ व्यक्ति प्रदूषित जल पीने के कारण बीमार होते हैं। एवं 20 लाख लोग मर जाते हैं। कानपुर के निकट से जब गंगा गुजरती है तो उसका अतिदोहन तथा प्रदूषित किया जाता है। दोहन के लिये अनूठा उदाहरण है गंगा बैराज का निर्माण जिसे यह कहकर बनाया गया कि गंगा की धार जिसने कानपुर के तटों को छोड़कर उन्नाव जनपद के किनारे बहती है उसकी धारा पुनः कानपुर के घाटों की तरफ की जायें तथा कानपुर नगर को जलापूर्ति भी सुनिश्चित की जाये। परन्तु इस बैराज को बनाने का एक और उद्देश्य भी परोक्षरूप में था कि वह यह कि जब गंगा को उन्नाव जनपद की तरफ से कानपुर की ओर धारा प्रवाहित किया जायेगा तो उन्नाव जनपद की तरफ की भूमि का उपयोग कानपुर विकास प्राधिकरण अधिग्रहीत कर उसमें नयी टाउनशिप विकसित कर लेगा और ऐसा हुआ भी अधिग्रहण की प्रक्रिया आज कल जोर-शोर पर है। उत्तरप्रदेश की औद्योगिक एवं चर्म इकाइयों सिर्फ गंगा को प्रदूषित करती है। जल अधिनियम 1974 के अनुसार नदियों में सीवर का पानी छोड़ना अपराध है परन्तु इस कानून के अन्तर्गत शायद ही कोई कार्यवाही की गयी हो। इसी प्रकार पर्यावरण संरक्षण के कानूनों में कोई विशेष व्यवहारिक रूप दृष्टिगत नहीं होता है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय के गंगा प्रदूषण सम्बन्धित मामलें :-

इसी प्रकार बिहार से होकर बंगाल की ओर बढ़ती गंगा प्रदूषण की भेंट स्वीकारती है बंगाल में यह हुगली नदी कहलाती है हुगली के दोनो तटों पर कोलकत्ता और उसके निकटवर्ती क्षेत्र में उद्योगों की बहुत सी इकाईयाँ रासायनिक प्रदूषण दिन-रात हुगली में प्रवाहित करती है। गंगा छः राज्यों से होकर गुजरती है।

गंगा का व्यवसायीकरण :- गंगा अब केवल बिजली पैदा करने और पर्यटन को बढ़ावा देने वाली नदी मात्र नहीं है वरन् दैत्याकार परियोजनाओं के विकास की सीढ़ी भी है। सरकारी योजनाकर नदी बांधने से लेकर उसे जोड़ने की बात कर रहे हैं। आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि जिस जनता के हित में इन ढेर सारी योजनाओं-परियोजनाओं को अमली जामा पहनाया जा रहा है वहीं जनता इस विकास नीति के विरोध में संघर्ष को उतारू है। प्रसिद्ध जल वैज्ञानिक जी०डी०अग्रवाल के अनशन ने गंगा को उसके मुहाने पर बांधने को लेकर उत्तराखण्ड के उन ढेर सारे बांध परियोजनाओं के खतरों की ओर से ध्यान खींचा है तो नदी जोड़ की हिमायत में आये सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के बाद इन विवादित योजनाओं को लेकर नये सिरे से बहस चल रही है। विगत वर्षों पूर्व इको टूरिज्म नाम से उत्तराखण्ड शासन ने गंगा की धारा के ऊपर व एक सिरे पर हरिद्वार से ऋषिकेश तक रोप-वे बनाने का सर्वे किया। जो कि पर्यावरण संरक्षण नियम के अनुकूल नहीं था। गंगा के तटीय भाग से बालू का उत्खनन अत्याधिक एवं गैर कानूनी रूप से प्रत्येक दिन होता है। बनारस के मल्लाहों को भी इको टूरिज्म का खतरा मंडरा रहा है उन्हें डर है कि कहीं उनकी नावें भी किसी कम्पनी की भेंट न चढ़ जावें। हो सकता है क शवदाह का ठेका भी कारपोरेट जगत की किसी कम्पनी को मिल जाये।

व्यावसीकरण से एक अन्य संघर्ष गंगा की जमीन को बचाने का भी है। गंगा की जमीन पर कब्जों का सबसे पहला प्रयास नदी भूमि कब्जों के निवारण के लिये आयोजित पौराणिक कुंभ में मिलता है। इस सन्दर्भ में पहली सरकारी कोशिश जन 2008 में मायावती ने गंगा एक्सप्रेस वे के उद्घाटन से की। काफी संघर्ष के बाद अन्ततः इलाहाबाद हाईकोर्ट ने उसे स्थगित कर दिया और अब जे०पी० ने भी जमा बैंक गारण्टी वापस ली है।

गंगा के पानी से पैसा बनाने-कमाने की योजना सन 1839 में बनी। इसका सूत्रधार था। अंग्रेजी शासन का कर्मचारी प्रो०बीटीकाट ले 1839 में योजनानुसार 1848 में ऊपरी हरिद्वार और 1873 में निचली गंग नहर नरोरा का कार्य प्रारम्भ हुआ। लेकिन गंगा तट पर असल संकट और संघर्ष की शुरुआत हुई। 1912 में जब हरिद्वार में भीमगोड़ा बांध का काम शुरू हुआ इसकी जानकारी होते ही अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के नेता लाल सुखवीर सिंह ने आन्दोलन छेड़ दिया। 1916 में इस आन्दोलन का नेतृत्व संभालते ही महामना मदन मोहन मालवीय ने पुरीश्रृंगेरी के शंकराचार्यों के अलावा कई राजाओं, आर्य समाजी नेताओं, सिख संतों तथा पूर्व न्यायाधीशों को जोड़ लिया। अन्ततः शासन विवश हुआ 26 सितम्बर 1916 को संयुक्त प्रान्त के मुख्य सचिव आर०बर्न शासनादेश जारी कर आश्वस्त किया कि निकास द्वार यथावत बना रहेगा। मुक्तद्वार कभी बन्द नहीं होगा। नई आपूर्ति धारा में पक्की दीवार नहीं होगी। वह न नहर के नाम से पुकारी जायेगी न नहर जैसी दिखायी देगी। यह आदेश दर्शनार्थियों व अस्थिराँ विसर्जित करने वालों की आस्था के बल पर खड़े हुये आन्दोलन का सुपरिणाम था।

इस आदेश की भावना का आदर स्वतन्त्र भारत की सरकारों ने नहीं किया। अपनी ही सरकारों ने विशिष्ट तिथियों पर पर्याप्त पानी नहीं छोड़ने पर आज तक अनशन न करने पड़ते न तो 1979 में टिहरी बांध की विस्तृत परियोजना प्रस्तुत होती और न ही जनता पुनः आन्दोलन को विवश होती। टिहरी को लेकर सुन्दरलाल बहुगुणा का संघर्ष किसी से छुपा नहीं है। टिहरी बांध का सर्वे कराया गया। जिसकी भूकम्परोधक क्षमता रिक्टर स्केल पर 10 है और कहा गया है कि वहाँ पर 8 से अधिक क्षमता के भूकम्प आने की सम्भावना कम ही है। वर्ष 2001 में विहिप के अशोक सिंघल ने भी आमरण अनशन किया तब तक देश की नयी जलनीति आ गयी थी। फिर तय हो गया कि आन्दोलन भी चलते रहेंगे और काम भी। जैसे इस नीति का संशोधित परिवर्द्धित रूप वर्ष 2012 पुनः प्रस्तुत

हुआ। इसमें नयी बात सामने आयी वह यह कि जल राज्य के भौगोलिक क्षेत्र से वास्ता रखने के कारण उसकी परिसम्पत्ति माना जाता था परन्तु नयी नीति में इसे प्राकृतिक संसाधन के रूप में परिभाषित किया गया। इसके बिन्दु यह हैं:

प्राकृतिक संसाधन।

पनबिजली चक्र।

नदियों की पारिस्थिति तक आवश्यकतायें।

जलवायु में परिवर्तन।

स्रोतों में प्रदूषण

इसमें एक अहम छूट गया वह है मानसून जिससे हम जल का या तो वर्षा के रूप में प्राप्त करते हैं या बर्फ के रूप में, इसकी राष्ट्रीय जल-नीति में उल्लेख नहीं है। देश में वर्षा जल का संरक्षण अत्यन्त आवश्यक है। देश में बरसात साल में तीन से चार माह ही होती है और उसके जल-जमाव का परिणाम स्थान और समय के अनुसार परिवर्तित होता रहता है।

जैसे राजस्थान में 100 मिमी तक ही वर्षा होती है जबकि मेघालय में 1000 मिमी तक वर्षा होती है। मानसून के पूरे स्वभाव की तार्किक परिणति और संबद्धता को इसमें समाहित कर अनिवार्य था।

इस दिशा में नदियों को आपस में जोड़ने का विचार किया गया सर्वप्रथम वर्ष 1956 में तत्कालीन मुख्य अभियन्ता एनके0राव द्वारा नदी जोड़ने का विचार रखा गया था। जिसमें गंगा से पटना के निकट 6000 क्यूसेक पानी लेकर दक्षिण कावेरी में पानी देने का प्रस्ताव रखा गया था। वर्ष 1971 में पायलट कैप्टन दस्तूर ने नदियों के बीच नहरों की माला बनाने की बात की। 1980 में पुनः कोशिश हुई। राष्ट्रीय जल विकास एजेन्सी ने बिना कोई तकनीकी रिपोर्ट पेश किये तथा बिना किसी जनप्रतिनिधि से राय लिये 199. में एक परियोजना बना डाली। वैसे तो मोरारजी देसाई के प्रधानमंत्री के रूप में कार्यकाल में भी इस योजना पर जोर शोर से काम शुरू हुआ था। फिर अटल बिहारी वाजपेई ने प्रधानमंत्री के रूप में नदी जोड़ परियोजना लागू करने की घोषणा की जिसपर अक्टूबर 2002 में सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार को एक दशक के अन्दर नदियों को जोड़ने के लिये आवश्यक कदम उठाने का निर्देश दिया। न्यायालय ने संविधान में उचित संशोधन करने की सिफारिस भी की जिससे इसका राज्यों में विरोध न हों सके। इस योजना में 20 नदी घाटियों में 44 नदियों पर 30 जोड़, 400 बांध, अनेक जलाशय, नहरे बनाने की योजना वर्ष 2016 तक पूरा करने की बात कही गयी थी।

नदियों की भिन्न जैविकता की रक्षा कैसे सम्भव होगी?

अब देखना यह है कि इस प्रकार की परियोजनाएं जब नदियों की भौतिक संरचना में परिवर्तन लायेगी तो उसका जलवायु परिवर्तन पर क्या प्रभाव पड़ेगा। पानी की विशाल मात्रा का इधर-उधर जाना प्राकृतिक आपदाओं जैसे भूस्खलन भूकम्प, हिमपात आदि को भी प्रभावित तो अवश्य ही करेगा।

नदी जोड़ परियोजना का संघर्षगत विरोध हुआ बिहार में सरिता और महेश ने तथा छत्तीसगढ़ में सत्यभामा ने संघर्ष करते हुये जान गंवाई। राजेन्द्र सिंह ने नदी संगठनों की एक जुटता के लिये 2002 में 144 नदी घाटी क्षेत्रों की जलयात्रा की और पाया कि नदियों में सबसे ज्यादा छेड़छाड़ गंगा पर ही हो रही है। गंगा की मुख्य मूल धाराओं पर ही नही सरयू, कोसी, भवानी, भिलगंगा, गंगास, बालगंगा, गौला, पनार उत्तराखण्ड की तमाम नदियों पर आज भी संघर्ष है। जैसे चाई गॉव धँस गया है। थिरांग गॉव में दरारे पड़ गयीं। जोशीमठ के पानी का खजाना विष्फोट में बहकर चला गया है। बर्दीनाथ का श्रम धसने से शंकराचार्य परेशान हैं। घाटी देवी का मन्दिर डूब गया। ऋषिकेश के ऊपर गंगा में रेत दिखायी देने लगी है झरने गायब होने लगे हैं।

सुरेश भाई, शमशेर सिंह, बिष्ट, लक्ष्मण सिंह नेगी, सुशीला भंडारी, अवतार सिंह नेगी से लेकर राधा भट्ट, भरत झुनझुनवाला और रवि चौपड़ा जैसे लोग आज भी उत्तराखण्ड की नदियों के लिये संघर्षरत हैं। वर्ष 2008 में उत्तराखण्ड नदी बचाओ पदयात्रा हुई जबकि कई संगठनों के सकल्य से वर्ष 2008 को नदी संरक्षण सत्याग्रह वर्ष घोषित किया।

रारबढ़ी और आग फैली—गंगोत्री से उत्तरकाशी तक गंगा की अविरल धारा की मांग लेकर (ज्ञानस्वरूपानन्द) प्रो०जी०डी०अग्रवाल 13 जून 2008 गंगा दशहरा के दिन उत्तरकाशी में अनशन पर बैठ गये। हर की पौड़ी पर स्वामी परिपूर्णानन्द सरस्वती तथा प्रेमदत्त नौटियाल ने भी आमरण अनशन की घोषण कर दी। गंगा को राष्ट्रीय नदी घोषित करने की मांग की गयी। विवश उत्तराखण्ड सरकार ने अपनी दो परियोजनाओं पर काम रोक दिया। राजेन्द्र सिंह के संयोजन में गठित गंगाज्ञान आयोग की वैज्ञानिक रिपोर्ट ने विवश किया कि लोहारी नागपाला परियोजना को रद्द किया जायें। इसी दिशा में गंगा के गंगत्व को पाने के लिये शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द योगगुरु रामदेव, स्वामी हंसदेवाचार्य, न्यायमूर्ति गिरधर मालवीय, संदीप पाण्डेय, उमा भारती, चिदानन्द मुनि, आचार्य जितेन्द्र सहित अनेक लोगों ने दिशा बनाने का काम किया। परिणामस्वरूप 4 नवम्बर 2000 को गंगा राष्ट्रीय गंगा नदी घोषित कर दी गयी। फरवरी 2009 को बाकायदा अधिसूचना कर राष्ट्रीय गंगा बेसिन प्राधिकरण का गठन कर दिया गया। समाज व प्रकृति के नौ गैरसरकारी विशेषज्ञ प्राधिकरण के सदस्य भी बना दिये गये। लेकिन प्राधिकरण की कार्यप्रणाली संदेहास्पद है। इससे पूर्व गंगा कार्य योजना के अन्तर्गत फरवरी—1985 में केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण स्थापना की गयी थी।

नदियाँ हर प्रकार के बंधनों से मुक्त हो, प्रदूषण रहित हो, कारपोरेट नियंत्रण से स्वतन्त्र हो और लोगों के लिये मुक्त रहें ताकि वह हमारा आपको पोषण कर सकें। हमें आनन्द दे सकें रचनाकारों के लिये निर्बाध प्रेरणा स्रोत बने साधकों को अपने पवित्र वायुमण्डल से आनन्द की अनुभूति करायें, हमारी आत्मसाधना को लक्ष्य तक ले जायें और कुल मिलाकर प्रकृति के अनुरूप सम्यता स्वाभाविक रूप से सतत विकास करे।

नदियों के साथ अत्याचार और उनका विरूपण सम्पूर्ण विश्व में एक प्रमुख विषय बन चुका है। विगम 15 वर्षों से इण्टरनेशनल डे आफ एक्सन फार रिवर्स अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय नदी कार्यवाही दिवस 14 अप्रैल को मनाया जाने लगा है। इसके अन्तर्गत 43 देशों में नदियों से मुक्ति से सम्बन्धित 150 देशों में आयोजन हुये हैं। एक मात्र लक्ष्य यह है कि दुनियाँ की जीवन—रेखा नदियों का प्रवाह निर्बाध सुनिश्चितता हो। क्योंकि नदियाँ सम्पूर्ण विश्व की धरोहर हैं क्योंकि यह भूमण्डलीय परिस्थिति की अंग हैं। क्योंकि किसी नदी का पानी कसी अन्य देशमें जाकर बरसता है और अन्ततः सारी नदियाँ समुद्र में ही समाहित भी होती हैं पिछले एक दशक से हमारे पड़ोसी चीन द्वारा तिब्बत से निकलने वाली नदियों के ऊपर बांध बनाने एवं उनकी दिशा बदलने के प्रयासों की वैश्विक प्रतिक्रिया हो रही है। चीन द्वारा उठाये गये कदम अगर इस दिशा में सफल होते हैं तो न केवल ब्रह्मपुत्र व सिंधु नदी और उनकी सहायक नदियाँ बूंद—बूंद पानी के लिये तरस जायेगी बल्कि थाईलैण्ड, म्यामार, वियतनाम और कम्पूचियाँ जैसे देश तो नदी विहिन ही हो जायेंगे, अगर हम स्वयं ऐसा न करें तो चीन को भी नदियों का रूख जोड़ने से मना करने का नैतिक अधिक रखते हैं।

गंगा एक कारपोरेट एजेण्डा बन चुकी है। वाटर इज कमोडिटी ऐसा ग्लोबल सर्विस इण्डस्ट्री मानती है। पानी सेवा उद्योग का कच्चा माल है। उदारीकरण के चलते सेवा दो मेवा कमाओं के वैश्विक कारोबारियों के चंगुल में फंस चुके हैं। उनका बिजनेस टारगेट है कि 2015 तक विश्व जल और उसकी स्वच्छता के लिये 180 बिलियन डालर खर्च करें। सन् 2025 तक हर तीन में से दो व्यक्ति स्वच्छ जल की कमी महसूस करें। सन 2050 तक विश्व की 70 प्रतिशत आबादी पानी का संकट झेलेगी। क्योंकि भूजल समाप्त प्राय हो चुका होगा।

आज हमारे देश में नरेन्द्र मोदी की नयी सरकार बनी है। गंगा का अविरल एवं निर्मल बनाने की कवायद

शुरू हुई एवं गंगा के लिये नये मंत्रालय को बनाया गया है सचिवों की समिति बनायी गयी है। कई मंत्रालयों के मंत्रियों की बैठक बुलाई गयी। जिसमें वाराणसी से हुगली तक अन्तरदेशीय जलमार्ग बनाया जाने तथा 45 मीटर तक तलहटी से गाद की सफाई व गंगा के तट पर तीर्थाटन को बढ़ावा देने के लिये लाइट एवं साउण्ड कार्यक्रम तथा संग्रहालय स्थापित करने पड़े। बैराजों को सुदृढ़ बनाने का निर्णय लिया गया। नदियों की स्वच्छता के बारे में अध्ययन के लिये शोध संस्थान भी स्थापित करे जायेंगे। इन निर्णयों का व्यावहारिक रूप में क्या होगा? यह तो भविष्य के गर्भ में है।

गंगा की स्वच्छता का अभियान (गंगा एक्सन प्लान) गंगा के संरक्षण का सरकारी प्रयास दिसम्बर 1984 में शुरू हुआ। जब सुप्रीम कोर्ट की सख्ती पर पर्यावरण मुक्त करने के लिये तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी की अगुवाई में गंगा एक्सन प्लान बनाया गया। योजना का प्रथम चरण 1985 में प्रारम्भ हुआ जिसे 1990 तक पूरा किया जाना था। पर उसे 2000 तक बढ़ाया गया। गैप का दूसरा चरण 1993 से शुरू हुआ। वर्ष 1996 में गैप को राष्ट्रीय नदी संरक्षण परियोजना (एन0आर0पी0सी0) में शामिल कर दिया गया। जो 20 राज्यों के 164 शहरों की 3 गंदी नदियों के संरक्षण के लिये बनी है।

गैप के लिये पंचवर्षीय योजनाओं में धनराशि का प्राविधान किया गया व विश्व के कई अन्य देशों ने भी इस कार्य में सहयोग दिया।

गंगा कार्य योजना का लक्ष्य

- 1- सीवेज उपचार संयंत्र।
- 2- नदी तटीय सुविधायें।
- 3- अल्प लागत स्वच्छता।
- 4- विधुत शवदाह गृह का निर्माण।
- 5- सम्बन्धित क्षेत्रों में अनुसंधान को बढ़ावा एवं प्रोत्साहन।
- 6- परियोजना में जन-सहभागिता।

गंगा प्रदूषण पर अनेक वाद सर्वोच्च न्यायालय में समय-समय पर आये जैसे :

1- एम0सी0मेहता बनाम भारत सरकार ए0आई0आर0 1988 (1115-माननीय सर्वोच्च न्यायालय)

2-एम0सी0मेहता बनाम भारत सरकार द्वितीय मामला ए0आई0आर 1988 (1034-माननीय सर्वोच्च न्यायालय)

3-एम0सी0मेहता बनाम भारत सरकार के सन 2009 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश पर योजना आयोग केजल संशाधन अनुभाग से गैप पर हुये खर्च की फण्ड यूटीलिटी रिपोर्ट दाखिल की। जिसके अनुसार गंगा कार्य योजना के तहत सबसे पहले 247.5 करोड़ रुपये मन्जूर किये गये पहले चरण में 1079.9 एम0एल0डी0 की क्षमता वाले सीवेज ट्रीटमेन्ट प्लाण्ट एस0टी0पी0 तैयार करने के लक्ष्य के बदले 228.3 करोड़ रुपये खर्च करके 1016.6 एम0एल0डी0 की एस0टी0पी0 बनाने हुये 92.6 प्रतिशत लक्ष्य पूरा किया गया। 11वीं पंचवर्षीय योजना में भी गैप के लिये 2100 करोड़ का प्राविधान किया गया, जिसके अन्तर्गत वर्ष 2007 से 2010 तक 782.93 करोड़ और आगे दो वर्ष अर्थात् 2012 तक 1317 करोड़ खर्च हुये। एक रिपोर्ट के अनुसार गंगा बेसिन में 12000 एम0एल0डी0 घरेलू सीवेज है जबकि सीवेज ट्रीटमेन्ट प्लाण्ट की क्षमता 3750 एम0एल0डी0 है।

ध्यान देने योग्य है कि गंगा की सफाई सम्बन्धी योजना आयोग द्वारा 92 प्रतिशत लक्ष्य पूरे होने के उक्त दावों की पोल कैंग की उस रिपोर्ट से सामने आती है जिसमें कहा गया है कि गैप के पहले चरण में 901.71 करोड़ खर्च हुये और 15 वर्षों में सी0ए0पी0 का लक्ष्य मात्र 39 प्रतिशत रहा। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की रिपोर्ट के अनुसार अब भी प्रथम व द्वितीय श्रेणी के शहरों से प्रत्येक दिन 38254 मिलीयन ली0 एम0एल0डी0 सीवेज निकल

रहा है जबकि एस0टी0पी0 क्षमता महज 11787 एम0एल0डी0 हैं।

गंगा की सफाई में असफल सरकार ने योजनाओं पर योजनायें बनायी जैसे इलाहाबाद से हल्दिया के बीच 1600 कि0मी0 की धारा को राष्ट्रीय जलमार्ग घोषित किया। इसी क्रम में 2009 में नेशनल गंगा रिवर बेसिल अथॉरिटी (NGRBA) का गठन किया गया। इसके अन्तर्गत विश्व बैंक की सहायता से गंगा नदी को साफ करने के लिये 7000 करोड़ रुपये खर्च करने की योजना है।

अन्ततः हम कह सकते हैं कि गंगा में पानी की तरह पैसा बहा लेकिन गंगा प्रदूषण नहीं रुका। गंगा का खनन, क्षरण और विनाश अनवरत जारी है।

जल संस्कृति-तरुण भारत संघ अलकांकर, राज-2007

सन्दर्भ सूची

1. निरंकर सिंह नदियों में विश की धारयें आज कानपुर दैनिक हिन्दी समाचार पत्र संस्करण, पृष्ठ 08, अंक 18 जून-2013
2. यशपाल विविध पापों का नाश उपरोक्त
3. भोलानाथ मिश्र कब लौटेगा गंगा का पावन स्वरूप उपरोक्त।
4. कोमल खत्री गंगा प्रदूषण की समस्या श्रेष्ठ निबन्धक मारुती प्रकाशन मेरठ, पृ0सं0 163
5. चण्डी प्रसाद भट्ट, भविष्य में ऐसे हादसे और भी हो सकते हैं। शुक्रवार, अंक, 4 जुलाई 2013, पृ0सं0 24, राष्ट्रीय पत्रिका, नई दिल्ली।
6. मंजू मल्लिक, मनु आपदा का इतिहास रहा है। शुक्रवार, अंक 04, जुलाई 2013, पृ0सं0 13
7. अनुप मित्र भविष्य बद्री की तरह भविष्य केदार भी ढूँढ ले, पृ0सं0 25
8. मनोज रावत, तिरस्कार की मार, तहलका राष्ट्रीय, हिन्दी पत्रिका, अंक 15 जुलाई 2013, नई दिल्ली, पृ0सं0 38
9. महिपाल कुंवर और राबिन चौहान, आमंत्रित आपदा, पृ0सं0 40
10. प्रेम प्रकाश, पानी का निजीकरण आह्वान, पृ0सं0 28 राष्ट्रीय द्विमासिक पत्रिका, नई दिल्ली, अंक मार्च-अप्रैल 2011
11. जागरण ब्यूरो, हजारों जान सांसत में, दैनिक समाचार पत्र, कानपुर अंक, 24 जुलाई 2013
12. जागरण ब्यूरो, हकीकत, वाराणसी पृ0सं0 5, अंक 20 जनवरी-2011
13. के0चन्द्र राममौलि-सेवा गंगा श्री गुरु राघवेन्द्र सहकारी बैंक नित्यमिथा, बैंगलूर-2013
14. विजय त्रिपाठी पानी का प्रकाप और पानी तंत्र, पृ0सं0 12, दैनिक समाचार पत्र, अमर उजाला कानपुर, अंक 19, जून-2013
15. संपादकीय गंगा मैली क्यों? दैनिक समाचार, आज पत्र, कानपुर, अंक 6 जनवरी-2011
16. सबरंग लुप्त हो जायेंगे केदारनाथ बद्रीनाथ दैनिक समाचार पत्र राष्ट्रीय स्वरूप, लखनऊ, अंक 22 जून-2013, पृ0सं0 7
17. राजेन्द्र सिंह, सरकार और समाज को चेतना होगा, हस्तक्षेप, दैनिक समाचार पत्र, राष्ट्रीय सहारा कानपुर, अंक 7 जुलाई-2012, पृ0सं0 4
18. अरुण त्रिपाठी नदी, जोड़ से सिंचाई, हस्तक्षेप, उपरोक्त, पृ0सं0 2
19. स्वामी चिंदानन्द सरस्वती, राहत सेवा का नया इतिहास, पृ0सं0 12, दैनिक समाचार पत्र, दैनिक जागरण, कानपुर अंक, 29 जून-2013
20. संदीप कुमार सिंह, पर्यावरण संरक्षण एवं कानून, इक्कीसवीं सदी का पर्यावरण आन्दोलन, सम्पादक-डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव, 2010 पृ0सं0 70, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
21. भाषा गंगा की सफाई पर एक कदम और बद्री सरकार, दैनिक समाचार पत्र, राष्ट्रीय सहारा, कानपुर अंक 7, जून-2014
22. अरुण कुमार त्रिपाठी, खुद गंगा के पास समय कम बचा है। हस्तक्षेप, दैनिक कानपुर, अंक 31 मार्च-2012, पृ0सं0 4
23. हिन्दुस्तान, गंगा प्रदूषण, दैनिक समाचार पत्र, कानपुर अंक 6, मई-2010

-
- 
-
24. अवधेश कुमार, नदी मुक्ति की विश्वव्यापी चेतना, हस्तक्षेप राष्ट्रीय, कानपुर, अंक 31 मार्च-2012, पृ0सं02
 25. डा0शीला डागा, नदी जोड़ प्रकृति तोड़, उपरोक्त, पृ0सं03
 26. आजाद चन्द्रशेखर, गंगा और उसका पर्यावरण, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली 1989
 27. एम0सी0मेहता, बनाम भारत सरकार
 28. राधाकान्त भारती-जल प्रबन्धक नदियों का जोड़, योजना, राष्ट्रीय हिन्दी मासिक पत्रिका, अंक जून-2005
 29. केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड रिपोर्ट 200-पी0सी0बी0
 30. राष्ट्रीय जलनीति 2012
 31. गंगा कार्य योजना वर्ष 1985
 32. राधाकान्त, भारती स्टडी इण्टरलाकिंग आफ इण्डियन रिवर्स 2006, पृ0सं03, लोट्स प्रेस, नई दिल्ली।
 33. परीक्षा मंथन-यमुना व अन्य नदियों को प्रदूषण मुक्त बनाने का अभियान, राष्ट्रीय पत्रिका, पृ0सां0 574, अंक 2013-14 मंथन प्रकाशन, इलाहाबाद।
 34. परीक्षा मंथन, चीन बनायेगा ब्रह्मपुत्र नदी पर तीन बांध, उपरोक्त।



समाजवाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि

डॉ० प्रज्ञा सहाय

एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग
डी०जी०पी०जी० कॉलेज, कानपुर।

समाजवाद समकालीन युग की सर्वाधिक लोकप्रिय व महत्वपूर्ण विचारधारा है। इसकी लोकप्रियता ने इसे अत्यधिक प्रचलित विचारधारा बना दिया है। समाजवाद एक ऐसा सुपरिचित और व्यापक शब्द है जिसका प्रयोग राजनीतिक, दार्शनिक से लेकर श्रमिक आन्दोलनकर्ता तथा सामाजिक कार्यकर्ता तक, जो समाज या समाज के सभी लोगों का हित चाहते हैं, करते हैं। हर बेबिल का निम्न कथन समाजवाद की व्यापकता को घोषित करता है। “समाजवाद वास्तव में दर्शन का एक पूरा संसार है। यह धर्म के क्षेत्र में नास्तिकता का, राज्य के क्षेत्र में लोकतांत्रिक प्रणाली का, औद्योगिक क्षेत्र में जनवादी समष्टि का, नैतिकता के क्षेत्र में एक अनंत आशावाद का, आध्यात्मवाद के क्षेत्र में एक प्रकृतिवादी भौतिकवादी का तथा पारिवारिक क्षेत्र में गार्हस्थ्य संबंधों तथा वैवाहिक बंधनों की लगभग पूर्ण शिथिलता का सूचक है।”¹

अति प्रसिद्ध राजनीतिक और सामाजिक विचारधारा होने के कारण समाजवाद के वास्तविक स्वरूप के विषय में सर्वसम्मति नहीं है। कुछ लोग इसे एक आंदोलन मानते हैं तो कुछ दर्शन, कुछ राजनीतिक व्यवस्था मानते हैं तो कुछ आर्थिक प्रणाली। प्रो० लास्की के मतानुसार “समाजवाद एक आदर्श है और एक साधन भी है। इसका आदर्श एक ऐसे समाज की स्थापना करना है जहाँ उत्पादन के साधनों तथा वितरण पर सामाजिक नियंत्रण होने के कारण विभिन्न सामाजिक वर्गों को मिटा दिया जायेगा। इस आदर्श की स्थापना हेतु सामाजिक क्रांति को यह साधन के रूप में मानता है, जिससे सर्वहारा— अधिनायकत्व को प्रतिष्ठित किया जा सके।”²

वस्तुतः समाजवाद एक प्रगतिशील और परिवर्तनशील दर्शन तथा कार्यक्रम है जिसका स्वाभाविक गुण बदलती हुई आर्थिक तथा राजनीतिक आवश्यकताओं के साथ-साथ अपने स्वरूप में परिवर्तन करना है। वास्तव में समाजवाद का लक्ष्य समाज का हित है। साथ ही यह व्यक्ति की स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व और न्याय की प्राप्ति पर भी बल देता है। यह परमार्थ को, न कि स्वार्थ को महत्व देता है। इसका दृष्टिकोण मानवतावादी है। सामाजिक और आर्थिक समानता इसका मूल कारण है। परन्तु अपने इस अर्थ में यह पूँजीवाद का विरोधी है, क्योंकि पूँजीवाद से आर्थिक और सामाजिक असमानता उत्पन्न होती है। इसलिये समाजवाद भौतिक साधनों के समान वितरण पर जोर देता है। इसमें शोषण का विरोध होता है और श्रम को महत्व दिया जाता है। समाजवाद की निम्नलिखित विशेषतायें हैं :-

- (1) समाजवाद एक सिद्धान्त, आन्दोलन तथा जीवन पद्धति के रूप में।
- (2) समानता और स्वतंत्रता
- (3) अर्थ पर समाज का नियंत्रण।
- (4) वस्तुओं का सही वितरण और मानवता को गौरव प्रदान करना।
- (5) श्रम का महत्व।
- (6) पूँजीवाद का विरोध।
- (7) व्यक्तिगत संपत्ति का विरोध।

(8) राज्य का महत्व।

समाजवाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि :-

समाजवाद को एक दर्शन और जीवन पद्धति के रूप में स्वीकार करना अधिक श्रेयस्कर है। समाजवाद अपने मौलिक रूप में सामाजिक जीवन दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित हुआ है। इस दृष्टि से यह व्यक्ति और समाज दोनों का मार्गदर्शन करता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास समाज में ही संभव है और समाज का समुचित विकास भी व्यक्ति के व्यक्तित्व-विकास पर ही आधारित है। दोनों में अन्योन्याश्रय संबंध है। समाजवाद व्यक्ति और समाज दोनों के आदर्शों का निरूपण करता है। इस अर्थ में समाजवाद एक दर्शन, एक दृष्टिकोण और एक जीवन पद्धति का निर्माण करता है। इसी को ध्यान में रखते हुये दार्शनिक सी०ई०एम० जोड़ ने समाजवाद के दर्शन पर दृष्टिपात किया है। उनका यह विचार है कि समाजवाद के दर्शन को निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है।

(1) स्वतंत्रतापूर्वक व्यक्तित्व का विकास :- प्रो० जोड़ ने व्यक्ति और समाज की एकता पर जोर देते हुये कहा है कि समाजवाद में व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास स्वतंत्रता पूर्वक होना चाहिये और यह तभी संभव है जब व्यक्ति भौतिक जीवन की चिंताओं से मुक्त हो। चिंताओं से मुक्त होने पर व्यक्ति इच्छित ढंग से जीवनयापन कर सकता है, परन्तु व्यक्ति की स्वतंत्रता तब तक संभव नहीं है जब तक सामाजिक संगठन व्यापक न हो। उन्हीं के शब्दों में, “वस्तुतः समाजवाद व्यक्ति को भौतिक चिंताओं के भार से मुक्त कर देना चाहता है जिससे वह अपने इच्छित ढंग से जीवन व्यतीत कर सके और स्वतंत्रता पूर्वक अपने व्यक्तित्व का विकास कर सके। लेकिन समाजवादी यह मानते हैं कि राज्य सावयवी है। अतः इस दृष्टिकोण के फलस्वरूप वह राज्य को एक ऐसी जीवनशील वस्तु मानते हैं जो बहुत सी अन्योन्याश्रित इकाइयों से मिलकर बनी है। अतः उनका विश्वास है कि ऐसी स्वतंत्रता एक व्यापक सामाजिक संगठन में ही प्राप्त हो सकती है।”³

(2) सहयोगी भावना :- समाजवाद व्यक्ति की स्वतंत्रता पर विशेष बल देता है परन्तु यह स्वतंत्रता व्यक्ति विशेष या किसी वर्ग विशेष की स्वतंत्रता नहीं बल्कि मनुष्य मात्र की स्वतंत्रता है और यह तभी संभव है जब “समाज के लोग-सहयोग पूर्वक कार्य इसलिये करें ताकि प्रत्येक व्यक्ति को सम्पूर्ण और मुक्त जीवन की प्राप्ति के लिये अवसर मिल सके।” इस अर्थ में व्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ समाज का निर्माण तथा विकास भी संभव है। जब तक समाज संगठित नहीं होगा तब तक व्यक्ति की स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं होगा। समाजवाद में व्यक्ति की स्वतंत्रता, व्यक्तिवादी विचारधारा के व्यक्ति की स्वतंत्रता की धारणा से भिन्न है। व्यक्तिवाद में मनुष्य और मनुष्य के बीच संबंधों में हस्तक्षेप न करके स्वतंत्रता की प्राप्ति हो सकती है, परन्तु समाजवाद में समाज के लोग जब तक सहयोग की भावना से काम नहीं करेंगे तब तक स्वतंत्रता और मुक्त जीवन संभव नहीं होगा।

(3) आत्म विकास :- समाजवाद व्यक्ति के आत्म विकास के लिये समाज और राज्य की सेवा को आधार मानता है। इसका आधार यह नहीं है कि व्यक्ति का साध्य केवल राज्य और समाज की सेवा है। समाजवाद समाज सेवा को व्यक्ति के आत्मविश्वास का आधार मानता है। इसका यह मानना है कि समाज सेवा द्वारा व्यक्ति उतना ही विकास कर सकता है जितना वह एकाकी रहकर कर सकता है। यह आत्मविश्वास आध्यात्मिक लक्ष्यों की प्राप्ति द्वारा संभव है और समाजवाद इसका पूरा अवसर देता है। व्यक्तिवाद भी व्यक्ति को महत्व देता है, परन्तु उसमें व्यक्ति का व्यक्तित्व भौतिक शक्तियों के भार से दब जाता है। समाजवाद सामाजिक संगठन को महत्व देता है। यह सामाजिक संगठन को व्यक्तिवाद से आगे ले जाता है। इस अर्थ में समाजवाद व्यक्तिवाद का पूरक है। यहाँ यह कहा जा सकता है कि व्यक्तिवाद की कमियों को समाजवाद व्यक्ति द्वारा समाज की सेवा और संगठन द्वारा पूरा करता है। यह सत्य है कि व्यक्ति की आत्मिक और आध्यात्मिक लक्ष्यों की प्राप्ति समाज में रहकर ही संभव है। समाज से अलग व्यक्ति का कोई महत्व नहीं है। प्रो० जोड़ के अनुसार “वस्तुतः समाजवाद समाज के संगठन को व्यक्तिवाद से आगे ले जाता है लेकिन इसका कारण यह नहीं है कि वह कार्यक्षमता को साध्य समझता है,

अपितु उसकी यह मान्यता है कि व्यक्तिवाद का लक्ष्य तभी सिद्ध हो सकता है जब व्यक्ति अपने आध्यात्मिक इष्टों की ओर अग्रसर होने के लिये मुक्त रहे।⁴

(4) उत्कृष्ट जीवन :- उत्कृष्ट जीवन का अर्थ है—उच्चतम गुणों से संपन्न जीवन। समाजवाद का दर्शन मानव जीवन, सम्यता तथा संस्कृति को उत्कृष्टता प्रदान करने का पक्षपाती है। जीवन की उत्कृष्टता तभी संभव है जब जीवन संघर्षों से मुक्त हो। समाजवाद का लक्ष्य जीवन को चिरस्थायी बनाने की अपेक्षा उत्कृष्ट जीवन जीना है परन्तु ऐसे जीवन के लिये मनुष्य को एक स्वस्थ जीवन दर्शन का निर्माण करना होगा और एक ऐसे जीवन मूल्य को निर्धारित करना होगा जो उत्कृष्ट जीवन का निर्माण कर सके। अर्थात् उसे यह निश्चित करना होगा कि जीवन में कौन सी वस्तु मूल्यवान है और वही मूल्यवान जीवन है। इस सिद्धान्त के विपरीत व्यक्तिवाद डार्विन के विकासवादी सिद्धान्त का समर्थन करता है जो जीवन को संघर्षशील मानता है। ऐसा मानने पर निश्चित रूप से मनुष्य का जीवन और समाज संघर्षों, प्रतियोगिताओं और द्वंद्वों में व्यतीत होगा और संघर्षों में वही विजयी होगा जो योग्यतम हो।

इस सिद्धान्त के आधार पर मानव जीवन का एकमात्र लक्ष्य होगा संघर्षों में किस प्रकार विजयी हो? और किस प्रकार अधिक से अधिक जीवन जी सकें? इस आधार पर यह स्पष्ट है कि व्यक्तिवाद जीवन को परिमाणान्तरक रूप में जीना श्रेयस्कर मानता है। यह जीवन संघर्ष का अतिक्रमण करना चाहता है। इसी कारण प्रो० जोड ने कहा है कि “जीवन का उद्देश्य केवल जीवन का चिरस्थायीकरण नहीं, बल्कि इससे अधिक है। उत्कृष्ट जीवन—केवल जीवन से अधिक महत्वपूर्ण है।”⁵

(5) सत्जीवन समाज और राज्य :- समाजवाद मनुष्य के सत् जीवन को अधिक महत्व देता है। यह सत् जीवन तभी प्राप्त हो सकता है जब संघर्षमय जीवन का अतिक्रमण कर लिया जाय। सत् जीवन का अर्थ होता है— सत्य की शोध सत्य के लिये करना, सुन्दर वस्तुओं का निर्माण सौंदर्य के लिये करना, ठीक काम करना, रुचि का विकास करना और परिष्कृत शिष्टाचार करना। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सत् जीवन का अर्थ है आध्यात्मिक आदर्शों की प्राप्ति के लिये सतत् प्रयास।

इस सत् जीवन की प्राप्ति तभी संभव है जब संघर्षों से छुटकारा मिले और यह तब मिलेगा जब राज्य और समाज द्वारा व्यक्ति की सहायता की जाय। समाजवाद यह मानता है कि राज्य केवल अपनी शक्ति के लिये जीवित नहीं रहता और न ही उसका अस्तित्व केवल सदस्यों के जीवन की रक्षा के लिये होता है बल्कि यह देखने और सुविधा प्रदान करने के लिये होता है कि उसके सदस्य वह कार्य कर सकें जो करने योग्य है। इसके लिये सदस्यों का भी कर्तव्य हो जाता है कि वे राज्य का सहयोग करें तथा आपस में भी सहयोग पूर्वक काम करें। प्रो० जोड यहाँ पुनः कहते हैं कि “राज्य संबंधी—समाजवादी— दृष्टिकोण में जो सामाजिक सिद्धान्त सन्निहित हैं, उसके अनुसार, समाज मानव जीवों का एक ऐसा संवास है जिसकी रचना उसमें रहने वाले सभी व्यक्तियों को आध्यात्मिक स्वतंत्रता और सत् जीवन का अवसर देने के लिये हुई है।”⁶

(6) पूर्ण, समृद्ध और मुक्त जीवन :- समाजवाद यह मानता है कि समाज में जब एकाधिकार और संघर्ष को समाप्त कर दिया जायेगा अर्थात् पूँजीवाद की समाप्ति कर दी जायेगी तब समाज के सभी लोग श्रमिक होंगे। फिर श्रमिकों का राज्य माना जायेगा और ऐसे राज्य में लोग किसी अन्य के लिये काम नहीं करेंगे बल्कि समाज के लिये करेंगे तथा समाज के लिये काम करके यह अनुभव करने लगेंगे कि वे अपने लिये ही काम कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में लोग राज्य द्वारा जीवन नियमन का विरोध नहीं करेंगे, क्योंकि तब वे यह समझ जायेंगे कि जिन नियमों का वे पालन करते हैं वे सब के कल्याण के लिये बनाये गये हैं। तब वे अपेक्षाकृत अच्छा काम करेंगे और प्रसन्नतापूर्वक करेंगे क्योंकि वे यह जानते होंगे कि उनके परिश्रम के फल से किसी पूँजीवाद की लाभ—राशि में वृद्धि नहीं होगी बल्कि सभी लोगों को अपेक्षाकृत अधिक पूर्ण, अधिक समृद्ध और अधिक मुक्त जीवन बिताने का अवसर मिलेगा।

(7) समाज सेवा :— समाजवाद का दृष्टिकोण व्यापक, मानवतावादी और परामर्शवादी है। इस दृष्टिकोण में ही समाज-सेवा की भावना निहित है। व्यक्ति और समाज में अभेद का भी दृष्टिकोण इसी से प्रकट होता है। उद्योगवादी समाज में जहाँ कुछ व्यक्तियों के स्वार्थ की पूर्ति होती है और अधिकांश श्रम करके भी भूखों मरते हैं, फिर भी शोषकों के लिये काम करते हैं, वहीं समाजवादी समाज में समाज के लाभ में व्यक्ति अपना लाभ देखेंगे और समाज में अच्छे जीवन के निर्माण के लिये अधिक प्रसन्नतापूर्वक कार्य करेंगे। इससे उन्हें आवश्यक आर्थिक लाभ मिलेगा। समाज की सेवा में ही व्यक्ति का हित सन्निहित है। यही वास्तविक समाजवादी मान्यता है।

इस मान्यता का खंडन सुखवादी यह तर्क देकर कर सकते हैं कि मनुष्य केवल अपने स्वार्थ के लिये कार्य करता है। यह उसकी मनोवैज्ञानिक विशेषता है। यदि सुखवादियों की इस धारणा को सत्य मान लिया जाय, तब समाजवाद के सभी आदर्श, झूठे सिद्ध हो जायेंगे। परन्तु यह सत्य नहीं है। यदि समाज का ढाँचा समाज सेवा की दृष्टि से तैयार किया जाय या जनमत को मोड़ा जाय तो व्यक्तिगत स्वार्थ से समाज सेवा की ओर अग्रसर हुआ जा सकता है फिर भी समाजवाद के विरोध में तीन महत्वपूर्ण प्रश्न उठाये जाते हैं :—

(1) पहला प्रश्न मनोवैज्ञानिक है, जिसके अनुसार समाजवाद के विरोधियों का यह कहना है कि 'मनुष्य तभी काम करेंगे या अच्छी प्रकार से काम करेंगे जब वे अपने लिये काम करते हैं।' जबकि समाजवाद समाज के लिये काम करने पर जोर देता है। इस तर्क से यह प्रतीत होता है कि समाजवाद व्यवहार में सफल नहीं हो सकता। यह भी तर्क दिया जाता है कि ऐसे समुदाय में, जिसका आधार सामाजिक सेवा का सिद्धान्त है न कि व्यक्तिगत लाभ का, यह संभव होगा कि गंदे तथा अरुचिकर काम को बहुत कम कर दिया जाय। परन्तु यहाँ भी एक प्रश्न उठता है कि क्या समाजवाद में मनुष्य सेवा भाव से कार्य कर सकता है।

(2) दूसरे प्रश्न के अनुसार समाजवाद में राज्य सर्वोपरि हो जाता है। सरकार और नौकरशाही का नियंत्रण हो जाता है तथा सर्वाधिकारवाद का भय बना रहता है।

(3) तीसरा प्रश्न समाजवाद में पद्धति का प्रश्न है। अर्थात् समाजवाद में पूँजीवाद का विरोध होता है। लोग हिंसात्मक क्रांति का सहारा लेते हैं जो मानव समाज के लिये कलंक है।

कुछ लोगों ने समाजवाद के विरुद्ध आपत्तियाँ उठाई हैं—

(1) एक सत्तावाद और नौकरशाही— समाजवाद की सबसे बड़ी कमी यह है कि इसमें व्यक्ति राज्य के अधीन हो जाता है। सरकार के अधीन सभी उद्योग और कारखाने हो जाते हैं। सरकारी अधिकारी ही सबकुछ हो जाते हैं तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है। नौकरशाही में व्यक्तियों को स्वतंत्र निर्देश देना इसके लिये संभव नहीं होता है। इस तरह पूँजीवाद की चक्की से निकल कर लोग नौकरशाही की चक्की में पीस दिये जाते हैं।

इस तर्क के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि यद्यपि नौकरशाही तथा राज्य सत्तावाद का भय समाजवाद में होना स्वाभाविक है परन्तु लोकतंत्री समाजवाद की लोकप्रियता को देखते हुये यही प्रतीत होता है कि इसमें नौकरशाही तथा एकसत्तावाद का भय नहीं है क्योंकि यह जनता का समाजवाद है। यह किसी वर्ग का शासन नहीं है। जनता शासन की अधिकार वृत्ति पर नियंत्रण रख सकती है तथा शासन का उपयोग अपने हित में कर सकती है।

(2) वर्ग युद्ध— समाजवाद के विरुद्ध यह भी आक्षेप लगाया जाता है कि यह वर्गयुद्ध को बढ़ावा देता है। समाजवाद और कुछ नहीं बल्कि पूँजीपतियों तथा श्रमिकों या सर्वहारा वर्ग का युद्ध है। सर्वहारा वर्ग पूँजीपति पर आक्रमण करता है और समाज युद्ध क्षेत्र बन जाता है।

इस तर्क के उत्तर में भी यह कहा जा सकता है कि समाजवादी विचार धारा में वर्गयुद्ध का स्थान नहीं है। वर्गयुद्ध समाजवाद का नहीं बल्कि मार्क्सवाद या साम्यवाद का सिद्धान्त है। सच तो यह है कि समाजवाद किसी

वर्ग विशेष का कल्याण नहीं बल्कि मानव जाति का कल्याण चाहता है। इसलिये उस पर वर्गयुद्ध का आरोप लगाना उचित नहीं प्रतीत होता है।

(3) समाजवाद में उत्पादन की प्रेरणा का अभाव— समाजवाद के विरोध में यह कहा जाता है कि इसमें मनुष्यों को काम करने तथा उत्पादन को पर्याप्त प्रेरणा नहीं मिलती हैं क्योंकि सर्वप्रथम लोग अपने लिये या अपने स्वार्थ के लिये काम करते हैं। समाज के लिये बिना व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा पहल के कोई काम नहीं करता है। दूसरा यह कि मनुष्य स्वभावतः काम नहीं करना चाहता है। तीसरा, यह कहा जाता है कि समाजवादी व्यवस्था में लोग आलसी हो जायेंगे और उत्पादन का परिणाम घट जायेगा।

डॉ० जोड ने इन सभी तर्कों का खण्डन मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। जहाँ तक काम न करने की प्रेरणा की बात है यह कहा जाता है कि “मनुष्य स्वभावतः अतिरिक्त काम से घृणा करता है न कि काम से। काम, श्रम शारीरिक आवश्यकता है। ऐसी आवश्यकता जो स्वयं स्वास्थ्य तथा जीवन है। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि काम गुण की दृष्टि से अनेक प्रकार का हो और मात्रा की दृष्टि से भार-स्वरूप न हो। यदि ऐसा किया गया तो इस बात की आशा करनी चाहिये कि अधिकांश व्यक्ति काम उल्लासपूर्वक करेंगे।

जहाँ तक यह प्रश्न उठता है कि समाज सेवा के उद्देश्य से मनुष्य कार्य में प्रेरित नहीं होते हैं— इसके उत्तर में डॉ० जोड का कहना है कि यह विश्वास भ्रमपूर्ण है। जब कोई समाज के लिये कार्य करता है तो उसके लिये यह नहीं कहा जा सकता है कि ऐसे उद्देश्य असाधारण व्यक्ति के असाधारण समय के ही होते हैं। प्रत्येक छोटे समुदाय में सेवा की इच्छा, समुदाय के लिये तथा उसके हित में काम करने की इच्छा सतत क्रियाशील रहती है और यह उसके सदस्यों के जीवन का एक शक्तिशाली तत्व है। अपने दिल के लिये खेलने वाला विद्यार्थी या अपने धार्मिक सम्प्रदाय के हित में योजना बनाने में संलग्न तथा साहसी काम करने वाला भिक्षु, दोनों ही इसी इच्छा से वशीभूत होकर काम कर रहे हैं।

(4) उद्योगों की विशालता और उसका प्रबंध — प्रायः यह आक्षेप लगाया जाता है कि राज्य उद्योगों की विशालता के कारण उनकी व्यवस्था नहीं कर सकता है। समाजवादी समाज में व्यक्तिगत उद्योगों की अपेक्षा उतनी कुशलता तथा किफायत से उद्योगों की व्यवस्था नहीं की जा सकती है।

इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि समाजवाद में राष्ट्रीयकरण की व्यवस्था सफल हो रही है। राज्य जैसे अन्य व्यवस्थाओं को अपने हाथ में ले सकता है और उसका संचालन सफलतापूर्वक कर सकता है वैसे ही अनुभव के आधार पर अन्य व्यवस्थाओं को भी लेकर सफलतापूर्वक संचालन कर सकता है। इसमें किसी भी संदेह की आवश्यकता नहीं है।

(5) समाजवाद ऊँचे से नीचे गिराकर बराबर करने वाली व्यवस्था है— सामान्य रूप से समाजवाद के विरोध में यह कहा जा सकता है कि समाजवाद ऐसी व्यवस्था है जिसमें गरीब लोगों के प्रति अधिक सहानुभूति है और गरीबों को संतुष्ट करने के लिये अमीरों को, जो रहन-सहन और अर्थ की दृष्टि से ऊँचे हैं, उन्हें भी खींचकर गरीबों के स्तर तक लाया जाता है। यह नहीं देखा जाता है कि अमीर अपने उद्योग, संघर्ष और परिश्रम से अमीर बने हुये हैं। समाजवादी व्यवस्था की यह धारणा गलत है कि सभी लोग समान रूप से गरीब और सुखी हों।

इस आक्षेप के विषय में यह कहा जा सकता है कि समाजवाद का अभिप्राय लोगों को ऊपर उठाकर समान बनाना है। समाजवाद का यह भी उद्देश्य है कि यह व्यक्ति की योग्यता, क्षमता और प्रतिभा को पहचानते हुये उसके अनुसार काम दे और दाम भी। इस तरह समाजवाद में व्यक्ति की क्षमता का उपयोग सामान्य हित के लिये किया जाता है। समाजवाद निराशावादी नहीं है। वह आशा करता है कि समाज को अच्छे लक्ष्य की प्राप्ति के लिये बदला जा सकता है।

(6) नियंत्रण और संग्रह की मनोवृत्ति— समाजवाद की एक कमजोरी यह है कि यह मनुष्य के नियंत्रण और संग्रह की प्रवृत्ति को महत्व नहीं देता है। मनुष्य स्वभावतः संपत्ति के संग्रह और उस पर नियंत्रण पाने की इच्छा से किसी कार्य के लिये प्रेरित होता है। ऐसा करके उसे संतोष की प्राप्ति होती है परन्तु समाजवाद व्यक्तिगत संपत्ति को रखने को महत्व न देकर मनुष्य की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता की अवहेलना करता है।

यद्यपि यह सत्य है कि नियंत्रण और संग्रह मनुष्य की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता है, परन्तु इन आवश्यकताओं का संबंध अभिव्यक्ति से भी जुड़ा हुआ है। यदि मनुष्य को सामाजिक कार्यों में अपनी, अभिव्यक्ति का अवसर मिले तो भी उसे संतोष का अनुभव हो सकता है। लोकतांत्रिक समाजवाद में व्यक्ति को इतनी स्वतंत्रता दी जाती है कि वह अपनी आवश्यकता की संपत्ति रख सकता है परन्तु उसका अधिकार नियंत्रित और सीमित है। इसलिये वह असीमित रूप में संपत्ति नहीं रख सकता है क्योंकि अनियंत्रित संपत्ति से सामाजिक हित को धक्का लगता है।

(7) समाज और क्रांति— समाजवाद की स्थापना का प्रश्न पद्यति से जुड़ा हुआ है। यह वर्तमान समाज से संबंध विच्छेद करके ही अपने उद्देश्य की प्राप्ति कर सकता है परन्तु यह विच्छेद हिंसात्मक होगा और हिंसात्मक परिवर्तन की प्रक्रिया भी हिंसात्मक होती है। हिंसात्मक क्रांति के अनेक कुपरिणाम होते हैं जो मानवता के लिये अभिशाप होते हैं। इसलिये समाजवाद क्रांति पर आधारित होने के कारण ग्रहणीय नहीं हो सकता है।

इस आलोचना के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि आवश्यक नहीं है कि समाजवाद अपने लक्ष्य की प्राप्ति हिंसात्मक पद्धति से ही करें। आदर्शवादी या विकासवादी समाजवाद की स्थापना लोकतांत्रिक तरीके से धीरे — धीरे होती है। यह विकासवादी होता है। क्रांति की पद्धति साम्यवाद में अपनायी जाती है। लोकतांत्रिक समाजवाद में हिंसात्मक क्रांति के लिये कोई स्थान नहीं है।

इन आलोचनाओं के बावजूद यह कहा जा सकता है कि आधुनिक युग में समाजवाद को कुछ ऐसी सफलतायें मिली हैं जिससे इसकी लोकप्रियता में वृद्धि हुई है और जो यह सिद्ध करता है कि इसमें कुछ अच्छाइयाँ भी हैं। जैसे मानव व्यक्तित्व को महत्व, सामाजिक जागरूकता, भौतिक विज्ञान, समाजवाद से लोकतांत्रिक में दृढ़ता, सामाजिक न्याय तथा समाजवाद का आदर्शवादी यथार्थ और विवेकपूर्ण रूप आदि।

अन्त में निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि “समाजवाद केवल एक राजनीतिक विचारधारा मात्र नहीं है बल्कि यह एक आदर्श, एक धर्म, एक विचार, एक सिद्धान्त, एक नीति, एक विश्वास तथा एक जीवन प्रणाली आदि सब कुछ हैं।”⁷

सन्दर्भ सूची

1. समाज दर्शन का परिचय — डॉ0 शिव भानु सिंह— पेज नं0 112
2. वहीं — पेज नं0 112
3. आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त प्रवेशिका अंवादत्त पत्र, पेज नं0 47
4. वहीं — पेज नं0 48
5. वहीं — पेज नं0 49
6. वहीं — पेज नं0 50
7. आधुनिक राजनीतिक चिंतन का इतिहास, गंगादत्त तिवारी।
8. समाज दर्शन की रूपरेखा — जे0 एस0 मेकेन्जी।
9. प्रारंभिक समाज एवं राजनीतिक दर्शन — अशोक कुमार वर्मा।
10. समाज दर्शन — सरल अध्ययन डॉ0 वात्स्यायन



भारत में समाजवाद : कल, आज और कल

सुनीता वर्मा

72, राजेन्द्र नगर करमेर रोड, उरई, जिला-जालौन-285001

यूरोपवासियों की आर्थिक आकांक्षा के कारण पन्द्रहवीं शताब्दी के अंत में एक नई अर्थव्यवस्था का जन्म हुआ, जिसे पूंजीवाद कहा जाता है। पूंजीवाद का आधार है, अधिकाधिक लाभ कमाने के लिये बड़े पैमाने पर उत्पादन और उत्पादन के साधनों तथा पूंजी एवं उपकरण पर व्यक्तिगत स्वामित्व। अर्थव्यवस्था की इस नई प्रणाली ने औद्योगिक विकास के लिए प्रेरित किया, जिससे 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति का उद्भव हुआ। औद्योगिक क्रान्ति का सर्वाधिक प्रभाव आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र पर पड़ा। आर्थिक तथा सामाजिक असमानता दिन-प्रतिदिन विषम होती जा रही थी। समृद्धों की समृद्धि तथा निर्धनों की निर्धनता के बीच खाई दिनों दिन और बढ़ती जा रही थी।

औद्योगिक क्रान्ति की जो शुरुआत इंग्लैण्ड से हुई वह उन्नीसवीं सदी के अन्तिम ढाई दशकों में यूरोप के अन्य कई देशों में फैल गई। परिणामतः समाज में दो नए वर्गों का उदय हुआ—पूँजीवाद अथवा बुर्जुआ वर्ग। पूँजीपति वर्ग का उद्योगों और वाणिज्य-व्यापार पर अधिकार था। मजदूर वर्ग अथवा सर्वहारा वर्ग, जो मजदूरी के लिए काम करता था। यूरोप के औद्योगिक देशों में मजदूरों के लिए प्रारम्भिक दौर भीषण कष्ट का था। मजदूरों ने ट्रेड यूनियन के रूप में अपने को संगठित करना शुरू कर दिया, हालाँकि कई देशों में ये ट्रेड यूनियन गैर-कानूनी घोषित थीं। पृथक राजनीतिक शक्ति के रूप में भी ये लोग अपने को संगठित करने लगे। इस तरह समाजवादी आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ। जिसने मजदूरों की न सिर्फ आर्थिक माँगों को आगे बढ़ाने का प्रयास किया बल्कि पूँजीवाद व्यवस्था को उखाड़ फेंकने के लिए उनको लामबंद किया।

समाजवाद के विचारों को वैज्ञानिक रूप देने में और यूरोप के अनेक देशों में समाजवादी आन्दोलन को संगठित करने में कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स ने नेतृत्वकारी भूमिका अदा की। औद्योगीकरण में प्रमुख भागीदारी मध्यम वर्ग की थी। मध्यम वर्ग के लोगों के पास बुद्धि थी, परिश्रमशीलता थी, जोखिम उठाने की शक्ति थी तथा पूँजी थी। फिर भी समाज में उन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं थी क्योंकि सामंत वर्ग उन्हें समानता का स्तर प्रदान करने के लिए राजी नहीं था। अतः समानता एवं स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए मध्य वर्ग के नेतृत्व में लोकतंत्रीय आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ। शुरुआत में मजदूर वर्ग ने मध्यम वर्ग का साथ दिया परन्तु इस आन्दोलन से मजदूर वर्ग को लाभ नहीं हुआ, तब वे निराश होकर समाजवादी आन्दोलन की ओर प्रवृत्त हुए।

अंग्रेज अर्थशास्त्री जॉन स्टुअर्ट मिल जो व्यक्तिगत सम्पत्ति और पूँजीवादी व्यवस्था में विश्वास करते थे परन्तु मिल साहब ने मजदूरों के शोषण की प्रवृत्ति को अस्वीकृत कर दिया। समाजवाद के बीज अठारहवीं शताब्दी के प्रबोधन आन्दोलन के दार्शनिकों के लेखों में उपलब्ध होते हैं। इस युग के दार्शनिकों में रूसों का प्रभुत्व था। रॉबर्ट ओवन की न्यू व्यू ऑफ सोसाइटी नामक पुस्तक में रूसों के विचारों का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

रूसों का कहना था कि किसी व्यक्ति को इतना धनी नहीं होना चाहिए कि वह दूसरे को खरीद ले तथा किसी व्यक्ति को इतना निर्धन भी नहीं होना चाहिए कि वह अपने आप को बेच दे। रॉबर्ट ओवन को यूरोप के समाजवादी आन्दोलन का जनक माना जाता है।

19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में शोषित वर्ग पर उद्योगवाद के प्रसार का जबर्दस्त असर दिखाई देने लगा और वह आर्थिक विवशता के कारण जमीने छोड़-छोड़ कर काम की तलाश में कारखानों में जाने के लिए मजबूर हुआ।

कारखानों को खोलने में इंग्लैण्ड सबसे आगे था। कारखानों के भीतर की हालत दिल दहलाने वाली थी और मजदूरों के घरों और झोपड़ियों की उनसे बदतर। छोटे-छोटे बच्चों और स्त्रियों को इतने घण्टे काम करना पड़ता था कि आज उस पर यकीन नहीं होता।

मजदूर वर्ग गरीबी और ज्यादा कार्य के बोझ से दबा जा रहा था। इंग्लैण्ड सहित अन्य देशों में सर्वहारा वर्ग की स्थिति दयनीय ही थी। नेपोलियन के युद्धों से इंग्लैण्ड कमजोर होता जा रहा था और आर्थिक मंदी फैल गयी थी जिसकी मार सबसे ज्यादा मजदूरों पर ही पड़ी। इंग्लैण्ड का शासक वर्ग फ्रांस की राज्य क्रान्ति से इतना डर गया था कि उन्होंने सम्मिलित कानून कहलाने वाले ऐसे कानून बना दिये कि बेचारे मजदूर अपने सुख-दुख की चर्चा करने के लिए इकट्ठे भी न हो सकें। परन्तु ये कानून उन्हें भड़काने से न रोक सके। मजदूर वर्ग ने गुप्त समितियाँ बनायीं सब बातें गुप्त रखने की आपस में कसमें खाईं और सुनसान जगहों में आधी रात गये सभाएँ करने लगे। किसी साथी की गद्दारी पर शडयन्त्र के मुकदमें चलते और भयंकर सजाएँ दी जातीं। कभी-कभी वे गुस्से में आकर मशीनों को तोड़-फोड़ देते, कारखानों में आग लगा देते और कुछ मालिकों की हत्या भी कर डालते।

इस तरह मजदूरों की लड़ाई जारी रही, जिसमें उन्हें बहुत कुर्बानियाँ देनी पड़ीं किन्तु लाभ धीरे-धीरे हुआ। पार्लियामेंट पर उनका प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं था क्योंकि उन्हें वोट देने का अधिकार नहीं था। इंग्लैण्ड में 1823 ई० के “सुधार बिल” में उच्च-मध्य वर्ग को ही वोट देने का अधिकार था। परन्तु मजदूर वर्ग को वोट देने का अधिकार नहीं था। इस प्रकार सारे यूरोप में श्रमिकों में असंतोश बढ़ा। सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में नई आर्थिक व्यवस्था और उससे उत्पन्न सामाजिक शोषण की आलोचना की शुरुआत हुई। इसका पहना मुख्य कारण यह था कि वहाँ सबसे पहले औद्योगीकरण प्रारम्भ हुआ और दूसरा कारण यह था कि छोटे-छोटे कृषकों की भूमि समृद्ध जमींदार खरीदते जा रहे थे और छोटे किसानों की स्थिति दयनीय होती जा रही थी। तीसरा कारण यह था कि इंग्लैण्ड में स्पेंस, ओगिल्वी तथा टॉमस पेन आदि विचारकों ने यह विचार प्रस्तुत किया कि भूमि पर समाज का अधिकार होना चाहिए।

विलियम गोडविन ने व्यक्तिगत सम्पत्ति की निंदा की। कवि शैली ने सरकार की निर्दयता और निर्धनों के शोषण की भर्त्सना की। 1818 ई० में स्विस इतिहासकार जीन चार्ल्स ल्योनार्ड साईमोंड डी सिसमोंडी ने इंग्लैण्ड के निर्धन वर्ग की दयनीय दशा पर दुःख व्यक्त किया। सिसमोंडी पहले अर्थशास्त्री थे, जिन्होंने प्रतिष्ठित आर्थिक सिद्धान्तों की आलोचना करने का सफल साहस किया। इसी समय रॉबर्ट ओवन ने निजी कारखानों में अनेक सुधार कर अपने मजदूरों की हालत सुधारने का यत्न किया।

सामान्यतः यह माना जाता है कि रॉबर्ट ओवन ने ही 1830 ई० के आस-पास सर्वप्रथम समाजवाद शब्द का प्रयोग किया था। उसने अपने सिद्धान्त “द न्यू व्यू ऑफ सोसाइटी” और “द बुक ऑफ न्यू मोरल बर्ल्ड” में अपने सिद्धान्त स्पष्ट किये। ओवन का विचार था कि मजदूरों के लिए सरकारी समितियाँ बन जायें और मजदूरों का कारखानों में हिस्सा हो जाये। उसने “समाजवाद” का एक ही शब्द ऐसा चला दिया, जिसने करोड़ों का दिल मोह लिया। फ्रांसीसी समाजवाद का संस्थापक कुलीन काउंट सेंट साइमन था। फ्रांस की प्रथम क्रान्ति के समय वह रिपब्लिकन पार्टी का सदस्य था। इनकी प्रसिद्ध रचना ‘द न्यू क्रिश्चियनिटी’ में अपने विचारों का प्रतिपादन किया।

बैब्यूफ का विचार था कि सम्पूर्ण सम्पत्ति राष्ट्र की होनी चाहिए और समाज से गरीबी और विषमता का अंत होना चाहिए। इस दशा को लाने के लिये यह उपाय था कि जब किसी व्यक्ति की मृत्यु हो, तब उसकी सम्पत्ति पर राष्ट्र का स्वामित्व स्थापित कर लिया जाए। उसने अपने समाचार-पत्र में 1794 में लिखा था—

“जब मैं देखता हूँ कि गरीबों के तन पर न कपड़े हैं और न पैरों में जूते, गरीब लोग ही कपड़े और जूते बनाते हैं, पर उन्हें ही ये इस्तेमाल के लिए नहीं मिलते और जब मैं उन लोगों का ख्याल करता हूँ, जो स्वयं कुछ भी काम नहीं करते पर उनके पास किसी भी चीज की कमी नहीं, तो मेरा यह विश्वास दृढ़ हो जाता है कि राज्य अब भी जनसाधारण के विरुद्ध कुछ लोगों का षडयंत्र मात्र है।”

1840 ई० के बाद लुई ब्लां फ्रांस का सबसे प्रभावशाली विचारक और नेता था। ब्लां ने बेरोजगार लोगों की सहायता के लिए सामाजिक कार्यशालाओं की स्थापना का प्रस्ताव स्वीकृत कराया। 1851 ई० में मध्य वर्ग के समर्थन ने लुई नेपोलियन के राजद्रोह को वैध बना दिया और 1852 ई० में उसे शाही सिंहासन पर बैठा दिया। इस तरह फ्रांस में समाजवाद की स्थापना का प्रथम प्रयास विफल हो गया। अंततः 1905 में फ्रांस के सभी समाजवादी भी एक हो गए। यह एकीकरण एम्सटरडम की समाजवादी कांग्रेस तथा जर्मन साम्यवादियों की मध्यस्थता के कारण संभव हो सका था।

प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व फ्रांसीसी श्रमिकों ने बड़ी-बड़ी हड़तालें कीं। प्रथम विश्व युद्ध के समय से सार्वजनिक श्रमिक संघ ने फ्रांस की गणतंत्रीय सरकार के साथ मिलकर काम करना शुरू कर दिया। रूस में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया की शुरुआत एलेक्जेंडर तृतीय के शासन काल में हुई। यद्यपि रूसी श्रमिकों की दयनीय स्थिति का आरंभ जार एलेक्जेंडर द्वितीय (1855-1881) के शासन काल में हो चुका था। इस काल में मजदूरों को पारिश्रमिक बहुत कम दिया जाता था। महिलाओं और बच्चों से भी कठोर कार्य लिया जाता था। मिलों में दुर्घटना से बचाव तथा आवास की कोई व्यवस्था नहीं थी।

मजदूरों के हितों को ध्यान में रखते हुए 1882 से 1897 के बीच समय-समय पर श्रमिक कानून बनाये जाते रहे किन्तु उन कानूनों से मजदूरों की स्थिति में कोई विशेष अंतर नहीं आ सका। इससे पूंजीपतियों के विरुद्ध श्रमिकों के असंतोष में वृद्धि हुई। क्रांतिकारी समाजवादी दल ने मजदूरों के इस असंतोष का लाभ उठाकर उनके मध्य समाजवादी सिद्धान्तों का प्रचार किया तथा उन्हें पूंजीवाद के विरुद्ध संगठित होने के लिए प्रोत्साहित किया। इसके फलस्वरूप रूस में 1905 में क्रान्ति हुई। रूस की 1905 की ऐतिहासिक क्रान्ति समाजवादी विचारों से ही प्रभावित थी, जिसमें रूसी मजदूरों का विशाल जुलूस अपनी दशा सुधारने की मांग रखने के लिए जार के महल के सामने एकत्र हुआ था।

जर्मनी में समाजवादियों के दो दल थे—जेनरल जर्मन वर्कर्स यूनियन तथा सोशल डेमोक्रेटिक वर्कर्स पार्टी। पहली पार्टी फर्डिनेंड लसैल की थी। 1864 में लसैल की मृत्यु हो गई। इसी की मृत्यु के समय से ही जर्मनी में एक व्यापक श्रमिक-दल की स्थापना का लक्ष्य बनने लगा था। 1875 में लसैल के अनुयायी मार्क्स के समर्थकों के साथ मिल गए और इसी वर्ष गोथा में 'जर्मन सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी' की स्थापना हुई।

इस पार्टी का नेतृत्व आगस्ट बेबल तथा बिल्हेल्म लीनबैख्ट के हाथों में आ गया। आरंभ में तो मार्क्स ने इस दल का मार्गदर्शन किया तथा उसके बाद 1895 तक फ्रेडरिक एंगेल्स ने।

मार्क्सवादी समाजवाद

19वीं सदी के मध्य यूरोप में समाजवादी दुनिया में एक बड़ा ही निराला व्यक्ति प्रकट हुआ। यह कार्ल हेनरिक मार्क्स (1818-83 ई०) था। मार्क्स ने कानून इतिहास दर्शन का गहन अध्ययन किया वह लेखनी का धनी था। मार्क्स जर्मन यहूदी था। इसका जन्म 5 मई, 1818 ई० में दक्षिण-पूर्वी जर्मनी में कोब्लेंज के निकट ट्रिक्स नामक स्थान पर हुआ था।

मार्क्स ने समाजवाद पर अनेक किताबें पढ़ीं। एक अखबार निकालने पर उसका जर्मनी के अधिकारियों से झगड़ा हो गया और वह पेरिस चला गया। मार्क्स की पेरिस यात्रा में मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स दोनों गहरे दोस्त हो गये। दोनों एक ही उद्देश्य के लिए दिलोजाना से मिलकर काम करने लगे।

फ्रांस सरकार ने मार्क्स को पेरिस से निकाल दिया। मार्क्स लन्दन चला गया और वहां बहुत वर्षों तक रहा। साइमन, फूरिए, ब्लां आदि समाजवादियों की तरह मार्क्स काल्पनिक नहीं था। वस्तुतः वह वैज्ञानिक समाजवाद का जन्मदाता था। 1848 ई० में जो क्रान्तियाँ हुई, उसने मार्क्स का दिल दहला दिया। उसने और एंगेल्स ने मिलकर एक सम्मिलित घोषणा पत्र जर्मन भाषा में जारी किया। यह 'साम्यवादी घोषणा पत्र' था, जिसमें उन्होंने उन विचारों

की चर्चा की, जो फ्रांस की महान राज्य-क्रान्ति और बाद में 1830 ई० और 1848 ई० के विद्रोही की जड़ में थे। उन्होंने घोषणा पत्र में उस समय के विचारों, स्वतन्त्रता, बराबरी व भाई-चारे के लोकतंत्री नारों की आलोचना की और यह दिखाया कि जनता के लिये ये कोई अर्थ नहीं रखते। उन्होंने बताया कि असली लड़ाई आर्थिक है।

मार्क्स के जीवन एवं विचारों में उसके दो वर्ष का फ्रांस प्रवास बड़ा निर्णायक सिद्ध हुआ। परन्तु 1848 ई० की क्रान्तिकारी गतिविधियों में सक्रिय भूमिका निभाने के कारण फ्रांस सरकार ने उन्हें देश निकाला दे दिया। इसी समय से मृत्यु पर्यन्त तक वह लन्दन में प्रवासी जीवन व्यतीत करने लगा। 1848 की फ्रांसीसी क्रान्ति की असफलता के लिए मार्क्स ने अपरिपक्व चिंतन एवं सिद्धान्तों को जिम्मेदार ठहराया। अतः साम्यवादी क्रान्ति को सफल बनाने के लिए वह ठोस विचारों एवं सिद्धान्तों की खोज में जुट गया। इसी दौरान उसने एक दैनिक पत्र न्यूयार्क ट्रिब्यून के लिए वह लेख भी लिखता था।

1856-62 के बीच लगभग 500 लेख इसमें प्रकाशित हुए। मार्क्स ने अपनी कृति दास कैपिटल की रचना की, जिसका प्रकाशन 1867 में हुआ।

समाजवाद से मार्क्स का तात्पर्य यह था कि यह इतिहास के अध्ययन पर आधारित है। यह पूंजीवाद के कुपरिणामों पर ही नहीं, वरन् पूंजीवादी प्रणाली पर भी आक्रमण करता है। मार्क्स के विचारों में ऐतिहासिक प्रक्रिया के अन्तर्गत प्राचीन समाज का आधार 'दासता' सामंतवादी समाज का आधार 'भूमि' तथा मध्यम वर्गीय समाज का आधार 'नकद पूंजी' है। मार्क्स के इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या है।

मार्क्स के घोषणा पत्र में बताया गया कि सारे संसार के मजदूरों का लक्ष्य पूंजीवाद को उखाड़ फेंकना और समाजवाद की स्थापना करना है। घोषणा पत्र के अन्त में उन्होंने सारे मजदूरों से इन शब्दों में ही अपील की, "संसार के मजदूर एक हो जाओ। तुम्हें खोना कुछ नहीं है, सिवाय अपनी गुलामी की जंजीरों के और पाने को तुम्हारे सामने संसार पड़ा है।" इस सब का परिणाम यह हुआ कि औद्योगिक क्रान्ति ने श्रम और पूँजी के बीच संघर्ष तेज कर दिया था। इस समय पूँजीपति वर्ग तथा सर्वहारा वर्ग के बीच जो संघर्ष है उसमें निश्चित रूप से सर्वहारा वर्ग की विजय होगी। मार्क्स का भी मानना था कि सर्वहारा वर्ग की ही विजय होगी और एक वर्गहीन समाज की स्थापना होगी। इस प्रकार निरन्तर चले आ रहे शोषक एवं शोषित के वर्ग संघर्ष का अंत होगा। क्योंकि तब केवल एक वर्ग अर्थात् सर्वहारा वर्ग ही समाज में रह जायेगा। उनका विचार था कि मजदूर वर्ग की मुक्ति ही सम्पूर्ण मानव जाति को तमाम सामाजिक अन्याय से उबारने में सफल होगी।

मार्क्स तथा प्रथम अंतर्राष्ट्रीय संघ

प्रथम अंतर्राष्ट्रीय संघ की स्थापना मार्क्स की देन थी। इसमें ब्रिटेन एवं फ्रांस के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त जर्मनी के लसैल के अनुयायी, हंगरी के लुई कौसुथ, इटली के मेजिनी आदि ने भी भाग लिया। प्रथम अंतर्राष्ट्रीय संघ की स्थापना 1864 में हुई थी। इस संघ की स्थापना लंदन में ब्रिटिश तथा फ्रांसीसी श्रम नेताओं तथा अन्य यूरोपीय देशों के राजनीतिक शरणार्थियों के संयुक्त प्रयास द्वारा हुई थी।

मजदूर-वर्ग की भूमिका और महत्व को समझने वाला मार्क्स सबसे पहला समाजवादी था। मार्क्स ने इसी संघ में भाषण दिया और कहा कि "वे अपनी युक्ति स्वयं ही और अपने प्रयत्नों द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं। जब तक कि उत्पादन के साधनों का स्वामित्व व्यक्तिगत हाथों में है तब तक मशीनों का सुधार उद्योग में विज्ञान के प्रयोग और उत्पादन कला में किसी भी सुधार से श्रमिकों की स्थिति में कोई सुधार नहीं हो सकता। उनका अंतिम लक्ष्य पूँजीवाद का विनाश होना चाहिए।

इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य तत्कालीन आर्थिक प्रणाली के विनाश के लिए संसार भर के श्रमिकों को संगठित करना था। इस संघ में सम्मिलित प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह केवल अपने लिए ही नहीं बल्कि अपने कर्तव्य का पालन करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए मानव एवं नागरिकों के अधिकारों की मांग करें। इस

सम्मेलन में जो नारा बुलन्द किया गया, वह था—“अधिकार के बिना कर्तव्य नहीं और कर्तव्य के बिना अधिकार नहीं।”

द्वितीय अंतर्राष्ट्रीय संघ

प्रथम संघ को विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। लक्ष्यों और प्रतिनिधियों के सम्बन्ध में मतभेद होने के कारण उसमें 1872 में फूट पड़ गई और 1876 में औपचारिक तौर पर इसका विघटन कर दिया गया। 1883 में मार्क्स की मृत्यु हो गयी थी। 1883 तक इंग्लैण्ड, जर्मनी तथा अन्य औद्योगिक देशों में शक्तिशाली मजदूर संघ स्थापित हो चुके थे।

द्वितीय अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया कि प्रत्येक वर्ष एक मई का दिन मजदूर वर्ग की एकता दिवस के रूप में मनाया जाए। श्रमिकों के लिए आठ घंटे के कार्य-दिवस की मांग किया जाना भी तय किया गया। इसका सचिवालय ब्रुसेल्स में स्थापित किया गया। 1 मई, अंतर्राष्ट्रीय मजदूर दिवस के रूप में सारे संसार में मनाया जाता है।

इस सम्मेलन की सबसे बड़ी उपलब्धि थी— सैन्यवाद एवं युद्ध के विरुद्ध आन्दोलन तथा सभी राष्ट्रों की बुनियादी समानता तथा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के उनके अधिकार पर जोर। परन्तु जब प्रथम विश्वयुद्ध आरंभ हुआ, तब इसके सदस्यों को भी मजबूरन युद्ध में शामिल होना पड़ा। यह युद्ध की परीक्षा में सफल न हो सका, इसीलिए इसका अंत हो गया।

भारत में समाजवाद

लाला लाजपतराय पहले व्यक्ति थे जिन्होंने समाजवाद और बालशैविज्म के विषय में लिखा था। 1920 में उन्होंने पहली भारतीय मजदूर संघसभा की अध्यक्षता की थी। 19वीं सदी के पहले 20 वर्षों में एम0एन0राय और वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय ही ऐसे दो व्यक्ति थे जिन्होंने साम्यवाद में गहरी रुचि ली थी। 1926 में मोतीलाल नेहरू और जवाहर लाल नेहरू रूस गये। समाजवाद के इतिहास में मई 1934 में कांग्रेस के समाजवादी दल की स्थापना एक महत्वपूर्ण घटना थी। 1931 में विहार और 1934 में बम्बई में समाजवादी दलों की स्थापना हुई। सुभाषचन्द्र बोस ने यह कहा कि कांग्रेस न केवल साम्राज्यवाद विरोधी थी अपितु ये अपने राष्ट्रीय जीवन का निर्माण एक समाजवादी आधार पर चाहते थे। इसके लिये उन्हें दो और युद्ध करने थे, एक ओर विदेशी साम्राज्यवादियों और उनके भारतीय मित्रों से और दूसरे राष्ट्रवादियों से जो साम्राज्यवाद के साथ समझौता करने को उद्युत थे अर्थात् वे पूर्ण स्वराज्य तथा समाजवाद लाने के पक्ष में थे। उन्हें उच्च वर्गीय लोगों के लिए नहीं अपितु जन साधारण के लिए स्वराज्य चाहिए था।

जुलाई 1931 में जय प्रकाश नारायण, फूलन प्रसाद वर्मा तथा अन्य लोगों ने विहार समाजवादी दल की नींव रखी। 1934 में अखिल भारतीय समाजवादी दल की स्थापना हुई। कांग्रेसी समाजवादी दल कांग्रेस का एक प्रतिद्वंद्वी राजनैतिक संगठन नहीं था अपितु इसका गठन “कांग्रेस के भीतर कार्य करने उसे सुदृढ़ बनाने और इसकी नीतियों को आकार देने के लिए किया गया था।” साम्यवादी इनको ‘समाजवादी फासिस्ट’ अथवा ‘झूठे समाजवादी’ मानते थे।

कांग्रेसी समाजवादी साम्यवादियों को ‘रूस के उपग्रह’ की संज्ञा देते थे। कांग्रेस समाजवादी दल हमेशा से चाहते थे कि देश के सभी वामपंथी दल एक हो जाए। उन्होंने 1936 में साम्यवादियों के लिए अपने दल के द्वार खोल दिये। साम्यवादियों के कार्यों से समाजवादी संतुष्ट नहीं थे। इसीलिए 1940 में साम्यवादियों को दल से बाहर निकाल दिया गया।

श्री पी0एल0 लखन पाल ने 1946 में लिखा था कि कांग्रेस समाजवादी दल ने वास्तव में कांग्रेस के अन्दर और बाहर दोनों क्षेत्रों में सहायनीय कार्य किया। 1948 में नासिक सभा में समाजवादियों ने कांग्रेस से अलग होने

का निर्णय लिया। समाजवादियों ने एक नई संस्था भारत का समाजवादी दल बनाई।

1952 के आम चुनावों के बाद समाजवादी दल और जे0वी0 कृपलानी की किसान मजदूर प्रजा पार्टी एक हो गये। 1977 में समाजवादी दल जनता पार्टी में मिल गया। 1979 में जनता पार्टी के पतन के बाद उनके कुछ सदस्य लोकदल में मिल गये।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. माथुर, जैन : आधुनिक विश्व का इतिहास (1500 से 2000 तक)
2. महाजन, विद्याधर : आधुनिक भारत का इतिहास
3. ग्रोवर, बी0एल0 यशपाल : आधुनिक भारत का इतिहास
4. वर्मा, दीनानाथ, सिंह, शिवकुमार : विश्व इतिहास का सर्वेक्षण
5. Gnose, Sankar : Socialism and Communism in India.
6. Lakhanpal, P.L. : History of the Congress Socialist Party.
7. Weiner, Myron : Political Parties in India.



संचार प्रौद्योगिकी और हिन्दी

डॉ० सियाराम
वरिष्ठ प्रवक्ता—हिन्दी,
तिलक महाविद्यालय, औरैया

वर्तमान सदी में दूरदर्शन, केबिल नेटवर्क, कम्प्यूटर, इंटरनेट, ई-मेल, मोबाइल जैसी अनेक त्वरित सूचना सम्प्रेषण एवं प्रसारण सुविधाएँ उपलब्ध हैं। कम्प्यूटर ने आज न केवल वर्तमान मानव की दशा एवं दिशा ही बदल दी है अपितु यह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ऐसे प्रविष्ट हो गया है कि जिससे हमारा सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक ताना-बाना ही बदल गया है। हिन्दी में बाजार की उपलब्धता और संख्याबल के कारण विश्व की अनेक दिग्गज आई. टी. कम्पनियों ने अपने उत्पादों को हिन्दी में उपलब्ध कराना तीव्रता से आरम्भ कर दिया है। यही कारण है कि माइक्रोसॉफ्ट के डेस्कटॉप और लैपटॉप जैसे उत्पाद हिन्दी में उपलब्ध हैं। आई. बी. एम., सन मैक्रो सिस्टम, ओरकल आदि भी इस क्षेत्र में तीव्रता से बढ़ती जा रही हैं। आज चाहे गूगल हो या कोई और सभी हिन्दी में अपना अधिकाधिक विस्तार करना चाहती हैं और इंटरनेट एक्सप्लोरर, नेट स्केप, मोजिला, क्रोम आदि इंटरनेट ब्राउजर भी खुलकर हिन्दी का प्रयोग कर रहे हैं। वैश्वीकरण के इस युग में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के प्रयोग से सूचनाओं के नैसर्गिक प्रसारण में सुविधा हुई है। आज हिन्दी में सूचनाओं को वैश्विक स्तर पर त्वरित एवं अधिकाधिक मात्रा में पहुँचाने की स्पर्धा ने जहाँ उपभोक्ताओं को सुविधा प्रदान की है वहीं इससे हिन्दी भाषा के स्वरूप निर्धारण एवं विस्तार में भी सहायता मिली है।

सूचना वर्तमान युग का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है। यदि आज बुद्धिजीवी वर्ग को समय पर वांछित सूचना न मिले तो वह अपने को बहुत असहाय समझता है। इसीलिए बीसवीं सदी के सूचना-स्रोतों रेडियो, टेलेक्स, तार आदि का इक्कीसवीं सदी में अत्यधिक उपयोग नहीं रह गया है क्योंकि वर्तमान सदी में दूरदर्शन, केबिल नेटवर्क, कम्प्यूटर, इंटरनेट, ई-मेल, मोबाइल जैसी अनेक त्वरित सूचना सम्प्रेषण एवं प्रसारण सुविधाएँ उपलब्ध हैं। इक्कीसवीं सदी में कम्प्यूटर और मोबाइल ने समस्त विश्व को अपने वश में कर लिया है। आज व्यक्ति घर बैठे सूचना प्रौद्योगिकी के प्रयोग से शिक्षा, शोध, रक्षा विज्ञान, कृषि, व्यवसाय, अंतरिक्ष अथवा ऐसे ही अन्य क्षेत्रों की समस्त जानकारी सहज ही प्राप्त कर लेता है और अपनी सामयिक समस्याओं से सम्बन्धित विचारों अथवा किसी घटना से सम्बन्धित प्रतिक्रिया को मिनटों में ही हजारों-लाखों लोगों तक सम्प्रेषित कर देता है। यह सब सम्भव और सुलभ हुआ है मात्र-सूचना प्रौद्योगिकी से। इसलिए सूचना प्रौद्योगिकी के महत्व एवं विस्तार की चर्चा करते हुए श्री सतीश चन्द्र सक्सेना ने कहा है— “वर्तमान युग सूचना प्रौद्योगिकी का युग है। पिछले दो दशकों में सूचना प्रौद्योगिकी ने हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जबरदस्त क्रान्ति ला दी है। इस क्रान्ति में अन्तरिक्ष अनुसंधान विशेषकर उपग्रह विमोचन, उपग्रह सम्प्रेषण और उपग्रह स्पेक्ट्रम आदि की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका है। वास्तव में उपग्रह सम्प्रेषण और सूचना प्रौद्योगिकी परस्पर पूरक हैं।”¹ सूचना संसाधनों एवं तकनीकों की आवश्यकता को समझते हुए अन्यत्र भी कहा गया है— “पिछली सदी के इंसान को यदि जिन्दा करके कम्प्यूटर, मोबाइल, लैपटॉप, आई-पैड जैसी न जाने कितनी ही चमत्कारी वस्तुएँ दिखा दी जाएँ तो बेचारा गश खाकर गिर पड़े। आज की पीढ़ी इन चीजों के बिना जीने की कल्पना भी नहीं कर सकती। ज्ञान के क्षेत्र में इंसानों की सबसे बड़ी उपलब्धि इंटरनेट की खोज है। इस युग में जो इंटरनेट उपयोग नहीं करता तो वह व्यावहारिक रूप से निरक्षर माना जाता है।”²

वैश्विक सापेक्षता की दृष्टि से भारत जैसे देश में भले ही इंटरनेट प्रायोक्ता आनुपातिक रूप में कम हैं परन्तु

संख्यात्मक दृष्टि से यहाँ अमेरिका, चीन और जापान के बाद सर्वाधिक लोगों द्वारा इंटरनेट का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार इंटरनेट प्रयोक्ताओं की दृष्टि से भारत विश्व का चौथा देश है। यही नहीं जिस गति से भारत में निरन्तर इंटरनेट का प्रयोग बढ़ता जा रहा है उससे यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि वह दिन शीघ्र आयेगा जब भारत में सर्वाधिक इंटरनेट का प्रयोग करने वाले होंगे। इंटरनेट का प्रयोग आज भारतीय जीवन के विविध क्षेत्रों में क्षिप्रता से बढ़ता जा रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से आज ई-कामर्स, ई-प्रशासन, ई-पंजीकरण, ई-मेल, ई-बैंकिंग, ई-पत्रकारिता, ई-सेवा, ई-मैरिज, ई-चौपाल, डिजिटल लाइब्ररी, टेलीमेडिसिन, ई-बजट, स्मार्ट-हाउसेज, स्मार्ट-सिटी, ऑन लाइन चुनाव परिणाम, ऑन लाइन परीक्षा एवं उसके परिणाम जैसी अनेक गतिविधियों को सफलतापूर्वक अंजाम दिया जाने लगा है। सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार की चर्चा करते हुए कहा गया है- “आज कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, इंजीनियरिंग, चिकित्सा, प्रशासन, सुरक्षा, यातायात, शहरी और ग्रामीण विकास इत्यादि क्षेत्र के विकास और उन्नयन में सूचना प्रौद्योगिकी की अहम भूमिका है। सूचना प्रौद्योगिकी और समाज एक सिक्के के दो पहलू बन चुके हैं जिसे अलग-अलग करके नहीं देखा जा सकता।”³

‘भाषा’ सूचना प्रौद्योगिकी का महत्वपूर्ण घटक है। आज संसार की वही भाषा अधिक प्रगति करेगी जो कम्प्यूटर और इंटरनेट के अत्यधिक अनुकूल होगी क्योंकि बिना कम्प्यूटर अनुकूलन के किसी भी भाषा अथवा लिपि के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लग जायेगा। ऐसी स्थिति में हिन्दी की स्थिति जानने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि विश्व की पारम्परिक भाषाओं में कम्प्यूटर की भाषा कौन सी है? आमतौर पर यह धारणा प्रचलित है कि कम्प्यूटर का ज्ञान (शिक्षण-प्रशिक्षण) अंग्रेजी के बिना असम्भव है, तो क्या अंग्रेजी कम्प्यूटर की भाषा है? इसका सीधा उत्तर नकारात्मक है। वास्तव में कम्प्यूटर की भाषा पारम्परिक भाषाओं से इतर अंकों की भाषा है और अंकों में भी मात्र 0 (शून्य) और 1 (एक) का ही इसमें प्रयोग किया जाता है। इसका अभिप्राय है कि कम्प्यूटर की अपनी भाषा न अंग्रेजी है और न कोई अन्य। किसी भी तकनीकी और मशीन का उपयोग उपभोक्ता समाज के लिए होता है और इसकी सफलता निर्भर करती है इनके तदनुरूप ढालने की प्रक्रिया पर। इस तथ्य व सत्य के मद्देनजर यदि भारतीय सन्दर्भ में कहें तो आज के वैश्विक परिदृश्य में जब भारत जनसंख्या की दृष्टि से विश्व का दूसरा एवं त्वरित गति से विकास करने वाला महत्वपूर्ण देश माना जाता है तो ऐसे में सूचना प्रौद्योगिकी को इनके अनुरूप ढालना ही होगा। यह सूचना प्रौद्योगिकी के विकास और विस्तार के लिए आवश्यक भी है और अपरिहार्य भी क्योंकि हमारे पास न केवल संख्या बल है अपितु इन्हें खरीदने व प्रयोग करने के संसाधन भी हैं। यही कारण है कि अब अनेक बहुराष्ट्रीय साफ्टवेयर कम्पनियाँ अपने नए बाजार की तलाश हेतु भारत की तरफ उन्मुख होती जा रही हैं। स्पष्ट है कि ऐसा उदारतावश नहीं अपितु व्यावसायिक बाध्यता के कारण सम्भव हुआ है। इसी कारण अब हिन्दी को सूचना प्रौद्योगिकी के उपयुक्त बनाने के प्रयासों के साथ सूचना संसाधनों और तकनीकों को हिन्दी भाषियों की सुविधानुसार निर्मित किया जाने लगा है। इस सम्बन्ध में यह भी काबिलेगौर है कि “विश्व भाषाओं में हिन्दी को सर्वोत्तम वैज्ञानिक ध्वनिपरक भाषा स्वीकार किये जाने के पीछे सबसे बड़ा कारण यह है कि हिन्दी एक लचीली भाषा है। इसे भी किसी भाषायी संरचना में ढालकर उसकी के अनुरूप बनाया जा सकता है।”⁴

हिन्दी की प्रकृति और सामर्थ्य को ध्यान में रखकर ही ‘यूनीकोड कोन्सोर्टियम’ ने हिन्दी के लिए यूनीकोड मानक कूट निर्धारित कर दिये हैं। इनका अनुपालन भी सभी कम्प्यूटर प्रचालन प्रणालियों, इण्टरनेट सेवा प्रदाताओं, बेवसाइट होस्टिंग करने वाली संजाल संस्थाओं द्वारा किया जा रहा है। इससे हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि में वैश्विक संचार होने लगा है और हिन्दी में बेवसाइट, ब्लॉग, ई-मेल समूह, ऑन-लाइन चर्चा-परिचर्चा का मार्ग प्रशस्त हुआ है। आज हिन्दी न केवल हिन्दी क्षेत्र तक सीमित है अपितु इसका विस्तार हिन्दीतर भारतीय राज्यों तथा विश्व के अनेक देशों में हो चुका है। इसका सर्वाधिक श्रेय सूचना प्रौद्योगिकी को जाता है। हिन्दी की वैश्विक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए श्री विजय कुमारन सी0 पी0 वी0 अपने शोध पत्र ‘सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हिन्दी’

में लिखते हैं— “सूचना प्रौद्योगिकी में हिन्दी का अनुप्रयोग दक्षिण और उत्तर भारत को ही क्या पूरी दुनिया को भूमण्डलीकृत कर रख सकता है। अतः जहाँ-जहाँ ये तकनीकी सुविधाएँ उपलब्ध हैं, इनके अनुप्रयोग में देर नहीं लगती। हैदराबाद, पुणे, बेंगलूर की विशेष प्रयोगशालाएँ साफ्टवेयर और हार्डवेयर को हिन्दीबद्ध करने में सक्षम हैं। अतः इस क्षेत्र में दक्षिण भारत का योगदान दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है। आकाशवाणी, दूरदर्शन तथा सूचना प्रौद्योगिकी जनता के इतने निकट पहुँचते हैं तो इन तकनीकी तंत्र का ही बोलवाला है। यूरोपीय यूनियनों से अंग्रेजी के वर्चस्व को दिखाने के लिए भारतीय भाषाओं का इस क्षेत्र में प्रवेश पाने की बाधा खड़ी की जाती है तो भारतीय भाषाओं का मूल उत्स हिन्दी के सहारे ही बनता ही जायेगा।”⁵ अनेक विरोधों और संघर्षों के बावजूद हिन्दी में निरन्तर नई-नई तकनीकी सुविधाएँ बढ़ती जा रही हैं। इस वृद्धि में भी हिन्दीक्षेत्र के शोधकर्ता एवं वैज्ञानिकों का योगदान महत्वपूर्ण है। यह गर्व की बात है कि हिन्दी विरोधी के रूप में प्रसिद्ध मद्रास के आई0 आई0 टी0 में सर्वप्रथम बोलकर कम्प्यूटरों में संदेशों के आदान-प्रदान की प्रणाली तथा भारतीय भाषाओं में सिस्टम हार्डवेयर के विकास कार्य चला और जुलाई 2007 में हिन्दी का ‘श्रुतलेखन साफ्टवेयर’ (स्पीच टू टेक्स्ट) सी-डैक द्वारा विमोचित किया गया। इस आविष्कार ने ऐसे हिन्दी जानने वालों को कम्प्यूटर तथा इंटरनेट के दरवाजे खोल दिये हैं जो न टाइपिंग का ज्ञान रखते हैं और न अंग्रेजी का ही।

आज सम्पूर्ण विश्व में इंटरनेट का अधिकाधिक प्रयोग करने की प्रतिस्पर्धा चल रही है। यही कारण है हिन्दी में बाजार की उपलब्धता और संख्याबल के कारण विश्व की अनेक दिग्गज आई. टी. कम्पनियों ने अपने उत्पादों को हिन्दी में उपलब्ध कराना तीव्रता से आरम्भ कर दिया है। यही कारण है कि माइक्रोसॉफ्ट के डेस्कटॉप और लैपटॉप जैसे उत्पाद हिन्दी में उपलब्ध हैं। आई. बी. एम., सन मैक्रो सिस्टम, ओरकल आदि भी इस क्षेत्र में तीव्रता से बढ़ती जा रही हैं। आज चाहे गूगल हो या कोई और सभी हिन्दी में अपना अधिकाधिक विस्तार करना चाहती हैं और इंटरनेट एक्सप्लोरर, नेट स्केप, मोजिला, क्रोम आदि इंटरनेट ब्राउजर भी खुलकर हिन्दी का प्रयोग कर रहे हैं। हिन्दी उपभोक्ताओं की सुविधा के लिए कम्प्यूटर डाटाबेस तक हिन्दी में उपलब्ध हो गये हैं। गूगल ने 2008 में ‘ट्रांसलेटर’ की सुविधा प्रदान की है, जिसके द्वारा विश्व की प्रमुख भाषाओं से हिन्दी अनुवाद तथा हिन्दी का अन्य भाषाओं में अनुवाद करना सरल हो गया है। सन् 2011 में अरविन्द कुमार का ‘हिन्दी अंग्रेजी-हिन्दी’ समानान्तर कोश लैक्सिकन ऑन लाइन जारी किया गया। 2003 में आरम्भ हिन्दी विकीपीडिया पर आज लाखों लेख हिन्दी में उपलब्ध हैं। भारत सरकार में मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन कार्य करने वाले ‘वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग’ ने 2011 में अपनी अनेक शब्दावलियाँ ऑन लाइन कीं और इसी वर्ष जून महीने में आई ओ एस -5 में हिन्दी की-बोर्ड बाजार में लाया गया। इन्हीं विविध प्रयासों का परिणाम है कि सम्प्रति हिन्दी में अनेक पुस्तकें, पत्रिकाएँ, पत्रों आदि के साथ रोचक साहित्य, ज्ञान-विज्ञान की सूचनाएँ इंटरनेट पर सहज-सुलभ हैं। अनेक हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के वेब एडिशन इंटरनेट पर भी उपलब्ध हैं। आज कोई भी उपभोक्ता अपने कम्प्यूटर पर ‘माइक्रोसॉफ्ट इंडिक आई. एम. ई.’ इंस्टॉल करके आउटलुक, जीमेल, रेडिफमेल या याहू से हिन्दी में ई-मेल भेज सकता है। वह इसकी मदद से वर्ड, एक्सेल, पॉवर प्वाइंट, नोट पैड सरीखे किसी भी सॉफ्टवेयर में हिन्दी में लिख सकता है और गूगल, याहू इत्यादि सर्च इंजन पर हिन्दी में सामग्री खोज सकता है अथवा किसी भी ब्लॉगिंग सेवा पर हिन्दी में अपने ‘ब्लॉग’ लिख सकता है।

हिन्दी भाषा अपने आरम्भ से ही सर्वसमावेशी प्रवृत्ति-प्रधान रही है। यही कारण है कि जब कम्प्यूटर और इंटरनेट का प्रयोग बहुतायत से होने लगा तो इनमें हिन्दी भाषा के प्रयोग की चुनौती उपस्थित हो गयी, जिसे भारतीय तकनीकी क्षेत्र के अधिकारियों एवं शोधकर्ताओं ने दक्षता से निभाया। जिसका परिणाम है कि आज भारत में विभिन्न भाषाओं के माध्यम से शब्द संसाधन-कार्य सम्पन्न करने हेतु अनेक बहुभाषी शब्द संसाधन पैकेज बाजार में उपलब्ध हैं। इनमें अक्षर, शब्दमाला, शब्दरत्न, आलेख, भारती, बाईस्क्रिप्ट, मल्टीवर्ड आदि मुख्य हैं किन्तु उपयोगी

होने के साथ-साथ इनकी अनेक सीमाएँ भी हैं, जैसे— विभिन्न भाषाओं का संश्लेषण, विश्लेषण और संसाधन भारतीय लिपियों के द्वारा व्यापकता से न हो पाना। इस सीमा को देखते हुए कालान्तर में दिल्ली की सॉफ्टवेक कम्पनी ने 'डी बेस वक्ष प्लस' के मानक पैकेज का द्विभाषी संस्करण 'देवबेस' किया। इसमें यद्यपि बेसिक, कोबोल आदि कम्प्यूटर की उच्चस्तरीय प्रोग्रामिंग भाषाओं के अनुभाषक भी हैं तथापि अपनी सीमाओं के कारण इनका प्रयोग भी भाषा संसाधन के लिए व्यापक रूप में नहीं किया जा सका है।

निजी कम्पनियों के प्रयासों के अतिरिक्त हिन्दी को कम्प्यूटर और इंटरनेट की भाषा बनाने अथवा हिन्दी की प्रवृत्ति और प्रकृति के अनुसार कम्प्यूटर सॉफ्टवेयरों के निर्माण में भारत सरकार के प्रयास भी सराहनीय हैं। भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा गठित 'राज भाषा आयोग' ने सरकारी कार्यालयों तथा कार्मिकों में हिन्दी को सुविधाजनक और लोकप्रिय बनाने हेतु 'शाब्दिका' नामक सॉफ्टवेयर का निर्माण करवाया है, जिसे निर्मित किया है—संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय के प्रगत संगणन विकास केन्द्र, नोयडा ने। इसे आवश्यकतानुसार कोई भी व्यक्ति अपने कम्प्यूटर पर इंस्टॉल करके प्रशासनिक शब्दों, वाक्यांशों, पदनाम एवं शासकीय विभागों, बैंकिंग शब्दावली, संक्षिप्तियों (Appreviations), शासकीय अधिनियमों, ग्राफिक्स/मल्टीमीडिया सिस्टम, इनपुट एवं आउटपुट यंत्रों, इंटरनेट, गणितीय क्रियाएँ, नेटवर्किंग संचार यंत्र, ऑपरेटिंग सिस्टम, प्रोग्रामिंग हेतु प्रयुक्त शब्दों का सटीक अर्थ ज्ञात कर सकते हैं।¹⁶ निश्चय ही यह 'शाब्दिका' के प्रयोग से सरकारी कर्मियों की जहाँ कार्यस्थल पर ही हिन्दी शब्दार्थ सम्बन्धी समस्याओं का निराकरण होगा वहीं शासकीय कार्यालयों में हिन्दी प्रयोग को बढ़ावा मिलेगा। भारत सरकार के संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय के अधीनस्थ सूचना प्रौद्योगिकी विभाग ने हिन्दी भाषा के सही फॉण्टस्, कुंजीपटल चालक, बहु-फॉण्टीय कुंजीपटल इंजन, यूनीकोड के अनुपालक बहुभाषी फॉण्टस्, प्रजनिक फॉण्ट और हिन्दी संग्रहीत कोड परिवर्तक, फायर फॉक्स हिन्दी ब्राउजर, हिन्दी में जी. ए. ए. एम. बहुविद् फॉण्ट मैनेजर, हिन्दी में ईमेल ग्राहक कोलम्बा, वर्तनी जाँचक, हिन्दी भाषा लिप्यन्तरण साधन, हिन्दी भाषा पाठ-भाषण तंत्र और इंटरनेट के द्वारा अंग्रेजी-हिन्दी अनुवाद में पोषक तंत्र आदि अनुवर्ती सामग्रियाँ मुफ्त में प्रयोक्ताओं तक पहुँचाने की योजना बनायी है। इसी मंत्रालय में हिन्दी साफ्टवेयर उपकरण नामक एक सी. डी. कुंजी के साथ प्रस्तुत की है। इस सी. डी. में विंडोज के लिए सभी प्रकार के परिवर्तक, चित्रांकन हेतु हिन्दी ओ. सी. आर., सरल टाइपिंग टीचर, सम्पूर्ण शब्द संसाधक, हिन्दी शब्द कोश, वर्तनी जाँचक, भाषा लिप्यन्तरण यंत्र, हिन्दी की टी.टी. एस. प्रणाली आदि का समावेश है।

इसी प्रकार मुंबई के भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान के भारतीय भाषा प्रौद्योगिकी विभाग ने प्रिंस्टन विश्वविद्यालय के 'वर्डनेट' के आधार पर हिन्दी शब्द तंत्र का विकास किया है। यह शब्द तंत्र अन्य मशीनी शब्दकोशों से अलग है क्योंकि इसमें न सिर्फ शब्दों के पारिभाषिक अर्थ को ही जाना जा सकता है बल्कि यह हमें शब्द के विभिन्न उपयोगों की जानकारी भी प्रदान करता है। 'यूनिवर्सल वर्ड-लेक्सिकन' नामक उक्त शब्दकोश में शब्द का अर्थ ढूँढने के उपरान्त शब्द से सम्बन्धित मुहावरे भी दिखाई पड़ते हैं। इसी तरह वहाँ हिन्दी टंकण के लिए आसान की-बोर्ड की व्यवस्था भी है। भारत सरकार द्वारा सूचना प्रौद्योगिकी को सर्व सुलभ एवं उपयोगी बनाने हेतु किये जा रहे विभिन्न प्रयासों के सकारात्मक परिणाम भी सामने आने लगे हैं, मसलन कम्प्यूटरीकृत रेलवे आरक्षण प्रणाली के कार्यान्वयन से रेलवे विभाग की आय में निरन्तर वृद्धि हो रही है। साथ ही साथ यात्रियों के समय की बचत और कठिनाइयाँ भी कम हुई हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वैश्वीकरण के इस युग में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के प्रयोग से सूचनाओं के नैसर्गिक प्रसारण में सुविधा हुई है। हिन्दी में सूचनाओं को वैश्विक स्तर पर त्वरित एवं अधिकाधिक मात्रा में पहुँचाने की स्पर्धा ने जहाँ उपभोक्ताओं को सुविधा प्रदान की है वहीं इससे हिन्दी भाषा के स्वरूप निर्धारण एवं विस्तार में भी सहायता मिली है। आज अनेक बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ व्यावसायिक, बाध्यता और हिन्दी भाषी बाजार

की उपलब्धता के कारण निरन्तर अपनी कम्पनियों में हिन्दी भाषी अथवा हिन्दी-प्रशिक्षित कर्मियों एवं अधिकारियों की नियुक्ति करती जा रही हैं और प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित कम्पनियाँ हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में निरन्तर अपने उपकरणों का निर्माण करती जा रही हैं। इस प्रक्रिया से जहाँ कम्पनियों को उपभोक्ता बाजार उपलब्ध हुआ है वही केवल हिन्दी भाषा की जानकारी रखने वालों के लिए भी कम्प्यूटर, इंटरनेट अथवा मोबाइल आदि विविध तकनीकें सरल एवं सुलभ हुई हैं। इससे हिन्दी के वैश्विक स्वरूप निर्माण तथा संयुक्त राष्ट्र भाषा का दर्जा प्राप्त करने में अवश्य ही सहायता प्राप्त होगी। सूचना वर्तमान युग का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है। इसीलिए बीसवीं सदी के सूचना-स्रोत इक्कीसवीं सदी में अत्यधिक उपयोगी नहीं रह गये हैं क्योंकि वर्तमान सदी में दूरदर्शन, केबिल नेटवर्क, कम्प्यूटर, इंटरनेट, ई-मेल, मोबाइल जैसी अनेक त्वरित सूचना सम्प्रेषण एवं प्रसारण सुविधाएँ उपलब्ध हैं। आज व्यक्ति घर बैठे सूचना प्रौद्योगिकी के प्रयोग से शिक्षा, शोध, रक्षा विज्ञान, कृषि, व्यवसाय, अंतरिक्ष अथवा ऐसे ही अन्य क्षेत्रों की समस्त जानकारी सहज ही प्राप्त कर लेता है और अपनी सामयिक समस्याओं से सम्बन्धित विचारों अथवा किसी घटना से सम्बन्धित प्रतिक्रिया को मिनटों में ही हजारों-लाखों लोगों तक सम्प्रेषित कर देता है। 'भाषा' सूचना प्रौद्योगिकी का महत्वपूर्ण घटक है। आज संसार की वही भाषा अधिक प्रगति करेगी जो कम्प्यूटर और इंटरनेट के अत्यधिक अनुकूल होगी क्योंकि बिना कम्प्यूटर अनुकूलन के किसी भी भाषा अथवा लिपि के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लग जायेगा। हिन्दी भाषा अपने आरम्भ से ही सर्वसमावेशी प्रवृत्ति-प्रधान रही है। यही कारण है कि जब कम्प्यूटर और इंटरनेट का प्रयोग बहुतायत से होने लगा तो इनमें हिन्दी भाषा के प्रयोग की चुनौती उपस्थित हो गयी, जिसे भारतीय तकनीकी क्षेत्र के अधिकारियों एवं शोधकर्त्ताओं ने दक्षता से निभाया। जिसका परिणाम है कि आज भारत में विभिन्न भाषाओं के माध्यम से शब्द संसाधन-कार्य सम्पन्न करने हेतु अनेक बहुभाषी शब्द संसाधन पैकेज बाजार में उपलब्ध हैं। हिन्दी में सूचनाओं को वैश्विक स्तर पर त्वरित एवं अधिकाधिक मात्रा में पहुँचाने की स्पर्धा ने जहाँ उपभोक्ताओं को सुविधा प्रदान की है वहीं इससे हिन्दी भाषा के स्वरूप निर्धारण एवं विस्तार में भी सहायता मिली है। आज अनेक बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ व्यावसायिक, बाध्यता और हिन्दी भाषी बाजार की उपलब्धता के कारण निरन्तर अपनी कम्पनियों में हिन्दी भाषी अथवा हिन्दी-प्रशिक्षित कर्मियों एवं अधिकारियों की नियुक्ति करती जा रही हैं और प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित कम्पनियाँ हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में निरन्तर अपने उपकरणों का निर्माण करती जा रही हैं। इस प्रक्रिया से जहाँ कम्पनियों को उपभोक्ता बाजार उपलब्ध हुआ है वही केवल हिन्दी भाषा की जानकारी रखने वालों के लिए भी कम्प्यूटर, इंटरनेट अथवा मोबाइल आदि विविध तकनीकें सरल एवं सुलभ हुई हैं।

सन्दर्भ सूची

1. योजना, नवंबर- 2007, पृ0-37
2. <http://hi.wikipedia.org/s/l25>
3. कुरुक्षेत्र, अप्रैल-2009, पृ0-32
4. <http://hariraama.blogspot.in/2007/02>
5. सूचना विज्ञान, पृ0-192
6. सूचना विज्ञान, पृ0-194



वैश्विक परिदृश्य में हिन्दी साहित्य और हिन्दी की स्थिति

डॉ० रजनी सिंह

प्रवक्ता-हिन्दी

मर्यादा पुरुषोत्तम पी०जी० कालेज, भुइसुड़ी, रतनपुरा-मऊ

वर्तमान परिवेश भूमण्डलीकरण से प्रभावित हो रहा है। भूमण्डलीकरण का अर्थ एक ऐसी व्यवस्था से है जिसके द्वारा सारा भूमण्डल या पूरा विश्व एकीकृत हो गया है। सम्पूर्ण विश्व के लिए 'ग्लोबल विलेज' शब्द का प्रयोग गोर्वाचोव ने 1985 में किया था। बीसवीं सदी का अन्तिम दशक वैश्विकरण का रहा है जो एक बेहद महत्वपूर्ण घटना है, जिसने सब कुछ बदल कर रख दिया। एक तरफ यह भूमण्डलीकरण अपने सार्वभौम साँचे में ढालता है उसके प्रति उसके विरोधियों की प्रतिक्रिया में एक विशेष प्रकार के परिवर्तनों को जन्म देता है जो प्रारम्भ में भूमण्डलीकरण के खिलाफ लगता है पर अन्तिम वर्तमान परिवेश भूमण्डलीकरण से प्रभावित हो रहा है। एक तरफ यह भूमण्डलीकरण अपने सार्वभौम साँचे में ढालता है उसके प्रति उसके विरोधियों की प्रतिक्रिया में एक विशेष प्रकार के परिवर्तनों को जन्म देता है जो प्रारम्भ में भूमण्डलीकरण के खिलाफ लगता है पर अन्तिम विश्लेषण में उसकी संरचनाओं का सहयोग करते पाया जाता है।

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति में से एक है। भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता यह है कि आधुनिक युग में भी वह अपने मूल रूप से जुड़ी हुई है। यही कारण है कि जिसके कारण से भारतीय संस्कृति अत्यंत समृद्ध मानी जाती है। वर्तमान में भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक एवं भौतिकता के द्वंद्व से गुजर रही है। पाश्चात्य अंधानुकरण ने आज मनुष्य को अपने जड़ से अलग कर दिया है। वर्तमान समय में मानव जीवन में जो सांस्कृतिक व बौद्धिक विचारधारा प्रवाहित हो रही है उस पर पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का रंग स्पष्टतया देखा जा सकता है।

भूमण्डलीकरण पूँजीवादी व्यवस्था से समन्वित और आधुनिक प्रौद्योगिकी के अंतः सूत्रों का तंत्र है। भूमण्डलीकरण वित्त और पूँजी के निवेश, उत्पादन और बाजार द्वारा राष्ट्रीय सीमा में ही वर्चस्व नहीं है बल्कि राष्ट्रीय सीमा से परे भूमण्डलीय आधार पर निरंतर अपना प्रचार करना चाहता है। इसका निर्णय क्षेत्र पूरी दुनिया है। आज पूँजी, सूचना, साहित्य और संस्कृति इत्यादि का सहजता से राष्ट्रीय सीमाओं के आर-पार आना-जाना सम्भव होने से जो नये नेटवर्क निर्मित हुए हैं उससे अंतराष्ट्रीय बढ़ावा मिला है। वैश्विककरण के इस युग में नई पीढ़ी के सामने जहाँ अनेक अवसर हैं वहीं अनेक चुनौतियाँ भी हैं। हमें बदलती हुई इन परिस्थितियों एवं अपनी प्राचीन संस्कृति के बीच अपने को समन्वित करके आगे बढ़ना होगा तभी हम अपने लक्ष्य को निर्धारित कर पायेंगे। वैश्वीकरण का यह प्रभाव केवल रहन-सहन, जीवन-शैली पर ही नहीं वरन् वैचारिक परिवर्तन में भी देखा जा सकता है। इस प्रभाव के कारण जहाँ मनुष्य एक ओर वैश्विक समाज बनाने की ओर अग्रसर हो रहा है, वहीं दूसरी ओर अपनी परंपराओं से भी कटता जा रहा है।

पिछले दस-पन्द्रह वर्षों में भारतीय समाज में इतनी तीव्रता से परिवर्तन हो रहे हैं कि अयथार्थ एवं यथार्थ के बीच झांकते, अतिरंजनापूर्ण यथार्थ को पहचानने में हम कभी-कभी कर जाते हैं वैश्विकरण एक विदेशी मंच है जिसने एक ओर नई-नई सुख-सुविधायें दी हैं तो वहीं दूसरी ओर उससे कहीं अधिक जोखिम और खतरें भी दिए हैं।

आज हम वैश्वीकरण के युग में जी रहे हैं। पूरा भूमण्डल एक इकाई बनता जा रहा है देश और काल की

सीमायें मिट गई हैं जिसके कारण आज हिन्दी समस्त विश्व में फैलती जा रही है। भारतीय जनमानस के सिद्धान्त 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना हर तरफ व्याप्त हो रही है तो दूसरी तरफ वैश्वीकरण के इस मौजूदा दौर में खुदगर्जी और निर्ममता की धूम है आज भूमण्डलीय औद्योगिक और आधुनिक तकनीक व व्यवस्था ने मानव मन के अन्दर जिस प्रकार सुख-सुविधाओं को प्राप्त करने की भूख एवं महत्वाकांक्षाओं को जन्म दिया है उससे परम्परा के जीवनदायी नैतिक मूल्य एवं आदर्श सब नष्ट होने लगे हैं। मनुष्य ने सामाजिकता, मानवीयता और सौहार्द जैसे भावों का क्षय हो रहा है।

आज जीवन के हर क्षेत्र में यंत्रों का प्रयोग इस सीमा तक बढ़ गया है की मनुष्य स्वयं एक यंत्र बनता जा रहा है इन सभी परिवर्तनों में मनुष्य को बदलने के साथ-साथ गुण-धर्मों को भी बदल कर प्रभावित किया है जिसके साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन हुए हैं। साहित्य जो संवेदना को उत्पन्न करने वाला, अनुभूति का एहसास है, जीवन की सार्थकता है उसका स्वरूप पूर्णतया बदल चुका है वैश्वीकरण के सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परिवेश का निर्णायक तत्व संचार माध्यम बन गया है। यह संस्कृति, साहित्य को किस तरह प्रभावित करता है ? यह प्रश्न सबके मन में कौंध रहा है। सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक बदलाव के केन्द्र में हमेशा मीडिया माध्यम होता है। साहित्य को चुनौती आज प्रिन्ट मीडिया के साथ इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने दी है। वैश्वीकरण ने साहित्य का स्वरूप ही बदल दिया है। आज संचार माध्यम टी0वी0, सिनेमा आदि ने साहित्य को दृश्य बना दिया है साहित्य को पढ़ने के लिए शब्द ज्ञान आवश्यक था। आज उसकी भी आवश्यकता नहीं रह गई है राजनीति और व्यवसाय वृत्ति ने साथ मिलकर हिन्दी का चेहरा ही बदल दिया है। सर्जना ने सौन्दर्य के नये-नये मापडण्ड बना लिये हैं। कभी-कभी तो लगता है कि साहित्य विज्ञापन का ही एक हिस्सा है। आज वैश्विकता और बाजारवाद में मानव निहित संस्कृतियों, आचरणों एवं भाषा सभी पर हमला कर दिया है। मानव हृदय में जहाँ प्रेम, त्याग, सेवा, सहानुभूति आदि श्रेष्ठ विचार होते थे वहाँ आज असंवेदनशीलता, अमानवीयता, अपराध प्रीकरण, अवसरवादिता और आतंक प्रवृत्तियां पनप रही हैं। आज वैश्वीकरण की चौतरफा अन्धी मार का प्रभाव है कि मनुष्य विवेकशून्य होकर आज बाजार की माया के आगे चार्वाक को ही स्वीकार कर रहा है। इसी वैश्विक परिदृश्य के कारण आज हिन्दी साहित्य भी उससे अछूता नहीं है।

वैश्वीकरण तथा बाजारवाद ने समाज तथा साहित्य पर जो प्रभाव डाला है उसमें सबसे बड़ा परिवर्तन संयुक्त परिवार का टूटना है, जिसे मुक्तिबोध ने 'एक साहित्यिक की डायरी' में आज से वर्षों पहले ही सबसे बड़ी घटना माना था।

हिन्दी साहित्य में अलगाववादी प्रवृत्ति, घनघोर प्रवृत्ति आदि बातें बार-बार परिलक्षित हो रही हैं। रातों-रात धनी बनने की चाह, सेक्स, अपराध के हथियार के रूप में प्रयोग करने की होड़ स्त्री नजरिया और कोई भी तत्व साहित्य की नजर से नहीं बच सकता सफल व्यक्ति के सारे गुनाह माफ कर दिये जा रहे हैं। महुआ माजी की कथा 'रोल मॉडल' की नायिका सफल होते ही श्रेष्ठ हो जाती है। जो कल तक उसके लिये कानाफूसी करते थे, जो उसे अपनी बच्चियों के लिये संकट मानते थे वे ही उससे मदद की गुजारिश करते हैं। उपभोक्तावाद केवल आर्थिक क्षेत्र में वर्चस्व नहीं बढ़ाता, यह व्यक्ति की सोच में भी प्रवेश करता जा रहा है।

एक दौड़ में दौड़ते रहना मनुष्य की नियति बनती जा रही है। ज्ञानरंजन की कहानी 'पिता' के पिता बढ़ते बाजारवाद से निष्पृह एक ऐसे व्यक्ति की कथा है जो बढ़ते बाजारवाद से बिना शोर किये लड़ रहा है पुत्र को शिकायत है कि 'पता नहीं क्यों पिता जीवन की अनिवार्य सुविधाओं से भी चिढ़ते हैं।' अब यह अनिवार्य सुविधायें हैं क्या, इस पर विचार जरूरी है बाजार जो एक सबसे आवश्यक वस्तु दे रहा है, चीजों के साथ मुफ्त, वह अतृप्ति की भावना।

आज वैश्विक परिदृश्य में महिलायें सभी सीमा लांघकर वैश्विक होती जा रहीं हैं, उसकी भूमिका बदल रही

है तो देशी मर्दों का विरोध प्रबल होता जा रहा है। इसके बावजूद वह अपने आपको बदल रही है। वैश्वीकरण के विचारकों मानना है कि 'वैश्वीकरण ने औरत को पावर वूमन बना दिया है'। राकेश मिश्र की कहानी 'तुमने जहाँ लिखा प्यार' में प्रेम के नाम पर यौन स्वतंत्रता तथा बुद्धि के नाम पर बौद्धिकता का ढोंग रचने वालों का उपहास है।

काशीनाथ सिंह का उपन्यास 'रेहन पर रघू' वर्तमान समय एवं समाज का एक ऐसा जीवंत दस्तावेज है जिसमें पूरा परिवेश अपनी तमाम हलचलों के साथ समाहित हो गया है। भूमण्डलीकरण के दौर में एक ओर प्रेम, दया, आदर और सहानुभूति आदि भावों के मौलिक अर्थ खोते जाने का चित्रण है तो दूसरी ओर इस समाज में मनुष्य के आपसी सम्बन्धों में हुए परिवर्तनों का भी सूक्ष्म अंकन किया गया है।¹

वैश्वीकता किस प्रकार से मनुष्य को प्रभावित कर रही है इसे आरिफ की कहानी 'पापा का चेहरा' में देखा जा सकता है। पिता अपनी बेटी पर सानिया मिर्जा की तरह प्रसिद्ध होने का दवाव डालता है और उसका बचपन छीन लेता है। 'हुडुकलुल्लु' में पंकज मिश्र ने आपात काल से लेकर वैश्वीकरण के युग तक का अंकन किया है। इस पूरे दौर के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों में न जाने कितनी नाइसाफियां बरती हैं जिसे सिलसिलेवार पहचाना जा सकता है।² हुडुकलुल्लु में मुक्तिवाद का विकृत रूप मिलता है। महाकाल की प्रेमिका उससे ऊब कर के गुण्डे से राजनेता बने शम्भू पाण्डे से विवाह कर लेती है।

आज के जीवन और साहित्य में न तो प्रेम की भावुकता है और न ही जीवन-मरण का प्रश्न। 'वास्तव में एक ही समय में भारत कई युगों में जी रहा है। पाषाण युग तथा इलेक्ट्रानिक युग एक साथ चल रहा है। जब में अत्याधुनिक उपकरण है मगर भेजे में मध्य युग बैठा है'³

इन नई समस्याओं से निपटने के लिये साहित्य का दायित्व बढ़ता जा रहा है मनुष्य के वास्तविक स्वरूप को देवत्व को अपने स्थान पर प्रतिष्ठित करने में साहित्य से अपेक्षा होती है। और इस वैश्वीकता के युग में हिन्दी यह कार्य बहुत ही निपुणता के साथ कर रही है। हमारी पूरी साहित्यिक पीढ़ी आज वैश्वीकता से प्रभावित है। सुधीश पचौरी का मानना है कि 'आज यह कहना कि अभी साहित्य बाजारी संस्कृति का अंग नहीं हुआ है और कतिपय कलायें भी सुरक्षित हैं, बेइमानी है।' इसमें प्रख्यात समालोचक डॉ० रामविलास शर्मा का स्पष्टीकरण कितना सही है उन्होंने कहा है कि 'विश्व एक मण्डी में बदल रहा है और लेखक का अंत हो चुका है। लेखक जो ठीक समझे, लिखे और उसे बेचकर अपनी जीविका चलाये। बेहतर है कि वह कुछ नया, कुछ चटपटा, कुछ रंजक और कुछ चमत्कारी ढंग का लिखे जिसे रस लेकर पढ़ा जाये।'⁴

हिन्दी की स्थिति

प्रत्येक समुन्नत, स्वतंत्र तथा स्वाभिमानी राष्ट्र की अपनी एक निजी भाषा होती है। अनय देशों की भाँति ही स्वतंत्र भारत में हिन्दी भाषा को ही राष्ट्र भाषा के पद पर आसीन किया गया है। सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं में हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जो समग्र भारत में ही नहीं अपितु विदेशों में भी बोली और समझी जाती है। जार्ज ग्रियर्सन ने भी हिन्दी को महत्वपूर्ण भाषा स्वीकार किया है। राजा राममोहन राय, महर्षि दयानन्द, ऐनी बेसेण्ट हिन्दी की महत्ता को भली-भाँति जानते और समझते थे। महर्षि दयानन्द ने अनेक विराधे के बावजूद आर्य भाषा और दिव्य ग्रंथों का हिन्दी में रूपान्तरण किया। महात्मा गाँधी ने कहा था कि 'हिन्दी का प्रश्न स्वराज्य का प्रश्न है।'

राष्ट्र भाषा हिन्दी के विकास में जितना योगदान हिन्दी भाषी क्षेत्र के साहित्यकारों का है उतना ही अहिन्दीभाषी क्षेत्रों के साहित्यकारों का भी है। बंगाल के क्षितिमोहन स्वामी, महाराष्ट्र के प्रभाकर माचवे, शेकड़े तथा गजानन माधव मुक्तिबोध, तमिलनाडु के राजलक्ष्मी राघवन, डॉ० गोपालन, डॉ० शंकर राजू तथा आन्ध्र प्रदेश के बाल कृष्ण के नाम उल्लेखनीय हैं।

प्रो०देवेन्द्र नाथ शर्मा ने 'राष्ट्र भाषा हिन्दी समस्याएँ व समाधान' नामक अपनी पुस्तक में हिन्दी भाषा के महत्व का भली-भाँति प्रतिपादन किया है। 14 सितम्बर 1949 ई. को हिन्दी को भारत की राज्य भाषा की रूप में स्वीकृति प्राप्त हुई किन्तु सिद्धान्त रूप में स्वीकार किये जाने पर भी व्यवहारिक रूप में इसे आज तक मान्यता न मिल सकी है। भले ही भारत राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र हो किन्तु आज भी भारत के कर्णधारों में वैचारिक स्वाधीनता व स्वाभिमान के कारण वे अंग्रेजी लिखना बोलना सोचना गौरव की बात सोचते हैं। इसका कारण एक छाया के रहने पर दूसरी छाया का अनुभव नहीं होता।

हिन्दी को बढ़ावा देने के लिए यह आवश्यक है कि हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिए व्यवहारिक कदम उठाये जाएं, जिससे हिन्दी में भारत के प्रत्येक प्रान्त में रहने वाले लोगों के मन में आकर्षण उत्पन्न हो जाए व हिन्दी के वास्तविक मर्म को समझे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने कहा है कि—

“निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।

बिनु निज भाषा ज्ञान के मिटै न हिय को शुल।”

आज सरकार व अधिकांश हिन्दी संस्था मंचीय कार्यवाही करके ही हिन्दी के प्रचार-प्रसार के कार्य को इति श्री मान लेती हैं। इस प्रकार की उत्सवधर्मिता हिन्दी का क्या भला कर सकती है।

हिन्दी ही हिन्दुस्तान की शान है यारों।

यह भाषा ही राष्ट्र की जान है यारों।

अपनी मातृ भाषा का जो न करे सम्मान

वह पतित, कपूत कुत्सित इन्सान है यारों।।

अब नया समय आ गया है कि प्रत्येक भारतीय को भाषा के मर्म को पहचान कर स्वाभिमान के साथ भावनाओं से भर कर, मानसिक दासता के बन्धन से मुक्त होकर एक जुट होकर हिन्दी के प्रचार प्रसार में लग जाना चाहिए। हमें विदेशी भाषाओं का ज्ञान नहीं, यह हमारे लिए लज्जा का विषय नहीं हो सकती, किन्तु किसी भी हिन्दुस्तानी को हिन्दी का ज्ञान न हो यह लज्जा व अपमान का विषय है। विदेशी भाषाओं अथवा अंग्रेजी का ज्ञान करना पाप नहीं है, किन्तु मातृ भाषा के मूल्य पर उन्हें पनपाना जघन्य अपराध है। जिसका निस्तारण आने वाली सन्तान भी नहीं कर सकती है। वस्तुतः आज हमारे ऊपर विदेशियों की दाशता का जो सबसे बड़ा चिह्न लगा हुआ है, वह अपनी मातृ भाषा की विमुखता ही है।

इसके अभाव में देश गूँगा है और उसकी जनता गूँगी है। वस्तुतः आज वैश्विक युग में हिन्दी भारत के साथ-साथ विदेशों में भी अपनी धूम मचाये हुए है। आज विदेशों में भी इसे लोग पूर्णतः बोलने व समझने का प्रयास करने लगे हैं। जिससे उसका महत्व और भी बढ़ गया है।

सन्दर्भ सूची

1. रेहन पर रघू— डॉ० काशीनाथ सिंह— परीकथा, मार्च-अप्रैल 2010, पृष्ठ 86
2. खिलंदड़ा गद्य और यथार्थ का रीमिक्स— नीरज खरे (हुडुकलुल्लु— पंकज मिश्र) परीकथा, मार्च-अप्रैल 2010, पृष्ठ 86
3. नया ज्ञानोदय— रवीन्द्र कालिया, सितम्बर 09-10
4. मेरे साक्षात्कार— डॉ० रामविलास शर्मा



चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की कविताएँ और युग चेतना

सत्येन्द्र कुमार शेन्डे

सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)

शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिवनी (म.प्र.)

साहित्य की सबसे लोकप्रिय और महत्वपूर्ण विधा है— कहानी। हिन्दी कहानी का नाम आते ही हमारे मानस—पटल पर प्रेमचंद जी के साथ, जो समानांतर तस्वीर उभरती है, वह है— चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' जी की। गुलेरी जी की 'उसने कहा था' कहानी को भला कौन भूल सकता है, जो विशुद्ध प्रेम, संवेदना और कर्तव्य की अद्भुत मिसाल है ! हिन्दी ही नहीं, वरन् विश्व साहित्य की अद्वितीय कहानी 'उसने कहा था' को यदि हम आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में बयान करना चाहें तो इस कहानी में भीतर से प्रेम का एक स्वर्गीय स्वरूप झाँक रहा है।¹ इसके अतिरिक्त गुलेरी जी की प्रमुखतः दो और कहानियों की चर्चा होती है— 'सुखमय जीवन' और 'बुद्धू का काँटा'। बहुत कम लोग जानते हैं कि गुलेरी जी ने केवल तीन ही नहीं बल्कि बहुत सी कहानियाँ लिखी हैं।²

उम्दा कहानीकार के अलावा गुलेरी जी एक श्रेष्ठ निबंधकार के रूप में चर्चित रहे हैं। गुलेरी जी के निबंधों की संख्या 120 से ऊपर पहुँचती है,³ जिनमें 'कछुआ धरम' और 'मारेसि मोहिं कुठाऊँ' की आज भी हिन्दी निबंधों में धाक है। गुलेरी जी ने जयपुर, राजस्थान से एक साहित्यिक पत्रिका भी निकाली थी— समालोचक। इस पत्रिका के माध्यम से महत्वपूर्ण पत्रकार, चिंतक और समीक्षक के रूप में गुलेरी जी की पहचान स्थापित हुई। इसके अलावा, गुलेरी जी को एक पुरातत्वविद्, इतिहासज्ञ, पत्र—लेखक और संस्कृत साहित्य के परम् विद्वान के रूप में भी जाना जाता है।

किन्तु इन सबके बावजूद, बहुत कम लोग जानते हैं कि चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' जी एक श्रेष्ठ कवि भी हैं, किन्तु यह खेदजनक है कि हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने वाले आचार्य रामचंद्र शुक्ल, बाबू गुलाबराय, डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. नगेन्द्र और डॉ. बच्चन सिंह जैसे महान मनीषियों ने भी गुलेरी जी की कविताओं पर ध्यान ही नहीं दिया। लेकिन, आज 21वीं सदी में, गुलेरी जी के काव्य—कृतित्व पर अब साहित्य के विद्वानों, विद्यार्थियों और पाठकों ने ध्यान देना शुरू कर दिया है और हिन्दी कविता में उनके अवदान से लोग वाकिफ हो रहे हैं। गुलेरी जी के ओजस्वी लेखन का प्रभाव तभी से स्वयंसिद्ध है, जब आधुनिक हिन्दी साहित्य अपनी शिशु अवस्था में ही था। कहानियों के साथ—साथ गुलेरी जी की कविताओं ने भी हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है।

39 वर्ष 2 माह 5 दिन की अल्पायु में चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' जी ने साहित्य की जो सेवा की है, वह किसी भी भाषा के साहित्य के इतिहास में दुर्लभ है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि बीसवीं सदी के प्रथम दो दशकों में भारत देश के पुनर्जागरण और साहित्य—उत्थान की सर्वाधिक सशक्त लेखनी गुलेरी जी की रही है।⁴

यह सुविदित है कि गुलेरी जी लैटिन, फ्रांसीसी, अंग्रेजी, बांग्ला, मराठी, पालि, प्राकृत, संस्कृत तथा हिन्दी भाषाओं के उद्भट विद्वान थे। किन्तु, उन्होंने अपनी कविताओं की रचना अंग्रेजी, हिन्दी (खड़ी बोली) तथा संस्कृत भाषाओं में की है। गुलेरी जी की कविताओं से गुजरना स्वयं में सुखद अनुभूति है। गुलेरी जी की कविताएँ हृदय के स्पष्ट, स्वाभाविक और सहज उद्गार हैं। 20वीं सदी के प्रारंभिक दो दशकों में लिखी गई इन कविताओं में हम तत्कालीन युगीन चेतना के दर्शन कर सकते हैं। वस्तुतः देखा जाए तो, गुलेरी जी की काव्य रचना में हमें प्रदर्शन नहीं, वरन् गहरा दर्शन दिखाई पड़ता है। 'एशिया की विजया दशमी', 'ईश्वर से प्रार्थना', 'झुकी कमान', 'बैनकबर्न', 'अहिताग्नि', 'भारत की जय', आदि कविताओं से गुलेरी जी का काव्य—कृतित्व श्रेष्ठतम रूप में सामने आता है। गुलेरी जी की खड़ी बोली की कविताएँ राष्ट्रीय जन— जागरण और जन—चेतना के स्वर को मुखरित करती हैं।

अंग्रेजी राज के प्रति आक्रोश व्यंग्य के रूप में दिखाई देता है। प्रतीकों के माध्यम से अंग्रेजों की भर्त्सना और आलोचना की गई है। राष्ट्रप्रेम, सामाजिक उद्बोधन और जनचेतना से युक्त अपनी कविताओं के साथ गुलेरी जी भारत राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिए राष्ट्र सचेतक के रूप में हमारे सामने आते हैं।⁵ इस आलेख में हम, गुलेरी जी की कविताओं में युगीन चेतना और उनके अवदान को समझने का प्रयास गुलेरी जी की कुछ कविताओं के माध्यम से करेंगे।

भारत की एकता और धर्मनिरपेक्षता के प्रति आह्वान— गुलेरी जी का समय देश की पराधीनता का समय था और विदेशी राज की कूरता अपने चरम पर थी। बंग-भंग, क्रांतिकारियों का दमन, जनता पर अत्याचार देखकर गुलेरी जी का मन द्रवित हो गया। तब उन्हें लगा कि भारत की जनता की एकता ही अंग्रेजों की गुलामी से छुटकारा दिला सकती है। उनकी कविताओं में हमें देश की एकता के दर्शन होते हैं, साथ ही धर्मनिरपेक्षता के प्रति आह्वान भी सहज दृष्टव्य है—

भारत की जय⁶

“हिन्दू, जैन, सिख, बौद्ध, कृस्ती, मुसलमान
पारसिक, यहूदी और ब्राह्म
भारत के सब पुत्र, परस्पर रहो मित्र
रखो चित्ते गणना समान
मिलो सब भारत संतान
एक तन—मन—प्राण
गाओ भारत का यशोगान।”

देश के स्वाधीनता संग्राम के लिए संघर्ष हेतु जनता को प्रेरणा— गुलेरी जी का समय भारत की पराधीनता का दुस्समय था, जिसकी टीस गुलेरी जी को भी थी, अतः उनकी कुछ कविताओं में देश की आजादी के लिए जनता से संघर्ष का सहज आह्वान है। झुकी कमान कविता इसका सबसे बड़ा प्रमाण है।

झुकी कमान⁷ — इस कविता में गुलेरी जी ने आम जनता से देश की आजादी की लड़ाई में पूरी तन्मयता के साथ कूद पड़ने का आह्वान किया है। एक किसान, शिकारी/योद्धा, राजाओं/नेताओं, बुद्धिजीवियों और देश की महिलाओं को संबोधित कर कवि गुलेरी जी ने जन्मभूमि भारत माता की स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए प्रेरित कर रहे हैं। यह कविता आज भी अपनी ओजस्वी वाणी के कारण प्रासंगिक प्रतीत होती है। देखिए, एक बानगी —

“माता न रोको निज पुत्र आज,
संग्राम का मोद उसे चखाओ,
तलवार, श्माले निज को दिलाओ।
तू सुंदरी ले प्रिय से बिदाई,
स्वदेश मांगे उनकी सहाई।
.....स्वातंत्र्य है प्रिय जिन्हें शुभ स्वर्ग से भी,
अन्याय से जकड़ती कटु बेड़ियों को
विद्वान वे कब समीप निवास देंगे ?”

विसंगतियों पर व्यंग्य चेतना का प्रहार— चंद्रधर शर्मा ‘गुलेरी’ जी अपनी व्यंग्य चेतना के लिए जाने जाएंगे। उनकी कविताओं में सामाजिक उद्बोधन और अंग्रेजों की आलोचना का यह एक महत्वपूर्ण हथियार था। व्यंग्य से परिपूर्ण कविता का एक ज्वलंत उदाहरण देखिए —

सोअऽहम्⁸

करके हम भी बी.ए. पास, हैं अब जिलाधीश के दास
पाते हैं दो बार पचास, बढ़ने की रखते हैं आस

.....पढ़कर गोरों के अखबार, हुए हमारे अटल विचार
अंग्रेजी में इनका सार, करते हैं हम सदा प्रचार
वतन हमारा है दो-आब, जिसका जग में नहीं जवाब
बनते-बनते जहाँ अजाब, बन जाता है असल सवाब
ऐसा ठाठ अजूबा पाकर, करें किसी का क्यों मन में डर
खाते-पीते हैं हम जी भर, बिछा हुआ रखते हैं बिस्तर
हमें जाति की ज़रा न चाह, नहीं देश की भी परवाह
हो जावे सब भले तबाह, हम जावेंगे अपनी राह ।

उक्त कविता में गुलेरी जी ने तत्कालीन पढ़ी-लिखी युवा पीढ़ी पर व्यंग्य किया है। गौरतलब है कि प्रसिद्ध अंग्रेज शिक्षाविद् मैकाले ने अंग्रेजों के शासन को बदस्तूर जारी रखने के लिए यह सलाह दी थी कि भारतीय जनता को ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए कि इस देश के युवा पढ़े-लिखे तो हों, पर वे मानसिक रूप से अंग्रेजों के गुलाम ही बने रहें। गुलेरी जी ने मैकाले की इसी कपटपूर्ण शिक्षा से पैदा हो रही मानसिक रूप से गुलाम युवा पीढ़ी को अपनी इस कविता में लताड़ लगाई है। यह भी उल्लेखनीय है कि इस कविता को पढ़कर कहीं न कहीं हरिशंकर परसाई जी की व्यंग्य कला का पूर्वाभास होने लगता है।

कला-पक्ष की दृष्टि से भी गुलेरी जी की कविताएं महत्वपूर्ण हैं। विभिन्न छंदों का प्रयोग और सहल आलंकारिकता इनका विशेष गुण है। इन कविताओं में राजस्थानी एवं हिमाचली जनपदों की लोक शैली का प्रभाव दिखाई देता है। ब्रज भाषा और खड़ी बोली में रची गई कविताएं मनमोहक तो हैं ही, साथ ही प्रेरणाप्रद भी।

गुलेरी जी के बहुआयामी लेखकीय व्यक्तित्व और कृतित्व से स्वयंसिद्ध है कि उन्होंने न केवल अपनी कविताओं से हिन्दी कविता को समृद्ध किया है बल्कि आधुनिक हिन्दी साहित्य के बाल्यकाल में गुलेरी जी की रचनाओं ने हिन्दी भाषा और साहित्य का सम्मान बढ़ाया है⁹ जो अनुकरणीय और अभूतपूर्व है। राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक सौहार्द, जातीय गौरव और देश की एकता पर आधारित गुलेरीजी की कविताएं हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

संदर्भ सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास— आ.रामचंद्र शुक्ल, कमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली।
2. उसने कहा था (ब्लॉग)—माधवी शर्मा गुलेरी (चंद्रधर शर्मा गुलेरी जी की प्रपौत्री) ने अपने इस ब्लॉग में प्रामाणिकता के साथ यह बताया है कि गुलेरी जी ने बहुत सी कहानियां लिखी थीं, किन्तु तीन कहानियों की ही चर्चा अधिक होती है।
3. पं. चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' और उनकी कविताएं — डॉ. विद्याधर शर्मा गुलेरी, चिन्मय प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ अपप (प्राक्कथन)
4. वही, पृष्ठ— गपग
5. वही, पृष्ठ— ग
6. वही, पृष्ठ— 11
7. वही, पृष्ठ— 10
8. यह कविता चंद्रधर शर्मा गुलेरी जी की प्रपौत्री माधवी शर्मा गुलेरी ने अपने ब्लॉग— उसने कहा था में प्रकाशित की है।
9. श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी के साहित्य का सांस्कृतिक अनुशीलन— निधि शर्मा, किताबघर प्रकाशन, 24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली



आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी और उनकी सैद्धान्तिक समीक्षा

डॉ० अजिता दीक्षित

एसो० प्रोफेसर – हिन्दी

राधेहरि राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, काशीपुर, उत्तराखण्ड।

आधुनिक हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में नये मानदण्डों को लेकर प्रमुख छायावादी समीक्षक आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी अवतरित हुये। समीक्षा के क्षेत्र में उनकी सप्त सूत्री मान्यताओं के आधार पर पर्याप्त प्रौढ़ता आयी। उनका समीक्षक व्यक्तित्व सत्य कहने की प्रखर क्षमता से युक्त है। उन्होंने सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों ही प्रकार की समीक्षाएँ की हैं। वाजपेयी जी की मान्यता है कि साहित्य का सृजनशील होना आवश्यक है क्योंकि कला सृजनशील होती है। समीक्षा को किसी भी सिद्धान्त से बांधा नहीं जा सकता है। वाजपेयी जी ने अपने को सदैव वादों से मुक्त रखा क्योंकि वाद परिस्थिति जन्य है और परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहते हैं। जबकि कलात्मक सृष्टियाँ देशकाल के व्यवधानों का अतिक्रमण करती हैं और श्रेष्ठ कृति कभी भी पुरानी नहीं होती है।

आचार्य वाजपेयी जी मुख्यतः स्वच्छन्दतावादी समीक्षक हैं। स्वच्छन्दतावादी समीक्षा बन्धन एवं पूर्व परम्पारित मान्यताओं के प्रति विरोध व्यक्त करती हैं। उसकी प्रवृत्ति वैयक्तिक, अनौपचारिक, भावुक एवं गत्यात्मक है। प्रेमशंकर जी ने वाजपेयी जी की स्वच्छन्दतावादी समीक्षा की प्रशंसा करते हुए लिखा है “जब भी रोमाण्टिक क्रिटिसिज्म अथवा स्वच्छन्दतावादी समीक्षा की चर्चा होगी, उनका नाम मैथ्यू अर्नाल्ड जैसे समीक्षकों की तरह आदर के साथ लिया जायेगा।”¹

वाजपेयी जी की प्रमुख समीक्षात्मक कृति हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी है। इस पुस्तक की भूमिका में अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए आलोचना संबंधी सप्त सूत्रीय सिद्धान्तों की ओर संकेत किया है। वाजपेयी जी प्रमुखतः रसवादी आचार्य हैं। वे रस को काव्य की मूलभूत वस्तु मानते हुए भी उसकी अलौकिकता से असहमत हैं। उन्होंने कहा है कि रसानुभूति संबंधी अलौकिकता के पाखण्ड से काव्य का अनिष्ट ही हुआ है।² उनका रस सिद्धान्त प्राचीन रूढ़ियों से मुक्त होकर एक उदात्त तथा विस्तृत भूमि पर प्रतिष्ठित हुआ है उन्होंने पूर्व प्रचलित रस सिद्धान्त का विरोध करते हुए कहा है कि किसी पूर्व निश्चित दार्शनिक अथवा साहित्यिक सिद्धान्त को लेकर कला की परीक्षा नहीं की जा सकती। काव्य का वास्तविक सौन्दर्य कवि के काव्योत्कर्ष की भावात्मक परीक्षा में निहित है।³

वाजपेयी जी की दृष्टि काव्य के नैतिक स्वरूप की अपेक्षा आनन्द पक्ष पर ही है। उन्होंने रस के अन्तर्गत भाव के साथ ही बुद्धि और कला को भी प्रधानता दी है। उनका मत है कि रस वैयक्तिक अनुभूतियों के प्रकाशन में नहीं है। काव्य की सार्थकता तभी सिद्ध हो सकती है जब वह वैयक्तिक सुख दुख की भूमि पर पहुँचता है।

वाजपेयी जी के अनुसार साहित्य और जीवन में घनिष्ठ संबंध है। वह नए और प्रगतिशील जीवन प्रवाह का स्वागत करते हुए साहित्य का संबंध सामाजिक जीवन से मानते हैं। वह साहित्य में प्राचीन और स्थिर समाज के स्वरूप को नहीं स्वीकारते हैं। उनके अनुसार – अपनी प्रशस्त कल्पना के द्वारा जो वर्तमान हलचलों का यथार्थ स्वरूप और आगम की झलक जितनी स्पष्टता से देख सकेगा, वह उतना ही बड़ा साहित्यकार होगा।⁴ उनकी साहित्य संबंधी दृष्टि उनकी कृति आधुनिक साहित्य में दृष्टिगोचर होती है। – साहित्य के उपादान समय के साथ बदला करते हैं।⁵ उन्होंने स्पष्टतः कहा है कि साहित्य समाज की सर्वाधिक सजग और शक्तिशाली चेतना को प्रभावित करता है। उनके अनुसार साहित्य में निराशावादी दृष्टिकोण को त्याग कर आशावादी दृष्टिकोण को

अपनाना चाहिए। इस प्रकार वे एक आदर्शवादी आचार्य हैं उनका मत है — गौरवपूर्ण अतीत के भी अनुकरण पर लिखा हुआ साहित्य सुशोभन और गौरवास्पद हो सकता है, युग का अनिवार्य काव्य नहीं बन सकता। उत्कृष्ट साहित्य सदैव अनिवार्य ही हुआ करता है।⁶

बाजपेयी जी ने राष्ट्रीयता से संबंधित कुछ मान्यताएँ भी व्यक्त की हैं। उन्होंने साहित्य को राष्ट्र जीवन से संबंधित करने का प्रयास किया। उन्होंने साहित्य निर्माण के लिए राष्ट्रीय इतिहास और राष्ट्रीय परम्परा के अध्ययन को आवश्यक माना है। किसी भी देश और जाति का साहित्य और संस्कृति अपनी स्वतंत्र सत्ता रखता है। इसे स्वीकारते हुए वे लिखते हैं— भारतीय साहित्य हमारी राष्ट्रीय संस्कृति की उपज है, अतएव उस साहित्य के मानदण्ड भी यथासंभव राष्ट्रीय ही होने चाहिए।⁷

काव्य के हेतु के संबंध में आचार्यों में पर्याप्त मतभेद हैं। बाजपेयी जी ने आत्मानुभूति को काव्य हेतु के रूप में स्वीकार किया। वे लिखते हैं — अनुभूति रहित काव्य की कल्पना नहीं की जा सकती है। वे इस रस और ध्वनि सिद्धान्तों के मूल में अनुभूति के महत्व को स्वीकार करते हैं। उन्होंने अनुभूति शब्द का प्रयोग इसलिए किया क्योंकि आत्मानुभूति शब्द से दार्शनिक ऊहापोह की संभावना हो सकती थी। बाजपेयी जी ने अनुभूति के स्वरूप का विवेचन करते समय क्रोचे के मत का उल्लेख किया है। क्रोचे काव्य और कलाओं में अभिव्यक्ति को ही अनुभूति मानते हैं। उनके अनुसार अनुभूति ही अभिव्यक्ति है और अभिव्यक्ति ही काव्य है। इन तीनों में पूर्ण तादात्म्य है। इससे काव्य की सार्वजनीयता और सार्वभौमिकता सिद्ध होती है।⁸

बाजपेयी जी काव्य प्रेरक अनुभूति का कल्पना से घनिष्ठ संबंध मानते हैं। वह मानते हैं कि अनुभूतिप्रेरक तत्व है और कल्पना उसका क्रियाशील स्वरूप। उन्होंने अनुभूति या भाव तत्व को काव्य का प्रेरक मानकर रस सिद्धान्त के महत्व को प्रतिपादित किया है। वे अपनी आरम्भिक कृतियों में अलंकारों को रस-सिद्धि का साधन मात्र मानते हैं। वे मानते हैं कि कविता अपने उच्चतम स्तर को पहुँचकर अलंकार विहीन हो जाती है। कविता जिस स्तर पर पहुँचकर अलंकार विहीन हो जाती है वहाँ वह वेगवती नदी की भाँति हा हा कार करती हुई हृदय को स्तम्भित कर देती है। उस समय उसके प्रवाह में अलंकार, ध्वनि, वक्रोक्ति आदि न जाने कहां बह जाते हैं और सारे सम्प्रदाय न जाने कैसे मटियामेट हो जाते हैं। परन्तु परवर्ती रचनाओं में उन्होंने अलंकारों की उपयोगिता को प्रतिपादित किया है। वह मानते हैं कि अलंकार और रीति सम्प्रदाय ने काव्य को विशिष्ट एवं व्यक्ति स्वरूप देने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

बाजपेयी जी ने भाषा के ज्ञान को कवि के लिए आवश्यक बताया है क्योंकि भाषा समय और परिस्थिति के साथ-साथ परिवर्तित होती रहती है। वे भाषा के सौन्दर्य को गतिमान मानते हैं। तथा काव्य में लक्षणा की प्रधानता के पक्षधर न होकर अभिधा को काव्य में प्रधानता देते हैं। बाजपेयी जी शैली के बहिरंग और अतरंग भेदों को कोई स्थान नहीं देते हैं। प्रत्येक कवि और लेखक अपनी प्रतिभानुकूल शैलियों का प्रयोग करते हैं। उनका मानना है कि समीक्षक को उसकी परीक्षा उसकी गहीत शैली की भूमिका पर ही करनी चाहिए। चमत्कार बहुल और श्रम साध्य शैली मध्यम श्रेणी के सौन्दर्य प्रिय कवि ही काम में लाते हैं। और इससे वे अपनी भावना के अभाव की पूर्ति किया करते हैं।¹² वह शैली या अभिव्यंजना को काव्य नहीं मानते हैं। क्योंकि अभिव्यंजना का संबंध सौन्दर्यपूर्ण प्रकाशन से है जबकि काव्य मानस जगत और मानस वृत्तियों से संबंधित है।

निश्चय ही बाजपेयी जी छायावाद युग के मूर्धन्य समीक्षकों में से हैं। वे स्वच्छन्दतावादी समीक्षा पद्धति के अनुगामी हैं। उनका समीक्षक व्यक्तित्व उनकी कृतियों में पूर्ण रूप से मुखरित हुआ है। बाजपेयी जी यद्यपि पाश्चात्य साहित्य सम्बन्धी मान्यताओं के हिमायती अवश्य थे, परन्तु उनके अन्धानुकरण के घोर विरोधी थे। वे तटस्थ साहित्य समीक्षा के पक्षधर थे।

सन्दर्भ सूची

1. नन्ददुलारे वाजपेयी: प्रेमशंकर— निष्कर्ष और समापन —पृष्ठ —92
2. हिन्दी साहित्य: बीसवीं शताब्दी, पृ0 67
3. महाकवि सूरदास— नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ0 15
4. आधुनिक साहित्य — नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ0 329
5. वही, पृ0 304
6. हिन्दी साहित्य: बीसवीं शताब्दी, पृ0 29
7. नया साहित्य: नए प्रश्न, पृ0 135
8. आधुनिक साहित्य, पृ0 414
9. वही पृ0 415
10. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, पृ0 59
11. नया साहित्य : नए प्रश्न — (निष्कर्ष), पृ0 6
12. हिन्दी साहित्य: बीसवीं शताब्दी, पृ0 29



हरिकृष्ण 'प्रेमी' के नाटकों में वर्णित गीतों में राष्ट्रीय प्रेम

डॉ० आशा वर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर-हिन्दी विभाग

डी०बी०एस० कालेज, कानपुर

राष्ट्रीय साहित्य का सर्वाधिक प्रयोग उस साहित्य के लिए किया जाता है, जिसमें देश प्रेम की भावना प्रबल होती है। देशभक्ति से अनुप्राणित साहित्य में एक आवेश, उत्साह और साथ ही साथ वीरत्व का भाव प्रबल रहता है। इसमें अतीत गौरव का गान किया जाता है। पूर्वजों की दुहाई दी जाती है। देश की महिमा का अंकन होता है। अपने प्राचीन इतिहास के प्रति मानव-मन प्रायः गौरव की भावना रखता है। इस प्रकार की गौरवपूर्ण परम्पराएँ भी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक का ही अंग हैं। ऐसे कार्य जो हमारे पूर्वजों ने किए हैं, वे हमारे लिए स्फूर्ति एवं प्रेरणा के स्रोत सिद्ध होते हैं। आधुनिक युग में भारत का स्वर्णिम अतीत, आध्यात्मिक, नैतिक तथा भौतिक उत्कर्ष का इतिहास देशवासियों को राष्ट्रीय-सांस्कृतिक पुनर्जागरण के युग में अतीत गौरव की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक ही है। मोह निद्रा से ग्रस्त नागरिकों को उद्वेलित करने तथा उसे राष्ट्रीय भावना का बोध कराने के उद्देश्य से साहित्यकार स्वर्णिम अतीत की ओर समाज का ध्यान आकर्षित करता है। अतीत और वर्तमान के तुलनात्मक अध्ययन से वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि "यदि अतीत इतना उन्नत एवं वैभवपूर्ण हो सकता है तो वर्तमान क्यों नहीं, वैसा बनाया जा सकता। इस प्रकार अतीत-गौरव की स्मृति उसके लिए प्रेरक शक्ति बन जाती है और कार्य के लिए उचित दिशा का निर्देश मिल जाता है क्योंकि बिना पिछले सांस्कृतिक मूल्यों के ज्ञान के मनुष्य नये मूल्य निश्चित करने में असमर्थ रहता है।"¹

हरिकृष्ण 'प्रेमी' के नाटकों में राष्ट्र-प्रेम और राष्ट्रीय गीतों की अधिकता है। उनके राष्ट्रीय गीत उदासीन और सुप्त जनता को जाग्रत करने वाले देश का महत्व सिद्ध करने वाले तथा दृढ़ विश्वास और इरादों के सूचक हैं। उनके गीत प्रेरणादायक और उद्बोधक भी हैं। रक्षाबन्धन नाटक में चारणी के गीत प्रेरक शक्ति से परिपूर्ण हैं। एक गीत अवलोकनीय है -

होरी गौरवमयी कहानी,
प्राणों में भर रही जवानी,
बलिपथ पर बनकर दीवाली,
जाती है तेरी सन्तान,
जय जय जय मेवाड़ महान।
और
सोचो तो मेवाड़निवासी,
माँ का रहने दोगे दासी,
ओ बलिदान के विश्वासी,
आगे कदम बढ़ाओ,
वीरों, समर भूमि में जाओ।²

अपनी आन के लिए युद्ध करने की ललकार उनके गीतों में विद्यमान है। शतरंज के खिलाड़ी में ताण्डवी का गीत बहुत ही उत्तेजक है।

जो है अग्नि-पुत्र तूफानी
हार उन्होंने कभी न मानी,
यम से भिड़ जाने की ठानी,
मर कर भी न वीर मर पाये।
रण के घन घिर-घिरकर आये।।

जन्म भूमि का मान जाए,
राजपूतों की आन न जाए,
बलिवेदी पर होड़ लगाए,
चल, चढ़े, चढ़कर मुस्काए।³

साम्प्रदायिक एकता प्रेमी जी के नाटकों का उद्देश्य है। उनके हृदय में एकता की भावना सदा ही जीवित रही है। 'रक्षाबन्धन' में शाहशेख औलिया अपने गीत के माध्यम से एकता का पाठ पढ़ाता है –

“आज खुदा खुद है हैरान,
पिला रहा है तुम्हें तहास्सुब की शराब शैतान,
कहाँ लिखा है, हमें बताओ खोली वेद कुरान।⁴

‘प्रतिशोध’ नाटक की जेबुन्निसा का भी यही सन्देश है –

“मन्दिर, मस्जिद या गिरजाघर,
सब में रहता है वह दिलवर,
चल इंसान दुई से बचकर,
पीले जाम मुहब्बत वाला।”⁵

एकता के दीवाने प्रेमी जी के पात्र गा उठते हैं –

तोड़ मोतियों की मत माला,
माँ का मान उसी माला से,
बच रे हृदय द्वेष ज्वाला से,
कर ले पान प्रेम का प्याला।
इनके कोई नहीं बड़ा है,
विधि ने इनको स्वयं बढ़ा है,
तू क्यों बनता है मतवाला।⁶

हरिकृष्ण ‘प्रेमी’ ने रक्षाबन्धन नाटक में राखी के त्यौहार की मनोरम झांकी प्रस्तुत की है। किन्तु राखी का त्यौहार केवल मनोरंजन का नहीं देश प्रेम का भी प्रतीक है। झाँकी देखिए –

“तार तार में भर कर प्यार,
लाई हम राखी अविकार,
इनको करो वीर स्वीकार,
फर रिपु पर टूटो बन गाज।
प्रेम पर्व आ गया आज।”⁷

‘आहुति’ नाटक में भी राष्ट्र-प्रेम को दर्शाया गया है। यथा –

“विमल इज का दिन है आया।
रण के रंग में आँखे लाल,
करके आनै माँ के लाल,
हम टीका करके ले भाल,
आई बन्धु साज दें भाल,
उषा ने नभ लाल बनाया।⁸

राष्ट्र प्रेम के अन्तर्गत हरिकृष्ण ‘प्रेमी’ ने ‘दीन-दुखियों’ और निर्धनता के अभिशाप की अभिव्यक्ति करने वाले गीत भी इनके नाटकों में हैं। इनसे नाटकों में सम्वेदनात्मकता और भाव-प्रवणता की वृद्धि होती है। भारतीय निर्धनता का अच्छा चित्रण इन गीतों में हुआ है। ‘बन्धन’ और स्वप्न भंग में विशेष कर इस प्रकार के गीत हैं। ‘बन्धन’ नाटक में मजदूरों की दुरावस्था और उनके उत्साह के सूचक गीत हैं –

“जल रे दीपक जल रे जल।
अम्बर में धनमाला काली, काली निशा उठाने वाली,
अन्धकार की काली प्याली, गरज रही हिंसा अविचल।
चुकता जाता स्नेह तुम्हारा, सुख चली जीवन धारा,
मिटता जाता उजियारा, प्रलय चली जाती अविरल⁹

राष्ट्र प्रेम से आपूरित गीत की एक झलक –

“हमीं ने बाग लगाए हैं, हमीं ने महल बनाए हैं।
हमीं ने राज जगाए हैं, हमीं ने खोली झोली।
अभी तक हम जलते आए हैं, कंटीला पथ चलते आए।
हृदय अपना दलते आए, मुक्ति की वंशी अब बोली।¹⁰

प्रेम जी के गीत राष्ट्र-प्रेम में युद्ध के वातावरण को विशेष रूप में चित्रित करते हैं। उनके नाटकों के पात्र – चारणी, तांडवी आदि ऐसे हैं जो अपने राष्ट्रीय गीतों में ऐसे वातावरण की सृष्टि करते हैं जो कि युद्ध में जनता को स्फूर्ति प्रदान करते हैं। यह गीत जौहर के द्योतक तो हैं ही, साथ ही उत्साह, करुणा और संवेदना की अभिव्यक्ति करते हैं –

“सजनि! मरण को वरण करो री
पुलकित अम्बर और अवनि है,
आती आमन्त्रण की ध्वनि है,
यह सुहाग की रात सजनि है,
चिता-सेज पर शयन करो री।”¹¹

हरिकृष्ण ‘प्रेमी’ ने ‘स्वर्ण-विहस’ में एक कल्पित कथा के द्वारा पिछले युग की जागृत भारतीय चेतना की अभिव्यक्ति के माध्यम से राष्ट्रीय प्रेम की अभिव्यक्ति की है। इसमें अहिंसा के द्वारा हिंसा को जीतने का प्रयत्न है। अत्याचारी शासक ने किस प्रकार देश की दुर्दशा कर दी, इसका करुण चित्र दर्शनीय है –

कभी न छेड़ी, इस कुटिया में सुख ने मादक तान बान।
व्यथा, कराह, अभाग्य, दुःख के ही उठते तूफान।
हम हैं कृषक, जगत को करते हैं जो जीवन दान।
आज उन्हीं के बालक भूखे सोये हैं अनजान।¹²

रुग्णा और बाला के द्वारा किसानों की दयनीय स्थिति का चित्र उतारा गया है। मोहन और विजय अधम नृपति को मार डालने का विचार करते हैं, तभी सन्यासी प्रेम की बांसुरी अलापता है –

“नहीं—नहीं, ए पगले यौवन जीत प्रेम से पापाचार
अरे पाप से पाप मिटाना महाभूल है, व्यर्थ विचार
धर्म, सत्य जिस ओर रहेंगे उसी ओर होंगे कर्तार।”

प्रेम के सन्देश से सन्यासी मोहन के विचार बदल देता है। मोहन किसानों के प्रति अहिंसक क्रान्ति करता है –

करो मत नृप – सत्ता स्वीकार,
न दो अब पायो में सहयोग,
न दो उसको कर कौड़ी एक,
सहो पशु बल के सकल प्रयोग।¹⁴

परिणामस्वरूप किसान प्रतिज्ञा करते हैं –

“नहीं रखनी जालिम सरकार,
भले ही ले वह शीश उतार।
न देंगे उसको कभी लगान,
भले ही जलवा दे घर—द्वार।¹⁵

लालसा मोहन को अपनी ओर खींचती है, किन्तु वह भी प्रेमपूर्ण क्रान्ति का ही सन्देश देती है। फलस्वरूप अत्याचारी राजा घुटने टेक देता है। इस प्रकार गांधी दर्शन के द्वारा ‘प्रेमी जी’ ने प्रेम शान्ति का सन्देश दिया।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हरिकृष्ण ‘प्रेमी’ के नाटकों में वर्णित गीत राष्ट्रीय प्रेम की भावना से ओत-प्रोत हैं। आज के सत्तालोलुप और स्वार्थी व्यक्तियों का बोलबाला है और प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तिगत हितों के लिए राष्ट्रीय हितों को आघात पहुँचा रहा है तब यह नाटक प्राचीनकाल का दर्पण ही न रहकर वर्तमान के लिए ज्योतिस्तम्भ भरी बन जाते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय।
2. हरिकृष्ण प्रेमी, रक्षाबन्धन, हिन्दी भवन, 312, रानी मंडी, इलाहाबाद, 1991 ई0, पृ0-62
3. हरिकृष्ण प्रेमी, शतरंज के खिलाड़ी, आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ0-14
4. हरिकृष्ण प्रेमी, रक्षाबन्धन, हिन्दी भवन, 312, रानी मंडी, इलाहाबाद, 1991 ई0, पृ0-20
5. हरिकृष्ण प्रेमी, प्रतिशोध, आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ0-25
6. वही, पृ0-30
7. हरिकृष्ण प्रेमी, उद्धार, बंसल एण्ड कम्पनी, दरियागंज, दिल्ली, पृ0-41
8. हरिकृष्ण प्रेमी, रक्षाबन्धन, हिन्दी भवन, 312, रानी मंडी, इलाहाबाद, 1991 ई0, पृ0-64
9. हरिकृष्ण प्रेमी, आहुति, आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ0-36
10. हरिकृष्ण प्रेमी, स्वप्न भंग, आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ0-18
11. वही, पृ0 – 24
12. वही, पृ0 – 35
13. हरिकृष्ण प्रेमी, स्वर्ण विहान, आर्य बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली, पृ0-18
14. वही, पृ0 – 30
15. वही, पृ0 – 38
16. वही, पृ0 – 46



‘साकेत’ में ललित कला सन्दर्भ

डॉ० अनामिका द्विवेदी

असिस्टेंट प्रोफेसर—हिन्दी प्रवक्ता

ऐ. के. पी. पीजी कॉलेज, खुरजा, जिला बुलन्दशहर

साकेत सौन्दर्य मंगल और ललित कलाओं का अधिष्ठान है। महाकवि कालिदास का तपोवन है गुप्त जी का चिरगाँव। करुणा के जलदान से समस्त लोक को शीतलता प्रदान करने वाले रामकाव्यों में ‘साकेत’ शान्तिधाम है। कलात्मक अभिव्यंजनाओं के कारण स्थापित कर सका। साकेत श्रमसिद्ध सोदेश्य संकल्पनिष्ठ सारस्वत रचना है मूर्ति की तरह सुगठित संगीत की तरह सुललित चित्रकला की भांति चित्रबद्ध।

साकेत नैतिक आदर्शों की सम्पूर्ण गाथा है। आधुनिक सन्दर्भों अथवा कला सन्दर्भों से जीवन को प्रस्तुत करने वाले गुप्त जी कला शिल्पी ही नहीं महान जीवन शिल्पी भी हैं।

साकेत में कला काव्योचित सहृदयता के उदाहरण भरे पड़े हैं। कला प्रियता के कारण साकेत में जीवन का सच्चा स्पन्दन देखने को मिलता है। जीवन की बलवती प्रेरणा सौन्दर्य के सप्राण चित्र स्थापत्य की प्रतिमूर्तियों, भव्य भवनों, अट्टालिकाओं, गवाक्षों की दृश्यावलियाँ साकेत के सौन्दर्य को मूर्तित करती हैं। उपेक्षित उर्मिला की भांति उपेक्षित ललित कला पर राष्ट्र कवि की दृष्टि गयी।

प्राचीन काल से ही व्यावहारिक सुविधा के लिये ललित कलाओं की संख्या पाँच मानी गयी है— वास्तुकला मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला तथा काव्यकला। हीगेल ने इस कला सूची को सर्वाधिक मान्यता प्रदान की है। हिन्दी के अधिकतर कलाचिन्तकों को भी यही संख्या मान्य है। कतिपय कला चिन्तक जिनमें मदनगोपाल¹, भागीरथ मिश्र², प्रभुदयाल मीतल³, रामलखन शुक्ल⁴ का नाम उल्लेखनीय है।

अपने इस अध्ययन में हमने ललित कलाओं का जो क्रम (वास्तुकला मूर्तिकला, चित्रकला संगीत कला, काव्यकला) निर्धारित किया है। इस क्रम में स्थूल मूर्ताधर एवं अधिक साधन सामग्री की कलाएँ निम्न कोटि की मानी गयी हैं और सूक्ष्म मूर्ताधर तथा काम साधन वाली कलाएँ उच्चकोटि की समझी गयी हैं। वैसे भी अभिव्यक्ति वस्तु की अपेक्षा मूर्ति की अपेक्षा चित्र, चित्र की अपेक्षा संगीत तथा संगीत की अपेक्षा काव्य में अधिक होती है। इसलिए काव्य कला को इस क्रम निर्धारण में सबसे उच्च तथा वास्तुकला को निम्न स्थान प्राप्त है। हिन्दी में ललित कलाओं का यही क्रम प्रचलित है।

साकेत में वास्तुकला के अन्तर्गत नगर प्रासाद, भवन, स्तंभ, लिंग, पीठिका, सभामंडप, उद्यान कूप, शैल मन्दिर आदि के उल्लेख प्राप्त होते हैं। गुप्त जी ने साकेत वर्णन के अन्तर्गत भवन निर्माण कला (स्थापत्य) एवं मूर्तिकला के संकेत दिये हैं।

सर्गारम्भ के साथ ही साकेत नगर का वर्णन देखते ही बनता है। विभिन्न कलाओं का संगमन है साकेत में। गुप्त जी के शब्दों में—

देख लो साकेत नगरी है यही
स्वर्ग से मिलने गगन में जा रही
केतु पर अंचल सदृश है उड़ रहे
कनक—कलशों पर अमर दृग जुड़ रहे
सोहती हैं विविध — शालाएं बड़ी
छत उठाये भित्तियाँ चित्रित खड़ी

गेहियों के चारु चरितों की लड़ी
छोड़ती है छाप जो उन पर पड़ी
स्वच्छ, सुन्दर और विस्तृत घर बने
इन्द्र धनुषाकार तोरण हैं तने।⁵

उक्त छन्द में भारतीय स्थापना का दर्शन होता है। यहां गुम्बद नहीं कलश हैं छज्जे दीर्घ हैं। छज्जों पर विविध बल्लरियां चढ़ी हुयी हैं। छत उठी हुयी है, भित्तियों में चिह्न हैं। उन पर न राम न रहीम है न अल्लाह मुहम्मद और अली के नामों को लिखा गया है, बल्कि वधंतों गृहस्थों की चरित्र चित्रावलि है, जो अंकित है। सदन गगनचुम्बी है। राज महलों का वर्णन कवि ने शिल्प कौशल अलंकरण की बहुलता के साथ किया है जिसमें हिन्दू स्थापत्य का प्रभाव है—

“कर रहे नृप शोध गगन स्पर्श हैं
शिल्प कौशल के परम आदर्श हैं।⁶

हिन्दू सभ्यता और भारतीय संस्कृति में देव मन्दिर स्थापत्य के प्रमुख अंग हैं हिन्दुओं में मूर्तिपूजा का प्रचलन है। नदियों के तट पर देवालय अत्यन्त भव्य प्रतीत होते हैं—

“तीर पर है देव मन्दिर सोहते
भावूको के भाव मन को मोहते।⁷

देव मन्दिर से कवि का आशय सामान्य रूप से देवालयों से है किन्तु अपने श्लेष से ये देव (देवगढ़) झाँसी के दशावतार मंदिर तथा बौद्धों के देवकमंदिरों की ओर भी संकेत देते हैं। स्थापत्य के सभी अंग साकेत में एक नर उन्मेष के साथ वर्णित हैं। केवल हट नहीं वहां लोक की श्री निवास करती है। लोक की सर्वत्र प्रधानता है मार्ग पूर्ण और अकाट्य हैं। घर नेपथ्य की भांति है। बाहर नाट्यशालाएं हैं चौपालों में नाट्यशालाएं —

“धन्य—धन परिपूर्ण सबके धाम हैं
रंगशाला से सजे अभिराम हैं।⁸
ठाट है सर्वत्रा घर वा घाट हैं
लोक लक्ष्मी की विलक्षण हाट है
सिक्त सिंजित पूर्ण मार्ग अकाट्य है
घर सुघर नेपथ्य बाहर नाट्य है।⁹

स्थापत्य कला के क्षेत्र में गुप्ता जी का महत्वपूर्ण योगदान है। साकेत के प्रसंगों में मूर्तिकला के उल्लेख मिलते हैं उनमें वे प्रायः तत्त्वचिंतक तत्व दर्शक के रूप में सामने आते हैं। भारतीय वास्तुकला के इतिहास में गुप्त जी ने एक नवीन चेतना का शुभारम्भ भी किया। वास्तुकला शासक वर्ग की प्रबल अभिरुचि का प्रतीक ही नहीं, बल्कि वह लोक की वस्तु हो गयी है। लोक, जन जनता और गृहस्थ वास्तुकला से जुड़कर सच्चे राष्ट्र धर्म को व्यक्त कर सकने में समर्थ हुए।

“ये गगन चुम्बित महा प्रासाद
मौन साधे हैं खड़े साविखाद
शिल्प कौशल के सजीव प्रमाण
शाद से किसके हुए पाषाण।¹⁰

गुप्त जी ने जिस स्थापत्य का संकेत ‘साकेत’ में किया है उसमें अद्भुत कला का परिचय कवि के द्वारा दिया गया है जो एक होनी से स्थापत्य का रूप संवारा है, वह क्षेत्रिय होकर भी भूमण्डल का हो जाता है। बुन्देली होकर भी भारतीय हो जाता है। साकेत में मूर्तिकला के पीछे मानव समाज की कला अभिरुचियों के मूर्त रूप देने का प्रयत्न परिलक्षित होता है। भावनाओं को पत्थर धातु मंदिर की दीवाली और उसके भीतर उत्कीर्ण करने का उल्लेख साकेत में मिलता है।

- (क) यह सजीव सुवर्ण की प्रतिमा नई
आप विधि के हाथ से ढाली गई ।¹¹
- (ख) झालरों में मंजु मुक्ता हैं पुहे ।¹²
भाग में जिस भांति जाते हैं गुहे ।¹³
- (ग) मूर्ति सी बनी हुयी उस दौर ।¹⁴
- (घ) रम्य रत्नाभरण ढीले यह चले ।¹⁵
- (ङ) ईट-ईट लेकर चुनते हैं हम कोसों का कोट ।
- (च) जब हम सोने को ठोक-पीट कर गढ़ते हैं, तब मान, मूल्य सौन्दर्य सभी बढ़ते¹⁷ हैं ।
- (द) वर्ण-वर्ण सदैव जिसके हो विभूषण कर्ण के क्यों न बनते कवि जनों के ताम्रपत्र सुवर्ण के ।¹⁸

रसायन शास्त्राज्ञ ताम्र को सुवर्ण बना देते हैं । संजीनवी नाकम जड़ी के रस आलेप करने के उपरान्त उसे रासयनिक ढंग से ताप देने पर तांबे को सोने में बदला जा सकता है । उसी प्रकार गुप्त जी का कथन है कि उर्मिला के आंसुओं के रस के लेप और लक्ष्मण के विरट की व्याकुलता से उत्पन्न ताप का प्रयोग कवि ने किया हों तो उनके ताम्रपत्र² भी स्वर्ण पत्र में परिवर्तित हो जाते हैं ।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी भारतीय कला के समर्थक और प्रशंसक थे । कवि की कला चित्रकला सृजन का सम्पूर्ण आधार सचेतन आध्यत्मिक और अंतर्ज्ञानात्मक है । वह विरह का उपचार भी है । तभी तो विरहणी उर्मिला चित्रकला के माध्यम से न केवल वैयक्तिक वेदना का रूपांतरण करती है । बल्कि एक चित्रशाला की स्थापना भी करती है । चित्रकला मानों चेतना के उर्ध्व रूपान्तरण का जैसे जीवन्त सोपान हो । सौन्दर्य बोध और उदात्तीकरण का सर्वोत्तम साधन है चित्रकला । साकेत की सूक्ष्म परीक्षा तथा सतर्कता पूर्वक किये गये मूल्यांकन से पता चलता है । कि कवि ने सर्वत्र ललित कालाओं के प्रति उर्मिला की गुणग्रहित को कौन भूल सकता है यह कवि की कला के प्रति गुण ग्रहित है । जो पात्रों से बिम्बित हुयी है ।

साकेत का कवि रंग रेखा एवं विन्यास के द्वारा जिन चित्रों की स्थापना करता है । वस्तुओं से मूर्तियों चित्रकला से एक महान शिल्पी की आत्मा सचेतन अभिव्यक्ति करने लगती है । उर्मिला साकेत की एक ऐसी ही सचेतन चित्रकार में रेखांकित करती है और रहे-सहे भावों की अभिव्यक्ति साहित्य भावों के माध्यम से व्यक्त करती है ।

- (क) “लाना लाना सखि जूली आंखों में छवि झूली ।¹⁹
- (ख) कौन सा दिखाउं दृश्य वन का बता मैं आज हो रही है आलि मुझे चित्र रचना की चाह नाला पड़ा पंथ में
किनारे जेठ जीजी खड़े अम्बु आवगाह आर्य पुत्रा ले रहे हैं थाह किंवा वे खड़ी हो धूम-प्रभु के सहारे आह
तलवे से कष्टक निकालते हो ये कराह अथवा झुकाये खड़े हों ये लता और जीजी फूल ले रही हो प्रभु दे
रहें हो वाह-वाह ।
- (ग) क्या-क्या होगा साथ मैं क्या बताऊँ
है ही क्या हा आज जो मैं बताऊँ
तो भी तूली प्रस्तिका और वीणा
चौथी मैं हू पांचवी तू प्रवीणा ।²¹

विरहणी उर्मिला की यह चिन्ता की कटी वियोग वेदना के कारण मैं अपनी ललित कलाओं का विस्मरण न कर दूँ “मैं”²² निज ललित कलाएँ भूल न जाऊँ वियोग वेदना में सखि पुरवला शाला खुलवा दें क्यों न आन उपवन मैं मैथिलीशरण गुप्त के साकेत में संगीत का प्रभाव पूर्ण रूपेण परिलक्षित होता है । विरहणी उर्मिला के विरह वर्ण के लिए गुप्ता जी ने सितार के आधारभूत तीन बोल दिये हैं ।

“मिलाप था दूर अभी धनी का
विलाप ही था बस का बनी का
अपूर्व आलाप वही हमारा
राधा विपंपी दिर दार दारा ।।”²³

महान साहित्य की पूर्णता सौन्दर्यपूर्ण कलाओं के संरक्षण में है । साकेत में ललित कलाओं स्थापत्य मूर्तिकरण चित्रकला संगीत पर विशेष आग्रह है।²⁴ गुप्त जी की कविता की यह अतिरिक्त शक्ति है जो उन्हें महाकवि कालिदास की कोटि में लाकर खड़ा कर देती है । गुप्त जी हिन्दी के कालिदास हैं । उन्होंने कविता में कठिन श्रम करके रचनाकार के खेद ओर विशाद की सीमाओं से ऊपर उठकर एक ऐसा सार्थक रचना की है जो मूल्यवान है साकेत में ललित कलाओं के सन्दर्भ से जनजीवन को कवि ने जाति वर्ग की सीमाओं से ऊपर उठाकर प्रेम के सूत्र में बांधने का काम किया है ।

संदर्भ सूची

1. मदनगोपाल, भारत की पाँच कलाएँ (बड़ौदा : शिव पुस्तकालय, कला मन्दिर प्रथम संस्करण 1960 पृ06 ।
2. भागीरथ मिश्र, कला का स्वरूप और काव्य, “वीणा सम्पादक श्यामसुन्दर व्यास, अंक 5 वर्ष 49 मई 1976 (इंदौर मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य समिति प्रेस), पृ0 12 ।
3. प्रभुदयाल मीतल, ब्रज की कलाओं का इतिहास (दिल्ली : साहित्य प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1977) पृ0 10 ।
4. रामलखन शुक्ल, भारतीय सौंदर्य शास्त्र का तात्त्विक विवेचन एवं ललित कलाएँ (दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण 1978) पृ0 173 ।
5. मैथिलीशरण गुप्त साकेत, प्रथम सर्ग पृ0 2 ।
6. तदुपरिवत् प्रथम सर्ग, पृ0 3 ।
7. तदुपरिवत् प्रथम सर्ग, पृ0 4 ।
8. तदुपरिवत् प्रथम सर्ग, पृ0 5 ।
9. तदुपरिवत् प्रथम सर्ग, पृ0 5 ।
10. तदुपरिवत् प्रथम सर्ग, पृ0 116 ।
11. तदुपरिवत् प्रथम सर्ग, पृ0 7 ।
12. तदुपरिवत् प्रथम सर्ग, पृ0 13 ।
13. तदुपरिवत् द्वितीय सर्ग, पृ0 22 ।
14. तदुपरिवत् द्वितीय सर्ग, पृ0 26 ।
15. तदुपरिवत् नवम् सर्ग, पृ0 18 ।
16. तदुपरिवत् उत्तम सर्ग, पृ0 144 ।
17. तदुपरिवत् नवम् सर्ग, पृ0 68 ।
18. तदुपरिवत् प्रथम सर्ग, पृ0 6 ।
19. तदुपरिवत् प्रथम सर्ग, पृ0 218 ।
20. तदुपरिवत् नवम् सर्ग, पृ0 175 ।
21. तदुपरिवत् नवम् सर्ग, पृ0 169 ।
22. तदुपरिवत् नवम् सर्ग, पृ0 174 ।
23. तदुपरिवत् नवम् सर्ग, पृ0 195 ।
24. प्रभु दयाल मीतल, ब्रज, की कलाओं को इतिहास (दिल्ली साहित्य प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1977) पृ0 1 ।



अज्ञेय : मुक्ति की अवधारणा और उपन्यास

डॉ. हेमलता सुमन
एसोसिएट प्रोफेसर
नारायण पी. जी. कॉलेज, शिकोहाबाद

बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न अज्ञेय का हिन्दी साहित्याकाश में अद्वितीय स्थान है। साहित्य की जिस विधा को पारसस्वरूप अज्ञेय जी की लेखनी ने स्पर्श किया वह खरा सोना हो गई और साहित्याकाश में नवदीप्ति के साथ विभूषित हुई। कविता, उपन्यास, कहानी, संस्मरण, निबन्ध तथा आलोचना आदि सभी को नई रोशनी प्रदान की। स्वभावतः कवि अज्ञेय की कविता का सौन्दर्य बोध, कविता के इतर भी दिखाई देता है। महादेवी वर्मा ने अज्ञेय के बारे में कहा कि –

“यद्यपि अज्ञेय हमारी विचारधारा के विरोधी थे, छायावाद के विरोध में प्रयोगवाद, खड़ा किया गया, लेकिन हम लोगों में व्यक्तिगत कोई विरोध न था, मेरी समझ से साहित्य में कोई प्रयोग किया ही नहीं जा सकता, और न ही कोई प्रयोग साहित्य में होता है। महान साहित्यकार हमेशा प्रासंगिक होता है, अज्ञेय श्रेष्ठ कवि भी हैं, कथाकार भी हैं।”

छायावादी कविता जब अपने पराभव की ओर बढ़ रही थी और ‘प्रगतिवाद’ अपने उठान पर था, उसी समय वस्तु और शिल्प दोनों में नवीनता का आग्रह लेकर एक नये युग की शुरुआत हुई, जिसे प्रयोगवाद की संज्ञा दी गई। प्रयोगवाद के सम्बन्ध में रामधारी सिंह ‘दिनकर’ ने लिखा कि – जब प्रगतिवादी के नाम साहित्य में कनस्तर बजाये जाने लगे और साहित्यिक मूल्यों का ह्रास होने लगा तब यह आवश्यक हो गया कि हिन्दी में काव्य और शैली के हिलते हुए महत्व को सुरक्षित करने के लिए कोई बड़ा प्रयास किया जाये। यह प्रयास धीरे-धीरे बढ़कर ‘प्रयोगवाद’ बन गया।

1943 में अज्ञेय द्वारा सम्पादित पहला ‘तार सप्तक’ प्रयोगवाद का प्रस्थान बिंदु बना। इसमें शामिल गजाननः माधव ‘मुक्तिबोध’ नेमिचन्द्र जैन, रामविलास शर्मा आदि आधार स्तम्भ रहे। ‘दूसरा तार सप्तक 1951 में तथा तीसरा सप्तक 1959 में आया। प्रारम्भ में सामाजिक सरोकारों से जुड़े विद्रोही अज्ञेय प्रगतिशील आंदोलन से अलग होने के बाद व्यक्तिवादी तथा रहस्यवादी बन गये। छात्र-जीवन में वह चन्द्रशेखर ‘आजाद’ एवं भगतसिंह की ‘हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन’ पार्टी के सदस्य बने।

1930-1934 के दौरान अज्ञेय एक माह लाहौर किले में तथा तीन वर्ष 6 माह दिल्ली और पंजाब की जेलों में रहे। 1934 में रिहाई के बाद समाचार पत्रों में सम्पादन कार्य शुरू किया। जिस प्रगतिशील संघ से वे जुड़े उसी से, 1934 में दिल्ली में फासिस्ट विरोधी सम्मेलन आयोजित करने वाले अज्ञेय प्रगतिशील धारा के विरुद्ध हो गये और आधुनिकता के अग्रदूत कहलाये, उनका दृष्टिकोण पूर्व व्यक्तिवादी और मनुवादी हो गया।¹ ऐसे में अज्ञेय की संवेदनाओं का विस्तार युग सापेक्ष कम और व्यक्ति सापेक्ष अधिक हो गया। जो ‘अपने-अपने अजनबी’ उपन्यास में नजर आता है।

हमारी संस्कृति में बौद्ध दर्शन को छोड़ सभी अधिकांश पौरत्य दर्शन प्रायः मृत्यु की साधारणता और अभयकरता को ही चित्रित करते रहे हैं कारण कि यहाँ जीवन को वृत्ताकार रूप में लिया गया है, जबकि पाश्चात्य संस्कृति में मृत्यु की भयावहता अनेक गुणित हो जाती है। परिणामतः काफ़का, कामू, सार्त्र प्रभृति ने न केवल मृत्यु केन्द्र दर्शन की मीमांसा की, बल्कि अपनी श्रुतियों में उसे व्याख्यायित भी किया है।

अज्ञेय द्वारा सन् 1961 में रचित उपन्यास 'अपने-अपने अजनबी' में मृत्यु की मीमांसा अत्यंत सहज रूप से कहानी को अंतिम पड़ाव तक ले जाती है। जिसमें पश्चिमी शैली का पुट नजर आता है। वैसे उपन्यास की मुख्य स्त्री पात्र सेल्मा योके तथा पुरुष पात्र यान् तथा जगन्नाथ के कतिपय प्रसंगों में भारतीय दृष्टि का किंचित योग दिखता है और जो लेखक को भी अभिप्रेष है। योके का उक्त कथन—

“वह मरती हुई भी जिये जा रही है, और मैं हूँ कि जीती हुई भी मर हूँ और मरना चाह रही हूँ।⁴ यही उद्घटित करता है।” कैसर से ग्रसित सेल्मा बर्फ के नीचे बंद काठघर में कैद होने के बावजूद भी प्रसन्न रहती है, क्रिसमस के आगमन की प्रतीक्षा में गीत गाना, तैयारी करना, निर्जीव वस्तुओं का दुलारना आशीर्वाद देना, हंसकर बातें करना और सकारात्मक ऊर्जा से पूरित रहना उसकी आस्था तथा प्रेम के परिचायक हैं, यहाँ तक की उसकी सह-हिम कैदी योके, सेल्मा की इस प्रवृत्ति से चिढ़ती है। चिमनी सी आम यौक को मरण की आग प्रतीत होती है, वह सेल्मा से कहती है—

“इस लाल-लाल आग को देखकर लगता है कि अभी शैतान चिमनी के भीतर से उतरकर कब्र में आ जायेगा हमसे हिसाब करेगा..... सेल्मा कहती है — चिमनी से उतरकर शैतान नहीं सन्त निकोलस आता है।”⁵ और अचानक सेल्मा योके से पूछ बैठती है—“योके तुम्हारा ध्यान हमेशा मृत्यु की ओर क्यों रहता है”?

मुझको हठात् गुस्सा आ गया मैंने रुखाई से कहा—“क्यों कि वही एकमात्र सच्चाई है।...क्योंकि हम सब को मरना है। मृत्यु का भय योके को आक्रान्त किये रहता है। जबकि सेल्मा मगन रहती है। कैसर ग्रस्त वृद्ध जर्जर शरीर वाली सेल्मा के लिये तो मृत्यु वरदान ही साबित होगी किन्तु योके के सामने तो पूरी जिन्दगी पड़ी है जीन के लिये, प्रातः मृत्यु से आक्रान्त होना स्वाभाविक भी है। वह सेल्मा की प्रसन्न रहने की प्रवृत्ति को सोचती है कि मृत्यु के इतने करीब होने पर कोई इतना प्रसन्न एवं मगन कैसे रह सकता है। सेल्मा मृत्यु के साक्षात्कार की स्थितियों से पहले भी गुजर चुकी है। बाढ़ के दिनों में टूटे हुए पुल पर मृत्यु के ताण्डव का, बेटों को तराई में छोड़कर पहाड़ पर अकेले रहना, मृत्यु की कामना अकेले ही करना, अपने दुःखों का अकेले ही झेलना, किसी की भी सहायता न लेना, पीने का होते हुए भी फोटोग्राफर का पानी न देना, भूखे पान को ऊँचे दाम पर गौप्त देना आदि प्रसंग सेल्मा की आत्मकेन्द्रित अहंवादिता एवं क्षुद्रस्वार्थ वृत्ति के द्योतक हैं।

‘अपने-अपने अजनबी’ उपन्यास की कथावस्तु दो सत्य घटनाओं पर आधारित है, ऐसा स्वयं अज्ञेय का कहना है। काठकर वाली सूचना उन्हें अपने मित्र जो स्वीडन से थे, उनसे मिली तो जगन्नाथ वाले वृत्तान्त का कुछ आधार लखनऊ के एक मित्र से प्राप्त हुआ था—⁶ तथापि यह दोनों घटनाएँ साधारण जीवन से सम्बन्धित नहीं हैं। पूरे उपन्यास में अस्तित्ववादी शब्दावली — स्वतंत्रता, वरण, विसंगति, मृत्यु का डर आदि का प्रयोग हुआ है।⁷ अस्तित्ववादी उपन्यासों का शिल्प भी कुछ भिन्नता लिये हुये रहता है, क्योंकि उसके कथ्य का सम्बन्ध मानव बुद्धि या मानवमन से होता है। अतः मनोविश्लेषणवादी शैली अधिक अनुकूल है। इस उपन्यास के तीनों भागों — ‘योके और सेल्मा और योके’ में से प्रथम भाग — योके की डायरी द्वारा, द्वितीय — सेल्मा की स्मृति द्वारा तथा तृतीय पुनः योके द्वारा प्रस्तुत हुआ है। घटना संकोच, पात्रों की कमतरता, सांकेतिक कहीं अधिकता, प्रतीकात्मक प्रभूति, शिल्प में नये आयाम में दृष्टिगत होते हैं।

यूँ ‘अपने-अपने अजनबी’ की कहानी अत्यन्त रोचक और मनोविश्लेषणात्मक है। तो अज्ञेय की मुक्ति की अवधारणा को और भी अधिक स्पष्ट करती है एकान्तवासी होकर जब सेल्मा, योके को जीवन के विगत अनुभवों को सुनाती है तो योके सिहर उठती है। कथावस्तु का ताना बाना ‘काठघर’ में बुना होता है जिसमें दोनों स्त्रियाँ मौत का इंतजार कर रही हैं। काठघर बर्फ के नीचे है जो अल्पतम संसाधनों तथा खराब मौसम के कारण मृत्यु की भयावहता को और बढ़ा रहा है। ऐसे में योके का चिंतित होना, मृत्यु से डरना तथा एक-एक दिन गिनना स्वभाविकता को दर्शाता है। इसी ओर सेल्मा आंटी मृत्यु का नहीं क्रिसमस का इंतजार करती दिखती है, खुशी

के गीत गाती है, और उत्सव मनाने की तैयारी में संलग्न रहती है जैसे कुछ भी हुआ ही नहीं, उनकी इसी आदत से योके चिढ़ती है।

अज्ञेय का उपन्यास 'शेखर एक जीवनी' प्रथम भाग 1941 में प्रकाशित हुआ जिसमें परम्पराओं का निर्वहन न होकर आधुनिकता का समावेश हुआ, जो 'स्वतंत्रता की खोज' करता शेखर परिस्थितियों के बीच अनेक आंतरिक संघर्षों एवं तनावों से गुजरता है और विद्रोही बन जाता है। इसमें अज्ञेय की जिज्ञासा दृष्टिगोचर हुई, वह क्रान्तिकारी के रूप को जिज्ञासावश अपने जीवन की नियति को समझाने का प्रयास करते हैं, असहयोग आंदोलन, अछूत समस्या, गरीबी-असमानता, वर्गभेद, मध्यवर्गीय मनोवृत्ति, क्रान्तिकारी हिंसा-अहिंसा आदि से सम्बद्ध अनेक दृश्यकालीन मानसिकता का संभाष्य नहीं अपितु भारत की स्थिति का भी उद्घाटन करते हैं। इस उपन्यास में मूल प्रश्नों का प्रदत्त नहीं बल्कि समाधान भी है और यही सत्य, यथार्थ का यही अनुभव उसे दिये गये नामों, प्रतीकों के प्रति अविश्वासी और संशयालु बनाता है। उपन्यास में प्रश्नों और जिज्ञासाओं की श्रृंखला तथा उसके संदर्भ और फिर नये प्रश्न, नये उत्तर, नये समाधान रचना के क्षीण और अस्त व्यस्त घटनाओं और सूत्रों को पिरोते हैं। शेखर सोचता है कि मनुष्य की सिद्धि क्या है। 'शेखर: एक जीवन के अनुसार वह एक क्रान्तिकारी की जीवनी को प्रस्तुत करने वाला उपन्यास है। अज्ञेय शेखर को लेकर कहते हैं—

“शेखर निःसंदेह एक व्यक्ति का अभिन्नतम निजी दस्तावेज है। वह साथ ही उस व्यक्ति के युग संघर्ष का प्रतिबिम्ब भी है।” फिर अज्ञेय जोर देकर कहते हैं — मेरा आग्रह है कि उसमें मेरा समान युग बोलता है कि वह मेरे और शेखर के युग का प्रतीक है। विद्रोह ही शेखर की मूल प्रवृत्ति है। स्वातंत्र्य की खोज के बहाने अज्ञेय ने अनेक चरित्रों की सृष्टि की है।

अज्ञेय के दूसरे उपन्यास 'शेखर एक जीवनी' में अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक गतिविधियों का चित्रण हुआ है। साथ ही स्वातंत्र्य की खोज, व्यक्तित्व की सम्पूर्णता, विद्रोह और क्रान्ति, हिंसावाद एवं मानवीयता को परिभाषित करने का सार्थक प्रयास दिखाई देता है। सन् 1944 में शेखर का दूसरा भाग छपकर आया जिसमें शेखर के चरित्र विकास के माध्यम से अज्ञेय ने नैतिक समस्याओं को आगे बढ़ाया है। शेखर अपने ऊपर समाज द्वारा थोपे मूल्यों को साफ नकार देता है, ईश्वर के प्रति उसकी अनिष्टा उसकी प्रवृत्ति को प्रकट करती है उसे ईश्वर की नहीं अपने मूल्यों की तलाश रही जो उसकी आभ्यन्तर की प्रेरणा पर आधारित थे। परिवार के सभी सदस्य ईश्वर की आराधना करते हैं तो वह अलग खड़ा सब देखता रहता है। वह अपने पिता से कहता है — “मैं ईश्वर को नहीं मानता, मैं प्रार्थना को भी नहीं मानता, ईश्वर नहीं है।”⁸

मुक्ति की खोज में शेखर पहले पहल उन वस्तुओं से उलझता था जो स्थूल थीं, जिन्हें वह देख सकता था, पर अब वह कल्पना का सहारा लेता है, इसका मन व्यग्र रहता है, वह अपने यथार्थ संसार में बार-बार वापिस लौटता है जहाँ वह स्थूल और वाह्य सच्चाइयों से टकराता है। शेखर के माध्यम से अज्ञेय ने यह स्पष्ट किया है कि परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से व्यक्तित्व का किस तरह विकास होता है। व्यक्ति के जीवन का उतार चढ़ाव का सत्य-समाज का सत्य बन जाता है। इस उपन्यास के बारे में लक्ष्मीसागर जी ने लिखा— “कुल मिलाकर 'शेखर एक जीवनी' उपन्यास साहित्य की अनूठी उपलब्धि है, इसमें कोई संदेह नहीं। इसमें व्यक्ति भी है और समाज भी। व्यक्ति का संदेश है कि वह अपनी उपयोगिता सिद्ध करे अर्थात् समाज की नियामक शक्ति बने। समाज से इस बात की कामना की गई है कि उसकी महत्ता तभी तक है जब तककि व्यक्ति की निजता बनी रहे। समाज उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता है। इस प्रकार शेखर के माध्यम से 'व्यक्ति सत्य के साथ' 'समष्टि सत्य' को पाने और दोनों में परस्पर संतुलन स्थापित करने की चेष्टा प्रतिफलित हुई है।

इस उपन्यास के दो भाग हैं। प्रथम भाग उत्थान है जो 1941 में प्रकाशित हुआ और दूसरा भाग संघर्ष है जो 1944 में प्रकाशित हुआ। शेखर एक जीवनी-प्रथम भाग में चार खण्ड हैं— उषा और ईश्वर, बीज और अंकुर,

प्रगति और पुरुष तथा तथा और परिस्थिति। इसी प्रकार 'शेखर एक जीवनी' द्वितीय भाग भी चार खण्डों में विभक्त है—पुरुष और परिस्थिति, बंधन और जिज्ञासा, शशि और शेखर तथा धागे, रस्सियाँ, गुर्झर। इसे अधिकांश विद्वान जीवनी परक उपन्यास मानते हैं क्योंकि इसमें अज्ञेय स्वयं अपने जीवन की छाया पाते हैं, यह एक मनोविश्लेषण परक उपन्यास है, जिसमें शेखर की अहम भावना एवं इसका व्यक्तित्व 'काम भावना' से परिचालित है। नायिका शशि, शेखर के दूर के रिश्ते में मौसी की बेटी अर्थात् बहिन है जिससे शेखर प्रेम करने लगता है किन्तु जीवनपर्यन्त कुछ नहीं पाता। शशि ने ही शेखर के जीवन को अर्थ और उद्देश्य दिया था, एक ऐसी निधि दी थी जिसके गौरव के लिए जीना और लड़ना और मरना स्वयं पुरुष का गौरव है। शेखर मृत्यु की आशंका से अपने मर्म स्थल को जैसे चोटें सहने के लिये छोड़ देता है। उसे फांसी की सजा हुई है। अपराध भी क्या अपराध। जेल की कोठरी में जब उसे एक 24 वर्ष तक का जाट युवक मिलता है। जिसकी आँखें निर्भीक और स्वच्छ हैं। शेखर सोच नहीं पाता कि यह व्यक्ति हत्यारा हो सकता है। मौत का एक बाकया प्रस्तुत है—

“कार्तिक में एक दिन सुना राम जी की अपील मंजूर हो गयी है और चौथे दिन उसे फांसी हो जायेगी...शेखर उदास था। पर राम जी पर मानो कोई असर ही नहीं था, जैसे कोई नई बात हुई ही नहीं थी।

शाम को राम जी ने शेखर को पुकारा 'बाबू साहब!

शेखर जंगले पर आकर बोला, क्या है?

'आपने कभी फांसी देखी है?

'नहीं।'

'आप तो लिखने वाले हैं न, आपको सब कुछ देखना चाहिये'।

'.....'

शेखर निस्तब्ध कुछ नहीं बोल सका...शेखर उस दिन बाहर नहीं निकला राम जी परेशान होकर बोला—

'बाबू जी आप तो बात ही नहीं करे.....उदास दिखते हैं..... घर से कोई बुरी चिट्ठी आई है क्या? लीजिये मैं गाकर आपका मन बहलाता हूँ.... ऐसा मौका कब मिलेगा?'

शेखर लज्जा से गड़ गया....

राम जी आधी रात तक गाता रहा....शेखर को न जाने कब नींद आ गई.... आधी रात के लगभग राम जी गाते—गाते थक गया....। सुबह डॉक्टर राम जी का परीक्षण करने आया—

'डॉक्टर साहब, टांग तो आप देंगे ही, फिर नाड़ी क्यों देखते हो?'

'भाई मेरा फर्ज है सो अदा करता हूँ। तुम भी खुदा को याद करो—'

डॉक्टर गया। दिन निकलते—निकलते साहब, दरोगा, मैजिस्ट्रेट, चीफ बार्डर और बार्डरों की फौज आ गयी। उसे ले जाने लगे.... एकाएक आँगन के फाटक पर राम जी—अच्छा बाबूजी अब तो फिर कभी मिलेंगे, उस पार कहीं—'एक द्रुत मुस्कान—जुलूस चला गया—और जंगले भींचकर पकड़े हुए शेखर सहसा पाता है, कि उसकी मुठियाँ खुल गई हैं, हाथ छिटक गये, सिर झुक गया है....

शेखर के माध्यम से कहीं न कहीं अज्ञेय स्वयं ही व्यक्त हुये और अज्ञेय अपने उपन्यासों में मुक्ति की साधना का बेहतरीन ढंग से प्रस्तुत करते हैं। मानव—मन की पीड़ा अंतर्द्वंद्व और अज्ञात के प्रति चरम स्थिति, अस्तित्ववादी सोच जो कि सार्वलौकिक और साधारण है....“हमारी तात्कालिक चिंताएँ उस एक परम चिंतन में परिणत हो जाती हैं जो कि आधुनिक व्यक्ति के लिये आस्था, विश्वास, धर्म का उसे और जो कुछ भी नाम दे दें उसका पर्याय है—वह ठोस आधारशिला जिस पर वह मूल्यों की इमारत खड़ी करता है—इस आशा के साथ ही कि वे टिकाऊ सिद्ध होंगे।”

भीड़ों में
जब-जब जिस-जिससे आँखें मिलती हैं
वह सहसा दिख जाता है
मानवः
अंगार-सा भगवान-सा
अकेला।
और हमारे सारे लोकाचार
राख की युगों – युगों की परतें हैं।⁹

निष्कर्षतः इस उपन्यास में पलायनवादी शेखर कहीं न कहीं जुझारु, परपक्व एवं समर्थ भी हैं जो चिंतनशीलता को प्रकट करता है, शेखर भारतीयों परिस्थितियों से ही विकसित होता है।

अज्ञेय का तीसरा उपन्यास 'नदी के द्वीप' अज्ञेय के जीवन दर्शन का आईना है। उपन्यास का प्रारम्भ ही अज्ञेय की काव्य पंक्तियों से होता है—

दुःख सब को माँजता है
और
चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना
वह न जाने
किंतु जिनको माँजता है
उन्हें यह सीख देता है
कि...सबको मुक्त रखें—¹⁰

उपन्यास की नायिका रेखा का सारा जीवन जैसे अज्ञेय की इन पंक्तियों की सार्थकता प्रमाणित करता है। अज्ञेय के जीवन दर्शन के अनेक सूत्र रेखा की ओर से दी गयी जीवन और अस्तित्व की व्याख्या में अविकल रूप में मौजूद हैं जैसे—“हम जीवन की नदी के अलग-अलग द्वीप हैं— ऐसे द्वीप स्थिर नहीं होते, नदी निरंतर उनका भाग्य गढ़ती चलती है द्वीप अलग-अलग होकर भी निरंतर घुलते और पुनः बनते रहते हैं—नया घोल, नये अणुओं का मिश्रण, नयी तलछट, एक स्थान से मिटकर दूसरे स्थान पर जमते हुए नये द्वीप....”—¹¹

समस्त कथ्य अंत में अनवरत् प्रतीक्षा में लीन रहकर जीवन को सार्थक बनाने में सिमट जाता है— मूल्यवान और सम्पूक्त क्षण, क्योंकि प्रतीक्षा के— वह प्रतीक्षा चाहे कितनी भी लम्बी हो कर्म की इस अजब प्रवाहिनी नदी से लम्बी भुवन प्रतीक्षा करेगा, जैसे कि निसंदेह गौरा भी प्रतीक्षा करेगी.... क्योंकि प्रतीक्षाएँ भी अजय, अनागत काल की नदी में स्थिर, शिथिल नदी के द्वीप हैं।”—¹²

‘नदी के द्वीप एक मार्मिक पठनीय कृति है। गद्य और शिल्प की गरिमा उसे पठनीय बनाती है। अज्ञेय की शैली प्रायः तद्भव, ठेठ और भारतीयता से पूर्ण है, उनके उपन्यास पाश्चात्य शैली से आंशिक प्रभावित प्रतीत होते हैं। ‘अपने-अपने अजनबी’ की सामानान्तर कृति ‘आंगन के पार-द्वार’ को उदाहरण के रूप में ले सकते हैं।”—¹³

भारतीय संस्कृति में मृत्यु का स्वीकार इतना गहरा है, उसका काल प्रतीक मृत्यु की प्रतिज्ञा लेकर चलता है, जबकि दूसरी ओर आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता, जिसमें मृत्यु को नकारने का इतना प्रबल आग्रह है, काल की कोई ऐसी अवधारणा न कर सकें जिसमें वह मृत्युन्मुख गति से ही इतना कुछ हो सकता है कदाचित इसका कारण यही हो कि ‘मृत्यु का स्वीकार’ ही इसे सम्भव बना देता है हम उसे पृथक तत्व मानकर एक ओर रख सकें, और हमारा सारा काल चिंतन उसकी (मृत्यु) की गहरी छाया से ग्रसित न हो जाये—

1. साँस का पुतला हूँ मैं :
जरा से बंधा हूँ और
मरण को दे दिया गया हूँ
2. फिर मैं सपने से जाग गया।
हाँ जाग गया।
पर क्या यह जगा हुआ मैं
अब से युग-युग
उसी संधि रेखा पर वैसा
किरण बिद्ध ही बंधा रहूँगा?

उक्त दोनों ही विचार मय श्रृंखला अज्ञेय जी की एक व्याख्यान माला से ली गई है जो उन्होंने कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले (कैलीफोर्निया) में दी-¹⁴

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अज्ञेय ने अपने छात्र जीवन से ही भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में मानव मुक्ति के लिये सक्रिय भूमिका निभाई। कई वर्षों तक जेल की यातना भरी जिंदगी व्यतीत की। उपन्यास शेखर एक जीवनी की रचना अज्ञेय ने जेल में ही की।

“दुःख सभी को माँजता है, यह आत्मज्ञान दर्शन अज्ञेय ने अनुभव से ही प्राप्त किया, जेल से बरी होने पर उन्होंने किसान आंदोलनों में काम किया। अज्ञेय निसंदेह बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने साहित्य के विविध क्षेत्रों पदार्पण किया। अद्भुत एवं अनुपम ग्रंथों की रचना की है। क्रांति धर्मी, विद्रोही अज्ञेय कुशल साहित्यकार के रूप में हिन्दी साहित्याकाश में दीप्त रहेंगे।



परशुराम शुक्ल के बाल साहित्य का शिल्प विधान

डॉ. आनन्द बक्षी

हिन्दी विभाग

कला, विज्ञान व वाणिज्य महाविद्यालय चिखलदरा, ता. चिखलदरा, जिला अमरावती (महाराष्ट्र)

भाषा :

भाषा हृदयगत विचारों को प्रकट करने का सशक्त माध्यम है। प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ सोचता है और अन्य व्यक्तियों से अपनी बात साझा करना चाहता है। इस प्रकार विचारों के आदान प्रदान के लिए प्रयोग किया जानेवाला माध्यम भाषा है। डॉ. प्रणोति पाटिल ने लिखा है— “भाषा पर ही सभी मनुष्यों का व्यवहारिक जीवन टिका हुआ है। भाषा वह है जिसे हम मनुष्य मात्र बोलते हैं, आदिकाल से बोलते आ रहे हैं। जीवन के प्रारंभ काल से लेकर वर्तमान तक भाषा के स्वरूप में निखार आया है, भाषा का विकास हुआ है।”¹

भाषा वह है जो व्यक्ति के विचारों को भासित करदे। भासित करने का तात्पर्य व्यक्ति के अंतः व्यक्तित्व से है। व्यक्ति मन में विचार करता है और मुख से प्रकट करता है। डॉ. परशुराम शुक्ल ने अपनी पद्य एवं गद्य रचनाओं में हिन्दी खड़ी बोली का प्रयोग किया है। सभी भारतीय भाषाओं का सम्मान करते हुए शुक्ल जी ने हिन्दी खड़ी बोली में बाल साहित्य रचना को प्रमुखता प्रदान की है।

डॉ. परशुराम शुक्ल बाल साहित्य के अनुरूप सरल, कोमल भाषा का प्रयोग करने में सिद्धहस्त हैं। इनके लिखे शिशुगीतों एवं बालगीतों की भाषा सरल, कोमल और प्रभावकारी है। एक उदाहरण निम्नानुसार है—

“नीले पीले लाल गुलाबी,
रंग बिरंगे प्यारे फूल।
बागों में खुशबू फैलाते,
सारे जग से न्यारे फूल।।
बेला और गुलाब गुलमोहर,
हँसते गाते सारे फूल।
किन्तु तोड़ ले इनको यदि तो,
मुरझाते बेचारे फूल।।”²

उपर्युक्त शिशुगीत की भाषा में कोमलकांत शब्दावली का प्रयोग किया गया है। भाषा में सम्प्रेषणीयता और प्रभावात्मकता दर्शनीय है। इस प्रकार की सरल कोमल भाषा में लिखे गये बाल एवं शिशुगीतों को छोटे बच्चे आसानी से कंठस्थ कर सकते हैं। डॉ. परशुराम शुक्ल को शिशु, बाल एवं किशोर आयु वर्ग के बच्चों के लिए भाषा का प्रयोग करने में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। शिशुगीतों की भाषा की अपेक्षा बाल एवं किशोर गीतों की भाषा कुछ कठिन हुई है। एक बालगीत निम्नानुसार दृष्टव्य है—

“जो अशक्त वह कैसा तन है?
जो मैला वह कैसा मन है?
काले धन से भरे तिजोरी,
ऐसा धन भी कोई धन है?”

प्रतिदिन नियमित कसरत करके,
लोहे-सा निज बदन बनाओ।
मानवता की सेवा कर के,
अपने मन का कमल खिलाओ।।³

उपर्युक्त बालगीत बड़े बच्चों के लिए है। यही कारण है कि शिशुगीत की तुलना में इस गीत की भाषा कुछ विलष्ट और परिमार्जित है। डॉ. परशुराम शुक्ल की काव्य भाषा के विषय में श्री राजेन्द्रकुमार शर्मा ने लिखा है— “वैश्वीकरण के इस युग और वैज्ञानिक दौड़ में बच्चों को प्रभावपूर्ण भाषा का ज्ञान होना आवश्यक है। एक ऐसी भाषा जिसमें विभिन्न भाषाओं के प्रचलित शब्द हों तथा जो बच्चों के सरोकार को स्पष्ट करती हो। श्री शुक्ल ने अपने बालगीतों में इस बात का पूरा ध्यान रखा है और समय, परिस्थिति एवं प्रसंगानुकूल शब्दों का प्रयोग किया है।”⁴

डॉ. परशुराम शुक्ल की गद्य रचनाओं की भाषा भी सम्प्रेषणीय और प्रभावपूर्ण है। इन्होंने तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी, चारों प्रकार की शब्दावली का प्रयोग किया है। संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ ही तद्भव और देशजों का प्रसंगानुकूल प्रयोग डॉ. शुक्ल ने किया है। आधुनिक वैज्ञानिक युग के जीवन के अनुरूप अंग्रेजी भाषा के शब्दों को भी डॉ. शुक्ल ने अपनाया है। विदेशी भाषाओं अरबी, फारसी, अंग्रेजी आदि के शब्द यथास्थान प्रयुक्त होकर भाषा को आकर्षक, सुरुचिपूर्ण तथा सम्प्रेषण से युक्त बना रहे हैं। डॉ. शुक्ल द्वारा प्रयुक्त गद्य की भाषा का एक उदाहरण निम्नानुसार है— “एक बार राजा बीमार पड़ा। राज्य के सभी बड़े बड़े हकीमों, वैद्यों ने उसका इलाज किया, किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। दूर-दूर के नामी हकीमों, वैद्यों को बुलाया गया, किन्तु व्यर्थ। राजा की हालत सुधरने के स्थान पर बिगड़ती चली गयी।”⁵

उपर्युक्त उदाहरण में हकीम, इलाज जैसे अरबी फारसी के शब्द हैं, लाभ, व्यर्थ, वैद्य आदि संस्कृत से अवगत शब्द हैं। उपन्यास की भाषा के अनुरूप उपर्युक्त भाषा सरल, आकर्षक, रुचिकर और सम्प्रेषणीय है।

डॉ. परशुराम शुक्ल ने वैज्ञानिक विषयों के लेखन में विज्ञान से संबंधित शब्दावली का प्रयोग किया है। इस प्रकार की गद्य एवं पद्य रचनाओं में अंग्रेजी की शब्दावली का अच्छा प्रयोग हुआ है। ‘उपयोगी आविष्कार’, ‘बीसवीं सदी का विलक्षण आविष्कार ‘लेसर’ तथा ‘लालकिरण’ की भाषा वैज्ञानिक शब्दावली से युक्त है। लेसर से संबंधित भाषा का एक उदाहरण निम्नानुसार है— “माणिक्य छण पर प्रकाश ऊर्जा पड़ते ही इसमें लेसर प्रक्रिया प्रारंभ हुई और इसके एक सिरे से गहरे लाल रंग की एक लेसर किरण निकली। यह लेसर किरण माणिक्य छड़ के उस सिरे से बाहर निकल रही थी, जिस पर चांदी की परत चढ़ाकर लगभग 60 प्रतिशत पारदर्शक क्षमतावाली पालिश की गई थी। जिनान लैंप द्वारा उत्पन्न होने वाली प्रकाश ऊर्जा के माणिक्य छड़ पर पड़ने से छड़ के दोनों सिरों के मध्य के फोटोन दोनों दर्पणों के मध्य बार-बार परावर्तित हो रहे थे और अंत में माणिक्य छड़ के अर्धपारदर्शक सिरे की तरफ से एक शक्तिशाली प्रकाश अंशु बनकर तीर की तरह बाहर निकल रहे थे।”⁶

उपर्युक्त उदाहरण में डॉ. शुक्ल ने लेसर, पारदर्शक, जिनान, प्रकाश ऊर्जा, फोटोन, परावर्तित, अर्धपारदर्शक आदि वैज्ञानिक भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है। ‘रेलों का विचित्र संसार’ में जहाँ यांत्रिक उपयोग की शब्दावली ने भाषा को समृद्ध किया है, वहीं ‘भारतीय हिरण और गवय’, ‘जलचर कोश’, ‘भारतीय वन्यजीव’ आदि कृतियों में पर्यावरणीय शब्दावली का सुन्दर प्रयोग देखने को मिलता है।

डॉ. परशुराम शुक्ल ने बिम्बों और प्रतीकों से भाषा को आकर्षक और प्रभावपूर्ण बनाया है। भाषा के सहायक उपादानों, मुहावरों, कहावतों, द्विरुक्तियों आदि के प्रयोग ने भाषा को शक्ति संपन्न बनाया है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि डॉ. परशुराम शुक्ल के बाल साहित्य में भाषा का स्वरूप

बाल साहित्य के अनुरूप सरल, कोमल और संप्रेषणीय है। इन्होंने काव्य और गद्य दोनों ही विधाओं में व्यवहृत भाषा में अनेक नये प्रयोग भी किये हैं, जिससे भाषा समकालीन बाल साहित्य की भाषा का प्रतिनिधित्व करने में समर्थ हो गयी है।

रस :

रस को ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि काव्य का आनन्द भाव ही रस है। मानव हृदय में रस की अनुभूति विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से होती है। आचार्य विश्वनाथप्रसाद ने लिखा है— “विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावों के द्वारा स्थायी भाव जब पूर्ण परिपक्वावस्था को प्राप्त होता है तभी उसकी संज्ञा रस होती है। विभाव कारण होते हैं और अनुभाव उसके कार्य।”⁷

काव्य में रस परिपाक काव्य के आस्वाद में वृद्धि का कारक होता है। बाल काव्य को रुचिपूर्ण बनाने के लिए रस योजना का विशेष महत्व होता है। डॉ. परशुराम शुक्ल द्वारा रचित बालकाव्य में रस संयोजन का स्वरूप श्रेयस्कर बन पड़ा है। श्री राजेन्द्र कुमार शर्मा ने लिखा है— “यदि काव्य में रस नहीं है तो वह काव्य नहीं। इसलिए रस को काव्य का अनिवार्य अंग माना गया है। शिशुगीतों और बाल कविताओं में तो रसों का विशेष महत्व होता है। श्री शुक्ल का मत है कि बाल गीतों में बहुविज्ञता की अपेक्षा रसात्मकता अधिक महत्वपूर्ण होती है। हास्य, मनोरंजन, वात्सल्य, प्रेम, करुणा आदि स्थायी भाव शिशुगीतों एवं बाल कविताओं को सफल बनाने में विशेष योगदान देते हैं। श्री शुक्ल के बालकाव्य में वात्सल्य, हास्य, वीर, शान्त, करुण एवं अद्भुत रस का बड़ा सटीक उपयोग किया गया है।

रस नौ प्रकार के बतलाये गये हैं— “1.श्रंगार, 2.हास्य, 3.अद्भुत, 4.वीर, 5.रौद्र, 6.करुण, 7.वीभत्स, 8.भयानक और 9.शान्त।”⁸ दसवां रस ‘वात्सल्य’ है। दस रसों के दस स्थायी भाव होते हैं। “श्रंगार का रति, हास्य का हास या हंसी, अद्भुत का विस्मय, वीर का उत्साह, रौद्र का क्रोध, करुण का शोक, वीभत्स का घृणा, भयानक का भय, शान्त का निर्वेद तथा वात्सल्य रस का स्थायी भाव अपत्य स्नेह (संतान प्रेम) होता है।” डॉ. परशुराम शुक्ल की काव्य रचनाओं से रसों के उदाहरण विवेचन सहित निम्नवत प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

1— श्रंगार : बाल काव्य में शिष्ट श्रंगार ही संभव होता है। डॉ. परशुराम शुक्ल ने बच्चों के खेल के माध्यम से शिष्ट श्रंगार की अभिव्यक्ति की है—

“मेरी गुड़िया बड़ी हो गयी,
तुम सब गुड़ड़ा राजा लाओ।
शादी में गुड़िया गुड़ड़ा की,
नाचो गाओ, धूम मचाओ।।”⁹

2— हास्य रस : हास्य का स्थायी भाव हास या हंसी है। जिस रचना को पढ़कर बच्चे हंसी का आनंद लें, उस रचना में हास्य रस होता है। उदाहरणार्थ—

“जब देखो तब खाता रहता,
मोटा नाटा मुच्छड़ सेठ।
इसीलिए तो मटके जैसा,
भारी भरकम इसका पेट।।
मुच्छड़ सेठ अगर ऐसे ही,
दिन भर खाना खाएगा।

बच्चों इसका पेट एक दिन,

बम जैसा फट जाएगा ।।¹⁰

उपर्युक्त बालगीत में 'मुच्छड़ सेठ' का विचित्र शरीर और भोजन हास्य का प्रतीक बन रहा है।

3— अद्भुत रस : विस्मयकारी वर्णन से युक्त रचना में अद्भुत रस होता है जैसे—

“मन करता है मछली बनकर,

सागर में खो जाऊँ।

जल परियों संग नाचूँ गाऊँ,

लहरों में सो जाऊँ।

मन करता है भौरा बनकर,

फूलों पर मंडराऊँ।

रंग बिरंगी इस दुनिया में,

जी भर मौज मनाऊँ ।।¹¹

उपर्युक्त उदाहरण में लोकसीमा का उल्लंघन किया गया है। इस कारण अद्भुत रस है। वर्णन में विस्मय का भाव है।

4— वीर रस : जिस काव्य को पढ़कर बच्चों के हृदय में साहस और वीरता का संचार हो वहाँ पर वीर रस होता है। जैसे—

“मिट्टी का छोटा सा दीपक, अंधकार से कभी न डरता।

भरकर नेह हृदय में अपने, सारा जग आलोकित करता ।।

हिम्मत, साहस और लगन से, तूफानों से जा टकराता।

आएँ कितनी भी बाधाएँ, दीपक कभी नहीं घबराता ।।¹²

5— करुण रस : दुःख, पीड़ा और करुणा की अनुभूति करानेवाले वर्णनों में करुण रहता है। इसका स्थायी भाव शोक होता है—

“चले गये क्यों दूर बहुत तुम

छोड़ मुझे यूँ दादा।

तोड़ लिया क्यों रिश्ता मुझसे,

तोड़ दिया क्यों वादा ।।¹³

6— भयानक रस : भय उत्पादक काव्य वर्णनों में भयानक रस होता है। यथा—

“अमरीका की ब्लैक विडो तो

जंगल में प्रायः मिल जाती।

बड़ी विषैली औ घातक यह,

भूरे बिच्छू तक खा जाती ।।¹⁴

उपर्युक्त उदाहरण में ब्लैकविडो नामक भयानक मकड़ी का वर्णन किया गया है।

7— शांत रस : जिस काव्य को पढ़कर मन शांत, निर्मल होकर निर्वेद से भर जाए, उसमें शांत रस होता है। प्रायः भक्तिपूर्ण प्रार्थनाएँ इसमें आती हैं। जैसे—

“हे देव तुम्हारे चरणों में,
नत मस्तक जग सारा।
हे दया निधे करुणा करके,
करो दूर अधियारा।।”¹⁵

8— वात्सल्य रस : जिस काव्य में संतान के प्रति प्रेम, लाड़, दुलार दर्शाया जा रहा हो, उसमें वात्सल्य रस होता है—

“पापा की मुस्कातीं आँखें,
दीदी की इठलाती आँखें।
कौन भुला सकता है जग में,
माँ की नेह लुटातीं आँखें।।”¹⁶

डॉ. परशुराम शुक्ल की काव्य रचनाओं में श्रृंगार, वीर, हास्य, अद्भुत, करुण, वात्सल्य, शांत, भयानक आदि रसों के उदाहरण सहज रूप से उपलब्ध हो जाते हैं। बालकाव्य में वीभत्स एवं रौद्र रसों के वर्णनों का प्रायः अभाव रहता है। डॉ. शुक्ल की काव्य कृतियों में भी रौद्र और वीभत्स वर्णनों का अभाव सा है।

शुक्ल जी की कहानियाँ और उपन्यास भी सरस, सुरुचिपूर्ण हैं। नाटकों और धारावाहिकों में भी रसपूर्ण वर्णन किए गए हैं।

उपर्युक्त वर्णन के अनुसार कहा जा सकता है कि रस निरूपण की दृष्टि से डॉ. परशुराम शुक्ल का बाल साहित्य सफल है।

छंद :

छंद कविता की देह है। कवि रचनाकार जिस स्वरूप में अपने भावों को प्रकट करता है, वह कविता का शरीर, काव्य का छंद कहलाता है। राष्ट्रभाषा कोश के अनुसार छंद का अभिप्राय पद अर्थात् वह वाक्य जिसमें वर्णों और मात्राओं की गणना निश्चित करके विराम, यति, गति आदि का निर्धारण किया जाता है।¹⁷ जगन्नाथ प्रसाद भानु ने छंद की परिभाषा करते हुए लिखा है— “मात्रा-वर्ण की रचना, गति का नियम और चरणांत में समता जिस वाक्य रचना द्वारा हो, उसको छंद कहा जाता है।”¹⁸ छंद चार चार या दो-दो चरणों वाले होते हैं। विषम चरणों वाले छंद भी देखे गए हैं। छंद दो प्रकार के होते हैं— मात्रिक तथा वर्णिक। मात्रिक छंदों के तीन रूप— सममात्रिक, अर्द्धसम मात्रिक तथा विषम मात्रिक छंद।

बालकाव्य में गेय छन्दों का महत्व होता है, जिन्हें बच्चे स्वर और लय के साथ गा सकें। डॉ. परशुराम शुक्ल ने अपनी बाल कविताओं में छन्द की दृष्टि से समकालीन छंद शैली का अनुगमन किया है। इन्होंने पारम्परिक छंदों में केवल दोहा छंद स्वीकार किया है। ‘बाल सतसई’ रचना में श्री शुक्ल ने सात सौ दोहे दिए हैं।

दोहा छंद में 13—11 की यति पर चार चरण होते हैं। प्रथम तथा तृतीय चरणों में 13—13 तथा द्वितीय और चतुर्थ चरणों में 11—11 मात्रायें होती हैं तथा अंत में गुरु लघु वर्ण होते हैं। डॉ. परशुराम शुक्ल की बात सतसई से एक दोहा निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा रहा है—

“तेज धूप में खेलते, और मारते बाल।
लाल टमाटर हो रहे, इनके गोरे गाल।।”¹⁹

समकालीन बालकाव्य के वस्तु तत्व तथा अभिव्यक्ति की स्वच्छन्दता के आधार पर नये-नये छन्दों की रचना हुई है। डॉ. परशुराम शुक्ल के बाल गीतों में यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है। इन्होंने सरल और प्रवरहमान लय से युक्त शिशु एवं बालगीत लिखे हैं।

डॉ. परशुराम शुक्ल ने 'सार' एवं 'पद-पादाकुलक' छंदों में बालगीतों की रचना की है। ये मात्रिक छंदों की कोटि के हैं। इनमें मात्राओं की गणना विभिन्न प्रकार की है पर लय, तुक, विराम आदि की दृष्टि से ये छंद उपयुक्त हैं। सार छंदों के चरणों में 16-16, 16-14, 16-11, 15-12 मात्राओं का प्रयोग उपलब्ध होता है, जो कवि की स्वच्छंद रचना प्रवृत्ति के अनुसार हुआ है। डॉ. शुक्ल ने इस दृष्टि से छंदों में नए ढंग से विविध प्रयोग किए हैं। 15-15 मात्राओं वाले छंद का एक उदाहरण दृष्टव्य है—

“वर दो! वरदो! हे भगवान।
भर दो मुझमें ऐसा ज्ञान।।”²⁰

डॉ. परशुराम शुक्ल द्वारा प्रयुक्त 16-16 मात्राओं वाले छंद का एक उदाहरण निम्नानुसार है—

“बन्दर भाई बन्दर भाई,
आपस में अब बन्द लड़ाई।
रोज बन्दरिया से लड़ते हो,
और मदारी से डरते हो।।”²¹

16-11 मात्राओं वाले सार छन्द भी डॉ. शुक्ल ने लिखे हैं। एक उदाहरण इस प्रकार है—

“मोटा राजू दिन भर खाता,
सेव सन्तरा आम।
खा पी कर वह सो जाता है,
करे न कोई काम।।”²²

उपर्युक्त छंद के प्रथम चरण में 16, द्वितीय में 11, तृतीय में 16 तथा चतुर्थ चरण में 11 मात्राएँ हैं। चार चरणों वाले इस छंद में डॉ. शुक्ल ने स्वच्छंता पूर्वक मात्राओं में भिन्नता प्रस्तुत की है।

डॉ. परशुराम शुक्ल ने गज़ल की तर्ज पर भी बालगीतों की रचना की है। 'मेरा रोबो बड़ा निराला' के गीत इसी प्रकार के हैं। एक उदाहरण दृष्टव्य है—

“हँसना और हँसाना सीखो।
सब पर प्यार लुटाना सीखो।।
बच्चों सा भोलापन लाओ।
बच्चों सा मुस्काना सीखो।।”²³

शुक्ल जी ने समकालीन गीत विधा में भी बाल गीत लिखे हैं। इस प्रकार के बाल गीतों में एक ध्रुव पंक्ति गीत के प्रत्येक छंद के साथ दुहराई गई है। यथा—

“पास नहीं है कापी बस्ता,
कैसे पढ़ने जाऊँ?
बेची चीजें बेची खोली।
भूखी प्यासी अम्मा बोली।।
मांग मांग कर आटा चावल,
कब तक काम चलाऊँ।
कैसे पढ़ने जाऊँ ?”²⁴

उपर्युक्त प्रकार के बालगीतों के छंद की अंतिम पंक्ति में ध्रुव पंक्ति की तुक के साथ मेल किया गया है, फिर

ध्रुव पंक्ति दुहराई गई है।

उपर्युक्त विश्लेषण से ज्ञात होता है कि डॉ. परशुराम शुक्ल की बाल काव्य कृतियों में प्रयुक्त छंद विविध रूपात्मक हैं।

अलंकार :

काव्य को शोभा प्रदान करनेवाले धर्मों को अलंकार कहा जाता है। (काव्य शोभकरान्धर्मान अलंकारान्प्रचक्षते—काव्यादर्श)²⁵ कवि गीतकार अपने काव्य को सुशोभित करने के लिए काव्य पंक्तियों में जिन अलंकारों का प्रयोग करते हैं, वे अलंकार मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं— शब्दालंकार तथा अर्थालंकार।

जब काव्य पंक्ति में शब्दों के द्वारा चमत्कार उपस्थित होता है, तब शब्दालंकार होता है। शब्दालंकार— अनुप्रास, यमक, वक्रोक्ति और श्लेष हैं। इसी तरह जहाँ अर्थ के स्तर पर काव्य में चमत्कार—सौंदर्य की सृष्टि होती है, वहाँ अर्थालंकार होता है। अर्थालंकार— उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विभावना, अतिशयोक्ति आदि अनेक प्रकार के होते हैं।

डॉ. परशुराम शुक्ल ने बाल काव्य में जान बूझकर अलंकारों को भरा नहीं है, बल्कि सहज स्वाभाविक रूप से इनके शिशुगीतों और बालगीतों में कुछ अलंकार स्थान पा गए हैं। डॉ. शुक्ल के बाल काव्य में व्यवहृत अलंकारों के कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

अनुप्रास :

अनुप्रास अलंकार में वर्णों की एक से अधिक बार आवृत्ति होने से पंक्ति में सौन्दर्य उत्पन्न हो जाता है। इसके तीन भेद हैं, छेकानुप्रास, वृत्तानुप्रास तथा लाटानुप्रास।

छेकानुप्रास— इसमें काव्य पंक्ति में एक ही वर्ण की एक से अधिक बार आवृत्ति होती है।

“बदल बदल कर दीजिये, सदा टिफिन में लंच।

स्वस्थ रहे बच्चा सदा, दिल दिमाग हो टंच।।”²⁶

उपर्युक्त उदाहरण में बदल बदल तथा दिल दिमाग में ‘ब’ और ‘द’ वर्णों की आकृति एक से अधिक बार हुई है, इसलिये छेकानुप्रास अलंकार है।

वृत्तानुप्रास— इसमें एक ही वर्ण की आकृति काव्य पंक्ति में कई बार होती है।

“गौँव गौँव में मस्ती छाई,

बूढ़ी दादी ढोलक लाई।

जोर जोर से लगी बजाने,

ढम ढम ढम, ढम ढम ढम।।”²⁷

इस उदाहरण में ‘ढ’ वर्ण की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्तानुप्रास अलंकार है।

लाटानुप्रास— जहाँ शब्दों या वाक्यों की आवृत्ति हो और उनका अर्थ भी वही रहे, केवल अन्वय करने से तात्पर्य बदल जाये, वहाँ लाटानुप्रास अलंकार होता है।²⁸ उदाहरण—

“आसमान में बड़ी शान से,

लहर लहर लहराये तिरंगा।।”²⁹

उपर्युक्त उदाहरण में लहर लहर लहराये में लहर शब्द की आवृत्ति में लाटानुप्रास है।

उपमा अलंकार— यह समतावाची अलंकार है।

उदाहरण—

“मन करता है पंख लगाकर,
पक्षी सा उड़ जाऊँ।”³⁰

रूपक अलंकार— इसमें उपमेय के ऊपर उपमान का आरोप किया जाता है।

“सत्य अहिंसा धर्म बने औ,
मन मंदिर में ईश्वर आए।”³¹

पुनरुक्ति प्रकाश— पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार में समान शब्दों की आवृत्ति दो या दो से अधिक बार होती है—

“चिड़िया करती चीं चीं चीं,
कौआ करता काँव काँव।
कोयल कुहू कुहू रस घोले,
ये सब रहते मेरे गाँव।”³²

उपर्युक्त उदाहरण में चीं चीं और कुहू कुहू शब्दों की पुनरावृत्ति होने से पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।

डॉ. परशुराम शुक्ल के बाल काव्य में अलंकारों की भरमार नहीं है। अपने आप ही कुछ अलंकार इनकी बाल काव्य रचनाओं में स्थान पा गये हैं। शुक्ल जी मौलिक और सहज बाल साहित्य लेखक हैं, इनकी मौलिक शैली और सहज सम्प्रेषण अलंकारों से कम नहीं है।

कहावतें और मुहावरे :

मुहावरे किसी विशेष अर्थ के लिये वाक्य में प्रयोग किये जाते हैं— “जो वाक्यांश अपने सामान्य अर्थ को न बताकर किसी विशेष अर्थ को बतलाता है और प्रायः क्रिया का काम देता है उसे वाग्धारा या मुहावरा कहते हैं।”³³ जैसे— थाह पाना, सिरमौर, पीठ थपथपाना, अमानत में खयानत, टालमटोल करना, फिजूलखर्ची, बात का घाव, नहले पे दहला, खून पसीने की कमाई, गहरी सांस लेना, दाँत पीसना, आँखें फाड़ फाड़ कर देखना, दाँत किटकिटाना, चैन की सांस लेना आदि।

उपर्युक्त मुहावरे परशुराम शुक्ल की गद्य रचनाओं में से उद्धृत किये गये हैं। इन्होंने काव्य रचनाओं में भी मुहावरों का सफल प्रयोग किया है। जैसे— छाती चौड़ी होती³⁴, पार लगाना³⁵, कोरी स्लेट³⁶, मौज मनाना³⁷ आदि

कहावतें— कहावतों का प्रयोग स्वतंत्र वाक्य के रूप में भी हो सकता है, जबकि मुहावरों का नहीं। कहावत मनुष्य समाज के अनुभवों के सार को प्रस्तुत करती है। इसे लोकोक्ति भी कहते हैं।

डॉ. परशुराम शुक्ल द्वारा लिखित लोक कथाओं में अनेक कहावतों का प्रयोग हुआ है। जैसे— अपने खेत का बीज³⁸, बात का घाव³⁹, नहले पर दहला⁴⁰ आदि।

उपर्युक्त आधार पर यह कहा जा सकता है कि मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग डॉ. शुक्ल की बाल रचनाओं में प्रसंगानुकूल और उचित ढंग से किया गया है। मुहावरों और कहावतों के प्रयोग से भाषा की संप्रेषणीयता, प्रवाह और आकर्षण में वृद्धि होती है। कहावतों और मुहावरों के प्रयोग से भाषा में वक्रता और शक्ति संपन्नता आ जाती है। इसी कारण कवि और लेखक कहावतों और मुहावरों का प्रयोग करते हैं।

संदर्भ

1. प्रणोति पाटिल, परशुराम शुक्ल के बाल साहित्य का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन, (शोध प्रबन्ध), पृष्ठ 1
2. परशुराम शुक्ल, उठो सबेरे, रवि प्रकाशन नई दिल्ली, 2002, पृष्ठ 7
3. परशुराम शुक्ल, चारो खाने चित्त, संस्कृति साहित्य, दिल्ली, 2009, पृष्ठ 21
4. राजेन्द्र कुमार शर्मा, समकालीन हिन्दी बाल कविता, फाल्गुनी प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृष्ठ 143

5. परशुराम शुक्ल, सुनहरी परी और राजकुमार, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 1989ए पृष्ठ 3
6. परशुराम शुक्ल, बीसवीं सदी का विलक्षण आविष्कार : लेसर, चिल्ड्रेन्स बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ – 16, 17
7. विश्वनाथ प्रसाद सिंह, काव्यांग कौमुदी, वाराणसी, 1969, पृष्ठ 38
8. उपरिवत्, पृष्ठ 63
9. परशुराम शुक्ल, आओ गुनगुनाओ, रवि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृष्ठ 7
10. परशुराम शुक्ल, नंदनवन, स्टार ट्रैक पब्लिशर्स, दिल्ली, 2010, पृष्ठ 31
11. परशुराम शुक्ल, छुक छुक रेल, रवि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ 6
12. परशुराम शुक्ल, आओ गुन गुनाओ, रवि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृष्ठ 3
13. परशुराम शुक्ल, मोटू राम, रवि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृष्ठ 8
14. परशुराम शुक्ल, आओ गुन गुनाओ, रवि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 12
15. परशुराम शुक्ल, चारो खाने चित्त, संस्कृति साहित्य, दिल्ली, 2009, पृष्ठ 12
16. परशुराम शुक्ल, एकता की शक्ति, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, 1991, पृष्ठ 8
17. बृज किशोर मिश्र और मदन मोहन दीक्षित, राष्ट्रभाषा कोश, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, लखनऊ (उ.प्र.), पृष्ठ 186
18. जगन्नाथ प्रसाद भानु, काव्य प्रभाकर, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सम्मत् 2088 वि., पृष्ठ 4, 5
19. परशुराम शुक्ल, बाल सतसई, नगेन्द्र प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृष्ठ 45
20. परशुराम शुक्ल, उठो सवेरे, रवि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृष्ठ 1
21. परशुराम शुक्ल, आओ बच्चो गाओ बच्चो, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृष्ठ 56
22. परशुराम शुक्ल, कलरव, विज्ञान शिक्षा संस्थान, गाजियाबाद (उ.प्र.), 2010, पृष्ठ 83
23. परशुराम शुक्ल, मेरा रोबो बड़ा निराधा (प्रकाशनाधीन)
24. परशुराम शुक्ल, चिड़िया नीड़ बनाती, (प्रकाशनाधीन)
25. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, काव्यांग कौमुदी, वाराणसी, 1969, पृष्ठ 75
26. परशुराम शुक्ल, बाल सतसई, अमन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ 41
27. परशुराम शुक्ल, चिड़िया नीड़ बनाती (प्रकाशनाधीन)
28. विश्वनाथ प्रसाद सिंह, काव्यांग कौमुदी, वाराणसी, 1969, पृष्ठ 81
29. परशुराम शुक्ल, उठो सवेरे, रवि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृष्ठ 16
30. परशुराम शुक्ल, छुक-छुक रेल, रवि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृष्ठ 6
31. परशुराम शुक्ल, कामना, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, 1991, पृष्ठ 9
32. परशुराम शुक्ल, तितली, रवि प्रकाशन, नई दिल्ली 2002, पृष्ठ 8
33. श्याम चन्द्र कपूर व्यावहारिक हिन्दी व्याकरण, पृष्ठ 168
34. परशुराम शुक्ल, बाल सतसई, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ दोहा 49
35. परशुराम शुक्ल, बाल सतसई, उपरिवत्, दोहा 119
36. परशुराम शुक्ल, बाल सतसई, उपरिवत्, दोहा 266
37. परशुराम शुक्ल, आओ बच्चो गाओ बच्चो, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृष्ठ 29
38. परशुराम शुक्ल, मोघिया लोक कथाएँ, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 1990, पृष्ठ 44
39. परशुराम शुक्ल, मोघिया लोक कथाएँ, उपरिवत्, पृष्ठ 56
40. परशुराम शुक्ल, मोघिया लोक कथाएँ, उपरिवत्, पृष्ठ 68



संस्कृत साहित्य में प्रेम तत्त्व

डॉ. वीरेन्द्र कुमार जोशी

व्याख्याता, संस्कृत

गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय, अलवर

सृष्टि एवं इसके प्राणियों को एकसूत्र में बांधनेवाला तत्त्व है—प्रेम। प्रेम चाहे लौकिक हो या अलौकिक वह चित्त में विद्यमान राग—तत्त्व संवेदनाओं को उद्दीप्त करता है जिससे अपने—पराये, तेरे—मेरे छोटे—बड़े, धनी—निर्धन का भेद समाप्त हो जाता है।

‘प्रेम’ शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत भाषा के प्रिय शब्द में इमनिच् प्रत्यय लगने से ‘प्र’ आदेशपूर्वक हुई है। जिसके अनुसार ‘प्रेम’ का अर्थ है ‘प्रिय’ का भाव अथवा प्रिय होना।¹ प्रिय शब्द ‘प्री’ धातु में क प्रत्यय लगने से निष्पन्न हुआ है, जिसे प्यारा, अनुकूल, सुखद, अभिलषित, अनुरक्त, प्रेमी, पति आदि अर्थों में ग्रहण किया गया है।²

वस्तुतः प्रेम हृदयगत वह भाव है जो किसी ऐसे व्यक्ति, कर्म, वस्तु आदि के प्रति होता है, जिसे वह श्रेष्ठ, एवं सुख का प्रदाता मानता है, जिसके साथ वह संबंधों की प्रगाढ़ता बनाये रखना चाहता है, अपने मूल रूप में प्रेम ईश्वरीय तत्त्व है जो सदैव स्वार्थ से रहित तथा परमार्थ हेतु कल्याणकारी, मंगलमयी भावनाओं से युक्त होता है। श्रृंगारिक तथा साहित्यिक क्षेत्र में विपरीत लिंगी के आचरण, चरित्र, सौन्दर्य, आदि पर मुग्ध होकर जब मानव हृदय सदैव अपने प्रियतम का सामीप्य, उसके साथ संबंधों की प्रगाढ़ता की कामना करता है तथा अपने व्यक्तित्व में लोप करके हर्षित एवं सन्तुष्ट होना चाहता है तब ऐसा मनोभाव प्रेम कहलाता है।

अमरकोश में अप्रियता के अभाव, हार्दिक प्रीति एवं स्नेह भाव को प्रेम की संज्ञा दी गई है।³ एक दूसरे के प्रति समर्पण, एकनिष्ठता का इसमें निर्वाह होता है। प्रेम अनिर्वचनीय, मूकास्वादनवत् एवं विरले व्यक्ति में प्रकाशित होने वाला माना गया है।⁴

प्रेम गुणातीत, निष्काम, प्रतिक्षण संवर्धमान एवं सूक्ष्मतर रूप है जिसे पाकर व्यक्ति केवल इसी का दर्शन, श्रवण, वर्णन एवं चिन्तन करता है।⁵

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रेम की परिभाषा देते हुए कहा है—किसी विशेष वस्तु पर इस प्रकार मुग्ध रहना कि उससे कितनी अच्छी—अच्छी वस्तुओं के सामने आने पर भी उस विशेष वस्तु से प्रवृत्ति न हटे, रुचि या प्रेम है।⁶ इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रेम में अपने प्रेमपात्र के प्रति एकनिष्ठता आवश्यक है।

महाकवि भवभूति ने हृदय की उस स्थिति को प्रेम माना है जिसमें सुख—दुःख की सभी अवस्थाओं में समानानुभव हो तथा हृदय को विश्राम की अनुभूति हो—

अदैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यद् ।

विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्योरसः ।।⁷

हृदय में जब प्रेम का उदय होता है तब हमारी अन्तरात्मा भी कोमल हो जाती है और कालुष्य समाप्त होकर निर्मलता का प्रकाश फैलने लगता है। महाकवि कालिदास ने तो प्रेम को जन्म—जन्मान्तरों का व्यापार माना है।⁸ यही कारण है कि उनकी रचनाओं में जहाँ मिलन की उत्कट अभिलाषा है तो वहीं विरह की मार्मिकता भी विद्यमान है।

प्रेमी हृदय अपने प्रेमपात्र के लिए सर्वस्व न्योछावर कर देता है यहाँ तक कि प्राणोत्सर्ग से भी नहीं झिझकता। स्वप्नवासवदत्तम् का नायक उदयन वासवदत्ता की अग्निदाह में मृत्यु का समाचार सुनकर आग में कूदकर अपने प्राण देने को तैयार हो जाता है।⁹

धर्म, साहित्य एवं जगत में प्रेम के दो भेद लौकिक और अलौकिक माने जा सकते हैं। लौकिक प्रेम मानवीय प्रेम के अर्थ में गृहीत है। लौकिक प्रेम संबंधों में अन्य मानवीय संबंधों की अपेक्षा प्रिय-प्रिया अथवा पति-पत्नी का सम्बन्ध ही सर्वाधिक घनिष्ठ होता है। प्रेम का आदर्श स्वरूप वही है, जहाँ विवाह के पवित्र बन्धन में बंधन के पश्चात् इसका उत्तरोत्तर उत्कर्ष होता जाता है। एक दूसरे के प्रति सम्मान, सहयोग एवं त्याग की भावना पति-पत्नी के संबंधों को परिपक्वता, विशिष्टता प्रदान करती है। यद्यपि आरम्भ में इस सम्बन्ध में शारीरिक तृप्ति महत्वपूर्ण होती है। अतः स्त्री-पुरुष के मध्य की काम-भावना जीवन की गहनतम एवं सार्वभौम वृत्ति है। जैसा सर्वस्व समर्पण, जितना गहरा प्रेम एवं जितनी एकात्मानुभूति स्त्री-पुरुष के प्रेम में होती है, उतनी अन्यत्र नहीं। पत्नी सेवा भी करती है, माँ के समान हितचिन्तन भी करती है और अपना सम्पूर्ण व्यक्तित्व पति को समर्पित कर देती है। लौकिक प्रेम की यह पराकाष्ठा है।

प्रेम प्रायः लौकिक होता है किन्तु जब इसका संबंध ब्रह्म या किसी परम सत्ता के साथ जोड़कर देखा जाता है तब उसे अलौकिक प्रेम की संज्ञा दी जाती है। अलौकिक प्रेम साधक को उसके इष्टदेव के साथ संबद्ध कर देता है। प्रेम लौकिक हो या अलौकिक आलम्बन के प्रति अनन्यता, समर्पण चाहता है। दुःखों का अन्त कर सुख की अमृत वृष्टि करने की सामर्थ्य केवल प्रेम में है। प्रेम ही मनुष्य की चेतना का विकास कर उसे व्यष्टि से समष्टि की ओर अग्रसर करता है। वस्तुतः प्रेम ही सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की त्रिवेणी प्रवाहित कर विश्व का कल्याण करता है।

साहित्य मानव मन के विविध भावों का चित्रण एवं प्रकाशन करता है। मानव को रागात्मकता के सूत्र में आबद्ध करने वाला प्रेम प्राचीनकाल से ही संस्कृत साहित्यकारों का प्रेरणास्रोत रहा है। वैदिक साहित्य में प्रिय, प्रिया, प्रेष्ठ आदि प्रेम अर्थ के सूचक शब्द मिलते हैं।¹⁰ यहाँ 'काम' को प्रेम के पर्याय के रूप में ग्रहण किया गया है।¹¹ यह काम प्रेमाकर्षण से लेकर चरम आनन्दानुभूति तक के अर्थ का बोधक है। प्रेम अपने मूल रूप में काम है व काम अपनी परिष्कृत अवस्था में प्रेम है।

स्त्री और पुरुष के पारस्परिक प्रेम के अनेक उदाहरण यहाँ मिलते हैं। सूर्या सूक्त तो दाम्पत्य प्रेम की पावनता एवं मधुरिमा का आदर्श रूप है।¹² ऋषिपुत्र श्यावाश्व एवं मनोरमा का प्रणय प्रसंग, विमद एवं पुरुमित्र की कन्या की प्रणयकथा आदि अनेक प्रसंग प्रेम को ही प्रकट करते हैं।¹³ ऋग्वेद में वर्णित अप्सरा उर्वशी एवं राजा पुरुरवा का प्रेम-प्रसंग कालान्तर में शतपथ ब्राह्मण, महाभारत तथा कालिदास रचित नाट्य कृति विक्रमोर्वशीयम् में भी प्राप्त होता है। यहाँ प्रकृति के मध्य प्रणय-व्यापार का वर्णन भी किया गया है। सूर्य तथा उषा को लेकर अनेक प्रेममयी कल्पनाएं वैदिक ऋषि ने की हैं।

ऋग्वेद में प्रकृति, मानव, देवता सभी की प्रेम-भावना के बीज मिलते हैं। प्रेमाकर्षण की भावना पृथ्वी, अन्तरिक्ष, आकाश में सर्वत्र परिव्याप्त है। प्रेम का यह बीज ब्राह्मण-ग्रन्थों, भागवत तथा महाभारत आदि ग्रन्थों में और भी प्रस्फुटित हुआ है।

लौकिक संस्कृत साहित्य में प्रेम-क्रीड़ा में सलग्न सहचर के आकस्मिक वियोग से व्यथित क्राँची के करुण, मार्मिक स्वर को सुनकर वाल्मीकि के हृदय का द्रवीभूत शोक श्लोक के रूप में प्रस्फुटित हो उठा और आदिकाव्य रामायण, की रचना हुई—

‘मा निषाद प्रतिष्ठां त्वंगमः शाश्वतीः समाः।

यत्क्रौन्चामिथुनादेकमवधीकाममोहितम्।।¹⁴

रामायण में स्त्री-पुरुष के मध्य स्वच्छन्द प्रेम से लेकर सात्विक प्रेम तक के सभी रूपों का वर्णन है। सीता के साथ चित्रकूट पर्वत की रम्य वनस्थली में विचरण करते समय किन्नरों एवं विद्याधरों की मनोहर क्रीड़ा-स्थलियों की ओर सीता का ध्यान आकृष्ट करते हैं¹⁵ तो वहीं सीता के वियोग में अपने जीवन का प्रयोजन व्यर्थ ठहराते हैं।¹⁶

वाल्मीकि के मत में नारी जीवन की सार्थकता पति के साथ एकात्मकता अनुभव करने में है। सीता के शब्दों में—

अन्योन्यां राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा।¹⁷

कवि की दृष्टि में आदर्श प्रेम वही है जिसमें प्रेमी अपने को प्रेमपात्र से भिन्न अनुभव नहीं करता इसलिए सीता के संबंध में कवि ने कहा है—

रोहिणीव शशांकेन रामसंयोगमाप सा।¹⁸

आदर्श दाम्पत्य प्रेम एकपक्षीय नहीं होता । सीता का मेरे प्रति हार्दिक प्रेम है और मेरा सीता के प्रति—राम की इस घोषणा द्वारा कवि ने दाम्पत्य प्रेम का समुन्नत आदर्श उपस्थित किया है—

मयि भावो हि वैदेह्यास्तत्त्वतो विनिवेशितः।

ममापि भावः सीतायां सर्वथा विनिवेशितः।।¹⁹

वाल्मीकि ऐसे गम्भीर प्रेम के समर्थक थे जो जीवन में एक नई दृष्टि देता है और सम्बल प्रदान करता है। ऐसा प्रेम मात्र शारीरिक नहीं होता। दशरथ का कैकेयी के प्रति प्रेम मात्र शारीरिक आकर्षण पर ही आश्रित था। अन्त में स्वयं दशरथ ने भी यह अनुभव किया कि विषयों में लिप्त रहकर उन्होंने मृत्यु और कृष्ण सर्प के समान कैकेयी को नहीं जाना।²⁰

स्वच्छन्द प्रेम के उदाहरण भी रामायण में प्राप्त होते हैं। अंग देश के राजा रोमपाद द्वारा भेजी गई गणिकाओं के प्रति विभाण्डक ऋषि के पुत्र ऋव्यश्रृंग की आसक्ति तथा रोमपाद की कन्या के साथ विवाह वर्णन, कुशनाभ की सौ कन्याओं के प्रति वायुदेव की प्रणय—याचना का प्रसंग, विश्वामित्र एवं मेनका का प्रणय प्रसंग, अंजनी नामक अप्सरा के प्रति वायुदेव की अनुरक्ति का प्रसंग आदि स्वच्छन्द प्रेम के उदाहरण भी रामायण में सन्निविष्ट हैं। इस प्रकार एक ओर प्रेम की स्वच्छन्दता तो दूसरी ओर आदर्शवादिता यहाँ विद्यमान है।

वेदव्यास विरचित महाभारत में प्रेम के विभिन्न रूपों का निदर्शन है। नल दमयन्ती की प्रणय कथा में एक दूसरे के दर्शन किये बिना गुण—श्रवण मात्र से ही एक दूसरे के प्रति अनुराग उत्पन्न हो जाता है जो उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होता है—

तयोरदष्टः कामोऽभूच्छृण्वतोः सततं गुणान्।

अन्योन्यं प्रति कौन्तेय स व्यवर्धत हृच्छयः।।²¹

प्रेम की सात्विकता,, उज्ज्वलता के दर्शन हमें वहाँ होते हैं जहाँ नल के वियोग में दमयन्ती अपने जीवन को व्यर्थ समझती है—

को नु में जीवितेनार्थस्तमृते पुरुषभम्।

कथं भविष्याम्यद्याहं भर्तृशोकाभिपीडिता।।²²

इसी प्रकार शकुन्तला के सौन्दर्य पर दुष्यन्त मुग्ध होकर उससे गन्धर्व विवाह करता है—

जग्राह विधिवत् पाणानुवास च तया सह।²⁴

रुरु— प्रमद्वरा प्रणय प्रसंग में सर्पदंश से प्रमद्वरा की मृत्यु होने पर रुरु अपनी आयु का अर्धभाग देकर अपनी प्रिया को जीवित करवाता है और उससे विवाह करता है।²⁵ मेनका के अपार सौन्दर्य को देखकर विश्वामित्र की तपस्या भंग हो जाती है और वह कामातुर होकर उसके संसर्ग के लिए लालायित हो उठता है। ऐसे ही अन्य प्रणय—प्रसंगों की अभिव्यक्ति महाभारत में स्वाभाविक रूप से हुई है।

महाकवि भास प्रेम को सर्वव्यापक तत्व मानते हैं। कवि की मान्यता है कि बद्धमूल प्रेम को भुला देना कठिन है यह प्रेम वियोग में घटता नहीं, अपितु बढ़ता है—

दुःख त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः,

स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःख नवत्वम्।²⁶

उसी प्रकार वासवदत्ता भी उदयन के वियोग में अपने जीवन से चकवी के जीवन को श्रेष्ठ मानती है—
धन्या चक्रवाकवधूः, याऽन्योन्यविरहिता न जीवति । न खल्वहं प्राणान् परित्यजामि ।”²⁷

व्यक्ति एक बार जिससे प्रेम कर लेता है, वह भले ही जीवित नहीं रहे, उस प्रेम को अनेक प्रयासों के बावजूद भुलाया नहीं जा सकता है—

वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति ।²⁸

राजा उदयन वासवदत्ता के प्रति अगाध प्रेम प्रकट करता हुआ कहता है कि वह वासवदत्ता मेरे द्वारा किसी भी जन्म में भुलाने योग्य नहीं है, वह तो जन्म-जन्मान्तरों में भी मेरे द्वारा याद करने के योग्य है—

कथं सा न मया शक्या स्मर्तुं देहान्तरेष्वपि ।²⁹

स्त्री और पुरुष के प्रेम की व्यथा के अन्तरंग चित्र उकेरने में महाकवि की सूक्ष्म दृष्टि तथा असाधारण क्षमता दर्शनीय है—

स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः ।।

वाष्पं प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं, स्नेहाममैवोरसि पातयन्त्याः ।।

बहुशोऽप्युपदेशेषु यया मामीक्षमाणया ।

हस्तेन स्रस्तकोणेन कृतमाकाशवादितम् ।।³⁰

भास ने प्रेमिका के एकनिष्ठ प्रेम का बड़ा ही हृदयग्राही चित्रण किया है। भास के ‘अविमारक’ नामक नाटक में राजकुमार अविमारक एवं कुन्ती भोज की कन्या कुरंगी के प्रणय प्रसंग तत्पश्चात् गांधर्व विवाह तथा एक अन्य नाटक चारुदत्त में चारुदत्त तथा बसन्तसेना की प्रेमकथा का वर्णन है।

महाकवि शूद्रक ने प्रेम की उभयपक्षीयता को मान्यता दी है। शूद्रक के मृच्छकटिकम् नामक प्रकरण में चारुदत्त एवं बसन्तसेना नामक गणिका की प्रणय कथा वर्णित है। इसके प्रणय सम्बन्ध में प्रकृति विपर्यय है। सामान्यतया पुरुष स्त्री पर रीझता है, पर इसमें बसन्तसेना स्त्री चारुदत्त पुरुष पर रीझती है।

चारुदत्त के प्रति बसन्तसेना का प्रेम चरम सीमा तक व्याप्त है। वह कहती है कि चारुदत्त से मिलने को जाती हुई मुझे कोई नहीं रोक सकता भले ही बादल गरजें, बरसें या बिजली गिरावें—

गर्ज वा वर्ष वा शक्र, मुंच वा शतशोऽशिनम् ।

न शक्या हि स्त्रियो रोद्धुं प्रस्थिता दयितं प्रति ।।³¹

बसन्तसेना एवं चारुदत्त के मिलन में प्रेम का मादक चित्रण भी है, जहाँ चारुदत्त बसन्तसेना के आलिंगन से रोमांचित हो उठता है—

भो मेघ! गम्भीरतरं नद त्वंतव प्रसादात् स्मरपीडितं में ।

संस्पर्शरोमांचित जातरागं कदम्ब पुष्पत्वमुपैति गात्रम् ।।³²

एक अन्य प्रणय कथा में शर्विलक मदनिका के प्रति अपने प्रेम के कारण उसे दासत्व से मुक्ति दिलाने के लिए चोरी करने का दुस्साहस करता है।³³ प्रकृति के मध्य प्रणय व्यापार का चित्रण भी बड़ा सजीव है जहाँ बिजली आकाशरूपी अपने प्रियतम का अलिंगन करती है—

रक्ता कान्तमिवाबरं प्रियतमा विद्युत् समालिंगति ।³⁴

महाकवि कालिदास मूलतः प्रेम एवं सौन्दर्य के कवि हैं। प्रेम के अनेकानेक रूपों का सफल चित्रण उन्होंने अपने काव्य में किया है। कालिदास ने स्त्री-पुरुष के मंगलमय मिलन में ही प्रेम की आदर्श परिणति स्वीकार की है। उनकी दृष्टि में विरह इस मंगल मिलन के लिए आवश्यक है। प्रेमियों की परीक्षा वियोग में ही होती है। वस्तुतः प्रेम वियोग में और अधिक तीव्र हो जाता है। मेघदूत में यक्ष कहता है कि विरह में प्रेम भाव नष्ट नहीं होता अपितु वृद्धि को प्राप्त होता है—

स्नेहानाहुः किमपि विरहे घ्वंसिनस्ते त्वभोगा

दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशिभवन्ति।³⁵

संयोगावस्था में भोग के कारण प्रेम भले ही शिथिल हो जाय, वियोग में प्रेम तपस्या का रूप धारण कर लेता है। इसलिए वियोग के पश्चात् संयोग होने पर यह द्विगुणित आनन्दप्रद होता है। कालिदास के सभी पात्र वियोगावस्था के जीवन को तप, त्याग, सदाचार, संयम और सामाजिक मर्यादा में बंध-कर व्यतीत करते हैं। तपस्या से ही पार्वती ने अपने प्रेमी शिव के हृदय को जीता। जो अनन्य प्रेमी भगवान शिव एक दिन उसके सुकुमार सौन्दर्य का तिरस्कार करके चले गये थे वे ही उसके तपस्या से मुरझाए, रूखे रूप पर रीझ गये क्योंकि उन्होंने परीक्षा करके देख लिया कि वह इन्द्रादि लोकपालों के दिव्य रूप तथा ऐश्वर्य की भूखी नहीं है। वह तो मन ही मन उनके साथ तादात्म्य भाव प्राप्त कर उनके चरणों पर आत्मसमर्पण कर चुकी है, तब उन्होंने सम्मुख होकर कहा कि जिसे तुमने अपनी तपस्या से जीत लिया है वह तुम्हारा दास 'मैं' तुम्हारे समक्ष उपस्थित हूँ—

अद्य प्रभृत्यवनतांगि! तवास्मि दासः,

क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्दमौलौ।

अह्नाय सा नियमजं, क्लममुत्ससर्ज।

क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते।।³⁶

शिव के इतने कहने पर पार्वती एकदम फिसल नहीं पड़ी और अपना शरीर समर्पित नहीं किया अपितु उसने सखि के द्वारा कहलवा दिया कि यदि आप मुझसे विवाह करना चाहते हैं तो मेरे पिता हिमालय से प्रार्थना कीजिए—

अथ विश्वात्मने गौरी सन्दिदेश मिथः सखीम्।

दाता में भूभृतां नाथः प्रमाणीक्रियतामिति।।³⁷

पार्वती ने प्रेम विभोर होकर कभी धर्म की— अपने कर्तव्य कर्मों की उपेक्षा नहीं की तभी तो महाकवि ने उन्हें अतिथियों की सेवा करने वाली कहा है।³⁸ ऐसे धर्म युक्त प्रेम का लोक अभिनन्दन करता है तथा देवता और ऋषि भी उसमें शाप आदि के द्वारा बाधा न डालकर उलटे सहायक ही बनते हैं।

शकुन्तला के विरह ने ही पश्चात्ताप की आग में जला कर राजा के प्रेम को परिष्कृत कर दिया। मेघदूत में भी महाकवि ने यक्ष के वासनात्मक भौतिक अनुराग को विरह द्वारा शुद्ध करके, उसे फिर से दिव्यलोक में पहुँचाकर उसकी व्रतचारिणी पत्नी से मिलन के योग्य बनाया है। प्रेमी विरह में भी एक प्रकार का आनन्द अनुभव किया करते हैं और कहते हैं कि संयोग के समय एक ही प्यारी के समागम का सुख मिलता है पर विरह में संसार ही प्रियामय हो जाता है। यक्ष प्रिया मिलन के लिए इतना व्याकुल है कि उत्तर की ओर से आने वाली हवाओं का आलिंगन करता है, सम्भव है कि ये हवायें उसकी प्रिया के शरीर का स्पर्श करके आ रही हों—

आलिंग्यन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाता।

पूर्वस्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमेभिस्तवेति।।³⁹

प्रकृति भी अपनी सहचरी शकुन्तला के भावी वियोग से व्यथित हो जाती है मृगियों ने अपने मुख में लिए हुए घास को उगल दिया है, मयूरियों ने नृत्य बन्द कर दिया है, पीले और सूखे पत्तों के बहाने मानों लताएं आँसु बहा रही हैं—

उद्गलितदर्भकवला मृगाः परित्यक्तनर्तना मयूराः।

अपसृतपाण्डुपत्रा मुंचन्त्यश्रूणीव लताः।।⁴⁰

अपने प्रिय सहचर मृग को धनुर्धारी दशरथ के बाण से बचाने के लिए मृगी उसे आड़ में करके स्वयं दशरथ के सामने आ जाती है दशरथ हरिण के प्रति हरिणी का प्रेम देखकर अपना बाण तूणीर में रख लेते हैं—

लक्ष्मीकृतस्य हरिणस्य हरिप्रभावः प्रेक्ष्य स्थितां सहचरीं व्यवधाय देहम् ।

आकर्णकृष्टमपि कामितया स धन्वी बाणं कृपामृदुमनाः प्रतिसंजहार ।।⁴¹

महाकवि कालिदास ने प्रेमाभिव्यक्ति के द्योतक हाव-भावों का बड़ा ही सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। दुष्यन्त कहते हैं कि यद्यपि शकुन्तला मुझसे साक्षात् बातचीत नहीं करती, परन्तु मेरे बोलते समय मेरी ओर कान लगाये रहती है, मेरे मुख के सामने मुख करके नहीं ठहरती तथापि इसकी दृष्टि मेरे अतिरिक्त दूसरी ओर नहीं जाती है—

वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः,

कर्णं ददात्यभिमुखं मयि भाषमाणे ।

कामं न तिष्ठति मदाननसम्मुखीना,

भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः ।।⁴²

आगे चलकर स्वयं शकुन्तला शिष्टता की रक्षा करते हुए प्रेम को प्रकट कर देती है— एक दो पग चलकर वह पैर में कांटा लगने के बहाने से तथा पेड़ों की शाखाओं में न उलझे हुए वल्कल वस्त्र को भी धीरे-धीरे सुलझाने के व्याज से राजा की ओर देखती हुई वह कुछ देर और खड़ी रही—

दर्भाकुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे,

तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा ।

आसीद् विवृत्तवदना च विमोचयन्ती,

शाखासु वल्कमसक्तमपि दुमाणाम् ।।⁴³

इस प्रकार कालिदास ने प्रेम के अनेकानेक रूपों का सफल चित्रण किया है।

महाकवि बाणभट्ट ने कादम्बरी में महाश्वेता—पुण्डरीक और कादम्बरी—चन्द्रापीड की प्रेमकथाओं के रूप में प्रेम भाव का सुन्दर चित्रण किया है। इन प्रेमकथाओं में बाह्य रूपजन्य आकर्षण के कारण आरम्भ में कादम्बरी, चन्द्रापीड तथा महाश्वेता पुण्डरीक का बिछोह होता है, तत्पश्चात् प्रेमसाधना के कारण अन्ततः इनका पुनर्मिलन होता है। महाकवि बाण की दृष्टि में प्रेम जन्म—जन्मान्तर में चलने वाला व्यापार है जिसमें मृत्यु भी बाधा नहीं डाल सकती है।

भवभूति प्रेम को एक दिव्य शक्ति मानते हैं जो चराचर जगत् को संचालित करती है। यह प्रेम ही है जिससे परशुराम जैसे उद्धत दर्पप्रचण्ड व्यक्ति अपने प्रतिद्वन्द्वी राम को समक्ष देखकर स्नेह विगलित हो जाते हैं। एक ओर क्रोध से उनका हृदय आविष्ट है तो दूसरी ओर उनके भीतर का प्रेम उन्हें राम को गले लगाने के लिए बलपूर्वक प्रेरित कर रहा है।⁴⁴ प्रेम की शक्ति सभी को अभिभूत और द्रवित कर देती है।

भवभूति का प्रेम पूर्णतः मर्यादित और कामुकता से परे है। राम सीता के प्रेमालाप को श्रवणसुखद और मन के लिए रसायन बताते हैं—

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि,

सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि ।

एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि!

कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि ।।⁴⁵

प्रेमी को हस्तस्पर्श भी अमृत का संचार कर आनन्द प्रदान करता है, उसे हर्ष से आप्लावित कर देता है। सीता की दृष्टि मात्र ही दूध की नहर की तरह राम को प्रेम से सिक्त कर देती है।⁴⁶

भवभूति की मान्यता है कि सन्तान वस्तुतः प्रेम की चरम सीमा होती है और यह माता पिता के हृदय को परस्पर

मिलाने वाली कड़ी है—

अन्तः करणतत्त्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात् ।

आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति पठ्यते ॥⁴⁷

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि संस्कृत साहित्य प्रेम निरूपण की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। ऋग्वेद का प्रेमरूपी यह बीज संस्कृत साहित्य में निरन्तर पल्लवित—पुष्पित हुआ। चाहे परस्पर आकर्षण की अभिव्यक्ति हो, चाहे प्रेम की स्वच्छन्दता, चाहे आदर्शवादिता चाहे प्रेमोदय की विभिन्न मनोदशाएं हों, चाहे विरह हो या मंगल मिलन हो सभी परिस्थितियों का यहाँ मर्मस्पर्शी चित्रण है। यद्यपि सभी महाकवियों ने प्रेम का चित्रण किया है तथापि वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति का इस दृष्टि से विशिष्ट स्थान है।

संदर्भ संकेत

1. प्रियस्य भावः इमनिच प्रादेशः एकाचकत्वात् न टिलोपः। संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवराम आपटे, पृ. 696
2. प्री+क वही, पृ. 1305
3. अमरकोश सं. वामनाचार्य, श्लोक 27 पृ 47
4. अनिर्वचनीयं प्रेम स्वरूपम् तथा मूकास्वादनवत् प्रकाशते क्वापि पात्रे—नारद भक्ति सूत्र 51–53
5. गुण रहितं कामनारहितं प्रतिक्षणं वर्धमानम् विच्छिन्नं सूक्ष्मतरानुभव रूपम् तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव शृणोति तदेव भाषयति तदेवचिन्तयति— वही, सूत्र 54–55
6. चिन्तामणि (प्रथम भाग) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ0 55
7. उत्तररामचरितम्— 1/39
8. रतिस्मरौ नूनमिमाव भूतां राज्ञां सहस्रेषु तथा हि बाला।
गतेयमात्मप्रतिरूपमेव मनो हि जन्मान्तरसंगतिज्ञम्॥ (रघुवंशम् 7/15)
9. स्वप्नवासवदत्तम् प्रथम अंक ब्रह्मचारी का कथन
10. "1. सतस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सनिमेघाम् या सिषम्"— ऋग्वेद 1/18/6
2. प्रिया पदानि, पावोनिपाहि विश्वायुरग्ने गुहा गुहैगाः" वही 1/67/3
3. कदु प्रेष्टा विषां रंथीणामध्वर्यन्ता युदुन्निनीथो अपाम्" वही 1/81/1
11. वही 1/179/4
12. वही 10/85/42
13. वही 10/39/7,1/12/19,1/116/1
14. रामायण 2/15
15. वही अयोध्याकाण्ड 94/11–12
16. वही 1/67
17. वही 5/21/15
18. वही 2/16/42
19. वही 4/1/52
20. वही 2/12/83
21. महाभारत वनपर्व 53/17
22. वही 64/90
23. दर्शनामेव हि शुभे त्वया मेऽपहृतं मनः—वही आदिपर्व 71/13

24. वही 74/20
25. वही 9/12,18
26. स्वप्नवासदत्तम् 4/7
27. वही तृतीय अंक के प्रारम्भ में
28. वही 4/5
29. वही 6/11
30. वही 5/5,6
31. मृच्छकटिकम् 5/31
32. वही 5/47
33. वही 4/5
34. वही 5/46
35. उत्तरमेघ/55
36. कुमारसंभवम् 5/86
37. वही 6/1
38. वही 5/31
39. उत्तरमेघ/50
40. अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4/12
41. रघुवंशम् 9/57
42. अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1/27
43. वही 2/12
44. महावीर चरित 2/32,38
45. उत्तररामचरितम् 1/36
46. वही 3/23
47. वही 3/17



“अन्याक्ति कला” भामिनी विलास के संदर्भ में

डॉ. पूजा श्रीवास्तव
प्रवक्ता – संस्कृत विभाग
महिला महाविद्यालय (परा.)

अनादि काल से ही मानव के हृदय में कला के प्रति स्वाभाविक आकर्षण रहा है। कला को संस्कृति की सुन्दरतम विभूति कहा गया है। कला व सौन्दर्य चिन्तन के दो पहलू हैं जो मानव जीवन को सुन्दर, प्रांजल एवं परिष्कृत बनाने में सर्वाधिक सहायक होते हैं। कला रूप की सर्जना करती है। अरूप को रूप देती है। अव्यक्त को व्यक्त करती है। सृजन ही कला का सार है और सृजन का सर्वस्व है – नवीन चेतना का अविर्भाव, नये आयाम और स्फूर्ति का उदय। कला का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है केवल चित्र, संगीत व मूर्तिकला ही कला नहीं है, बल्कि स्वर शब्द, रंग-रेखा, आकार-आयाम, सज्जा अलंकार आदि सभी में अपनी समूची रूप-सम्पदा व रूप-विधान को लेकर कला प्रकट होती है।

प्राणी मात्र के हृदय की अव्यक्त भावनाएँ जिस व्यक्त रूप में प्रकट हो, वही कला है। दूसरे शब्दों में कला अपने व्यापकतम रूप में मानव की कर्तव्य शक्ति का किसी भी मानसिक तथा शारीरिक या आनन्दमयी अथवा दोनों संयुक्त वस्तु के निर्माण के लिए किया गया कौशल युक्त प्रयोग है।¹ ‘कला’ शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ऋग्वेद में प्राप्त होता है—

“यथा कलां यथा शकमथ श्रणं स नयायसि।”²

ब्रह्मसूत्र में कहा गया है कि – “अरूपदेव हित सुधान त्वात्” अर्थात् जो आंतरिक भावों के कलात्मक रूप से अभिव्यंजित करे, वहीं कला है।

कला का शाब्दिक अर्थ है – कौशल या कुशलतापूर्वक किया गया कार्य। कला-कौशल किसी भी देश की उन्नति व अवनति का सूचक होता है। कला और जीवन का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिस प्रकार शारीरिक विकास का पोषक तत्व अन्न है, उसी प्रकार मानसिक पुष्टि के लिए कला पौष्टिक तत्व का कार्य करती है। वह मनुष्य के हृदयगत भावों का साक्षात् वर्णन प्रस्तुत करती है। कला जीवन में लालित्य को जन्म देती है और वह स्वयं जीवन से प्रेरणा एवं चेतना ग्रहण करती है। भर्तृहरि ने अपने नीति शतक में लिखा है—

“साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात्पशुः पुच्छ विषाण हीनः”³

अर्थात् जो मनुष्य साहित्य, संगीत एवं कला से विहीन होते हैं वह पूँछ और सींग से रहित साक्षात् पशु के समान होते हैं।

भारतीय चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में कला साधना की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है एवं इसका इतिहास अत्यन्त व्यापक एवं समृद्ध रहा है। उपनिषद् साहित्य में आत्मा को सोलह कलाओं से पूर्ण माना गया है।⁴ वात्स्यान कृत कामसूत्र व शुक्रनीति सार दोनों ग्रन्थों में 64-64 कलाओं का वर्णन प्राप्त होता है। ललित विस्तार नामक ग्रन्थ में 86 तथा प्रबन्ध कोश में 72 प्रकार के कलाओं, क्षेमेन्द्रकृत कला विलास में तथा शिव तत्व रत्नाकर दोनों ग्रन्थों में चौसठ कलाओं के नाम प्राप्त होते हैं।⁵

सामाजिक व्यवहार की दृष्टि से इसके दो भेद हैं— (1) उपयोगी कला, (2) ललित कला। उपयोगी कलाओं से मनुष्य की बाह्य आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। इसलिए इनकी संख्या असंख्य है। ललित कला जीवन को सुखद एवं मनोरंजक अनुभव कराने में पूर्ण सफल होती है। विद्वानों ने इनके पाँच भेद माने हैं – साहित्य कला,

संगीत कला, चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला। जिसमें साहित्य कला और संगीत कला को गतिशील माना गया है तथा चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला को स्थिर कला कहा गया है।⁶ ललित कलाओं के अंतर्गत काव्य एक प्रमुख कला मानी जाती है।

संस्कृत साहित्य में भाषा के उत्कृष्ट कवि तथा काव्यशास्त्री पण्डित राज जगन्नाथ ने मुक्तक काव्य 'भामिनी-विलास' की रचना की जिसको उन्होंने चार विलासों में संग्रहित किया (1) प्रास्ताविक विलास (2) श्रृंगार विलास (3) करुण विलास एवं (4) शांत विलास। जीवन में चार पुरुषार्थ के समान ही चारों विलास अत्यन्त लालित्यमय है। जिस प्रकार जीवन का प्रारम्भिक काल कुछ अक्रमिक होता है उसी प्रकार प्रास्ताविक विलास की रचना पूर्णतः अव्यवस्थित है। पर जीवन के प्रत्येक पहलू को प्रकट करती है। श्रृंगार विलास में श्रृंगारिक रचनाएँ हैं, जो युवावस्था एवं काम नामक पुरुषार्थ से युक्त है। करुण एवं शांत विलास भारतीय दर्शन परम्परा को प्रकट करता है।

भामिनी विलास में तीनों विलासों के अपेक्षाकृत प्रास्ताविक विलास में सर्वाधिक अन्योक्ति परक पद्य दृष्टिगोचर होते हैं। इसीलिए प्रास्ताविक विलास को अन्योक्ति विलास भी कहा गया है। वैसे तो अन्योक्ति एक अलंकार है। इसको अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार के नाम से भी जाना जाता है।

“अप्रस्तुतस्य अप्रकृतस्य प्रशंसा, वर्णना अभिधान मुक्तिः अप्रस्तुत प्रशंसा”⁷

सर्वप्रथम भामह ने अप्रस्तुत प्रशंसा का विवेचन प्रस्तुत करते हुए कहा कि – अधिकार से अपेत अन्य वस्तु (अप्रकृत) की स्तुति अप्रस्तुत प्रशंसा है।

“अधिकारादपेतस्य वस्तुनोऽन्यस्य या स्तुतिः।

अप्रस्तुत प्रशंसेति सा चैवं कथ्यते मया”।।

दंडी भी अप्रस्तुतों की स्तुति को अप्रस्तुत प्रशंसा मानते हैं।

“अप्रस्तुत प्रशंसा स्यादपक्रान्तेषु या स्तुतिः”⁸

वामन के अनुसार उपमेय के किंचित् लिंग मात्र कथन से वस्तु का विन्यास अप्रस्तुत प्रशंसा है।⁹

पंडितराज जगन्नाथ के अनुसार अप्रस्तुत व्यवहार (सादृश्य, कार्य, कारण, सामान्य आदि) से प्रस्तुत व्यवहार का कथन अप्रस्तुत प्रशंसा है।

“अप्रस्तुतेन व्यवहारेण सादृश्यादिवक्ष्यमाण प्रकाशन्यतम् प्रकारेण प्रस्तुत व्यवहारो यत्र प्रशस्यते साऽप्रस्तुत प्रशंसा।”¹⁰

परन्तु रूद्रट ने औपम्य-वर्ग में उपमान के द्वारा उपमेय के गम्य होने पर अन्योक्ति नामक अलंकार मानते हैं।¹¹

प्राणनार्थक 'अन्' धातु से य प्रत्यय करने पर अन्य शब्द निष्पन्न होता है, अन्य का अर्थ है असदृश्य या इतर। अन्योक्ति अलंकार होने के साथ-साथ अन्याक्ति को एक कला भी कहा गया है का तात्पर्य है – 'अन्यस्य कृते अन्यस्योक्तिः' अर्थात् अन्य के लिये अन्य की उक्ति।

किसी व्यक्ति या वस्तु को लथ्य कर कही गयी बात यदि किसी दूसरे व्यक्ति या वस्तु पर घटित हो तो वहाँ अन्योक्ति अलंकार होता है, इसमें प्रतीक के रूप में बात कही जाती है, जिसका दूसरा अर्थ भी निकलता है। तथा प्रायः व्यंग्य की प्रधानता होती है।

किसी अन्य व्यक्ति को बात किसी और उदाहरण के द्वारा समझाने की कुशलता को अन्योक्ति कला कह सकते हैं। व्यंग्य के माध्यम से भी अपनी बात को समझा या समझाया जा सकता है। जिस प्रकार हिन्दी के कवि राजबिहारी ने अपनी इसी कला के माध्यम से कुछ पंक्तियों के द्वारा राजा को उनकी गलती का अनुभव किस प्रकार कराया दृष्टव्य है : 'कहा जाता है राजा जय सिंह अपने विवाह के बाद राजकीय कार्यों की उपेक्षा करने लगे। राजा

की ऐसी अनदेखी देख सभी मंत्री परेशान थे। किसी में इतना सामर्थ्य नहीं था, जो राजा को इस संबंध में अवगत करा सके। सब बिहारी जी के पास मदद के लिये पहुँचे। बिहारी जी ने इसका एक तोड़ निकाला। उन्होंने दोहा लिखकर तुरंत राजा के पास भिजवाया—

“नहि पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।

अली कली ही सौं बंध्यौ, आगे कौनु हवाल।।¹²

अर्थात् न तो इसमें अभी पराग आया है, और न मधुरता, न अभी इसके प्रस्फुटित होने का ही क्षण आया है। अरे भ्रमर! (मित्र) अभी तो यह कलिका है और तुम अभी भी इसके मोह में अंधे हो रहे हो। अब आगे यह एक फूल के रूप में खिलेगी, तब तुम्हारी दशा कैसी होगी?

इसमें भौरे को बुरा भला कहकर राजा जयसिंह को उनकी रानी के साथ समय बिताने और राजकीय कार्यों को न देखने पर व्यंग्य किया गया है। इस तरह भौरे के माध्यम से व्यंग्योक्ति कर उन्होंने राजा को अपनी बात समझा दी। और राजा के क्रोध से भी बच गये। उन्होंने कहीं पर भी राजा का नाम नहीं लिया। परन्तु राजा समझ गये कि यह बात उनके लिये ही कही गयी है। उन्हें अपनी गलती का अनुभव हुआ और वह तुरंत राजकीय कार्यों में समय देने लगे।

बिहारी द्वारा रचित पद्य से राजा को सही मार्ग दर्शन कराना उनकी अन्योक्ति कला को दर्शाता है।

इसी प्रकार पंडित राज जगन्नाथ कृत भामिनी-विलास में वर्णित “अन्योक्ति” अनूठी एवं व्यंग्यपूर्ण है। इनकी अधिकांश अन्योक्तियाँ सरोवर, समुद्र, मेघ, सिंह, गजशावक, चंदन, कमल, पृथ्वी, सज्जन पुरुष को माध्यम बनाकर कहीं गयी है। सिंह को पराक्रम एवं शौर्य का प्रतीक कहा गया है, कमल को सुकुमारता और सरसता का, भ्रमर गुण ग्राहकता का, चंदन को परोपकार का, और मेघ को उदारता का प्रतीक बताया गया है। इन पदार्थों में मानव को उपदेश देने के पूर्ण क्षमता विद्यमान है। कवि द्वारा वर्णित समस्त अन्योक्तियाँ अत्यन्त एवं सौन्दर्य से मण्डित हैं। पण्डित राज की एक अनूठी अन्योक्ति दृष्टव्य है—

अयि! दलदरविन्द! स्यन्दमानं मरन्दं

तव किमपि लिहन्तो मंजु गुंजन्तु भृङ्गाः

दिशि — दिशि नरपेक्ष स्तावकीनं विवृण्वन्

परिमलमयमन्यो बान्धवों गन्धवाहः।।¹³

अर्थात् हे खिलते हुए कमल! तुम्हारे गिरते हुये पराग का आस्वादन करते हुए भौरे मधुर गुंजार करते हैं तो करे, किंतु निरपेक्ष होकर प्रत्येक दिशा में तुम्हारे सुगंध को फैलाता हुआ यह वायु एक विलक्षण बिन्दु ही है।

प्रस्तुत पद्य में अरविन्द को संबोधित किया गया है और प्रकरण में भृङ्ग तथा गन्धवाहः का वर्णन किया गया है। भौरा कमल के पराग का पान करता है एवं गुंजार करता है, किंतु पवन कमल से कुछ भी नहीं लेता है केवल उसकी सुगंध को चारों दिशाओं में फैलाता है। ये दोनों ही कमल के मित्र हैं, किन्तु दोनों के स्वाभाव में पर्याप्त अंतर है। भँवरे में स्वार्थ की भावना है और पवन में निस्वार्थ की भावना व्यक्त होती है। समाज में इसी प्रकार की परिस्थितियाँ प्रायः ही दृष्टिगोचर होती हैं। किसी बड़े व्यक्ति के आस पास रहने वाले लोगों में कुछ लोग स्वार्थ साधना में लगे रहते हैं तो कुछ लोग स्वार्थ सिद्धि के लिये व्यक्ति की झूठी ही प्रशंसा करते हैं तो कुछ समर्पित व निस्वार्थ भाव से उनका यशोगान करते हैं।

प्रस्तुत पद्य में कवि अपने अन्योक्ति कला के माध्यम से अरविन्द, भौरे एवं पवन के द्वारा अपने विचार मानव मन तक पहुँचाना चाहता है कि बड़बड़ाने वाले ये तुम्हारे मित्र स्वार्थी हैं, इनसे सतर्क रहो, शांत रहने वाले मित्र तुम्हारे सच्चे मित्र हैं जो निःस्वार्थ भाव से तुम्हारा यशोगान करते हैं।

कवि ने कई पद्यों में अपने स्वाभिमान की अनेकधा अभिव्यक्ति की है। इन पद्यों में कवि के अपरिचित अन्तःकरण की वाणी फूटती दिखलाई पड़ती है। जो कहीं प्रत्यक्ष कहीं गई है तो कहीं अन्योक्ति के रूप में।

प्रस्तुत पद्य में कुछ ऐसा ही दृष्टिगोचर होता है। इसमें हंस को सम्बोधित कर कवि ने विद्वान की दुर्दशा का वर्णन किया है, कदाचित् यह वर्णन स्वयं पण्डित राज के जीवन से सम्बन्धित प्रतीत होता है—

पुरा सरिस मानसे विकचसार सालिस्खलत्

पराग सुरभिकृते पयसि यस्यवीत वयः

स पल्लवजलेऽधुना मिलदनेक भेकाकुले

मरालकुल नायकः कथय रे! कथं वर्तताम्।¹⁴

कवि कहता है कि जो हंस अब तक (अपनी युवावस्था तक) प्रफुल्लित कमलों से भरे तथा उड़ते पराग से सुरभित मानसरोवर के जल में निवास कर रहा था, अब वही हंस कुल का नायक आज मेढ़कों से भरे छोटे तुच्छ जलाशय में कैसे रहा सकेगा, कहिए तो।

संभवतः इस उक्ति के अंतर्गत स्वयं कवि ने अपनी अंतर्व्यथा का वर्णन किया है। जिसे इस प्रकार समझा जा सकता है — उसने अपनी अवस्था दिल्ली दरबार के राज नागरिकों के बीच बिताई, राज परिवर्तन हो जाने पर उसे काशी आना पड़ा जहाँ संकीर्ण विचार धारा के पण्डितों ने पण्डित राज का विरोध किया, पर उनका विरोध भी पण्डित राज के लिये शोभा नहीं दे रहा था।

कवि तिरस्कार के स्थान उस काशी को मेढ़कों से भरा पल्लव कहता है, जहाँ हंस (विवेकशील) का निवास करना कठिन है।

कलभ! तवान्तिकमागतमलिमेनं मा कदाऽप्यवज्ञासीः।

अपि दान सुन्दराणां द्विपधुर्याणामयं शिरोधार्यः।।

अर्थात् हे कलभ! (हाथी के बच्चे) अपने पास आये हुए इस भ्रमर का कभी भी अपमान मत करो, क्योंकि मदजल से सुन्दर (सुशोभित होने वाले) गजेन्द्रों का भी यह शिरोधार्य है।

प्रस्तुत पद्य में कवि भ्रमर, कलश व द्वीप को आधार बनाकर क्रमशः अहंकारी, क्षुद्र, विद्वान तथा गुणी व्यक्ति को यह संदेश देना चाहता है कि जिस प्रकार अज्ञानी कलभ के द्वारा भैरों के भगा दिये जाने पर भैरा का कुछ नहीं बिगड़ता, क्योंकि मदजल से सुशोभित कपोल स्थल वाले बड़े-बड़े गजेन्द्र, अपने सिर पर धारण कर लेते हैं, अपितु बिगड़ता है उस कलभ का जो उन्हें भगाता है, उनकी शोभा नष्ट होती है।

उसी प्रकार समाज में अज्ञानतावश या अहंकार के कारण यदि कोई व्यक्ति किसी गुणवान या विद्वान व्यक्ति की गुणवत्ता एवं विद्वता का तिरस्कार कर देता है तो उस विद्वान व्यक्ति का कुछ भी नहीं बिगड़ता है बल्कि शोभा तो उस व्यक्ति की बिगड़ती है जो उनका त्याग करता है। क्योंकि गुणों को समझने वाले व्यक्ति उस गुणवान व्यक्ति को आदर के साथ अपने पास रख लेते हैं।

दैनिक जीवन में सफलता और उन्नति प्राप्त करने के लिये सज्जन व्यक्तियों का साथ होना परम आवश्यक होता है। दोष और गुण मनुष्य के संगत से ही प्राप्त होते हैं। जैसी संगति होगी वैसा ही मनुष्य का स्वभाव होता है। सत्संगति मनुष्य की आत्म शक्ति, विद्या, कीर्ति और बल को बढ़ाती हैं। इसके विपरीत दुष्टों की संगति मनुष्य के समस्त गुणों को शनै-शनै समाप्त कर देती है। इसी तरफ इशारा करते हुये पंडितराज ने निम्न पद्य में अन्योक्ति कला के द्वारा चंदन एवं सर्पों को माध्यम बनाकर मनुष्य को सचेत करने का प्रयास किया है कि समस्त गुणों से युक्त का साथ यदि दुष्ट लोगों से हो जाता है तो उनके सारे गुण समाप्त हो जाते हैं। जिस प्रकार चंदन के समस्त गुण सर्पों के कारण ग्राह्य नहीं हो पाते—

सौरभ्यं भुवनत्रयेऽपि विदितं शैत्यं नु लोकोन्तरं
कीर्तिः किंच दिगङ्गनाङ्गगता किन्त्वेतदेकं शृणु ।
सर्वानेव गुणानियं निगिरति श्रीखण्ड! ते सुन्दरान्
उज्जन्ती खलु कोटेरेषु गरलज्वालां द्विजिह्वावली ।।¹⁶

अर्थात् हे री खण्ड! तुम्हारी सुगंध तीनों लोकों में प्रसिद्ध है, शीतलता भी सर्वश्रेष्ठ है, अर्थात् अलौकिक है। तुम्हारा यश भी दिशारूपी नायिका के आँगन तक पहुँचा हुआ है, किन्तु तुम मेरी एक बात सुन लो – वृक्षों के खोखलों में विष की ज्वाला को उगलती हुयी यह सर्पों की पंक्ति तुम्हारे सभी सुंदर गुणों को निगल जाती है। व्यक्ति चाहे कितना भी गुणी क्यों न हो, यदि वह दुष्टों की संगति में पड़ा है तो निश्चय ही उसके सारे गुण व्यर्थ हो जाते हैं। चंदन की शीतलता तथा सुगन्धिमत्ता को कौन नहीं जानता सभी को उसकी चाह होती है परन्तु उसमें रहने वाले सर्पों के कारण उसके समीप कोई भी नहीं रह सकता। कहने का तात्पर्य यह है कि शांत एवं सरल स्वाभाव वाले, किंतु दुष्टों से घिरे मनुष्य की सज्जनता का लाभ उठाना असंभव है। अतः उसकी सारी सज्जनता व गुणशीलता व्यर्थ हो जाती है।

पंडितराज अन्योक्ति कला में पूर्णतयः कुशल है। उन्होंने जीवन के विभिन्न अनुभवों को बड़ी ही मार्मिकता से अभिव्यक्त किया है। अन्योक्ति विलास में संग्रहित पद्यों का काव्यत्व अत्यन्त मनोहर है। इनके प्रत्येक पद्य से एक न एक सीख अवश्य मिलती है। एक अन्य अन्योक्ति दृष्टव्य है—

दधानः प्रेमाणं तरुषु समभावेन विपुलं
न मालाकारोऽसावकृत करुणां बालबकुले ।
अयं तु द्रागुद्यत्कुसुमनिकराणां परिमलैः
दिगन्तानतेने मधुपकुल झङ्कारभरितान् ।।¹⁷

अर्थात् वृक्षों पर समान भाव से स्नेह करते हुए भी इस माली ने छोटे से बकुल वृक्ष पर अधिक दया नहीं दिखलायी। फिर भी इसने शीघ्र ही निकालते हुये पुष्प गुच्छों की सुगंध से दस दिशाओं को भौरों की झंकार से भर दिया।

प्रस्तुत अन्योक्ति द्वारा कवि यह बताना चाहता है कि मनुष्य अपना गुणवत्ता, विद्वता एवं बुद्धि बल से अपनी कीर्ति को चारों तरफ फैला सकता है। दूसरों की सहायता तो निर्मित मात्र होती है। जैसे माली ने सभी वृक्षों पर समभाव रखते हुये बकुल को छोटा पौधा जानकर अधिक नहीं सीचा पर उस छोटे वृक्ष ने शीघ्र वृद्धि को प्राप्त करके अपनी सुगंध को दसों दिशाओं में फैला दिया। वैसे ही होनहार एवं उत्साही व्यक्ति किसी की कृपा को प्राप्त किये बिना ही अपनी बुद्धि एवं गुण के बल पर सर्वत्र अपना यश फैला सकता है।

पंडितराज जगन्नाथ कृत पद्य जीवन के विभिन्न पहलुओं को बड़ी ही सरलता के साथ व्याख्यायित करते हैं। दैनिक व्यवहार में अत्यन्त सहयोगी ये पद्य पद-पद पर एक मित्र के समान हमें निरंतर सदृपदेश देते रहते हैं। सन्मार्ग की ओर अग्रसर करते हैं एवं कुमार्ग में जाने से रोकते हैं।

वास्तव में भागिनी विलास पंडितराज जगन्नाथ के विविधायामी जीवन दर्शन और अप्रतिम कवित्व शक्ति का परिणतः फल है। उनके पद्य कवित्व की सहृदयता के सहज प्रतीक हैं। इनके काव्य में अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार की रमणीयता पदे-पदे दृष्टिगोचर होती है।

संदर्भ सूची

1. वेद कालीन समाज और संस्कृति – डॉ. विमला देवी राय, पृष्ठ संख्या 15
2. ऋग्वेद – 8/47/16

3. नीतिशतकम् — श्लोक नं. 12
4. ऐतरेयउपनिषद् तृतीय अध्याय 3/2
5. वेदकालीन समाज और संस्कृति डॉ. विमला देवी राय पृष्ठ सं. 141
6. संस्कृत नाटकों में भारतीय समाज, डॉ. अनिल कुमार झा, पृष्ठ सं. 258
7. काव्य प्रकाश गजेन्द्रगडकर पृष्ठ सं. 310
8. काव्यादर्श, दण्डि, 2/238
9. काव्यालंकार सारसंग्रह 5/14
10. रसगङ्गधर पं. जगन्नाथ, पृष्ठ सं. 402
11. काव्यालंकार रूद्र 8/74
12. बिहारी सतसई महाकवि बिहारी, दोहा 102
13. भामिनी विलास प्रस्ताविक विलास, श्लोक 4
14. भामिनी विलास प्रस्ताविक विलास, श्लोक 2
15. भामिनी विलास प्रस्ताविक विलास, श्लोक 26
16. भामिनी विलास प्रस्ताविक विलास, श्लोक 37
17. भामिनी विलास प्रस्ताविक विलास, श्लोक 32



कबीर और निराला के काव्य में स्वच्छंदता हेतु विद्रोह के स्वर

डॉ. गरिमा जैन
असि. प्रोफेसर हिन्दी विभाग
आर्मापुर डिग्री कालेज, कानपुर

क्रान्तिदर्शी कबीर और महाप्राण निराला दोनों ही युग दृष्टा और युग निर्माता थे। दोनों ने ही अपने युग की सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक परिस्थितियों को अपनी मानस दृष्टि से देखा व परखा था। उभय कवियों के काव्य का मूल उत्स उनका जीवनानुभव और युगीन परिस्थितियाँ थीं। उभय कवियों ने काल की गति को पहचानकर मानव मात्र के कल्याण हेतु तत्कालीन वैषम्य एवं रूढ़ियों के प्रति विद्रोह का शंखनाद किया। जिस प्रकार मध्यकाल में कबीर ने तत्कालीन समाज को अज्ञान रूपी अंधकार से मुक्ति दिलाने के लिए क्रान्तिकारी मार्ग दिखाया, वह सर्वोत्कृष्ट एवं मौलिक है। उसी प्रकार आधुनिक युग में निराला ने भी अपनी जागरूक एवं नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के द्वारा साहित्य एवं समाज में युगान्तकारी परिवर्तन उपस्थित किया। दो ही महाकवियों ने अपनी सम्पूर्ण सृजनधर्मिता और महान प्रतिभा के सस्पर्श से अनवरत एक विद्रोही परम्परा का निर्वाह करते हुए तत्कालीन समाज पर महान उपकार किया।

क्रान्तिदर्शी कबीर सच्चे सन्त थे। वे निर्भीक, स्पष्टवादी और विनीत थे। दम्भ, पाखण्ड, अहंकार, अनाचार से उन्हें जन्मजात बैर था। इसी कारण वे कठिन परिस्थितियों के आगे कभी नहीं झुके। उन्होंने नवीन और लोक कल्याणकारी मार्ग अपनाया। उनके विचारों में अनेक सम्प्रदायों, मतों एवं महात्माओं के विचारों का अद्भुत सम्मिश्रण है। क्रान्तिदर्शी कबीर के व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने लिखा है – “वे सिर से पैर तक मस्तमौला, स्वभाव से फक्कड़ आदत से अक्खड़, भक्त के सामने निरीह, वेशाधारी के आगे प्रचंड, दिल के साफ, दिमाग के दुरुस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, युगावतार की शक्ति और विश्वास लेकर वे पैदा हुए थे और युग प्रवर्तक की दृढ़ता उनमें विद्यमान थी। इसलिए वे युगप्रवर्तन कर सके।”¹

कबीर ने समाज व धर्म के क्षेत्रों में व्याप्त विद्रूपताओं के विरुद्ध तीखा विद्रोह व्यक्त किया और समाज की उन कुरीतियों से मुक्त कराने का प्रयास अपने काव्य के माध्यम से किया।

कबीर ने समस्त व्रतों, उपवासों एवं तीर्थों को एक साथ अस्वीकार कर दिया। उन्होंने एक अल्लाह, निरंजन के प्रति लगन को ही अपना लक्ष्य घोषित किया। इस लगन या प्रेम का साधन यह यह प्रेम ही है और कोई भी मध्यवर्ती साधन उन्होंने स्वीकार नहीं किया। प्रेम ही साध्य है, प्रेम ही साधन— व्रत की नहीं, मुहर्रम भी नहीं पूजा भी नहीं, नमाज भी नहीं, हज भी नहीं, तीर्थ भी नहीं—

“एक निरंजन अल्लाह मेरा। हिन्दू तरुण दुहूँ नहीं मेरा।

राखूँ व्रत ना मरहम जारा। तिसही सुमिरूँ जो रहे निदाना।।

न हज जाऊँ न तीरथ पूजा, एक पिछाण्या तौकर दूजा।

कहैं कबीर भरम सब भागा, एक निरंजन सूँ मन लागा।।”

ये जो पीर पैगम्बर, काजी— मुल्ला, रोजा— नमाज और पश्चिम की भक्ति है ये सभी गलत है और वे देव और द्विज, एकादशी ओर दिवाली पूरव की दिशा की भक्ति है। वह भी गलत है। अपने आत्माराम को ही संगी बनाकर

वह निकल पड़े बोले – ओ फकीर, वू अपनी राह चल मन्दिर में भी मत जा और मस्जिद की ओर भी रुख न कर। काहे को टंटे में पड़ता है। तेरे लिए तो दोनो एक ही है। ब्रह्मोपासना के लिए मूर्ति को साधन और साध्य रूप में मानना सर्वथा अनुचित है क्योंकि ब्रह्म एक देशीय नहीं है, वह तो सर्वज्ञ है, सर्व व्यापक है। और सर्वसमर्थ है। निराकार ब्रह्म तो गोचारातीत एवं अनुभव से परे है।

“जाके मुख माथा नहीं, नहीं रूप कुरूप।

पुहुप वासते पातरा ऐसा तत्व अनूप।।”

इसी प्रकार कबीर ने राम, रहीम, केशव— करीम आदि के तुच्छ भेद को अस्वीकार करते हुए एकमेवद्वितीयम् की भावना प्रतिपादित की है—

“कैसो राम—रहीम—करीमा, कैसो—अल्लाह—रामसति सोई।

बिसमिल मेटि विसम्भर एकै, और न दूजा कोई।।”

कबीर का दृढ़ विश्वास था कि जाति भेद मनुष्यकृत है। इसी के कारण समाज और धर्म के क्षेत्र में अव्यवस्था फैली हुई है। वस्तुतः “साई के सब जीव है। कीरी कुंजर दोग” तब सभी के भीतर उस परम ज्योति का आभास दृष्टव्य है, फिर जाति या वर्ण— भेद कैसा? जन्म के समय सभी व्यक्ति एक जैसे होते हैं, ऐसा तो होता नहीं कि ब्राह्मण के माथे पर तिलक लगा होता हो और शूद्र के नहीं—

1— “एक जोति से सब जग उतपना को बामन को सूदा।।”

2— “जाति— पॉति पूछै नाहि कोई हरि को भजे सो हरि का होई।।”

समाज में पफैले हुए दुर्व्यसन छुआछूत, ऊँच—नीच एवं प्रचलित कुरीतियों का बहिष्कार करने पर कबीर ने बहुत जोर दिया।

“जप तप दीसै थोथरा, तीरथ ब्रत बेसास। सूबे सेवल सेविया, यो जग चल्या निरास।।”

हिन्दुओं की तरह उन्होंने मुसलमानों के बाह्याचार काजी शेख मुल्ला आदि के दम्भ और हिंसापूर्ण कृत्यों की कड़े शब्दों में आलोचना की।

“दिन को रोजा रखत है। रात हनत है गाय।

यह तो खून वह बन्दगी वैसे खुशी खुदाय।।”

कबीर के समय में मत—मतान्तरों की आँधी चल रही थी, साधु, योगी पण्डित मुल्ला अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिए सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में अव्यवस्था फैला रहे थे। उन्होंने समाज के एक वर्ग की पूर्णतः उपेक्षा करके उसे भक्ति और मानवीय अधिकारों से भी वंचित कर दिया था। कबीर ने इस दुष्प्रक्र को तोड़ने के लिए विद्रोह किया। इसी क्रम में उन्होंने वर्णाश्रम, शास्त्रीय विधि—विधान एवं रूढ़िवादी मान्यताओं का भी जोरदार शब्दों में खण्डन किया।

“कबीर ने नीर—खीर विवेकी बनकर धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक क्षेत्र में क्रान्ति मचा दी और सत्यान्वेषण और सत्यानुशीलन का मार्ग अपनाकर जनहित की भावना का प्रचार किया।” वे समस्त बाह्यचारों के जंजालों और संस्कारोंको विध्वंस करने वाले क्रान्ति कारी थे। समझौता उनका रास्ता नहीं था। कमजोर स्नायु का आदमी बनना बर्दाश्त नहीं कर सकते। “अतः कबीर ने अनुभव किया कि जतिगत, कुलगत, धर्मगत, संस्कारगत विश्वास, शास्त्रागत, सम्प्रदायगत बहुतेरी विशेषताओं के जाल को छिन्न करके ही वह आसन तैयार किया जा सकता है। जहाँ एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की हैसियत से मिले। जब तक यह नहीं होता तब तक अशान्ति रहेगी। मारामारी रहेगी, हिंसा प्रतिस्पर्धा रहेंगी।³

कबीर की तरह निराला की विद्वेही चेतना का पूर्ण प्रतिफलन उनके समग्र काव्य—संसार में देखा जा सकता

है। यह विद्रोही चेतना बहुदिशाआयामी है। उतना ही विराट और भास्वर जितना कि स्वयं निराला का व्यक्तित्व। विषयवस्तु भाषा, भाव, छन्द सर्वत्र सभी क्षेत्रों में यह चेतना नियामक तत्व है। इसलिए निराला की विद्रोही चेतना की जाँच पड़ताल है। उन्होंने स्वामी शारदानन्द जी महाराज वाले लेख के अन्त में ऐसे ही एक स्वांग का उल्लेख किया है, “ज्यातिर्मय समूह है श्यामा की बाँह पर मेरा मस्तक, मैं लहरों में हिल रहा हूँ।”⁴ कबीर की तरह ही निराला में निरन्तर एक अकखड़पन दिखई पड़ता है। वे गर्वोन्नत और अविनत है।

निराला विद्रोही कवि थें। विद्रोही ही इनके जीवन व राष्ट्र के लिए ही नहीं था बल्कि सम्पूर्ण मानवता के लिए था, डा० गंगा प्रसाद पाण्डेय ने लिखा है—

“निराला का विद्रोह व्यष्टि और समष्टि के सम्बन्ध सूत्रों से संग्रहीत एक ऐसी अकलुष अभिव्यक्ति है।, जिसका उद्देश्य सम्पूर्ण मानवता का कल्याण और विकास है। इस विद्रोह के लिए निराला को त्याग और तपस्या का जो पक्ष अनुसरण करना पड़ा वह आज किसी से छिपा नहीं।”⁵ इस कथन की पुष्टि करती हुई निरालाकी प्रस्तुत पंक्तियाँ—

“ईर्ष्या कुछ नहीं मुझे, यद्यपि
मैं ही बसन्त का अग्रदूत,
ब्राह्मण समाज में ज्यो अछूत,
मैं। रहा आज जो पार्श्व— छवि।।”⁶

वे घोर आत्माभिमानी थैं। खुशामद और चापलूसी तो दूर, राज्याश्रय तक उन्हें स्वीकार्य नहीं था। लखनऊ में एक साहित्यिक गोष्ठी में जब उनका परिचय एक वयोवृद्ध कवि द्वारा हिन्दी— हितैषी एक राजा साहब से कराया जा रहा था तब निराला बोल उठे— “हम वह है, हम वह हैं, जिनके बाप— दादों के बाप दादा की पालकी तुम्हारे बाप— दादों के बाप— दादा उठाया करते थे।”⁷ इस एक वाक्य से निराला के अडिग, विराट व विद्रोही व्यक्तित्व की थाह मिल जाती है। उनका विद्रोह मानवता की कठोर विषम परिस्थितियों और जीवन के रूढ़िगत निर्जीव संस्कारों के प्रति सचेत रहा है। यही कारण है कि उनके विरोध में शक्ति, ओज और पौरुष का अबाध आवेश पाया जाता है।

निराला स्वभावतः स्वच्छन्दतावादी थे। उन्हें किसी तरह का बन्धन स्वीकार नहीं था, उनका विद्रोही चेतना उन्हें और उनके भव को निर्बन्ध बनाती है। उनके दृष्टिकोण में नियम और अनुशासन भी सीमा के ही परिचायक होते हैं और क्रमशः मनुष्य जाति को क्षुद्र से क्षुद्रतर तथा गुलाम कर देने वाले है। निराला रूढ़िभंजाक और मूर्तिभंजक व्यक्तित्व के होते हुए भी साहित्य में भारतीयता के प्रहरी आधार स्तम्भ तुलसी और कबीर से जुड़ते हैं। इन महाकतियों को एक सूत्र में जोड़ने वाला तत्व आस्था का दिव्यरूप है।⁸

भारतीय लोकहितवाद के आन्दोलन की ओर अपने सम— सामायिक कवियों में निराला की दृष्टि सबसे पहले गई और आज के युग में निराला की दृष्टि नवीन मानवतावादी दर्शन की ओर झुकी हुई दिखती है। यह कबीर की परम्परा के विकास का अगला सोपान है।⁹

वर्तमान पूँजी वादी व्यवस्था में अर्थ ही सर्वस्व है। समाज में जितने सम्बन्ध है, सभी अर्थाश्रित है। इस के कारण सामाजिक विकृतियाँ और विषमताएं उत्पन्न होती हैं। चूँकि “यहाँ दाना है।” कविता के माध्यम से कवि ने इसी अर्थलोलुपता की ओर संकेत किया है—

चूँकि यहाँ दाना है
इसलिए दीन है, दीवाना है।
लोग हैं, महफिल है,

नग्मे हैं, साज हैं, दिजदार हैं और दिल है।

चूँकि यहाँ दाना है।¹⁰

वे हिन्दी नवजागरण के अग्रदूत हैं। यह उनका विद्रोह व्यक्तिगत ही था जो सामाजिक बन्धनों से टकराकर बार-बार क्षुब्ध होता था, किन्तु कभी उसके सामने झुकने के लिए तैयार न थे। प्राचीन लोकरीति, कुलरीति के भार को अपमान समझकर उन्होंने अपनी एकमात्र सुपुत्री का विवाह एकदम नए ढंग से कर दिया। उन्होंने अपने दामाद से कहा—

“तुम करो ब्याह तोड़ता नियम,
मैं सामाजिक योग के प्रथम लग्न के पढ़ूँगा स्वयंमन्त्र लग्न के पढ़ूँगा स्वयं मन्त्र
यदि पण्डित जी होंगे स्वतंत्र।।”¹¹

इस प्रकार जाति धर्म, समाज सभी की संकीर्ण सीमाओं पर प्रहार करना, उनसे विद्रोह करना निराला की प्रमुख विशेषता थी। वे किसी प्रकार की सीमा में बँधकर नहीं रहना चाहते थे। ‘पंचवटी— प्रसंग’ शीर्षक कविता में राम सीता से कहते हैं—

“छोटे घर की लघु सीमा में,
बंधे हैं क्षुद्र भाव,
यह सच है प्रिये,
प्रेम का पयोधि तो उड़ता है।
सदा ही निःसीम भू पर।।”¹²

अस्तु निराला का विद्रोह जीर्ण— शीर्ण परम्पराओं रूढ़ियों एवं मान्यताओं के प्रति था। समाज में जो कुछ भी गलत और त्याज्य था, उसके प्रति उन्होंने लिखा आक्रोश व्यक्त किया और उससे मुक्ति के लिए स्वच्छन्दता व्यक्त किया और उससे मुक्ति के लिए स्वच्छन्दता लाने का प्रयास किया।

अस्तु कबीर और निराला के स्वच्छन्दता हेतु विद्रोह के स्वर के अध्ययन के पश्चात यह स्पष्ट हो जाता है कि उभय महाकवियों को इस समाज की जो गलित मान्यता दिखाई पड़ी और जो कार्य उन्हें वर्जनीय लगे ऐसी सभी मान्यताओं और कार्यों के प्रति उन्होंने विद्रोह किया। दोनों ही किसी मान्यताको आँख मूँद कर स्वीकार करने वाले नहीं थे। चाहे इस कार्य के लिए उभय कवियों को समाज का कितना ही विरोध सहन भी क्यों न करना पड़े वे उससे किंचित मात्र भी भयभीत नहीं होते थे बल्कि समाज की हर दूषित मान्यता से लोहा लेने के लिए और जनमानस को उससे स्वतन्त्र कराने के लिए तैयार रहते थे।

सन्दर्भ

1. कबीर ग्रंथावली— डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ०—338
2. कबीर की काव्यकला— डॉ० मुरारी लाल शर्मा ‘सुरस’ पृ०—26
3. कबीर— सम्पादक— विजयेन्द्र स्नातक पृ०—128
4. निराला की साहित्य साधना; भाग—1 पृ०—31
5. परिमल; भूमिका—पृ०—15
6. निराला का काव्य—प्रयोग के आयाम— डॉ० अरुणिमा गौतम— पृ०—350
7. क्रान्तिकारी कवि निराला— डॉ० बच्चन सिंह— पृ०—56
8. अणिमा— निराला— पृ०—846
9. अनामिका; सरोजस्मृति— पृ०—137
10. परिमल; पंचवटी प्रसंग— निराला— पृ०—215



स्त्री आत्मबोध और कृष्णा सोबती का कथा साहित्य

डॉ. नीतू सिंह

प्रवक्ता हिन्दी

कुँवर महेश सिंह जगरूप सिंह स्मारक, महाविद्यालय, बक्तूखेड़ा, अजगैन, उन्नाव

कृष्णा सोबती के उपन्यासों की नायिकायें संघर्षशील हैं। उन्होंने अपने मन में जो ठाना वो कर दिखाया है। सोबती जी ने अपने कथानक में कुछ भी नहीं छिपाया है। उन्होंने अपने जीवन में जो भी देखा—सुना एवं अनुभव किया है उसे वैसी स्थितियों में व्यक्त कर दिया है। इसे अभिव्यक्त करने में उन्होंने सीधी भाषा का प्रयोग किया है।

स्त्री क्या है? पुरुष क्या है? स्त्री पुरुष के परस्पर सम्बंध क्या हैं? स्त्री पुरुष सम्बन्धों का आदर्श रूप क्या है? ये ऐसे प्रश्न हैं जिन पर अलग-अलग परिस्थितियों में विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं। नयी पुरानी पीढ़ियों पर इन प्रश्नों को परखा गया लेकिन ये प्रश्न एक संतोष जनक उत्तर के अभाव में अनुत्तरित ही रहे।

कृष्णा सोबती की नारी “एग्रेसिव” है लेकिन दिशाहीन नहीं वह भूमि फाड़कर अचानक प्रकट नहीं हुई वरन् विकास की अनवरत प्रक्रिया का अनिवार्य परिणाम है। इसी लिए अपने पूर्वजों से विवेक एवं आस्था के अस्त्र लेकर जमाने भर की प्रतिकूलताओं का सामना करने चली है। यही तो आत्मबोध है।

हिन्दी कथा साहित्य की अन्य नारियाँ अनथक संघर्ष के बाद उपलब्धि के नाम पर रिक्त बोध से ग्रस्त हो जाती हैं, वहीं कृष्णा सोबती की नायिकायें अधिकार के नाम पर कोई स्थूल सुविधा पाकर भी असीम परितोष से भर उठती हैं। वो अपना आत्म सम्मान बनाये रखना चाहती हैं। समाज में भी और अपनी नजरों में भी।

आत्मबोध का अर्थ है आत्मा का बोध। कोई भी पुरुष या स्त्री अपने विवेक से किसी भी विषय वस्तु, धार्मिक, साम्प्रदायिक, राजनैतिक, व्यवसायिक, पारिवारिक विषय के संदर्भ में अपनी अंतर्बुद्धि से क्या कहता है – क्या कहती है, क्या सोचता है, क्या सोचती है, क्या करना चाहता है, क्या करना चाहती है? यही आत्मबोध है।

किसी पुरुष या स्त्री द्वारा अपने मन में जो सोचकर कार्य किया जाता है वह उसका आत्मबोध है। हिन्दी साहित्य की अनेक महिला लेखिकाओं ने महिला लेखन किया है वे लेखन में सफल हुई हैं, यह उन महिला लेखिकाओं का आत्मबोध ही है।

महिला लेखन में कृष्णा सोबती, सीमोन द बोउवार, तस्लीमा नसरीन, प्रभा खेतान, प्रज्ञा शर्मा, जर्मेन ग्रीयर, अमृता प्रीतम, छाया गुप्ता आदि स्त्रियों ने हिन्दी में लिखा। इनका लेखन भी अच्छा एवं महत्वपूर्ण रहा है। तो वे सब क्या हैं? ये उनका आत्मबोध ही तो है। ये स्त्रियाँ क्या पुरुषों से कम प्रतिभाशाली हैं? क्या वे अपनी रचनात्मक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, प्रबंधात्मक क्षमताओं, नेतृत्व से विहीन हैं? पुरुषों ने ऐसे आरोप लगाकर हीनता मात्र से ग्रस्त कर रखा था। अब वे धीरे-धीरे अपनी शक्ति और पाँव के नीचे की जमीन को पहचानने और अस्मिता के लिये संघर्ष करने लगी हैं। उनमें अब अपनी पराधीनता व स्वतंत्रता का बोध होने लगा है। “वह कैसे आत्मनिर्भरता को प्राप्त करें जिससे स्त्री की स्वाधीनता को सीमित करने वाली परिस्थितियों का सामना किया जा सके ये सोच क्या है? ये स्त्री का आत्मबोध ही तो है, जिसके कारण वह सोच रही है कि हमें क्या करना है और क्या नहीं।” किसी भी पुरुष-स्त्री के स्वतंत्र विचार क्या हैं? वह अपने मन, चेतन, बुद्धि से क्या सोचता है? क्या प्रदर्शित करता है? यह व्यक्ति का आत्मबोध है।

सामाजिक परिवेश में नारी के आत्मबोध की बहुत ही दुर्दशा रही है क्योंकि समाज पितृ सत्तात्मक रहा है। स्त्रियों की अस्मिता का प्रश्न आज हाशिये पर है क्यों? और एकाएक पूरी दुनिया में उनकी अस्मिताओं के लिये,

उनकी मुक्ति के लिये प्रश्न क्यों उठने लगे? दुनिया में आज तक हाशिये पर फेंके गये अल्पसंख्यक, उत्पीड़ित स्त्रियाँ अपने हाशियाकृत संसार की पहचान एवं बंधन को तोड़कर अपने स्वाधिकारों के लिये यदि जागरुक हो गई हैं तो वर्चस्ववादी व्यवस्था का केन्द्रवाद, सत्तावाद, आक्रमक, हिंसक और चिंतित प्रतीत होता है। अपनी अस्मिताओं के लिये संघर्ष करना, दबे-कुचले लोगों को स्वयं के बारे में, अपनी मुक्ति के बारे में सोचना और विमर्श करना निःसंदेह वर्चस्वशाली वर्गों के लिये एक चुनौती है। आज तक तो वह अपने वर्चस्व, प्रभुत्व के द्वारा उन्हें दबाता, कुचलता, रौंदता वाणीहीन करता आया था। लेकिन अब तक दबी कुचली, खामोश नारियाँ अपने स्वाधिकारों, अस्मिताओं के बारे में पूरी प्रखरता के साथ सोचने, विचारने लगी हैं तो स्वाभाविक है पुरुषों का उत्तेजक, आक्रमक, हिंसक होना स्वाभाविक है।

विश्व विख्यात लेखिका सोमोन द बोउवार ने स्त्री आत्मबोध के प्रश्न को स्पष्ट किया है कि कैसे पितृ सत्ता ने उसको प्रतिभाहीन कहकर हीनताभाव की स्थिति में डाला है ताकि वह यथास्थिति से बाहर निकल ही न सके। हम नीग्रो और औरत की स्थिति में गहन समानता पाते हैं। दोनों आज पितृ सत्ता से मुक्त हो रहे हैं, ये सब क्या है? सामाजिक परिवेश में उनका आत्मबोध ही तो है।

पितृसत्तात्मक समाज के द्वारा स्त्री को शुरु से ही अपने अधनी रखा गया है एवं उसे प्रताड़ित, उत्पीड़ित, शोषित किया जाता रहा है किन्तु आज स्त्री यानी नई स्त्री ऐसा कुछ सहन नहीं कर रही हैं वह पढ़ी-लिखी है, सम्य, समझदार है, उसकी अपनी सोच है, अपने स्वतंत्र विचार हैं अधिकतर औरतें अपने घर और समाज के फैसले स्वयं ले रहीं हैं। यही उनका आत्मबोध है।

पुरुष जहाँ स्त्रियों पर अपना वर्चस्व प्रभुत्व चाहता है वहीं स्त्रियाँ वर्चस्व, प्रभुत्व न चाहकर अपने अस्तित्व, अस्मिता की अलग पहचान चाहती हैं, समान अधिकार चाहती हैं। जब स्त्री-पुरुष में समान भावना होगी, तभी एक स्वस्थ समाज की स्थापना होगी। ऐसा समाज जहाँ एक दूसरे के प्रति तिरस्कार बल्कि सम्मान का भाव हो। यह सब आत्मबोध द्वारा ही सम्भव होगा।

अपनी स्पष्टवादिता, प्रखर चिंतन, नैतिक साहस के कारण ही कृष्णा सोबती, सीमोन, तस्लीमा, फरीदन आदि ने स्त्रियों के स्वतंत्र अस्तित्व के लिये अपना मुँह खोला। स्त्री स्वतंत्रता को लेकर अक्सर मजाक उड़ाते हैं कि स्त्रियाँ अब स्वतंत्र होना चाहती हैं। लेकिन यह उन्हें बदनाम व अपमानित करने का ढंग है। स्त्री स्वतंत्रता का अर्थ है स्त्री की शोषण से मुक्ति ताकि वह स्वतंत्र ढंग से जी सके, सोच सके, कार्य कर सकें। उसे सामने पितृक अनुशासन की दीवारें, श्रृंखलाएँ न हों अपने अस्तित्व व अस्मिताओं के बारे में उसके स्वाधीन विचार हो, अपने स्वाधिकारों के बारे में उसकी स्वतंत्र सोच हो। पितृ सत्तात्मक समाज स्वाधीन सोच रखने वाली, स्वाधिकारों के प्रति जागरुक और स्पष्टवादी स्त्रियों को पसन्द नहीं करता, क्योंकि ऐसी स्त्रियाँ उनके वर्चस्व, अंतर्विरोधों को तोड़ती हैं। उसकी कमजोरियाँ हिंसा को रोकती हैं और उनका अपना स्त्रीत्ववादी परिप्रेक्ष्य होता है।

समूचे स्त्रीत्ववादी विमर्श के प्रति पितृक सत्ता, पुल्लिंगीय विमर्श का लगभग ऐसा ही नकारात्मक दृष्टिकोण रहा है, क्योंकि वहाँ पुरुष तंत्र की इतनी प्रखर आलोचना हुई है। जिसे सुनने का साहस फिलहाल पुरुषों में नहीं है। तस्लीमा को जान से मार देने की धमकियाँ क्या स्त्री विमर्श के प्रति फासीवादी मानसिकता की सूचक नहीं हैं?

दुनिया में आजतक जितनी स्त्री लेखिकाओं ने उत्पीड़ित नारी के इतिहास की करुणात्मक स्थिति, नियति को उभारने की कोशिश की है, उसे जिन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, वह भी आँखें खोल देने वाली घटनाएँ हैं।

कृष्णा सोबती ने बड़ी शिद्दत के साथ औरत के हक में लिखा है – स्त्रियाँ निर्मम, शोषण, अन्याय, उत्पीड़न के खिलाफ बोलने लगी हैं, यही तो उनका सामाजिक आत्मबोध है। स्त्रियों का पहले पुरुषों के सामने बोलना भी गलत माना जाता था, किन्तु आज ऐसा कुछ नहीं है। जबतक स्त्रियों में आत्मबोध नहीं जागेगा। तब तक वहाँ स्वतंत्र एवं स्वच्छंद नहीं कहला सकेंगी। स्त्रियाँ जिस समाज के भय के कारण उत्पीड़न और शोषण का विरोध नहीं कर पा रही हैं उसी से उन्हें सीधे टकराकर समाज में अपने आत्मबोध, आत्म सम्मान को स्थापित करना होगा। महिला

लेखिकाएँ स्त्री समाज को जागरूक करने की भरसक चेष्टा कर रही हैं यह सब क्या है? यह उनका आत्मबोध है जिसके द्वारा वह अन्य महिलाओं के आत्मबोध को जगाने का प्रयास कर रही हैं। इन लेखिकाओं ने स्वयं कष्ट झेले हैं, सामाजिक अपमान, तिरस्कार को अनुभव किया है इससे बचाव के लिये उन्होंने सोचना शुरू किया, जिससे उनमें स्वतंत्र विचारधारा प्रस्फुटित हुई। यही सोचना उनका आत्मबोध है। स्त्रियों का सम्पत्ति, पूँजी के स्वामित्व से वंचित रहना ही उनकी अधीनस्थ, अन्या होने का मुख्य कारण है। भला जो व्यक्ति आर्थिक धरातल पर कमजोर है वह क्या समाज में कोई सामाजिक प्रतिष्ठा रखता है? परिवार और पूँजी का सम्पूर्ण और नियंत्रण पुरुषों के हाथ में होने के कारण समाज और राजसत्ता के सभी क्षेत्रों में स्त्रियों की स्थिति न के बराबर है। इन सब के विरोध में स्त्री अपने विवेक से काम ले रहीं हैं। यही तो उसका आत्मबोध है। कृष्णा सोबती ने अपने आत्मबोध से काम लिया है क्योंकि तभी तो वह समाज के सामने वाले कार्य करने में सफल हुई हैं।

अधिकतर स्त्रियाँ अपने आत्मबोध की अभिव्यक्ति करने में असफल हुईं। बहुत कम ही स्त्रियाँ ऐसी हैं जोकि अपनी आत्म अभिव्यक्ति जाहिर कर सकी हैं, जिनमें से सीमोन द बोउवार, सोबती, तस्लीमा नसरीन और कैटमिलेट, बन्टी फरीदन, इरी गैरो आदि स्त्रियाँ ही इस कार्य में सफल हुई हैं। पिछले 20-50 वर्षों से स्त्री के स्थिति में कुछ अंतर आया है फिर भी अभी तक एक स्वतंत्र, जिज्ञासु आत्मविश्वास से भरी पूर्ण स्त्री की तस्वीर न उभर कर ऐसी संघर्षशील नारी की तस्वीर उभरती है जिसके घरेलू दायित्व वहीं के वहीं हैं (उसकी अधिकतम शक्ति का उपयोग करने वाले) और स्वतंत्रता चाहने वाले एक बड़ा चादर अपने ऊपर ओढ़ लिया हैं। इस दोहरे श्रम की थकान और टूटन लिये वह अपने इतिहास और अपने भविष्य के बीच एक आशातीत वर्तमान बनाने लिये उत्सुक सतत जूझ रही है। यह सत्य है कि उसका मुह तो प्रकाश की ओर झाँक रहा है पर उसके पैर अभी भी दल-दल में फसे हैं। वह स्त्री लेखन कार्य में आगे आयीं जरूर हैं पर पितृ सत्तात्मक समाज उसे आड़े हाथों ले रहा है। जिस कारण वह अपने विचारों की अभिव्यक्ति करते हुए भी सकुचाती हैं।

स्त्री की चिंता-आत्मनिर्भरता, आत्मसम्पन्नता के लिये होनी चाहिए न कि सामाजिक स्थिति के अभिशाप को एक बचाव की तरह इस्तेमाल करके करुणा बटोरने की। कहना न होगा कि आत्मनिर्भर होने पर सामाजिक स्तर पर उसकी भूमिका बदल जायेगी। क्योंकि जो ढाँचा उसके पराधीन होने की वास्तविकता पर खड़ा है वह स्वतः ढह जायेगा।

कृष्णा सोबती ने अपनी कहानियों, उपन्यासों—“डार से बिछड़ी”, “मित्रों मरजानी”, “यारों के यार”, “सूरजमुखी अंधेरे के”, “जिन्दगीनामा” आदि में संघर्षरत स्त्रियों को समाज में अपने वर्चस्व और आत्मबोध में स्थापित करके दिखाया है। वस्तुतः नवीन शिल्प और नूतन दृष्टिकोण के कारण सोबती जी की कहानियाँ, उपन्यास हिन्दी साहित्य में विशिष्ट महत्व की अधिकारिणी हैं। सोबती जी की रचनाओं में यथार्थ, आदर्श, परम्परा और आधुनिकता का अभूतपूर्व समन्वय हुआ है। स्त्री जीवन के सूक्ष्म अतिसूक्ष्म पहलुओं पर दृष्टि रखते हुए सृजनात्मक प्रतिभा के साथ उसका वर्णन किया है। यही कारण है कि सोबती जी का कथा साहित्य स्त्रियों के आत्मबोध, वर्चस्व की उत्कृष्ट व्याख्या प्रस्तुत करता है।

सन्दर्भ सूची :-

1. कृष्णा सोबती का कथा साहित्य—महेश आलोक — पृष्ठ 102, 103, 104, 110, 111, 113
2. औरत की अभिव्यक्ति एवं आदमी का अधिकारी—डॉ. प्रमिला के.पी. जवाहर पुस्तकालय, मथुरा 2004
3. हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला—डॉ. रोहिणी अग्रवाल, दिवमान प्रकाशन दिल्ली 1197
4. शशि मौर्या, न्याय की तलाश में झूलती महिलायें, 2003, सहयोगिनी, छतरपुर
5. डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव — समकालीन परिवेश : विकल्प, नीतियाँ और सुझाव। नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2010



छायावाद : आधुनिक हिन्दी शक्तिकाव्य

निखिल उपाध्याय

शोध छात्र, हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

आधुनिकता समय सापेक्ष है। इसकी कोई निश्चित समय सीमा नहीं है। आधुनिकता ने ही जीवन को समग्रता तथा यथार्थता की तरफ ले जाने का उपक्रम किया है। आधुनिक युग मुगल साम्राज्य के पराभव तथा ब्रिटिश उपनिवेशवाद के प्रारम्भ का समय है। ब्रिटिश उपनिवेशवाद के प्रारम्भ के समानान्तर ही भारत में एक नई सभ्यता की नींव पड़ती दिखाई देती है, इसी नई नींव के माध्यम से समाज आधुनिकता की राह पर चलता है। अज्ञेय के अनुसार—“आधुनिकता एक अनगढ़ चीज है X X X X X X संस्कारवान होने की क्रिया ही आधुनिकता है परन्तु संस्कारी होकर रुक जाना आधुनिकता नहीं है।” जिस प्रकार युग परिवर्तन के साथ जीवन मूल्यों में बदलाव स्वाभाविक है उसी प्रकार जीवन मूल्य के साथ साहित्यिक मूल्य का परिवर्तन भी स्वाभाविक है। साहित्यिक मूल्यों में परिवर्तन का ये क्रम हमें हिन्दी साहित्य के इतिहास के आधुनिक काल के विभिन्न पायदानों में सुस्पष्ट होता है। हिन्दी की आधुनिक कविता की शुरुआत ब्रजभाषा को छोड़कर खड़ी बोली से होती है। भारतेन्दु युग, विक्टोरिया के शासन का समय है और तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप ही अपने अंदर राजभक्ति, राष्ट्रभक्ति, अंतर्विरोध और समस्यापूर्ति आदि प्रवृत्तियों को समेटता है। द्विवेदी युग स्वदेशी आन्दोलन और असहयोग आन्दोलन के प्रभाव में आने के कारण राष्ट्रीयता की नवीन अवधारणा से समाज का परिचय कराता है, साथ ही साथ समाज के नये प्रतिमानों एवं साहित्य के कुछ विशिष्ट नियम कानूनों को जन्म देता है। यह युग भाषायी अद्वैत के साथ-साथ साहित्य में अनुशासन पर विशेष जोर देता है। स्वच्छन्दतावाद की पृष्ठभूमि भी इसी युग में बनती है। स्वच्छन्दतावाद को ही आगे चलकर कुछ आलोचकों ने छायावाद नाम दिया। यह आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास का तीसरा चरण (1918-1936) है। जो कि अपनी विशिष्ट अभिव्यंजना प्रणाली एवं नवीन काव्य चेतना के कारण चर्चित रहा। मौखिक रूप से ‘छायावाद’ शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किसने किया? इसकी जानकारी अभी तक अधूरी है, परन्तु हिन्दी में ‘छायावाद’ लेख में पहली बार मुकुटधर पाण्डेय ने लिखित रूप में छायावाद शब्द का प्रयोग किया⁽²⁾। स्वच्छन्दतावाद के प्रमुख कवि श्री धर पाठक ने स्वच्छन्ता की घोषणा कर दी —

“लिखो, न करो लेखनी बंद

श्रीधर सम सब कवि स्वच्छंद।”

छायावाद की कोई निश्चित परिभाषा कभी भी तय नहीं हो सकी फिर भी वैयक्तिकता, स्वातंत्र्य चेतना, रहस्यवादिता, शैलीगत वैशिष्ट्य, अस्पष्टता, प्रकृतिवर्णन आदि इसकी प्रमुख विशेषतायें मानी जाती हैं। रामचन्द्र शुक्ल जी इसे रहस्यवाद और प्रतिबिम्बवाद नाम देते हैं। उनके अनुसार “छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिये एक तो रहस्यवाद के अर्थ में x x x x x और दूसरा काव्यशैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में।”⁽³⁾ डॉ० नगेन्द्र छायावाद को ‘स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह’ मानते हैं। उनको छायावाद, द्विवेदी युग के अनुशासन के विरोध में उपजा काव्यान्दोलन नज़र आता है। इस विरोध को दो आधारों पर समझा जा सकता है। संवेदना के स्तर पर स्थूल का तात्पर्य है—द्विवेदी युगीन सामाजिकता। नवजागरण की जो चेतना द्विवेदी युग में बलवती हो रही थी, उससे व्यक्ति की वैयक्तिकता का हनन हो रहा था। शिल्प के स्तर पर भी यह द्विवेदी युगीन अभिधात्मकता और इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध शिल्पगत स्वतंत्रता का आन्दोलन था। छायावाद बाहरी जगत के स्थान पर व्यक्ति के भीतरी जगत को कविता का विषय बनाता है। छायावाद के लगभग सभी कवि जैसे सूर्यकान्त

त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत अपनी कविताओं में व्यक्तिगत अनुभूतियों को स्थान देते हैं।

छायावाद पर आरोप लगाया जाता है कि इसमें निराशा और पलायन की प्रवृत्ति देखने को मिलती है। छायावाद में व्यक्तिगत अनुभूतियों की प्रधानता के कारण प्रायः कवियों ने अपनी कविताओं में अपने ऐसे मनोभावों को व्यक्त किया है, जिसमें उन्होंने बाह्य जगत की तुलना में व्यक्ति के अन्तर्जगत को श्रेष्ठ बताया है। प्रसाद की निम्न पंक्तियाँ तो प्रायः आलोचकों को पलायनवाद की ओर संकेत करने को मजबूर करती हैं—

“ले चल मुझे भुलावा देकर
मेरे नाविक धीरे-धीरे।”

छायावाद के चार स्तम्भों में इकलौती कवयित्री होने का गौरव हासिल करने वाली महादेवी वर्मा जी तो जीवन को विरह पूर्ण ही समझती हैं और अपने विरह की अनुभूतियों को अपने काव्य में व्यक्त करती हैं—

“मिलन का मत नाम लो
मैं विरह में चिर हूँ।”

“मैं नीर भरी दुःख की बदली
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली”

विरह का जलजात, जीवन विरह का जलजात⁷

कुछ आलोचकों ने तो निराला जैसे ओज कवि को भी उनकी रचना सरोज स्मृति के आधार पर छायावाद में शक्तिहीनता और निरीहता का कवि बताया—

“दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही।”⁸

इस दृष्टि से देखें तो पश्चिमी स्वच्छन्दतावाद से प्रभावित माना जाने वाला छायावाद, पलायनवादी और दैन्यता का काव्य प्रतीत होता है जबकि पश्चिम के रोमांटिक काव्य में शक्ति योजना का प्रचण्ड उत्सव दिखाई देता है। किन्तु यह दृष्टि एक अधूरे सत्य की ओर संकेत करती है। छायावाद में कुछ ऐसी कविताएँ जरूर हैं जिसमें दुःख को सौन्दर्यात्मक रूप प्रदान किया गया है लेकिन इस भाव को छायावादी कवियों का स्थाई भाव मान लेना विचारों की अपरिपक्वता मानी जाएगी। यह कभी-कभी पनपने वाला आकस्मिक भाव मात्र है। छायावादी कवि अपनी मूलप्रकृति में उत्साह और जज्बे से भरे कवि हैं और तत्कालीन भारत की परिस्थिति भी उनसे ऐसी ही उम्मीद कर रही थी। बांग्ला साहित्य में भी शक्ति की वह चेतना उपस्थित नहीं है जो कि छायावाद में है।

प्रसाद को भी कुछ कविताओं के आधार पर ही पलायनवादी सिद्ध नहीं किया जा सकता है। वे मूलतः ओज के कवि हैं। काव्यों तथा नाटकों दोनों में ही प्रसाद की शक्ति चेतना बेहद स्पष्ट रूप से नज़र आती है। प्रसाद को तत्कालीन आन्दोलनों ने भी प्रभावित किया है। उनके काव्य में जागृति, जागरण, जागो आदि शब्दों का निरन्तर प्रयोग हुआ है। प्रसाद देश के गौरवमयी अतीत पर गर्व करते हैं—

“अरुण यह मधुमय देश हमारा,
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को,
मिलता एक सहारा।”⁹

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि प्रसाद की सोच सकारात्मक है। इसी सकारात्मक सोच के दम पर उनकी कविता सोए हुये आदमी को भी क्रान्ति चेतना से भर देने में सफल होती है—

“हिमाद्रि तुंग श्रृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती

स्वयंप्रभा, समुज्ज्वला, स्वतंत्रता पुकारती।”¹⁰

उन्होंने कामायनी में भी शक्ति चेतना का स्पष्ट दर्शन प्रस्तुत किया है। कामायनी में वे प्रत्यभिज्ञा-दर्शन के समर्थक के रूप में उभरते हैं जो कि जगत को महाशक्ति की अभिव्यक्ति ही मानता है।

सुमित्रानन्दन पंत प्रकृति के सुकुमार कवि हैं। इस बात में कोई संदेह नहीं है कि प्रकृति से विशेष लगाव होने के कारण उनका साहित्य कोमल भावनाओं से आप्लावित है। जहाँ एक ओर पंत की दृष्टि प्रकृति के सौन्दर्य तथा नारी के सौन्दर्य के बीच उलझती है तो वहीं वो दूसरी ओर परिवर्तन जैसी कवितायें भी रचते हैं। अरविन्द के अति मानववाद का भी कुछ प्रभाव उन पर दिखता है। उनकी निम्न पंक्तियाँ शक्ति चेतना को ही प्रस्तावित करती हैं—

“जो है समर्थ जो शक्तिवान,

जीने का है अधिकार उसे”

“पूर्ण तन्त्र मानव वह ईश्वर,

मानव का विधि उसके भीतर।”

छायावाद में महादेवी का काव्य सामान्यतः विरह का काव्य माना जाता है। रहस्यवादिता से परिपूर्ण इस काव्य में निश्चित रूप से शक्ति चेतना छायावाद के अन्य कवियों के अपेक्षा कम दिखती है किन्तु यह कहना गलत होगा कि सम्पूर्ण ‘महादेवीकाव्य’ शक्ति चेतना से वंचित है। महादेवी की कविताओं में प्रतीक के रूप में सबसे अधिक दीपक का प्रयोग हुआ है, जो कि आशावादी दृष्टिकोण का नायक है क्योंकि अन्धकार को दूर भगाने या यूँ कहें अन्याय के विरुद्ध लड़ने वाले प्रतीको में वह प्रथम पंक्ति में से है। चातक जैसे प्रतीक जो कि सदैव दृढ़ आशा के लिए प्रयुक्त होते हैं, का भी प्रयोग महादेवी जी ने किया है। अपनी कविता “जाग तुझको दूर जाना” में वे वस्तुतः उन भारतवासियों को जगा रही हैं जो कि अंग्रेजी सत्ता के सामने खुद को बौना समझ रहे हैं। इस कविता में शक्ति चेतना का प्रभाव सुस्पष्ट है—

“कह न ठण्डी सांस में, अब भूल वह जलती कहानी

आग हो उर में, तभी दृग में, सजेगा आज पानी

x x x x x

है तुझे अंगार शैय्या पर मृदुल कलियाँ बिछाना

जाग तुझको दूर जाना।”¹¹

निराला छायावाद के शक्ति चेतना के सबसे समर्थ कवि हैं। उनके काव्य में निराशा और पलायन का कोई स्थान नहीं है। सरोज स्मृति में पुत्री की मृत्यु ने उन्हें कुछ समय तक निश्चित रूप से झकझोर दिया किन्तु शीघ्र ही उन्होंने ‘राम की शक्ति पूजा’ लिखकर अपने महाप्राण व्यक्तित्व को पुनः सही सिद्ध कर दिया। उनके साहित्य में शक्ति चेतना की बाढ़ सी नजर आती है—

“तोड़ो-तोड़ो-तोड़ो कारा

निकले फिर गंगाजल धारा।”

“एक बार बस और नाच तू श्यामा।”

“शेरों की मांद में आया है आज स्यार”¹²

“जीर्ण बाहु है क्षीण शरीर

तुझे बुलाता कृषक अधीर

ए विप्लव के वीर।”¹³

‘राम की शक्ति पूजा को निर्मला जैन ने⁴ शक्ति काव्य का प्रतिमान कहा है। इस कविता में अंधकार और प्रकाश तथा उसके माध्यम से निराशा और आशा की जो निरन्तर टकराहट दिखायी पड़ती है। वह किसी भी शक्ति काव्य के लिये आदर्श मानी जा सकती है। कविता की मूल समस्या का जिक्र भी निराला कविता की एक पंक्ति में ही करते हैं—

“अन्याय जिधर है उधर शक्ति
कहते छल छल,
हो गये नयन
कुछ बूंद पुनः ढलके दृगजल।”¹⁵

समस्या का समाधान भी कवि ने कविता में दिया है—

“शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन,
छोड़ दो समर जब तक सिद्धि न हो रघुनन्दन।”¹⁶

ध्यातव्य है कि निराला राम की शक्ति पूजा के माध्यम से केवल एक पौराणिक प्रसंग का जिक्र ही नहीं करते हैं बल्कि उनका मूल उद्देश्य युवाओं को ये संदेश देना है कि भले ही अंग्रेजी सत्ता शक्तिशाली है किन्तु शक्ति की मौलिक कल्पना से उसको पराजित किया जा सकता है। निराला, शक्ति चेतना को ही अभिव्यक्त नहीं करते बल्कि मौलिकता पर भी विशेष जोर देते हैं। कविता के अन्त में निराला के राम जब अपनी आँख को अर्पित करने को तत्पर दिखते हैं तो महाशक्ति को श्री राम के पक्ष में आने के लिए बाध्य होना पड़ता है। यहाँ पुनः निराला युवाओं को एक संदेश देते हैं—

“रावण अशुद्ध होकर भी, यदि कर सका त्रस्त
तो निश्चित तुम हो सिद्ध, करोगे उसे ध्वस्त।”¹¹

स्पष्ट है कि छायावाद को कुछ कविताओं के आधार पर निराशा, दैन्यता और पलायन का काव्य मानना पूर्णतः तर्कसंगत नहीं है। निराला और पलायन का जो भाव छायावाद में दिखता है, उसका प्रमुख कारण तत्कालीन परिस्थितियाँ हैं जिसमें लगातार शक्तिशाली अंग्रेजी सत्ता के खिलाफ भारतीयों की विफलता स्पष्ट दिखती है। लेकिन पूर्ण विवेचना से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि छायावाद वास्तव में आधुनिक हिन्दी शक्तिकाव्य है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. लिखि कागज कोरे, अज्ञेय, पृष्ठ-37
2. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह, पृष्ठ 329
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 394
4. ले चल मुझे भुलावा देकर (कविता), जयशंकर प्रसाद
5. आधुनिक कवि महादेवी वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
6. मैं नीर भरी दुःख की बदली (कविता), महादेवी वर्मा
7. जीवन विरह का जलजात (कविता), महादेवी वर्मा
8. सरोज स्मृति (कविता), सूर्यकान्त त्रिपाठी ‘निराला’
9. अरुणयय मधुमय देश हमारा, जयशंकर प्रसाद
10. हिमाद्रि तुंग श्रृंग से, (कविता), जयशंकर प्रसाद
11. जाग तुझको दूर जाना (कविता), महादेवी वर्मा
12. जागो फिर एक बार (कविता), सूर्यकांत त्रिपाठी ‘निराला’
13. बादल राग (कविता), सूर्यकांत त्रिपाठी निराला
14. शक्ति काव्य का प्रतिमान: राम की शक्तिपूजा (लेख), निर्मला जैन
15. राम की शक्ति पूजा (कविता), सूर्यकान्त त्रिपाठी ‘निराला’



आत्मजयी की अस्तित्ववादी चेतना

अश्विनी सिंह

(शोध-छात्रा, एस. आर. एफ.), हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

आत्मजयी में स्वयं की आत्मा को जीतने की कथा होती है। वास्तव में आत्मजयी में उपनिषदीय कथातत्त्व तो कठोपनिषद का है परन्तु उसकी समस्याएँ समकालीन व्यक्तिमन की समस्याएँ हैं। 'आत्मजयी' पर एक सीमा तक अस्तित्ववादी विचारधारा का प्रभाव माना जाता रहा है। इस तथ्य का संधान करने के लिए सर्वप्रथम यह जान लेना आवश्यक होगा कि वास्तव में अस्तित्ववाद क्या है? उसके मूलभूत तत्त्व क्या हैं? तभी हम समझ पायेंगे कि आत्मजयी में कवि ने किस स्तर पर अस्तित्ववादी विचारधारा का प्रभाव ग्रहण किया है। अस्तित्ववाद के सामान्य सिद्धांत इस प्रकार हैं—

- (1) "अस्तित्ववाद सत्व (Essence) की अपेक्षा अस्तित्व (Existence) की पूर्णता में विश्वास करता है। सत्व यह बताता है कि वस्तु 'क्या' (What) है तथा अस्तित्व यह बताता है कि वस्तु 'यह' (This) है।" ¹ अस्तित्व एवं सत्व में अस्तित्व पहले आता है और सत्व बाद में आता है। पहले किसी वस्तु का अस्तित्व होगा, तभी बाद में उसके भीतर गुणों की स्थापना की जा सकती है। यही कारण है कि अस्तित्ववाद सत्व की अपेक्षा अस्तित्व की पूर्णता में विश्वास करता है।
- (2) "अस्तित्ववाद, प्रकृतिवाद (Naturalism), जड़वाद (Materialism) और निरपेक्ष विज्ञानवाद (Absolutism) के विरुद्ध तक प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ। प्रकृतिवाद एवं जड़वाद में जड़ता एवं कारण-सिद्धांत का आनयन पाया जाता है। इसी प्रकार निरपेक्ष विज्ञानवाद में मनुष्य निरपेक्ष तत्त्व के एक अभिकरण के रूप में ही कार्य करता है।" ²
- (3) विज्ञान एवं तकनीक की प्रबलता के कारण मनुष्य का अस्तित्व समाप्त होता जा रहा है। मशीनी जीवन व्यतीत करते-मनुष्य भी मशीन होता जा रहा है। उसके सारे कार्य यंत्रवत् होते जा रहे हैं और उसकी मानवता का हनन होता जा रहा है। यह आपात स्थिति मानव के अमानवीकरण (Dehumanisation) की प्रक्रिया है जिसके कारण मनुष्य की मानवीयता नष्ट होती जा रही है। इसी मानवीयता की रक्षा के लिए अस्तित्ववाद का उदय होता है। अस्तित्ववाद को इस बात का भय है कि इस मशीनी युग में मनुष्य कहीं खो न जाय। मनुष्य को उसकी मानवीयता, विशिष्टता एवं उसकी गरिमा की अनुभूति कराने के लिए अस्तित्ववाद का प्रादुर्भाव हुआ।
- (4) "अस्तित्व एक प्रक्रिया (Act) है, वह केवल अवस्था (State) नहीं है। यह साध्यता से सिद्धता की ओर संक्रमण का संकेत करता है, अस्तित्ववाद प्रेक्षक दृष्टि (Spectator's view) से दर्शन का प्रतिपादन नहीं करता, वह कर्ता की दृष्टि (Actor's view) से दर्शन का प्रतिपादन करता है।" ³
- (5) मनुष्य साध्यता से सिद्धता की ओर संक्रमण तभी कर सकता है जब उसके भीतर स्वाधीनता (Liberty) हो। मनुष्य को अपने अभीष्ट के चयन की स्वतंत्रता होनी चाहिये तभी वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।
- (6) मनुष्य एक वातावरण में निवास करता है किन्तु वह परिस्थितियों का दास नहीं है बल्कि वह स्वयं परिस्थितियों को संचालित करने की शक्ति रखता है और उन्हें संचालित करता है। मनुष्य की स्वतंत्रता, जीवन में उसे उत्तरदायित्व प्रदान करती है।

- (7) मनुष्य की स्वतंत्रता का निहितार्थ है किसी पूर्व स्थापित मानदण्ड की शून्यता की स्थिति (Absence of Preexisting norms)
- (8) इस जगत में मनुष्य कभी-कभी अपने को एकांकी महसूस करता है जिससे उसे तीव्रव्यथा (Anguish) का अनुभव होता है। यह उसकी स्वतंत्रता का परिणाम है।
- (9) अस्तित्ववाद की यह मान्यता नहीं है कि हमारे पास एक शरीर है बल्कि हम स्वयं शरीर हैं। सामान्यता ऐसी मान्यता होती है कि एक आत्मा होती है जिसके साथ एक शरीर संलग्न रहता है। अस्तित्ववाद ऐसा इसलिए मानता है कि वह मनुष्य को चिंतक न मानकर एक कर्त्ता मानता है। अस्तित्ववाद की यह मान्यता है कि “मेरा अस्तित्व है अतः मैं चिन्तन करता हूँ।”⁴ यहाँ विचारों की अपेक्षा अस्तित्व को प्राथमिक माना गया है। हाइडेगर ने कहा था — “ज्ञान एक प्रकार का अस्तित्व है जो जगत में स्थित व्यक्तियों के भीतर पाया जाता है।”⁵
- (10) अस्तित्ववादियों ने ज्ञान, भावना एवं संकल्प के बीच पृथक्करण नहीं किया है। ज्ञान में भावना और संकल्प का समावेश होता है। ज्ञान के भीतर भावप्रवण एवं संकल्पनात्मक विशेषताएँ पायी जाती हैं। इसलिए ज्ञान को सहभागिता के माध्यम से परिभाषित करने की चेष्टा की जाती है। ज्ञाता और ज्ञेय के सम्मिलित सत्ता को ज्ञान की संज्ञा दी गयी है। दोनों के तादात्म्य को नहीं वरन् दोनों की एकता को यहाँ ज्ञान की संज्ञा दी गयी है।
- (11) अस्तित्ववाद में अस्तित्व का वस्तुनिष्ठ ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि यह हमारे ज्ञान का विषय नहीं है इसका कारण यह है कि अस्तित्व की कोई कोटि नहीं होती। इसे हम स्वानुभूति द्वारा ही जान सकते हैं। यह अमूर्त का दर्शन नहीं बल्कि मूर्त का दर्शन है।
- (12) अस्तित्ववाद मनुष्य को बौद्धिक (Rational) न मानकर अबौद्धिक (Irrational) ही मानता है। दर्शनशास्त्र में जो विचारधारा वृद्धि की अपेक्षा संकल्पशक्ति पर विशेष बल देती है उसे स्वच्छंदतावाद (Romanticism) कहते हैं। अस्तित्ववाद, बुद्धि की अपेक्षा संकल्प पर अधिक देने के कारण एक स्वच्छंदतावादी विचारधारा भी है।

आत्मजयी एक ‘मिथक-काव्य’ है। कठोपनिषद् के यम-नचिकेता आख्यान को आत्मजयी को आत्मजयी में आधार बनाया गया है। कथा का क्रम और उसकी परिणीति, आरम्भ और अन्त सब कुछ कठोपनिषद् की कथा की ही तरह है किन्तु पूरा रचना विधान कठोपनिषद् से भिन्न है। इस सन्दर्भ में जो सबसे महत्वपूर्ण बात दिखाई पड़ती है वह है कठोपनिषद् की कथा का चनाव! प्रश्न है कि कवि ने कठोपनिषद् की कथा का ही चुनाव क्यों किया? उपनिषदों की तो बहुत सारी कथाएँ लोक प्रसिद्ध रही हैं फिर यम-नचिकेता की कथा ही चुनाव क्यों? शायद यह प्रश्न इस बात का स्पष्ट संकेत है कि ‘यम-नचिकेता’ प्रसंग की मूल समस्या तत्कालीन विश्व में प्रभावी अस्तित्ववाद दर्शन की मूल समस्या के अत्यधिक निकट है। कुँवर नारायण जब इस रचना का विधान कर रहे थे उसे समय वे ही नहीं बल्कि हिन्दी के अन्य कवि भी उसी समय उसके आसपास अस्तित्ववाद के प्रभाव को अपनी रचनाओं में उतार रहे थे। धर्मवीर भारती का अन्धायुग इसकी एक अच्छी मिसाल है। हालाँकि यह बात स्पष्ट है कि अन्धायुग द्वितीय विश्वयुद्ध की प्रासंगिकता से जहाँ सीधे टकराता है वहाँ आत्मजयी विश्वयुद्ध के उपरांत उपजी आस्था, अनास्था, विघटित मूल्यों, नैतिकताओं, वर्जनाओं से अधिक टकराता है। अस्तित्व का संकट अन्धायुग में भी समूची मानवता के संकट के परिप्रेक्ष्य में उभरता है और आत्मजयी में भी।

‘चक्रव्यूह’ से अस्तित्ववाद का जो सवाल नन्हा पौधा के रूप में है वह ‘आत्मजयी’ में आकार विस्तार पाया है। अस्तित्ववाद की शुरुआत किर्केगार्ड से हुई “आत्म-निर्वासन-सेल्फ-एलियनेशन की जड़ यह है। यह कोई विशुद्ध मनोवैज्ञानिक समस्या नहीं है जो इस युग की विशेष देन हो या जिसका सम्बन्ध किसी अनुभूतिप्रवण कवि की आत्मसम्भव अभिव्यक्ति से विशेष हो। यह मूलतः पूँजीवादी सम्बन्धों के नियंत्रण में न रहकर उनको अपने नियंत्रण में रखने-उन्हें समाजवादी सम्बन्धों में परिवर्तित करने की समस्या है।”⁶ परन्तु जहाँ तक अस्तित्ववादियों का

प्रश्न है वह आत्म-निर्वासन की समस्या को स्वयं द्वारा उद्धृत मानते हैं। वे इसे आधुनिकता-बोध से जोड़ते हैं, जबकि यह उन्नीसवीं सदी की अत्यन्त प्राचीन रोमांटिक भावधारा से सम्बन्धित है।

“सार्त्र के उपन्यास ‘उब्काई’ (अंग्रेजी में ‘नौशिआ’) का नायक अन्त्वान रोकांतै सोचता है कि संसार में जो कुछ है, व्यर्थ है, फालतू है, वह स्वयं अनावश्यक। “मैं ख्याल दौड़ाने लगा कि आत्महत्या कर लूँ, ये जो तमाम व्यर्थ अस्तित्व हैं, उनमें कम-से-कम एक का नाश कर डालूँ।”⁷

पश्चिमी देशों जर्मन, फ्रांस और अंग्रेजी साहित्य में आत्महत्या करने या करने का प्रयास करने वाले नायकों की एक लम्बी परम्परा है, अच्छा तो यह है कि सार्त्र का रोकांतैत्र ख्याल करके ही रह जाता है परन्तु देशों में शेक्सपियर के हैमलेट को आत्महत्या का आदिपुरुष कहा जा सकता है—

"O, that this too solid flesh would melt,
Thaw and resolve it self into a dew!
Or that the Everlasting had not fixed
His canon 'gainst self-salughter!"⁸

यूरोप में आत्महत्या का यह बीज पनपता है नवजागरणकाल (रिनैसंस) के दौरान। “पूँजीवादी व्यवस्था के अभ्युदय के साथ जो नवजागरण आरम्भ हुआ उसमें एक स्वर जो बार-बार झंकृत हुआ, वह था आत्महत्या की कामना का स्वर। बीसवीं सदी में उसकी चरम परिणति हुई सार्त्र के अस्तित्ववाद में।”⁹

मनुष्य का अहंकार आसानी से स्वीकार नहीं करता है कि वह धारा के साथ बह रहा है, “वह अपने अस्तित्व की सार्थकता इस तर्क से सिद्ध करता है कि स्वयं धारा को बहा रहा है। जब हैमलेट, बर्थर, मैनफ्रेड, रोकांतै—सभी आत्महत्या की बात सोंचे तब मानना होगा कि यह किसी एक लेखक के व्यक्तिगत भावबोध का प्रश्न नहीं है वरन् यह एक सामाजिक भावधारा है।”¹⁰

हिन्दी के अधिकांश नई कविता लिखने वालों का हाल रोकांतै जैसा है। “ऊब, ऊबकाई, अकेलापन, बुरे-बुरे सपने, त्रास, आत्महत्या की चाह, सड्डाँध का बोध, भीड़ में अजनबीपन का अहसास होने की समस्या से परेशानी आदि—आदि लच्छन इनमें भी मिलते हैं। बीमार आदमी को कभी-कभी हर चीज बीमार नजर आती है, इन कवियों को चीजें बीमार ही नहीं, मुर्दा भी नजर आती हैं। श्रीकांत वर्मा को लगता है — सारी पृथ्वी से उठती है सड्डाँध, वह ‘एक पब्लिक लेबेटरी में’ बैठे हुए मानों सोचते हैं, उनकी कविता में लय क्यों नहीं हैं, उनके पैरों पर चीटियाँ चढ़ती हैं, कंधे पर रीछ पंजे गड़ाता है, और “भुजा पर प्रेमिका करती है कै।”

कैलाश बाजपेयी को सब तरफ पिचकी घुमावदार आँतों की गालियाँ दिखार्द देती हैं, “जहाँ सिर्फ उबकाई का शब्द आता है,” जो जहाँ भी है, बीमार है, सभी को किसी-न-किसी तरह का बुखार थूक, पीक, मलबा, गँध पाती, धुआँ देती बस्तियाँ, और—

लगातार—
मैं मर रहा हूँ
मर रहा है एक—संसार।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना को लगता है, जैसे मैं मुर्दों के बीच हूँ, उन्हें ही उठा रहा हूँ, रख रहा हूँ उनसे ही लिपट रहा हूँ, लड़ रहा हूँ, उन्हें ही बाँध रहा हूँ, छोड़कर आगे बढ़ रहा हूँ, इस मृत नगर में “मैं जीवित हूँ या मृत कुछ समझ में नहीं आता।” चारों तरफ दुर्गन्ध है, प्रार्थनाघरों के घंटे तक जंगली जानवरों की तरह “दुर्गन्ध सूँघते मिलते हैं।”¹¹ समानधर्मा विजयदेव नारायण साही कहते हैं कि यद्यपि उन्हें मृत्यु का साक्षात्कार नहीं हुआ, फिर भी किन्हीं रातों में—

“देर तक मैंने,
अट्टहास और संगीत सुने हैं।
करीब तीसरे पहर जाकर,
भयानक चीख सुनाई पड़ती है।”¹²

अस्तित्ववादी दर्शन में भले ही वस्तुजगत् मृत हो, मानव-चेतना ही सत् हो, व्यवहार में कवि के लिए मुर्दा चीजें जानदार हैं और जानदार चीजें मुर्दा हैं। कोई आश्चर्य नहीं है कि नयी कविता में आत्महत्या का जिक्र बार-बार आता है।

लक्ष्मीकांत वर्मा— “आज में प्रेत हूँ
क्योंकि मैं अपनी मौत से नहीं मरा हूँ
मैंने की है आत्महत्या जान-बूझकर!”¹³
विजय देव नारायण साही—
“ऐसे ही मैंने सृजन को देखा है
और उसे मृत्यु की तरह पहचाना है
वह हत्या से उपजता है
और आत्महत्या की ओर बढ़ता है।”¹⁴

जगदीश गुप्त— “मानता हूँ खुदकुशी को कारयरो का काम
निश्चय आत्मघाती भावना से घृणा करता हूँ।
मगर इस क्षण न जाने क्यों यही जी चाहता है
झाँक लूँ उस अंध तमसावृत अजाने लोक में
जिसमें हजारों प्रेत बसते हैं।”¹⁵

गिरजाकुमार माथुर— “किसी ने भी
मेरी अंतिम आत्महत्या नहीं देखी।”¹⁶
श्रीकांत वर्मा—
“न मैं आत्महत्या
कर सकता हूँ
न औरों का
खून!”¹⁷

यह मूल्यों के विघटन का युग है। “हर चीज टूट रही है, कवि टूट रहा है, कविता टूट रही है। फासिस्ट तानाशाही के पनपने के लिए वह हवा बहुत मुफीद होती है जिसमें मनुष्य के लिए हत्या और आत्महत्या में ज्यादा फर्क न रहे। नयी कविता रचने वाले देश, जनता और इतिहास को जिस ढंग से याद करते हैं, उससे अंदाज होता है कि जनतंत्र खत्म हो जाए और फासिस्ट तानाशाही कायम हो तो उन्हें कोई खास तकलीफ न होगी। जीवन व्यर्थ है, इतिहास व्यर्थ है, इसलिए दो तरह की शासन व्यवस्थाओं में भेद करना व्यर्थ है।”¹⁸

फ्रायड की बात सच मालूम होती है। “मनुष्य की दमित, अतृप्त कामेच्छाएँ उसके सारे सामाजिक दृष्टिकोण को रंग देती है। यह सोचकर उसे कुछ सान्त्वना मिलती है कि—

कुछ स्त्रियाँ
प्रेम करती है

वर्दी से,
बाकी
नामर्दी से।

अजनबीपन, अकेलेपन और प्रेम की निस्सारता के दर्शन का स्रोत यही है—
प्रेम
अकेले होने का ही
एक और ढंग है।”¹⁹

सारत्र और श्रीकांत वर्मा की सह-अनुभूति का महत्व मूल उद्गम एक है। इन अकेले होने वाले प्रेमियों की काफी बड़ी भीड़ है, भले ही उनमें हर एक अपने को बहुत अकेला महसूस करता हो। राजा दुबे कहते हैं — “तुम्हारा प्रेम जैसे एक फ्रेम है जिसमें तुम मुझे अपनी मनचाही आकृति में कस लेती हो फिर पुष्ट कंधों में उड़ाती हुई बदन गंध इत्यादि।

प्रणय—व्यापार की परिणीति यह है—
और हमारे बीच
रह जाती है कविता बनते—बनते
टूट जाता है द्वंद्व मँजते—मँजते
और हम थक जाते हैं रचते—रचते
कुछ का कुछ।”²⁰

इस सफलता के बाद वह एक कविता रचते हैं, ‘सारी प्रेयसियों के नाम। शीर्षक भिन्न है, प्रणय—व्यापार की परिणति अभिन्न है—

“एक लड़की जैसे एक बहुत अच्छा सपना!
और मुझे घर लेता है।
मेरा ही द्वारा हुआ अकेलापन।”²¹

एक अन्य कविता में अकेलेपन से सपनों का सम्बन्ध स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा—

“एक आदमकद आदना
टूटता है जिसमें एक दृश्य
मैं ही हूँ उसका एक नपुंसक नायक।”²²

तो ‘आत्मजयी’ में कुँवर नारायण कहते हैं—

“तत्पर शरीर के कण—कण में लपकता काम वेग....
देह के अश्लील आकर्षण
थामें संकते सहसा स्पष्ट होते जा रहे हैं....
वह जो बीत गया
निषप्रयोजन—सा एक सुख—
जहाँ से अभी—अभी समाप्त होकर
लौटा वह अनर्थ और बे—स्वाद
मानो कुछ पाकर नहीं—खोकर....

मरा नहीं

किन्तु फिलहाल पूरी तरह चुका हुआ।

आत्मजयी का वाजश्रवा नचिकेता द्वारा जीवन में सत्य व ईमानदारी की सार्थकता का वर्णन इस प्रकार सुनता है—

गलत जीने से

सही बातें गलत हो जाती हैं।

सच्चाइयाँ झूठ लगतीं,

अच्छाइयाँ गुनाह,

धर्म पाप हो जाता है,

ईश्वर आततायी

प्यार, रोग बन जाता,

लोग भयावह...

यह भी सम्भव है एक पशु दूसरे को खा जाये।

यह भी सम्भव है कि एक मनुष्य.....।²³

यदि जीवन में नैतिकता व मर्यादा की सीमा मनुष्य लौघ जाए तो 'यह भी.... यहाँ मनुष्य..... की व्यंजना द्वारा बिना कहे ही सारे अर्थ की अभिव्यक्ति हो रही है। अगर मनुष्य, मनुष्यता ही छोड़ दे तो हैवान व इंसान में क्या अंतर रह जायेगा? और मनुष्यता को उसकी क्या कीमत चुकानी पड़ेगी?,

अतः चक्रव्यूह, आत्मजयी वह उपरोक्त अन्य काव्य उदाहरणों से हम कह सकते हैं कि अस्तित्ववाद सम्बन्ध में अपने मन्तव्य को कुँवर नारायण उचित फलक के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान कर यह सिद्ध करते हैं कि पुरातनवादी एवं वस्तुवादी दृष्टिकोण को नयी चेतना किस प्रकार विरोध कर (अभिमन्यु व नचिकेता के प्रतीक द्वारा) नवीन समाज को यथार्थवादी दिशा दे सकती हैं।

शोध—संदर्भ

1. पाश्चात्यदर्शन की दार्शनिक प्रवृत्तियाँ—जगदीश सहाय श्रीवास्तव, अभिव्यक्ति प्रकाशन, 2000, पृ.221
6. नयी कविता और अस्तित्ववाद—रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1993, पृ.109
23. आत्मजयी—कुँवर नारायण, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2000, पृ. 45



काव्य में शब्द एवं शब्दार्थगत सौन्दर्य

डॉ. राकेश कुमार

प्रवक्ता, संस्कृत

गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय, अलवर (राज.)

भारतीय साहित्य चिन्तन परम्परा में सौन्दर्य आदिकाल से ही ऋषि-मनीषियों द्वारा एक महत्वपूर्ण अवधारणा के रूप में देखा और समझा जाता रहा है। आचार्य भरतमुनि, आनन्दवर्धन, आचार्य विश्वनाथ, वामन, अभिनवगुप्त, पं. जगन्नाथ, नन्दिकेश्वर एवं भट्टनायकादि कवि मनीषियों ने काव्य के स्वरूप का विवेचन करते हुए अपनी कृतियों में विस्तार से सौन्दर्य पर प्रकाश डाला है। संस्कृत वाङ्मय में “सौन्दर्य” पर ऐकांतिक शास्त्रीय चिन्तन उपलब्ध नहीं होता अपितु काव्य में “आस्वाद” और “सौन्दर्य” का अनिवार्य सम्बन्ध होने के कारण प्रकारान्तर से इन पर सार्थक एवं व्यवस्थित परिचर्चा होती रही है।

काव्य में रस और सौन्दर्य एक-दूसरे के पूरक हैं। इस सृष्टि के प्रत्येक कण में सौन्दर्य समाहित है। कहीं स्फुट रूप में तो कहीं अस्फुट रूप में। 21वीं सदी में मनुष्य ने बौद्धिक दृष्टिकोण से अपरिमित विकास किया है। अपने बुद्धि कौशल द्वारा वह सृष्टि के कण-कण में झांकने में समर्थ हुआ है और इसी कारण उसकी सोच में भी परिवर्तन हुआ है। उसमें भावना, संवेदना, नैतिकता एवं अन्य जीवन मूल्यों के प्रति सजगता निरन्तर कम होती जा रही है।

संस्कृत में भारतीय चिन्तन, भारतीय संस्कार, भारतीय संस्कृति का प्रतिमान है। यही कारण है कि संस्कृत न केवल भारतीय जीवन मूल्य, भारतीय पारिवारिकता, भारतीय जीवन्त दृष्टि का जीवन परिचय कराती है। अपितु काव्य सौन्दर्य व चिन्तनधारा का बहुमूल्य प्रतिमान भी प्रस्तुत करती है। संसार में कुछ ही देश ऐसे हैं, जिनका साहित्य, संस्कृति, कला और सभ्यता प्राचीन तथा समृद्ध रही है। भारत उनमें से एक प्रमुख देश है। यहाँ ज्ञान-विज्ञान का सूर्य प्राचीनकाल में उस समय उदित हो चुका था, जब विश्व के अन्य देश अज्ञानता के अन्धकार में डूबे हुए थे। यहीं से साहित्य, संस्कृति, सभ्यता, कला एवं सौन्दर्य की सुरभि विश्वभर में फैली। जैसा कि महर्षि मनु ने कहा है—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादाग्रजन्मनः ।

स्वं स्वं चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

सौन्दर्य मानव चिन्तन का एक ऐसा महत्वपूर्ण पक्ष है जो मानव जीवन को सुन्दर, प्रांजल एवं परिष्कृत बनाने में सर्वाधिक सहायक है। सौन्दर्य बोध के विकसित होने को मौलिक चेष्टा कहते हैं। भारतीय कला-बोध की सारी परम्पराएँ और कला-प्रयोग की समस्त विधाएँ अपनी चिरन्तन इतिहास यात्रा में सौन्दर्य की साधना में प्रवृत्त रही है।

भारतीय कवि-मनीषियों की दृष्टि सौन्दर्य को आत्मनिष्ठ व्यापार के रूप में देखती है। ‘सौन्दर्य’ के भारतीय परम्परा में अनेक पर्याय परिलक्षित होते हैं, कहीं उसे लावण्य कहा गया है, कहीं रमणीय, कहीं सुन्दर तो कहीं मांगलिक, कहीं चारु, कहीं विभूति, कहीं रुचिर तो कहीं भव्य।

प्लेटो की दृष्टि में “सुन्दर वही है, जो आनन्दप्रद है और इच्छा पर्यन्त होते हुए भी परिणाम में अत्यंत मांगलिक है।”

अंग्रेजी के महाकवि “कीट्स” के शब्दों में— “A thing of Beauty is a Joy for ever.”

“सुष्ठु उनत्ति चित्तं द्रवीकरोतीति सौन्दर्यम् ।” अर्थात् ऐसा निवेश या घटना, दृश्य अथवा कला जिसे देखकर मन द्रवीभूत हो जाए, विगलित हो जाए, वही सौन्दर्य है।

According Oxford Dictionary- Excellence in the Features of a Person or Thing. "or" Delighting the eye, gratifying the Taste, Charming".

अर्थात् अंग्रेजी में सौन्दर्य का वाचक शब्द है— Beauty —जिसके शोभा, मनोहर, रमणीय और सुन्दरता अर्थ किये गये हैं।

वाचस्पत्यम् कोशानुसारः —“जो सभी को आनन्दित करे, वही सुन्दर है और आनन्द प्रदान करने वाला गुण ही सौन्दर्य है।”

“आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान न विभेति कुतश्चन।”

ब्रह्मानन्द को प्राप्त ज्ञानी पुरुष कहीं से भी भयभीत नहीं होता है, अर्थात् तैत्तिरीय उपनिषद् में आनन्दमय की स्थिति को ब्रह्मानन्द प्राप्ति की स्थिति कहा गया है।

सौन्दर्य की उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह द्योतित होता है कि जिसे देखकर अथवा अनुभूत कर चित्त प्रसन्नचित्त, आह्लादित होता हो, सुख और शान्ति की प्राप्ति होती हो, चित्त को हरने वाला हो, मन में प्रीत जगाने वाला हो, उल्लासप्रद, मधुर एवं स्फूर्तिदायक हो, वही सौन्दर्य है।

कला एवं सौन्दर्य का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। कला की उत्पत्ति सौन्दर्यबोध से मानी जाती है और कला की सिद्धि के मूल में भी सौन्दर्य का अधिकाधिक निवेश कारण हुआ करता है। संस्कृत वाङ्मय सौन्दर्य एवं कला के विविध रूपों का अक्षय आगार है। इस आगार के आलोड़न—विलोड़न, फलस्वरूप हम कह सकते हैं कि सौन्दर्य, संस्कृत कवि महर्षियों की वाणी में समाहित होकर अपने विविध स्वरूपों में दृष्टिगोचर होता हुआ सहृदय सामाजिकों को आनन्दित करता है।

रविन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है कि “यदि संसार का सर्वाधिक आनन्द प्राप्त करना है तो उसे कवि की आँखों से देखो, समझो और अपनाओ।” इससे स्पष्ट होता है कि कवि की आँख असाधारण प्रतिभा सम्पन्न होती है। साधारण मानव संसार के भौतिक पक्ष को ग्रहण करता है, दार्शनिक तत्त्व को परखता है और कवि संसार के रसात्मक पक्ष को देखता है। इसलिए कवि को क्रान्त दृष्टा कहा गया है अर्थात् जो भूत, वर्तमान तथा भविष्य को एक साथ देखने की क्षमता रखता हो वही कवि है।

काव्य का प्रभाव हृदय पर भिन्न—भिन्न रूपों में पड़ता है। अतः काव्य का लक्षण परिभाषित करना साहित्यशास्त्र के आचार्यों के लिए सदैव कठिन ही रहा है। काव्य के दो प्रमुख तत्त्व हैं 1. अनुभूति और 2. सम्प्रेषण का माध्यम—शब्द और अर्थ अर्थात् भाषा।

सर्वप्रथम आचार्य भरत ने “न हि रसाद् ऋते कश्चिदर्थः प्रवर्तते” कहकर काव्य में अनुभूति के महत्त्व को रेखांकित किया और फिर आचार्य भामह ने “वक्रामिधेयशब्दोक्तिरिष्टा वाचामलंकृतिः” कहकर अभिव्यक्ति का डिंडिमनाद किया। सभी आचार्यों ने काव्य के उपादानभूत शब्द तथा अर्थ से काव्य के लक्षण को प्रारम्भ किया है। दण्डी तथा पण्डितराज जगन्नाथ जैसे आचार्यों ने “शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली” तथा “रणणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्” कहकर काव्य में शब्द तत्त्व अर्थात् अभिव्यंजन को प्रधानता देते हैं तथा भामह ने “शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्” और आचार्य मम्मट ने “तददोषो शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि” कहकर शब्द तथा अर्थ दोनों को काव्य में महत्वपूर्ण समझते हैं। आचार्य विश्वनाथ — “वाक्यं रसात्मकं काव्यं” कहकर रस को महत्त्व देते हैं।

काव्य के उपरोक्त लक्षणों से स्पष्ट है कि काव्य के लक्षण में चाहे शब्द प्रधान हो या शब्द तथा अर्थ दोनों, परन्तु शब्द तथा अर्थ में जब तक वैशिष्ट्य या विलक्षणता का समावेश नहीं होता तब तक उन्हें काव्य की संज्ञा से अभिहित नहीं किया जा सकता।

आदिकाव्य रामायण में महर्षि वाल्मीकि हेमन्त ऋतु के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि इसके द्वारा शुभ संवत्सर का अलंकरण होता है—“अलंकृत इवाभाति येन संवत्सरः शुभः।”

आदिकवि ने लंका में हनुमान द्वारा सीता के अन्वेषण के प्रसंग में उपजाति छन्द में आकाशगत चन्द्रोदय तथा नाना स्थितियों में स्त्रियों के सौन्दर्य वर्णन के प्रसंग में आद्योपान्त अनुप्रास का बड़ी सहजता से प्रयोग किया है, यथा—

हंसो यथा राजतपंजरस्थः सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः ।

वीरो यथा गर्वितकुंजरस्थश्चन्द्रोऽपि बभ्राज तथाऽम्बरस्थः ।।

महाभारत का काव्य—सौन्दर्य सहज, अकृत्रिम सौन्दर्य है। वह सदैव हमारा हृदय स्पर्श करता रहा है और करता रहेगा। महाभारत प्रकृति वर्णनों का अक्षय भण्डार है। महाभारत के प्रकृति वर्णन, सौन्दर्य की दृष्टि से ही नहीं बल्कि उत्तरवर्ती कवियों के सहज प्रेरणा स्रोत के रूप में भी उल्लेखनीय हैं। प्रकृति सौन्दर्य दृष्टव्य है—

विषमच्छेदरचितैरनुलिप्तमिवाङ्गुलैः ।

विमलैर्धातुविच्छेदैः कांचनाजनराजतैः ।।

गन्धमादन पर्वत के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि का कथन है कि सुनहले, काले और सफेद रंग के सुरम्य धातुओं से लदा पर्वत ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो उसके शरीर में किसी कलाकार द्वारा अंगुलियों की तरह—तरह की रंग—बिरंगी रेखाओं द्वारा शृंगार चित्रित किया गया हो।

महाभारत रूपी विशाल वन के सौन्दर्य के बारे में विद्वानों का कथन है—“यह कविरूपी माली का यत्नपूर्वक संवारा हुआ उद्यान नहीं है, जिसके लता—पुष्प—वृक्ष अपने सौन्दर्य के लिए बाहरी सहायता की अपेक्षा रखते हैं, अपितु यह अपने आप ही जीवनी—शक्ति से परिपूर्ण वनस्पतियों और लताओं का अत्यन्त परिवर्धित विशाल वन है, जो अपनी उपमा स्वयं रखता है।

प्राचीन विद्वानों ने महाभारत और उसके रचयिता के सम्बन्ध में अपने मनोभावों को इस प्रकार व्यक्त किया है—

श्रवणाजलिपुटपेयं विरचितवान्भारतारव्यममृतं यः ।

तमहमरामतृष्णं कृष्णद्वैपायन वन्दे ।।

व्यासगिरां निर्यास सारं विश्वस्य भारतं वन्दे ।

भूषणतयैव संज्ञां यदाकिंता भारती वहती ।।

महाभारत का सांस्कृतिक मूल्य भी कम नहीं है। भारतीय संस्कृति का समग्र स्वरूप इस ग्रन्थ से जाना जा सकता है। महर्षि व्यास ने इसकी रचना का प्रयोजन इस संसार की निःसारता प्रमाणित कर जनमानस को जीवन के चरम लक्ष्य की ओर उन्मुख करना बतलाते हुए कहा है—जिस प्रकार कोयल की कूक कानों में पड़ने के बाद कौवे की बोली नितान्त अप्रिय लगती है, उसी प्रकार महाभारत के कथारस का आस्वादन करने के बाद अन्य कथानक रुचिकर नहीं लगते।

श्रुत्वा त्विदमुपाख्यानं श्राव्यमन्यन्न रोचते ।

पुंस्कोकिलगिरं श्रुत्वा रूक्षा ध्वाक्षस्य वागिव ।।

इस प्रकार महाभारत, भारतीय काव्य सौन्दर्य परम्परा का मूलाधार है। साथ ही यह स्वयं सहज काव्य—सौन्दर्य से अनुप्राणित है और परवर्ती काव्य परम्परा के लिए प्रेरणा स्रोत है।

ध्वनिकार आचार्य आनन्दवर्धन ने अपने ग्रन्थ “ध्वन्यालोक” में प्रतीयमान अर्थ को सौन्दर्य का वाचक माना है और यह प्रतीयमान अर्थ महाकवियों की वाणी में उसी प्रकार विलक्षण सौन्दर्य का आधान करता है जिस प्रकार अङ्गनाओं में लावण्य सौन्दर्य का आधान करता है—

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकविनाम् ।

यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु ।।

महाकवि अश्वघोष ने सौन्दरानन्द महाकाव्य के दशम सर्ग में अप्सराओं तथा हिमालय की मनोरम उपत्यका में विचरण करती हुई किन्नरियों का सौन्दर्य-वर्णन किया है, जो सरसता से आप्लावित है।

कासांश्चिदासां वदनानि रेजुर्वनान्तरेभ्यश्च लकुण्डलानि ।

व्याविद्वर्णभ्यः इवाकरेभ्यः पद्मानि कादम्बविघट्टितानि ॥

यहाँ कुछ अप्सराओं के चंचल कुण्डल वाले मुख, वन के बीच वैसे ही सुशोभित हो रहे हैं, जैसे धान पत्तों वाले तालाबों के बीच हंसों द्वारा हिलाये हुए कमल।

महाकवि भास “स्वपनवासवदत्तम्” नाटक में पद्मावती के रूप सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए कहते हैं हे मित्र ! वसन्तक पद्मावती अति सौन्दर्य से युक्त है, चरित्रवान है तथा मधुर बोलने वाली है अतः वह मुझे अत्यधिक प्रिय है।

पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः ।

वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति ॥

सौन्दर्य-चित्रण प्रायः प्रत्येक कवि का अभीष्ट होता है। प्रकृति-सौन्दर्य एवं मानवीय सौन्दर्य का वर्णन काव्य का अभिन्न अंग है। महाकवि कालिदास सौन्दर्य के उपासक होने के साथ-साथ नैसर्गिक सौन्दर्य के प्रेमी हैं। वे प्रकृति द्वारा दिये गए सहज उपादानों से अपनी परिकल्पना की नायिकाओं में अनिन्द्य सौन्दर्य का आविष्कार करते हैं।

“अभिज्ञानशाकुन्तलम्” के प्रथम अंक में शकुन्तला अपनी सखियों के साथ वृक्ष-सिंचन करती हुई दिखलाई देती है। राजा उदयन उसके अनुपम सौन्दर्य को देखकर एकायक आश्चर्य के साथ कहता है—

मानसीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य सम्भवः ।

न प्रभातरल ज्योति रुदेति वसुधातलात् ॥

उसका सौन्दर्य स्वाभाविक है, बनावटी या कृत्रिम नहीं—

इदं किलाव्याज मनोहरं वपुः ।

शकुन्तला के कौमार्य, सौन्दर्य तथा लावण्य पर मुग्ध होकर महाकवि कालिदास उसे “अनाघ्रात पुष्प, अलून, किसलय, अनाविद्धरत्न, अनास्वादित मधु तथा अखण्ड पुण्यों का फल कहता है।

शकुन्तला के सहज सौन्दर्य को प्रस्फुटित करने के लिए किसी कृत्रिम प्रसाधन की आवश्यकता नहीं है। उसके कोमल शरीर पर वल्कल वस्त्र भी शोभा बढ़ाने वाला है।

इयमधिक मनोज्ञा वल्कलेनापितन्वी ।

किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥

शकुन्तला के अंग-प्रत्यंग में प्राकृतिक स्निग्ध सौन्दर्य का आधान दिखलाते हुए कहा है—

अधरः किसलय रागः कोमल विटपानुकारिणौ बाहू ।

कुसुममिव लोभनीयं योवनमंगेषुसंनद्धम् ॥

“ऋतुसंहार” नामक कृति में शरदऋतु का रमणीय नववधु के रूप में पदार्पण दिखलाते हुए कवि ने लिखा है—

काशांशुका विकचपद्ममनोज्ञवक्त्रा सोन्मादहंसरवनूपुरनादरम्या ।

आपक्वशालिरुचिरानतगात्रयष्टिः प्राप्ता शस्त्रवधूरिव रूपरम्या ॥

“राइडर” ने ऋतुसंहार को प्रेम का तिथि-पत्र (Lover's Calender) कहा है, जो असमीचीन है, क्योंकि इसमें वस्तु और प्रकृति दोनों का पर्याप्त चित्रण है।

“कुमारसम्भव” में कालिदास की कला का अन्यतम दर्शन होता है। इसमें भाव, व्यंजना, कोमल कल्पना तथा

ललित पद विन्यास और वर्णन—शक्ति आदि अपनी चरम सीमा में अभिव्यक्त हुए हैं।

“कुमारसम्भव” महाकाव्य में पार्वती के रूप सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि ने पार्वती में संसार के सारे सुन्दर उपमानों का समुच्चय दिखलाते हुए कहा है—

सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन ।

सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव ॥

रूप—सौन्दर्य की सार्थकता अपने प्रियतम (परमेश्वर) को आकर्षित करने में अर्थात् रिझाने में ही सन्निहित है। अन्यथा वह असौन्दर्य है—

निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता ॥

अर्थात् निर्व्याज सौन्दर्य एवं अनुराग के लिए अप्रतिहत लावण्य और औदार्य के लिए एवं चिरन्तन नारीत्व के अमोघ आवर्जन के लिए कालिदास द्वारा अंकित उमा का रूप—सौन्दर्य अनुपम और अद्वितीय है।

इस प्रकार कुमारसम्भव में दैविक—लौकिक, मर्त्य—स्वर्ग, त्याग—भोग और तप—विलास का अपूर्व सामंजस्य हुआ है। वासना जन्य प्रेम का पर्यवसान दुःख और क्लेश है। तप से प्राप्त प्रेम में ही आनन्द और सच्चा स्नेह है—यही कुमारसम्भव का अमर संदेश है।

कालिदास की कल्पना खेतों और खलिहानों में रमती है, प्रकृति के सहज सौन्दर्य को—मानव सौन्दर्य से और कृत्रिम साज—सज्जा से उत्कृष्ट पाती हैं। ‘कुमारसम्भव’ में चन्द्रमा की किरणों के लिए जौ के ताजा अंकुरों का उपमान देकर कवि ने मानो स्वर्ग को धरती से मिला दिया है—

शक्यमोषधिपतेर्नबोदयाः कर्णपूररचनाकृते तव ।

अप्रगल्भयवसूचि कोमलाश्छेतुमग्रनखसम्पुटैः कराः ॥

रचना सुबोध तथा अतिरमणीय, भावतरंग मधुर तथा वर्णन मनोहर होने के कारण “रघुवंश” संस्कृत साहित्य का देदीप्यमान नक्षत्र और अद्वितीय सर्वांगपूर्ण सुन्दर काव्य होने के कारण इसे “मनोरम चित्रों की चित्रशाला” कहा गया है।

रघुवंश के प्रथम सर्ग के प्रथम पद्य में कवि ने शिव और पार्वती के सम्बन्ध की उपमा शब्द और अर्थ के सम्बन्ध से इस प्रकार दी है—

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।

जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥

सम्भवतः शब्दार्थो सहितौ काव्यम् इस काव्य लक्षण की प्रेरणा आचार्यों को इसी उपमा से मिली हो। ऐसा द्योतित होता है—

रघुवंश में ही राजा रघु के मुख सौन्दर्य के वर्णन के लिए वे प्रकृति के सुन्दरतम एवं प्रसिद्ध उपमान चन्द्रमा का आश्रय लेते हुए कहते हैं—

प्रसादसुमुखे तस्मिंश्चन्द्रे च विशदप्रभे ।

तदा चक्षुष्मतां प्रीतिरासीत्समरसा द्वयोः ॥

अर्थात् शरद् ऋतु में राजा रघु के खिले हुए मुख और उज्ज्वल चन्द्रमा को देखकर दर्शकों को एक—सा आनन्द मिलता है।

राजा दिलीप एवं सुदक्षिणा के मध्य नन्दिनी ऐसे सुशोभित होती है। जैसे मानो दिन एवं रात के बीच संध्या सुशोभित हो रही हो—

दिनक्षपामध्येगतेव सन्ध्या

“मेघदूत” कालिदास की अप्रतिम रचना है। अकेली यह रचना ही उन्हें “कविकुलगुरु” की उपाधि से मण्डित करने में समर्थ है। भाषा, भाव प्रवणता, रस, छन्द और चरित्र-चित्रण समस्त दृष्टियों से मेघदूत अनुपम खण्डकाव्य है।

अल्कापुरी में सहज भाव से प्राप्त होने वाली मणि-माणिक्य, सोने-चांदी और धन-समृद्धि को प्रकृति-प्रदत्त सौन्दर्य-प्रसाधन की वस्तुओं के समक्ष तुच्छ बतलाते हुए कवि कहते हैं कि अलका नगरी में मणि-माणिक्य, सोने-चांदी और धन-समृद्धि की कोई कमी नहीं है। फिर भी वहां की सुन्दरियां फूलों से ही अपना अंग-प्रत्यंग सजाती हैं। हाथ में लीलाकमल, केश में बाल कुन्द का अनुवेध तो कपोलों पर लोघ्र के पराग से शुभ्र वर्ण का आधान, जूड़े में नये कुरवक के पुष्प, कानों में सुन्दर शिरीष और मांग में कदम्ब-इस प्रकार सम्पूर्ण देह में फूल सजने से शरीर का प्रत्येक अंग-प्रत्यंग प्राकृतिक सौन्दर्य से महक उठा है।

“विक्रमोर्वशीय” में प्रत्येक कदम पर पराक्रम और प्रेम का सामंजस्य दिखलाया गया है। इसमें शकुन्तला की भाति देवलोक और मनुष्य की परिधियों का परस्पर मिलन दिखलाते हुए कवि का कथन है—

आविर्भूते शशिनि तमसा मुच्यमानेव रात्रि।

गंगारोधः पतनकलुषा गृहणतीव प्रसादम्॥

अर्थात्—चन्द्रमा निकल रहा है। रात्रि अंधकार से मुक्त सी हो रही है, धूँआ का कम टूटता जा रहा है। आग अपने ज्वालामय भास्वर रूप में निखरती जाती है। कंगारों के गिरने से जो पानी में मलिनता आ गई थी, वह बैठती जा रही है। गंगा विमला-सलिला होती जा रही है। उसी प्रकार उस सुन्दरी की मूर्च्छा धीरे-धीरे दूर होती जा रही है और इसका रूप निखरता जा रहा है।

इस प्रकार यहाँ तीन-तीन उपमाओं में जितनी गहराई से सौन्दर्य चित्रित किया गया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

“नैषधीयचरितम्” महाकाव्य शृंगार के मनोरम वर्णन के कारण “शृंगारामृत शीतगुः” कहलाता है। कवि ने स्त्री-सौन्दर्य वर्णन में अपनी विलक्षण सहृदयता का परिचय दिया है। नल-दमयन्ती स्वयंवर-स्थल पर दमयन्ती द्वारा राजा नल को माला पहनाने के समय दमयन्ती की उत्सुकता तथा मुग्धोचित लज्जा के मध्य उसकी अद्भुत दशा का मार्मिक वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

नले निधातुं वरणम्रजं तां स्मरः स्म रामां त्वरयत्यथैनाम्।

अपत्रया तां निषिषेध तेन द्वयानुरोधं तुलितं दधौसा॥

‘दमयन्ती’ के असाधारण सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए राजा नल ने अपने मन के भावों को यों प्रकट किया है—

पुराकृतिस्त्रैणमिमां विधातुममूढविधातुः खलु हस्तलेखः।

येपं भवद्भाविपुरन्धि सृष्टिः सास्यै यशस्तज्जयजं प्रदातुम्॥

अर्थात् दमयन्ती के लिए समान सुन्दरी-भूत, भविष्य तथा वर्तमान में कोई नहीं है। दमयन्ती को रूप-सौन्दर्य की खान बतलाया गया है।

“रत्नावली” नाटिका में सन्ध्या और वासवदत्ता के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन एक साथ करते हुए कवि सायंकाल के समय स्वभावतः श्रीहीन होने वाले कमलों को उत्प्रेक्षा के माध्यम से उन्हें वासवदत्ता के मुख से पराजित दिखलाता हुआ कहता है—

देवी! चन्द्रमा की शोभा को तिरस्कृत करने वाले तुम्हारे मुख-रूप कमल ने जलस्थ कमलों को जीत लिया है और इसी कारण इनमें सहसा मलिनता आ गई है। मानो उन्हें अपनी हीनता पर लज्जा आ रही है।

“रत्नावली” नाटिका में काकू ध्वनि के माध्यम से समस्त सौन्दर्य को अभिव्यंजित करता हुआ कवि का कथन है—

किं पद्मस्य रुचिं न हन्ति नयनानन्दं विद्यते न किं

वृद्धिं वा झषकेतनस्य कुरुते नालोकमात्रेण किम्॥

वक्त्रेन्दौ तव सत्ययं यदपरः शीतांशुरम्युद्यतो
दर्पः स्यादमृतेन चेदिह तदप्यस्त्येव बिम्बाधरे ।।

पाश्चात्य आलोचक मैकडोनल ने हर्ष के चरित्रांकन और काव्य-सौन्दर्य की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हुए कहा है—

"Ratnavali is an agree able play, with well-drawn characters and many poetical beauties"

महाकवि माघ "शिशुपालवध" महाकाव्य में नूतन-कल्पनाओं की उद्भावना कर नई दृष्टि प्रदान करते हैं। कतिपय श्लोकों में कवि का पदलालित्य स्तुत्य है—

वदनसौरभलोभपरिभ्रमद् ।
भ्रमरसंभ्रमसंभृत शोभया ।।
चलितया विधत्ते कलमेखला ।
कलकलोऽलकलोलदृशाऽन्यया ।।

"उत्तररामचरितम्" में राम के व्यक्तित्व में ऐसा सलोनापन दिखलाया गया है कि उनका रूप माधुर्य नित्य नूतन रहता है। राम के अप्रतिम सौन्दर्य को दिखलाने वाला उदाहरण दृष्टव्य है—

कुवलयदलस्निग्धैरंगैर्ददत्रयनोत्सवं
सततमपि नः स्वेच्छादृश्यो नवो नव एव यः ।।

राम का यह अप्रतिम सौन्दर्य तत्सम्बन्धी एक नया मानदण्ड प्रस्तुत करता है जो अंग्रेजी के महाकवि कीट्स के शब्दों में इस प्रकार है—

"A thing of beauty is a joy for ever."

भवभूति ने "उत्तररामचरितम्" में प्रेम के विराट् स्वरूप और सीमातिग क्षेत्र का परिचय दिया है। पति और पत्नी का प्रेम इस प्रसंग में सर्वोपरि है। पत्नी का एक वाक्य स्नेह-निर्भर होने पर क्या कर सकता है—

मलानस्य जीवकुसुमुस्यविकासनानि
सन्तर्पणानि सकलेन्द्रिय मोहनानि ।
एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि
कर्णामृतानि मनसश्चरसायनानि ।।

स्नेह का जीवन में कितना महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह रेखांकित करते हुए कवि ने अपने मन के भाव को इस रूप में प्रकट किया है—

सतां सद्भिः संगं कथमपि हि पुण्येन भवति ।।

अर्थात् सज्जन पुरुषों की संगति किसी तरह पुण्यों से ही प्राप्त होती है।

राम और सीता के प्रकृति-प्रेम ने पशु-पक्षियों से जो मैत्री-भाव स्नेह सम्बन्ध के द्वारा स्थापित किया था, उसका प्रत्यक्ष और कार्य के माध्यम से परिचय निम्न श्लोक में दृष्टव्य है—

ददतु तखःपुष्पैरर्धं फलैश्च मधुश्च्युतः ।
स्फुटितकमलामोदप्रायासः प्रवान्तु वनानिलाः ।
कमलविरलं रज्यत्कण्ठाः क्वणन्तु शकुन्तयः
पुनरिदमयं देवो रामः स्वयं वनमागतः ।।

जयदेव विरचित "गीतगोविन्द" काव्य के बहुविध प्रकारों का एक अपूर्व मिश्रण है। यही कारण है कि इसे

विद्वानों ने “गोप-नाट्य” गीती-नाट्य आदि लक्षणों से समन्वित किया है—गीत गोविन्द के प्रत्येक अक्षर में संगीत है और वह शक्ति है, जो अपने शिव और सुन्दर की प्रेरणा से हतन्त्री को निनादित करने में समर्थ है। इसी गुण के लिए “गीत गोविन्द को संस्कृत में न जानने वाले भी मूल भाषा में पढ़कर आनन्द विभोर हो उठते हैं—

हरिरभिसरति वहति मधुपवने ।

किमपरमधिकसुखं सखिभवने ।

माधवे मा कुरु मानिनि मानमये ।

तालफलादपि गुरुमतिसरसम्, किं विफलीकुरुषे कुचकलशम् ।

कवि भट्टनारायण काव्यात्मक दृष्टि से नितांत कुशल हैं। प्रवाहपूर्ण भाषा, प्रांजल और अर्थाभिव्यक्ति में समर्थ होने के साथ-साथ शृंगार वर्णन में कवि सफल है। “वेणीसंहार” नामक नाटक में कवि द्वारा प्रस्तुत शृंगार रस से परिपूर्ण और हृदय को आह्लादित करने वाला पद्य दृष्टव्य है, जिसमें मन्द-हासकारी मुख चन्द्र के पान की दुर्योधन की उत्कट अभिलाषा को प्रकट किया गया है—

प्रेमाबद्धस्तिमितनयनापीयमानाब्जशोभं ।

लज्जायोगादविशदकथं मन्दमन्दस्मितं वा ।

वक्त्रेन्दुं ते नियममुषितालक्तकाग्राधरं वा

पातुं वाञ्छा परमसुलभं किं न दुर्योधनस्य ॥

इस प्रकार काव्य में शब्द एवं शब्दार्थगत सौन्दर्य का आलोड़न-विलोड़न करने के उपरान्त हम निःसन्देह रूप से कह सकते हैं कि सौन्दर्य भाव है, अनुभूति है जिसे सामान्य भाषा के द्वारा अभिव्यक्त कर पाना कठिन है। सौन्दर्य-चेतना मनुष्य का नैसर्गिक गुण है जो उसमें अन्तर्निहित होती है। सौन्दर्य प्रिय होने के कारण ही मनुष्य ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सौन्दर्य भरने का प्रयत्न अनन्तकाल से जारी रखा है।

काव्य में सौन्दर्य-चित्रण प्रायः प्रत्येक कवि का अभीष्ट होता है। प्रकृति सौन्दर्य एवं मानवीय सौन्दर्य का वर्णन काव्य का अभिन्न अंग है। संस्कृत के कवि सौन्दर्य के परम-उपासक रहे हैं, उन्होंने अपने काव्यों में सौन्दर्य का रमणीय एवं सरसतापूर्ण वर्णन किया है। इन महान कवियों के प्रकाश में चिरकाल तक परवर्ती काव्य साधना का विकास हुआ और राष्ट्र ने अपने विचारों को प्रस्फुटित किया। यह देखकर ही रविन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है कि—“यदि संसार का सर्वाधिक आनन्द प्राप्त करना हो तो उसे कवि की आंखों से देखो, समझो और अपनाओ।”

काव्य मानव को वह दृष्टि प्रदान करता है, जिसके द्वारा वह प्रकृति रूप नटी के चराचर रूप में प्रस्तुत विराट स्वरूप के कण-कण में आत्म-तृप्ति का रसास्वादन करता है। सच्चा काव्य सहृदय को आधिभौतिकता के आकर्षण की परिधि से ऊपर उठा देता है। तभी तो भर्तृहरि सत्काव्य के आनन्द के सामने राजकीय वैभव के विलास को तुच्छ मानते हुए कहते हैं—

सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम् ।

संदर्भ-ग्रन्थ

1. प्लेटो
2. Oxford Dictionary
3. वाचस्पत्य कोश
4. तैत्तिरीय उपनिषद्-2/9
5. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, पृ. 92, काव्यमाला-42, 1943
6. काव्यालंकार, भामह 1/36
7. काव्यादर्श, दण्डी 1/10

8. रसगंगाधर, जगन्नाथ 1 / 1
9. काव्यालंकार, भामह 1 / 16
10. काव्यप्रकाश, मम्मट 1 / 4
11. साहित्यदर्पण, विश्वनाथ
12. रामायण, वाल्मीकि
13. सुन्दरकाण्ड, 5 / 4
14. महाभारत, 3 / 146 / 24
15. महाभारत, आदिपर्व-2 / 236
16. ध्वन्यालोक 1 / 4
17. सौन्दरानन्द, अश्वघोष -10 / 38
18. स्वप्नवासवदत्तम्-4 / 4
19. अभिज्ञानशाकुन्तलम्-1 / 22
20. अभिज्ञानशाकुन्तलम्-1 / 16
21. अभिज्ञानशाकुन्तलम्-2 / 10
22. अभिज्ञानशाकुन्तलम्-1 / 17
23. अभिज्ञानशाकुन्तलम्-1 / 18
24. ऋतुसंहार-3 / 1
25. कुमारसम्भव-1 / 49
26. कुमारसम्भव-5 / 9
27. कुमारसम्भव-8 / 62
28. K.S. Ramaswami Shastri "Kalidasa" Page-16
29. रघुवंश महाकाव्य-1 / 1
30. रघुवंश महाकाव्य-4 / 18
31. रघुवंश महाकाव्य-2 / 20
32. मेघदूत- (उत्तरमेघ-2)
33. विक्रमोर्वशीय-1 / 6
34. नैषधीयचरितम्-14 / 25
35. नैषधीयचरितम्-7 / 1
36. रत्नावली, हर्ष
37. रत्नावली, हर्ष-3 / 13
38. शिशुपालवध, माघ -6 / 14
39. उत्तररामचरितम् / भवभूति-1 / 36
40. उत्तररामचरितम् / भवभूति-2 / 1
41. गतिगोविन्द, जयदेव
42. वेणीसंहार-2 / 18



हिन्दी के व्यंग्य लेखक

डॉ० शिवशंकर यादव

अतिथि सहायक-आचार्य-हिन्दी विभाग

बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ

देश की आजादी के बाद भारत में प्रजातन्त्र की स्थापना हुई। इसके साथ ही कुछ ऐसी विकृतियाँ विकसित हुई कि जनसाधारण की स्थिति में कुछ विशेष सुधार नहीं हुआ। पहले से चली आ रही अभाव ग्रस्तता वैसी ही बनी रही। मँहगाई, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार जैसे नये कुपोषक तत्त्व समाज में बढ़ने लगे। इस परिवेश में लिखे गये साहित्य ने जीवन की सच्चाइयों पर दृष्टिपात किया जो विविध क्षेत्रों में व्याप्त विद्रूपताओं से प्रतिफलित हो रही थी। ये विद्रूपतायें राजनीति, प्रशासन, संस्कृति, शिक्षा आदि कई क्षेत्रों में विपुल मात्रा में विद्यमान थीं। इन त्रुटियों को साहित्य के द्वारा दर्शाने का भरपूर प्रयास किया गया जिसमें व्यंग्य लेखकों की फटकार अधिक प्रभावी रही। इस कारण व्यंग्य साहित्य कहानी, उपन्यास, लघु कथा, नाटक, एकांकी, निबन्ध, डायरी, पत्र, पत्रिकाओं, कविता आदि अनेक क्षेत्रों में विकसित हुआ।

राजनीति, प्रशासन, धर्म, शिक्षा, संस्कृति के क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों के उन्मूलन एवं साहित्य में क्रान्ति लाने के प्रयास में व्यंग्यकारों ने अपने लेखों के द्वारा व्यंग्य के ऐसे तीक्ष्ण प्रहार किये कि अपराधी लितमिला कर रह जाने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सका। पराधीन भारत में भी ऐसी परिस्थितियाँ आयी थीं जिनके विरुद्ध भारतेन्दु युगीन महान साहित्यकारों ने आवाज उठाई थी, किन्तु आश्चर्य तब होता है जब स्वातंत्र्योत्तर भारत में व्याप्त विसंगतियों पर ध्यान जाता है।

हरिशंकर परसाई हिन्दी व्यंग्य के सर्वप्रमुख रचनाकार हैं, अपने व्यंग्य के द्वारा इन्होंने हिन्दी साहित्य को एक नई दिशा देने का कार्य किया। किसी रचनाकार की उपयोगिता दो बातों पर निर्भर होती है। एक उसकी युगीन उपयोगिता तथा दूसरी शाश्वत उपयोगिता। हरिशंकर परसाई में ये दोनों बातें पायी जाती हैं। उनका व्यंग्य और व्यंग्य के प्रति उनका दृष्टिकोण दोनों महत्त्वपूर्ण रूप में आता है। हरिशंकर परसाई के सन्दर्भ में डॉ० रामचन्द्र तिवारी ने कहा है कि— “अपने निबन्धों में उन्होंने वर्तमान राजनीति और विविध सामाजिक संस्थाओं के अन्तर्विरोध को उजागर किया है। देश, जाति, धर्म और स्वतन्त्रता के प्रति जनता की सहज भावुकता जगाकर अपना स्वार्थ-सिद्ध करने वाले नेताओं का पर्दाफाश किया है। सेवा, त्याग और अध्यात्म का मुखौटा लगाकर अपना व्यवसाय बढ़ाने वाले पूँजीपतियों की पोल खोली है। पश्चिम के अलगाववादियों की नकल करने वाले मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों और साहित्यकारों को आगाह किया है और जीवन में जहाँ कहीं विसंगति, अन्याय, मिथ्याचार, शोषण, पाखण्ड एवं दोमुँहापन है, वहाँ तीखा प्रहार किया है। अपने लम्बे लेखकीय जीवन में परसाई ने न तो कभी अपने सिद्धान्तों से समझौता किया है, न एक पल के लिए विराम लिया है। जीवन की विसंगतियों की वे मात्र व्याख्या ही नहीं करते वरन् तह में जाकर उन कारणों की पड़ताल भी करते हैं, जो उन्हें जन्म देते हैं।”¹

परसाई अपने युग के प्रति अत्यन्त सचेत हैं, उनके यहाँ वर्तमान जीवन की किसी भी विसंगति के लिए दया नहीं है। डॉ० महीप सिंह उनकी व्यंग्य चेतना के सन्दर्भ में कहते हैं, “परसाई की व्यंग्य चेतना स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिवेश की विसंगतियों की उपज है। सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में फैले विविध रंगी छल प्रपंचों के देश के कराहते इन्सान की पीड़ा ही उनकी प्रेरणा का स्रोत है। टूटते मूल्यों की कचोट से उत्पन्न विद्रूपता ही वह फलक है जिस पर परसाई ने तिलमिला देने वाली सच्चाई को उभारा है। वर्तमान जिन्दगी के दोनों

छोरों—सम्पन्नता—विपन्नता सुख—दुःख, अस्ति—आस्ति, प्रेम—घृणा के बीच दबे सत्य की कड़वाहट ही उनके व्यंग्य का आधार है। सामाजिक, नैतिक समस्या, अपराध एवं पाप—बोध के घिनौनेपन की पपड़ी के नीचे अंकुबाती जिन्दगी की सच्चाई ही परसाई के व्यंग्यों की जानी पहचानी जमीन है, जिसके भीतर छिपे हर छूट, पाखण्ड, अन्तर्विरोध को उन्होंने बड़े निकट से देखा ही नहीं, उसे जाना और भोगा भी है। उनका व्यंग्य किसी राजनीतिक मतवाद से प्रेरित या निर्देशित नहीं है, वह स्वतन्त्रता के बाद देश में जन्म लेने वाली सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक उपलब्धियों की जड़ता का जीवंत इतिहास है।² परसाई के सम्बन्ध में मुक्तिबोध ने भी कहा है कि “परसाई जी का सबसे बड़ा सामर्थ्य संवेदनात्मक रूप से यथार्थ का आकलन है, चाहे वह राजनैतिक प्रश्न हो या चरित्रगत। हमारे यहाँ की साहित्यिक संस्कृति ने सच्चाई के प्रकटीकरण पर जो हटबंदी करके रखी है, उसे देखते हुए परसाई जी की कला सहज ही वामपक्षी हो जाती है।”³

हिन्दी व्यंग्य के विकास में रवीन्द्रनाथ त्यागी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके व्यंग्यों में रोचकता तथा विनोद भंगिमा का कुशल संगम है। अपने आस-पास की समस्याओं को देखना और उसके पश्चात उसे व्यंग्य के रूप में प्रस्तुत करना, एक कुशल व्यंग्यकार की क्षमता का निदर्शन कराता है। आत्म, व्यंग्य लिखने में रवीन्द्रनाथ त्यागी का कोई शानी नहीं है। ‘रवीन्द्रनाथ त्यागी के व्यंग्य की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए प्रो० रामचन्द्र तिवारी ने कहा है कि— “रवीन्द्रनाथ त्यागी का अनुभव और अध्ययन विस्तृत है। समाज के विविध वर्गों की जीवन-स्थितियों और उसकी विसंगतियों को वे अच्छी तरह पहचानते हैं। इसलिए उनके व्यंग्य का दायरा विस्तृत है। रवीन्द्रनाथ त्यागी का व्यंग्य निश्चछल है। वह पाठक को गुदगुदा कर हँसाते हैं। प्रायः मीठी चुटकी लेते हैं और कभी-कभी विचलित भी करते हैं, किन्तु परसाई की भांति जो टूटने योग्य है उसे तोड़ डालने की प्रहार क्षमता उनमें नहीं है।”⁴

रवीन्द्र नाथ त्यागी एक भावुक कवि के रूप में भी सामने आते हैं शायद यही वह कारण है जिसके परिणाम स्वरूप उनके व्यंग्य में समाज की विसंगतियों का उल्लेख ललित निबन्ध के रूप में दृष्टिगोचर होता है। उनके व्यंग्य में उनके सरकारी पद पर कार्य करने का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है। ‘इण्डियन डिफेंस एकाउंट्स सर्विस’ में काम करते हुए प्रशासनिक कमियों की ओर भी उनका ध्यान जाता है। अपने से ऊँचे अधिकारी की खुशामत में लोग कैसे-कैसे व्यवहार करते हैं, इसका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा है— “स्टेशन तक छोड़ने दफ्तर के लोग गए। उन्होंने डिब्बा तलाश किया, सीट तलाश की, बिस्तर खोले, सुराही भरी और उसके बाद गाड़ी चलने तक हाथ बांधे वे लोग वहीं प्लेटफार्म पर ही खड़े रहे। काफी खुश दिखाई दे रहे थे। सोच रहे होंगे कि चलो, इस नामाकल के बाहर जाने से अब हफ्ता—दस दिन तो आराम से कटेगा। मैंने उनसे चले जाने के लिए कई बार कहा, मगर वे थे कि कोई भी जोखिम लेने को तैयार नहीं थे। वे तो यह तय करके ही जाना चाहते थे कि मैंने वाकई स्टेशन छोड़ दिया।”⁵

हिन्दी साहित्य में कथाकार के रूप में विख्यात श्रीलाल शुक्ल एक प्रतिष्ठित व्यंग्यकार के रूप में भी सामने आते हैं। अपने व्यंग्य के माध्यम से इन्होंने स्वतन्त्रता प्राप्त भारत की स्थिति का चित्रण किया है। उनकी वैचारिक चेतना, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संक्रमण के चित्रण में अधिक रमी हुई दिखाई पड़ती है। अपनी समसामयिक अन्तर्दृष्टि का भरपूर उपयोग व्यंग्य के रूप में किया है। श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य की विशेषता उनके द्वारा अपनाई गई विशिष्ट शैली में निहित है। उनके व्यंग्य की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए डॉ० रामचन्द्र तिवारी ने कहा है कि— “अपने निबन्धों में अपने आधुनिक जीवन की विसंगतियों पर चुटकी लेने और चिकोटी काटने की शैली में व्यंग्य किया है। व्यंग्य का दायरा विस्तृत है। बौद्धिक बारीकियों से युक्त होने के कारण आपका व्यंग्य एक खास तरह के पाठक की माँग करता है। आपके व्यंग्य—लेखन की एक विशेषता यह है कि आप किसी भी गद्य—विधा को व्यंग्य गर्भित बना देते हैं। यहाँ तक कि आपका यात्रावृत्त भी व्यंग्य—लेख बन जाता है।”⁶

श्रीलाल शुक्ल के पास आत्मा को आन्दोलित कर देने वाली भाषा थी। उनके विषय में रघुवीर सहाय कहते हैं— “श्रीलाल को अगर हिन्दी के पानी-पाड़ों ने श्रेष्ठ साहित्य के चौके में नहीं बैठाया तो वह हंसोड़ विरादरी में भी नहीं दाखिल हुए। उनका व्यक्तित्व ग्राम-शोभा के वर्णन से यहां तक विकृति की सृष्टि नहीं, उसकी खोज करता रहा है, इस मामले में वह अपने समकालीन परसाई से काफी भिन्न है। जो कि टूटने योग्य है, उसे तोड़ ही डालने के कायल हैं और शरद जोशी या रवीन्द्रनाथ त्यागी से तो बहुत ही भिन्न है जिन्होंने चुकी हुई चीजों पर हँसने-हँसने में दक्षता अर्जित की है।”⁷

प्रेमचन्द, निराला की तरह श्रीलाल शुक्ल भी टूटे हुए मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए प्रेरित करते हुए दिखाई पड़ते हैं। अपने दायित्व बोध से युक्त होकर साहित्य और समाज में होने वाली विसंगतियों को उजागर करते हैं। श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य का फलक विविध रंग में उपस्थित होता है, राजनीति नेता, प्रशासन, संस्कृति, साहित्य, शिक्षा, नौकरी, दूरदर्शन, समाचार पत्र, अमीरी-गरीबी, युवावर्ग इत्यादि। जहां कहीं असंगति देखी इन असंगतियों को दूर करने की इच्छा से वे उन असंगतियों को पाठकों के समक्ष ले आते हैं। राजनीति और नेता समाज के लिए क्या योगदान दे रहे हैं ? इसका उल्लेख करते हुए कहते हैं— “इस माहौल को पीछे ठेलकर आज की राजनीति ज्यादा ठोस आधार पर ड्यूटी वगैरह को पकड़ती है। वह सारे सिद्धान्तों को अपने प्यारे नेता की कंचनकाया में, विचार उसकी आवाज में और सेवा उसकी फर्माबरदारी में देखने लगी है। यानी पार्टी सिद्धान्तों की है, कल्चर गिरोह की है।”⁸

श्रीलाल शुक्ल का ‘रागदरबारी’ ऐसा उपन्यास है, जिसने व्यंग्य के आगे नए रास्ते और मंजिलें खोल दी और इस रूप में व्यंग्य के विकास में एक तरह की ऐतिहासिक भूमिका निभाई। इस उपन्यास में व्यंग्य के माध्यम से देश की वर्तमान स्थिति का वर्णन है। ‘शिवपालगंज’ एक गाँव नहीं, पूरे देश का प्रतीक है। इसमें पूरे देश के परिवेश में व्याप्त विसंगतियों का विश्लेषण है, स्वतन्त्रता के पश्चात कैसे एक वर्ग का विकास तेजी से होने लगा, जो अपनी सत्ता में होने का फायदा ले रहा था। इसके विपरीत एक आम जन थे जो अपनी न्यूनतम जरूरतों को भी पूरा नहीं कर पा रहे थे। इसका चित्रण बड़ी बखूबी के साथ ‘राग दरबारी’ में दिखाई पड़ता है। कर्तव्य हीनता, गैरजिम्मेदारी, सत्ता हथियाने के लिए किए गये विभिन्न ढाँच-पेंच, सभी क्रिया कलापों की पोल, भाई-भतीजावाद का चित्रण बड़ी सीधी-सादी भाषा में किया गया है। उपन्यास का नायक ‘रंगनाथ’ कहता है “घास खोद रहा हूँ।” इसी को अंग्रेजी में रिसर्च कहते हैं। परसाल एम0 ए0 किया था। इस साल से रिसर्च शुरू की है।”⁹

हिन्दी व्यंग्य को एक महत्वपूर्ण आयाम दिलाने में गोपाल चतुर्वेदी का भी प्रमुख स्थान है। इनके यहां खूब विविधता और विस्तार है। भारतीय राजनीति व्यंग्य के लिए हमेशा प्रमुख रही है। एक जनतांत्रिक देश में जनता और नेताओं के बीच कैसा रिश्ता रहा है, इसका उल्लेख करते हुए गोपाल चतुर्वेदी कहते हैं, “जनता को जनतंत्र में जाने का एक ही तरीका है कभी सरकार रैली करे कभी विरोधी दल। विवश, दबी जनता में जनार्दन होने का भ्रम उत्पन्न हो।”¹⁰ वास्तव में कुर्सी की चाह में नेता चुनाव के समय में कैसे जनता को जनार्दन बना देते हैं, और चुनाव के बाद जनता की फरियाद सुनने कोई नेता नहीं आता, यही वह कारण है, जिससे जनता और नेता के बीच विश्वास कम हो रहे हैं। चुनाव में रैलियों के माध्यम से घोषणाएं और इन रैलियों से आम जनता की क्या भलाई हो सकती है, इस विषय पर गोपाल चतुर्वेदी का व्यंग्य द्रष्टव्य है, “सब ओर हल्ला है। रैली आई है, रैली आई है। बूढ़ा खोमचेवाला अपनी मूँगफली, लैयाचना, नींबू, समाला, रोकड़ गँवाकर अपनी ऐनक ढूँढ़ रहा है। पानी “ठण्डा” की आवाज लगाने वाला का ठेला कहीं ठिल गया है और वह भगदड़ में धूलचाट रहा है।”¹¹

गोपाल चतुर्वेदी की रचनाओं से आम आदमी के प्रति उनकी सहानुभूति तथा उनका लगाव स्पष्ट होता है। नेता केवल जन सेवा का दिखावा ही करते हैं। उनका ध्यान तो केवल ‘कुर्सी’ पर ही टिका होता है। कुर्सी को

हथियाने के लिए लालयित ये नेता अपनी इस महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए कुछ भी करने को तत्पर रहते हैं। परन्तु अब मतदाता भी जागरूक हो गया है और नेताओं को कैसे सबक सिखाता है इसका उल्लेख करते हुए गोपाल चतुर्वेदी कहते हैं, “सरकारी दफ्तरों में “कुर्सी-कुर्सी” काफी लोकप्रिय खेल है। राजनीति में यही खेल जन सेवा के नाम पर खेला जाता है। राजनीति के कुर्सी – कुर्सी और क्रिकेट में सबसे बड़ी समानता दोनों का अनिश्चय का खेल होना है। विधायक या सांसद बनकर अर्धशतक लगाने वाले और कभी मंत्री का पद हथिया कर शतक लगाने वाले प्रतिभाशाली खिलाड़ी चुनाव के दौरान जीरों पर उड़ जाते हैं”¹²

सन्दर्भ सूची

1. प्रो० रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी का गद्य-साहित्य, पृ० 85
2. सारिका : जनवरी, 1986, पृ० 39
3. परसाई रचनावली : भाग-2, पृ० 186
4. प्रो० रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी का गद्य-साहित्य, पृ० 93
5. रवीन्द्र त्यागी : प्रतिनिधि व्यंग्य, पृ० 10
6. प्रो० रामचन्द्र तिवारी : हिन्दी का गद्य-साहित्य, पृ० 85
7. श्रीलाल शुक्ल : यहाँ से वहाँ, ‘परिचय’ रघुवीर सहाय के लेख से
8. श्रीलाल शुक्ल : कुछ जमीन पर कुछ हवा में, पृ० 75
9. श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ० 07
10. गोपाल चतुर्वेदी : खंभों के खेल, पृ० 56
11. वही, पृ० 56
12. गोपाल चतुर्वेदी : दुम की वापसी, पृ० 102-103



हिन्दी साहित्य में किंवदंती पुरुषों के पुनर्सृजन की परंपरा

डॉ० धनन्जय सिंह

फर्स्ट फ्लोर, नीयर फादर एग्नेल स्कूल गौतम नगर, नई दिल्ली-110049

प्रस्तुत लेख किंवदंती शब्द की व्युत्पत्तिपरक अवधारणा स्पष्ट करता है और इतिहास के आइने में आरम्भिक काल से ही किंवदंती पुरुषों की कथाओं को पुनर्सर्जित होने को ऐतिहासिक प्रक्रिया पर भी एक सरसरी निगाह रखते हुए एक संक्षिप्त परिचय देता है। इसके साथ ही कोई रचनाकार किंवदंती पुरुष को पुनर्सृजन करने की आवश्यकता क्यों महसूस करता है, इस सवाल को भी उठाता है।

आइये पहले किंवदंती शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में जान लें। “किंवदंती अर्थात् किम् (कुछ) तथा वद् (कहना)–कुछ कहना। यह कुछ कहना धीरे-धीरे लोकप्रचलित दृष्टान्तों को साधन बन जाने पर पूर्वकाल में घटित प्रसंगों का कथामात्र हो गया।” किंवदंती उन सभी कथाओं को कहते हैं जो स्थानीय और ऐतिहासिक दोनों हैं। इसी आधार पर इसके दो भेद हैं—“स्थानीय किंवदंती और बाहर से प्राप्त किंवदंती।” संस्कृत, प्राकृत, पाली आदि में इसका प्रयोग नहीं मिलता है। मराठी में किंवदंती के पर्याय स्वरूप ‘दंतकथा’ शब्द का प्रयोग मिलता है। हिन्दी में भी यह शब्द प्रचलित है। लेकिन ‘दंतकथा’ शब्द किंवदंती के अर्थ को अभिप्रेत नहीं कर पाता है।

दंतकथा का किंवदंती शब्द के समानार्थी अंग्रेजी के शब्द ‘लीजेंड’ का प्रयोग किया जाता है, जो लैटिन भाषा के ‘लीजेंडा’ से लिया गया है, जिसका अर्थ होता है—“कथा को ऊँचे स्वर में वाचना।” वास्तव में इस शब्द का मूल अर्थ उस वस्तु से था, जो पूजा-पाठ के धार्मिक अवसर पर पढ़ी जाती थी। यह प्रधानतया किसी सज्जन पुरुष का जीवन चरित्र या धर्म के नाम पर बलिदान होने वाले वीरों की गाथा होती थी। उदाहरण के लिए हम ‘गोल्डेन लीजेंड’ (Golden Legend) नामक ग्रंथ को ले सकते हैं, जिसमें संतों की जीवनियों का संकलन उपलब्ध है, परंतु कालक्रम के पश्चात ‘लीजेंड’ उन कथा को कहा जाने लगा, जो किसी ऐतिहासिक तथ्य के ऊपर आश्रित हुआ करती थीं। किसी व्यक्ति या स्थान के विषय में कही गई इन कहानियों में परंपरागत मौखिक सामग्री का भी मिश्रण होने लगा। इस प्रकार ‘लीजेंड’ लोककथाओं का वह प्रकार है जिसमें कथानक में तथ्य, घटना तथा परंपरा दोनों का समन्वय पाया जाता है।

‘लीजेंड’ के समानांतर एक और शब्द का जिक्र आता है और वह है—मिथक। इन दोनों शब्दों में पार्थक्य को स्पष्ट करना कुछ सरल नहीं है क्योंकि इन दोनों का ही कथावाचक एवं उसके श्रोताओं द्वारा सम्मान दिया जाता है और दोनों ही लोकसाहित्य के तत्व भी हैं। किन्तु फिर भी इन दोनों में अंतर है। ‘लीजेंड’ किसी सत्य घटना के रूप में कही जाती है। किन्तु मिथक की सच्चाई उसके श्रोताओं के देवता में विश्वास के ऊपर आश्रित होती है। कोई कथा तभी तक मिथक कही जाती है जब तक उसके प्रधान पात्रा देवी और देवता हैं अथवा इन पात्रों में देवत्व की भावना बनी रहती है। परंतु जब ये पात्रा देवत्व की कोटि से नीचे उतरकर मनुष्यों की रेणी में आ जाते हैं तब उस कथा को लीजेंड कहने लगते हैं। स्पष्ट है कि मिथक धर्मिक होते हैं और लीजेंड “धार्मिक के बजाय धर्मनिरपेक्ष होते हैं।” मिथक और लीजेंड दोनों ही लोकसंस्कृति के विशिष्टीकरण होते हैं। लेकिन “मिथक और लीजेंड ईश्वर की तरह चरित्रा गढ़ता है और धार्मिक विश्वासों की व्याख्या करना उद्देश्य होता है। जबकि लीजेंड मानवीयता को केन्द्र में रखकर चलता है और उसका ध्येय मुख्यतः पूर्वजों का गुणगान करना या इतिहास के एक समूह की व्याख्या करना होता है। एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। भारतीय पुराणों की सृष्टि संबंधी कथाएँ देवासुर संग्राम, समुद्रमंथन की कथा, भगवानों के विभिन्न अवतारों की कथा—मिथक कही जा सकती है, परंतु राजा

विक्रमादित्य, राजा रिसालु, गोपीचंद और राजा भरथरी की लीजेंड की कोटि में आती हैं।

‘लीजेंड’ में इतिहास कितना होता है? इसकी जानकारी निम्नलिखित उदाहरणों से मिल सकती है। ‘लीजेंड’ एक काल्पनिक कहानी होती है जो अतीत से ली गई होती है। इसमें तथ्यों के कुछ तत्व समाहित होते हैं लेकिन वह पूर्णतः असत्य होते हैं। किंवदंती कहानियाँ किसी व्यक्ति या राष्ट्र के इतिहास से जुड़ी होती हैं। “लीजेंड के ऐतिहासिक दस्तावेज नहीं होते हैं लेकिन वे ऐतिहासिक कमियों और तथ्यों को अपने में सम्मिलित कर सकते हैं।” इस संबंध में हिन्दी साहित्य कोश में लिखा गया है—“लोकसाहित्य के अंतर्गत किंवदंती उन कथाओं के लिए प्रयुक्त होता है, जो विपर्यस्त अथवा असम्बद्ध इतिहास की घटनाओं पर निर्भर होकर लोकजीवन में बच रही है। प्रायः ऐतिहासिक घटनाएँ विकृत होकर ऐसा रूप धारण कर लेती हैं कि उन्हें इतिहास मानने की अपेक्षा किंवदंती ही कहना पड़ता है।”

यह तो विदित है कि किंवदंतियों की कथावस्तु लोककथा होती है, “जिसमें परा-प्राकृतिक जीव, मिथक के तत्व या प्राकृतिक नियमों की व्याख्याएँ होती हैं एवं उनमें इतिहास के तत्व भी होते हैं। कुछ किंवदंतियाँ स्थान या व्यक्तियों की विशेष संपत्ति होती हैं जो उनसे जुड़े होते हैं। लेकिन बहुत सी किंवदंतियाँ वास्तव में चिरपरिचित लोककथाएँ होती हैं जो किसी विशेष व्यक्तियों या स्थानों से जुड़ी होती हैं।”

उपर्युक्त कथनों के अवलोकन से यह समझ बनती है कि किंवदंती (लीजेंड) पुरुष लोककथा के ऐसे नायक हैं जो धार्मिक के बजाय धर्मनिरपेक्ष होते हैं, पूर्ण ऐतिहासिक के बदले इतिहास और गल्प के पुट से गढ़े होते हैं। सबसे महत्वपूर्ण वे इस अर्थ में हैं कि वे मानव धर्म के लिए स्वयं को बलिदान करने वाले होते हैं और वे जिस लोक ओर समय से जुड़े हुए होते हैं, उन्हें अपने में लोकसंस्कृति को आत्मसात् किये हुए होते हैं। मतलब वे स्वयं में लोकसंस्कृति का पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करने वाले होते हैं।

यह तो स्पष्ट हो चुका है कि किंवदंती पुरुष में इतिहास होता है और उसका ऐतिहासिकरण भी होता है और हुआ भी है, लेकिन फिर भी किंवदंती पुरुषों को इतिहास में स्थान नहीं मिल पाता है। यह सच्चाई है। वजह जो भी हो। परंतु अब जिन किंवदंती पुरुषों को इतिहास में जगह नहीं मिल पाया है यानी जिन्हें अब तक हाशिये पर रखा गया है, उन्हें ही केन्द्र में लाने के यानी इतिहास में जगह देने के लिए निम्नवर्गीय इतिहासधारा (सबाल्टर्न हिस्ट्री) की प्रस्तावना की गई है। यह अलहदा है कि निम्नवर्गीय इतिहास की भी कई श्रेणियाँ हैं जिनमें अभी तक सबाल्टर्न पुरुषों सुरक्षित नहीं रखा जा सका है।

यदि हम लौकिक परंपरा (मौखिक परंपरा) या साहित्यिक परंपरा में किंवदंती पुरुषों का अवलोकन करें तो हमें प्रारंभिक काल से ही लीजेंडरी कहानियाँ मिलने लगती हैं। निसंदेह महात्मा बुद्ध एक ऐतिहासिक पुरुष रहे हैं क्योंकि “उनकी मृत्यु ईसापूर्व पांचवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुई थी।” इसके साथ ही वे किंवदंती एवं मिथक पुरुष भी हैं क्योंकि वे बाद्ध धर्म के प्रवर्तक हैं। अज्ञैर ईश्वर के दस अवतारों में से एक अवतार भी माना जाता है। एक तरफ जहाँ औपनिवेशिक इतिहासकारों ने उन्हें वैदिक धर्म के प्रतिपक्ष में समझने का प्रयास किया वहीं दूसरी तरफ बीसवीं सदी में डॉ. अम्बेडकर ने उन्हें दलित उद्धारकर्ता के रूप में देखने का प्रयास किया है। इसलिए आज भी दलित बौद्ध धर्म अपनाने में कोई झिझक महसूस नहीं करते हैं। मार्क्सवादी इतिहासकारों ने भी उन्हें समझने का प्रयास किया है। कहने का अभिप्राय यह है कि व्यक्ति एक है, फिर भी उसकी इतनी सारी व्याख्याएँ की जा रही हैं। इन सब पाठों के लिए उनके किंवदंती पुरुष होने का हाथ है। इसी तरह संस्कृत के महाकवि कालिदास को लिया जा सकता है। उनके बारे में जनश्रुति है कि वे पहले महामूर्ख थे। वे जिस पेड़ की डाली पर बैठे थे, उसी को कुल्हाड़ी से काट रहे थे। ऐसे ही किंवदंतियाँ उनके शादी-विवाह एवं कवि बनने के बारे में प्रचलित हैं। उनके बारे में एक किंवदंती कहें या ऐतिहासिकता है कि वे राजा विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे। कालिदास का यह एक पाठ है। उनकी रचनाओं में कश्मीर का जिक्र बार-बार आया है। इस आधार पर कश्मीर के लोग उन्हें

कश्मीरी मानते हैं। इसी तरह मिथिलांचल के उन्हें मिथिला का होना बताते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि किंवदंतियाँ विवाद पैदा करने की क्षमता रखती हैं। इसके साथ ही किंवदंती पुरुषों की श्रेणी में राजा विक्रमादित्य, राजा भरथरी, राजा रिसालु, गोपीचंद आदि हैं। इनकी ऐतिहासिकता को लेकर संदेह किया जाता है। गुरु मछन्दरनाथ, गुरु गोरखनाथ आदि अपनी ऐतिहासिकता के साथ किंवदंती कथाओं में आज भी जीवित हैं।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भी किंवदंती पुरुषों का जिक्र किया गया है, जो ऐतिहासिक पुरुष के साथ किंवदंती पुरुष भी रहे हैं। उनमें राजा खुमाण (खुमाण रासो संवत् 810-1000 के बीच) जो “मेवाड़ के इतिहास में प्रसिद्ध हैं और जिसके समय में बगदाद के खलीफा अलमामूँ ने चितौड़ पर चढ़ाई की। चितौड़ की सहायता के लिए बहुत से राजा आए और चितौड़ की रक्षा हो गई।” इसी कड़ी में राजा बीसलदेव का नाम लिया जा सकता है, जो “अजमेर के वीर और बड़े प्रतापी थे और उन्होंने मुसलमानों के विरुद्ध कई चढ़ाईयाँ की थी और कई प्रदेशों में मुसलमानों को खाली कराया था।” राजा पृथ्वीराज चौहान की स्थिति भी कुछ ऐसी ही थी। लेकिन इनके बारे में किंवदंतियाँ बहुत हैं, जो ऐतिहासिकता से बहुत कम मेल खाती हैं। जैसे कि दिल्ली के राजा अनंगपाल की पुत्री से विवाह, पृथ्वीराज का अपने नाना के गोद जाना, संयोगिता हरण आदि। इन किंवदंतियों को लेकर आलोचक रामचंद्र शुक्ल ने अपनी राय इस रूप में दी है—“प्रामाणिक ग्रंथों के अनुसार ...ये बातें असंगत सिद्ध होती हैं।”

आल्हा-ऊदल दोनों वीरों के गीत आज भी उत्तर भारत में गाये जाते हैं। इनका जिक्र ‘पृथ्वीराज रासो’ में आता है लेकिन इनका साहित्यिक रूप कवि जगनिक रचित ‘परमाल रासो’ में मिलता है। आल्हा और ऊदल दोनों ही कालिंजर के राजा परमार के यहाँ वीर सामंत थे और इन्हीं को केन्द्र में रखकर परमालरासो की रचना हुई है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन है कि —“साहित्यिक रूप में न रहने पर भी जनता के कंठ में जगनिकके संगीत की वीरदर्पपूर्ण प्रतिध्वनि अनेक बल खाती हुई अब तक चली आ रही है। इस दीर्घ काल यात्रा में बहुत कुछ इस पर बदल गया है। देश और काल के अनुसार भाषा में ही परिवर्तन नहीं हुआ है, वस्तु में भी बहुत अधिक परिवर्तन होता आया है।” समय के साथ परिवर्तन होते जाना किंवदंती कथाओं का स्वभाव होता है।

राजा के आश्रय में रहकर प्रसिद्धि पाने वाले कवियों में अमीर खुसरो और विद्यापति हिन्दी साहित्य के इतिहास में संभवतः पहले किंवदंती पुरुष हैं। काल के प्रवाह के साथ किंवदंती पुरुषों की श्रेणी में महाराष्ट्र के संत नामदेव का नाम लिया जाता है। उनकी संत परीक्षा वाली किंवदंती अहुत प्रसिद्ध है जो उन्हें नाथपंथ के योग मार्ग की ओर प्रवृत्त करने के लिए संत ज्ञानदेव की ओर से बहुत प्रयत्न किया गया था। इन्हीं की परंपरा में गुरु रामानंद, निरगुण पंथी कबीर, रैदास (रविदास), गुरुनानक, दादूदयाल, मलूकदास आदि संतों की किंवदंतियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। कबीर के जन्म, शादी-विवाह, बाल-बच्चे, गुरु, मृत्यु और यहाँ तक कि उनकी जाति को लेकर भी किंवदंतियाँ हैं। “कहते हैं कि काशी में स्वामी रामानंद का एक भक्त ब्राह्मण था, जिसकी किसी विधवा कन्या को स्वामीजी ने पुत्रावती होने का आशीर्वाद भूल से दे दिया। फल यह हुआ कि उसे एक बालक उत्पन्न हुआ जिसे वह लहरतारा के ताल के पास फेंक आयी। अली या नीरु नाम का जुलाहा उस बालक को अपने घर उठा लाया और पालने लगा। यही बालक आगे चलकर कबीरदास हुआ।”

मुसलमान शासकों में सम्राट अकबर को सबसे अधिक उदारमना, सहिष्णु, न्यायप्रिय एवं समन्वय के लिए पूरे भारत में स्मरण किया जाता है और उनके नवरत्नों में बीरबल का भी नाम लिया जाता है। अकबर और बीरबल की कहानियाँ तो आज भी उत्तर भारत में कहावतों और लोकोक्तियों की तरह जनसाधारण में व्याप्त है।

मध्यकाल में ऐसी लोकप्रचलित किंवदंतियाँ भी रही हैं जिन्हें इतिहास में फेंट करके सुपफी कवियों ने अपने कथा दर्शन में पिफट करके उनका पुनर्सृजन किया है। उनका पुनर्सर्जन इस अर्थ में नया है कि वो रचनाओं (सूपफी कवियों) के सिद्धांतों के ढाँचे में इस सफाई से गढ़े गये हैं कि उनकी पूरी कथा ही प्रतीकात्मक हो गई है। इस तरह के किंवदंती पुरुषों में लोरिक, भोरिक, चनवा (चंदा), मंजरी आदि की कहानियाँ भोजपुरी प्रदेश में सुनने को

मिलती हैं, जिन्हें लोक एवं लोकगायक लोरिकी या लोरिकायन कहती है। अवध प्रदेश में चनैनी कहते हैं। इन्हीं को अपनी कथा का आधार बनाकर मुल्ला दाउद ने 'चंदायन' (1379 ई. में) नामक 'रोमांचक आख्यान' लिखा। चंदायन की 'ऐतिहासिकता से संबद्ध कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं है, जो कुछ भी है, उससे अनुमानित निष्कर्ष ही निकाले जा सकते हैं। यदि आर्य पर से ही लोरिक बना हो तो कम से कम लौकिक ऐतिहासिक व्यक्ति प्रमाणित होता है।' लोरिकायन मौखिक गाथा है, चंदायन मूल्ला दाफद की रचना है। लेकिन दोनों में अंतर है। "लोरिकायन में आसंकित के अतिरिक्त प्रेम चित्रण का कोई दृष्टिकोण ढूँढ़ना व्यर्थ है जबकि चंदायन में प्रेम स्वरूप दोनों स्तरों (सांसारिक और आद्यात्मिक) पर अभिव्यक्त हुआ है।...लोरिकायन में चंदा के साथ भागने पर भी लोरिक अन्य स्त्रियों पर आसक्त होता है और उनके साथ भोगविलास करता है। चंदायन में वह अन्य किसी स्त्री पर आसक्त नहीं पाया जाता है। ... लोरिकायन में हर विपत्ति के समय दूर्गा लोरिक की सहायता करती हुई पायी जाती हैं।...चंदायन में किसी देवी-देवता का चित्रण नहीं है।" इतना अंतर क्यों है क्योंकि लोरिकायन में "अलौकिक घटनाओं और शक्तियों के प्रयोग से लोक-गायक श्रोताओं पर एक सनसनीपूर्ण और रहस्यमय वातावरण उत्पन्न कर उनकी अभिरुचि को अपनी ओर आकर्षित करता है।" जबकि चंदायन की कथा सूफी सिद्धांतों के अनुकूल ढाँचे में चलने के लिए बाध्य है। इससे यह स्पष्ट होता है कि किंवदंतियाँ पाठभेद विविधता में सहायक होती हैं। इसी तरह अवध प्रदेश में राजा रत्नसेन और रानी पद्मावती की कथा जनसाधारण में बहुत लोकप्रिय है। जिसे आधार बनाकर सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' नामक महाकाव्य लिखा। इसकी ऐतिहासिकता को लेकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि —"जायसी ने यद्यपि इतिहास प्रसिद्ध नायक और नायिका ली है, पर उन्होंने अपनी कहानी का रूप वही रखा है, जो कल्पना के उत्कर्ष द्वारा साधारण जनता के हृदय में प्रतिष्ठित था।"

इन्हीं के समानांतर मीराबाई, तुलसीदास, सूरदास इत्यादि का जीवन भी जनसमाज में किंवदंती पूर्ण कहानियों से व्याप्त है। मीराबाई (संवत् 1573) राजस्थान प्रदेश की थीं। धर्मपति राजा भोजराज की मृत्यु के उपरांत वे प्रायः मंदिरों में भक्तों-संतों के बीच श्रीकृष्ण की भक्ति में नाचती-गाती थीं। किंवदंती है कि उनके ऐसा करने से उनके राजकुल ने निंदा के भय से उन्हें विष देकर मार डालने का प्रयास किया। लेकिन ईश्वर की कृपा से वे बच गईं। इसलिए उनका जहाँ जाना होता, वहाँ देवियों से सम्मानमिलता था। ऐसे ही तुलसीदास और सूरदास के बारे में जनश्रुतियाँ मिलती हैं। इन दोनों किंवदंती पुरुषों पर बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में श्री अमृतलाल नागर ने उपन्यास लिखा है। तुलसी के जीवन पर 'मानस का हँस' और सूरदास के जीवन पर 'खंजन नयन'। तुलसीदास पर उपन्यास लिखने के कारण को उपन्यास के आमुख में लिखा है—“फिल्म निर्माता निर्देशक स्वर्गीय महेश कौल के साथ बातें करते हुए सहसा इस उपन्यास को लिखने का संकल्प मेरे मन में जागा।” उनका मानना है कि तुलसीदास पर जितने भी जीवन चरित्र लिखे गये हैं, उनमें प्रामाणिकता का अभाव है। इसलिए उन्होंने 'मानस का हँस' के लिए तुलसी के आत्मपरक रचनाओं को आधार मानकर लिखा “गोंसाई जी से संबंधित अनगिनत किंवदंतियों में से उन्हीं को अपने उपन्यास के लिए स्वीकारा जो इस मानसिक ढाँचे पर चढ़ सकती थीं।” इसीलिए नागर जी ने चमत्कारी तुलसी से यथार्थवादी तुलसी को पकड़ने की वकालत की। क्योंकि तुलसी का जीवन संघर्ष, विद्रोह और समर्पण भरा है। इस दृष्टि से वे अब भी प्रेरणा दायक हैं।” तुलसी के समान सूर के जीवनवृत्त की ऐतिहासिक प्रामाणिकता भी अंधार में लटकी हुई है। इन दोनों ही संत महाकवियों की जन्मभूमियाँ पंडितों की अदालत से अब तक कोई निश्चित पफैसला नहीं पा सकी हैं। सूरदासजी जन्मांध थे या बाद में नयनहीन हुए— यह बहस अब तक गर्म है और शायद आगे भी रहे। इसलिए दोनों ही महानपुरुषों को नायक बनाकर उपन्यास लिखते समय मैंने अपने ढंग से ही इस समस्या से ऊटं को एक करवट से बैठाया है।” नागरजी ने दोनों ही पुरुषों को अपने ढंग से समझाने का प्रयास किया है। स्पष्ट है कि प्रत्येक रचनाकार किसी किंवदंती पुरुष को अपनी दृष्टि से देखता है।

सत्रहवीं शताब्दी में ऐसे दो ऐतिहासिक किंवदंती पुरुषों का उद्भव हुआ, जो अपने शौर्य के कारण जनसमाज

में किंवदंती बन गये थे। ये थे—शिवाजी और छत्रासाल। ये दोनों ही हिन्दू वीर पुरुष और धर्म संरक्षक थे। हिन्दू धर्म के संरक्षक से तात्पर्य साम्प्रदायिक होना नहीं है बल्कि विदेशी मुसलमान लुटारों से जनता का बचाव करने वाले हैं। कवि भूषण ने इन दोनों वीरों को इसी रूप में देखा है। लेकिन आज साम्प्रदायिक शक्तियाँ इन दो वीरों को साम्प्रदायिकता के ही संदर्भ से देखकर अपना स्वार्थ साधती हैं। कवि भूषण ने स्पष्ट किया है—“तेज कम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर। त्यों मलेच्छ वंश पर सिवराज है।” मलेच्छ वंश का भूषण का अभिप्राय मुस्लिम धर्म से नहीं रहा है बल्कि विदेशी शासकों से है जो उनकी संप्रभुता पर आक्रमण करते हैं। शिवाजी और छत्रासाल की तरह ही गुरु गोविंद सिंह भी किंवदंती पुरुष थे जो सिक्खों के अंतिम गुरु के रूप में प्रसिद्ध हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रथम स्वाधीनता संग्राम की सेनानी के रूप में किंवदंती बनने वाली झांसी की रानी वैसे तो अपने बचपन में ही किंवदंती पत्रबन गयी थी। लेकिन स्वाधीनता संग्राम ने रानी को वहाँ के लोगों में किंवदंती से देवी बना दिया। लेकिन शुरु में औपनिवेशिक इतिहासकारों ने रानी को एक विद्रोहिणी के रूप में याद किया। पर बाद में राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने उन्हें स्वतंत्रता सेनानी के रूप में याद किया। उपन्यासकार वृंदावन लाल वर्मा ‘झांसी लक्ष्मीबाई’ (1946 ई.) उपन्यास के परिचय में लिखा है—“सुनता रहता था कि रानी स्वराज्य के लिए लड़ी थीं। पारसीनीज के ग्रंथ में पढ़ा कि इनका शौर्य विवशता की परिस्थिति में उत्पन्न नहीं हुआ था।” बंगला भाषा की महान उपन्यास लेखिका महाश्वेता देवी ने लिखा है कि — ‘झांसी की रानी स्थानीय लोकगाथाओं और किंवदंतियों में जीवित हैं।’ क्योंकि रानी वहाँ के लोगों के लिए मिथक बन गई हैं। बुंदेलखंड के लोगों की नजर में “रानी मरी नहीं, अभी तो जिन्दा है।...रानी को छिपा रखा है—बुंदेलखंड के पत्थर और मिट्टी ने।” रानी लक्ष्मीबाई के अतिरिक्त वृंदावन लाल वर्मा ने बहुत से ऐतिहासिक चरित्रों पर उपन्यास लिखा है, परंतु उन्होंने ‘मृगनयनी’ को तो अपने बचपन में ही किंवदंती बन गयी थी— एक नये सिरे से पुनर्सृजित किया है। मृगनयनी गूजरकुल की कन्या थी। अपने शारीरिक बल, आखेट कौशल और अप्रतिम सौंदर्य के विवाह से पहले ही प्रसिद्ध हो गई थी। मृगनयनी के शौर्य से संबंधित प्रचलित परंपराओं में जा व्याख्या के अनुकूल लगा है, उन्हें ही वर्मा जी ग्रहण किया है। लेकिन जो तर्क संगत नहीं लगा, उसका वहिष्कार किया है। जैसे—राजा मान सिंह की दो सौ रानियाँ थीं। इतिहास से मेल खाने वाले तथ्यों को ही उन्होंने अपने उपन्यास में स्थान दिया है। और घटना स्थल का अवशिष्ट वातावरण एवं लोककथाओं के आलोक में ही मृगनयनी को देखाने का प्रयास किया है।

इस कड़ी में गिरिराज किशोर ने महात्मा गांधी के दक्षिण अफ्रीकी जीवन को ‘पहला गिरमिटिया’ में देखने का प्रयास किया है। ‘उपन्यास से पहले’ ही उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि —“महात्मा गांधी के जीवन के तीन पक्ष हैं। एक, मोहनिया पक्ष, दूसरा मोहनदास पक्ष और तीसरा महात्मा गांधी। हर आदमी के जीवन में ऐसा विभाजन होता है।” शुरु में उनका इरादा था कि संपूर्ण गांधी पर उपन्यास लिखें लेकिन दक्षिणी अफ्रीका की यात्रा के बाद उन्होंने तय किया कि मोहनदास पक्ष और उसमें दक्षिण अफ्रीकी गांधी पर ही उपन्यास लिखना ठीक है। क्योंकि दक्षिण अफ्रीका उन्हें “स्मृतियों से भरपूर लगा। इसमें कोई शक नहीं कि गांधी हमारी आजादी के संघर्ष पुरुष हैं। लेकिन मोहनदास एक आदमी की संवेदना और अनुभवों के ज्यादा नजदीक है। आगे आने वाली पीढ़ी को मोहनदास की ज्यादा जरूरत है। जिससे वह जान सके—मोहनदास महात्मा गांधी कैसे बना?” स्पष्ट है कि उपन्यासकार का अभीष्ट क्या है। लेकिन इस प्रक्रिया में गिरिराज किशोर जी ने उपन्यास में कई तथ्यों को तोड़-मरोड़ किया है। इस तोड़ मरोड़ पर हिन्दी जगत के प्रसिद्ध आलोचक वीरेन्द्र यादव ने विस्मय प्रकट करते हुए कहा है कि —“यह तथ्य वास्तव में किंचित विस्मित करने वाला है कि गिरिराज किशोर गांधी के व्यक्तित्व के नकारात्मक पहलू से उतनी मुठभेड़ नहीं करते जितनी गांधी स्वयं करते हैं।” एक—दो उदाहरण लिया जा सकता है। गिरिराज जी प्रथम विश्व युद्ध को लेकर गांधी के उन विचारों की चर्चा नहीं की है जो ब्रिटिश साम्राज्य के पक्ष में थे जबकि गांधी ने स्वयं अपनी आत्मकथा में स्वीकारा है कि—“एक भारतीय व एक अंग्रेज के स्तर में अंदर की जानकारी तो थी,

लेकिन मैं ये नहीं मानता था कि हम दासता में जकड़ दिये गये हैं तब मुझे लगता था कि ये ब्रिटिश अधिकारियों की व्यक्तिगत गलतियों का जितना परिणाम है, ब्रिटिश शासन पद्धति का उतना नहीं और मुझे लगता था कि हम उन्हें प्रेम सदभाव से बदल सकते हैं। यदि हम ब्रिटिश लोगों की मदद एवं सहयोग से अपने स्तर में सुधार कर सकते थे तब हमारा भी यह कर्तव्य था कि उनके संकट में हम उनकी मदद करते।" इसी तरह से पिता मृत्यु के समय गांधी अपनी पत्नी के साथ दैहिक संसर्ग में लिप्त होने को देखा जा सकता है। इससे एक बात स्पष्ट होती है कि गिरिराज किशोर अपने भक्तिभाव के चलते गांधी से वह निरपेक्षता नहीं बरत पाते। एक दूसरा मत भी होता है कि जा गांधी जैसे पुरुषों को नकारात्मक रूप में देखता है। जैसे "उनके बारे में सामान्यतः धारणा है कि वह व्यावसायियों का दर्दी और दोस्त था।" जबकि गिरिराज जी कहते हैं कि "वह मूलतः गिरमिटिया था।" इस रूप में महात्मा गांधी किंवदंती पुरुष के रूप में दिखाई ही पड़ते लेकिन जब कोई भारतीय आजादी के समय भारत के गाँवों में घूमता तो पता चलता कि गांधी ऐसे लोगों के बीच किंवदंती पुरुष थे। अब तक हमने जिन किंवदंती पुरुषों का पुनर्सृजन अवलोकन किया, उससे स्पष्ट होता है कि उन सभी का किसी न किसी रूप में इतिहास में कम-बेसी लाम दर्ज यानी उसका नाम इतिहासकारों ने अपने इतिहास में दर्ज कर लिया था। लेकिन संजीव ने अपने 'सूत्राधर' में एक ऐसे किंवदंती पुरुष का पुनर्सृजन किया है, जो ऐतिहासिक होने के बावजूद भी इतिहासकारों ने इतिहास में स्थान नहीं दिया। इसी अर्थ में संजीव के भिखारी ठाकुर की विशिष्टता है। भिखारी ठाकुर को उपन्यासकार संजीव ने कितना और किस रूप में पुनर्सृजित किया है?

किंवदंती पुरुषों की कड़ी में बिरसा मुंडा का नाम लिया जा सकता है। जिन पर सुप्रसिद्ध फिल्मकार एवं कथाकार इकबाल दुर्रानी की 'गांधी से पहले गांधी' (2003 ई.) उपन्यास कृति आयी है। बिरसा मुंडा एक ऐसे प्रेरक व्यक्तित्व रहे हैं जिन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में अंग्रजी राज्य की चूलें हिलाकर रख दिया था। झारखंड के आदिवासी उन दिनों हर दरजे की गरीबी, शोषण और उत्पीड़न से झुलस रहे थे। अंग्रेजों, सूदखोरों और स्थानीय जमीनदारों के अन्याय के खिलाफ खड़ा होना तो दूर बोला भी जा सकता है ये भी उन्हें नहीं पता था। लेकिन प्रभावी विरोध और अहिंसात्मक संघर्ष के जिसने उन्हें प्रेरित किया, उत्पीड़कों के दिलों में जिसने पहली दहशत पैदा की, उसका नाम था— बिरसा मुंडा। इसीलिए वे वहाँ के स्थानीय लोगों में किंवदंती पुरुष के साथ ही भगवान के रूप में याद किये जाते हैं। उनका विश्वास अहिंसा से भरपूर था, पर जरूरत पड़ने पर शस्त्र उठाने से भी परहेज नहीं था। अपने लोगों को उन्होंने जरूरत के अनुरूप दोनों ही रास्तों पर चलने की राह दिखाई। इसी बिरसा मुंडा को इकबाल दुर्रानी ने 'गांधी से पहले गांधी' में पुनर्सृजित कर सूत्राधर की अगली कड़ी के रूप में प्रस्तुत किया है।



नासिरा शर्मा कृत 'कुइयाँजान' में 'जल' की त्रासदी

कु० पूजा

शोध छात्रा – एम०ए०, एम०फिल० (हिन्दी)
जनतावैदिक डिग्री कॉलेज, बडौत (बागपत)

नासिरा शर्मा जी को हिन्दी साहित्य में कौन नहीं जानता। 22 अगस्त, 1948 में इलाहाबाद में जन्मी इस लेखिका को साहित्यानुराग पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुआ है। वैसे तो नासिरा जी का पदार्पण कहानी लेखिका के रूप में हुआ है। कहानियों के साथ उपन्यास, समीक्षा, पत्रकारिता, अनुवाद और नाटकों साहित्य रूपों को अपनाया। 'शाल्मली', 'ठीकरे की मंगनी', 'जिन्दा मुहावरे', 'बहिश्ते जहरा', 'अक्षय वट', 'जीरो रोड' और 'कुइयाँ जान' जैसी सशक्त कृतियों के माध्यम से उपन्यास विधा की प्रमुख हस्ताक्षर समझी जाने लगी। नासिरा शर्मा जी प्रतिभा और सर्जन का उत्तम प्रमाण सन् 2005 में प्रकाशित 'कुइयाँजान' उपन्यास के द्वारा मिलता है। इस रचना ने उपन्यास धारा की सोच और मोड़ को ही बदल दिया है। इस उपन्यास में पहली बार पढ़ने को मिला मानव अपने जीवन की मूल आवश्यकता जल से संघर्ष करते हुए दिखाया है। वर्तमान समय में मानव जल की समस्या से त्रस्त है।

'कुइयाँजान' नासिरा शर्मा जी का चार सौ सोलह पृष्ठों में विभाजित उपन्यास है। इसमें इलाहाबाद से लेकर बिहार, राजस्थान और भविष्य में विश्व में होने वाली जल की समस्या का चित्रण किया है। किस प्रकार आज जल के लिए त्राहि-त्राहि हो रही है। जल है भी तो वह स्वच्छ नहीं है। वर्तमान समय में मानव ने जल के पुराने साधन कुएं, तालाब, नहर, पाट दिये हैं। उन पर सड़क, मकान, दुकान आदि का निर्माण कर दिया है। इस उपन्यास की भूमिका में लेखिका के उद्गार हैं— "आधुनिक टेक्नोलॉजी में मनुष्य ने उस मूल स्रोत को आदिम करार दे दिया है और अपनी मशीनी ताकत के बल पर प्रकृति के इस अक्षय स्रोत 'जल' से खिलवाड़ कर रहा है। जिसका परिणाम यह है कि अपार जल संपदा होते हुए भी हम आज प्यासे तड़पने को विवश हो रहे हैं। विशेषज्ञों ने लाख चेतावनी दी है जिस तरह आज हम इस प्राकृतिक जलसंपदा को नष्ट कर रहे हैं, उसके कारण वह दिन दूर नहीं जब पानी को लेकर विश्व एक और महायुद्ध की दहलीज पर खड़ा होगा।"¹

इसे संकट, चिन्ता या 'चेतावनी' भी समझा जा सकता है। धरती पर तीन चौथाई भाग पानी से होने के बावजूद भी आज मानव प्यासा तड़पने को विवश हो रहा है। प्रकृति के प्रति बढ़ती मानव की बेरुखी और कुत्सित कार्यवाहियों के परिणाम स्वरूप हम जिस प्राकृतिक वरदान जल संपदा का विनाश कर रहे हैं तो निश्चित ही एक दिन ऐसा आयेगा जब समूचा विश्व समुदाय पानी के लिए महायुद्ध को तैयार होगा।

त्रासदी का अर्थ है, "मानक हिन्दी कोश" में त्रासदी का व्युत्पत्ति जन्म अर्थ इस प्रकार किया गया है— 'त्रास—(स० त्रास डरना) ऐसा भय। जिसमें विशिष्ट, अनिष्ट, क्षति, हानि आदि की आशंका हो।"²

"प्लेटो" ने अपनी 'रिपब्लिक' में त्रासदी पर विचार किया है। उन्होंने त्रासद कृति को अनुकर्ता बताते हुए यह स्वीकार किया है कि "त्रासदी वह काव्य होता है जिसके माध्यम से कवियों द्वारा उस तत्व का जो हमारी व्यक्तिगत तथा समष्टिगत आपदा से बलात् दबा हुआ रहता है और जिसके क्रंदन और विलाप की प्रवृत्ति को सहज अभिव्यक्ति नहीं दी जाती, आत्मा का विरेचन द्वारा प्रसादन और आस्वादन किया जाता है।"³

"अरस्तु" ने भी त्रासदी को जीवन और कार्य का अनुकरण मानते हुए लिखा है— "गम्भीर स्वतः पूर्ण तथा निश्चित आयाम से युक्त कार्य की अनुकृति का नाम त्रासदी है।

उन्होंने माना है कि त्रासदी और करुणा को उदबुद्ध कर विरेचन की पद्धति से मानव-मन का परिष्कार त्रासदी

का मुख्य उद्देश्य होता है।⁴

पीड़ा और करुणा आवेग को जन्म देती है एक दीर्घ एक लम्बे समय तक हृदय में रह लेने के बाद वह उस व्यक्ति द्वारा स्वीकार कर ली जाती है।

हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल' ने त्रासदी पर स्वतन्त्र रूप से तो विचार नहीं किया परन्तु त्रासदी के मूल मनोभाव "करुणा" पर अनेक विचार प्रस्तुत किये हैं— "दूसरों के दुःखी होने के नियम बहुत व्यापक हैं दूसरों के दुःख के परिज्ञान से जो दुःख होता है करुणा, दया आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है।"⁵

मन के भावों से उत्पन्न करुणा व शोक जो किसी कारुणिक दृश्य को देखकर वेदना के चरम को छूता है उसे त्रासदी या दुःखान्त कहना ही सही होगा।

शुरुआत में धारणा थी कि त्रासदी का अन्त प्रमुख पात्र की मृत्यु परन्तु वर्तमान में यह प्रतीत हो चुका है कि मृत्यु से भी अधिक त्रासद घटनायें जीवन में हो सकती हैं और वस्तुतः मृत्यु तो आश्रय दात्री है। अतः आज त्रासद काव्य में व्यक्ति के कष्टमय जीवन संघर्ष करते दिखाया जाता है। ऐसी ही एक सशक्त कृति है नासिरा जी का सन् 2005 में रची गई 'कुड़ियाँजन'। 'कुड़ियाँजन' के प्रारम्भ में ही जल के लिए संघर्ष का उल्लेख है।

'इलाहाबाद' की बताशे वाली गली में रहने वाले बूढ़े 'मौलाना' का इन्तकाल हो जाता है। उनको दफनाने से पहले गुस्ल के लिए पानी नहीं मिलता है "मौहल्ले के कुएँ बरसों पहले कुड़े से पाट दिए गए थे एक दो घरों में हेण्डपाइप थे, जो खराब पड़े थे। वहाँ पक्के घर थे। उनके यहाँ भी पानी की हाय-तौबा मची थी।

शिव मन्दिर के पुजारी भी बिना नहाए परेशान बैठे थे। उन्होंने मन्दिर न धोया था, न भगवान को भोग लगाया था। उनके सारे गगरे लौटे खाली लुढ़के पड़े थे। नल की टोंटी पर कई बार कौआ पानी को तलाश में आ आकर बैठ उड़ चुका था। पता नहीं किस आशा में पंडित जी नल खोलते, फिर बंद कर बड़ बड़ा उठते "पग पग रोटी, डग-डग नीर.....मगर अब.....ई शहर का ईसा हाल बनाय दिए हो भगवान। न पानी है, न रोटी है।"⁶ प्राचीन समय में कदम-कदम पर पानी था आज निजी आवश्यकता के लिए भी पानी नहीं मिल पा रहा है। एक भद्र खातून खुरशीद आरा के घर से पानी लेकर मौलाना का गुस्ल किया जाता है। खुरशीद आरा की सास ने पानी को संचित करने के लिए कुएं को आधा पटवाकर टंकी बनवा ली थी। जिसमें बरसात का पानी जमा हो जाता था। उपन्यास की कथा के माध्यम से लेखिका ने पानी के अनुचित प्रबन्ध और परम्परागत जल स्रोत की उपेक्षा का चित्रण किया है।

नासिरा शर्मा जी ने उपन्यास में जल की त्रासदी का चित्रण इस प्रकार किया है— "अंधौरियों से भर बदन वाले रोते बच्चों को मांओं ने पकड़कर सबसे पहले नहलाया, फिर पानी भरा और खुद नहाई, तब चूल्हे पर चाय का पानी रखा। पानी न हो तो आदमी की जान एक-एक बूंद पानी के लिए तरस जाती है। सारा काम ठप हो जाता है। अब लादी भर कपड़ा धोने को पड़ा है।"⁷ पानी न होने से मानव की दिनचर्या अस्त-व्यस्त हो जाती है और कितना कष्ट सहना पड़ता है।

"गरमी में मरने वालों की संख्या दो सौ से बढ़कर ढाई सौ हो गई है। ये मौतें सूखे के कारण—ज्यादा हुई हैं, क्योंकि पानी की कमी से सारे व्यक्ति अपने को कड़ी धूप से बचा नहीं पाए और....."⁸ प्रकृति के साथ मनुष्य की छेड़छाड़ का परिणाम सूखा के रूप में मिला है जल के बिना मानव शरीर स्वस्थ नहीं रह सकता। वृक्षों की घटती संख्या के कारण वर्षा का औसत कम हो गया है।

"एक दिन पानी ठीक से आया, सारा काम निपट गया, मगर पता नहीं क्या हिसाब है— गरमी में सूखा, बरसात में बाढ़।"⁹

"पानी की ऐसी किल्लत हमारे बचपन में नहीं थी।"¹⁰ प्राकृतिक असन्तुलन का चित्रण किया गया है। प्राचीन समय में पानी ही पानी था। वर्तमान समय में लोग अपनी प्यास बुझाने के लिए तरसने लगे हैं।

“मुझे तो अंधेरा—ही—अंधेरा नजर आ रहा है। आज सुबह खबर सुन रहा था। उसने तो बेचैन कर देने वाली खबरे सुनने को मिली। कुछ सुखे इलाकों में हैडपाइप लगे, मगर उसमें से लाल रंग का पानी गिरता है, जो धोने—नहाने तक के लिए बेकार है।”¹¹ वर्तमान समय पानी दूषित हो चुका है जो मानव के लिए बहुत हानिकारक है स्वच्छ पानी की मात्रा अब समाप्त हो गई है। यह बहुत बड़ी त्रासदी का जन्म है।

“एक तरफ सरकार वृक्षारोपण की बात करती है तो दूसरी तरफ जंगलों की अनैतिक रूप से कटाई की ओर से आंखे बंद किए हैं। गन्ने और धान में पानी की आवश्यकता अधिक पड़ती है मगर कम पानी वाली फसलों के किसान भी पानी—पानी की दुहाई दे रहे हैं। ये सारे किसान खुशहाल हैं। और अब चुटकी बजाते ही धनवान बन जाना चाहते हैं। डालते हैं फर्टिलाइजर बिना सोचे—समझे। इशतहार दिखा—दिखाकर इस तरह का बलात्कार करने की जो प्रेरणा हम किसानों को दे रहे हैं वह भूमि के लिए बहुत हानिकारक है।”¹²

“इस सबकी जड़ बाजार है। बाप बड़ा न भैया सबसे बड़ा रूपैया”¹³ आज बाजारवाद की चाकचौंध में किसान अन्धा हो रहा है। फर्टिलाइजर खाद्य से जो पैदावार होती है। वह अनेक रोगों की देन है। साथ ही यह खाद्य भूमि उर्वरता को धीरे—धीरे नष्ट हो रही है। उसे बंजर बना रहा है। भूमि में जल की मात्रा भी घटती जा रही है।

“आज विश्व में आँकड़ों द्वारा ज्ञात होता है कि लगभग एक अरब से ज्यादा लोगों को साफ पानी पीने के लिए उपलब्ध नहीं है। दो अरब लोगों को नहाने—धाने के लिए पानी नहीं मिल पाता, जिससे लोग अनेक तरह के रोगों का शिकार हो रहे हैं। मृत्यु—दर—दिन प्रतिदिन बढ़ती चली जा रही है। भारत में गांव, कस्बों, शहरों में लोग कुआं, तालाबों और नदियों से पानी लेते हैं जो अधिकतर गंदा और कीटाणु युक्त होता है। उसमें प्राकृतिक कम से पाए जाने वाले संख्या की मिलावट होती है। सारे विश्व में 261 प्रमुख नदियाँ एक से अधिक देशों से होकर गुजरती हैं। दुनिया के कुल नदी जल प्रवाह का 80 प्रतिशत इन्हीं में है और जिन देशों से होकर ये गुजरती हैं उनमें संसार की 40 प्रतिशत जनसंख्या रहती है। पानी के कारण सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक तनाव पनपते हैं; जैसे भारत और पाकिस्तान, भारत और बंगलादेश, भारत और नेपाल सीरिया और तुर्की के बीच और स्वयं भारत कर्नाटक और तमिलनाडु के बीच कावेरी नदी को लेकर तनाव की स्थिति पनप चुकी है।”¹⁴ नासिरा शर्मा जी ने विश्व के इन आँकड़ों से जल की समस्या का वैश्विक स्थिति को प्रस्तुत किया है और मानव को जल की इस त्रासदी के प्रति सचेत भी किया है।

“जोहान्सवर्ग शिखर सम्मेलन में इस मुद्दे पर हुई बातचीत में यह तय हुआ था कि सन् 2015 तक अधिक से अधिक लोगों को स्वच्छ जल पहुंचाया जाए। उसी वर्ष जापान में आयोजित विश्व जल मंच में यह सोचा गया कि इस पर आने वाला खर्च 80 अरब डालर से बढ़ाकर 180 अरब डालर कर देना चाहिए। मगर प्रश्न है कि इतना पैसा आएगा कहाँ से? क्या यह केवल फाइलों में बंद आंकड़े हैं जो केवल सम्मेलनों में चर्चा तक सीमित रहेंगे।”¹⁵ जल संकट पर गोष्ठी और सम्मेलन बहुत हो रहे हैं और योजनाएँ भी बहुत बनाई जा रही हैं पर लागू नहीं हो पाती हैं। क्योंकि इन योजनाओं पर पैसा खर्च नहीं किया जाता है ज्यादातर सभी देश परमाणु बम जैसी वस्तुओं पर धन खर्च करते हैं। जल के संकट के लिए कोई भी धन की घोषणा नहीं करता। जबकि मानव को स्वच्छ जल की सबसे पहले और ज्यादा आवश्यकता है। पानी एक ‘मानवीय आवश्यकता है’ न कि ‘मानवीय अधिकार भर है।’ पीने वाले पानी में अब टी०डी०एस० की संख्या 2000 से 5000 तक हो गई, जो मनुष्य के शरीर के लिए विष का काम कर रहा है।

“राजस्थान के कुल सताईस जिलों के चार हजार आठ सौ देहातों में से चार हजार दो सौ गांवों के लगभग तीन करोड़ से ज्यादा लोग सूखे की चपेट में आ चुके हैं। राज्य के बत्तीस जिलों में से चौबीस का भू—जल स्तर गिरा है। नागौर जिले की गिरावट 6.16 मीटर है। आप सोच सकते हैं हम किधर जा रहे हैं।”¹⁶ राजस्थान की जल स्थिति का चित्रण किया है जो एक भयंकर समस्या है। जल स्तर दिन प्रतिदिन गिरता जा रहा है।

“बूढ़ी के झुर्रियों से भरे-चेहरे को देखा। गंदे पानी को पीने से बाड़मेर और नोखा तहसील में यह बीमारी चल पड़ी थी। पैरों से पतले-पतले कंचुएनुया लम्बे-लम्बे कीड़े बाहर निकलते थे जो पैरों मांसपेशियों को शिथिल बना देते थे।”¹⁷ दूषित जल के कारण ऐसे-ऐसे खतरनाक रोगों से ग्रस्त हो रहे हैं। जिनके कारण मानव शरीर जवाब दे रहा है कितना दुःख और कष्ट बढ़ता जा रहा है मानव के जीवन में जल के कारण से।

“लोगों को यदि हम बताएँ भी जाकर कि यह पानी तुम्हारे अन्दर के सारे अंगों में फंगस फैला देगा, बाहर खाल पर दाने और जख्म पैदा कर देगा, तुम साठ वर्ष जीने की जगह सिर्फ बीस वर्ष जी पाओगे.....यह सब बताकर एक भय देकर भी क्या मिलेगा, जब साफ पानी की कोई व्यवस्था उनके लिए दूर-दूर तक नहीं? क्या हमारा ज्ञान देना, सूचना उन तक पहुंचना ही बीमारियों से मुक्ति का उपाय है जो नए पैदा बच्चों में जन्मजात रोग की तरह पनप रही है। एच०आई०वी० के आंतक के साथ फंड जलप्राप्त की तरह एनजोउनोज की झोली में गिर रहे हैं, मगर इस खामोश तबाही की तरफ किसी भी देश या संस्था का ध्यान क्यों नहीं जाता है कि एक आम आदमी को यह अधिकार मिलना चाहिए कि वह साफ पानी का सेवन कर सके।”¹⁸ कैंसर विशेषज्ञ डॉ० कुलकर्णी ने कहा।

बहुत दुःख की बात है कि आज मानव को स्वच्छ जल नहीं मिल पा रहा है। इसे ज्यादा त्रस्त जीवन क्या होगा क्योंकि मुनष्य को स्वच्छ पानी की आवश्यकता अन्य सुविधाओं से पहले है। पानी एक भयंकर समस्या के रूप में मानव के सामने मुंह फैलाये खड़ी है। जिसकी ओर सरकार का कोई खास ध्यान अभी तक नहीं है।”

“घर-घर पानी की कमी से इंसानी जिन्दगी दुश्वार हो चली थी। अब पानी लोगों का कार्यक्रम तय करने लगा है। पानी है तो नहाना हो सकता है, पानी नहीं है तो कपड़े नहीं धुल सकते हैं। पानी है तो पौधे सींचे जाएंगे, पानी नहीं है तो रसोई भी जूटी पड़ी रहेगी। सारा खेल पानी का है। जब में पैसा है, मगर पानी मौजूद नहीं। कुआं है तो डोल नहीं कि डालकर पानी निकाल, चूल्हू, लगा, गटर-गटर कर प्यास बुझा ले, क्योंकि वहां तो कुड़ा भरा है। बावली काई से भरी, सड़ेपानी से गंधा रही है। नदियां मटमैली हो मैल होकर बह रही हैं; क्या साफ पानी सपना बन जाएगा जो कभी कल-कल कर बहता था? हलक से उतर अंतड़ियों में पहुंच एक संतोष-भरी ठंड बदन में बिखेरता था। वैसा पानी पीने के लिए गंगोत्री की यात्रा करनी पड़ेगी।”¹⁹

वर्तमान समय में लोगों के पास पैसा है पर स्वच्छ पानी नहीं है। नदियों को भी मानव ने दूषित कर दिया है। भविष्य में लोगों के लिए स्वच्छ पानी कहानी एक बीते हुये सपने की तरह हो जायेगी।

“.....सावन में कजरी और वर्षा की काली रात में कोई बिरह न गाएगा, लेखकों-कवियों की रचनाओं से रस नहीं टपकेगा। नई पीढ़ी पहली बारिश की झंडी से उठती सोंधी-सोंधी गंध से वंचित रह जाएगी।”²⁰ वर्तमान समय बारिश का अनुपात दिन-पर-दिन कम होता जा रहा है। जब सावन के महीने में बारिश नहीं होगी तो कौन कवि सावन की बारिश में विरहिणी की तड़प का वर्णन कर पायेगा। और ना ही अब बारिश की सोधी खुशबू मिल पाएगी।

नासिरा जी ने उपन्यास में जल की स्थिति को सधुराने के लिए प्राचीन समय की आहर-पाइन सिंचाई प्रणाली का भी उल्लेख किया है। इस के साथ स्लाइडों द्वारा आहर-पाइन के पुराने चित्रों एवं नए रेखाचित्रों की भी एक श्रृंखला थी, जो विवरण के साथ जा रही थी कि इस इलाके में ढलान चूंकि प्रति किलोमीटर एक मीटर पड़ती है, सो उसी बनावट को हमारे पूर्वजों ने इस्तेमाल कर एक या दो मीटर ऊँचे बांधों के जरिये पोखर बनाए जिन्हें स्थानीय भाषा में आहर कहते हैं। बड़े बान्ध के दोनों छोर से दो छोटे बांध भी निकाले जाते थे जो ऊँचाई की तरफ होते थे।

इस तरह से आहर जल को तीन तरफ से घेरने की व्यवस्था बनाई जाती थी। तालाबों की तरह इनकी तलहटों की खुदाई बनाई जाती थी। तालाबों की तरह इनकी तलहटों की खुदाई सम्भव नहीं थी। यह पोखर कभी-कभी पाइनों और स्रोतों के नीचे इस विचार से भी घेरे जाते थे, ताकि इनमें लगातार पानी इन दोना स्रोतों से भी आकर भरा रहे। यह कितने कारामद होते थे, इसका अन्दाजा आप इस बात से लगा सकते हैं कि एक लम्बे आहर से

बड़े आराम से 400 हेक्टेयर से कुछ अधिक जमीन की सिंचाई हो जाती थी।²¹

“इसी तरह पहाड़ी नदियों से खेतों तक पानी पहुंचाने के लिए पाइनों का प्रयोग किया जाता था। यह पाइन 20–30 किलोमीटर तक लम्बे होते थे और प्रशाखों में बंटकर सौ से भी ज्यादा गांवों के खेतों की सिंचाई करते थे। दक्षिण की नदियाँ गर्मी में सूखी और बरसात में उपनती थीं सो उनका बढ़ा पानी बाढ़ की जगह ढाल से बह पाइनों एवं आहरों में भर अपनी राह बना लेता था। आज हम विकल्पों की ओर भागते हैं और अपनी व्यवस्था से मुंह मोड़ लेते हैं। आहर-पाइन प्रणाली जातक युग से ही हमारी सिंचाई-व्यवस्था में शामिल रही है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में “आहरोदक-सेतु” से सिंचाई का जिक्र है।²² नासिरा जी का आहर-पाइन का उल्लेख करने का उद्देश्य यही है कि वर्तमान समय में लोगों को अपनी प्राचीन व्यवस्था का प्रयोग करके जल को संचित करना चाहिए। जिससे हम जल की समस्याओं से मुक्त हो सकते हैं।

“हमको अन्धाधुन्ध तरक्की की दौड़ से बचना होगा। जहां जरूरी हो, बान्ध बने, मगर बांध इसलिए न बनाया जाए कि कुछ लोगों को अपने तीन मंजिले घर खड़े करने हैं। देश के सारे बान्ध अभी तक सुखाड़ और बाढ़ के नाम पर बने हैं, मगर एक बान्ध ने भी अपना लक्ष्य पूरा नहीं किया है। इसलिए हमें व्यावहारिक हो, अपने जल और जमीन को समझना पड़ेगा। किसी की नकल से हमारी मुक्ति नहीं हो सकती। हमारी नदियां चाहे गंगा हो या ब्रह्मपुत्र भराव से बाढ़ में उबर जाती हैं, मगर जहां समाज और उसके लोग सचेत थे, वहां सूखी नदियां फिर से उबर जाती हैं, ‘रूपारेल’ और ‘अरवरी’ नामक नदियां इसका अपवाद हैं। इन नदियों का बेसिन सुखाड़-बाटमुक्त बन गया। यहां 1995–96 में अधिक वर्षा के बावजूद बाढ़ नहीं आई और 1998 में बारिश की कमी में सुखाड़ नहीं हुआ। यह सामाजिक चेतना थी। जलाशय को लेकर सचेत थी कि ये नदियाँ हैं तो हम सुखी हैं ये नदियां साफ-सुथरी बहेंगी तो हम भी स्वस्थ व निरोग रहेंगे।²³ नासिरा जी मानव को जल की वर्तमान स्थिति के लिए जाग्रत करना चाहती हैं। जिससे मानव जल के प्राकृतिक साधनों की देखभाल सही ढंग से कर नदियों को दूषित होने से बचाने का प्रयास करे।

“हमारा देश धार्मिक निष्ठा रखने वालों का देश है, तो भी गंगा का यह हाल है। कहते हैं, पांच हजार साल बाद गंगा के अन्दर पानी कम, बालू ज्यादा है। जहां गंगा में प्रवाह है, वहां भी सिल्ट और मिट्टी जमा हो गई है यह घोर चिन्ता का विषय है।²⁴

नासिरा जी ने गंगा की स्थिति का चित्रण भी प्रस्तुत किया है जो बहुत दयनीय और सोचनीय है। गंगा का जल अब पवित्र होने की जगह अपवित्र होता जा रहा है। जो एक पवित्र नदी है। यह मानव के कार्यों का परिणाम है।

“योजना परियोजना के बीच हम स्वास्थ्य को नाकर देते हैं। यह सोचकर कि जल-जमीन-जानवर से शरीर का क्या सम्बन्ध है जल और शरीर का सम्बन्ध इतना गहरा है, जिसकी आप कल्पना नहीं कर सकते हैं। विश्व बैंक के एक आकलन के अनुसार, भारत में जल-प्रदूषण से स्वास्थ्य पर आने वाला खर्च देश की सकल घरेलू उत्पाद का तीन प्रतिशत है।²⁵

इस प्रकार ‘कुड़याजान’ उपन्यास में वर्तमान समय की जल की स्थिति का वास्तविक चित्र हमारे समक्ष रखा है। नासिरा शर्मा ने साहित्य के माध्यम से जल की वर्तमान व भविष्य में होने वाले त्रस्त जीवन का चित्रण किया है। ‘कुड़याजान’ उपन्यास की कथा को ‘जल’ की कथा की त्रासदी के साथ जोड़ा है। ‘जल’ को केन्द्र में रख कर लिखा है जो अपने आप में एक अदभुत प्रयास है।

सन्दर्भ सूची

1. नासिरा शर्मा – ‘कुड़याजान’ की भूमिका

2. स० रामचन्द्र वर्मा — मानक हिन्दी कोश, पृ० 588
3. Plato - Republic, P. 156
4. Aristable - Poetics. P. 19
5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल — चिन्तामणि (भाग-1) पृ०-22
6. नासिरा शर्मा — 'कुड़यॉजान' पृ०-11
7. वही, पृ०-13
8. वही, पृ०-57
9. वही, पृ०-84
10. वही, पृ०-84
11. नासिरा शर्मा — 'कुड़यॉजान' पृ०-84
12. वही, पृ०-85
13. वही, पृ०-85
14. वही, पृ०-88
15. नासिरा शर्मा — 'कुड़यॉजान' पृ०-89
16. वही, पृ०-104
17. वही, पृ०-118
18. वही, पृ०-148
19. वही, पृ०-
20. वही, पृ०-
21. नासिरा शर्मा — 'कुड़यॉजान' पृ०-385
22. वही, पृ०-385
23. वही, पृ०-393
24. नासिरा शर्मा — 'कुड़यॉजान' पृ०-404
25. वही, पृ०-404।



रवीन्द्र कालिया की 'जरा सी रोशनी'

डॉ० कमलेश सिंह

7/5, ई०डब्ल्यू०एस० कालोनी, अल्लापुर, इलाहाबाद-211008

रवीन्द्र कालिया की कहानी अपने समय तथा समाज की हैं। साठ के बाद आदर्शों से मोहभंग का समय था। सम्बन्धों की बारहखड़ी बदल रही थी, तब से लेकर वर्तमान तक जब स्त्री, दलित और साम्प्रदायिकता के प्रश्न चर्चा में हैं। रवीन्द्र कालिया की कहानियाँ समय की परिवर्तनशीलता को पकड़ने का प्रयास करती हैं। रवीन्द्र कालिया साठोत्तरी कहानी के उन लेखकों में से हैं, जिन्होंने उस समय के कहानी लेखन को भाषा, शिल्प और संवेदना के स्तर पर नवीनता दी थी। रवीन्द्र कालिया की कालजयी कहानी 'नौ साल की छोटी पत्नी' हिन्दी नयी कहानी का एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुई। दूधनाथ सिंह, काशीनाथ सिंह तथा ज्ञानरंजन के साथ रवीन्द्र कालिया की कथाकार चतुष्टम ने हिन्दी कहानी के कथ्य एवं शिल्प में क्रान्ति ला दी थी। इस चतुष्टम में अद्भुत कथारस (किस्सागो) और भाषा के खिलंदड़ापन के साथ रवीन्द्र कालिया का विशिष्ट स्थान था। आज, वर्तमान में जब हिन्दी कहानी अपने विकसित स्वरूप में पहुँच चुकी है, तो रवीन्द्र कालिया जी ने अपने कहानी संग्रह 'जरा सी रोशनी' के माध्यम से इसे और नया रंग-रूप देने का प्रयास किया है।

रवीन्द्र कालिया अपनी कहानी की कथावस्तु मध्यवर्गीय या निम्न मध्यवर्गीय लोगों की जिन्दगी से उठाते हैं। उनकी कहानी में कथातत्व का विस्तार कम ही दिखता है। घटनायें जीवन की संवेदनायें और विसंगतियों का वर्णन तो करती हैं परन्तु वे बहुत नाटकीय मोड़ कभी नहीं लेती हैं। जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं के माध्यम से जीवन की विसंगतियों की वस्तुनिष्ठ पड़ताल रवीन्द्र कालिया के लेखन की प्रमुख विशेषता है। 'जरा सी रोशनी' संग्रह की कहानियाँ रवीन्द्र कालिया की प्रतिनिधि कहानियाँ कही जा सकती हैं। परन्तु ये कहानियाँ रवीन्द्र कालिया के लेखन का दोहराव नहीं हैं। ये कहानियाँ अपने समकालीन प्रश्नों से टकराती हैं और कई नये प्रश्न भी उठाती हैं। संग्रह की कहानियाँ 'रूप की रानी चोरों का राजा' और 'एक होम्योपैथिक कहानी' पढ़कर ऐसा लगता है कि रवीन्द्र कालिया कहानी के वर्तमान स्वरूप से कुछ असंतुष्ट हैं। भाषा और शिल्प में वे कुछ प्रयोग करते नजर आते हैं, जिससे कहानियों की पठनीयता में वृद्धि होती है।

संग्रह की पहली कहानी 'रूप की रानी चोरों का राजा' पढ़ते समय एक लम्बे व्यंग्य का एहसास देती है। परन्तु समाप्त होने पर एहसास होता है कहानी व्यवस्था के अमानवीय चेहरे को बहुत सरलता से उजागर करती है। यह अमानवीयता स्त्री के प्रति भी है और समाज के कमजोर तबके के प्रति भी। समाज का पढ़ा लिखा तबका भी स्त्री को किस दृष्टिकोण से देखता है यह संध्या को देखकर पुलिस अधिकारियों के मुस्कराने और एक दूसरे से खुसर-फुसर वाले संवादों में बहुत अच्छे से स्पष्ट है। नौकरानी शांति से थाने में पूछताछ की शैली से पता चलता है कि सत्ता का रूप आज भी कितना पितृसत्तात्मक और गरीब विरोधी है। भाषा व्यंग्यात्मक होने के कारण इसे हल्की कहानी या व्यंग्य नहीं कहा जा सकता। यह मानवीय जीवन की विदूषताओं और विसंगतियों की कहानी है। विमर्शों के खांचे में बंटे इस दौर में सभी विमर्शों को साथ लेकर चलने की कोशिश और उसे पठनीय बनाये रखना एक चुनौती है। कालिया जी इस संग्रह में इस चुनौती को स्वीकार करते नजर आते हैं। 'दादा दुबे' वर्तमान राजनीतिक-सामाजिक परिदृश्य की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी कहानी है जिसमें भारतीय राजनीति के कुत्सित चेहरे को उघाड़ा गया है। यह कहानी 'रूप की रानी और चोरों का राजा' का विस्तार लगती है। आज के नेता का चित्रण तो यथार्थ है परन्तु यह सतह पर ही दिखता है। गहराई से उन कारणों की पड़ताल नहीं की गयी। 'बुढ़वा मंगल'

संग्रह की अत्यंत सशक्त कहानियों में है। यह कहानी मात्र एक बूढ़े की कहानी नहीं है बल्कि उसके माध्यम से एक पूरी पीढ़ी की पड़ताल है। इसे मात्र वृद्धावस्था में उपेक्षा की कहानी समझना इसके साथ अन्याय करना होगा। यह स्वाधीनता-पूर्व की पीढ़ी की इच्छा-आकांक्षाओं और कुंठा की कहानी है। 'बुढ़वा मंगल' मंगल के माध्यम से लेखक उसी पीढ़ी के त्याग, बलिदान और आदर्शों की हकीकत भी सामने रखता है। 'बुढ़वा मंगल' एक पीढ़ी का यथार्थ दस्तावेज है तो 'जरा सी रोशनी' जो संग्रह की शीर्षक कहानी है, एक अलग संदर्भ में इस पुरानी पीढ़ी के छद्म को तोड़ती है। हालांकि कहानी की मूल समस्या साम्प्रदायिकता है। परन्तु सेक्स और मंदिर निर्माण ही चर्चा करने वाले ये मध्यम वर्गीय बूढ़े उन्हीं मूल्यों और संस्कारों के वाहक हैं जो साम्प्रदायिक शक्तियों की ऊर्जा के स्रोत हैं। इसी संदर्भ की एक कहानी है 'गौरया' जिसे पढ़कर महादेवी के पशु-पक्षियों वाले स्मरण याद आते हैं। 'गौरया' के मानवीकरण के माध्यम से साम्प्रदायिक चालों का पर्दाफाश करती है। कहानी पढ़कर रेलवे स्टेशनों पर लिखी पंक्तियां बरबस याद आ जाती हैं—

“परिन्दों में क्यों नहीं होती फिरका परस्ती,
कभी मन्दिर पे जा बैठे, कभी मस्जिद पे जा बैठे।”

‘सुन्दरी’ एक ऐसी कहानी है जो दिखाती है कि गरीब आदमी को भिन्न-भिन्न मोर्चों पर संघर्ष करना पड़ता है। यह कहानी गरीबी की समस्या से समाज की असंवेदनशीलता से भी परिचय कराती है। आधुनिकता और तकनीकी के इस युग में पारंपारिक पेशों से जुड़े लोग अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं। दुख की बात यह है कि आज हम इन्हें नैतिक समर्थन देने का भी साहस नहीं रखते। 'बोगेनविलिया' में एक ऐसा पौधा जो अस्वाभाविक छेड़छाड़ और अतिरिक्त देखरेख में सूख जाता है, एक प्रतीक है जिसे विभिन्न संदर्भों में फिट बिठाया जा सकता है। 'मुहब्बत' किशोरावस्था में लिखे गये प्रेमिका का पत्र और तीस साल बाद उससे मुलाकात का वर्णन है। यह सिर्फ पत्रों की संवेदनाओं की कहानी नहीं लगती बल्कि किशोरावस्था के बचकाने प्रेम से सम्बन्धों के परिपक्व धरातल पर आ खड़े होने की कहानी है। परन्तु इसमें रुमानीपन अधिक और यथार्थ कम नजर आती है। 'एक होम्योपैथिक कहानी' संग्रह की महत्वपूर्ण कहानी है। यह कहानी मौजूदा दौर में प्रेम की त्रासदी की कहानी है कहानी के शिल्प में भी नवीनता है। इसमें प्राकृतिक और स्वाभाविक आवेगों को परिस्थितिवश (जो स्वयं द्वारा निर्मित की हुई है) उपेक्षित रखा जाता है जो कुंठा और बच्चों में रूपान्तरित हो जाती है। मरीज और डाक्टर के माध्यम से आज के दौर के प्रेम के समक्ष खड़ी समस्यायें दिखायी गयी हैं।

इस कहानी संग्रह की अधिकांश रचनायें मानव जीवन में बढ़ते उपभोक्तावाद और धर्म के प्रभाव, जो 'अमानवीयता' को बढ़ावा दे रहा है, की कहानियां हैं। सत्ता इन प्रवृत्तियों के हाथ का उपकरण बनती जा रही है। पूंजीवादी व्यक्तिवाद जन विरोधी लालसाओं में बदल गया है। ये ताकतें धार्मिक ताकतों से गठजोड़ करती प्रतीत होती हैं। पूंजी, सत्ता और धर्म का घालमेल समय को और संकटपूर्ण बना रहा है। रवीन्द्र कालिया कहानियां इस समय की पहचान रही और समय की चुनौतियों को भी। चुहल भरी भाषा शैली में यह कहानियां एक करुण यथार्थ से परिचित कराती हैं।



भारतीय भाषाओं की लोकोक्तियों में जातीय द्वेष-भाव

प्रा. डॉ. सतीश यादव

अध्यक्ष, हिंदी विभाग

शिवाजी महाविद्यालय, रेणापुर, ता. रेणापुर जि. लातूर (महाराष्ट्र)

भूमिका :

इतिहास गवाह है, भारत-वर्ष हमेशा गुलामी का शिकार हुआ है। ईसा की सातवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं सदी का आधा शतक इसी गुलामी की कथा कहता है। शक, यवन, फ्रेंच, गोरी वंश के शहंशाह, सूरी वंश के सम्राटों के अक्रान्तकारी आक्रमणों से यह देश आक्रान्त रहा है। मध्यकाल में मुगलों का साम्राज्य रहा। अराजकता, अविश्वास, रजवाड़ों का अंधाधुंध कारोबार और आपसी वैमनस्य तथा अनिश्चय ने इस देश को राजनैतिक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से भीतर से खोखला बनाया। मुगलों की सल्तनत खत्म होते-होते अंग्रेजों का आगमन हुआ। साढ़े तीन सौ वर्ष अंग्रेजों की हुकूमत बनी रही। विदेशियों के आक्रमण के मूल में, हमारी तमाम हारों के मूल में जाति ही रही है। क्योंकि, वेदों, उपनिषदों, ऋचाओं, संहिताओं और पुराणों ने जाति-व्यवस्था को स्थापित करने में महती भूमिका निभायी। यहाँ के जनमानस पर इन तमाम धार्मिक ग्रन्थों का बड़ा गहरा प्रभाव रहा। इनकी समीक्षा करना पाप समझा जाता था। परिमाणतः सर्वप्रथम देश वर्णों में वंश, फिर व्यवसाय के आधार पर जातियाँ निर्मित हुईं। देश जातियों में बंटा और एकता की बजाय विषमता में जकड़ता गया है जिसका लाभ विदेशी ताकतों और आजादी के बाद देशी देह से देशी मन के विदेशी नेताओं ने खूब लिया।

ऐसा नहीं कि जाति और वर्ण व्यवस्था को उखाड़ने हेतु प्रयास नहीं हुए। सबसे पहले तथा गत गौतम बुद्ध ने वर्णव्यवस्था को चुनौती दी। मनुष्य की दुर्दशा का कारण जाति और वर्ण को माना। दुनिया को जाति और वर्ण रहित बनाने का संकल्प और सपना देखते हुए बहुजन हिताय बहुजन सुखाय का मूलमंत्र दिया। बारहवीं सदी में महात्मा बसवअण्णा ने जाति-पाँति रहित समाज की स्थापना के लिए अंतर्जातीय विवाह करवाकर क्रान्तिकारी कदम उठाया। अनुभव मंसा के द्वारा विवेक और विचार को प्रधानता दी। मध्यकाल में संत नामदेव, संत कबीर, संत तुकाराम, संत रविदास, संत रहीम आदि ने जाति-व्यवस्था का प्रतिरोध किया। भारतीय मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु जाति को बताते हुए मानवता की सीख दी। चार्वाक दर्शन ने भी मनुष्य विरोधी जाति-व्यवस्था का प्रतिरोध किया। बीसवीं सदी में सबसे पहले म. फुले ने मनुष्य जाति से नहीं, गुणों से श्रेष्ठ है, यह बताया। कर्मश्रेष्ठता को महत्त्व देते हुए शोषण रहित जातिरहित समाज का सपना देखा। उसके लिए उन्होंने यहाँ की पुरोहितशाही, सेठ-साहुकार और सामन्तों से लोहा लिया। जाति व्यवस्था को तोड़कर ही मानव मुक्त हो सकता है, ऐसी उनकी धारणा थी। दूसरा पर्व छत्रपति शाहुजी महाराज का रहा है। जिन्होंने जाति व्यवस्था के उन्मूलन हेतु जात-पांत, जोड़ो सभा का, आंदोलनों का आयोजन किया। जाति व्यवस्था के द्वारा दबाये गये मनुष्य को आरक्षण की सुविधा उपलब्ध कराकर दबे, कुचले, जिनका दलन हुआ है, ऐसों को न्याय (सामाजिक न्याय) दिलाने हेतु ठोस भूमिका निभायी। ज्ञानतपस्वी, भारतरत्न डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर ने केवल फुले, शाहू की सामाजिक न्याय की भूमिका को आगे बढ़ाया बल्कि जाति उन्मूलन हेतु ठोस कदम उठाये। जातिमुक्त भारत उनका सपना था समता, स्वतंत्रता, बंधुता और सामाजिक न्याय के प्रति उनके मन में घोर निष्ठा थी। डॉ. अंबेडकर जीवनभर जाति-व्यवस्था को तोड़ने हेतु प्रयत्न करते रहे। किन्तु भारतीय मनुष्य सैद्धांतिक तौर पर जाति को नकारता है पर व्यावहारिक स्तर पर शत प्रतिशत जातिवादी है, इसे झुठलाना संभव नहीं है।

राष्ट्र में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक परिवर्तन आते रहते हैं। परंतु सत्ताधीशों की भाषा में परिवर्तन नहीं आया। समाज को पंगु बनाकर, संस्कृति और सभ्यता के नाम पर इस देश में विशिष्ट जातियों को गालियाँ देना कहाँ तक उचित है। सत्ताधारियों की भाषा में यही हुआ। वैदिक काल में संस्कृत, मध्यकाल अर्थात् मुगल काल में अरबी, फारसी और ब्रिटिश हुकूमत में अंग्रेजों ने शासन किया। शासक की एक भाषा और शासित की दूसरी। हमारे देश में संस्कृत, अरबी, फारसी और अंग्रेजी कभी जनसाधारण की भाषा नहीं रही। किन्तु इन भाषाओं के माध्यम से शासन चलता रहा, इसे नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। वस्तुतः आज भी संविधान में प्रावधान होने के बावजूद हिंदी नहीं अंग्रेजी ही शासन की भाषा है। जाति और वर्णव्यवस्था में बंटे हुए तमाम की भाषा में विद्वेष का भाव नजर आना स्वाभाविक ही है। क्योंकि, उच्चवर्णियों ने हमेशा अपना वर्चस्व बनाये रखने के लिए एक ऐसी भाषा गढ़ी, ऐसी शब्दावली गड़ी, ऐसी वाक्य और पदरचना निर्मित की, जो बहुजन विरोधी थी। हमारे तमाम धर्म ग्रंथ (कुछ सम्मान अपवाद छोड़कर) जाति और वर्णव्यवस्था को पुख्ता बनाने में लगे हुए हैं। समूचे भारतवर्ष में प्रचलित लोक साहित्य में, जो वस्तुतः अधिकांश मात्रा में मौखिक है, ये जातीय द्वेष का भाव लक्षित होता है, विशेषतः लोकोक्तियों में।

लोकोक्तियाँ हैं क्या ?

वस्तुतः मौखिक लोक साहित्य में लोकोक्ति का विशेष महत्व है। क्योंकि लोकोक्ति ग्रामीण जनता का नीतिशास्त्र है। लोकोक्ति लोक साहित्य में अपनी प्रकृति प्रयोग और परंपरा में भिन्न अस्तित्व रखती है। लोकोक्ति में अनुभव सत्य का उद्घाटन है, गागर में सागर भरने की क्षमता उसमें है। लोकोक्ति में केवल अनुभव ही नहीं होते बल्कि बुद्धि का विलास भी होता है, जिसमें सांसारिक व्यवहारपटुता, सामान्य बुद्धि का साक्ष्य निदर्शन मिलना है। वस्तुतः लोकोक्ति केवल कहावत नहीं है, प्रत्येक प्रकार की उक्ति लोकोक्ति है। अर्थात् लोकोक्ति एक अर्थ में मानवी ज्ञान के धनीभूत रत्न है। सवाल यही है कि लोकसमूह इन लोकोक्तियों को किस उद्देश्य से उपयोग में लाया है। उसके आशय, अभिव्यक्तिता सौंदर्य और दृष्टिकोण के किस आयाम से उसका प्रयोग करता है।

लोकोक्ति के दो प्रकार होते हैं – पहेली, कहावतें। पहेली भी लोकोक्ति है और कहावतें थीं। पहेली में बुद्धि चातुर्य को महत्व है। साथ ही जो अबोध, अगोचर एवं छिपा हुआ है, उसे उघाड़ने का प्रयास पहेली में होता है। लोकमानस इसके द्वारा अर्थगौरव की रक्षा करता है और मनोरंजन भी प्राप्त करता है। कहावत में सूत्र प्रणाली का अवलंब होना है, भावों की, मार्मिकता को महत्व दिया जाता है। अर्थात् पहेली और कहावतों से भाषा समृद्ध होती है। मानव समाज अपने अनुकूल सत्य को और तमाम पूर्वाग्रहों को व्यक्त करने हेतु इनका प्रयोग करता रहा है। पर यह बहुत बड़ी वास्तविकता है कि भारतीय भाषाओं की लोकोक्तियों में जातीय द्वेष—भाव बड़ी मात्रा में लक्षित होता है। इसे भाषाओं में, बोलियों में, प्रचलित लोकोक्तियों के आधार पर देखा जा सकता है। विशेषतः निम्न वर्ग की जातियों को अत्यंत पूर्वग्रह दृष्टि से आंका गया है।

भारतवर्ष अन्तर्विरोधों का देश है। यहाँ उच्चवर्णियों में पाखंड है, और निम्नवर्णियों के भौंडेपन को मजाक का विषय बनाया जाता रहा है। समाज का बंटवारा हमने अनेक रूपों में किया। नाम रखने का विधान, त्यौहारों का बंटवारा, ऋतुओं का बंटवारा, हाथ की अंगुलियों का बंटवारा रंगों का द्वारारा, पशुओं का बंटवारा, महापुरुषों का बंटवारा और यहाँ तक ही नहीं देवी—देवताओं का भी हमने बंटवारा किया है। इस बंटवारे में हमने जातिगत द्वेष भाव को बड़े पैमाने पर बढ़ावा दिया। जातियों में सामंजस्य, सद्भाव और मैत्री बढ़ने के बजाय विद्वेष और अराजकता का माहौल बढ़ता गया। देश में रह रही शिल्पी जातियाँ, जिनमें तेली, धोबी, नाई, लुहार, बढ़ई, जुनार, कुम्हार और कृषक वर्ग में जाट, गुज्जर, यादव, कुर्मी, कोयरी और भूमिहार जातियाँ, अछूत यानि मजदूर समाज की निम्न जातियाँ जिसमें, बालमिकि, डोम, चमार, मुसहर आदि तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय वंश की जातियाँ, अछूत यानि मजदूर समाज की निम्न जातियाँ जिसमें, बाल्मीकि, डोम, चमार, मुसहर आदि तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय वंश की जातियों से संबंधित जितनी

भी लोकोक्तियाँ मिलती हैं, उनमें जातीय द्वेष अभिव्यक्त हुआ है। प्रत्येक जाति को केन्द्र में रखकर प्रचलित लोकोक्तियों का अध्ययन हो सकता है – प्रस्तुत शोध-निबंध में लोकोक्ति का एक प्रकार कहावतों को केन्द्र में रखकर अध्ययन किया गया है।

तेली : इस जाति का पुश्तैनी व्यवसाय तेल पेरना है। इनका एक मात्र साधन कोल्हू है जिससे वह तेल पेरता है। एक बैल कोल्हू में जोतता है। एक व्यक्ति निरंतर बैल को हांकने का काम करता है, उसे कोल्हू का बैल भी कहा जाता है। अर्थात् श्रम करने वाला कोल्हू का बैल और बेश्रम जीने वाला सम्मान का पात्र यही हमारी परंपरा है। तेली तिल से तेल निकलता था, शायद इसी वजह से उसका नाम तेली पड़ा।

हमारे यहाँ मंगल-अमंगल, शुभ-अशुभ की अनेक रुढ़ियाँ प्रचलित हैं। सुबह-सुबह तेली का मुख देखना अमंगल माना जाता है। इसी भाव को व्यक्त करने वाली कहावत है, एक ही तेली कहा करि हैं।

सौ तेली बसे जिसके घर माही।

प्रस्तुत पंक्तियों में तेली का मुँह देखने से अपशकुन की सम्भावना का अनुमान किया गया है।

तीन के तीसी तेरह लगलि।

तब लेलेनियाँ पेरे लागलि।

अर्थात् तेली धन का लालची होता है, अतः जब मीन का तीस मिले वह तभी तेल पेरता है। तेली का बैल लेके, कुम्हारिन जाति होगा।

बिना किसी सम्बन्ध के रिश्ता बनाना।

कहाँ राजा भोज, कहाँ गंगू तेली।

इस कहावत में छोटे-बड़े का अन्तर स्पष्ट किया है। राजा भोज बड़े का तथा गंगू तेली छोटे का प्रतीक माना गया है। अर्थात् कुछ लोग नम्रतापूर्वक खुद को गंगू तेली कहते हैं, पर इसमें अनेक बार ढोंग ही होता है।

तू तेली का बैल लगा रह धानी में।

रात दिन एक ही काम में खटने के लिए। तेली रो तेल लै मकरु रो जीना ता अर्थात् तेली तेल को, मकस (नाम) रोये खली को।

कुल मिलाकर इन कहावतों में निम्न समझी जाने वाली जाति तेली को श्रमिक होने के बावजूद लालची, अपनी ही रो में चलने वाला तथा गंवार कहा गया है।

धोबी : धोबी का व्यवसाय ग्रामीण तथा नगरवासियों के मैले कपड़े धोना है। यह जाति रामायण काल से अकारण बदनाम की गई। धोबी पर कुछ कहावतें उपलब्ध हैं, जिनके माध्यम से इस जाति के बारे में द्वेष का भाव उजागर होता है।

अनकर कपड़ा पर रानी धोबिनिया।

धोबिन दूसरों के कपड़े पहनकर रानी बनकर फिरती है।

धोबी के हांते गंधो खाया (राजधानी)

नीच का धन नीच हो खाया है।

धोबी को गंधों, स्थायी की गाय।

राजा को नोकर, तीनू गत्ता से जाय। (राजधानी)

प्रस्तुत कहावत में धोबी का गधा, साधु की गाय, राजा का नौकर सिर्फ भारवाही हैं, ऐसा बनाया गया है।

चाकिल कट्टनि बट्ट सैसु एककाने गुर्रमु उडदु (तेलुगु)

इसमें कहा गया है कि ऐसा कोई भी कपड़ा नहीं रह जाता, जिसे धोबी ने नहीं पहना हो। अर्थात् धोबी चोटी

से धोने आये हुए कपड़े पहनता है, ऐसा बनाता गया है।

धोबी का छैला, एक उजला एक मैला।

धोबी का बेटा हमेशा छैला बना रहता है। कभी सफेद तो कभी काले कपड़े पहनता है।

धोबी सिर मुंडाई, टका बदलाई

अर्थात् मुख्य काम में ज्यादा खर्च करना और ऊपरी काम में ज्यादा। न धोबी के ओय परोहन न गरहा के औस किसान।

अर्थात् धोबी और गधे का साथ आदर्श—सा है। धोबी को गधे से अच्छी सवारी नहीं मिल सकती और नहीं गधे को धोबी जैसा मालिक इसमें धोबी को सीधे—सीधे गधे की बिरादरी में बिठाया गया है।

सगी साधु का सासु न कहें, धोबइन जीती पेयाँ लागौ।

अर्थात् बहु अपनी सास रका आदर नहीं करती और धोबिन को कह रही है। बहनजी पांव लागू।

इन तमाम कहावतों में धोबी को श्रमिक होते हुए भी, मेहनत की रोटी खाने के बावजूद जाति की वजह से कोसा गया है, दुत्कारा गया है और कम पर समझ गया है।

नाई : नाई को हजाम भी कहा जाता है। सामन्ती युग में नाई को बड़ा महत्त्व हुआ करता था। ब्राह्मण—पुरोहित के साथ सामन्तों, धनीमानी व्यक्तियों, जमींदारों की कन्याओं के लिए वर खोजने का काम किया करता था। परंतु इनका मुख्य व्यवसाय हजामत करना ही रहा है। किन्तु कहावतों में नाई की कौए पक्षी के साथ तुलना की गयी है। जैसे — कौए में अनुरता, चालाकी और धूर्तता होती है, वैसे ही नाई में होती है। जैसे —

चिरई में कउआ, मनई में नउवा।

मानक ललो मंगति, पक्षुललों काकि। (तेलुगु)

मामसा में नव्वा पक्षियों में कव्वा।

या दूसरा उदाहरण देखें —

नर में नाई आगली, पंखेरू में आग,

पाणी मांलो काछवों, तीनू दग्गाबाज।

मनुष्यों में नाई चालाक होता है, पक्षियों में कौवा और पानी में कछुआ।

निखणा नाई कुकरो मुण्डो। (हिमाचली)

बेरोजगारी नाई कुत्तों की हजामत करें।

नाई, दाई, बैर, कसाई,

इनको सूनक करे न जाई। चारों सदा अशुद्ध समझे जाते हैं, इनका सूतक कभी नहीं जाता।

नाई बामण कुत्तों, जात देख हू हू करतौ।

नाई, ब्राह्मण और कुत्ता अपनी जाति वालों देखकर हू—हू करते हैं। अर्थात् इन तीनों को (नाई, ब्राह्मण और कुत्ता) एक पंक्ति में खड़ा किया गया, है जो अश्लाश्य है।

नाई बात गमाई।

नाई चुगलखोर होता है, ऐसी समाज में धारणा प्रचलित है।

निकमों नाई, अपना जोगा मूंडो। (गढवाली) बेकार रहने वाला नाई अपनी ही मूंछों को काटता है।

रज्जे काम न आते, नाई, कुत्ते बाज।

नाई, कुत्ते और बाज जब छके हुए होने हैं, तो कुछ भी कार्य करते नहीं। अर्थात् निम्न जाति का समझकर

नाई को हमेशा दर्जा मिला। उसके गुणों को देखने के बजाए उसकी चालाकियों की ही चर्चा अधिक होती रही।

लुहार, सुनार और कुम्हार :

लुहार : लोहे से अनेक वस्तुओं की निर्मिति करता है। बड़ी मेहनतकश जाति है। यह तो किसानों का सहायक हुआ करता था। खेती में प्रयोग किये जाने वाले अनेक औजारों को नाने और पैना करने का काम करता था। किन्तु निम्न जाति की वजह से इसकी कहावतों में अनेक स्थानों पर पिटाई की गयी है।

कुछ लोहा खोटा, कुछ लोहार।
क्यू लो (लोहा) खोटो क्यू लुहार खोटो।
क्यू धो चिकणा क्यू कुहाडो (कुल्हाडी) टूट्ठी।
गदिये लुहार को कोण सो गांव ?

अर्थात् गाड़िया लोहार का गांव ही नहीं होता।

सुनार : सोने चांदी के गहने बनाता है। सुनार। सुनार हमेशा से संदेह से देखे गये हैं। सुनार सोना ऐंठता है, ऐसी समाज में धारण है।

अनारी के घोड़ा और सुनार का सोना नहीं बिक सकता।
सौ सुनार की एक लोहार कै।

सुनार की सौ चोट और लोहार की एक चोट बराबर होती है। सुनार की मानसिकता के बारे में, उसकी प्रकृति को लेकर अनेक कहावते हैं –

वस्तुतः निम्न कहावतें एक जैसी हैं।

सुनार अपनी माँ की नथ में से भी सोना चुराता है।
सुनार माँ रौ हांचल ही ना छोड़े।
सुनार तो अपनी माँ की भी न टलै।
सोनार अपना महमारियों के थल ना, होखसु।
सोनार अपना बापों के ना छोड़े।

एक और उल्लेखनीय कहावत है, जिसमें सुनार पर अविश्वास दिखाया गया है। जार जंवायी भण जो, रे बारी और सुनार। करे न हो सी आपण, कर देखौ व्यौहारा।

तेलुगु भाषा में सुनार को अत्यंत नीच ठहराते हुए एक उक्ति कही गई है, ये निम्न रूप में हैं – कंसालि कूकु काकुलु मुवु।

अर्थात् सुनार के खाने को कौए भी नहीं छूते। गढवाली बोली ये एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कहावत है, जिसमें कहा गया है –

सौ-साठ दीवान जब मरीन, तब चथक सुनार जलती जरमी।

मराठी की एक कहावत में सुनार की संगत खराब होती है, यह कहा गया है। जैसे – सोनार, शिंपी, कुलकर्णी, अप्पा, मांची संगन न को रे बाप्पा। एक दूसरी कहावत में सुनार को चोर ही समझा गया है। जैसे – बाघ न देखल बिलार, चोर न देखल सोनार।

उपर्युक्त कहावतों में सुनार की प्रकृति चोर न होते हुए भी चोर समझना, हमेशा संदेह से देखना, उसकी धनवृत्ति पर प्रहार करना, उसे हँसी मजाक का विषय बनाया गया है।

कुम्हार : मिट्टी के बरतन बनाकर रोजी –रोटी कमाने वाली, मेहनत की रोटी खाने वाली कुम्हार जाति है।

मिट्टी के बर्तन, घड़े करवे, दीपक, मटके, विभिन्न प्रकार के खिलौने बनाकर यह जाति अपना जीवननिर्वाह करती है। कठोर मेहनत करने के बाद भी गरीबी इनके घर-बाहर नहीं हुई। परंतु भारतीय समाज में प्रचलित जाति व्यवस्था ने हमेशा उसे निम्नतर समझा। एक प्रसिद्ध कहावत है –

आगे नाम ना पीछे जगाह, बसे अच्छा कुम्हार का गधा।

एक दूसरी कहावत महिला को संकेत कर बनाई गई है, जिसमें यह भाव है कि वह स्त्री अपने पति से कुछ नहीं पाती किन्तु अपना गुस्सा मान हम, पालतू जानवर पर निकालती है। कुम्हार की पार कुम्हार पर तो नहीं बसती पर गधे के कान उमेठती है।

एक कहावत में यह कहा गया कि निकृष्ट गांव में कुम्हार ही प्रधान होता है – उन गांव में कुम्हार ही महतों। अर्थात् अनेक कहावतों में जाति के आधार पर कुम्हारों की बुराई की गयी है।

कृषक वर्ग के अंतर्गत आने वाली जाट, गुज्जर, यादव, कुर्मी, कोयरी और भूमिहार जातियों के बारे भारतीय भाषाओं, बोलियों की लोकोक्तियों में जातीय द्वेष प्रभाव प्रखर रूप में अभिव्यक्ति हुआ है। लोकसाहित्य लोकनिर्मित है, किन्तु अभिजनों के द्वारा हमेशा निम्न जातियों को कनिष्ठतर समझा गया है, इसके कई प्रमाण इतिहास, सभ्यता और परंपरा में मिलते हैं। उपर्युक्त जातियों के बारे में विभिन्न बोली भाषाओं में किस प्रकार जातीय द्वेष व्यक्त हुआ है, इसे देखना कौतुहलवर्धक होगा।

जाट : जाट एक किसान जाति है। यह जाति राजस्थान, हरियाणा और उत्तर प्रदेश के पश्चिमी क्षेत्र में निवास करती है। अत्यंत मेहनती एवं अनुशासन के लिए विख्यात रही है। राजस्थानी, मैथिली तथा हरियाणवी में अनेक कहावतें मौखिक रूप में प्रचलित हैं, जिनमें जाट के स्वभाव, प्रकृति और जीवन धारणाओं की झांकी मिलती है।

जाट जंवाई, भाणजो, देवारी, सुनार।

करे न होसी आपणा, कर देखो व्यौहार।

जाट, जामाना, भानजा, सुनार ये अपने कभी नहीं होते, चाहे कतो इनसे व्यवहार करके देख लो, तो पता चले।

जाट मरयू तब जांणा, बल जब वरसोटी हेई जोऊ (गढवाली)

जाट मरा जीवन जाणितै, जब बरसोडी होल्ले। (कौरवी)

जाट की जब बरसी हो जाय तभी उसे मरा समझना चाहिए। जाट जिलाई लस्सी, गले में डालीरस्सी। अर्थात् जाट लोग छाछ मिलाकर मतलब प्रलोभन, दिखाकर आदमी को बंधुआ (फंसाना) बना लेते हैं।

जाट महाजन, ब्राह्मण शाह बनिया, हाकिम, कहर खुदा।

अर्थात् जाट जब महाजन बनता है, ब्राह्मण साहुकार हो जाये, बनिता अफसर बन जाये, तो फिर देखो इनके कारनामों, खुदा का कहर भी कम नहीं होगा।

जाट पिंगल पढै। एक भुच्छ लागी रहै। अर्थात् जाट कितना भी शास्त्रार्थ करें, उसमें थोड़ा बहुत मूर्खता का अंश रहेगा। जाट ना होने माणसा न हल चलाना पड़ता। (हरियाणवी) अर्थात् जाट को मनुष्य के नीचे का दर्जा देने के बराबर है। जाट रै जाट तेरे गल में गूदडा, धी में हाथ। इतनी मेहनत करने के बाद भी जाट निर्धन ही होता है, मतलब जाट गरीबी से पीछा नहीं छोड़ पाता।

इन तमाम कहावतों में जाटों की वृत्ति पर उनकी प्रकृति के बारे में पूर्वाग्रह से कही गयी हैं जो हमारी सनातनी वृत्ति की निदेशक है।

गुज्जर :

गुज्जर भी एक किसान जाति है, किसानों उनका पुश्तैनी व्यवसाय है। जहाँ गुज्जर को देखिये, दीजिए उसको

मारा या गुज्जर ने उज्जड भलि उज्जड मैं भलि उजाड। अर्थात् गुज्जर को बलने मत दो। वह उजडा हुआ ही ठीक है। गुज्जर का क्या दहेज? या तो बकरी या भेड़। गुज्जर लड़की की शादी में क्या देगा, या तो भेड़ या बकरी।

यादव : देश में यादव लोग ग्वाला या अहीर जाति के नाम से भी जाने जाते हैं। उनका पेशा खेती करना और गाय-भैंस पालना है। यह स्पष्ट बोलने वाले, ग्रामीण होने के कारण स्वभाव से अत्यंत सीधे और छल-कपट से दूर रहते हैं।

अहीर बुझावे से ही मरदवा।

ग्वाले मन्द बुद्धि के होते हैं, उनको समझाना आसान बात नहीं है। अर्थात् यादवों (अहीरों) की बौद्धिक क्षमता पर प्रश्न चिह्न उठाया गया है। अहीर मित्रता के लिए विश्वसनीय नहीं हैं, ऐसा भी मान है।

अहीर की यारी भारों में उजारी।

अहीर बल और शान का हमेशा प्रदर्शन करते हैं, ऐसा अनेक कहावतों में कहा गया है – एक तो अहीर, दोसरे जवान तीसरे हो गहल नो मन धन। अहीरों के गंवारापन यह व्यंग्य – कतनों गोआर चिगिल पढे तो तीन बाम से हीन उठना, बैठना, आर बोलना, बैठना विधाता छीन अर्थात् ग्वाला कितना भी शास्त्रार्थ करे पर विधाता ने उनसे तीन बातें छीन ली हैं, जो उनकी कभी नहीं आवेगी – उठना, बैठना और बोलना। अहिरन साथ गडरियौ माने। या अहिरन भोंग बरगदे या लासा। अहिरन पावै उठै तमासा।

अर्थात् अहीर स्वभाव से बड़े भोले होने हैं, वे समझ नहीं पाते कि में उन्हें मूर्ख बनाया जा रहा है। कुल मिलाकर अहीर अर्थात् यादवों पर जातिगत आधार बनाकर अन्य जातियों के मन में द्वेषभाव फैलाने का अधिकतर काम हुआ है।

कुरमी :- यह एक किसान कर देने वाली जाति है। अत्यंत परिश्रमी तथा आर्थिक दृष्टि से संपन्न। इनकी स्त्रियाँ भी अत्यंत मेहनती तथा परिश्रमशील और ये अपने पति के साथ खेतों में काम करती हैं। कुरमी यानि की व्यक्तियों पर अविश्वास देखाने वाली यह निम्न कहावत –

पत्थर पर जब जामे गुरुमी।

तबहु ना होशने आपन कुरमी।।

तथा बन ले पल्ल, बिगर ले कुरमी।

धन से मुक्त होने पर मल्ल के नाम से पुकारे पाते हैं परंतु गरीब होने पर कुरमी की संज्ञा मिलती है।

कोयरी : कोयरी जाति की खेत ही कर्मस्थली है। अत्यंत परिश्रमी जाति है, इनका रहन-सहन साधारण है। साग सब्जी उगाकर अपने परिवार का पालन पोषण कोयरी जाति के लोग करते हैं। उनके संदर्भ में कहावत—
कोयरी के गांव में धोबी पटकारी।

प्रस्तुत कहावत में उनके गंवारापन, अनाड़ीपन को दिखाया है, उनकी परिश्रम शीलता नहीं।

कोयरी की बेटी राजा के घरे गहली तड़ बैगन हेगन कहती।

अर्थात् कोयरी की बेटी की भाषा का मजाक उड़ाया गया है।

भूमिहार :- भूमिहार ब्राह्मण को भुंइहार या बाभन कहा जाता है। वस्तुतः बाभन शब्द ब्राह्मण का पालि रूप बतलाया जाता है। यह जाति विशेषतः बिहार और उज्जर प्रदेश में निवास करती है। यह कृषक वर्ग के अन्तर्गत आती है। ब्राह्मणों से इनके व्यवसाय, संस्कार और स्वभाव में भिन्नता है और ये अपनी प्रतिभा और समृद्धि के लिए विख्यात है। परंतु भारतीय भाषाओं की लोकोक्तियों में इनकी कजुली, छल-छदम के लिए बदनाम किया गया है। यह बदनामी अनेक लोकोक्तियों में लक्षित होती है।

भर न करे भुंइहार के, पौंछी न धरे सियार के।

अर्थात् भूमिहार को सेवक नहीं बनाना चाहिए और सियार की पूँछ कभी पकड़नी नहीं चाहिए। केतनो बामन सीधा तो हंसुआ ऐसन रेटा। अर्थात् बामन कितना भी सीधा हो तो दशंती और दांव से कम टेढ़ा नहीं है। यहाँ भूमिहार की बुराई की गयी है। इस के लोगों के वर्ण और वृत्ति का भी मजाक उड़ाया गया है। व्यक्ति के बाह्य स्वरूप पर टीका करते हुए उसकी निभर्त्सना की है। भोजपुरी में कहावत है –

करिया बामन गोर चमार, भूरा छमरी महा हतियार।

या सात चमार नु एक भुइंहारा

भूमिहार क्रोधी कमर कसने में प्रसिद्ध है, इस काम का निम्नांकित लोकोक्ति में स्पष्ट उल्लेख है। भइंसा आ भुइंहार बार हो बरिस पर खीसि।

क्रूक महोदय ने भी भूमिहार कैसे झगड़ालू और मुकर में बाप है, इन कहावतों के द्वारा स्पष्ट किया है। भूमिहार कैसे धोखेबाज हैं, लोगों को कैसे छकाते हैं, अपना मतलब निकालने के लिए विनम्रता का ढोंस कैसे रचाते हैं, आदि बातों का वर्णन अनेक कहावतों में आया है।

हमारी भारतीय भाषाओं की कहावतों में सबसे अधिक निशाना साधा गया है, गरीब, पिछड़ी और निम्न जातियों पर। कहावत ही है – गरीब की गाय जैसे चाहे रोह लो। इनमें प्रमुख रूप से बाल्मीकि, डोम, चमार और मुसहर जाति का समावेश होता है।

बाल्मीकि : पहले यह जाति भंगी या चुहड़े नाम से जानी जाती थी। अनेक लोकोक्तियों में अनेक लोकोक्तियों में उनकी जाति का स्पष्ट उल्लेख है। जैसे – एक भंगी सौ जंगी (लड़ाकू), राज करेगा फिरंगी या भंगी, मारत-मारते भंगी बना दूंगा, काम करो चुहड़े की तरह। आराम करो राजा की तरह। भंगी की जान क्या, झूठे की बाम क्या।

बाल्मीकि जाति की जितनी बुराई कर सकते हैं, उतनी बुराई अनेक कहावतों में की गई है। जैसे – हिन्दू पढ़े पोथिया, मुसलमान कुरान। चुहड़े लिच गड़ूचिया, ना जमी ना आसमान। अर्थात् चुहड़े न जमीन के होते हैं, न आसमान के।

जोहड में से भेंस और टट्टी में से,

चुहडा निकलना मुश्किल।

अर्थात् मलमूत्र ठोने वाला, हमेशा पिछड़ी समझी गई और तिरस्कृत जाति बाल्मीकि समाज की अनेक लोकोक्तियों में भर्त्सना की गई है। कई स्थानों पर उनकी पराश्रयी वृत्ति का भी एक अर्थ में मजाक उड़ाया गया है।

डोम : यह एक घुमक्कड़ जाति है। लोकोक्तियों में डोम को मृतकों का राजा कहा गया है। इस जाति को नीच जाति समझा जाता है। एक जमाने में कभी ये राज्यों के मालिक थे। डोम श्मशान घाट पर दाह-संस्कार के समय अग्नि देने का काम करते हैं। जैसे – मालवारिनि मुट्ठकोनि मंगलगिरि जोड़ना मंछि जरूगटु।

चमार के बारे में एक और धारणा इस कहावत में अभिव्यक्त हुई है। चमार चमरे का मार। या ऊंट के मुंह में जीरा चमार के मुंह में खीरा अथवा चमार में यहाँ नौकरी करना अपमानजनक है, ऐसा भाव बनाने वाली एक कहावत है – बैठेंगे चौखट पर चबायेंगे चने, चाकरी करेंगे न चमार की।

मुसहर : अन्न के अथवा ये चूहों का मांस खाने के लिए जिन्हें विवश होना पड़ता है, वे मुसहर हैं। अस्पृश्यता का दंश झेलते-झेलते मनुष्य प्राणी को निरा प्राणी बनाकर रखा गया। गांव के बाहर झोपड़ी बनाकर रहने वाली यह जाति है। मजदूरी करके पेट भरना इनकी नियति है। ये बड़े परिश्रमी लोग हैं, थकावट नहीं जानते। इनके बारे में दो महत्वपूर्ण कहावतें मिलती हैं – मुसहर जन पड़वा धन कहू के ना होया अर्थात् मुसहर याने मजदूर और पड़वा याने भैंस के नर बच्चों का कोई भरोसा नहीं होता। मुसहर के बेटी ननैहरे सुख, ससुरादैह सुख। मुसहर को

बेटी को न मायके में, न ससुराल में सुख मिलता है। ऐसा नहीं कि भारतीय भाषाओं को लोकोक्तियों में निम्न जातियों, मेहनतकश जातियों को लेकर ही जातीय द्वेष अभिव्यक्ति हुआ है। सवर्ण समाज की भी अनेक जातियाँ हैं, जिनके बारे में अनेक प्रकार की लोकोक्तियाँ, अनेक भावों को अभिव्यक्ति करने वाली मिलती है जैसे – ब्राह्मण और क्षत्रिय वंश की है। अनेक जातियाँ इससे बच नहीं पाये हैं।

ब्राह्मण : वर्णाश्रम धर्म में ब्राह्मण का सर्वोच्च स्थान स्थापित किया गया है। यह जानते हुए भी कि मनुष्य का जन्म गर्भ से होता है, पर स्मृतियों ने ब्राह्मण को बह्म के मुख से जन्म लेने की कथा रचायी गयी। इसमें न कोई तार्किकता है और न ही प्राकृतिक स्थिति।

अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ कराना, दान लेना एवं देना – ये छह ब्राह्मणों के कर्तव्य हैं। किन्तु इन छह कार्यों में सबसे अधिक महत्व दिया गया दान लेने को। किन्तु यह बहुत बड़ी वास्तविकता है कि ब्राह्मणों में भी आपसी छुआहूत का भाव रहा है। एक कहावत प्रसिद्ध है – ब्राह्मण, कुत्ता, हाथी नहीं जाति के साथी।

भारतीय समाज में ब्राह्मणों को लेकर अनेक प्रकार की – सम्मिश्र धारणाएँ मिलती हैं। जहाँ उसे पूजनीय माना गया है, कितना भी कुधर्मी हो, तो दूसरी ओर उसकी अनेक वृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है। उदाहरण के लिए कुछ कहावतें – एक ब्राह्मणों और एक बकरी पड़ासी के लिए उपद्रव हैं। ब्राह्मण और गिद्ध हमेशा लाश की तलाश में होते हैं। सांसों के बीच रही परंतु वैष्णव ब्राह्मण अपने घर खाना खायेगा तो वह उसको जहर से भी ज्यादा है। ब्राह्मण के घर अतिथि और वेश्या की शादी असम्भव।

ब्राह्मणों के मांगने की आदत को लेकर भी कुछ कहावतें प्रचलित हैं। जैसे— गांव का मुखिया और उसकी पत्नी मर गई – ब्राह्मणों की असंदेह शीलता को दर्शाने वाली अनेक कहावतें हैं – पुजारी दिखाई देने वाले, कसाई होता हैं। बनिया खाट में, ब्राह्मण ठाठ में, मुंह में राम बगली में छुरी।

साथ ही ब्राह्मण को खटमल, पिण्डू से भी अधिक खून चूसने वाला बताया गया है। ब्राह्मण की कथनी और करनी में किस प्रकार से अंतर है, इसे भी अनेक लोकोक्तियों में वर्णन किया गया है। ब्राह्मण भोजन प्रिय वाली बात भी इसी चीज को जाहिर करती है। ब्राह्मण जीने ही पयिमा। अर्थात् ब्राह्मण भोजन करने के बाद ही प्रशंसा करता है। तेलुगू भाषा की एक कहावत में ब्राह्मण को मोटी बुद्धि वाला बनाया गया है। जैसे बामन बरस बंड वरुस। ब्राह्मण की वृत्ति का मजाक उड़ानेवाली एक कहावत है – गाय भया, बामणा भाग्या ही भला। गाय, भाई और ब्राह्मण से बचकर ही रहना चाहिए क्योंकि ये नुकसान भी करते हैं। तो इन पर वार नहीं किया जा सकता। इसीलिए तो मराठी में भी ब्राह्मण की संगम न हो, ऐसी कहावत प्रसिद्ध है। जैसे— सोनार, शिंपी, कुलकर्णी, अप्पा, रांची संगम न को रे बाप्पा।

गढवाली बोली भाषा में ब्राह्मण की मानसिकता को उजागर करते हुए कहा गया है – जु बामण पामडा में, समो बामणी का गिचा में। सन्त कबीर न ब्राह्मण के बारे में लिखा है, ब्राह्मण बड़े निपुण कसाई।

राजपूत : भारत वर्ष में राजपूत जाति कई वर्षों तक शासक रही है। वीरता के लिए प्रसिद्ध रही है। वीरता, अक्खडता, शक्ति और वचनबद्धता के लिए ये लोग प्रसिद्ध हैं। राजपूतों की वृत्ति-प्रकृति पर कई कहावतें प्रसिद्ध हैं। जैसे – राजपूत, चार, मूसर के धन ही, टूटे तड़ टूटे, नेवे ना कबही।

राजपूत और तार मसूल के मनुष्य के समाव होते हैं, उनका टूटना संभव नहीं। सूने रजपूत, उठे अजगूम।

इस कहावत में व्यक्ति जब सोया हुआ हो, तब उसे राजपूत समझना चाहिए। और जब जगा हुआ हो, तब उसे अजगूम समझना चाहिए। तेलुगु भाषा की कहावत में राजपूतों के सच्चेपन पर संदेह व्यक्त करते हुए कहा गया है – पुर्वपु राजुलु ने टि बुरद राजुलु । भूखो ठाकर चाबै। इसमें भूखे ठाकुर के गुस्सेलेपन पर व्यंग्य किया गया है। राजपूतों पर प्रहार करते हुए एक कहावत कही गयी है, जो बहुत चुभनेवाली है। जैसी –तीनि जाति से बचि

के राहिए बेस्वा, सरप, उजेजन । अर्थात् तीन जातियों से बचकर रहना चाहिए। जिसमें वेश्या, सांप और राजपूत है। राजपूत क्षत्रिय वंशी रहे। इसलिए आदिकाल में एक लोकमानस बन गया था, जिसकी अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में हुई है – बारह बरस लै कुकर जिए, जिए तेरह बरस सियार, अठारह बरस क्षत्रिय जिए, आगे जीवन को धिक्कार।

इसके अलावा दर्जी, नाई, मल्लाह, कलवार, बनिया, जुलाहा, कायस्थ, गडरिया, सांसी, दुसाध, चांडाल और धानुक जातियों से संबंधित अनेक लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं, जिनमें जातीय द्वेष का भाव अभिव्यक्त हुआ है। साथ ही जातियों को मिरित करके अनेक कहावतें हैं, जिनमें यही भाव व्यक्त हुआ है।

निष्कर्ष : प्रस्तुत शोध-निबंध के माध्यम से यही प्रयास किया गया है कि भारतीय समाज प्रचलित लोकोक्तियों में द्वेष भाव कैसे अभिव्यक्त हुआ है, इसे बताना है। अर्थात् जहाँ जाति व्यवस्था के अंत की घोषणा हम कर रहे हैं, वहीं दिन-ब-दिन भारतीय समाज में जाति व्यवस्था पुराने रूप में सामने आने लगी है। इन तमाम लोकोक्तियों के अध्ययन से कुछ स्थूल बातें उभरती हैं, जो निम्नानुसार हैं—

1. लोकोक्तियों में जातीय द्वेष को फैलाकर पिछड़ी जातियों का मनोबल तोड़ने की कोशिश की गई है।
2. जाति-जाति के बीच दीवारें खड़ी करने की कोशिश में भारतीयता को हम खतरा पहुँचा रहे हैं इसका हमें भान नहीं है।
3. निम्न जातियों, महिलाओं और कमजोर तबकों पर फिकरे कसे गये हैं, जिसकी वजह स्वस्थ समाज को बनाने में बाधा निर्माण हो रही है।
4. दूसरी जाति के बारे में प्रेम, विश्वास, सद्भाव, अपनापन फैलाने के बजाय दुराग्रह निर्माण होने की स्थिति इन लोकोक्तियों की वजह से हो रही है। जातिवादी कहावतों में गालियाँ इस कद्र समायी हुई हैं कि पीढ़ी दर पीढ़ी जातिवादी घृणा ज्यों के त्यों बनी है।
5. इन लोकोक्तियों का क्षेत्र सीमित है, इनका आधार लोकानुभव नहीं है। किसी जाति विशेष को श्रेष्ठ बतलाकर या किसी को निकृष्ट घोषित करना इनका उद्देश्य दिखाई देता है।
6. ये लोकोक्तियाँ एक दूसरे के दोष ढूँढ़ने की प्रकृति के कारण दूसरे को नीचा दिखाने के लिए इस्तेमाल की जा रही हैं। जो कि लोक साहित्य के लिए ही नहीं, भारतीय जनमानस के लिए यह खतरे का संकेत है। हमें पूर्वाग्रहों से बचकर लोकमानस की गहरी पैठ तक पहुँचना चाहिए।
7. इस शोध-निबंध में समाविष्ट कहावतों में जातियों की दुर्बलताओं को प्रमुख रूप से उभारा गया है। उच्च जातियों का गुणगान और छोटी जातियों की निन्दा अधिक मात्रा में दिखाई देती है। हम सबका दायित्व है कि ऐसी लोकोक्तियों को हम ढूँढ़ निकालें जो जातीय द्वेष के स्थान पर मनुष्य-मनुष्य में सद्भाव, मानवता और गहरे विश्वास के मूल्य परोसे। तार्किकता और वैज्ञानिकता का अवलंब करते हुए ऐसी लोकोक्तियों की खोज संभव है। इस दायित्व से हम कब तक बचते रहेंगे।

संदर्भ

1. साहित्य कोश, भाग-1ए डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
2. भारतीय लोकोक्तियों में जातीय द्वेष, संकलन एवं संपादन, एस.एस. गौतम
3. कहावत कोश, डॉ. भुवनेश्वरनाथ मिश्र एवं विक्रमादित्य मिश्र
4. लोक साहित्य, संपादक डॉ. रामशेखरी शेटकार, प्रा. बालाजी शिंदे



भोजपुरी लोकगीत में क्रान्ति-दूत : वीर कुँवर सिंह

डॉ० रामजीत मौर्य

रीडर, हिन्दी विभाग

श्री गाँधी पी०जी० कालेज, सिधौली-सीतापुर

डॉ० सियाराम

वरिष्ठ प्रवक्ता-हिन्दी

तिलक महाविद्यालय, औरैया

भोजपुरी को कुछ भाषा विद्वान 'भोजपुरिया' भी कहते हैं। भाषा वैज्ञानिक सुनीत कुमार चटर्जी ने अपने ग्रन्थ में 'भोजपुरिया' शब्द का प्रयोग किया है। जार्ज ग्रियर्सन, बीम्स, हार्नले तथा कृष्णदेव उपाध्याय 'भोजपुरी' कहना पसन्द करते हैं। इतिहास विदित है कि भगवान बुद्ध के समय में अनेक जनपद थे, उन्हीं में एक 'मल्ल' जनपद था। मल्ल जनपद में राजा भोज के वंशजों ने मालवा जनपद वर्तमान उज्जैन से आकर यहाँ अपना राज्य स्थापित किया था। 'भोज' उपाधि सूचक शब्द था जिसे इस वंश के राजा अपने नाम के साथ जोड़ देते थे। उन्होंने यहाँ आकर राजधानी के लिए जो नगर बसाया उसका नामकरण भोजपुर किया। यह स्थान बिहार प्रान्त में डुमराँव के पास अवस्थित है। भोजनपुर नाम से बना शब्द भोजपुरी व भोजपुरिया यहाँ के रहने वाले लोगों तथा इस जनपद के आसपास बोली जाने वाली भाषा के लिए प्रयोग में लाया जाने लगा। भाषा के प्रसंग में सर्वप्रथम 1868 में जॉन बीन्स ने भोजपुर और आस-पास के लोगों द्वारा प्रयुक्त भाषा को भोजपुरी कहा।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में भोजपुर के उज्जयिनी राजपूतों का महत्वपूर्ण स्थान है। सन् 1857 की क्रान्ति तक इनकी वीर-गाथा बहुश्रुत थी। वीर कुँवर सिंह इसी वंश परम्परा में आते हैं जो अंग्रेजी-शासन के विरुद्ध विद्रोह करते हुए शहीद हुए थे। उन क्रान्तिकारी राजाओं की वीरता और स्वाभिमान की चर्चा ब्लैखमैन के एक लेख में मिलता है—“दक्षिणी बिहार और बंगाल के पश्चिमी सरहद के राजाओं ने दिल्ली के बादशाहों को बहुत परेशान किया था। अकबर के राज्यकाल में भोजपुर के राजा दलपति पराजित होकर पकड़े गये और जब अधिक नजराना लेकर अकबर ने उन्हें मुक्त किया तो वे फिर सेना लेकर विद्रोह कर बैठे। जहाँगीर के राज्यकाल तक इनका विद्रोह चलता रहा और शाहजहाँ ने इनके उत्तराधिकारियों को फाँसी दिला दी।”¹

भोजपुरी भाषा क्षेत्र वीरों की धरती है। वीरता तथा देश-प्रेम इस माटी की सांस्कृतिक सुगन्धि है। जार्ज ग्रियर्सन ने लिखा है— “भोजपुरी उस शक्तिशाली, स्मूर्तिपूर्ण और उत्साही जाति की व्यावहारिक भाषा है, जो परिस्थिति और समय के अनुकूल अपने को बनाने के लिए सदा प्रस्तुत रहती है और जिसका प्रभाव हिन्दुस्तान के हर भाग पर पड़ा है। हिन्दुस्तान की सभ्यता फैलाने का श्रेय बंगालियों और भोजपुरियों को ही प्राप्त है। इस काम में बंगालियों ने अपनी कलम से काम लिया और भोजपुरियों ने अपनी लाठी से।”² देश में आजादी की लड़ाई और देश-भक्ति की लहर सन् 1857 की क्रान्ति से आरम्भ हुई। भोजपुरी क्षेत्र की जनता ने अपनी अस्मिता और स्वाभिमान की रक्षा के लिए अंग्रेजी शासन से लोहा लेने का मनसा, वाचा, कर्मणा संकल्प लिया और आजादी की लड़ाई में प्राण-प्रण सहभाग किया। इसका विस्तृत उल्लेख वहाँ के लोक साहित्य में विद्यमान है जो वस्तुतः जनता का साहित्य है।

भोजपुरी क्षेत्र में आजादी की लड़ाई की लहर बलिया जिला के एक तरुण मंगल पाण्डेय की उस क्रान्तिकारी आवाज से उठी जो उसने 9 अप्रैल 1857 को बैरकपुर में फाँसी के तख्ते पर झूलते हुए कहा था — “देश को मेरा खून देना और कहना तुम्हे सौगन्ध है कि जब तक इन विदेशियों से इस अपमान का बदला न ले लो, चैन से न बैठना। मरना है तो इन्सानों की मौत मरो। कुत्तों की तरह जंजीर घसीट-घसीटकर नहीं।”³ यह जंजीर गुलामी की जंजीर थी। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत के उत्तरी भाग में क्रान्ति की ज्वाला धधक उठी और बिहार

तक फैल गयी। पटना क्रान्तिकारियों का केन्द्र स्थल बन गया। इसका नेतृत्व पीर अली ने किया। क्रान्ति का सिंहनाद करते हुए पकड़े जाने और फाँसी के तख्ते पर झूलते हुए अंग्रेजों को ललकारते हुए कहा—“तुम मुझे फाँसी पर लटका सकते हो, पर तुम, मेरे आदर्शों की हत्या नहीं कर सकते। अगर मैं मरता हूँ तो मेरी जगह हजारों वीर पैदा होंगे, जो तुम्हारे राज्य को नष्ट कर देंगे।”⁴

भोजपुर क्षेत्र के दो क्रान्तिकारियों—मंगल पाण्डेय और पीर अली की शहादत ने पूरे क्षेत्र में आग में घी का काम किया और वीर कुँवर सिंह जैसे अस्सी साल के बूढ़े शरीर में नयी शक्ति आ गयी। उन्होंने क्षेत्र के लोगों का नेतृत्व कर अंग्रेजों की नाक में दम कर दिया। वीर कुँवर सिंह की यह साहसिक गाथा लोक मानस में अब भी विद्यमान है। लोकगीतों में उनकी प्रशस्ति बिखरी पड़ी है। अंग्रेज—सरकार ने अपनी कूटनीति और प्रलोभन नीति से उन्हें मार्ग—च्युत करना चाहा और सन्देश भेजा— ‘आप आइये! मैं आप से मिलना चाहता हूँ। मैं आरा को प्रान्त बनाकर आपको वहाँ का राजा बना दूँगा।’ इसका प्रति—उत्तर देते हुए कुँवर सिंह ने कहा— ‘जब तक प्राण रहेगा, तब तक मेरा मार्ग नहीं बदलेगा।’ उनके त्याग और देश भक्ति की भावना इस लोक गीत में दर्शनीय है।⁵

कप्तान लिखे मिलअ कुँवर सिंह,
आरा के सूबा बनाइब रे।
तोहफा देबों, इनाम देबों,
तोहके राजा बनाइब रे।
बाबू कुँवर सिंह भोजले सनेसवा,
मोसे ना चली चतुराई रे।
जब तक प्राण रही तन भीतर,
मारग नहीं बदलाई रे।

उनकी यशः कीर्ति पूरे क्षेत्र में व्याप्त हो गयी। उन्हें जब इस बात का भान हुआ कि अंग्रेजी फौज में सैनिक चर्बीदार कारतूस को दाँत से काटकर टोटे अलग करते हैं तो उनका जातीय और राष्ट्रीय धर्म आहत हुआ। उन्होंने अमर सिंह को सन्देश भेजा कि इससे क्षत्रिय धर्म भ्रष्ट हो रहा है। उनकी इस चेतना का स्वर अवलोकनीय है—

लिखि—लिखि पतिया भेजलन कुँवर सिंह,
ए सुन अमर सिंह भाई हो राम।
चामवा के टोटवा दाँत से कटावेला,
कि छतरी के धरम नसावे हो राम।

इस सन्देश का प्रभाव यह हुआ कि बंगाल आर्मी में फौजी विद्रोह हो गया। इतिहासकार विन्सेन्ट स्मिथ ने अपने ‘भारत का इतिहास’ ग्रन्थ में उल्लेख किया है कि —“विद्रोह यद्यपि प्राथमिक रूप में बंगाल आर्मी की फौजी बगावत था, जो चर्बीदार कारतूस से फौरन उभड़ उठा था। मगर वह फौज तक सीमित नहीं रहा। असन्तोष और बेचैनी आम जनता में व्यापक रूप से फैली और कई जगह जनता ने उस स्थान के सिपाहियों से पहिले विद्रोह किया था।”⁶

भोजपुर क्षेत्र की सम्पूर्ण जनता कुँवर सिंह के साथ थी। उनकी लड़ाई जनता की लड़ाई थी। अंग्रेजी सरकार द्वारा उनकी गिरफ्तारी के लिए दस हजार का पुरस्कार रखा गया था, किन्तु किसी ने भी उनकी मुखबिरी नहीं की। क्षेत्र की स्त्रियाँ अपने पतियों को आग्रह—पूर्वक उस लड़ाई में हिस्सा लेने के लिए भेजती थीं। यदि कोई मना करता था तो धिक्कारते हुए कहती थीं—‘घर में चूड़ी पहन कर बैठ जाँय। मैं आपकी इज्जत रख लूँगी।’ इन पंक्तियों में देश—प्रेम का कर्तव्य बोध ध्वनित है—

लागै सरम-लाज घर में बइट जाहु,
मरद से बनि के लुगइया ए हरी।
पहिरी के सारी चूरी, मुँहवा छिपाई लेहु,
राखि लेबी तोहरी पगरिया ए हरी।

जनता की इस लड़ाई में आर्थिक मदद जनता ही करती थी। राजे-रजबाड़े, जमींदार भी सहर्ष मदद करते थे। शिवपुर दियर, जिला बलिया (उस समय गाजीपुर) के वीर सिंधा सिंह और निधा सिंह के पास जब कुँवर सिंह के सन्देश वाहक सहायता माँगने पहुँचते हैं तो वे सहर्ष तैयार हो जाते हैं और कहते हैं—‘इसमें पूछने की क्या बात है? हम लोग लड़ेंगे और अपने हाथी-घोड़े बेच कर सिपाहियों को खिलायेंगे।’ उनकी इस देश-भक्ति की भावना की प्रशस्ति आज भी लोक-वाणी में विद्यमान है—

बाबू सिंधा सिंह आउरु निधा सिंह,
लड़ले लड़इया कुँवर सिंह के।
लड़बि ना त का करबि, भाईन के हँसाइबि,
हाथी-घोड़ा बेंचि के सिपाहिन के खियाइबि।

अंग्रेजों की शक्ति के सामने कुँवर सिंह को पराजय का भी मुँह देखना पड़ा। उनके राज्य पर कब्जा हो गया और यूनियन जैक फहराने लगा। वे अत्यन्त अधीर हो गये और रोने लगे—‘दुःख इस बात का है, कि मैं बूढ़ा हो गया हूँ। अंग्रेजों को कैसे भगाऊँगा?’ उनकी बेचैनी की असह्य पीड़ा को लोक कवि उकेरता है—

रोअत बाड़े बाबू कुँवर सिंह,
मुँहवा पर देइ के रुमलिया हो राम।
लिहनी लड़इया हो बूढ़ा समझ्या में,
अब कवन होइहें हवाल हो राम।

उन्हें विश्वास था कि इस दुःख की बेला में यहाँ के राजा व जमींदार आजादी की लड़ाई में उन्हें सहायता करेंगे किन्तु उन्हें निराशा ही हाथ लगती है। यहाँ तक की डुमराँव के राजा जो उनके ही कुल के थे, ने भी सहायता नहीं की। उन्हें हार्दिक आघात लगा — ‘सभी सोचा हुआ मिट्टी में मिल गया। मैं स्वराज नहीं ले सका—

एक त आस कइलीं राजा डुमराँव के ,
उहो भागी चलले जइसे बन में के खरहा।
कुल्ही गुनलका रामा, मटिया में मिललि गइले,
नाहीं लेबे पावलीं हम सुराज।

दुःखी किन्तु आशावादी कुँवर सिंह अपने क्षेत्र के उत्साही वीरों को पुनः एकत्र कर सासाराम के घने जंगल में उन्हें सम्बोधित करते हुए राष्ट्र-धर्म की याद दिलायी। इसका बड़ा ही गुणात्मक प्रभाव पड़ा। अमर सिंह ने विनम्रतापूर्वक ओजस्वी वाणी में संकल्प लिया—“ मैं आपका छोटा भाई हूँ। आपके लिए पुत्रवत हूँ। मैं इस सभा में प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक मैं अपने उद्देश्य को पूरा न कर लूँगा, तब तक शस्त्र नीचे न रखूँगा आपके आशीर्वाद तथा रणदलन सिंह और हरकिशन सिंह जैसे पराक्रमी वीरों की सहायता से मैं अपने उद्देश्य में अवश्य सफल होऊँगा।”⁷ इस संकल्प वाणी से उनकी सेना में शक्ति-संचार हो गया। वे पुनः राष्ट्र-धर्म के पुनीत पथ पर अग्रसर हो गये। वे अपनी उत्साही सेना के साथ मध्य भारत, अयोध्या, लखनऊ होते हुए आजमगढ़ पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेजी सेना के दाँत-खट्टे करते हुए, उसका नेतृत्व करने वाले मिलमैन को पराजित कर दिया। इससे अंग्रेजी सेना में खलबली मच गयी। वे अपने राज्य जगदीशपुर पहुँचे और यूनियन जैक को धराशायी कर ‘क्रान्ति का झण्डा’

लहराया। अंग्रेजी सेना ने 'लीग्रान्ड' के नेतृत्व में उन पर धावा बोला। घमासान युद्ध हुआ। कुँवर सिंह के उत्साह के आगे अंग्रेज सेना भाग खड़ी हुई। अमर सिंह ने अपनी तलवार से ली ग्राण्ड का सिर काट डाला। कुँवर सिंह के विजय का घोष आज भी उस क्षेत्र में गर्व के साथ सुनाई पड़ता है—⁸

रामा फौज लेके लीग्रान्ड साथवा रे ना,
रामा लड़े अइले करि मनसुबवा रे ना।
राम जीति मह नाहीं पावे संग्रमवा रे ना,
रामा विजई रहले कुँवर सिंहवा रे ना।

कुँवर सिंह के इस विजय अभियान से अंग्रेजी राज्य में सन्नाटा छा गया। 'इण्डियन म्यूटिनी' के लेखक मि० हवाईट ने इस हताशा का उल्लेख करते हुए लिखा है—'यह हमारी (अंग्रेजों की) करारी तथा सबसे बड़ी हार थी।' 26 अप्रैल 1858 को क्रान्ति दूत बाबू कुँवर सिंह अमर हो गये। मृत्यु के समय जगदीशपुर पर आजादी का झण्डा लहराता देखकर उन्हें अपार शान्ति का अनुभव हुआ होगा। किन्तु पूर्ण सुराज की आकांक्षा अधूरी ही रही। लोक की आत्मा आज भी यही गुहार लगा रही है—

रामा चलि भइले वीर सुरधामवा रे ना,
रामा दुनिया में रही गइले नामवाँ रे ना।

सन्दर्भ सूची

1. लोक साहित्य की रूपरेखा—डॉ० सत्यनारायण दुबे, शरतेन्दु, पृ० 193
2. भोजपुरी लोक साहित्य : सांस्कृतिक अध्ययन— डॉ० श्रीधर मिश्र, पृ० 197–198
3. वही, पृ० 198
4. वही, पृ० 199
5. भोजपुरी लोकगीतों के विविध रूप — डॉ० श्रीधर मिश्र, पृ० 155
6. भोजपुरी लोक साहित्य : सांस्कृतिक अध्ययन— डॉ० श्रीधर मिश्र, पृ० 200
7. वही, पृ० 202
8. भोजपुरी लोकगाथा—डॉ० सत्यव्रत सिन्हा, पृ० 28



मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में वर्तमान

डॉ. मीना सिंह गौर
एशोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)
जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कालेज, कानपुर

‘गौधी जी की माँ कबीर को गौधी’ कहती थी। उन्होंने ही कबीर को गौधीवाद पर चलने के लिये प्रेरित किया।
“ज्ञान” कर्म, प्रेम, भक्त के उपादान हैं

“पोथी पढ़कर जग मुआ, पंडित भया न कोय।

ढाई अक्षर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय।।”

प्रेम हमेशा आधा होता है, यदि उसमें पूर्णता आ जाये, तो खत्म सा होने लगता है, ये अधूरापन जीवन की नियति है।

“चीटी के पग नूपुर बाजै”

x x x x

“कबिरा खड़ा बाजार में”

और भी-----

भक्त भगवान के पास नहीं जाता, अपने भक्त की आर्द्र पुकार सुनकर भगवान स्वयं दौड़े चले आते हैं—

“क्वासि की यह टेर मेरी, नास्मि की अनगूँज आई”

x x x x

“ न जाने कौन, अये धुतिमान, दिखाते पथ मुझको अनजान”

“ अये, सुख दुख के सहचर मौन।

नहीं कह सकते तुम हो कौन।।”

सूर ने भी वात्सलय, भक्तिश्रंगार की अविरल माला पिरोई—

“मनिमय कनक नन्द के आँगन बिम्ब पकरिबै धावत”

x x x x

“ हमारे हरि हारिल की लकरी।”

x x x x

“ नीवी ललित गही यदुराई

जबहिं सरोज धरयो श्रीफल पर जसुमति गई तब आई।।”

x x x x

“ सोहत ओढे पीत पट, श्याम सलोने गात” ।।

नारी मुक्ति का जो स्वर है, सबसे पहले सूर ने लिखा। धर्म, भक्ति दर्शन, मध्यकालीन साहित्य को प्रभावित कर रहे थे। आज भी कहीं न कहीं इसका प्रभाव झलकता है।

“मानुष प्रेम भयो बैकुण्ठी ”

x x x x

“ सतगुरु सवाँ न को सगा, सतगुरु सई न दाति ”

x x x x

“ राम नाम का मरम न जाना ”

x x x x

“ हरिहर राजनीति पढ़ि आये ” ।।

इसी तरह से सूफी में ‘तलब’ यानी आत्रद की स्थिति, प्रेम में तड़पन और विरह की स्थिति—

“मोहब्बत ने जुल्मत से काढ़ा है नूर

न होती मोहब्बत न होता नूर ।।”

ईश्वर स्वयं सत्ता है ‘अद्वैत’ सभी के कल्याण का कारण है। ‘द्वैत’ समस्याओं का कारण।

गुरु है— प्रकृति और सत्य

12 मई 1966 में छत्रपति शिवाजी को, पहली बार भूषण ने देख— और——

“भूषण बिनु न विराजिये कविता वनिता मित्र”

काव्य की चार पद्धतियाँ, वात्सल्य, साख्य, दास्य सैव्य, इसमें “मधुराभाव” सर्वोच्च माना है। शिवतत्त्व के साथ शक्ति है। सखी सम्प्रदाय, कृष्ण और राधा के प्रेम को प्रेरित करता है।

इससे पहले आदिम जाति से ही काम भाव रहा है—

मात्ररूप — कामाख्या

पत्नीरूपा — पार्वती

कुमारी रूपिणी — फूल सुन्दरी

तामेश्वरी — श्रंगार

सन्त काव्य की जब हम चर्चा करते हैं तो सबसे पहले हमारा ध्यान भक्ति आन्दोलन पर जाता है क्योंकि निर्गुण धारा, ज्ञानाश्रयी साखा से सम्बन्धित है। और जातिवाद का, सामन्तवाद से गहरा सम्बन्ध है—

“सबसे कठिन जाति अपमाना”

x x x x

“पंडित मुल्ला ने लिख दिया,
छाँड़ चले हम कछु नहीं लिया ।।”

x x x x

“दशरथ सुख तिहूँ लोक बखाना”

x x x x

“निर्गुण राम न जपिहऊँ भाई”

“एकहि कुल एकहि परिवारा, राम नाम का मरम न जाना”

x x x x

“पलटू पंडित सोई है कलम हाथ नहि लेई ।।”

x x x x

“अवधू भूलै को घर लावै, सोईजन हमको भावे ।।”

मध्यकाल में शोधकाल की स्थितियों में दादू, रैदास कबीर शेख शुद्धसाहित्य का शुद्ध दृष्टि से अवगाहन करना, व्याख्या करना, तथ्यात्मक अन्वेषण करना प्रमुख हैं—

“जो घर फूकै आपका ।”

× × × ×

“करत विचार, मनहि मन उपजा”

× × × ×

“तेरा मेरा मनुआँ कैसे ऐकै हुइहै ।।”

× × × ×

“लोका, तुम का मति मोरो ।।”

आँखिन देखी — आदि—

भक्ति आन्दोलन विराट आन्दोलन है। इसमें राजसत्ता, ज्ञानसत्ता दोनों हैं। लोक दर्शन, लोक अवधारणा, लोकमंगल, धर्म, जाति, पुराण मत—

अतः मध्य युगीन आन्दोलन धर्मी साहित्य है।

हजारी प्रसाद जी की कुछ पक्तियाँ—

“कबीर जैसा महिमा मण्डित व्यक्तित्व दूसरा नहीं ।।”

मीराबाई को राजस्थान के साहित्य ने कलंकिनी जैसे शब्दों से सम्बोधन किया लेकिन मीरा का व्यक्तित्व साहस से मरा हैं वो भी प्रेम में साहस—

“मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई”

जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई ।।”

उनका प्रेम असूर्यपश्यम् हैं—

जायसी को यदि किसी ने लिखा हैं तो रामचन्द्र शुक्ल ने—

इनका काव्य दो पक्षों में था—उपभोग और विलास, संयम और त्याग—

देश वत्सलता का प्रयोग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया हैं 1952 में माता गुप्त का पदमावत्। अतः जायसी को सूफी कहना अनुचित हैं। उनको पदमावत् में सिधलक्ष्मी वर्णन, नागमती वियोग वर्णन में शब्दसः चित्र हैं। ऐसे संवेदनशील कवि को सूचीन ही कहा जा सकता

वर्तमान में “नार्गाजुन” को कबीर का अवतार, महाप्राण निराला, त्रिलोचन को तुलसी का। विद्यापति में मीरा के काव्य का रूप है।



भारतीय संस्कृति में 'संस्कार एवं यज्ञ' की अवधारणा

डॉ० प्रीति वाधवानी

असि० प्रोफेसर, संस्कृत विभाग

तिलक महाविद्यालय, औरैया, उ.प्र.

भारत की संस्कृति के निर्माण के अन्तर्निहित तत्त्वों में संस्कारों एवं यज्ञों का अद्वितीय योगदान है। भारतीय संस्कृति को यज्ञ प्रसूत संस्कृति कहा जाता है तथा संस्कार हमारी संस्कृति के निर्माता हैं। संस्कृति का मूल बीजतत्त्व संस्कार है और संस्कार का मूल बीजतत्त्व यज्ञ है। प्रत्येक भारतीय आद्यग्रन्थ जिसमें भारतीय संस्कृति के मूलतत्त्व विद्यमान हैं, संस्कार की अपरिहार्यता को स्वीकार करते हैं और प्रत्येक संस्कार निर्देशक ग्रन्थ यज्ञों की अपरिहार्यता का वर्णन करते हैं।

भारतीय संस्कृति में संस्कारों की अवधारणा और संस्कारों में यज्ञों की अवधारणा की समीक्षा के लिये यह आवश्यक है कि पहले हमें यह स्पष्ट हो कि वस्तुतः संस्कृति का अर्थ क्या है? संस्कृति के लक्षण क्या हैं? शाब्दिक रूप से सम् उपसर्ग पूर्वक डुकृञ् धातु में क्तिन् प्रत्यय से संस्कृति शब्द निष्पन्न होता है; अथवा कुछ इस प्रकार कह सकते हैं – “समित्येकीभूय युगपत् समं वा कृतिः संस्कृतिः, समन्तात् कृतिः संस्कृतिः, संस्क्रियते मानवोऽनयेति संस्कृतिः।”¹ अर्थात् उत्तम श्रेष्ठ भावनाओं से युक्त व्यवहार, सर्वभूतहितयुक्त चेष्टायें, सार्वकालिक व सार्वदेशिक कर्तव्य तथा जिसके द्वारा मानव तथा समाज पवित्रता की प्राप्ति करता है, संस्कृति है। चूँकि संस्कृति शब्द एक विशाल भावनात्मक अर्थ को व्यक्त करने के लिये प्रयोग किया जाता है, इसलिए सार रूप में कह सकते हैं कि – किसी देश-काल से संबद्ध मानव समाज के जीवन के कल्याणकारी आदर्शों के अनुरूप जीवन जीने की प्रवृत्तियों को संस्कृति कहते हैं। ये प्रवृत्तियाँ धर्म, दर्शन, आचार, नीति, इतिहास, शिक्षा, शिल्प, साहित्य, संगीत-नृत्य, मूर्ति चित्र, वास्तु इत्यादि में अभिव्यक्त होती हैं।

आंग्ल भाषा में संस्कृति शब्द के पर्याय के रूप में Culture शब्द का प्रयोग प्रचलित है। कल्चर शब्द की उत्पत्ति इसके मूल रूप लैटिन रूट Culture से हुई है; जिसके दो अर्थ हैं – उपासना करना तथा कृषि करना। सामान्य-दृष्टया ये दोनों कार्य अपने लाक्षणिक रूप में इतने दूर दिखाई देते हैं कि दोनों के बीच कोई तारतम्य हो नहीं सकता। परन्तु यदि गंभीरता से विचार किया जाय तो एक बात स्पष्ट हो जाती है कि कृषि हो या उपासना, दोनों का एक ही लक्ष्य है, और यदि वह प्राप्त नहीं हुआ तो न कृषि संभव है और न उपासना पूर्ण है। एक प्रश्न यदि किया जाय कि कृषि कार्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रक्रिया क्या है? खेत को तैयार करना, बीज बोना, सिंचाई-निराई करना, खाद देना या और कुछ; तो निश्चित ही कहा जा सकता है कि ये सारी प्रक्रियाएँ जिस एक लक्ष्य के लिये हैं, यदि वह न हो सकी तो सारी प्रक्रियाएँ व्यर्थ हैं, वह है – बीज का अंकुरण। यदि बीज ही अंकुरित न हो सका तो कृषि नहीं हो सकती। अब बीजांकुरण क्या है? क्या यह कोई नयी घटना है? नहीं, बीजांकुरण, बीज के अन्दर पूर्व से ही निहित प्रसुप्त शक्तियों के जागरण, अथवा प्रकटीकरण की घटना है। ठीक इसी प्रकार से उपासना क्या है? उपासना की सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रिया क्या है? कोई इसे स्नान, ध्यान, आरती, यज्ञ, पुष्प-जल-अर्पण आदि-आदि किसी के रूप में कह सकता है, परन्तु यदि आत्मा के अन्दर की प्रसुप्त शक्तियों, योग्यताओं, क्षमताओं का प्रस्फुटन नहीं हो सका, तुम्हारी पद्धतियाँ यदि आत्मा के ऊपरी असत्य आवरण को चीरकर शक्ति प्रगटन में सहायक न बन सकीं तो उपासना नहीं हो सकती। इस तरह Culture का अर्थ हुआ वह सामाजिक पद्धति जिससे मानवीय गुणों का सम्यक् विकास हो सके।

विश्व साहित्य में 'संस्कृति' शब्द का सर्वाधिक प्राचीन प्रयोग यजुर्वेद (अ० 7.14) में मिलता है। यहाँ संस्कृति

को विश्ववारा तथा प्रथमा (आद्या) कहा गया है— 'सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा', 2— यह राष्ट्र की रक्षा करने वाली प्रथम संस्कृति है जो सभ्य संसार को परिवेष्टित किये हैं। भारतीय सन्दर्भ में निर्विवाद रूप से वह आद्या संस्कृति वेद प्रसूत है या दूसरे शब्दों में भारतीय संस्कृति वैदिक संस्कृति है। इस प्रकार समाज निर्माण की वह अन्तर्प्रवाहित धारा जिसका स्रोत वेदों से फूटता है — संस्कृति का मूल है।

प्राचीन भारतीय मनीषा ने संस्कृति निर्माण के चरणों में युगों-युगों की दूरियां तय की हैं। संस्कृति की शरीर रचना में हर अंग के निर्माण पर अपनी मेधा का लोहा मनवाया है। इसी मेधा ने संस्कृति रूपी शरीर के मेरुदण्ड के रूप में संस्कारों की स्थापना की है। 'संस्कार' हैं तभी तक संस्कृति खड़ी है। संस्कार विहीन समाज की कोई संस्कृति नहीं हो सकती। समष्टिगत सुधार संस्कृति का लक्ष्य है तो व्यष्टिगत सुधार संस्कार का उद्देश्य है। संस्कार शब्द भी 'कृ' धातु में सम् उपसर्ग के योग से बना है, इसका अर्थ 'शुद्ध करना' या 'उन्नत' करना है। 'संस्कारो हि गुणान्तराधानं दोषापनयनं च' सद्गुणों के अन्तराधान और दोषों के अपनयन का नाम संस्कार है। वैदिक परम्पराओं में संस्कारों को न केवल शारीरिक विकास के लिये बल्कि मानसिक, बौद्धिक व आत्मिक विकास के लिये एक मात्र साधन माना गया है।

वर्तमान में हम प्रायः संस्कारों को रस्मों-रिवाजों के पर्याय के रूप में ले लेते हैं। कई बार ये रस्मों-रिवाज अनर्थक, अनावश्यक या पाखण्ड से लगने लगते हैं हो सकता है कुछ रिवाज ऐसे हों भी; परन्तु हमें ध्यान पूर्वक देखने पर यह पता चलता है कि रीति-रिवाज ही संस्कार नहीं हैं, बल्कि संस्कारों के बाह्य चिह्न हैं। एक उदाहरण से इस बात को समझा जा सकती हैं। धान दो तत्त्व का संयुक्त रूप है — भूसी और चावल। धान का वह तत्त्व जो बाहरी रूप से दिखता है — वह है भूसी। यह भूसी स्वयं चावल नहीं है परन्तु चावल का खोल अवश्य है। इस खोल के बिना चावल की उत्पत्ति, स्थिति और वृद्धि नहीं हो सकती। इसलिए चावल के ऊपर की भूसी को व्यर्थ और अनावश्यक समझना बड़ी भारी भूल और नासमझी है। हाँ ! इससे बड़ी भूल यह है कि भूसी को ही चावल समझा जाये। इसी प्रकार वैदिक ऋषियों ने जो संस्कार बताये हैं, उनके दो रूप होते हैं — एक आन्तरिक रूप और दूसरा बाह्य। बाह्य रूप आन्तरिक महत्त्व की रक्षा करता है, वह उसकी संसार में चलने और जीवित रहने में सहायता करता है, और आन्तरिक महत्त्व संस्कार के बाह्य रूप में निखार और आकर्षण पैदा करता है। संस्कार के बाह्य रूप का नाम कर्म-काण्ड अथवा रीति-रिवाज है या इस प्रकार कहें कि रीति-रिवाज या कर्म-काण्ड संस्कार नहीं हैं, हाँ संस्कार का एक भाग अवश्य हैं।

भारतीय तत्त्व-मीमांसीय दर्शन में जीवन को शरीर और आत्मा के संयुक्त रूप में देखा जाता है। इन दोनों के परिष्कार एवं दोषापनयन की प्रक्रिया को संस्कारों में घटित किया जाता है। प्रायः एक विचार सुना जाता है कि बच्चा निर्दोष होता है, वह संसार में आकर ही दोषों को सीखता है। परन्तु वैदिक मनीषी इसे एक भ्रम मूलक सिद्धान्त कहते हैं। उनके अनुसार बच्चा न तो पूर्ण होता है और न ही शुद्ध संस्कारों से युक्त। इसलिए उसकी अपूर्णता और अशुद्धि दोनों को ही दूर करने के लिये कुछ साधनों की आवश्यकता होती है। इन्हीं साधनों का नाम संस्कार है।

संस्कारों की संख्या क्या है ? इस पर मतभेद हैं। परन्तु एक बात सामान्य रूप में अवश्य दिखती है कि बालक के जीवन में पहली बार जब कुछ घटित होता है, ऋषि वहीं पर एक संस्कार की योजना करते हैं। जिस दिन जन्म हुआ, उस दिन जातकर्म संस्कार, पहली बार संसार ने उसे किसी नाम से बुलाया उस दिन नामकरण संस्कार, पहली बार घर से बाहर निकला तो निष्क्रमण संस्कार, पहली बार अन्न खाया तो अन्नप्राशन संस्कार, पहली बार सिर से बाल हटाये तो चूड़ाकर्म संस्कार आदि-आदि। इस प्रकार से जीवन में न्यूनतम सोलह ऐसे क्षण हैं जिसमें संस्कारों का आयोजन है और इसी आधार पर जीवन में मुख्यतः सोलह संस्कार घटित होते हैं। तीन संस्कार तो बच्चे के जन्म के पूर्व ही हैं — गर्भाधान, पुंसवन व सीमन्तोन्नयन। एक अन्तिम सोलहवां मृत्यु के बाद किया जाता है, वह है अन्त्येष्टि। शेष अधिकांश बालपन में जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्मबोध उपनयन,

वेदारंभ, गुरुकुल से निकलने के समय समावर्तन, फिर विवाह। गृहस्थ धर्म मर्यादाओं का पालन करने के बाद वानप्रस्थ और फिर जीवन का अन्तिम संस्कार संन्यास।³ इसका क्या रहस्य हो सकता है ? वस्तुतः भारतीय सन्तों ने इसकी उपमा एक यात्रा से की है। यात्रा में दो तत्त्वों का निर्धारण यात्रा शुरू करने से पहले ही हो जाना आवश्यक है। पहला यह कि यात्रा का लक्ष्य क्या है ? जाना कहाँ है और दूसरा यह कि यात्रा का मार्ग क्या है ? जाना कहाँ से है ? जब तक ये दो बातें सुनिश्चित नहीं हो जाती तब तक यात्रा नहीं की जानी चाहिए। हम सामान्यतः उसे पागल कह देते हैं जो यत्र-तत्र निरुद्देश्य चलता चला जाता है, पूछो कि जा कहाँ रहे हो, इसके जवाब में यदि वह कह दे कि पता नहीं तो हमें उसकी बुद्धि पर संदेह हो जाता है। परन्तु कितना आश्चर्य है कि हर आदमी जीवन की यात्रा पर कहाँ भागा जा रहा है, कुछ पता नहीं, फिर भी उसे बुद्धिमान कहते हैं। ऋषि कहते हैं कि तुम्हारी जीवन यात्रा का लक्ष्य और मार्ग उसी दिन निश्चित हो जाना चाहिए जिस दिन तुम यह यात्रा आरम्भ करते हो। इसी विनिश्चय की प्रक्रिया के लिए जो संस्कार करते हैं, उसे जातकर्म संस्कार कहते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य संस्कारों के लिए भी समझना चाहिए।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि व्यष्टि निर्माण की प्रक्रिया का नाम संस्कार है तथा समष्टि निर्माण की अनवरत प्रक्रिया संस्कृति है। व्यष्टि से ही समष्टि है, यदि इकाई भ्रष्ट होगी तो समाज स्वतः ही भ्रष्ट हो जाएगा। यदि इकाई-इकाई सफल होगी तो ही समाज बलवान-सुखी-समृद्ध हो सकेगा। उसी सुसमृद्ध समाज को सांस्कृतिक आधार देते हुए मनु-महाराज ने कहा कि यदि तुम पवित्र समाज चाहते हो तो मनुष्य को पवित्र करो –

वैदिकैः कर्मभिः पुश्र्यैर्निशेकादिर्द्विजन्मनाम्।

कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च।।⁴

इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कार हमारी संस्कृति का आधार है, परन्तु संस्कारों का आधार 'यज्ञ' है। बिना यज्ञ के कोई संस्कार प्रक्रिया संभव नहीं है। अतः इस वेदप्रसूत संस्कृति की काया दो पगों से आगे बढ़ायी जा सकती है – संस्कार और यज्ञ। अतिशयोक्ति नहीं होगी यदि यह कहा जाय कि भारतीय संस्कृति यज्ञमय संस्कृति है। शतपथ ब्राह्मण में तो कह दिया – “यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।” यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है। कालखण्ड के सुदीर्घ वितान में 'यज्ञ' शब्द केवल 'होम' क्रिया के लिये रूढ़ हो गया परन्तु मूलतः यज्ञ अपने में व्यापक अर्थ व भाव सन्निहित रखता है। महर्षि पाणिनि यज्ञ के तीन अर्थ बताते हैं – 'देवपूजा, संगतिकरण और दान। यह हमारी जीवन पद्धति का प्रशिक्षण है। देवपूजा – अपने से बड़ों के प्रति व्यवहार, सङ्गतिकरण – बराबर वालों से व्यवहार तथा दान – अपने छोटों के प्रति देने के व्यवहार की पद्धति। पं० रघुनन्दन शर्मा अपने ग्रन्थ वैदिक संपत्ति में लिखते हैं – इस व्यावहारिक पद्धति या यज्ञों के तीन विभाग हैं – कर्म यज्ञ, ज्ञान यज्ञ और उपासना यज्ञ। शोडश संस्कार, शिक्षा, आहार, वस्त्र, गृह, समाज, कृषि, पशुपालन, संगीत, गणित, भूगोल, ज्योतिष, वैद्यक, रसायन, इमारत, यन्त्र, शस्त्र, वाहन और युद्ध विद्या आदि पदार्थ और विद्याएँ कर्मयज्ञ से संबन्ध रखती हैं। ईश्वर, जीव, पुनर्जन्म, कर्मफल, सृष्टि, प्रलय, वर्ण, आश्रम और स्वाध्याय आदि ज्ञानयज्ञ से सम्बन्ध रखते हैं। और सदाचार, दया, प्रेम, दर्शन, भक्ति, वैराग्य, योग और समाधि आदि क्रियाएँ उपासना यज्ञ से सम्बन्ध रखती हैं।⁵

अनेक प्रकार के यज्ञों का वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थों और सूत्र ग्रन्थों में प्राप्त होता है। अथर्ववेद में यज्ञों के कुछ प्रकारों का वर्णन आदिमरूप में प्राप्त होता है –

राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमस्तदध्वरं।

अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे जीवबर्हिर्मदिन्तमः।।7।।

अग्न्याधेयमथो दीक्षा कामपष्ठन्दसा सह।।8

अग्निहोत्रं च श्रद्धा च वषट्कारो व्रतं तपः।।9।।

चतुर्होतार आप्रियष्वातुर्मास्यानि नीविदः।।19।।⁶

इन मन्त्रों में राजसूय, वाजपेय, अग्निष्टोम, अश्वमेध, अग्निहोत्र, अग्न्याधान और चातुर्मास्य का वर्णन आता है। वैदिक संस्कृति में यह विश्वास किया गया है कि यज्ञों से आरोग्यता, सन्तान, वर्षा पर नियन्त्रण राज्य, ऐश्वर्य आदि की प्राप्ति होती है। रामायण में राजा जनक द्वारा अवर्षण यज्ञ से वर्षा की प्राप्ति और राजा दशरथ द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ से पुत्र प्राप्ति का वर्णन उपलब्ध होता है।

प्राचीन संस्कृति वैदिक संस्कृति में यज्ञों में आयुर्वेद की प्राप्ति भैरवयज्ञ से की। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है – “भैरवयज्ञा वा एते। ऋतुसन्धिषु व्याधिर्जायते तस्मादृतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते” अर्थात् ये भैरवयज्ञ कहलाते हैं। ऋतुओं की सन्धियों पर व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं, इसलिये इनका प्रयोग ऋतुसन्धियों पर होता है। ऋतुओं के सम्यक् ज्ञान के लिये ज्योतिष का ज्ञान, अनेकानेक उचित भूमियों का ज्ञान, यज्ञशालाओं और मण्डपों से विकसित वास्तुशास्त्र, गणितशास्त्र जिनमें रेखागणित के सिद्धान्तों का विकास हुआ। कृष्ण यजुर्वेद में अनेक हवनकुण्डों का वर्णन है⁷ और आश्वलायन तथा बौद्धायन सूत्रग्रन्थों में इसे विस्तार से बताया गया है। वहाँ उनके चतुरस्रस्येन, वक्रपक्ष, व्यस्तपुच्छ, कंकचित, अजलचित, प्रोगचित और उभायत आदि नाम दिये हैं। ये सारी रचनायें रेखागणित और चित्रलिपि के बिना नहीं हो सकतीं। इसी प्रकार यज्ञ की जो सबसे बड़ी भौतिक उपयोगिता है, वह है वायुशोधन व जल वर्षण की। वायवीय गतियों के सूक्ष्म अध्ययन के लिये तो “वायुर्यजुर्वेदः” के नाम से एक यजुर्वेद की शाखा को ही अलग कर दिया। वायु विद्या से वर्षा पर नियन्त्रण की कला का विकास वैदिकों ने कर लिया था। वेद कहता है – “निकामे निकामे पर्जन्यो वर्षतु” अर्थात् इच्छानुसार पानी बरसे। यज्ञों द्वारा वायुचक्रों में गति उत्पन्न करके वर्षा कराना एक ऊँचे दर्जे का विज्ञान था। यह सब सम्भव था अग्निविद्या के विकास से। अग्नि का आकाशीय रूप विद्युत है जिसे इन्द्र कहा गया है। इस प्रकार वायु, जल, अग्नि आदि भौतिक पदार्थों में निहित सूक्ष्म विज्ञान का विकास यज्ञों के माध्यम से भारतीय संस्कृति में किया गया है।

यज्ञों द्वारा भौतिक उन्नति से इतर भारतीय संस्कृति के मूलभावनात्मक तत्वों, रहन-सहन, पारिवारिक व्यवहार एवं वैयक्तिक स्वभाव के निर्माण में यज्ञीय प्रक्रियाओं और मन्त्रों में निर्दिष्ट प्रार्थनाओं ने अपना अद्वितीय योगदान दिया है। संसार जब भोगवाद, पूंजीवाद, साम्यवाद, प्रकृतिवाद आदि अनेक वादों-विवादों में उलझकर अशान्तचित्त हो रहा है, ऐसे में यज्ञ की मूलभावना त्यागवाद का प्रशिक्षण देती है।⁸ यज्ञीय आहुतियों की एक मूल ध्वनि है – “इदं न मम” अर्थात् हम जिस सामग्री की आहुति कर रहे हैं वस्तुतः वह मेरी नहीं है, परमात्मा प्रदत्त है, उसी को समर्पित है। यह एक ऐसा सूक्ष्म आध्यात्मिक प्रशिक्षण है, जिससे प्रत्येक मानव मन पर संसारी वस्तुओं के प्रति मोह भाव, मम भाव का क्षरण होता जाता है। इसके परिणामस्वरूप लोभ, मोह, मद, मत्सर⁹ जैसी अशुभ प्रवृत्तियाँ अन्तर्मन से घटती जाती हैं और मानवमन अधिकाधिक शान्त व सकारात्मक होता जाता है।

सन्दर्भ-सूची

1. पारस्कर गृह्यसूत्रम् – डॉ० वेदपाल, सत्यार्थ प्रकाशन न्यास, कुरुक्षेत्र, हरियाणा
2. यजुर्वेद – (अ० 7.14) श्री घूडमलप्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ ट्रस्ट, हिन्डौन सिटी, राजस्थान।
3. संस्कारविधिमण्डनम् – वैद्य रामगोपाल जी शास्त्री एवं श्री पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत, हरियाणा
4. मनुस्मृति – 2.26
5. वैदिक सम्पत्ति – पं० श्री रघुनन्दन शर्मा
6. अथर्ववेद – 11/7, श्री घूडमलप्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ ट्रस्ट, हिन्डौन सिटी, राजस्थान।
7. कृष्ण यजुर्वेद – 5.04.11 श्री घूडमलप्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ ट्रस्ट, हिन्डौन सिटी, राजस्थान।
8. वेदवाणी पत्रिका – नवम्बर, 2011, रामलालकपूर ट्रस्ट, हरियाणा



भारतीय संस्कृति में नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा

डॉ० अंजू लता
असिस्टेंट प्रोफेसर—शिक्षाशास्त्र
राजकीय महिला महाविद्यालय, झाँसी

मानव जाति के विकास का आधार शिक्षा है। इसके द्वारा व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र सभी का विकास होता है। शिक्षा मनुष्य को संस्कारवान, चेतनायुक्त एवं जिम्मेदार नागरिक बनाने में अहम् भूमिका का निर्वाह करती है। शिक्षा के द्वारा ही समाज अपनी भावी पीढ़ी को उच्च आदर्शों, अभीष्ट आशाओं, उत्कण्ठ आकांक्षाओं, सनातन, मूल्यों, सतत विश्वासों तथा प्राचीन परम्पराओं से युक्त अपनी सांस्कृतिक धरोहर को हस्तान्तरित करता है। शिक्षा के द्वारा किसी राष्ट्र के 'जीवन मूल्यों' का निर्माण होता है और यही जीवन मूल्य 'संस्कृति' के रूप में उस राष्ट्र की पहचान बन जाती है। इस प्रकार शिक्षा संस्कृति अथवा जीवन मूल्यों का निर्माण, पोषण एवं संवर्धन करती है।

हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति का आधार नैतिकता और आध्यात्मिकता रही हैं जिसके परिणाम स्वरूप वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था से ही हमारी शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य 'व्यक्ति का नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास करना' रहा है। वस्तुतः इसी कारण हमारे यहां शिक्षा के मूल में भी आध्यात्मिकता को स्वीकार किया गया है— 'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात् जो सभी बंधनों से मुक्ति दिलाए वही शिक्षा है। भारतीय संस्कृति की यही विशेषता उसे विश्व की अन्य संस्कृतियों से अलग करती है।

परन्तु आज आधुनिकीकरण के इस युग में जब समाज में पश्चिमीकरण की तर्ज पर अनेक नवीन परिवर्तनों को ग्रहण किया जा रहा है, उससे ऐसा भी महसूस किया जा रहा है कि हम अपनी प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति से दूर होते जा रहे हैं, अपने शाश्वत मूल्यों सत्य, अहिंसा, प्रेम आदि को खोते जा रहे हैं और भौतिकवादी जीवन जीने के लिए प्रेरित हो रहे हैं। समाज के इस बदलते परिवेश में हमारी प्राचीन संस्कृति पूर्णतः जर्जर हो रही है जिसका सर्वाधिक प्रभाव हमारी शिक्षा व्यवस्था के प्रत्येक स्तर पर पड़ रहा है। चाहे वह प्राथमिक स्तर हो, माध्यमिक स्तर हो, या उच्च स्तर की शिक्षा व्यवस्था हो। समाज में आज प्राथमिक स्तर के बच्चों में भी क्रोध, घृणा, अहंकार और हिंसा की भावना देखी जा सकती है, जिसका प्रमुख कारण समाज में व्याप्त अनैतिकता एवं अमानवीयता और अतिभौतिकता है। यही बालक जब नवयुवक बनते हैं तो उनमें यही अनैतिकता चरम सीमा पर होती है और वह भी भौतिकता के प्रभाव में अपनी गौरवपूर्ण संस्कृति एवं आदर्शों को त्यागने में जरा भी नहीं हिचकते। वास्तव में हमारा आज का युवा वर्ग यह जानता है कि नैतिकता एवं आध्यात्मिकता क्या है? परन्तु वह इसमें प्रवृत्त नहीं है। जैसा कि महाभारत में दुर्योधन के इस कथन से स्पष्ट होता है—

जानामि धर्मम् न च में प्रवृत्तिः।

जानाभ्याधर्मम् न च में निवृत्तिः॥

अर्थात् "मैं धर्माचरण को जानता हूँ परन्तु उसकी तरफ मेरी प्रवृत्ति नहीं, मैं अधर्म को भी जानता हूँ परन्तु उससे मैं अपने आपको मुक्त नहीं कर पा रहा हूँ।"

अतः ऐसी विषम और संकटपूर्ण परिस्थिति में जब हमारा युवा वर्ग अपने लक्ष्य से भटक रहा है, हमें शिक्षा द्वारा भारतीय संस्कृति के उन मूल्यों को उजागर करना होगा जिसका प्रमुख आधार नैतिकता एवं आध्यात्मिकता

है। हमारे वेद पुराण, स्मृतियाँ, उपनिषद और अन्य धार्मिक ग्रंथ, साहित्य, इतिहास आदि जो नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों से ओत प्रोत हैं उसके मुख्य तत्वों को अपना कर हम इस भौतिकवादी युग में भी अपने शाश्वत मूल्यों की रक्षा कर सकते हैं।

प्राचीन भारतीय दार्शनिकों के चिन्तन में सदज्ञान का सार मौजूद है जो व्यक्ति को अमरत्व की ओर ले जाते हैं। इन्हें पराविद्या अथवा ब्रह्म विद्या कहा गया है न मालूम कितनी शताब्दियों से इन्होंने ही मानव का दिशा निर्देश किया। अपरिवर्तनीय और सार्वभौम ऋतु, व्रत और धर्म अर्थात् ब्रह्माण्ड और नैतिकता की व्यवस्था और नैतिकता की व्यवस्था और नियमावली का भी विकास हुआ। ऋतु की अवज्ञा का अर्थ है पाप करना और ऐसे व्यक्ति को वरुण की पूजा करके प्रायश्चित्त करना पड़ता है। ऋतु अथवा धर्म की इस वैदिक धारणा में कि वह एक पारलौकिक और नैतिक व्यवस्था है, कर्म सिद्धान्त की बीज निहित है। “जो मनुष्य जैसा करता है और जिस प्रकार का जीवन बिताता है, उसी के अनुसार वह बन जाता है, अच्छे काम करने वाला व्यक्ति पुनः अच्छे मानव के रूप में जन्म लेता है और बुरे काम करने वाले का जन्म फिर बुरे आदमी के रूप में होता है।” वृहदारण्यक उपनिषद् में धर्म को सत्य माना गया है धर्म से ऊँचा कुछ भी नहीं है। धर्म को सामाजिक और राजनीतिक जीवन तथा नियमों का महान दिशा-निर्देशक, नैतिक बल माना जाता है।

वैदिक समाज में किसी व्यक्ति की स्थिति शक्ति और सम्मान का निर्धारण उसकी संस्कृति, सामाजिकता और नैतिक दायित्व के बल पर होता था। धर्म को तैत्तिरीय उपनिषद् में चारों वर्णों के विशेष सामाजिक कर्तव्यों के सम्पादन से सम्बन्धित माना गया है और छान्दोग्य उपनिषद् में व्यक्ति के वर्ण और आश्रम को एक सुव्यवस्थित श्रेणी विभाजन में प्रस्तुत करके धर्म के इस रूप में तब से लेकर आज तक भारतीय समाज के मूल्यों, आदर्शों, नियमों का रूप सजाया संवारा है। वेदों में प्रज्ञा प्राप्ति की कामना की गयी है और जिसे प्राप्त करने हेतु चिन्तन-मनन, निदिध्यासन, सन्यासाश्रम में लगातार किया जाता था “प्रज्ञा का यह प्रकाश आत्मा और अनात्मा की ग्रन्थि सुलझाता है। प्रज्ञा में प्रवृष्ट साधक प्रभु के अनुग्रह से आत्मस्वरूप प्रतिष्ठित होता है और मोक्ष को प्राप्त करता है। यजुर्वेद में कथन है— ‘यत्र ब्रह्मविदोयन्ति दीक्ष मा’ अर्थात् ‘मुझे भी ब्रह्मस्थान में ले चलो।’

मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षणों की चर्चा करते हुए एक नैतिक एवं आध्यात्मिक व्यक्ति के जीवन में इन्हीं गुणों की अनिवार्यता बतायी गयी है—

“धृति क्षमा दमोअस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रह।

धीर्विधा सत्यम क्रोधो दशक धर्म लक्षणं!!”

अर्थात् “धैर्य, क्षमा, शान्ति, लोभ न करना, इन्द्रिय निग्रह, बुद्धि विद्या, सत्य, आक्रोध ये धर्म के दस लक्षण होते हैं।” भारतीय धर्म, संस्कृति और जीवन मूल्यों को समझने के लिए उपनिषदों का आधार भी अनिवार्य है। उपनिषदों का मानस सत्य, मानवसुख और जनहित की कामना से ओतप्रोत है। मनुष्य का जीवन सुखमय उस समय होता है जब वह अपने आत्म को परम आत्म में लय कर देता है। मानवीय आत्म का आध्यात्मीकरण होता है और इस प्रकार मनुष्य को आत्मज्ञान और आत्मानुभूति होने पर अमरत्व मिलता है ऐसा उपनिषदों में कहा गया है।

भारतीय परम्परा के अनुसार उपनिषद् नैतिक मूल्यों एवं आदर्शों की जननी हैं। ये मानव जीवन को नैतिक शिक्षा का नैतिक उपदेश तो युवा पीढ़ी के लिए विशेषकर उपयोगी सिद्ध होता है। शिष्य जब गुरु के आश्रम से विदा होता था तो गुरु उसे कुछ कर्तव्यों के अनुपालन का निर्देश देते थे—

“सत्यं वद! धर्मं चर, स्वाध्यान्माप्रमद.....

मातृदेवो भव। पितृदेवोभव। आचार्यदेवो भव, अतिथि देवो भव।”

अर्थात् “सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो, स्वाध्याय से आलस मत करो, सत्य और धर्म के पालन में

आलस्य मत करो, देवता, पितर, माता-पिता, गुरु अतिथि के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करो, श्रद्धा, भक्ति एवं नम्रता से दान करो।”

उपनिषदों के नैतिक एवं आध्यात्मिक संदेशों को गीता में व्यापक प्रसार मिला। गीता मनुष्य के धर्म, कर्म का एक विश्वविख्यात ग्रन्थ है। महर्षि अरविन्द ने कहा है “गीता संसार की सर्वश्रेष्ठ, धर्म पुस्तक, एक राष्ट्र और संस्कृति के पुनरुत्थान में एक शक्तिशाली और निर्माणकारी कारक है।” जहां तक गीता के आध्यात्मिक मूल्यों की बात है गीता में आध्यात्मिक योग का विवेचन सातवें अध्याय के तेरहवें श्लोक में इस प्रकार मिलता है – मनुष्य अपने आपमें व्याप्त परम व्ययम् को नहीं जानता है। इसे जान लेने पर ही आत्मानुभूति होती है। ऐसी अनुभूति होने पर आध्यात्मिक योग होता है। ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय में रहता है। मनुष्य के सभी कर्म ईश्वरीय प्रेरणा से होते हैं। अपने अन्तःकरण की आवाज सुनकर मनुष्य सदैव शुभ कर्म करता है और मुक्त हो जाता है। मुक्त होने की अवस्था में शरीर, मन, इन्द्रियां, बुद्धि एवं कर्म सभी शुद्ध हो जाते हैं।

अपने मोक्ष के साथ-साथ अन्य मनुष्यों के मोक्ष की बात भी गीता में कही गयी है। गीता के 18वें अध्याय के 5,6 श्लोक में भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को शिक्षा देते हैं कि यज्ञ, दान, तप को मत छोड़ो, समाज कल्याण के लिए उसे करते रहो। बिना फल की आशा किए इन कर्मों को धर्म रूप में करना चाहिए यह निश्चय ही उत्तम है। गीता वास्तव में नीतिशास्त्र का ग्रन्थ है जो मानव जीवन के लिए नैतिक मूल्यों का खजाना प्रस्तुत करता है। यह एक कर्म संहिता है जो मनुष्य को अपने-अपने कर्म में लगे रहने की शिक्षा देती है।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।

सर्वकर्म निरतः सिद्धिं यथा तत् ऋषु॥ (48:45)

गीता का कर्मवाद मनुष्य को नैतिक एवं आध्यात्मिक स्वभाव का मानता है। इसी आधार पर वह अपने वर्तमान और भावी जीवन में कर्म करता है और निरन्तर जीवन को उन्नत बनाने का प्रयत्न करता है। गीता में निर्भयता, सहृदयता, बुद्धिमत्ता, दान, संयम, तप, यज्ञ, स्वाध्याय, सदाचरण, सत्य, अक्रोध, कर्मफल, त्याग, शान्ति, अस्तेय, क्षमा, धैर्य, शुद्धता, अनहंकार आदि सदगुणों की ओर संकेत मिलता है जो नैतिक एवं आध्यात्मिक जीवन के आधार हैं। धर्म और कर्म गीता के दो महत्वपूर्ण तत्व हैं भगवान श्री कृष्ण ने कहा है—

“यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः।

अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥” (4:7)

अर्थात् “हे भारत! जब जब धर्म की हानि होती है और अधर्म की वृद्धि होती है, तब तब मैं अपने रूप में प्रकट करता हूँ।”

“कर्ममण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

माकर्मफल हेतुर्भूमा ते संगोडस्त्वचकर्मणि॥” (2:47)

अतः मनुष्य को निष्काम कर्म करते हुए मोक्ष प्राप्ति हेतु प्रयास करना चाहिए। यही गीता का अमृत संदेश है, जो आज की युवा पीढ़ी में आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर सकती है।

रामायण कालीन भारत में जीवन मूल्यों का आधार था—मर्यादा। माता-पिता के प्रति कर्तव्य, भाई के प्रति स्नेह, समाज के प्रति अनुराग, असत्य के प्रति कठोर और सत्य के प्रति प्यार। यही आदर्श राम के थे। इसी कारण वह पुरुषोत्तम कहलाए। तत्कालीन समाज में कर्म को मनुष्य की पहचान बताते हुए मनुष्य से सद्कर्मों की आशा करते हुए यह कहा गया है—

“कर्म प्रधान विश्व रचि राखा। जो जुस करइ सो तस फलु चाखा॥”

साहित्य भारतीय संस्कृति का एक अभिन्न अंग है क्योंकि यह संस्कृति के विचारों और आदर्शों को सुरक्षित रखती है। साहित्य ऐसी संजीवनी है जो निष्प्राण एवं जर्जर होती मानवता की रक्षा करने में सहायक होती है। इस सम्बन्ध में कबीर की लोकमंगलकारी वाणी सभी धर्मों में समन्वय करने में समर्थ सिद्ध हुई है। उन्होंने— ‘साई के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोऊ’ कहते हुए अपने मानव धर्म को विश्व धर्म में परिवर्तित कर दिया। उनके अनुसार सच्ची शिक्षा मनुष्य को विनम्र बनाती है और सबसे प्रेम करना सिखाती है। उन्होंने सम्पूर्ण मानवता का आधार प्रेम को मानते हुए कहा है—

“पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय।

ढ़ाई आक्षर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।”

जायसी जो एक सूफी संत थे उनकी विश्व प्रसिद्ध रचना पदामावत नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों से भरी है उन्होंने लोभ, मोह आदि को पाप की नदी कहते हुए मानव को उससे बचने की सलाह दी है—

“लोभ पाप कै नदी अंकोरा।

सत्त न रहै हाथ जस बोरा।।”

तुलसीदास जो भारतीय संस्कृति के पोषक माने जाते हैं उनके जीवन की सफलता का आधार नैतिकता एवं आध्यात्मिकता ही रही है। पत्नी रत्नावली द्वारा प्रताड़ित किए जाने पर वह आध्यात्म की शरण में जाते हैं और एक साधारण मानव से महान विचारक एवं रचनाकार बनते हैं। आधुनिक समाज में भौतिकता के परिणाम स्वरूप फैले अंधकार को दूर करने हेतु तुलसी आध्यात्म को अपनाने की बात करते हैं—

“तुलसी प्रभु तब प्रकाश बिन संसय टरे न टारी।”

उनकी प्रसिद्ध उक्ति “परहित सरिस धर्म नहिं भाई, परपीड़ा सम नहिं अधिमाई।।” नैतिकता का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

मुंशी प्रेमचन्द जिनकी रचनाओं में जहां एक ओर भारतीय समाज की विभिन्न समस्याएँ उभर कर सामने आती हैं वहीं दूसरी ओर वह भारतीय संस्कारों और मानव की नैतिक चरित्र को भी उजागर करते हैं। गोदान के मुख्य पात्र होरी के चरित्र में भारतीय संस्कृति की झलक मिलती है। उन्होंने भारतीयों में गाय के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास को दर्शाया है जो आध्यात्म का ही एक अंश है।

साहित्य के समान भारतीय इतिहास में भी ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिसमें नैतिकता एवं आध्यात्मिकता के लिए भारतीय सम्राटों ने अपने राज्य वैभव को भी त्याग दिया। मौर्य सम्राट अशोक जिन्होंने हिंसा के बल पर कलिंग जैसे विशाल एवं दृढ़ साम्राज्य को परास्त किया। अंततः उनका भी हृदय परिवर्तन हुआ। वह हिंसा का मार्ग त्यागकर पूर्णतया अहिंसा का मार्ग अपनाते हुए आध्यात्म की शरण में चले गये और आजीवन बौद्ध धर्म का प्रचार प्रसार सम्पूर्ण विश्व में करते रहे जिसका आधार सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, अर्थात् नैतिकता और आध्यात्मिकता शिक्षा द्वारा भारतीय संस्कृति के मूल आदर्शों की स्थापना की बात प्राचीन काल से आधुनिक काल तक हमारे विभिन्न शिक्षाविदों, विचारकों एवं विद्वानों ने स्वीकार की है। स्वामी विवेकानन्द शिक्षा का सर्वोच्च उद्देश्य व्यक्ति का चरित्र गठन मानते हैं जो आत्म प्रकाशन तथा सुविचारों के निर्माण द्वारा संभव है। अर्थात् उन्होंने शिक्षा द्वारा मनुष्यों में नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के विकास को सर्वोपरि माना है। महात्मा गांधी जी ने तो शिक्षा का तात्पर्य ही व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास को माना है, उनका कहना है कि “शिक्षा से मेरा तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जो मनुष्य एवं बालक के शरीर, मन एवं आत्मा के सर्वात्कृष्ट रूपों को प्रस्फुटित कर दें।” अर्थात् शिक्षा द्वारा आत्मानुभूति ही परम लक्ष्य बताया है।

‘गुरुदेव’ रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शिक्षा द्वारा व्यक्ति के नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास को महत्वपूर्ण बताते हुए उच्च शिक्षा में इसकी अनिवार्यता स्पष्ट की है वह राष्ट्र के नवयुवकों को आध्यात्म और विज्ञान का समनवय करने

का संदेश देते हैं—

“भारत की भूमि में पश्चिम की निर्जीव भौतिकवादी आर्थिक सम्पदा का प्रतिरोपण किया जाना निरर्थक है परलोक और आध्यात्मिकता का संदेशवाहक भारत तथा ठोस पृथ्वी पर निर्माण करने वाला पश्चिम ये दोनों परस्पर मिलें और मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर आगे बढ़ें।”

सुझाव : चूंकि आज के इस परिवेश में हमारा युवा वर्ग अहिंसा, क्रोध, अहंकार, ईर्ष्या, और झूठ के चक्रव्यूह में फंसे अति भौतिकवाद के प्रभाव में मानव की पहचान खोता जा रहा है और अपनी प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति के मूल तत्वों को भूलता जा रहा है। अतः आधुनिक बदलते सामाजिक परिवेश को देखते हुए यह कहना समीचीन होगा कि आज समाज को पुनः अपने अतीत का अवलोकन करने की आवश्यकता है और उसके मूल श्रोतों को शिक्षा के माध्यम से उजागर कर छात्रों में विकसित करने की आवश्यकता है यद्यपि भौतिकवाद को पूर्णतया रोकना असंभव है। अतः हमें भौतिकता के साथ आध्यात्मिकता को भी अनिवार्य रूप में अपनाने की आवश्यकता है।

अतः आज शिक्षा को केवल सूचना या साक्षरता तक सीमित न रखते हुए उसे ज्ञान और बुद्धिमत्ता दोनों के लिए बनाना होगा। छात्रों की भावनाओं को प्रशिक्षित कर उनमें आत्मबोध जागृत करना होगा। चूंकि आज उच्च शिक्षा में नैतिक आध्यात्मिक मूल्यों का नितान्त अभाव है। अतः प्राचीन भारतीय संस्कृति के आदर्श तत्वों को उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में शामिल करना होगा। इसके लिए हमारे शिक्षकों और अभिभावकों को भी पूर्ण निष्ठा के साथ अपनी संस्कृति का सम्मान करते हुए छात्रों को मूल्यों की शिक्षा प्रदान करनी होगी तभी हमारी शिक्षा प्राचीन स्वर्णिम अवधारणा— “असतो मा सद्गमयः। तमसो मा जयोर्तिगमयः। मृत्योर्मा अमृतगमयः।” साकार हो सकेगी और हम विश्व की विभिन्न राष्ट्रों की संस्कृतियों में अपने राष्ट्र की संस्कृति की अलग पहचान बनाए रखने में सक्षम होंगे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मूल्य शिक्षा के परिप्रेक्ष्य — प्रो० राम शकल पाण्डेय, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
2. भारत की संस्कृति एवं कला — राधाकमल मुखर्जी, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।
3. शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्री आधार — प्रो० राम शकल पाण्डेय, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
4. भारतीय शिक्षा दर्शन — प्रो० राम शकल पाण्डेय, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
5. वैदिक संस्कृति दृगस्पर्श — आचार्य चतुर्सेन, सनमार्ग प्रकाशन, दिल्ली।
6. भगवद गीता — सी० गोपालाचार्य, भारतीय विद्या भवन, बम्बई—1985।
7. कबीर ग्रन्थवली — राम किशोर शर्मा, 15—ए लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
8. जायसी का पदमावत—शास्त्री भास्य — गोविन्द त्रिगुणायत, 15—ए लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद
9. रामचरित मानस — तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर।
10. हिन्दी साहित्य मूल्यान्वेषण — डा० मंगला रानी



संस्कृत नाट्य एवं मानवाधिकार : एक विवेचन

डॉ. डॉली जैन

512, रामानुजन आवास, वनस्थली विद्यापीठ, टोंक (राज.)

मानवाधिकार शब्द दो शब्दों मानव व अधिकार की सन्धि है। लास्की के अनुसार अधिकार मानव जीवन की ऐसी परिस्थितियाँ हैं जिनके बिना कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता। मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 के अनुसार मानवाधिकार का अर्थ व्यक्ति के जीवन, स्वतन्त्रता, समानता व गरिमा से सम्बन्धित उन अधिकारों से है जो संविधान द्वारा प्रत्याभूत हैं या अन्तर्राष्ट्रीय करारों में वर्णित हैं और भारत में न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय हैं। सरल शब्दों में कहा जाए तो ये ऐसे अधिकार हैं जो प्रत्येक मनुष्य को जन्मतः मिले हैं। मानवाधिकार के अन्तर्गत वे परिस्थितियाँ एवं पर्यावरण आते हैं जो मानव को मानव के रूप में अपने अस्तित्व को कायम रखने और व्यक्तित्व के निर्माण तथा विकास के लिए अनिवार्य होते हैं।

संस्कृत नाटकों में इन मानवाधिकारों से सम्बद्ध अनेक उद्धरण प्राप्त होते हैं। प्रस्तुत शोधपत्र प्राचीन संस्कृत नाटकों से सम्बद्ध है। इसमें कालिदास द्वारा रचित मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, शूद्रक द्वारा रचित मृच्छकटिकम्, विशाखदत्त द्वारा रचित मुद्राराक्षस, भवभूति द्वारा रचित उत्तररामचरितम् व भट्टनारायण द्वारा रचित वेणीसंहार को समाविष्ट किया गया है।

यद्यपि मानवाधिकारों सम्बन्धी प्रकल्पना आधुनिक युग की देन है अतः प्राचीन संस्कृत नाटकों में मानवाधिकारों सम्बन्धी आधुनिक संवैधानिक व्यवस्थाओं की खोज निरर्थक है, परन्तु इन नाटकों में मानवाधिकारों से सम्बद्ध विभिन्न सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया गया है और इसी रूप में इनमें मानवाधिकारों का उल्लेख प्राप्त होता है।

मानवाधिकार प्रदान करने की पहली शर्त है कि शासन लोककल्याणकारी हो, लोककल्याण की प्रवृत्ति होने पर ही शासन मानव मात्र के अधिकारों के प्रति सजग हो सकता है। इसे भवभूति ने राम के मुख से इस प्रकार व्यक्त किया है कि किसी भी कार्य से जनता को प्रसन्न रखना सज्जनों का व्रत है जो व्रत पिता के द्वारा, मुझे तथा प्राणों को छोड़ते हुए पूरा किया गया है। विक्रमोर्वशीयम् का नायक पुरुरवा एक ऐसा ही राजा है। पुरुरवा की तुलना सूर्य से की गई है। जिस प्रकार सूर्य जगत के अन्धकार का निवारण करता है वैसे ही राजा प्रजा के कष्टों का निवारण करता है।

राजा उस वृक्ष की तरह है जिसकी उत्पत्ति परोपकार के लिए हुई है। राजा अपने सुखों को त्यागकर एवं कष्ट सन्ताप को सहकर अपनी छाया से प्रजा का सन्ताप दूर करता है। शाकुन्तल में कंचुकी राजा दुष्यन्त को देखकर कहता है कि अपनी सन्तति की तरह प्रजा का पालन और नियमन करके राजा अशान्त मन होकर अब उसी प्रकार एकान्त का सेवन कर रहे हैं जैसे गजयूथों का यथावत् संचालन कर सूर्य के सन्ताप से संतप्त होकर यूथपति गजराज शीतल गिरिगुफा का सेवन करता है। प्रजा के विचारों व उसकी इच्छा को जानने के लिए उस समय गुप्तचर भी नियुक्त किए जाते थे। इस प्रकार इन प्रसंगों से शासन का लोकतान्त्रिक स्वरूप व्यक्त होता है।

मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अनुसार किसी व्यक्ति को दास बनाकर या दासता की स्थिति में नहीं रखा जा सकता है। संस्कृत नाटकों में अनेकत्र दास प्रथा का चित्रण किया गया है। रानी धारिणी के पैर में चोट पहुँचने पर उसकी पीड़ा को हल्का करने के लिए सेवक पैर पकड़ कर बैठे हैं व उस पर लेप कर रहे हैं। मुद्राराक्षस में भी इस दास प्रथा का उल्लेख है। जहाँ सूत्रधार के घर में दासियाँ अनेक कार्यों में व्यस्त दिखलाई

गई हैं। दास वर्ग सारा समय स्वामी की परिचर्या में ही बिताता था। स्वामी के सोने के बाद सोता था और उसके जागने से पहले ही जाग जाता था।

दास अपराधी की तरह थे और उन पर स्वामी को क्रोध करने का पूरा अधिकार था। दास दासियाँ यद्यपि पूर्ण रूपेण अपने मालिक के अधीन रहते थे, परन्तु फिर भी ऐसा कार्य नहीं करते थे जो अनैतिक हो। मृच्छकटिक में जब शकार चेट को वसन्तसेना का वध करने का आदेश देता है तो चेट कहता है कि सब कुछ करूँगा लेकिन अनुचित कार्य नहीं करूँगा। वह कहता है कि आपका अधिकार शरीर पर है व्यवहार पर नहीं। शकार द्वारा भय का कारण पूछे जाने पर वह कहता है कि मैं पाप से डरता हूँ। उसकी दृष्टि में पाप का फल दूसरों के टुकड़ों पर पलने के रूप में होता है। वह कहता है कि पाप कर्मों के कारण व भाग्य के दोषों के कारण जन्म से ही सेवक बना हूँ इसलिए अब अधिक पाप का संचय नहीं करूँगा और अनुचित कार्य भी नहीं करूँगा। उसके इस कथन के माध्यम से शूद्रक ने दासत्व की आन्तरिक पीड़ा का बोध कराया है। चारुदत्त के द्वारा स्वेच्छा से स्थावरक चेट की मुक्ति दिखलाकर शूद्रक ने दास प्रथा की समाप्ति का संकेत भी किया है।

मानवाधिकारों के अन्तर्गत काम का अधिकार, न्यायप्रद एवं सही पारिश्रमिक पाने का अधिकार एवं बेरोजगारों की सुरक्षा का अधिकार भी सम्मिलित है। शूद्रक ने संवाहक के माध्यम से बेरोजगारी की समस्या का चित्रण किया है। वह पर्यटन करता हुआ पाटलिपुत्र से उज्जयिनी आता है परन्तु चारुदत्त के गुणों के वशीभूत होकर उसका सेवक बन जाता है। भट्टनारायण ने भी वेणीसंहार में कंचुकी के माध्यम से कार्य की अनुचित व अनुकूल परिस्थितियों को उद्घाटित किया है।

भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत महिलाओं को कई प्रकार के मानवाधिकार प्राप्त हैं। संस्कृत नाटकों में अनेक प्रसंग स्त्री मानवाधिकारों के हनन के उदाहरण कहे जा सकते हैं। लोकापवाद के कारण राम सीता का परित्याग करते हैं। द्रौपदी को द्यूत में दाँव पर लगाया जाता है और हार जाने के कारण उसे दुःशासन द्वारा राजसभा में अपमानित किया जाता है। शाकुन्तल में दुर्वासा के शाप के कारण दुष्यन्त शकुन्तला के साथ किए गए वैवाहिक प्रसंग को भूल जाता है। राजा के प्रत्याख्यान करने पर पितृकुल भी उसे स्वीकार नहीं करता है। मृच्छकटिक में स्त्रियों के यौन शोषण का संकेत शकार व वसन्तसेना के वृत्तान्त से ज्ञात होता है।

वैश्याओं की स्थिति को व्यक्त करते हुए विट कहता है कि वैश्याओं का जीवन युवकों की सहायता पर आधारित है। राह में पैदा हुई लता की तरह तुम अपने आपको समझो।

ये सभी उद्धरण स्त्री विषयक मानवाधिकारों के हनन का स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। परन्तु कवियों ने स्त्री की सामाजिक स्थिति चित्रित करने के साथ ही उसका समाधान भी प्रस्तुत किया है। राम के सीता परित्याग का कारण लोकापवाद व राजधर्म का पालन था। अन्त में भवभूति ने उसी लोक को अपने किए पर लज्जित दिखलाया।

युधिष्ठिर द्वारा द्रौपदी को दाँव पर लगाए जाने पर उसका अपमान अवश्य होता है पर भीम, दुःशासन व दुर्योधन का वध करके अपनी पत्नी के अपमान का प्रतीकार करते हैं और इस प्रकार अन्ततः “स्त्री की मर्यादा अवश्य रक्षणीय है” यह सन्देश प्राप्त होता है।

अभिज्ञान शाकुन्तलम् में दुष्यन्त को भी अपने किए पर पछताते हुए चित्रित किया गया है। इसी प्रकार शूद्रक ने भी समाज में वैश्याओं की बुरी स्थिति चित्रित की है परन्तु मदनिका व वसन्तसेना इन दोनों को वधू पद पर प्रतिष्ठित करवा कर शूद्रक ने प्रकारान्तर से वैश्याओं को सामाजिक प्रतिष्ठा दिलवाने की माँग की है। इस प्रकार स्त्रियों के प्रसंग में कवियों का दृष्टिकोण प्रगतिवादी कहा जा सकता है।

स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका द्वारा निष्पक्ष एवं सार्वजनिक सुनवाई भी एक मानवाधिकार है। शूद्रक ने शकार के माध्यम से न्यायपालिका पर प्रभावशाली व समृद्धिशाली लोगों के प्रभुत्व का संकेत किया है। शकार वसन्तसेना की हत्या करके न्यायालय में पहुँचता है और दण्डाधिकारी को अपने मुकदमे करके उसी समय सुनवाई

करने के लिए बाध्य करता है। उसे धमकी देते हुए कहता है कि अगर आज विचार नहीं किया गया तो अपने बहनोई राजा पालक और अपनी बहिन से कहकर इस दण्डाधिकारी को कटवा कर इसकी जगह दूसरा नियुक्त करवा दूँगा। शकार की धमकी को सुनकर अधिकरणिक को उसके मुकदमें पर विचार करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। यद्यपि भयभीत होने पर भी अधिकरणिक शकार से कहता है कि कुल की प्रशंसा करने से क्या लाभ? यहाँ तो मनुष्य का स्वभाव ही परखा जाता है। उसका यह वाक्य कुछ हद तक न्यायपालिका की निष्पक्षता की सूचना देता है।

इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि संस्कृत नाटकों में कवियों ने कहीं तो मानवाधिकारों का चित्रण किया है और कहीं उन्होंने हनन की विकृत स्थितियाँ भी प्रस्तुत की हैं। इस आधार पर कहा जा सकता है कि तात्कालिक समाज में कुछ मानवाधिकार विद्यमान थे और कुछ मानवाधिकारों का हनन भी किया जाता था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उत्तररामचरितम्, भवभूति, डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2005
2. कालिदास ग्रन्थावली, कालिदास, डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्बा सुर भारती प्रकाशन, वाराणसी, 2009
3. भारत में मानवाधिकार, सुभाष शर्मा, नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया, 2009
4. मानव अधिकार एवं कर्तव्य, राधाकृष्ण शर्मा, राज्य शास्त्र समीक्षा, जयपुर, मई 2004
5. मुद्राराक्षस, विशाखदत्त, सत्यरथ सिंह
6. मृच्छकटिकम्, शूद्रक, डॉ. जगदीश चन्द्र मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, पृ. सं. 1985
7. वेणीसंहार, भट्टनारायण, डॉ. कृष्ण कान्त त्रिपाठी व डॉ. दिनेश प्रसाद तिवारी, साहित्य भण्डार, मेरठ, पृ. सं. 1995



भारतीय लोकतन्त्र के बदलते सरोकार

डॉ० किशन यादव

एसोसिएट प्रोफेसर—राजनीतिविज्ञान विज्ञान
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झांसी, उ.प्र.

लोकतंत्र केवल राजनीतिक सामाजिक परिस्थिति नहीं, बल्कि शासन और जीवन की कालजयी एवं लोकजयी धारणा है। लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था, व्यक्तिवाद से समष्टिवाद की ओर अग्रसर होती है, इसलिए लोकतंत्र में व्यक्ति का महत्व सर्वोपरि होता है। एक लोकतांत्रिक राष्ट्र को आरोही क्रम में इस प्रकार देखा जा सकता है—व्यक्ति, परिवार, समाज और राज्य। वह एकमात्र शासन चलाने की व्यवस्था ही नहीं है, वह तो एक विकासशील दर्शन है और जीने की एक गतिशील पद्धति भी। लोकतंत्र जनता द्वारा जनता का शासन है। अर्थात् जिस व्यवस्था की चर्चा हो रही है, उसमें जीने वाले व्यक्ति स्वयं पर शासन चलाते हैं। चूँकि शासन को सामूहिक रूप देना होता है। अतः जनता अपनी पसन्द के प्रतिनिधि को चुनती है और एक निश्चित अवधि के लिए उसे शासक बना देती है। जहाँ तक लोकतंत्र का प्रश्न है यह किसी राष्ट्र के शासन संचालन की खराब पद्धति नहीं है बल्कि भारतीय परिप्रेक्ष्य में जिस रूप में लोकतंत्र का संचालन हो रहा है तथा जो सम्पूर्ण विकास की जगह वर्ग विशेष की हित पूर्ति करता नजर आ रहा है उसमें सुधार की आवश्यकता है तथा इसके लिए जिम्मेदार एवं जवाबदेह सरकार, विधि का शासन, एवं शासन में पारदर्शिता की आवश्यकता है इसके अभाव में समावेशी लोकतंत्र एक दिवास्वप्न मात्र बनकर रह जायेगा।

लोकतंत्र की धारणा का इतिहास इतना लंबा है कि इसकी निश्चित कोई परिभाषा न होना आश्चर्य की बात नहीं। देशकाल समय, परिस्थितियों तथा विभिन्न हितों की आवश्यकतानुसार विभिन्न युगों के विचारकों ने लोकतंत्र की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ प्रस्तुत कीं गईं। ईसा से 422 साल पूर्व, यूनानी, दार्शनिक प्लेटो ने लोकतंत्र की परिभाषा देते हुए कहा था कि “लोकतंत्रीय वह होगा जो जनता का हो, जनता के द्वारा हो तथा जनता के लिए हो।” अब्राहम लिंकन के अनुसार लोकतंत्र “जनता का, जनता के द्वारा और जनता के लिए” (स्थापित) शासन प्रणाली है।” सीले के अनुसार “प्रजातन्त्र वह शासन है जिसमें हर व्यक्ति हिस्सा लेता है।” इसी तरह मेयो के अनुसार “लोकतंत्रीय राजनीतिक व्यवस्था वह है जिसमें सार्वजनिक नीतियाँ बहुमत के आधार पर उन प्रतिनिधियों द्वारा बनाई जाएँ जो जनसाधारण के कारगर नियंत्रण में रहें और जो राजनीतिक स्वतंत्रता की परिस्थितियों में, राजनीतिक समानता के नियम के अनुसार समय-समय पर होने वाले चुनावों द्वारा चुने गए हों।” सारटोरी के अनुसार, “लोकतंत्रीय व्यवस्था वह है जो सरकार को उत्तरदायी तथा नियंत्रणकारी बनाती हो तथा जिसकी प्रभावकारिता मुख्यतः इसके नेतृत्व की योग्यता तथा कार्यशीलता पर निर्भर हो।” शूम्पेटर के शब्दों में, “लोकतंत्रीय पद्धति राजनीतिक निर्णय लेने की ऐसी संस्थात्मक व्यवस्था है जिसमें व्यक्तियों को जनता के वोट के लिए प्रतियोगात्मक संघर्ष के माध्यम से निर्णय लेने की शक्ति प्रदान होती है।” लिप्से के अनुसार “लोकतंत्र की परिभाषा एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था के रूप में दी जा सकती है जहाँ सरकारी पदाधिकारियों को बदलने के नियमित संवैधानिक अवसर उपलब्ध हों, तथा ऐसी सामाजिक व्यवस्था विद्यमान हो जहाँ जनसंख्या का अधिकतर भाग, राजनीतिक शक्ति के संघर्ष में लगे व्यक्तियों को चुनकर, मुख्य निर्णयों को प्रभावित कर सके।” मेकफरसन का विचार है कि “लोकतंत्र सरकारों को चुनने तथा शक्ति प्रदान करने का, या किसी दूसरे तरीके से कानून बनाने और राजनीतिक निर्णय लेने का एक तरीका मात्र है।”

लोकतंत्र का शब्दार्थ बिल्कुल सहज है। ‘लोक’ अर्थात् जनता और ‘तन्त्र’ अर्थात् शासन अथवा राज्य। अतः

लोकतंत्र का अर्थ हुआ— 'जनता का राज्य'। इसका अंग्रेजी पर्याय 'डेमोक्रेसी' है। यह यूनानी भाषा के 'डेमोस' तथा 'क्रेटिया' शब्दों के योग से बना है। इसका भी यही अर्थ है— 'बहुतों की शक्ति' अथवा 'जनता का राज्य'। इस तरह 'लोकतंत्र' शब्द का मूल अर्थ ही जनसाधारण या जनता का शासन है।¹ इन परिभाषाओं का मूल अभिप्राय यह है कि लोकतंत्रीय प्रणाली में शासन या सत्ता का अंतिम सूत्र जनसाधारण के हाथों में रहता है ताकि सार्वजनिक नीति जनता की इच्छानुसार और जनता के हित—साधन के उद्देश्य से बनाई जाय और कार्यान्वित की जाय। इसमें शासन चलाने का काम जनसाधारण के प्रतिनिधियों को सौंपा जा सकता है, परंतु उन्हें निश्चित अंतराल के बाद फिर से जनसाधारण का विश्वास प्राप्त करना होगा।¹ संस्कृत साहित्य में 'लोकतंत्र' शब्द का प्रयोग 'जनता के राज्य' के अर्थ में नहीं, वरन् शासन अथवा राज्य कार्य के सामान्य अर्थ में हुआ है, जैसे महाभारत में कुबेर ने युधिष्ठिर को उपदेश दिया है —

युधिष्ठिर, धृतिर्दाक्ष्यं देशकालपराक्रमाः ।

लोकतंत्रविधानानामेष पश्चविधो विधिः ।²

अर्थात् हे युधिष्ठिर! धैर्य, दक्षता, देश, काल और पराक्रम—ये पाँच राज्य—कार्य की सिद्धि हेतु विधि हैं। दार्शनिक प्लेटो से लेकर आज तक राजनीति विज्ञान में 'लोकतंत्र' चर्चा का विषय रहा है।

समानी व आकूतिः समानानि हृदयानि वः ।

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ।।³

अर्थात् कोई ज्येष्ठ नहीं है कोई कनिष्ठ नहीं है सभी भ्राता हैं सभी को सभी का ध्यान रखते हुए सामूहिक प्रगति करनी है। साथ आओ एक—दूसरे से वार्तालाप करो, अपने मन को एक बनाओ, दूसरे सहयोगियों को समान रखो, अपने विचारों को एक साथ एकत्रित होने दो, अपने हृदयों को मिलाओ ताकि सभी प्राणी ऋत व सत्य के नियमन में रह सकें। ऋत व सत्य के नियमन में जन भी है राजा भी है। इसीलिए कालान्तर में मनुस्मृतिकार ने इसे राजधर्म से जोड़ा है—

यथा सर्वाणि भूतानि धराधारयते समम् ।

तथा सर्वाणि भूतानि विभ्रतः पार्थिवव्रतम् ।।⁴

तात्पर्य यह है कि पृथ्वी जिस प्रकार मातृ सदृश अपने सभी बच्चों को समान रूप से ध्यान रखती है उसी प्रकार राजा को भी समग्र जीवों का (जन का) समानरूप से ध्यान रखना चाहिए। लोकतन्त्र के आधार स्वरूप भारतीय संविधान में समानता के अधिकार को मूल अधिकारों के रूप में महत्त्व प्रदान किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 14 में यह उपबन्ध है कि राज्य भारत के राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा। समता का सभी का सुख ही तो भारतीय ऋषियों का कण्ठहार है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत् ।

प्रजा राजा का अपर पर्याय है तभी तो कौटिल्य कहते हैं—

प्रजा सुखे सुखं राज्ञः, प्रजानां च हिते हितम् ।

नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम् ।।⁵

आधुनिक युग का आरम्भ पुनर्जागरण तथा धर्म—सुधार के शक्तिशाली आंदोलनों से माना जाता है। राजनीतिक तथा सामाजिक चिंतन का आधार व्यक्ति को बनाया गया और इसके साथ ही नए नैतिक मूल्यों, प्राकृतिक अधिकारों, स्वतंत्रता के विचार तथा अन्य लोकतंत्रीय विचारों का जोर—शोर से समर्थन हुआ। पुनर्जागरण के दौर में इटली में नगर—राज्य व्यवस्था पनपी जिसकी कार्यविधि प्राचीन यूनानी नगर—राज्यों से मिलती—जुलती थी। फ्लोरेंस तथा बेनिस में लोकतंत्रीय व्यवस्थाएँ स्थापित हुईं। यूरोप के दूसरे देशों में इस दौर में शक्तिशाली

राजाओं के अधीन प्रभुत्वसम्पन्न राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना हुई। एक नए वर्ग—मध्यम वर्ग—का उदय हो रहा था, और सामंती व्यवस्था ढह रही थी जिसका स्थान राष्ट्रीय व्यवस्था ले रही थी। 16वीं और 17वीं शताब्दी इस परिवर्तन का समय था। इटली के नगर-राज्य आपसी झगड़ों और तनावों के कारण एक अच्छा नक्शा पेश नहीं कर पाए और मेकियाबेली ने अपने राजनीतिक चिंतन में शक्तिशाली केंद्रीकृत प्रभुत्वसंपन्न राज्य के महत्व पर जोर दिया। उभरते हुए पूँजीपति वर्ग (मध्यमवर्ग) की राजनीतिक आवश्यकता राष्ट्रीय राज्य थी। अतः चर्चशाही तथा सामंतशाही के चंगुल में जकड़े यूरोप में राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना के लिए आरम्भ में निरंकुश राजाओं का समर्थन किया गया। किन्तु जब राष्ट्रीय राज्य स्थापित हो गए, तब राजशाही की निरंकुशता पर करारा प्रहार हुआ और जॉन लॉक (1632–1704) से लेकर आज तक का पश्चिमी राजनीतिक चिंतन इस सैद्धांतिक एवं संस्थात्मक विकास का दर्शन बना।

आरम्भ में प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त के आधार पर लोकतंत्र का समर्थन किया गया जो जॉनलॉक के दर्शन में अभिव्यक्त हुआ। 18वीं तथा 19वीं शताब्दी में बेंथम तथा मिल ने उपयोगिता-अधिकतम व्यक्तियों को अधिकतम सुख-के आधार पर लोकतंत्र का समर्थन किया। 19वीं शताब्दी में जब मुक्त प्रतियोगिता पर आधारित समाज में मजदूर वर्ग का गहरा शोषण एक नासूर के रूप में दिखाई पड़ रहा था तथा नकारात्मक शक्तिहीन राज्य मजदूर वर्ग के उभरते हुए आंदोलन के दबाव में चरमरा रहा था, तब कल्याणकारी, सकारात्मक, लोकतंत्रीय राज्य को नैतिक आधार पर समर्थन मिला। लोकतंत्र को मानव के चहुँमुखी विकास का साधन कल्याणकारी लोकतंत्रीय राज्यों का समर्थन किया। बीसवीं शताब्दी में पश्चिमी उदारवादी लोकतंत्र इसी कल्याणकारी लोकतंत्रीय विचारधारा से प्रेरित है।

अठारहवीं शताब्दी में अमरीकी सन् 1776 ई० तथा फ्रांसीसी सन् 1789 ई० की क्रांतियाँ आधुनिक लोकतंत्र के विकास का पहला महत्वपूर्ण चरण थीं। स्वतंत्रता, समानता भाइचारे के नारों द्वारा लोकतंत्र का आदर्श तथा औचित्य लोकतंत्रीय सिद्धांतों का केन्द्र-बिन्दु बन गया। उन्नीसवीं शताब्दी में कार्ल मार्क्स ने समाजवादी लोकतंत्र का विचार किया जिनमें मानव द्वारा मानव का शोषण न हो। पूँजीवादी व्यवस्था को क्रांति द्वारा समूल नष्ट कर, मजदूर वर्ग के नेतृत्व में स्थापित इन समाजवादी लोकतंत्रों का आरम्भ रूस की क्रांति द्वारा सन् 1917 ई० में हुआ। समाजवादी लोकतंत्रों का आधार, दर्शन तथा संस्थात्मक ढाँचा उदारवादी लोकतंत्रों से एकदम भिन्न है।⁶

भारत में लोकतांत्रिक समाज का इतिहास बहुत अधिक पुराना नहीं है। यह आज आधुनिक राज्यों में पाये जाते हैं। प्राचीन समय में यह दूसरे रूप जाति पंचायत, ग्राम पंचायत आदि के रूप में शासन से स्वतंत्र दिखायी पड़ते थे। आज सिविल सोसाइटी भी राज्य से अलग स्वतंत्र कर्ता के रूप में दिखायी पड़ती है। लोककल्याणकारी राज्य की स्थापना होने के बाद राज्य के कार्यों में वृद्धि, उदारीकरण तंत्र ने भ्रष्टाचार के अवसर उपलब्ध कराये। रोल आफ सिविल सोसाइटी, इन्श्योरिंग स्टेट एकाउंटबिल, राडेस टण्डन बढ़ते भ्रष्टाचार ने राज्य की वैधता, शक्तियों पर ही प्रश्नचिह्न लगा दिया है। राज्य का बढ़ता कार्यक्षेत्र, आमलोगों तक पहुंच का अभाव, लोगों की बढ़ती आकांक्षा एवं जागरूकता ने “सिविल सोसाइटी” को प्रभावी बनाया। ऐसे में सिविल सोसाइटी वृहद समाज का प्रतिनिधित्व कर उनकी आवाज बनती है। वह जन समर्थन से जनआकांक्षा को जन आन्दोलन का रूप प्रदान करती है। सिविल सोसाइटी सजग समाज में सजग प्रहरी के रूप में भूमिका अदा करती है। वह जन समर्थन आन्दोलन, नागरिक स्वतंत्रता, न्यायपालिका के माध्यम से सरकार की जवाबदेही तय करती है और उन्हें जवाबदेह बनाती है। सिविल सोसाइटी सरकारों को न केवल जवाबदेह बनाती है वरन् जागरूक लोकतंत्र को जन्म देती है। नागरिक सक्रियता ने ही सिविल सोसाइटी को जन्म दिया है और सिविल सोसाइटी ने भ्रष्टाचार, पर्यावरण, चुनाव सुधार जैसे मुद्दे आम नागरिकों को दिये। आम नागरिकों की नये मुद्दों में यह रुचि प्रतिनिधिआत्मक लोकतंत्र के लिए शुभ संकेत हैं। विगत छः दशकों में भारतीय लोकतंत्र में अनेक मुद्दे उभरे। वर्तमान में भारतीय लोकतंत्र नई चुनौतियों के दौर से गुजर रहा है। परम्परागत समाज के मुख्य मुद्दे के रूप में जाति, धर्म, भाषा एवं क्षेत्रवाद सदैव से भारतीय लोकतंत्र के समक्ष थे परन्तु हाल के समय में भ्रष्टाचार, पर्यावरण, नक्सलवाद, महिला सशक्तीकरण नये मुद्दे के रूप में उभर रहे हैं। पूर्व की तरह भारतीय लोकतंत्र के समक्ष खड़ी नई चुनौतियों से निपटकर और

अधिक मजबूती के साथ उभरेगा। नागरिक सक्रियता से उभरा नागरिक समाज (सिविल सोसाइटी) आंदोलन भारतीय लोकतंत्र के लिए एक नई संजीवनी सिद्ध होगा।

एक आम आदमी जब लोकतंत्रीय व्यवस्था के बारे में सोचता है तो अक्सर लोकतंत्र की ये विशेषताएँ उनके ध्यान में रहती हैं:

(1) जनता की इच्छा की सर्वोच्चता, (2) जनता के द्वारा चुनी हुई प्रतिनिधि सरकार, (3) निष्पक्ष तथा आवधिक चुनाव, (4) वयस्क मताधिकार, (5) उत्तरदायी सरकार, (6) सीमित तथा संवैधानिक सरकार, (7) सरकार के हाथों में राजनीतिक, शक्ति जनता की अमानत के रूप में, (8) सरकार के निर्णयों में सलाह, दबाव तथा जनमत के द्वारा जनता का हिस्सा (9) जनता के अधिकारों एवं स्वतंत्रता की हिफाजत सरकार का कर्तव्य होना, (10) निष्पक्ष न्यायालय, (11) कानून का शासन, (12) विभिन्न राजनीतिक दलों तथा दबाव समूहों की उपस्थिति।

कार्य की व्यापकता की दृष्टि से अवलोकित करें तो लोकतंत्र को व्यापक तथा संकुचित दोनों अर्थों में समझा जाता है। व्यापक अर्थ में लोकतंत्र को मात्र एक राजनीतिक व्यवस्था न मानकर एक आदर्श माना जाता है इसमें लोकतंत्रीय मानव, चिंतन, व्यवहार, जीवन-पद्धति, समाज, अर्थव्यवस्था, नैतिकता, आदि विचार शामिल हैं। यहाँ लोकतंत्र एक शासन-व्यवस्था ही नहीं रहता बल्कि एक ऊँचा मानवीय मूल्य बन जाता है। अपने संकुचित अर्थ में लोकतंत्र एक प्रकार की शासन-व्यवस्था का द्योतक है तथा वर्तमान शताब्दी में राजनीति विज्ञान के व्यवहारवादी तथा अनुभववादी लेखकों ने लोकतंत्र को मात्र एक शासन-व्यवस्था के रूप में ही देखा है। राजनैतिक व्यवस्था के रूप में लोकतंत्र का क्लासिकी सिद्धांत यह मानता रहा है कि जिस शासन में अधिकतर जनता का हिस्सा हो, जहाँ राजनीतिक फैसलों में जनता तथा जनमत की भूमिका हो, जहाँ जनता को पर्याप्त अधिकार प्राप्त हों, जहाँ सरकार सामान्य जनता के सामान्य हित में कार्य करती हो, जहाँ नियमित चुनाव हों, जहाँ प्रतिनिधि सरकार हो और वह जनता के प्रति उत्तरदायी हो, वहाँ राजनीतिक व्यवस्था लोकतंत्रीय मानी जा सकती है। किन्तु पिछले 30-35 सालों से लोकतंत्र की इस क्लासिकी धारणा की आलोचना करते हुए उदारवादी लेखकों ने लोकतंत्र के अन्य सिद्धान्त-विशेषतः विशिष्टवर्गीय तथा बहुलवादी सिद्धान्त-पेश किए हैं।⁷

लोकतंत्र मूलतः एक नैतिक व्यवस्था है जिसमें निर्णय का खुलापन होता है। जनता को बिना किसी रक्तपात के शासक वर्ग को सत्ताच्युत व सत्तासीन करने का अधिकार होता है। हमारे लोकतंत्र का भविष्य बहुत हद तक जनता और नेता की महत्वाकांक्षा के साथ जुड़ा हुआ है। लोकतंत्र बहुत अच्छी व्यवस्था हो सकती है, वहाँ, जहाँ के पूरे लोग शिक्षित हों, वहाँ-जहाँ यह चीज शरारती तत्वों के हाथ में न हो, वहाँ, जहाँ निश्चित स्वार्थ के लिए लोग राजनीति को अपना पेशा नहीं समझते हों। लोकतांत्रिक व्यवस्था ठीक माचिस की तरह है, जिससे हम रोशनी करते हैं, लेकिन यदि उससे हम गरीबों की झोपड़ी जलाने लगे तो वह चीज बुरी भी हो सकती है।

विगत छः-सात दशकों के विकासवादी प्रयोग के आधार पर भारतीय लोकतंत्र को एक नवीन प्रतिमान की संज्ञा दी जा सकती है, यद्यपि परिणाम अपेक्षानुरूप नहीं रहे हैं, न तो सतत विकास का लक्ष्य मिल पाया है और न ही सामाजिक, आर्थिक न्याय की संकल्पना फलीभूत हुई है, फिर भी आत्मनिर्भर, स्वाभिमान युक्त सम्प्रभु राष्ट्रकी संकल्पना पर प्रश्न चिह्न नहीं लगाया जा सकता है, एक नवीन बहुलवादी राजनीतिक संस्कृति का जन्म हुआ है। यद्यपि परम्परागत सामाजिक संरचना की गहरी पैठ और इतिहास को ढोने की प्रवृत्ति ने हमें अपेक्षित गति नहीं पकड़ने दी है, पुनः सामाजिक पुनर्जन्म के रूप में हमारे नीति नियन्ता अम्बेडकर को गाँधी के मुकाबले खड़ा कर देते हैं और नेहरू से निपटने के लिए पटेल का इस्तेमाल करते हैं।⁸

दूसरे शब्दों में संशोधनों एवं सत्ता के असमान वितरण ने राजनीतिक समानता की धारण को कमजोर किया तथा कुछ हाथों में आर्थिक एवं सामाजिक सत्ता के केन्द्रीयकरण ने लोकतंत्र को सीमित बना दिया जिसका परिणाम हुआ कि औपचारिक रूप में राजनीतिक समानता की धारणा के होते हुए भी समाज में कमजोर एवं शक्तिहीन वर्ग

के हितों की अनदेखी हुई तथा जो शक्तिशाली वर्ग था उनकी न केवल इच्छाओं की अभिव्यक्ति हुई बल्कि उन्हीं के हितों के अनुसार नीतियाँ भी तय हुई।⁹

उक्त हालात चिंताजनक है। परन्तु छः-सात दशकों के बीत जाने के बाद ऐसी दशा कई सवाल भी खड़े करते है। चुनाव के अवसर पर “वोट बैंक” के रूप में उनका उपयोग करने के लिए रियायतों, कर्जा माफी आदि की घोषणा से क्या उनका कल्याण हो जायेगा? वास्तव में आज इस समुदाय के द्वारा ठोस मंथन की आवश्यकता है। उन्हें “वोट बैंक” की राजनीति से ऊपर उठकर सकारात्मक रूप से राजनीति की मुख्य धारा में शामिल होना चाहिए। अपने विकास के लिए पुराने विचारों, सिद्धान्तों को त्यागते हुए आगे बढ़ना चाहिए। घोषणाएँ चुनाव की पूर्व संध्या पर सरकार की मंशा पर प्रश्न चिह्न लगाती हैं। कुछ संविधान समीक्षक इसे असंवैधानिक मानते हैं। संविधान सभा की बहस भी धार्मिक आधार पर आरक्षण दिये जाने की अस्वीकार करती है। परमानन्द सिंह, इक्वलिटी, रिजर्वेशन, डिस क्रिमनेसन इन इण्डिया आजादी के साठ से अधिक वर्ष गुजर जाने के बाद आज आरक्षण एक प्रमुख मुद्दा बन गया है। आज अनुसूचित जाति, जनजाति एवं पिछड़ा वर्ग में शामिल होने के लिए संघर्ष चल रहा है। हाल में आरक्षण पाने के लिए गुर्जर एवं जाट समुदाय का आन्दोलन इनका उदाहरण है। अब उपर्युक्त सूची में समुदाय का नाम अंकित कराना सम्मान का प्रतीक माना जाता है। अनुसूचित जनजाति की सूची में स्थान पाने के लिए विभिन्न समूहों द्वारा किये जा रहे प्रयास भारतीय राजनीति व्यवस्था की नई सच्चाई को बताते है। वह चाहे जम्मू कश्मीर के गुज्जर न्यहरिस, दार्जिलिंग के नेपाली, आसाम के आदिवासीए ये सभी अनुसूचित जनजाति की सूची में शामिल होना चाहते हैं। इस नई कोशिश से स्थानीय स्तर पर भी तनाव उत्पन्न हो रहा है। यही से “वास्तविक जनजाति” का विचार आया।¹⁰

अब इन जगहों पर जनजातीय स्तर पर संघर्ष वास्तविक बनाम नई जनजाति का बन गया है। यहां पर कानून व्यवस्था, विकास आदि की समस्या उत्पन्न हो गयी है। अपनी मांगों को लेकर प्रत्येक समूह ने अपना हथियारबंद समूह भी बना लिया है। वे सूची में शामिल होने, पहचान को बचाने, दूसरे समूह को कमजोर करने, स्वायत्तता पाने के लिए नये आन्दोलन कर रहे हैं। मणिपुर में 100 से अधिक दिन चला “ब्लाकेड” इसका उदाहरण है।

हमारा शुमार विश्व के बड़े लोकतन्त्र में होने के साथ ही मानव मानव सम्बन्धी मुद्दे, मूल्यों का संरक्षण वर्तमान की चुनौतियाँ व समाधान सभी इस प्रणाली में निहित हैं। लेकिन आज भारतीय लोकतन्त्र आज संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। वर्तमान सरकार जन आकांक्षाओं मांगों, स्वायत्तता, नये कानूनों तथा अनेक सुधारों को लेकर बेहद दबाव में है।

आज वर्तमान संसदीय व्यवस्था की साख दांव पर लगी है। जन प्रतिनिधि जन आक्रोश को देख असहज हैं। एक तरफ जनभावना है तो दूसरी तरफ दलीय अनुशासन, जनप्रतिनिधि होने का विशेष गर्व उनको सही दिशा चुनने में बाधा उत्पन्न कर रहा है। आज बदले वातावरण में एक नया नेतृत्व, नयी ऊर्जा का संचार हो रहा है जो पहले को चुनौती दे रहा है। यह आम लोगों का आक्रोश है जो उन्हें जन विरोधी कारपोरेट समर्थक सरकार के विरुद्ध सक्रिय कर रहा है। उक्त आन्दोलन में धर्म, जाति, वर्ग, क्षेत्र की सीमायें टूट गई है।¹¹

इसे हमारा सौभाग्य ही कहा जाएगा कि भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था है और हम दुनिया के सबसे बड़े लोकतन्त्र के रूप में जाने और पहचाने जाते हैं। निस्संदेह भारत में लोकतंत्र की जड़े बहुत गहराई तक फैली हुई हैं। लेकिन समय के साथ-साथ हमारे लोकतंत्र में कई खामियाँ आ गयी हैं। क्षरण प्रकृति का नियम है इसलिए हमारे लोकतंत्र में भी समय के साथ-साथ कुछ ऐसी विकृतियाँ आ गयी हैं जिनके कारण लोकतंत्र से हमारा भरोसा कभी-कभी उठने लगता है। ऐसा तभी होता है जब लोकतंत्र हमारी अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतर पाता। वास्तव में यह लोकतंत्र की कमी नहीं अपितु व्यवस्था एवं व्यवस्था से जुड़े लोगों की कमी है।

इस प्रकार यदि हम भारतीय लोकतंत्र का मूल्यांकन करें तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पिछले छः-सात

दशकों में भारत में लोकतंत्र की जड़ें कुछ अपवादों को छोड़कर दें तो मजबूत ही हुई हैं। जहाँ एक तरफ लोगों का संसद, न्यायपालिका, निर्वाचन आयोग जैसी संस्थाओं में आस्था एवं विश्वास बढ़ा है। वहीं दूसरी तरफ पुलिस, नौकरशाही एवं नेतृत्व वर्ग में विश्वास घटा है। जहाँ एक तरफ राज्य ने अनेकों समस्याओं जैसे मिजोरम, पंजाब एवं अन्य ऐसी ही समस्याओं का सफलतापूर्वक निदान ढूँढा है वहीं नक्सलवादी समस्या, कश्मीर समस्या अभी भी एक राष्ट्रीय चिंता का विषय बना हुआ है। इन क्षेत्रों में सरकार की गलत नीतियों के कारण लोगों में अलगाव की भावना बढ़ी है तथा वे राष्ट्र की मुख्यधारा से अपने को अलग महसूस करते हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि विकास की दौड़ में पिछड़ रहे वर्ग के हितों को ध्यान में रखकर समावेशी और कालजयी नीतियाँ बनायी जायें तथा नीतियों का निर्माण करते समय उसके वास्तविक लाभकर्ताओं को भी शामिल किया जाये।

लोकतंत्र तभी सफल हो सकता है जब जनता जागरूक होने के साथ ही वास्तविक शक्ति उनके हाथ में हो। लोकतंत्र में नेता सेवक हैं राजा नहीं यह अहसास जिस दिन पूरी जनता को हो जाएगा उसी दिन लोकतंत्र सही मायने में सफल माना जाएगा। सत्ता के शीर्ष पुरुषों को यह समझना चाहिये कि भारत का नागरिक ही लोकतन्त्र की सबसे महत्वपूर्ण नागरिक इकाई है जिसमें आजादी के आन्दोलन के गर्भ से निकले भारत के संविधान को नागरिक के नाते अपने आपको आत्मार्पित किया है। भारत के संविधान में कोई भी विशिष्ट नहीं है। कोई भी कानून की निगाह में कानून से परे नहीं है। हमारा लोकतन्त्र हम सबकी व्यक्तिगत व सामूहिक उदासीनता के कारण तन्त्रलोक में बदल गया है। जीवन के हर क्षेत्र में तन्त्र को बढ़ाने और लोक को निकालने की मनमानी से राजनैतिक-आर्थिक व्यवस्था को बिना किसी जवाबदेही के खड़ा किया जा रहा है। कई बार हमारे राजनैतिक नेतृत्व ने भारत की राजव्यवस्था में हमारी आजादी के आन्दोलन की अनमोल धरोहर अभिव्यक्ति और सत्याग्रह की आजादी पर अपना मनमाना व फूहड़ दुराग्रह लादना चाहा, दमन किया और भारत के नागरिक अधिकारों को अपमानित करते हुए संविधान को अपनी निजी जागीर की तरह इस्तेमाल करने की कोशिश की, उसका युवा नागरिकों ने जिस तरह से शान्तिपूर्ण संगठित प्रतिकार किया, उससे हमारा लोकतन्त्र जीवन्त हुआ है। तिहाड़ जेल को भारत के लिये लोकशक्ति का कैदी बना दिया, वह भारतीय लोकतन्त्र में सिविल नाफरमानी व नागरिक शक्ति-सक्रियता की अनूठी घटना है। आजादी के बाद हम सब निरन्तर केवल अपने आप में ही खोते गए जिसका उपउत्पाद है भ्रष्ट व्यवस्था का साम्राज्य। भ्रष्टाचार की व्यवस्था से लड़ने के लिए सदाचार का लोकआचरण पहली शर्त है। निष्फलक नागरिक दल ही मजबूत लोकपाल का जन्मदाता हो सकता है। फिर भी चुनौती मुश्किल जरूर है पर असंभव नहीं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. राजनीतिक सिद्धान्त की रूपरेखा, ओम् प्रकाश गाबा, प्रकाशक-मयूर पेपर बैक्स नौएडा, संस्करण-2005, पृ०-229
2. महाभारत, 3/162/1
3. ऋग्वेद दशम मण्डल, 191 सूक्त 4 मन्त्र-सम्पादक पं. दामोदर सातवलेकर
4. मनुस्मृति, पृ० 170
5. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, 5-22
6. राजनीति सिद्धांत, ज्ञान सिंह संधु, प्रकाशक-हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली, संस्करण-2004, पृ०-289।
7. डेमोक्रेटिक थ्योरी, सी०बी० मेक्फर्सन, ओ०यू०पी०, 1965।
8. खिलनानी सुनील, भारतनामा (द आइडिया ऑफ इंडिया) राजकमल, नई दिल्ली, 2006, पृ०-33
9. Jayal, Neerja Gopal (2001) Democracy in India, New Delhi, Oxford University Press, page 37
10. फ्रंटलाइन, जनवरी 1-14 2007, पेज 1-5
11. इकॉनोमी पॉलिटिकल वीकली, 3 सितम्बर 2011, पेज 15



आधुनिक लोकतंत्र और भारत : समस्या और समाधान

आदित्य कुमार

शोध छात्र-राजनीति विज्ञान विभाग

बीरबहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर (उ.प्र.)

समानो मन्त्रः समिति समानो

समानं मनः सह चिन्तमेशाम!

समानं मंत्राभि मन्त्रमे वः

समानेन वो हविशा जुहोनि !!

लोगों का लक्ष्य और मन समान हो तथा वे समान मंत्र से, समान यज्ञों के पदार्थों से ईश्वर का मनन करें। ऋग्वेद और अथर्ववेद के इन सूक्तियों में लोकतंत्र (समानता की अवधारणा) की पृष्ठभूमि काफी हद तक निहित है। लोकतंत्र के बारे में अब्राहम लिंकन ने कहा था :—लोकतंत्र “जनता का, जनता के द्वारा और जनता के लिये” स्थापित शासन प्रणाली है। प्लेटो से लेकर आज तक राजनीति विज्ञान में ‘लोकतंत्र’ चर्चा का विषय रहा है। लोकतंत्र के अंग्रेजी पर्याय ‘डेमोक्रेसी’ शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक मूल के शब्द ‘डेमोस’ से हुयी है जिसका अर्थ है ‘जनसाधारण’। इसमें ‘क्रेसी’ शब्द जोड़ा गया है जिसका अर्थ है, ‘शासन’ या ‘सरकार’। इस प्रकार ‘लोकतंत्र’ शब्द का मूल अर्थ ही, जनसाधारण या ‘जनता’ का शासन है।

ब्राइस के शब्दों में, “ लोकतंत्र शासन का वह प्रकार है जिसमें राज्य के शासन की शक्ति किसी विशेष वर्ग या वर्गों में निहित न होकर सम्पूर्ण जनसमुदाय में निहित है।”¹

सीले के अनुसार “लोकतंत्र वह शासन है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का एक भाग हो।”²

इन परिभाषाओं का मूल अभिप्राय यह है कि लोकतंत्रीय प्रणाली में शासन या सत्ता का अंतिम सूत्र जनसाधारण के हाथों में रहता है ताकि सार्वजनिक नीति जनता की इच्छा के अनुसार और जनता के हित-साधन के उद्देश्य से बनाई जाये और कार्यान्वित की जाये।

यद्यपि लोकतंत्र का वर्तमान रूप इसके प्राचीन रूप जो कि प्राचीन भारत और यूनानी नगर राज्यों विशेषतः एथेंस में प्रचलित था उससे सर्वथा भिन्न है। आज लोकतंत्र केवल राजनीतिक-सामाजिक परिस्थिति ही नहीं, बल्कि शासन और जीवन की लोकजयी धारणा भी है। लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था, व्यक्तिवाद से समष्टिवाद की ओर अग्रसर होती है, इसलिए लोकतंत्र में व्यक्ति का महत्व सर्वोपरि है। एक लोकतांत्रिक राष्ट्र को आरोही-क्रम में इस प्रकार देखा जा सकता है – व्यक्ति परिवार, समाज, प्रदेश और अंततः राष्ट्र। “वह एकमात्र शासन चलाने की व्यवस्था ही नहीं है, वह तो एक विकासशील दर्शन है और जीने का एक ढंग है।”³ लोकतंत्र जनता द्वारा जनता का शासन है। अर्थात् जिस व्यवस्था की चर्चा हो रही है, उसमें जीने वाले व्यक्ति स्वयं पर शासन चलाते हैं। चूँकि शासन को सामूहिक रूप देना होता है। अतः जनता अपनी पसन्द के प्रतिनिधि को चुनती है और एक निश्चित अवधि के लिए उसे शासक बना देती है।

लोकतंत्र मूलतः एक नैतिक व्यवस्था है जिसमें निर्णय का खुलापन है। “लोकतंत्र में समानता के विचार की प्रबलता और समानता का सिद्धान्त प्रचलित होता है।”⁴ वह जनता को बिना किसी रक्तपात के शासक वर्ग को सत्ताच्युत व सत्ताहीन करने का अधिकार देता है। हमारे लोकतंत्र का भविष्य बहुत हद तक जनता और नेता की

महत्वाकांक्षा के साथ जुड़ा है। लोकतंत्र बहुत अच्छी व्यवस्था हो सकती है, वहाँ-जहाँ के पूरे लोग शिक्षित हों, वहाँ-जहाँ निहित स्वार्थ के लिए लोग राजनीति को अपना पेशा नहीं समझते हों। लोकतांत्रिक व्यवस्था ठीक माचिस की तरह है, जिससे हम रोशनी करते हैं, लेकिन यदि उससे हम गरीबों की झोपड़ी जलाने लगे तो वह चीज बुरी भी हो सकती है। डॉ० आशीर्वादम् लिखते हैं “लोकतंत्र से सरकार और जनता के बीच एक सहानुभूतिपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। व्यक्ति चुपचाप स्वीकृति देने वाले के बजाय एक सक्रिय सहयोगी बन जाता है।”⁵

जिस अखण्ड भारत का निर्माण ब्रिटिश सत्ता ने किया था जब हमें सौंपने का मन बनाया तो इस देश में राष्ट्र से ऊपर धर्म हो गया। धर्म के ही नाम पर देश का विभाजन हो गया और अखण्ड भारत खण्डित रूप में ही हमें मिला। लोकतान्त्रिक व्यवस्था ने धर्मनिरपेक्ष भारत की संकल्पना को स्वीकार किया जिससे धर्म के ऊपर राष्ट्र हो गया। इससे यहाँ के निवासी राष्ट्र की एकता के संबंध में सोचने लगे। सन् 1962 में हुए चीनी आक्रमण तथा 1965 एवं 1971 में हुए भारत-पाकिस्तान युद्ध में भारतीय जनता ने राष्ट्रीय एकता का सशक्त परिचय दिया। हर धर्म के लोक राष्ट्र की रक्षा के लिए आगे आये। पिछले पचास से अधिक वर्षों में कुछ अलगाववादी आन्दोलन चले, पंजाब और कश्मीर में उग्रवाद पनपा, किन्तु जन-मानस में घर कर गयी राष्ट्रीय एकता की बलवती इच्छा के आगे अलगाववादियों को पराजय का मुँह देखना पड़ा। सोवियत संघ के विघटन और पाकिस्तान से अलग होकर बने बंगलादेश से ही यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में प्राप्त मौलिक अधिकार और हर क्षेत्र की जनता के प्रतिनिधित्व के कारण ही अलगाववाद को अधिक समय तक जन-समर्थन नहीं मिल पाता। यह भारतीय लोकतंत्र की शक्ति ही है जो अलगाववादी नेताओं को चुनकर संसद में लाती है और वहाँ पारस्परिक संवाद के जरिए उनका मन बदल देती है।

लोकतांत्रिक व्यवस्था से ही हमने स्वतंत्रता के महत्व को सीखा है। जब देश स्वतंत्र हुआ था तो असमाजिक तत्व निर्भय हो गये थे और प्रारम्भिक अराजकता को देखकर अशिक्षित जनता कहती थी कि इससे अच्छा अंग्रेजों का शासन था। किन्तु आज तुलना अंग्रेजों के शासन से न होकर राजनीतिक दलों अथवा गठबन्धन की सरकारों से होती है। साक्षर-निरक्षर सभी को राजनीतिक स्वतंत्रता का अर्थ समझ में आ गया है। जिनके अन्तर्गत व्यक्ति को मतदान देने, निर्वाचित होने, उचित योग्यता होने पर सार्वजनिक पद प्राप्त करने और सरकार के कार्यों की आलोचना करने जैसे अधिकार प्राप्त होते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के शुरुआती वर्षों के अन्दर ही जनता ने राजनीतिक स्वतंत्रता का अर्थ समझ लिया। कांग्रेसी एकाधिकार समाप्त हुआ और 1967 में कई संविद सरकारें बनीं। आपात काल से त्रस्त जनता ने 1977 में इन्दिरा गांधी को अपदस्थ कर दिया, किन्तु जब पाया कि जनता पार्टी में वैचारिक एकता का अभाव है तो उसके टूटने पर फिर श्रीमती गांधी को पदारुढ़ कर दिया। सन् 2004 में तो सारी भविष्यवाणियों एवं चुनाव सर्वेक्षणों को नकारते हुए जनता ने अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व वाले राजग को सत्ता से बाहर कर दिया और कांग्रेस के नेतृत्व वाले यू०पी०ए० को सरकार बनाने का अवसर प्रदान किया। आज: पुनः 2014 में राजग को सत्ता सौंपी है।

आज भारत की लोकतांत्रिक प्रणाली में अनेक समस्याएँ प्रकट हो रही हैं अब हर वर्ग के प्रतिनिधित्व के नाम पर सांसद ऐसे हैं जिनके विरुद्ध आपराधिक मामले चल रहे हैं। इसी प्रकार सरकार की आलोचना करने के अधिकार का भी दुरुपयोग हो रहा है। सरकार की नीति अच्छी हो या खराब, प्रतिपक्षी का मूलमंत्र विरोध के लिए विरोध करना है। संसद की कार्यवाही न चलने देने को एक प्रथा का रूप दिया जा रहा है जिससे महत्वपूर्ण विधेयक या बिना बहस के ही पारित हो जाते हैं या पारित ही नहीं हो पाते हैं। सदस्य बिना काम के दैनिक भत्ता ले लेते हैं। राजनीतिक संस्कृति को विकसित होने नहीं दिया जा रहा है। मर्यादा और परम्परा की धज्जियाँ उड़ायी जाती हैं।

लोकतांत्रिक व्यवस्था ने शोषण और सामाजिक असमानता के विरुद्ध लड़ना सिखाया। स्वतंत्रता प्राप्ति के

समय देश में जमींदारी और सामन्ती प्रथा विद्यमान थी। जमींदारी उन्मूलन के बाद भी बेगार और ग्रामीण मजदूरों का शोषण जारी था। राजनीतिक दलों ने जनता में जागरूकता पैदा की और निर्धन और कमजोर वर्ग को भी अपने हक के लिए लड़ना सिखाया। अल्पविकसित समाज में व्याप्त आरोपित मूल्य के कारण राजा साहब, बाबू साहब साहूकार जी, पुरोहित महाराज आदि को जो सम्मान मिल रहा था, उसमें कमी आयी। उनका स्थान जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों ने ले लिया। अस्पृश्यता को समाप्त किये जाने और इसे अपराध घोषित करने से दलितों को भी आत्म सम्मान का बोध हुआ। लेकिन इसके साथ ही नये शोषक वर्ग का उदय हुआ है। राजनीतिक पहुँच वाले व्यक्ति कोई भी अपराध करके साफ बच निकल रहे हैं और प्रशासन को डरा-धमकाकर तथा जनता में भय उत्पन्न करके चुनाव जीते जा रहे हैं।

लोकतंत्र में सरकार का निर्माण और पतन, लोकमत पर ही निर्भर करता है। सन् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के समय से भारत में लोकमत का बनना शुरू हो गया था। किन्तु स्वतंत्रता की प्राप्ति और स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व पर आधारित नवीन संविधान को अपनाये जाने के बाद लोकमत के निर्माण और उसकी अभिव्यक्ति के साधन शक्तिशाली हुए। प्रारम्भ में स्वस्थ लोकमत के निर्माण में निरक्षरता, जनता की भाग्यवादी प्रवृत्ति, जातिवादी और सम्प्रदायवादी सोच तथा भीषण निर्धनता और तीव्र आर्थिक असमानता बाधाएँ बनकर खड़ी रही। फिर भी परतंत्रता के दुष्प्रभावों को हमने एक बड़ी सीमा तक समाप्त कर दिया है। निरक्षरता और निर्धनता पर विजय मिलते ही भारत की जनता पश्चिमी देशों के समान जागरूक हो जायेगी।

कई प्रदेशों की जनता जाति और क्षेत्रीय भावना के ऊपर उठकर राष्ट्रीय दलों को ही महत्व दे रही हैं। सन् 2004 के चुनाव में पहली बार सम्पूर्ण राष्ट्र की जनता ने इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन का प्रयोग कर मतदान किया। अभी कई विकसित देशों में भी यह प्रणाली नहीं अपनायी गयी है। इन देशों के पत्रकारों एवं शोधकर्ताओं ने कौतूहलपूर्वक भारतीय जनता की जागरूकता को देखा। जम्मू-कश्मीर के चुनाव में विदेशी प्रेक्षकों ने आकर भारत की निष्पक्ष चुनाव प्रणाली को देखा। यह भारतीय जनता की लोकतंत्र में बढ़ती रुचि और सक्षमता को प्रतिबिम्बित करती है। फिर भी यह खेद व्यक्त करने वाली बात है कि चुनावों में जनता की सहभागिता अपेक्षा के अनुरूप नहीं रहती। पढ़े-लिखे व्यक्ति भी मतदान में भाग लेने में अरुचि का प्रदर्शन करते हैं।

विश्लेषण करने पर हम देखते हैं कि जो लोकतांत्रिक व्यवस्था के आदर्श या लक्ष्य हैं वो राजनीतिक दलों या सरकारों द्वारा प्राप्त करने का सच्चे मन से प्रयास नहीं किया जा रहा है। क्योंकि सभी सरकारें यह भूल जाती हैं कि हमारा आधार आखिर है क्या? हमें यहाँ किसने और किस उद्देश्य से भेजा है? और यह भी कि एक निश्चित अवधि के बाद हमें अपने आधार को फिर तलाशना भी है। स्वतंत्रता के नाम पर हमने सीखी है स्वच्छन्दता और उद्ण्डता, आम व्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर हमने विरोधी अथवा विपक्षी के प्रति अमर्यादित भाषा का प्रयोग और यह मानकर चलना कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता केवल मुझे प्राप्त है। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है और यहाँ तो शासन-व्यवस्था में उतने ही बड़े-बड़े पैतरे भी हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए अपरिहार्य शर्त है सशक्त प्रतिपक्ष की उपस्थिति, जिसका अभाव सर्वविदित है। इसके बिना तो सरकारें निरंकुश हो जाया करती हैं। आज प्रतिपक्षी का मूल मंत्र-विरोध करना है, सरकार अच्छा कुछ करे तो 'विरोध' बुरा कुछ करे तो 'विरोध' और सुन्दर स्वादिष्ट निवाले दे दे तो चाहे जो कुछ भी करे, जब तक मुँह में है, बोलने की फुर्सत ही कहाँ है?

साम्प्रदायिकता, जातिवाद, भाषावाद, प्रादेशिकता, क्षेत्रीयता जैसे अधिकांश सुन्दर प्रत्यय युक्त शब्दों का विकास करना हमने सीखा है इस कर्ण प्रिय शासन व्यवस्था से, जिसका इस्तेमाल स्वयं पर शासन चलाने के लिए अत्यावश्यक है हमने भारतीय वोटों को 'हिन्दू वोट', नहीं-नहीं शायद यह एक बड़ा भाग हो जाएगा, यहाँ हम कह सकते हैं सवर्ण वोट, दलित वोट, मुस्लिम वोट, पिछड़ा वोट आदि-आदि, जाने कितने वोटों के प्रकार और हो सकते हैं, मैं बाँट दिया है। सम्भव है हम भविष्य में और कई किस्म के वोटों को इजाद कर लें और खुद पर शासन करने

के लिए उनका इस्तेमाल कर लें क्योंकि निःस्वार्थ भाव से जनता की सेवा करने के लिए शासक की कुर्सी पाना बहुत आवश्यक है और कुर्सी पाने के लिए इस तरह के वोट-बैंकों का प्रयोग निहायत जरूरी हैं। “चिन्ता का विषय यह है कि धर्म निरेपक्षता की राजनीति करने वाले ही इस भारतीय मानस की इज्जत नहीं कर रहे हैं। धर्म और जाति को छोड़कर उनका कोई मुद्दा सूझता ही नहीं है।”⁶

लोकतांत्रिक व्यवस्था तो कहती है यदि चुना हुआ शासक – वर्ग सुशासन नहीं दे सकता है, तो आगे होने वाले चुनाव में हम उसे बेझिझक सत्ता से बेदखल कर सकते हैं। लेकिन वह स्थिति तो तब आएगी न जब हमारा नौकर रूपी भाग्यविधाता उस समय तक हमसे कमजोर रहे। वह स्थिति कल्पना मात्र है, क्योंकि पहली बार वह जब आया था तो घुटने टेके हुए था। तनकर खड़ा होने की शक्ति उसमें नहीं थी। दोनों हथेलियाँ आपस में चिपकी जो थीं। मगर अबकी बार उसकी हथेलियों के बीच है हमारी गर्दन और हमें आदर सहित बैठाना है उसे पुनः उसी कुर्सी पर ताकि हमारी गर्दन की बजाय उसकी हथेलियाँ दबोचने लगे हमारी बड़ी-बड़ी योजनाओं के गरम-गरम नोट।

आज हमने लोकतांत्रिक व्यवस्था से सीखा है चन्द पैसे और कुछ बोतल शराब के बदले अपने सुनहरे और कल्पित भविष्य का सौदा करना। नियत समय तक उसके द्वारा फेंके गए रोटी के टुकड़े पाने के लिए हम बेच देते हैं, अपना जमीर। शायद इसका सबसे बड़ा कारण है हमारी अशिक्षा, हमारी अपारखी क्षमता। यह बड़ी विडंबना है कि हमारे ही बीच की जनता ऐसी-ऐसी नौटंकियाँ और ऐसे-ऐसे कलाकारों को चुनावी प्रचार मंच पर ला खड़ा करती हैं जिन्हें हम अपनी नंगी आँखों से देखने में पूर्णतः असमर्थ होते हैं। हम उनके स्वस्थ मनोरंजक भाषणों से खुश होते हैं और जिसने सबसे मनोहारी मनोरंजन कराया होता है उसके पक्ष में मतदान करने के लिए मतदान केन्द्र पर पहुँच जाते हैं और कर आते एक ऐसी भूल जिस पर पाँच वर्षों तक पश्चाताप के आँसू ही रोये जा सकते हैं और कुछ नहीं। ये हमारी भूल ही उसे हमारा रजिस्टर्ड नौकर बना देती है। डॉ० आशीर्वादम् लिखते हैं— “मतदाताओं की उदासीनता का नतीजा यह होता है कि शक्ति कुछ ऐसे अविवेकी हाथों में चली जाती है जो लम्बे चौड़े वायदों और झूठे तर्कों से जनता को बहलाने और उससे अनुचित लाभ उठाने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं।”⁷

आज राज्यों को बाँटने और उससे होने वाले फायदे की अकाट्य वकालत की जा रही है। हम इसके लिए विकास का तर्क देते हैं। जनता की खुशहाली के लिए विभाजन को आवश्यक बताते हैं। लेकिन भोली-भाली जनता क्या जानती है कि हमारे मन्सूबे क्या हैं? हम सभी सेवक वर्ग ने तो यह विचार मन में भर लिया है कि एक राज्य के रहते तो कोई एक ही व्यक्ति गौरवमयी कुर्सी पा सकता है लेकिन यदि राज्य बँटेंगे तो कुर्सियों की संख्या बढ़ेगी और एकाधिक व्यक्ति कुर्सी का प्रसाद पा सकेंगे।

हमारे पास विकास का मुद्दा तो होता नहीं है। इसलिए हम दूसरे जन समूहों के प्रति घृणा और हिंसा उत्पन्न करने वाली धार्मिक या राष्ट्रवादी भावना को उभार कर उसके बल पर राजनैतिक सत्ता हथियाने की कोशिश करते हैं।⁸ आज दल कुछ ऐसे हथकंडे अपनाते हैं, ताकि बेचारी जनता की भावनाएं आहत हों और वह आ जाये हमारी शरण में इसलिए हम राम और रहीम जैसे मर्यादा पुरुषोत्तमों को भी खींच लाते हैं अपने चुनावी मंच पर और पूरा करवा लेते हैं उनसे वह सब कुछ, जो उनकी मर्यादा के बिल्कुल विपरीत है। बेचारे राम का वह युग तो अब रहा नहीं जब वे बोलते थे, अब तो जैसा हम चाहेंगे, वैसा ही करवा लेंगे उनके बेजुबान पुतले से। अब तो राम व रहीम का नाम ही बोलता है। मंदिर मस्जिद के झगड़े हम उनके लिए करते हैं जिन्होंने अपना सब कुछ छोड़ दिया था झगड़े से बचने के लिए। हमने सीखा है कि इस व्यवस्था से गांधी, नेहरू, शास्त्री आदि नामों को भुनाना और जो कार्य वे जीते- जी करने से कतराते रहे, हम सब कुछ करवा लेते हैं— उनके नाम से। हम बताते हैं निचले वर्ग से विकास का उनका मूल मंत्र और वादे करते हैं— वाघ और बकरी को एक ही घाट पर पानी पिलवाने के। बापू में जो शक्ति उनके युग में नहीं थी, वह शक्ति हम उनमें आरोपित कर देते हैं और उन्हें जूलियस सीजर बना देते हैं।

हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था में कई कमियाँ और कुछ संस्थानात्मक विकृतियाँ हैं जिनका संबंध प्रायः देश में उत्पन्न होने वाले विभिन्न आर्थिक-राजनीतिक संकटों से जोड़ा जाता रहा है, किन्तु कतिपय संकटों के निवारण की कसौटी लोकतांत्रिक व्यवस्था न होकर हमारा नेतृत्व वर्ग ही है। नेतृत्व – वर्ग की सफलताओं और विफलताओं को लोकतांत्रिक व्यवस्था के मत्थे नहीं मढ़ा जा सकता। राजनीतिक अस्थिरता लोकतंत्र की एक प्रबल कमी कही जा सकती है। खण्डित जनादेश के बूते कभी भी स्थिरता की कल्पना बेमानी है। गठबन्धन की सरकारों की सारी ऊर्जा अपनी सरकार बचाने के लिए, सहयोगियों को खुश करने में ही व्यय हो जाती है और देश विकास के बदले विनाश की ओर खिसकता चला जाता है। मनुवादी व्यवस्था की प्रबल विरोधी पार्टियाँ जब उसी के समर्थकों से हाथ मिलाकर सत्ता पर काबिज होती हैं तो लोकतंत्र का मूल उद्देश्य भी शक के घेरे में आ जाता है। हमने घातक बहुदलीय व्यवस्था भी देखी है। राजनीतिक दल कभी भी देश के फायदे के लिए आपस में सहयोग नहीं करते। जैसे- लोकपाल और महिला आरक्षण विधेयकों में देखा जा सकता है, लेकिन जब अपने फायदे की बात आती है तो सारी की सारी संसद समवेत स्वर अलापने लगती है। आप समय-समय पर पारित होते वेतन और भत्ते संबंधी विधेयकों और हाल ही में निर्वाचन आयोग को कमजोर करने की स्थिति आदि में यह बात देख सकते हैं।

वर्तमान में लोकतांत्रिक व्यवस्था की समस्त कमियों का स्थायी समाधान नागरिकों की शिक्षा, जागरूकता और दूरदर्शिता के आलोक में देखा जा सकता है क्योंकि जब देश के नागरिक जागरूक और दूरदर्शी होंगे तो वे उत्पन्न होने वाली समस्याओं का बेहतर समाधान कर पायेंगे। अपनी तमाम खामियों के बावजूद यह लोकतांत्रिक व्यवस्था का ही परिणाम है कि हमारे देश में सत्ता- परिवर्तन बिना किसी खून-खराबे के हो जाता है। सत्ता पक्ष और विरोध पक्ष में सहनशीलता की भावना पल्लवित हो रही है। अधिकांश राजनीतिक दल आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय को अपने घोषणापत्र में शामिल कर रहे हैं। मोटे तौर पर विदेश नीति के मामले में भी आम सहमति बनती दिख रही है। पहले लोकतंत्र की अध्यक्षीय प्रणाली की बात कुछ राजनीतिक दल करते थे, किन्तु अब संसदीय लोकतंत्र पर ही मतैक्य है। जनता अपनी शक्ति को पहचानने लगी है तथा चुनावों के समय बिजली, सड़क, पेयजल, रोजगार आदि के प्रश्न पर खुलकर चर्चा करती है। राष्ट्र निर्माण और विकास की बात करने के लिए राजनीतिक दल विवश किये जा रहे हैं। अतः स्पष्ट तौर पर कहा जा सकता है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था ने भारत में न सिर्फ एक शासन प्रणाली को जन्म दिया है, बल्कि एक नए समाज और संस्कृति के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

संदर्भ सूची

1. Modern Democracy, Vol-I, Page-20.
2. Introduction to political science, Page-324.
3. Dr. Beni Prasad, ABC of Civics, Page-102.
4. Hearnshaw, Democracy at the crossway, Page-17
5. आशीर्वादम्, राजनीतिशास्त्र, पृष्ठ संख्या-360
6. किशन पटनायक, भारतीय राजनीति पर एक दृष्टि, पृष्ठ संख्या-111
7. आशीर्वादम्, राजनीतिशास्त्र, पृष्ठ संख्या-364
8. किशन पटनायक, भारतीय राजनीति पर एक दृष्टि, पृष्ठ संख्या-104



कौटिल्य के राजदर्शन का आधुनिक सन्दर्भ में मूल्यांकन

डॉ० कौशलेन्द्र दीक्षित

असिस्टेन्ट प्रोफेसर—राजनीति शास्त्र
नेशनल पी.जी. कॉलेज, भोगाँव, मैनपुरी, (उ.प्र.)

आचार्य कौटिल्य की दूरदर्शी कूटनीति हजारों वर्ष लम्बी अवधि बीतने के बाद वर्तमान युग में भी राज्य एवं अन्तर्राज्य स्तर पर किसी न किसी रूप में प्रयुक्त हो रही है। 25 अगस्त 1945 को संयुक्त राष्ट्र-संघ की स्थापना इस उद्देश्य से हुई थी कि संसार के विभिन्न देशों को युद्ध जैसी विभीषिका से बचाया जा सकेगा। लेकिन जैसा कि सभी जानते हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ का यह महान उद्देश्य पूरा नहीं हो सका। उसकी स्थापना के बाद विश्व के कई देशों के बीच हुए अनगिनत युद्ध आचार्य कौटिल्य की 'शाङ्गुण्य नीति' के 'विग्रह' एवं 'यान' नामक गुणों की सम्पुष्टि करने के लिए पर्याप्त है। 'संधि' नामक गुण का प्रयोग तो प्रत्येक राष्ट्र-राज्य के द्वारा हो ही रहा है। भूमण्डलीकरण के इस दौर में विश्व का ऐसा कोई देश नहीं है जिसे किसी दूसरे देश के साथ सन्धि करनी न पड़ी हो। वास्तविकता यह है कि आज विभिन्न देशों के बीच उत्तरोत्तर बढ़ती प्रतिस्पर्धा बड़ा सार्थक प्रतिफल दे रही है। इस प्रतिस्पर्धा में विश्व का प्रत्येक देश अपने पसंदीदा सहयोगी देशों के साथ विभिन्न समुचित लाभदायक सन्धि-समझौतों के जरिये अपना अधिकाधिक हित करने का प्रयास कर रहा है।

अपने अनुकूल समय की प्रतीक्षा में युद्ध न करके केवल चुपचाप बैठे रहने की 'आसन' नामक नीति का प्रयोग भी आज प्रायः सभी देशों के द्वारा किया जा रहा है। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान भी मुख्य भूमिका निभाने वाले जर्मनी तथा इटली जैसे राष्ट्रों के द्वारा प्रथम विश्व युद्ध में अपनी पराजय के बाद कुछ समय तक चुपचाप बैठकर कौटिल्य की 'आसन' नीति का अनुसरण किया गया था। बाद में अपेक्षित शक्ति संचय करके उन्होंने द्वितीय विश्व युद्ध में कौटिल्य के 'विग्रह' एवं 'यान' गुणों का अनुगमन किया था। इसके अतिरिक्त शीत युद्ध के दौरान सारा विश्व जो दो गुटों में बँटा था उसके परिपेक्ष्य में आचार्य कौटिल्य की 'संश्रय' नामक कूटनीति का ही अनुसरण स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। क्योंकि उस समय चीन सहित अधिकांश पश्चिमी यूरोपीय देशों ने सोवियत सैन्य खतरे को अनुभूत कर अमेरिका की शरण तथा रक्षाकवच धारण करने का प्रयत्न किया था। दूसरी ओर अन्य देशों को सोवियत रूस का आश्रय लेना पड़ा था। इसका परिणाम यह हुआ कि अमेरिका और सोवियत संघ के नेतृत्व वाले दो गठबन्धन एक दूसरे के खिलाफ हो गये। कौटिल्य की 'द्वैधीभाव' नामक नीति का अनुसरण आज विश्व के अमेरिका जैसे विकसित, समर्थ एवं शक्तिशाली राष्ट्र कर रहे हैं। उदाहरणार्थ अभी कुछ समय पूर्व अमेरिका एक ओर इराक पर आक्रमण कर रहा था तो दूसरी ओर वह अपने पुराने मित्र-राष्ट्रों—जर्मनी तथा फ्रांस से इस युद्ध में सहयोग की अपेक्षा कर रहा था तथा वहाँ अन्य देशों के अतिरिक्त सैन्य-दल भेजने का प्रयास कर रहा था। अमेरिका की यह कार्यवाही आचार्य कौटिल्य की 'द्वैधीभाव' नीति का ही प्रतिरूप है।

इसी प्रकार कौटिल्य कूटनीति का 'मण्डल सिद्धान्त' वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भी प्रासंगिक बना हुआ है। शीत-युद्ध काल की विश्व राजनीति में तथा उसके परवर्ती काल में आचार्य कौटिल्य का 'मण्डल सिद्धान्त' किसी न किसी रूप में प्रतिबिम्बित होता हुआ दृष्टिगोचर होता है। राजदूत एवं गुप्तचर व्यवस्था भी कौटिल्यीय कूटनीति का एक अभिन्न अंग थी। राष्ट्रहित में यह नितान्त आवश्यक है कि आचार्य कौटिल्य के दिशा निर्देशों के अनुरूप देश की गुप्तचर व्यवस्था को विकसित एवं सुदृढ़ किया जाये।

कौटिल्य ने वर्णाश्रम धर्म के सम्बन्ध में प्रथम तीन वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य का धर्म-निर्धारण करते समय

अपना आदर्शवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है; तथा उनके लिए प्राचीन एवं पारम्परिक धर्म ही निर्धारित किया है। किन्तु अन्तिम वर्ण, 'शूद्र' के धर्म निर्धारण में उन्होंने यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया है। इस सम्बन्ध में आधुनिक समीक्षकों का यह निष्कर्ष उचित ही प्रतीत होता है कि आचार्य कौटिल्य द्वारा किया गया यह एक बहुत बड़ा सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन था। सभी वर्णों एवं आश्रमों का आदर्शवादी पारम्परिक धर्म-निर्धारण करने के बाद आचार्य कौटिल्य ने अपना यथार्थवादी दृष्टिकोण प्रदर्शित करते हुए उन सभी के लिए अहिंसा, सत्यता, पवित्रता, अद्वेष भाव, उदारता तथा क्षमा आदि उच्च गुणों को अपरिहार्य मानव-धर्म के रूप में निर्धारित किया है।

राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था के अन्तर्गत आचार्य कौटिल्य ने राजा को सर्वाधिक अधिकार देते हुए जहाँ परम्परा एवं आदर्श का निर्वाह किया है, वहीं उसने राजा को अनेक प्रकार के दायित्वों तथा नियमों-उपनियमों द्वारा नियन्त्रित एवं अनुशासित रखकर अपना यथार्थवादी दृष्टिकोण भी परिपुष्ट किया है। कौटिल्य के यथार्थवादी चिन्तन में राजा-महाराजाओं की सुख-सुविधाओं पर उतना ध्यान नहीं दिया है जितना प्रजा की सुख सुविधाओं पर दिया गया है। उसका स्पष्ट कथन है कि प्रजा के सुख में ही राजा का सुख तथा प्रजा के हित में ही राजा का हित है। स्वयं को अच्छे लगने वाले कार्य करने में राजा का हित नहीं; अपितु उसका हित तो प्रजा को अच्छा लगने वाले कार्य में है।

कौटिल्य अकेला एवं प्रथम एक ऐसा प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तक है, जिसने अपने राजदर्शन को धर्म से अलग करने का साहस दिखाया है। वह पूरे अर्थशास्त्र में राज्य की नीतियों का विश्लेषण तथा मूल्यांकन कहीं भी शुद्ध धार्मिक दृष्टिकोण से नहीं करता है। वास्तव में उसकी रचना 'अर्थशास्त्र' राजनीतिक चिन्तन केवल धार्मिक मान्यताओं तथा पुरातन परम्पराओं के आदर्श पर आधारित नहीं है, अपितु तर्क और विवेक के यथार्थ पर आधारित है।

कौटिल्य ने जहाँ एक ओर राज्य कर्मचारियों और अधिकारियों में योग्यता तथा सत्यनिष्ठा आदि गुणों के आदर्श की अपेक्षा की है; वहीं दूसरी ओर उनके अन्दर स्वाभाविक रूप से विद्यमान रिश्वतखोरी एवं भ्रष्टाचारी जैसी दुष्टप्रवृत्तियों का यथार्थ भी उजागर किया है। तभी तो वह कहता है कि 'जैसे जीभ पर रखे हुए मधु अथवा विश का स्वाद लिए बिना नहीं रहा जा सकता है, उसी प्रकार राज्य कार्यों में नियुक्त व्यक्ति धन का थोड़ा भी स्वाद न ले, यह सम्भव नहीं हो सकता है।'

इतिहास साक्षी है कि कौटिल्य के पूर्व शस्त्रास्त्रों की कितनी गम्भीर उपेक्षा हुई थी। सर्वप्रथम वैदिक कर्मकाण्ड तथा यज्ञानुष्ठानों की बहुलता ने शस्त्रास्त्रों को चिरकाल तक उपेक्षित रखा। उसके बाद बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म के 'अहिंसा' सिद्धान्त ने उनमें जंग लगाने का काम किया। इस विकृति से चिन्तित होकर आचार्य कौटिल्य ने राज्य-हित में सैन्य शक्ति को सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से चिरकाल के बाद, शस्त्रास्त्रों का पुनरुद्धार किया था। लेकिन सैन्य शक्ति को सुदृढ़ करने के बाद भी आचार्य कौटिल्य ने पुनः यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए सैनिक युद्ध को कभी अधिक महत्व नहीं दिया। बल्कि उन्होंने 'कूट युद्ध' तथा 'तृष्णी युद्ध' को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया है। क्योंकि इसमें जन-धन की हानि कम होती है। इसलिए सैनिक युद्ध को केवल उन्होंने केवल अन्तिम विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया है। आधुनिक जगत में यह जानकर लोग चकित रह जाते हैं कि आज से लगभग 2300 वर्ष पहले भारत में एक व्यक्ति ऐसा भी हुआ है जो युद्ध के साथ-साथ कूट युद्ध और शीत युद्ध से भी परिचित था तथा उन्होंने सशस्त्र युद्धों से भी अधिक कारगर एवं प्रभावशाली मानता था। आचार्य कौटिल्य का यथार्थवादी दृष्टिकोण उसके कृषि विशयक चिन्तन में भी प्रतिबिम्बित होता है। वह अपने राजा और प्रजा को मन्दिर तथा देवालय निर्माण के लिए प्रेरित करता दिखाई दे या न दे; लेकिन बाँध और जलाशय बनवाने की सम्प्रेरणा वह अवश्य देता है।

कौटिलीय अर्थशास्त्र की सार्वभौमिकता – यद्यपि कौटिलीय अर्थशास्त्र नव स्थापित मौर्य साम्राज्य के कुशल

राज्य संचालन हेतु ई.पू. तृतीय-चतुर्थ शताब्दी में लिखा गया ग्रन्थ है, लेकिन उसके राजदर्शन सम्बन्धी दिशा-निर्देश किसी भी कालखण्ड में, किसी भी स्थान पर तथा किसी भी व्यक्ति के लिए उपादेय हो सकते हैं। इसलिए आधुनिक समीक्षकों ने कौटिलीय अर्थशास्त्र को सार्वभौतिकता को उसकी महानतम विशेषताओं में से एक माना है। डॉ. वी.ए. स्मिथ जैसे विद्वानों का यह विचार कि कौटिलीय अर्थशास्त्र में केवल मौर्य साम्राज्य की स्थापना के पूर्व की राजनीतिक स्थितियों को ध्यान में रखकर ही राजनीतिक एवं कूटनीतिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, सर्वमान्य नहीं हो सकता।

ऐतिहासिक तथ्य यह सत्यापित करते हैं कि आचार्य कौटिल्य की व्यावहारिक नीतियों और सिद्धान्तों का पालन करने पर जहाँ राज्यों का अभीष्ट विकास हुआ है वहीं उनका उल्लंघन करने पर परिणाम बड़े हानिकारक रहे हैं स्पष्ट होता है कि कौटिल्य का अर्थशास्त्र एक सार्वभौतिक सार्वकालिक रचना है।

मूल्यांकन – आधुनिक राजनीति में कौटिल्य के राजदर्शन की प्रासंगिकता विषय के शोधपत्र में निम्न महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

- 1— व्यसन-निवारण के सम्बन्ध में कौटिल्य का एक मत आज बड़ा ही अनुकरणीय प्रतीत होता है। वह लिखता है कि राजा को निरालस्य होकर अपने राज्य में व्यसनों के उत्पन्न होने के पहले उनके कारणों का प्रतिकार कर देना चाहिए। अर्थात् रोग उत्पन्न होने के पहले ही उसका पूर्वाभास होते ही उस रोग की जड़ को समाप्त कर देना चाहिए।
- 2— घातक व्यसनग्रस्तता की गहरी तह में जाकर आचार्य कौटिल्य ने पर्याप्त चिन्तन मनन के बाद हमें एक महामंत्र दिया है— समस्त व्यसनों की जड़ अशिक्षा है। क्योंकि अशिक्षित व्यक्ति व्यसनों से उत्पन्न बुराइयों को समझ ही नहीं पाता है। इसलिए वह राजा को सर्वप्रथम अपनी प्रजा को साक्षर एवं शिक्षित बनाने हेतु निर्दिष्ट करता है। अतः यदि हमें इस अशिक्षा जन्य व्यसनग्रस्तता को दूर करना है तो कौटिल्य के उक्त शिक्षा-मंत्र का ध्यान करते हुए अपने देश की असंख्य निरक्षर जनता को साक्षर बनाने के लिए 'सर्वशिक्षा अभियान' जैसे कागजी घोड़े दौड़ाने के बजाये ठोस एवं कारगर नीति अमल में लाने का भागीरथी प्रयास करना होगा।
- 3— आचार्य कौटिल्य का यह चेतावनीपरक निर्देश हमारी चिर-निद्रा और तन्द्रा को भंग करने के लिए पर्याप्त है कि राज्य में व्याप्त बाह्य कोप की अपेक्षा अभ्यान्तर कोप घर में छिपे सर्प की तरह अत्यन्त खतरनाक होता है; इसलिए आभ्यान्तर कोप को पहले शान्त किया जाना आवश्यक है। हमारे देश के वर्तमान भ्रष्टाचार, आतंकवाद, साम्प्रदायिक हिंसा तथा सामाजिक विषमता के कष्टप्रद दलदल में गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाली राज्य की लगभग एक चौथाई जनता के नारकीय जीवन से यहाँ की आम जनता में जो विकराल आभ्यान्तर कोप फैल रहा है, उसके प्रति हम आखिर कब तक अपनी आँखें बन्द किये रहेंगे? इसलिए आज हमें कौटिल्य की उपरोक्त राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान हेतु और अधिक समय गँवाये बिना तत्काल सजग और सावधान होने की आवश्यकता है।
- 4— वित्तीय संकट से जूझ रहे आधुनिक राज्यों को कौटिलीय अर्थशास्त्र से कुछ खास नसीहत मिल सकती है। इस संबंध में आचार्य कौटिल्य का यह निर्देश कि वित्तीय प्रशासन की सफलता 'अर्थानुशासन' पर निर्भर करती है, हमारे लिए एक प्रकाश-स्तम्भ का काम कर सकता है। अपने इस महत्वपूर्ण मत को क्रियान्वित करते हुए उसने राजा को स्पष्ट निर्देश दिया कि वह उद्यमशील होकर सर्वप्रथम 'वित्तीय अनुशासन' कायम करे। उनके अनुसार वित्तीय अनुशासन की पहली शर्त है—मितव्ययिता। उसका स्पष्ट कहना है कि व्यय करते समय आय का अवश्य ध्यान रखा जाये। कहीं ऐसा न हो कि आय कम और व्यय अधिक हो जाये। इस सम्बन्ध में उसका यह निर्देश विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि ऐसा कोई कार्य न किया जाये

जिससे 'धर्म' और अर्थ को क्षति पहुँचे। उक्त निर्देशों से उसका स्पष्ट आशय यह है कि न तो कभी आय से अधिक व्यय हो और न कभी व्यय की मितव्ययिता के पीछे जनकल्याण का कोई कार्य अवरुद्ध हो।

- 5- वर्तमान में सम्पूर्ण देश के सामने भ्रष्टाचार एक समस्या एवं चुनौती बनकर खड़ा है। उसको उखाड़ फेंकने की बातें तो सभी करते हैं किन्तु उपाय किसी के पास नहीं है। सभी ओर से निराश होने के बाद 'अर्थशास्त्र' जैसे प्राचीन ग्रन्थ में भ्रष्टाचार निवारण के कुछ ठोस एवं कारगर उपाय दिखाई देते हैं। भ्रष्टाचार निवारण हेतु आचार्य कौटिल्य ने जो उपाय निर्दिष्ट किये हैं उन सभी का पूर्ण विवेचन इस शोध प्रबन्ध में सम्भव नहीं हो सका है। उसके लिए तो एक स्वतंत्र शोध कार्य किये जाने की आवश्यकता है। यहाँ पर तो भ्रष्टाचार के सम्बन्ध में कौटिल्य का दृष्टिकोण कितनी तार्किक विलक्षणता से भरा है, केवल उसको इंगित करना ही पर्याप्त होगा। भ्रष्टाचारियों के प्रति चेतावनी पर चेतावनी देता हुआ वह आगाह करता है कि जैसे जीभ पर रखे हुए मधु अथवा विष का स्वाद लिए बिना नहीं रहा जा सकता, उसी प्रकार राज्य कार्यों में नियुक्त लोग अर्थ का थोड़ा भी स्वाद न ले, यह असंभव है। भ्रष्टाचारियों पर आगे और करारी चोट करता हुआ वह फिर कहता है कि आकाश में उड़ने वाले पक्षियों की गतिविधि से पार पाना बड़ा कठिन है। कौटिल्य द्वारा किये गये उपरोक्त तीक्ष्ण कटाक्ष सिद्ध करते हैं कि भ्रष्टाचारियों पर उसकी बड़ी पैनी नजर रही है; जिससे बचकर उनकी कोई भी गतिविधि निकल नहीं सकती है। अतः भ्रष्टाचार निवारण की दृष्टि से कौटिलीय अर्थशास्त्र का स्वतंत्र शोधाध्ययन किये जाने की नितान्त आवश्यकता है; ताकि दुर्निवार बनी इस विकराल भ्रष्टाचार समस्या के निवारण हेतु सभी सम्भव कारगर उपाय हमारे समक्ष आ सकें।
- 6- आचार्य कौटिल्य ने पग-पग पर सैन्य शिक्षा एवं सैन्य बल को समृद्ध रखने पर बल दिया है। किसी भी परिस्थिति में वह उनकी उपेक्षा किये जाने की अनुमति नहीं देता है। क्योंकि उनकी उपेक्षा से राज्य दुर्बल होता है। इसलिए हमारा विनम्र सुझाव है कि रक्षा मंत्रालय से सम्बद्ध उच्च अधिकारियों, सैन्य विशेषज्ञों एवं सैन्य विज्ञान से सम्बद्ध शिक्षाविदों को आपस में लिखकर इस गम्भीर विषय पर चिन्तन, मनन करना चाहिए।
- 7- प्राचीनकाल से भी भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है। कृषि एवं पशुपालन यहाँ की आम जनता के दो मुख्य व्यवसाय एवं आजीविका के साधन रहे हैं। यहाँ की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था भी कृषि पर आधारित रही है। इसलिए कौटिल्य ने राजा को उक्त दोनों व्यवसायों में आने वाली सभी प्रकार की बाधाओं को दूर करने हेतु निर्दिष्ट किया है।

भारतीय कौटिल्य के बताये मार्ग पर चलकर अपनी वर्तमान राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान भी अवश्य कर सकते हैं, एक नये सशक्त एवं विकसित भारत का निर्माण अवश्य कर सकते हैं, आचार्य कौटिल्य ने अपनी प्रखर मेधा एवं श्रमशक्ति के द्वारा प्रायः सभी प्राचीन अर्थशास्त्रीय ग्रन्थों का गहन अध्ययन, मनन, चिन्तन, खण्डन-मनन एवं मन्थन करने के बाद उनसे निःसृत साभूत 'नवनीत' के रूप में हमें अपना 'अर्थशास्त्र' जैसा महान ग्रन्थ पहले ही प्रदान कर रखा है। आचार्य कौटिल्य को प्राचीन आचार्यों के जो मत उपयोगी लगे, उन्हें तो उन्होंने स्वीकार कर लिया, लेकिन जो मत उन्हें अनुपयोगी एवं असामयिक प्रतीत हुए उन्हें 'नेति कौटिल्यः' (यह मत कौटिल्य को स्वीकार नहीं) कहकर अमान्य कर दिया। आज वही शैली अपनाते हुए हमें कौटिलीय अर्थशास्त्र के जो सिद्धान्त वर्तमान परिदृश्य के लिए उपयोगी प्रतीत हों, उन्हें हम राष्ट्र हित में स्वीकृत एवं क्रियान्वित कर सकते हैं।

- 8- तत्कालीन गुप्तचर व्यवस्था की व्यापकता देखकर आश्चर्य होता है जिसका जाल राज्य की राजधानी, राजभवन और अन्तःपुर से लेकर गाँवों के किसान, ग्वालों और चरवाहों तक देश के कोने-कोने में बिछा हुआ था। कुल मिलाकर राज्य की विदेश नीति एवं गृहनीति की सफलता वहाँ की गुप्तचर व्यवस्था पर ही आश्रित थी। लेकिन वर्तमान में हमारी लचर गुप्तचर व्यवस्था के कारण यहाँ की विदेश नीति एवं गृह नीति- दोनों के कुछ पक्ष पूर्णतः या अंशतः नाकाम हो रहे हैं। फलस्वरूप विदेशी गुप्तचर एजेंसियाँ हमारे यहाँ

आतंकवादियों के प्रशिक्षण शिविर चला रही है; आये दिन सार्वजनिक एवं धार्मिक स्थलों पर बम विस्फोट कराकर निर्दोश नागरिकों को मरवा रही हैं; महत्वपूर्ण स्थलों और नेताओं को उड़ाने की धमकियाँ दे रही हैं; धमकियों के अनुरूप संसद भवन पर हमला करवा रही हैं। इसलिए यदि हम चाहते हैं कि देश के अन्दर और बाहर हो रही राजद्रोही गतिविधियों पर प्रभावी अंकुश लगे तो हमें कौटिल्य से प्रेरणा लेकर सभी क्षेत्रों में अपनी गुप्तचर व्यवस्था को विकसित एवं चुस्त-दुरुस्त करना नितान्त आवश्यक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कौटिलीय अर्थशास्त्र-वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा, विद्या भवन, वाराणसी-1, 2000
2. कौटिलीय अर्थशास्त्र-उदयवीर शास्त्री, लाहौर, 1925
3. कौटिलीय अर्थशास्त्र-प्राणनाथ वेदालंकार, लाहौर, 1923
4. डॉ. ए. अवस्थी-भारतीय राजनीतिक चिन्तन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, आर.के. अवस्थी, जयपुर-2, 1993
5. के.के. नीलकण्ठ- नन्द-मौर्ययुगीन भारत, मोतीलाल बनारसीदास, शास्त्री, दिल्ली-7, 2000
6. डॉ. काशीप्रसाद- हिन्दू राजतन्त्र, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1942, जायसवाल
7. डॉ. किरण टण्डन- संस्कृत साहित्य में राजनीति: श्रीकृष्ण और चाणक्य के सन्दर्भ में, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, जवाहर नगर, दिल्ली-7, 1990
8. डॉ. मंजुलता शर्मा- कौटिल्य अर्थशास्त्र में राज्यदर्शन, ज्योति प्रकाशन, जयपुर- 15, 2003
9. रजनीकान्त पाण्डेय- कौटिल्य अर्थशास्त्र में सत्ता एवं राजनीति, राधा पब्लिकेशन्स, दरियागंज, नई दिल्ली-2
10. डॉ. श्यामलाल पाण्डेय- कौटिल्य की राज्य व्यवस्था, पवन प्रिटिंग प्रेस, लखनऊ सं. 2013 विक्रमी भारतीय समाजशास्त्र प्रणेता, उत्तर प्रदेश संस्थान, लखनऊ, 1989
11. K.V. Rangaswamy- Some Aspects of Ancient Indian Polity Ayangar Madras, 1935.
12. M.B. Chande- Some Kautilyan Arthasatra Atlantic Publishers & Distributors, New Delhi, 1958.
13. R.P. Kangle- The Kautilya Arthasastra, Motilal Banarsidas, Delhi-7, 2000.
14. T. Ganapati Shastri- rthashastra of Kautilya, Trivendrum, 1924-25.



गांधी और खादी (एक विमर्श)

डॉ० अनुभा श्रीवास्तव

प्रवक्ता राजनीति विज्ञान

हे०न०ब०रा० स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नैनी-इलाहाबाद

वर्तमान समाज मूल्यों के विघटन एवं नैतिकता के अवमूल्यन के दौर से गुजर रहा है। प्राचीन आदर्श, मूल्य, अवधारणायें परिवर्तित स्वरूप में परिभाषित की जा रही हैं। पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण के चलते प्राचीन भारत की समृद्धिशाली एवं गौरवशाली परम्परा को नकारा जा रहा है। व्यक्तिवाद के प्रवाह में व्यक्ति प्रवाहित होता जा रहा है। सम्पूर्ण विश्व का सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवेश प्रदूषित हो चुका है। एक ओर जहां गरीबी, बेरोजगारी, राजनीतिक अवमूल्यन तथा अस्थिरता ने राष्ट्रवादियों के अंदर से मानवीयता के उत्साह को खत्म कर दिया है वहीं दूसरी ओर प्राकृतिक संसाधनों के अनियोजित दोहन, आर्थिक जगत की गंदी प्रतिस्पर्धा, आणविक अस्त्रों के विनाशकारी जखीरे के भंडारण से राष्ट्र एवं सम्पूर्ण विश्व के अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह सा लगता दिखायी दे रहा है।

आजादी के बाद भारत में जो औद्योगिक प्रगति हुयी उसने मानवीय संवेदना के क्षितिज को सीमित बना दिया है। व्यक्ति मशीन बनकर रह गया है तथा स्वहित जीवन का धर्म। उपभोक्तवाद तथा अन्तर्राष्ट्रवाद की अंधी दौड़ में हमने राष्ट्र चिंतन एवं समाज चिन्तन की न केवल वैचारिक विरासत को खो दिया है बल्कि उसे वर्तमान से जोड़ने का प्रयास भी नहीं किया, और न ही उसके आइने से भविष्य को देखने का प्रयास किया। प्राचीन ऋषियों, मुनियों, चिन्तकों, मनीषियों के विचार हमारे अतीत की मूल्यवान धरोहर हैं। ऐसी ही महान विभूति हमारे राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन के महानायक राष्ट्रपिता महात्मा गांधी हैं जिन्होंने ग्रामोद्धार, आर्थिक समता और सामाजिक-आर्थिक सर्वोदय की अमूल्य वैचारिक धरोहर हमें प्रदान की। वास्तव में गांधीजी का आर्थिक-दर्शन भौतिकवादी कम मानवीय मूल्यों पर अधिक आधारित है। गांधी जी एक ऐसी अर्थव्यवस्था के समर्थक थे जो प्रतियोगिता पर आधारित न हो तथा जिसमें समाज के नैतिक मूल्यों का सम्मान हो।

गांधीजी की स्वदेशी की संकल्पना

गांधीजी के लिए 'स्वदेशी' साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष की केवल एक रणनीति मात्र नहीं थी बल्कि वह उनके तत्त्वज्ञान के लौकिक रूपान्तरण की प्रक्रिया की तार्किक परिणति थी। यह अलग बात है कि साध्य और साधन की एकात्मकता के उनके आग्रह के कारण उनके आचार शास्त्र और रणनीति के मध्य विभेद करना न तो सार्थक है न ही सम्भव। स्वयं गांधी जी के शब्दों में "स्वदेशी आत्मा का धर्म है पर वह बिसर गया है, इससे उसके विषय में व्रत लेने की जरूरत रहती है। आत्मा के लिए स्वदेशी का अन्तिम अर्थ हमारे स्थूल सम्बन्धों से आत्यान्तिक मुक्ति है। देह भी उसके लिए परदेशी है क्योंकि देह अन्य आत्माओं के साथ में एकता स्थापित करने में बाधक होती है-उसके कार्य में विघ्न रूप है।"

अतः आत्मा के धर्म से लौकिक आचार का नियम बनने के क्रम में स्वदेशी की अभिव्यक्ति यूँ तो दृष्टिकोण और आचरण के प्रत्येक संदर्भ में होती है किन्तु इस विचार की अनुप्रयुक्ति का सर्वाधिक सटीक और प्रत्यक्ष संदर्भ आर्थिक होता है। गांधीजी ने भी इस तथ्य का संज्ञान किया था। इसी कारण 'स्वदेशी', गांधी की विकेन्द्रीकृत आर्थिक प्रणाली की धारणा की आधारशिला है। तथ्य यह है कि स्थानीय उत्पादन और स्थानीय उपभोग पर आधारित विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का प्रतिमान, स्वदेशी के प्रति प्रेम की नैतिक आधार भूमि पर ही कार्यशील हो सकता है।

स्वदेशी के माध्यम से गांधीजी आर्थिक संदर्भ में सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों को चरितार्थ करना चाहते थे। इस अर्थ में स्वदेशी उनकी अहिंसक अर्थव्यवस्था का मर्मभूत पक्ष है। “चरखा और खादी” स्वदेशी के गांधीय अर्थशास्त्र के सहज प्रतीक थे। उनका मत था कि ये दोनों विकेन्द्रित उत्पादन पद्धति को तो सुनिश्चित करते ही हैं साथ ही आर्थिक प्रणाली के अनिवार्य मानवीय तत्व को भी इंगित करते हैं क्योंकि चरखा और खादी भारत के हजारों गांवों में व्याप्त बेरोजगारी की समस्या को हल करने में निर्णायक हो सकते हैं। चरखा और खादी स्वदेशी के प्रतीकों के रूप में वस्तुतः पूंजी की अपेक्षा श्रम पर निर्भर लघु और कुटीर उद्योगों के महत्व को रेखांकित करते हैं तथा इस प्रकार स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति और राष्ट्रीय समृद्धि के मध्य तादात्म्य स्थापित करते हैं।

रस्किन की भाँति गांधीजी उद्योगवाद को अभिशाप मानते थे। उनका अनुभव था कि उद्योगवाद असंख्य पापों और अनर्थों की जड़ है। अविकसित देशों का शोषण उद्योगवाद का एक आवश्यक अंग है। गांधीजी ने देखा था कि भारत के कतिपय शहरों में बड़े उद्योगों के विस्तार से बहुत लोग गांव छोड़-छोड़कर घनी आबादी वाले शहरों में आने लगे थे। फलस्वरूप ग्रामीण जीवन खण्डित होने लगा, स्वस्थ सामाजिक बंधन और प्रतिवेशी के प्रति प्रेम भावना ढीली पड़ने लगी। व्यक्ति का व्यक्तित्व जैसे अस्तित्वविहीन हो गया, जीवन यंत्रवत एवं नीरस हो गया। गांधी के शब्दों में ‘औद्योगिक विकास’ की सम्पूर्ण प्रक्रिया यंत्रीकरण और अमानवीकरण की राक्षसी प्रक्रिया है। इससे व्यक्ति पतित होता है और अपने अंतर्निहित सद्गुण का कभी भी विकास नहीं कर पाता।

गांधीजी ने लिखा था “मनुष्य का जीवन सर्वोपरि है। जब तक यंत्र मनुष्य पर हमला नहीं करता तब तक तो उसे सहन किया जा सकता है। मनुष्य को जब तक वह पंगु नहीं बना देता तब तक भी उसे सहा जा सकता है किन्तु जब मनुष्य को अपने अस्तित्व का ही खतरा उत्पन्न हो जाये तो भला उसे कैसे सहा जा सकता है।” ऐसा नहीं था कि गांधीजी यंत्रों के बिल्कुल खिलाफ थे। इस बात को अनेक स्थानों पर स्वयं उन्होंने स्वीकार किया था कि “मैं यंत्रों का विरोधी नहीं हूँ मैं तो उनके पागलपन का विरोधी हूँ। मानव के लिए भला उस यंत्र का क्या उपयोग है जिससे हजारों हजार व्यक्ति बेकार होकर भूख से सड़को पर मारे-मारे फिरे। मैं तो मानव के किसी एक अंश के लिए नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानवता के लिए सोचता हूँ कि सबको अधिक से अधिक अवसर कैसे मिले। इसीलिए मैं कुछ चुने हुए व्यक्तियों के पास नहीं बल्कि सभी के पास सम्पत्ति देखना चाहता हूँ। आज यंत्र के कारण एक व्यक्ति लाखों व्यक्तियों का मालिक बन जाता है। इसके पीछे मनुष्य का परिश्रम बचाने की मानवीय भावना नहीं बल्कि मुनाफे का शुद्ध लोभ है। इसलिए मैं इस व्यवस्था के विरुद्ध अपनी सम्पूर्ण शक्ति से संघर्ष कर रहा हूँ। मैं सभी यंत्रों के खिलाफ नहीं लेकिन इनके उपयोग को सीमित अवश्य करना चाहता हूँ क्योंकि मेरे विचार से यंत्र मनुष्य के लिए है, मनुष्य यंत्र के लिए नहीं है।

गांधी जी मानते थे कि लघु उद्योगों के प्रोत्साहन के द्वारा हम राष्ट्रीय समृद्धि में ही योगदान करते हैं। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि सच्ची स्वदेशी भावना गृह उद्योगों को प्रोत्साहित और पुनर्जीवन्त करने में निहित है। इसी से लाखों अभाव-ग्रस्त लोगों की भलाई हो सकती है। इससे लोगों की सृजनात्मक क्षमताओं और कार्यकुशलता को भी अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है। यह रोजगार की तलाश में लगे देश के हजारों नौजवानों को सार्थक रोजगार दे सकती है। उस सारी ऊर्जा का सद्विनियोग हो सकता है जो वर्तमान में व्यर्थ ही जाया हो रही है। मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि ऐसे लोग जो अधिक उपादेय व्यवसायों में लगे हैं वे उन्हें छोड़कर छोटे उद्योगों या चरखा चलाने में लग जायें। मेरा आशय उन लोगों से है जो बेरोजगार हैं वे कुटीर उद्योगों में से किसी को अपनाकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए साधन जुटा सकते हैं।

गांधीजी का विश्वास था कि चरखा “स्वदेशी के प्रोत्साहन और साथ ही स्वावलम्बन की भावना” के विकास का प्रभावी माध्यम बन सकता था और समाज को शोषण से मुक्ति दिलाने में निर्णायक हो सकता था। इस अर्थ में वह आम जनता की आशाओं का प्रतीक था। चरखे का अर्थशास्त्र सामूहिक रूप से ग्रामीण आर्थिक

गतिविधियों की उपादेयता को इंगित करता है तथा इसके विपरीत चरखे की विदाई ग्रामीण अर्थव्यवस्था के निष्क्रिय हो जाने को इंगित करती है। गांधीजी ने याद दिलाया कि चरखे की विदाई के कारण भारत के गांव विविध रोजगारों, साथ ही अपनी सृजनात्मक प्रतिभा से तथा उनके माध्यम से अर्जित होने वाली आर्थिक प्राप्तियों से वंचित हो गये। इस प्रकार उनके मत में चरखा, स्वदेशी और स्वदेशी आत्मनिर्भरता ग्राम्य जीवन का पर्याय है। इस संदर्भ में स्वदेशी का गांधीय तर्क सरल और सुग्राह्य है। यदि ग्रामों में निवास करने वाले लोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ग्रामों में उत्पादित वस्तुओं का उपयोग करने की अपेक्षा, बाहर उत्पादित की गयी वस्तुओं का प्रयोग करेंगे तो वे सहज ही ग्रामीण बेरोजगारी और दरिद्रता का माध्यम बन जायेंगे।

गांधीजी ने यह भी स्पष्ट किया कि स्वदेशी नियम के रूप में किसी बाहरी वस्तु के प्रयोग का निषेध नहीं करता, केवल यह अपेक्षा करता है कि स्थानीय स्तर पर अनुपलब्ध और जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं को ही बाहर से प्राप्त करने का प्रयास किया जाये। गांधीजी के अनुसार “स्वदेशी एक सार्वभौम धर्म है, जिसका अर्थ है, निकटतम उपलब्ध संदर्भों के प्रति कर्तव्यों का पालन प्रारम्भ करने, शनैः शनैः कर्तव्यों की परिधि को व्यापक बनाते जाने की भावना। स्वदेशी में स्वार्थ के लिए कोई स्थान नहीं है। अपने विशुद्ध रूप में स्वदेशी सबकी सेवा का सर्वोत्तम रूप है।” गांधीजी के ‘स्वदेशी’ का अर्थ विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था, ग्राम और स्थानीय सामुदायिक विकास, सबको रोजगार और स्वावलम्बन। इसका अर्थ है—स्थानीय आत्मनिर्भरता और सहभागिता।

खादी का उद्भव

महात्मा गांधी ने अपनी “आत्मकथा” में लिखा है कि मुझे याद नहीं पड़ता कि सन् 1908 तक मैंने चरखा या करघा कही देखा हो। फिर भी मैंने “हिन्द स्वराज” में यह माना था कि चरखे के जरिये हिन्दुस्तान की कंगालियत मिट सकती है और यह बात तो सबके समझने वाली है कि जिस रास्ते से भुखमरी मिटेगी उसी रास्ते स्वराज्य मिलेगा।

गांधीजी ने कहा कि जब वे 1915 में दक्षिण अफ्रीका से हिन्दुस्तान वापस आये तब भी उन्होंने चरखे के दर्शन नहीं किये थे। आश्रम के खुलते ही उसमें करघा शुरू किया गया किन्तु सबसे बड़ी मुश्किल उसे चलाने की थी क्योंकि आश्रम में सब कलम चलाने वाले या व्यापार करना जानने वाले लोग थे इनमें से कोई भी कारीगर नहीं था। आगे चलकर मगनलाल गांधी के प्रयासों के परिणाम स्वरूप आश्रम में एक के बाद एक नये-नये बुनने वाले तैयार हुए। अब आश्रमवासियों को अपने कपड़े खुद तैयार करके पहनने थे। अतः उन्होंने मिल के कपड़े पहनना बंद कर दिया। उन सभी ने निश्चय किया कि वे हथ-करघे पर देशी मिल के सूत का बुना हुआ कपड़ा पहनेंगे। ऐसा करने से हमें बहुत कुछ सीखने को मिला और साथ ही इन बुनकरों की समस्याओं का भी ज्ञान हुआ कि इन बुनकरों को किस प्रकार टगा जाता है और आखिर किस प्रकार वे दिन-दिन कर्जदार होते जाते थे, इन सबकी जानकारी हमें मिली। गांधीजी ने लिखा है कि हमारे द्वारा सब कपड़ा तुरन्त बनाया जा सके ऐसी स्थिति नहीं थी इस कारण बाहर के बुनकरों से अपनी आवश्यकता का कपड़ा बुनवा लेना पड़ता था। देशी मिल के सूत का हाथ से बुना कपड़ा झट मिलता नहीं था। बुनकर सारा अच्छा कपड़ा विलायती सूत का ही बुनते थे क्योंकि हमारी मिलें सूत कातती नहीं थीं। आज भी वे महीन सूत अपेक्षाकृत कम कातती हैं। बहुत महीन तो कात ही नहीं सकतीं। बड़े प्रयत्न के बाद कुछ बुनकर हाथ लगे जिन्होंने देशी सूत का कपड़ा बुन देने की मेहरबानी की। इन बुनकरों को आश्रम की तरफ से यह गारंटी देनी पड़ी थी कि देशी सूत का बना हुआ कपड़ा खरीद लिया जायेगा। इस प्रकार विशेष रूप से तैयार कराया हुआ कपड़ा बुनवाकर हमने पहना और मित्रों ने उसका प्रचार किया। इस प्रकार हम इन मिलों के अवैतनिक एंजेट बने। मिलों के सम्पर्क में आने पर उनकी व्यवस्था और उनकी लाचारी की जानकारी हमें मिली। वास्तव में इन मिलों का उद्देश्य खुद कातकर खुद ही बुनना था। वे हथ-करघे की सहायता स्वेच्छा से नहीं, बल्कि अनिच्छा से करते थे।

गांधीजी कहते हैं कि यह सब देखकर हम हाथ से कातने के लिए अधीर हो उठे। हमने देखा कि जब तक हाथ से कातेगे नहीं तब तक हमारी पराधीनता बनी रहेगी। मिलों के एजेंट बनकर हम कोई देश सेवा कर रहे हैं ऐसा हमें प्रतीत नहीं हुआ। लेकिन इस मार्ग की सबसे बड़ी बाधा यह थी कि न तो कहीं चरखा मिलता था और न कहीं चरखे का चलाने वाला मिलता था। कुकड़ियां आदि भरने के चरखे तो हमारे पास थे, पर उन पर काता जा सकता है इसका तो हमें ख्याल ही नहीं था। एक बार कालिदास वकील एक बहन को खोजकर लाये। उन्होंने कहा कि यह बहन सूत कातकर दिखायेगी। उसके पास एक आश्रमवासी को भेजा, जो इस विषय में कुछ बता सकता था, मैं पूछताछ किया करता था, पर कातने का इजारा तो स्त्री का ही था। अतः एव ओने-कोने में पड़ी हुई कातना जाननेवाली स्त्री तो किसी स्त्री को ही मिल सकती थी।

सन् 1917 में मेरे गुजराती मित्र मुझे भड़ोच शिक्षा परिषद में घसीट ले गये थे। वहां महासाहसी विधवा बहन गंगाबाई मुझे मिली। वह पढ़ी लिखी अधिक नहीं थी पर उनमें हिम्मत और समझदारी साधारणतया जितनी शिक्षित बहनों में होती है उससे अधिक थी। उन्होंने अपने जीवन में अस्पृश्यता की जड़ काट डाली थी, वे बेधड़क अंत्यजों से मिलती थी और उनकी सेवा करती थीं। उनके पास पैसा था, पर उनकी अपनी आवश्यकताये बहुत कम थीं। इन बहन का विशेष परिचय गोधरा की परिषद में प्राप्त हुआ। अपना दुःख मैंने उनके सामने रखा और दमयंती जिसतरह नल की खोज में भटकती थी उसी प्रकार चरखे की खोज में भटकने की प्रतिज्ञा करके उन्होंने मेरा बोझ हल्का कर दिया।

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में खादी का महत्व

भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में खादी का बहुत महत्व रहा है। 1920 के असहयोग आंदोलन में गांधी जी ने भारतीयों को चरखे और खादी के रूप में एक ऐसा ब्रह्मास्त्र दिया था जिसका तोड़ अंग्रेज सरकार के पास नहीं था। हजारों साल से विश्व के सबसे बड़े वस्त्र निर्यातक देश भारत को विदेशी कपड़ों का सबसे बड़ा आयातक देश बनाने में अंग्रेजों को मात्र डेढ़ सौ साल लगे थे। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ही स्वदेशी की महत्वा को स्वीकार किया जाने लगा और आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास के साथ-साथ इसका भी व्यापक प्रचार प्रसार होने लगा था। गांधीजी ने गांवों को आत्मनिर्भर बनाने के लिये खादी के प्रचार प्रसार पर बहुत जोर दिया। गांधीजी के द्वारा असहयोग आंदोलन में खादी के प्रयोग हेतु भारतीय जनमानस का जिस प्रकार आवहन किया गया उसे तत्कालीन साहित्यकारों की रचनाओं में देखा जा सकता है। स्वदेशी आन्दोलन के दौरान आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की कविता “स्वदेशी वस्त्र का स्वीकार” प्रकाशित हुयी थी—

“स्वदेशी वस्त्र का स्वीकार कीजे, विनय इतना हमारा मान लीजे,

शपथ करके विदेशी वस्त्र त्यागो, न जावो पास उससे दूर भागो।

अरे भाई, अरे प्यारे सुनो बात, स्वदेशी वस्त्र से शोभित करो गात,

व्यर्थ क्यों फूंकते हो देश का दाम, करो मत और अपना नाम बदनाम।

गांधीजी ने चरखे को भगवान श्री कृष्ण के सुदर्शन चक्र के रूप में प्रस्तुत किया। गांधीजी के इस सुदर्शन चक्र ने अन्याय और दमन का ऐसा प्रतिकार किया कि अन्यायी और आतातायी भी उनके प्रशंसक बन गये। इसीप्रकार पण्डित सोहन लाल द्विवेदी की कविता “भैरवी” में खादी को भारत के सभी असाध्य आर्थिक रोगों के लिए संजीवनी के रूप में प्रस्तुत किया गया है —

“खादी के धागे-धागे में, अपनेपन का अभिमान भरा।

माता का इसमें मान भरा, अन्यायी का अपमान भरा,

खादी ही भर-भर देश प्रेम का, पयाला मधुर पिलाएगी,

खादी ही दे-दे संजीवन, मुर्दों को पुनः जिलाएगी।

असहयोग आन्दोलन की नींव सितम्बर 1920 में कलकत्ता में होने वाले कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में पड़ी थी। आचार्य जे.बी. कृपलानी जो उस समय बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर थे, जब इस अधिवेशन से वापस आये तो कुछ छात्रों जिनमें विचित्र भाई, राजाराम भाई तथा कपिल भाई आदि ने उनसे मिलकर कलकत्ता अधिवेशन की आंखों देखी घटनाओं को सुना। असहयोग आंदोलन में गांधीजी की अपील पर जे.बी. कृपलानी ने भी विश्वविद्यालय से इस्तीफा दे दिया उनके साथ 25 छात्रों ने भी पढ़ाई छोड़ी और विश्वविद्यालय से बाहर आ गये। उन छात्रों ने कृपलानी के नेतृत्व में चरखा और खादी का काम शुरू किया। उन्ही लोगों ने अपनी संस्था का नाम गांधी आश्रम रखा। उस समय क्रान्तिकारी सतीशचन्द्र मुखर्जी काशी में सन्यास जीवन जी रहे थे। उन्होंने गांधी आश्रम के नाम से पहले 'श्री' जोड़ने का सुझाव दिया। इस तरह आचार्य जे.बी. कृपलानी (जीवन राम भगवान दास) श्री गांधी आश्रम के संस्थापक हुए। तब से यह संस्था खादी का काम कर रही है।

स्वतन्त्रोत्तर भारत में खादी की दुर्दशा

गांधीजी के बाद सर्वोदय आन्दोलन अनाथ, निस्तेज तथा जबरदस्त बिखराव का शिकार हो गया। भूदान आंदोलन की एक लहर आयी और शांत हो गयी। जय प्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रान्ति निरर्थक सिद्ध हुयी। सर्वसेवा संघ के पहले अध्यक्ष और आज के अध्यक्ष को आज विश्वविद्यालय परिसरों या प्रबुद्ध समाज में कितने प्रतिशत लोग जानते हैं। गांधी जी के बाद विनोबा ने खादी मिशन के माध्यम से खादी जगत को सिद्ध करने का प्रयास किया। खादी मिशन के विरोध के बावजूद देश की संस्थाओं के अभिमत को दरकिनार करके 22 मार्च 2013 को राष्ट्रपति जी के जरिये दिल्ली के विज्ञान भवन में "खादी मार्क" को लांच किया गया। खादी मिशन के आह्वान पर देश की संस्थाओं ने उक्त समारोह का बहिष्कार करके एकजुटता का परिचय दिया।

8-9 सितम्बर 2013 में खादी मिशन अहमदाबाद सभा में एक प्रस्ताव पारित हुआ कि 11 मार्च 2014 तक अपेक्षित कार्यवाही नहीं करने पर 12 मार्च 2014 से लक्ष्य प्राप्ति तक संघर्ष किया जायेगा, इसमें जंतर-मंतर पर शान्तिपूर्ण अहिंसक आन्दोलन की बात भी शामिल थी। खादी मिशन के फरवरी 2014 के प्रस्ताव के अनुसार आज स्थिति यह बनी है कि "पिछले चार वर्षों से अधिक समय से खादी रक्षा अभियान चलाया जा रहा है" पिछले तीन वर्षों से एम0डी0ए0 भुगतान में विलम्ब किया जा रहा है इससे संस्थाओं की बड़ी रकमें रुक गयी हैं जिससे संस्थाओं की तरल पूंजी समाप्त हो रही है। संस्थाओं के अनेक अनिवार्य कार्य लम्बे समय तक अटक रहे हैं। खादी मिशन से जुड़े ये समस्त प्रयास यह बताते हैं कि आज अपने ही देश में लोग कितने हताश और निराश हैं।

वर्ष 2013 के अंत में खादी संस्थाओं की वार्षिक रिपोर्ट संसद में प्रस्तुत की गयी थी जिसमें इससे जुड़े कई कटु सत्य उजागर हुए किन्तु यहां पर इन तथ्यों की गहराई और विस्तार में जाना सम्भव नहीं है। लेकिन यह बताना आवश्यक है कि आजादी मिलने के बाद खादी क्षेत्र के सम्बन्ध में कई बार जांच पड़ताल और समीक्षाएं हो चुकी हैं। जवाहर लाल नेहरू ने जब खादी क्षेत्र को सरकारी दायरे में लेने का फैसला किया तो गांधीवादी अर्थशास्त्री प्रो० ज्ञानचंद की अध्यक्षता में ज्ञानचंद समिति बनायी गयी थी। खादी पर पुनः कुछ दिनों के बाद अशोक मेहता समिति बनी थी। इन्दिरा गांधी द्वारा रामकृष्णय्या समिति बनायी गयी। पी०वी० नरसिम्हाराव ने अपने नेताओं की राह पर एक कदम और आगे बढ़ाया उन्होंने अपनी अध्यक्षता में ही एक उच्चाधिकार समिति गठित की। यह अलग बात है कि उस समिति की रिपोर्ट पर नरसिम्हाराव सरकार ने अमल नहीं किया। हम सब जानते हैं कि नरसिम्हाराव खादी को अच्छी तरह जानते-मानते और समझते थे उन्होंने 1994 में गांधीजी की 125 जयंती के समय जब वैश्वीकरण और उदारीकरण से जुड़े आर्थिक सुधारों का दौर पूरे उमंग और उत्साह के साथ चल रहा था, तब गांधी स्मृति से जुड़े सभी संग्रहालयों को कुछ करोड़ रुपया स्थायी निधि के रूप में दिया गया था। उसी

निधि से वर्धा में “मगन संग्रहालय” का भी नवीनीकरण हुआ था जहां एक बड़े कक्ष में नये पुराने चरखों का संग्रह दर्शकों के लिए उत्सुकता का विषय रहता है। संग्रग सरकार के घोषणा पत्र में यह वादा था कि खादी ग्रामोद्योग सेक्टर को वरीयता दी जायेगी और एक करोड़ लोगों को रोजगार दिया जायेगा इसीतरह से आगे आने वाली सरकारों ने भी वादे किये लेकिन नये रोजगार की तो बात ही बहुत दूर रह गयी है जो कारीगर खादी क्षेत्र में लगे थे वे भी बेरोजगार हो रहे हैं। तथ्यों से यह उजागर होता है कि लगातार राजनीतिक उपेक्षा का शिकार होने के कारण खादी की जो दुर्दशा प्रारम्भ हुयी थी वह आज भी उसी तरह जारी है।

चरखा संघ और ग्रामोद्योग की पहली पीढ़ी ने एक प्रतिबद्ध और सक्षम नेतृत्व अपने पीछे छोड़ा था। समय साक्षी है कि तीसरी और चौथी पीढ़ी में वह समर्पण, प्रतिबद्धता और क्षमता आगे नहीं बढ़ी आज तो बहुत प्रयास से ढूढने पर गिने चुने लोग ही दिखायी पड़ते हैं। 10-15 साल पहले अच्छी संस्थाओं को प्रोत्साहित करने के लिए जब कुछ बिन्दुओं को कसौटी बनाकर संस्थाओं का श्रेणीकरण किया गया तो पाया गया कि कुल 3500 में से लगभग आधी संस्थाएं जालसाजी और भ्रष्ट आचरण में शामिल थी, जिन्हें अधिकांश नेताओं, अफसरों तथा दलालों ने मिल जुलकर खड़ा किया था और उनका दबदबा बन गया था।

खादी ग्रामोद्योग की मूल समस्या नीतिगत है। खादी ग्रामोद्योग के पहले अध्यक्ष बैकुण्ठ भाई मेहता और दूसरे अध्यक्ष ढेबर भाई के बाद इस क्षेत्र को वैसा मजबूत, संजीदा और दीर्घकालीन नेतृत्व नहीं मिला। 1977 में जनता सरकार में पुनः अवसर आया था लेकिन वह बहुत सीमित रहा। मुम्बई मुख्यालय होने के कारण मुख्य कार्यकारी अधिकारी का पद आई0ए0एस0 अफसरों के लिए आकर्षण का केन्द्र रहा लेकिन उन्होंने इस चुनौतीपूर्ण काम में कोई ठोस योगदान नहीं किया। कुछ ने तो इसे आरामगाह और सैरसपाटे की जगह मान लिया। राज्यों के बोर्ड में इससे भी खराब स्थिति रहीं। इसमें कुछ इने गिने अपवाद भी है। लेकिन लगभग नगण्य संख्या में।

राजग सरकार के दिनों में एक सवाल राज्यसभा में खादी ग्रामोद्योग आयोग के बारे में पूछा गया जिन्होंने सवाल पूछा वह भाजपा के बड़े नेता वेद प्रकाश गोयल थे। उस समय लघु आयोग, कृषि एवं ग्रामीण उद्योग मंत्रालय में वसुंधरा राजे राज्यमंत्री थीं, तब यह आयोग इसी मंत्रालय में था उन्होंने जवाब में माना कि खादी ग्रामोद्योग आयोग के पुनर्गठन पर रिपोर्ट बनाने का काम “आर्थर एंडरसन कम्पनी” को दिया गया है। उदारीकरण की यह महिमा ही मानी जायेगी कि खादी जैसे देशज सेक्टर को कैसे चलाना है यह तय करने के लिए एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी को जिम्मा सौंपा गया। इससे कई बुनियादी सवाल खड़े होते हैं—पहला क्या खादी ग्रामोद्योग आयोग ही खादी का पर्याय है? दूसरा—क्या खादी क्षेत्र को अधिक समक्ष, समर्थ और रोजगारपरक बनाने के लिए किसी बहुराष्ट्रीय सलाहकार एजेंसी की मदद जरूरी है।, तीसरा—क्या खादी जगत में ऐसे लोग नहीं हैं जो उसे बेहतर बनाने के सुझाव अपने अनुभवों से दे सकें। खादी की दुर्दशा उस समय और हो गयी जब 2006 में संग्रग सरकार द्वारा अनावश्यक रूप से हस्तक्षेप करते हुए एक नया एक्ट लाया गया। 1956 के पहले एक्ट के बाद 1987 का संशोधित एक्ट आयोग को मजबूती देता था क्योंकि इसमें राजनैतिक हस्तक्षेप को बहुत सीमित कर दिया गया था। लेकिन 2006 के इस नये एक्ट द्वारा आयोग के अध्यक्ष के अधिकार खत्म करके मुख्य कार्यकारी अधिकारी को अधिक अधिकार दिय गये ताकि दिल्ली स्थिति मंत्रालयों के अधिकारी आयोग में मनमाने हस्तक्षेप कर सकें।

इस नये एक्ट ने पिछले 10 वर्षों में आयोग को इतना कमजोर बना दिया कि स्थिति लगातार बिगड़ती गयी। इस पूरी अवधि में आयोग के अपने कैडर को सशक्त और सक्षम बनाने तथा समयानुकूल योग्य, कुशल एवं उच्च क्षमता के युवाओं को जोड़ने का कोई प्रयास नहीं हुआ। संग्रग सरकार यह भूल गयी कि खादी ग्रामोद्योग क्षेत्र स्वाधीनता संग्राम का ध्वजवाहक है। बापू की विरासत है इसे किसी अन्य सरकारी विभाग की तरह नहीं चलाना चाहिए। आयोग के गठबंधन में राजनैतिक छुटभैयों को मौका मिला, इस क्षेत्र के अनुभवी विशेषज्ञों की उपेक्षा हुयी जिसका दुष्परिणाम आज देखा जा सकता है।

खादी के कायाकल्प की आवश्यकता

जब 1920 के दशक में भारत में हाथ से बने खादी वस्त्रों की शुरुआत हुयी तो यह केवल एक ढर्रा नहीं था, यह एक विचारधारा के रूप में सामने आया था। महात्मा गांधी ने खादी को भारत की आत्मनिर्भरता तथा ब्रिटिश कम्पनियों द्वारा बेचे जाने वाले कपड़ों से आजादी का प्रतीक बनाया था। आजादी के बाद नेहरू से लेकर मनमोहन सरकार तक यह प्राचीन देश पश्चिमी दुनिया की भोंड़ी नकल में ही व्यस्त रहा। इस दौर में भ्रष्टाचार और बेरोजगारी ने नये रिकार्ड बनाए हैं। प्राकृतिक सम्पदा की लूट ने कोई सीमा नहीं छोड़ी।

आज गांधीजी के इसी देश में खादी दौराहे पर है क्योंकि पिछले कुछ दशकों में सभी अन्तर्राष्ट्रीय मापदण्डों में शहरीकरण को ही विकास का पर्याय मान लिया गया है। इसका पूरा प्रभाव भारत के अर्थशास्त्रियों, योजनाकारों और प्रशासन पर दिखायी पड़ता है। उद्योग व्यापार से जुड़े लोगों की दृष्टि में यही स्वाभाविक गति है और गांवों के उजड़ने में ही सबका हित उन्हें दिखायी पड़ता है। विकास की इस प्रक्रिया में जब गांवों का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा तो खादी और ग्रामोद्योग कैसे जीवित रहेगा यह एक विचारणीय प्रश्न है।

गांधीजी ने “हिन्द स्वराज” में सभ्यता और जीवन शैली से जुड़े अनेक पहलुओं पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि “अगर गांवों का नाश होता है तो भारत का भी नाश हो जाएगा। उस हालत में भारत-भारत नहीं रहेगा दुनिया को उसे जो संदेश देना है उस संदेश को वह खो देगा। अगर हमें स्वराज्य की स्थापना अहिंसा के पाये पर करनी है तो गांवों को उनका उचित स्थान देना होगा”। ग्रामोद्योग का यदि लोप हो गया, तो भारत के सात लाख गांवों का सर्वनाश ही समझिए। भारत के खादी उद्योग के मुताबिक पूरे देश में इस उद्योग में 10 लाख से ज्यादा लोग लगे हुये हैं।

आज खादी का मूल संकट दो प्रकार का है— एक उत्पादन और दूसरा रोजगार। खादी में दोनों घट रहा है। सर्वप्रथम हमें यह जानना होगा कि खादी और ग्रामोद्योग दोनों अलग-अलग हैं किन्तु दोनों एक दूसरे के सहायक हैं। गांधीजी ने भी कहा था कि “खादी एक विचार है, एक संदेश है, एक दर्शन है।” जहां तक खादी में उत्पादन और रोजगार घटने का सवाल है तो उत्तर भारत में सदैव परम्परागत खादी का उत्पादन होता रहा है। जो आज की परिवर्तित तकनीक की दौड़ में पीछे हो गयी। इससे लोगों ने न केवल परम्परागत चरखे पर काम करा बन्द कर दिया बल्कि खादी के क्षेत्र में मजदूरों की संख्या में भी कमी आयी। खादी संस्थाओं को अपने काम के लिये एक वर्किंग फंड दिया जाता था तथा उनके काम की समीक्षा होती थी। बाद में इसे आवश्यकतानुसार बढ़ाया भी जा सकता था इससे खादी संस्थाओं का धीरे-धीरे विकास होता था। आगे चलकर उत्पादन बढ़ाने के लिए खादी संस्थाओं को बैंकों के जरिये बड़ी रकम दी जाने लगी। खादी संस्थाओं को यह बात मालूम नहीं था कि यह रकम उन्हें बैंकों को सूद समेत लौटानी होगी क्योंकि इससे पहले उन्हें यह रकम लौटानी नहीं पड़ती थी। इस गफलत में खादी संस्थाओं का वर्किंग फंड भी बैंक के पास चला गया। इससे खादी संस्थाएं चरमरा गयी। जिससे न केवल उनका उत्पादन प्रभावित हुआ बल्कि रोजगार भी प्रभावित हुआ।

खादी में अभी भी अपार सम्भावनाएँ हैं चाहे हम समाज के समान आर्थिक विकास की बात करे या विकेंद्रित आर्थिक विकास की या भावी पीढ़ी के युवाओं को रोजगार देने की। खादी को पुनर्जीवित करने के लिए सरकार को चौतरफा प्रयास करना होगा। आज खादी को बेहतर बनाने हेतु निम्न उपाय करने होंगे—

- सभी खादी संस्थाओं को बैंक ऋण या सरकारी अनुदान देने की अपेक्षा वर्किंग फंड दिया जाना चाहिए ताकि उसकी देख-रेख हो तथा संस्थाओं के कार्यों की समीक्षा हो। साथ ही समीक्षा के बाद आवश्यकतानुसार उस वर्किंग फंड को बढ़ाया जा सके।
- 2006 के जिस नये कानून द्वारा खादी आयोग के अध्यक्ष के अधिकार खत्म किये गये थे इस कानून को बदलकर 1987 के एक्ट को पुनः प्रतिष्ठित करना होगा।

- यदि खादी को पुनर्जीवित करना है तो सरकार को इसपर स्पष्ट रूप से सोचना होगा कि यह सरकार के एक विभाग के रूप में कार्य करे या स्वायत्तत्व संस्था के रूप में आवश्यकता इसकी स्वायत्ता को पुनः स्थापित करने की हैं।
- खादी को आज के प्रतिस्पर्धी बाजारवादी व्यवस्था से जोड़ने के लिए खादी और ग्रामोद्योग को अलग-अलग कर देना चाहिए।
- खादी संस्थाओं के फंड, उनके स्टॉक, उन्हें मिलने वाली वित्तीय सहायता तथा उनके बजट आदि पर सरकार को योजनाबद्ध ढंग से कार्य करने की जरूरत है।
- भारत के संतुलित आर्थिक विकास में खादी एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें हर हाथ को काम दिया जा सकता है। अगर इस पर सरकार समुचित ध्यान दे तो यह बेरोजगारी की समस्या को हल करने एक सशक्त माध्यम बन सकता है।
- साथ ही खादी को एक मिशन के रूप में लेना होगा और इससे उन लोगों को जोड़ना होगा जो इसे एक मिशन के रूप में देखते हैं।
- शोध एवं विकास तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की दृष्टि से महात्मा गांधी संस्थान को सुदृढ़ करना होगा और इस कार्य में समुचित निवेश करना होगा।
- ग्रामीण क्षेत्रों में उद्यमियों और बुनकरों को नवाचार के लिए प्रोत्साहित करना होगा। इसमें महिलाओं को विशेष प्राथमिकता देने की आवश्यकता है।
- खादी ग्रामोद्योग क्षेत्र में विपणन और संस्थागत आधारभूत ढांचा विद्यमान है इसे समुन्नयन और आधुनिकीकृत करते हुए इसका समुचित उपयोग हो सकता है। इस हेतु समानधर्मी स्वदेशी नेटवर्क स्थापित करना होगा।

इस दुश्चक्र के पार अभी भी खादी में अपार सम्भावनाएं विद्यमान हैं। सूक्ष्म, लघु एवं मझोले उपक्रम मंत्री कलराज मिश्र ने जून 2015 को 'खादी डेनिम प्रदर्शनी' के उद्घाटन के मौके पर कहा कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के द्वारा अपने रेडियो सम्बोधन 'मन की बात' में लोगों से खादी का कम से कम एक परिधान खरीदने को कहा गया था। मोदी की इस अपील के बाद खादी की बिक्री 60 प्रतिशत तक बढ़ी है। कलराज मिश्र ने न केवल बाजार आधारित बल्कि उत्पाद आधारित खादी के विनिर्माण पर जोर देते हुए कहा कि देश-विदेश में भी खादी की काफी मांग बढ़ी है।

देश में अभी से चर्चा शुरू हो गयी है कि पांच साल बाद 2019 में महात्मा गांधी के 150 वर्ष होने पर सार्द्धशती समारोह मनाया जाएगा। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने उसके लिए समयबद्ध कार्यक्रम तय किया है। मोदी ने निर्मल गंगा के साथ स्वच्छ भारत की बात जोड़कर गांधी का स्मरण किया और बापू के चरणों में भारत की इस भेंट के लक्ष्य को समयबद्ध बनाकर प्रभावी ढंग से रेखांकित कर दिया है। पर इस परिपेक्ष्य में एक प्रश्न अभी भी बना हुआ है कि खादी का क्या होगा? रोजगार सृजन में खादी की कोई भूमिका होगी क्या? भारत जिस प्रकार एक महाशक्ति बनने के स्वप्न और लक्ष्य को रखकर आगे बढ़ रहा है तथा जिस तेजी से अगले कुछ वर्षों में 100 नए शहरों को विकसित करने की योजना आगे बढ़ रही है। उससे एक गम्भीर खतरा गांव के अस्तित्व को लेकर खड़ा हो गया है। जब गांव ही नहीं बचेंगे तो हथ-करघा और कुटीर उद्योगों का क्या होगा? इन प्रश्नों के हल वर्तमान सरकार एवं समाज को ढूंढना पड़ेगा। खादी की दिशा और लक्ष्य स्पष्ट होने पर ही यह क्षेत्र राष्ट्रीय प्रगति में उल्लेखनीय व व्यापक योगदान कर सकता है।

संदर्भ सूची

1. गांधी—“हरिजन”, (9 फरवरी 1934, 20 जून 1936)

2. गांधी—“ग्राम स्वराज”, नवजीवन प्रकाशन
3. ‘यंग इण्डिया’, 13 जुलाई 1934
4. ‘द हिन्दू’, 26 जुलाई 1934
5. कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, खण्ड—78
6. महात्मा गांधी — “आत्मकथा”
7. www.mkgandhi.org
8. www.knic.org.in
9. www.gandhiforchildren.org
10. www.encyclopedia.com
11. <https://en.m.wikipedia.org>



भारत छोड़ो आन्दोलन परिस्थितियाँ व कार्यक्रम

डॉ. सुप्रिया वर्मा

प्रवक्ता इतिहास

चित्रा पी.जी. कॉलेज, नौबस्ता, कानपुर

लार्ड इरविन ने दमनकारी नीति का सहारा लेकर यूँ तो सविनय अवज्ञा आन्दोलन को दबाने का भरसक प्रयास किया। इसी के तहत देश के लोकप्रिय नेताओं को अनिश्चित काल के लिए जेलों में ढूँस दिया गया लेकिन सरकार भी विवश थी। आखिर कब तक जेलों में नेताओं को कैद किया जा सकता था। अतः 25 जनवरी को वाइसराय लार्ड इरविन ने वक्तव्य दिया जिसमें कहा गया कि भारत सरकार कांग्रेस कार्य समिति के 1 जनवरी 1930 से आज तक के सदस्यों को स्वतन्त्र रूप से देश की राजनीतिक समस्या पर विचार करने का अवसर देना चाहती है। इस उद्देश्य से कार्य समिति के उक्त सदस्यों के ऊपर लगाये गये सभी प्रतिबन्ध, जिनमें कारावास दण्ड भी शामिल था हटा दिये जायेंगे।¹ सरकार कांग्रेस के साथ समझौता करने को लालायित थी। 1930 की शरद को समझौते की बात हुयी लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला। 20 जनवरी 1930 को प्रधानमंत्री मैकडोनेल्ड ने गोलमेज सम्मेलन में ऐलान किया।

प्रथम गोलमेज सम्मेलन में कांग्रेस को छोड़कर नरम दल, मुस्लिम लीग, देशी राज्यों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। गोल मेज सम्मेलन बिना किसी नतीजे के स्थगित कर दिया गया, जिससे कांग्रेस भी उसमें शामिल हो सके।

26 जनवरी 1931 को गाँधी सहित कांग्रेस कार्य समिति के 19 सदस्यों को जेलों से रिहा कर दिया गया। 6 फरवरी 1931 को सप्रू, जयकर, श्रीनिवास शास्त्री भारत वापस आये और वहाँ की सम्पूर्ण वार्ता से कांग्रेस कार्यकारिणी को अवगत किया। गाँधी इरविन बातों का प्रथम दौर 17 फरवरी को प्रारम्भ हुआ।²

प्रथम तीन दिवसीय वार्ता में गाँधी जी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित करने के सम्बन्ध में सत्याग्रहियों की बिना शर्त रिहाई, छिनी गयी सम्पत्ति की वापसी, त्यागपत्र देने वाले सरकारी कर्मचारियों की पुनर्नियुक्ति, पुलिस के अत्याचारों की जाँच, धरना देने के अधिकार, नमक कानून की समाप्ति, आन्दोलन के उन्मूलन के सम्बन्ध में जारी किये गये अध्यादेशों की वापसी आदि पर जोर दिया गया ताकि वार्ता का वातावरण तैयार हो सके। 27 फरवरी से पुनः वार्ता प्रारम्भ हुयी और 4 मार्च तक चली। गाँधी जी ने वाइसराय को स्पष्ट कर दिया कि वे जो भी बातें करते हैं उनका अन्तिम निर्णय कांग्रेस कार्यसमिति करेगी। 5 मार्च 1931 को समझौता वार्ता को अन्तिम रूप दिया गया।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन समाप्त किया जाय, संवैधानिक सुधारों के सम्बन्ध में संघीय सिद्धान्त तथा प्रतिरक्षा, विदेशी मामलों, अल्पसंख्यकों, भारत की वित्तीय व्यवस्था आदि के बारे में कुछ रक्षा कवचों की अपरिहार्यता को जैसा कि गोलमेज परिषद में स्वीकार किया गया था। प्रधानमंत्री की घोषणानुसार कांग्रेस के प्रतिनिधियों को भी संवैधानिक सुधार योजना पर आगे विचार के लिए आमंत्रित किया गया।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के सत्याग्रही कानून उल्लंघन, कर न देने, आन्दोलन का प्रचार करने, नागरिक व सैनिक कर्मचारियों को त्यागपत्र देने के कार्यकलाप नहीं करेंगे, भारतीय माल के प्रचार में सरकार को कोई आपत्ति नहीं है किन्तु ब्रिटिश माल का प्रचार का बहिष्कार नहीं किया जायेगा। विदेशी माल व शराब विरोधी धरने सामान्य कानून के अन्तर्गत ही हो सकेंगे। आन्दोलन के विरुद्ध जारी अध्यादेश सरकार वापस ले लेगी। जिन व्यक्तियों पर अभियोग नहीं चलाया गया उन्हें वापस ले लेगी।

अहिंसात्मक कृत्यों के लिए कारावास से बंदी रिहा कर दिये जायेंगे, जो अर्थदण्ड वसूले नहीं गये हैं, वे वापस लिये जायेंगे, किन्तु वसूले गये अर्थदण्ड गलत न होंगे। राजनीतिक दृष्टि से बायकाट नहीं होगा। धरना इस तरह न दिया जाये कि जनकार्य में बाधा पहुँचे। विरोध प्रदर्शनों के दौरान जनता से जोर जबरदस्ती न होगी। इसी तरह की शर्तों के साथ सरकार ने एक हाथ से जो दिया दूसरे से वापस ले लिया।

एक बार फिर जब जन आन्दोलन प्रबल वेग से बढ़ रहा था तभी अचानक उसे रोक दिया गया।³

भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन तथा सांविधानिक विकास के इतिहास में 1931 के कराची अधिवेशन का अत्यन्त महत्व है। 1930 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में कांग्रेस का रुख पूर्णतया क्रान्तिकारी रहा, बड़े-बड़े नेता जेलों में डाल दिये गये। गाँधी इरविन समझौते के ठीक एक माह बाद इस अधिवेशन का होना आवश्यक समझा गया, ताकि सम्पूर्ण कांग्रेस उक्त समझौते तथा प्रधानमंत्री की घोषणा पर विचार करते हुए देश की वर्तमान राजनीतिक परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में अपना भावी कार्यक्रम तथा नीति तय कर ले। गाँधी ने सविनय अवज्ञा को स्थगित कर दिया। परन्तु स्वयंसेवकों के द्वारा अत्यन्त नियन्त्रित संयमित एवं अनुशासित ढंग से शराबबंदी तथा ब्रिटिश व विदेशी कपड़े के बहिष्कार आन्दोलन में धरना देने के कार्यक्रम को नहीं छोड़ा था।⁴

इस अधिवेशन के लिए सरदार पटेल अध्यक्ष चुने गये। इस अधिवेशन के समय दो ऐसी घटनायें घटीं जिससे अधिवेशन का वातावरण विषादपूर्ण हो गया था। एक थी भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव को मृत्युदण्ड तथा दूसरी कानपुर में साम्प्रदायिक दंगों के दौरान गणेशंकर विद्यार्थी की हत्या।

इस अधिवेशन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रस्ताव देश के भावी संविधान में मूल अधिकारों के समावेश करने के सम्बन्ध में था। स्वतन्त्र भारत के संविधान में जिन मूल अधिकारों तथा राज्य की नीति निर्देशक तत्वों को उल्लेख किया गया है वे सभी इसी अधिवेशन द्वारा प्रस्तावित किया गया था। साथ ही वयस्क मताधिकार, संयुक्त निर्वाचन प्रणाली, लोक सेवा आयोग द्वारा सरकारी नौकरियों में नियुक्ति, अवसर की समानता, साम्प्रदायिक वर्गों के लिए नौकरियों में समुचित स्थान सुरक्षित किये जाने, केन्द्र व प्रान्तों के मंत्रिमण्डलों में उनके हितों के प्रतिनिधित्व तथा भारत से ऐसे संघ के निर्माण की व्यवस्था के प्रस्ताव थे, जिसके अन्तर्गत प्रान्तों के हाथ में अवशिष्ट शक्तियाँ रहे। पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त तथा सिन्ध को पूर्ण प्रान्त को स्थिति प्रदान किये जाने तथा वर्मा को वहाँ की जनता की इच्छानुसार भारत से पृथक् किये जाने के प्रस्ताव भी पास किये।

1928 से अब तक जिन्ना व मुस्लिम लीग बहुत हठीली हो चुकी थी। कांग्रेस द्वारा पूर्ण स्वतंत्रता की माँग तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन के अधिकांश मुसलमानों को पूर्णतः पृथक्तावादी बना दिया था।⁵

लार्ड विलिंग्डन नये वाइसराय बनकर आये। उधर ब्रिटेन में भी श्रमिक दल त्याग पत्र दे चुकी थी। नई सरकार में मैकडोनेल्ड प्रधानमंत्री जरूर थे किन्तु रुढ़िवादी दल के हाथ की कठपुतली की तरह थे। बेन भारतमंत्री के पद से त्याग पत्र दे चुके थे। उनका स्थान कट्टरपंथी रुढ़िवादी सैमुअल होर ने लिया।

द्वितीय गोलमेज : सरकार ने द्वितीय गोलमेज का आह्वान किया। पं० मदन मोहन मालवीय, श्रीमती सरोजनी नायडू और गाँधी जी गोलमेज-२ में भाग लेने के लिए इंग्लैण्ड पहुँचे। गाँधी वहाँ सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, जिसमें देसी रियासतें भी शामिल थी।

साम्प्रदायिकता की समस्या का हल इस सम्मेलन के द्वारा भी न हो सका। मुसलमानों के हठीले स्वभाव व ब्रिटिश सरकार के ढिलमुल रवैये के कारण गाँधी इस समस्या के प्रति सभी को गम्भीरता से समझाने में विफल रहे।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन का दूसरा दौर: 28 दिसम्बर 1931 को जब गाँधी जी इंग्लैण्ड से भारत लौटे तो उन्होंने कांग्रेस के नेताओं तथा कार्यकारी समिति के सदस्यों को गोलमेज परिषद तथा ब्रिटिश सरकार के दृष्टिकोण से अवगत कराया।

अतः समिति ने राष्ट्र से पुनः सविनय अवज्ञा आन्दोलन को पूर्ण उत्साह, अहिंसा, सत्यनिष्ठा से चलाने का आह्वान किया। सरकार ने आन्दोलन को बल प्रयोग द्वारा पहले से कुचलने की तैयारी शुरू कर दी। कांग्रेस संगठन को अवैध घोषित कर दिया गया। सीतारमैया के शब्दों में – “1930 के आन्दोलन में पुलिस लाठी चार्ज का सहारा बहुत बाद में दिया गया था परन्तु 1932 के आन्दोलन को कुचलने के लिए इसी साधन से शुरुआत की गयी।⁶ गाँधी, सरदार पटेल, नेहरू, खान अब्दुल गफ्फार ख़ाँ को बंदी बना लिया गया। जहाँ 1930 के सम्पूर्ण आन्दोलन में लगभग 01 लाख व्यक्ति बंदी किये गये थे वहाँ 1932 में थोड़े ही समय में एक लाख बीस हजार के लगभग सत्याग्रही बंदी बना दिये गये। सभाओं में लाठी चार्ज, गोली चलाना, जेलों में बंदियों के साथ अत्याचार, स्त्री बच्चों तक को सताना, स्कूलों में विद्यार्थियों के ऊपर जुल्म करना आदि सब बातें दमन पर तुले शासकों के लिए साधारण सी बातें थीं।⁷

मनमाने अर्थदण्ड देना, लोगों की अचल सम्पत्ति छीनना, मनचाहे ढंग से कर, अर्थदण्ड वसूलना आदि का सिलसिला उग्रतर हो गया। आन्दोलन का दमन करने के लिए मनमाने, अत्याचारी अध्यादेश जारी किये गये। लार्ड विलिंगडन का दावा था कि वह आन्दोलन को 6 सप्ताह में कुचल देगा।

साम्प्रदायिक पंचाट तथा पूना पैक्ट: बीसवीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों में लार्ड कर्जन तथा मिंटों के वाइसरायत्व काल में ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने साम्प्रदायिकता का विष फैलाने में सफलता प्राप्त कर ली थी। 16 अगस्त 1932 को प्रधानमंत्री ने इस सम्बन्ध में जो अपनी नीति बतायी उसे साम्प्रदायिक पंचाट कहा जाता है। इसके अनुसार नयी सांविधानिक व्यवस्था में भारत की प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं में विभिन्न सम्प्रदायों के प्रतिनिधियों के लिए स्थान सुरक्षित करने तथा उनके लिए पृथक निर्वाचन की प्रणालियों को मान्यता दी गयी। इस प्रकार मुसलमानों, सिक्खों, भारतीय ईसाईयों, आंग्ल भारतीयों, महिलाओं के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र होते। अनुसूचित जाति के मतदाताओं को सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों में मतदान का अधिकार रहता। उन्हें 2 मत देने का अधिकार रहता। सारी जनसंख्या में लगभग 45 प्रतिशत हिन्दू थे परन्तु उन्हें केवल 32 प्रतिशत स्थान मिले। मुसलमानों को भी कम स्थान मिले थे किन्तु हिन्दुओं की अपेक्षा ज्यादा स्थान दिये गये। यूरोपियन समुदाय व सिक्खों को गुरुत्व दिया गया। सर्वत्र उन अल्पसंख्यकों को ज्यादा महत्व दिया गया जो सारे देश के जनसंख्या के अनुपात में न्यूनतम थे। हरिजनों को पृथक निर्वाचन का अधिकार देकर हिन्दुओं को विभाजित करने का धिनौना कार्य किया गया।

हरिजनों के प्रतिनिधित्व के लिए 71 से बढ़ाकर 148 स्थान दे दिये गये। किन्तु निर्वाचक पद्धति संयुक्त रखी गयी। केन्द्रीय व्यवस्थापिका के लिए सारे भारत के लिए निर्धारित स्थानों के 18 प्रतिशत स्थान दलित वर्ग के लिए सुरक्षित रखे गये। गाँधी व सरकार ने उपरोक्त योजना को स्वीकार कर लिया और 26 सितम्बर को अनशन तोड़ दिया। इस समझौते को पूना पैक्ट कहते हैं।

21 दिन का उपवास सफलतापूर्वक सम्पन्न कर लेने पर गाँधी को अनुभव हुआ कि सामूहिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन से कोई वास्तविक सफलता प्राप्त नहीं हुयी है, बल्कि सरकार की दमनकारी नीति बढी है, जिसके कारण सत्याग्रहियों और जनता को कष्ट ही हुआ है। अतः 12 जुलाई को पूना में कांग्रेस का एक अनौपचारिक सम्मेलन हुआ, जिसमें सामूहिक सत्याग्रह को स्थगित करने का निश्चय किया गया।

नवम्बर-दिसम्बर 1932 में तृतीय गोलमेज सम्मेलन बुलाया गया, जिसमें 46 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। डॉ० ताराचन्द्र के शब्दों में – “ये केवल दिखावा मात्र है। देसी नरेशों की इसमें कोई अभिरुचि नहीं थी। जिन्ना भी इसमें शामिल नहीं किये गये। सभी प्रतिनिधि ब्रिटिश सरकार की हाँ में हाँ मिलाने वाले थे या कुछ उदार दलीय व्यक्ति थे। इंग्लैण्ड के मजदूर दल ने इसका बहिष्कार किया।

“कांग्रेस युद्ध के समय सरकारी नीति के विरोध में थी। दूसरी ओर वह जर्मनी इटली के फ्रांसिज्म के भी विरुद्ध थी। ऐसी स्थिति में गाँधी जी ने व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा द्वारा सरकार के प्रति विरोध प्रकट करने की सलाह दी।⁸

व्यक्तिगत सत्याग्रह का आरम्भ करने के लिए गाँधी जी ने सर्वप्रथम आचार्य विनोबा भावे को चुना। अक्टूबर 1940 को आन्दोलन का श्रीगणेश विनोबा जी ने किया।

1941 तक यूरोपीय स्थिति अत्यन्त भयंकर हो गयी। जर्मनी ने लगभग सम्पूर्ण यूरोप को पदक्रान्त कर डाला। इन्हीं दिनों जर्मनी और इटली की ओर से जापान भी युद्ध में शामिल हो गया। उसकी सेनाओं ने द्रुत गति से पूर्वी एशियाई क्षेत्रों में अधिकार करना प्रारम्भ कर दिया। इसी कारण भारत की पूर्वी सीमा पर खतरा उत्पन्न हो गया। अतः अंग्रेजों को कांग्रेस के सहयोग की जरूरत प्रतीत हुयी। उन्होंने 1942 में समझौता करने के लिए मजदूर दल के प्रधान नेता सर स्टैफर्ड क्रिप्स को भारत भेजा।

कांग्रेस की दृष्टि से यह योजना अत्यन्त असंतोषजनक थी। दूसरी ओर लीग को पाकिस्तान की दिशा में प्रोत्साहन मिला। क्रिप्स योजना का दूसरा भाग तात्कालिक व्यवस्था के सम्बन्ध में था। ब्रिटिश सरकार जरा भी सत्ता हस्तान्तरित करने के पक्ष में नहीं थी।

गाँधी पाकिस्तान की माँग को अव्यवहारिक समझते थे। अतः उन्होंने मुस्लिम लीग के सहयोग के बिना ही अंग्रेज सरकार के विरुद्ध संग्राम करने का निश्चय किया। गाँधी, मौलाना आजाद, पं० जवाहर लाल नेहरू में बातचीत हुयी, जिसमें समझौते का आधार निकला। महायुद्ध की स्थिति दिन पर दिन गम्भीर होती जा रही थी। जापानी सेना एशियाई देशों की तरफ बढ़ती आ रही थी। रंगून भी अब जापानी अधिकार क्षेत्र में आ गया था। ऐसी स्थिति में गाँधी निष्क्रिय नहीं रह सकते थे। वे सरकार के विरुद्ध पृथक संघर्ष छोड़ने के पक्ष में थे। 5 जुलाई 1942 को 'हरिजन' में उन्होंने लिखा – "अंग्रेजों भारत को जापान के लिए मत छोड़ो बल्कि भारत को भारतीयों के लिए व्यवस्थित रूप से छोड़ जाओ।"⁹

वर्धा में 7-14 जुलाई 1942 को हुयी कांग्रेस कार्य समिति की बैठक में मौलाना अबुल कलाम आजाद, सरोजनी नायडू, जवाहर लाल नेहरू, वल्लभ भाई पटेल, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, पट्टाभिसीतारमैया, गोविन्द वल्लभ पन्त, प्रफुल्ल चन्द्र घोष, सैय्यद महमूद, आसफ अली, जे० वी० कृपलानी, गाँधी इत्यादि ने भाग लिया तथा भारत छोड़ो नामक प्रस्ताव पारित किया।

8 अगस्त को बापू बम्बई पहुँचे। बम्बई की एक विशाल सभा में भारत छोड़ो का नारा दिया। देश की सरहद पर जापानी उमड़े जा रहे थे। अंग्रेज सरकार इस आक्रमण को रोकने में असमर्थ थी। सिंगापुर, रंगून तो जापान के सुपुर्द हो गये थे बापू नहीं चाहते थे कि हिन्दुस्तान को भी जापानी पदाक्रान्त करे। अगर अंग्रेज रक्षा नहीं कर सकते तो निकल जाये। भारतवासी अपनी रक्षा स्वयं कर लेंगे।

अब तो डू और डाई "करना या मरना" ही बाकी था। इसी कारण बापू ने देश को करो या मरो का नारा दिया मानो किसी महायोगी ने देशवासियों को आजादी की दीक्षा दी हो।¹⁰

उद्देश्य : वर्धा में 7 से 14 जुलाई 1942 तथा बम्बई में 4 अगस्त 1942 में हुयी बैठक में गाँधी के मुख्य उद्देश्य निम्न थे –

1. भारत से विदेशी सत्ता का अंत।
2. भारतीयों को किसी भी प्रकार के संकट के लिए जागरुक तथा सशक्त बनाना।
3. विदेशी सत्ता को समाप्त करके साम्प्रदायिक एकता स्थापित करना।
4. स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात संसार के सभी देशों में शोषित लोगों के लिए नैतिक व धार्मिक नेतृत्व स्थापित करना।
5. एशिया के सभी उपनिवेशिक देशों में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सहायता देना।
6. अन्तर्राष्ट्रीय संघ की स्थापना करना।¹¹

उसी क्षण भारत छोड़ो की प्रतिध्वनि चारों ओर गूंजित होने लगी। क्विट इण्डिया आन्दोलन प्रारम्भ हो गया।

आन्दोलन के लिए कार्यक्रम: "हरिजन" में 9 अगस्त 1942 के अंक में अहिंसात्मक आन्दोलन चलाने तथा विदेशी सरकार को पंगु बनाने के तरीके विस्तारपूर्वक बताये गये। इसके अतिरिक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों को भी निर्देश जारी किये गये थे –

प्रथम चरण

1. आन्दोलन को रोकने वाले सभी आदेशों का उल्लंघन
2. नमक बनाना
3. गैर कानूनी सभाओं की खुल्लमखुल्ला सदस्यता।

द्वितीय चरण

1. वकील अपना कार्य छोड़ दे।
2. विद्यार्थी अपने विद्यालय, महाविद्यालय छोड़ें।
3. जज अदालती तलबी को त्यागें।
4. सरकारी कार्यकर्ता अपना पद त्यागें।

तृतीय चरण

1. मजदूरों की हड़ताल

चतुर्थ चरण

1. विदेशी कपड़ों का बहिष्कार
2. शराब की दुकानों का बहिष्कार
3. विदेशी मुद्रा का व्यापार में बहिष्कार

पंचम चरण

कुछ विषयों पर न तो रोक लगाई गई और न ही बढ़ावा दिया गया जैसे –

1. गाड़ियाँ रोकना
2. बिना टिकट सफर करना
3. टेलीफोन तथा टेलीग्राफ के तार काटना

षष्ठम चरण

1. कर न देना
2. फौजों को रोकना
3. आन्दोलनकारियों को बंदी बनाये जाने पर भी आन्दोलन को स्थगित न करना।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने 13 सूत्रीय कार्यक्रम रखा सारे देश में हड़ताल होगी – गाँधी व दूसरे बड़े नेताओं को तत्काल जेलों में डाल दिया गया था। सारे देश में भारत छोड़ो संदेश पहुँचाने हेतु सभायें होंगी। नमक पर लगी रोक का विरोध होगा। देश भर में अहिंसात्मक असहयोग चलाना हमारा उद्देश्य है। विद्यार्थियों को मुख्य भूमिका निभानी होगी। नेताओं के बंदी बनाये जाने पर विद्यार्थी उनका स्थान लेंगे। सरकारी कार्यकर्ता इस्तीफा दें और सरकारी आदेशों का उल्लंघन करें। सेना का प्रत्येक फौजी पहले काँग्रेसी हैं। आत्मीय कष्ट वाली आज्ञाओं का उल्लंघन करें, राजाओं को भी स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेना चाहिये, सभी करो या मरो को अन्तिम उद्देश्य बना ले। सभी धर्मों के लोग इसमें भाग लें। प्रत्येक भारतीय आन्दोलन का नेतृत्व स्वयं करें चरखा अपनायें।

गाँधी की जेल यात्रा पर उनकी पत्नी कस्तूरबा ने मोर्चा संभाला। बम्बई में एक सभा को सम्बोधित करते हुए कहा कि –

“मेरे पति को तो सरकार ले गयी। कहाँ? यह मुझे नहीं मालूम है लेकिन अपना मार्ग स्पष्ट है। आजादी के लिए कुछ करना है। अन्यथा मर जाना है। वापस लौटने का प्रश्न ही नहीं है। आप बापू जी के संदेश का पालन करेंगे। यह मुझे विश्वास है। मरना ही है तो विपत्ति से क्या डरना। भगवान जो करेंगे वह सह लेंगे। लेकिन समाधान नहीं करना है।¹²

P.P.C.C. ने अपने अधीनस्थों से गुजारिश की कि वे राष्ट्रीय सेवकों को शीघ्रता से संगठित करे तथा अपनी ब्रान्चों को देश के कोने-कोने तक ले जाये। प्रान्तीय कांग्रेसी नेता इपतखारुद्दीन ने कांग्रेसी सेवकों को बाकायदा कैम्पों में ट्रेनिंग की तथ इन्हें कौमी खिदमतगार दल का नाम भी दिया।¹³

सुचेता कृपलानी ने आल इण्डिया सत्याग्रह काउन्सिल नामक समूह का संगठन किया। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी (A.I.C.C.) के नेताओं की गिरफ्तारी के विरोध में देशव्यापी हड़तालें, प्रदर्शन किये गये। जो विभिन्न शहरों में तेजी के साथ फैलने लगे।

क्रुद्ध भीड़ ने रेलवे स्टेशनों, थानों में भी उग्र प्रदर्शन किये। रेलवे व तारों की लाइन काटी गयी। उत्तर प्रदेश के बलिया जिले व अन्य कुछ क्षेत्रों – सतारा, बिहार, बंगाल में समानान्तर सरकारों की स्थापना की गयी।¹⁴

बंगाल में जतिया सरकार की घोषणा की गयी – क्रिमिनल लॉ अमेंडमेंट एक्ट के धारा 16 के तहत।³¹ भारत वर्ष के अधिकांश शहरों के स्कूल, कालेजों में छात्रों ने सरकारी नीति की भर्त्सना की तथा बहिष्कार किया। एस0डी0 दयानन्द कालेज, दयाल सिंह, सिक्ख नेशनल कालेज, खालसा कालेज अमृतसर हिन्दू कालेज ने आन्दोलन में भाग लेकर सरकारी नीतियों की आलोचना की।¹⁵ उत्तर प्रदेश, पंजाब, बम्बई, गुजरात, कलकत्ता, बंगाल में इसी तरह से विद्यार्थियों ने अपना विरोध प्रदर्शन किया। कई हिंसक वारदातों को अंजाम भी दिया गया। रेलवे स्टेशनों, डाकघरों को जलाया गया, सरकारी विभागों को लूटा गया तथा क्षति पहुँचाई गई।¹⁶

पंजाब में बड़े स्तर पर विरोध प्रदर्शन हड़ताले हुईं। अकाली दल ने सरकार का जमकर विरोध किया एवं जनता को जागृत किया। होशियारपुर, रोहतक, अमृतसर, लाहौर में तार काटे गये, रेल पटरियों को नुकसान पहुँचाया तथा पत्र पेटियों को जलाया।¹⁷

11 अगस्त को पटना में विख्यात संघर्ष के बाद (सचिवालय के समक्ष) 2 दिनों तक कोई कानून व्यवस्था नहीं रही। कलकत्ता, दिल्ली, लखनऊ, कानपुर, बम्बई, नागपुर, अहमदाबाद में मिल मजदूरों ने हड़तालें की। 20 अगस्त से 13 दिनों के लिए टाटा का इस्पात कारखाना बन्द हो गया। हड़ताली मजदूरों का एक ही नारा था – “राष्ट्रीय सरकार की स्थापना होने पर ही वे काम पर लौटेंगे।”¹⁸ धीरे-धीरे ये आग गाँवों तक फैल गयी। किसान विद्रोह हुये। संयुक्त प्रान्त मिदनापुर, महाराष्ट्र, कर्नाटक, उड़ीसा के कई हिस्से इन प्रदर्शनों के केन्द्र रहे।¹⁹ शिक्षित युवा वर्ग ने आतंकवादी गतिविधियों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। 208 पुलिस चौकियाँ, 332 रेलवे स्टेशन, 945 डाकघर, या तो नष्ट कर दिये गये या गम्भीर रूप से क्षतिग्रस्त 664 बम विस्फोट हुये। जनता द्वारा पुलिस थानों पर आक्रमण की घटनाओं में बिहार सबसे आगे था। 1060 लोग पुलिस या सेना की गोली से मरे। ये आँकड़े निश्चित ही घटाकर दिखाये गये। आन्दोलन का सामना करने पर 63 पुलिस कर्मी मारे गये। 216 आन्दोलनकारियों से मिल गये, जिनमें 205 बिहार में ही मिले।²⁰ आन्दोलन की तीव्रता की उग्रता को देखते हुये चर्चिल ने हाउस आफ कामन में कहा कि गाँधी ने अहिंसा की नीति का त्याग कर दिया है और खुले में आकर वह क्रान्तिकारी आन्दोलन का समर्थक बन गया है।²¹

सरकार के अमानुषिक दमन चक्र ने आन्दोलन को दबा तो दिया लेकिन छिपे रूप से वह चलता रहा, जिसका नेतृत्व अरुणा आसफ अली, राम मनोहर लोहिया, जय प्रकाश नारायण जैसे नेताओं ने किया।

6 मई 1944 को स्वास्थ्य खराब होने के कारण गाँधी को छोड़ दिया गया। बापू ने लार्ड वेवेल (वाइसराय) को लिखा कि कांग्रेस कमेटी जेल में थी उनसे परामर्श किये बिना कांग्रेस पार्टी के प्रस्ताव को कोई एक व्यक्ति खारिज नहीं कर सकता या तो वर्किंग कमेटी के सदस्यों को रिहा किया जाये या गाँधी से उन्हें मिलने दिया जाये। इसके बिना भारत छोड़ो प्रस्ताव वापस लेने का कोई तरीका ही नहीं था।²²

पं० जवाहर लाल नेहरू ने भी अपनी पुस्तक मेरी कहानी में लिखा था – “फिर भी आगे के बारे में हमें कुछ साफ सूझता न था। हालाँकि कांग्रेस अधिवेशन में बड़ा जोश दिखाई देता था मगर किसी को मालूम न था कि देश लड़ाई के कार्यक्रम का कहाँ तक साथ देगा। हम इतने आगे बढ़ गये थे कि अब पीछे नहीं जा सकते थे। मगर देश का रुख क्या होगा इसका करीब-करीब बिल्कुल पता न था।”²³

संदर्भ सूची

1. एम० एल० धवन – भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन का उद्भव एवं विकास, पृ०-226
2. डॉ० हरदयाल सिंह राठौड़ – गाँधी विचार दर्शन, पृ०-163
3. रजनी पाम दत्त – आज का भारत, पृ०-339
4. सुमित सरकार, पृ०-338
5. Pattabhisita Ramaya – The History of the Congress, Vol. II, P. 562.
6. पट्टाभिषीतारमैया – कांग्रेस का इतिहास, पृ०-468
7. R.C. Majumdar – Struggle for Freedom, P. 540.
8. M.K. Gandhi : An Autobiography – The Story of my experiment with truth, P. 162
9. एम० एल० धवन – भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन का उद्भव एवं विकास, पृ०-265
10. सुमित्रा कुलकर्णी – अनमोल विरासत-2, पृ०-186
11. Indian Annual Register, P. 181
12. सुमित्रा कुलकर्णी – अनमोल विरासत-2, पृ०-188
13. The Tribune – June 1, 1942
14. Home Poll File – 18/9/44 – Fort nightly Report Bengal Sept. 1944
15. Home Poll File – 18/9/44 – Fort nightly Report Bengal Sept. 1944
16. S.L. Malhotra – From Civil Disobedience to Quit India, P. 146-47
17. Home Poll File – 18/9/42
18. एमरी के लिनलियंगों का पत्र – 21 अगस्त मैसूर खण्ड-2, पृ०-777
19. सुमित सरकार – आधुनिक भारत 1885-1947, पृ०-442
20. मूवमेंट 1979, पृ०-190-192
21. Shankar Ghosh – Mahatma Gandhi, P. 296
22. रजनीपाम दत्त – आज का भारत, पृ०-330-31
23. जवाहर लाल नेहरू – मेरी कहानी, पृ०-278



उदर रोगों में पथ्य अपथ्य का महत्व

डॉ. वीरेन्द्र कुमार टम्टा

एसोसिएट प्रोफेसर

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय परिसर, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

अर्थात् स्वस्थ पुरुष के स्वास्थ्य की रक्षा और रोगी के विकार की शान्ति। अतः चिकित्सा के अन्तर्गत उन सभी उपायों का समावेश हो जाता है, जिनसे रोग का उपशम हो, चिकित्सा के अन्तर्गत पथ्य का महत्व सर्वोत्कृष्ट है क्योंकि इसके द्वारा वही पदार्थ द्रव्य आहार विधि में दिये जाते हैं जिससे दोष दुष्य के संग्रह को दूर किया जाता है औषधियां सभी पांच भौतिक हैं और आयुर्वेदिक का त्रिदोष का सिद्धान्त पंचमहाभूत पर आश्रित है। अतः चिकित्सकों को देश काल प्रकृति सार, मात्रा, भूमि आदि सभी को देखते हुए पथ्य का निर्धारण कर रोगी की चिकित्सा व्यवस्था करनी चाहिए।

पथ्यं पथोक्षयेतं यद्यच्योक्तं मनसः प्रियम।

यच्चप्रियम पथ्यं च नियतं तत्रा लक्षयेत, च0सू0 25

मात्राकाल क्रियाभूमि देहदोषगुणान्तरम्,

प्राप्य तन्तद्धि दृश्यन्ते ते ते भावास्तथातथा च.सू. 25

शरीर रूपी मार्ग का जो अपकार करने वाला नहीं है और जो मन को प्रिय है वह पथ्य है इसके विपरीत जो अपकार करने वाला है और मन को अप्रिय है वह अपथ्य है पथ्यापथ्य निश्चित दिखायी नहीं देता है क्योंकि इसमें भी मात्रा काल क्रिया (संस्कार आदि) भूमि, देह और दोष की भिन्न भिन्न अवस्था को प्राप्त कर वह भाव वैसे वैसे दिखायी देता है जैसे घी पथ्य है परन्तु मात्रा में अधिक अपथ्य है विरुद्ध द्रव्यों के साथ जैसे मधु और घी समपरिणाम में लेना अपथ्य है मेदो रोग में घी अपथ्य है अर्थात् एक पथ्य घी ही मात्रा आदि की अवस्थाओं को प्राप्त होकर अपथ्य हो जाता है।

अर्थात्— दोषादि, दोष, द्रव्य, बल, (काल) आदि के विपरीत गुण होने के कारण एक साथ दही, दुग्ध की योजना रोगी की व्यथा को शान्त करती हुई परस्पर विरुद्ध नहीं होती है, रोग आदि के भेद से जो जो पथ्य वस्तुओं में अपथ्यता पैदा होती है उनके दूसरे भेद के कारण उनका विरोध भी नष्ट हो जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि संयोग विशेष से जिस प्रकार पथ्य चक्र अपथ्य होते देखे जाते हैं उसी प्रकार विरुद्ध द्रव्य भी अन्य संयोग से अपने विरोध को छोड़ देते हैं इसलिये अपथ्य वस्तु प्रिय होने से अभ्यासवश सात्म्य हो जाता है। लेकिन उसका भविष्य में अहित कर होना आवश्यम्भावी है इसलिये उसका त्याग करना चाहिए और पथ्य वस्तु भले ही असात्म्य हो उसका सेवन करना चाहिए।

आहार की कल्पना में स्वभाव, संस्कार एवं मात्रा आदि जो हेतु हैं उनको विशेष रूप से विचार करके हित भोजन को करना चाहिए क्योंकि शरीर आहार से बनता है। भय, लज्जा, कष्ट, लोभ, हर्ष तथा शोक के वश में होकर मूत्रादि के आधारणीय वेग को नहीं धारण करना चाहिए क्योंकि इन वेगों को धारण करना अनेक विपत्तियों का कारण है पथ्य, आहार विहार का निरन्तर सेवन करने वाले पुरुषों के बल, उत्साह, इन्द्रिय तथा आयु पर अकाल में कालदृष्ट्रा (यमराज) का आक्रमण नहीं होता।

जो हितकर आहार—विहार तथा सदाचार का सेवन करते हैं इस लोक व परलोक का ध्यान रखते हैं। उनका जीवन अमृत की भांति हितकर होता है। पथ्य के बिना औषधि लाभकारी नहीं होगी क्योंकि अपथ्य सेवन से हम

लाख औषधि सेवन करें रोग से छुटकारा नहीं मिलेगा जब दोष द्रव्य एकत्र होते रहेंगे तो रोग पूर्णतः ठीक होना संभव नहीं है। अतः चिकित्सकों को चिकित्सा के साथ पथ्य पर भी समुचित दृष्टिकोण अपनाये तो रोगी के हित अहित आहार विहार से भी रोग को दूर करने में सक्षम होंगे और रोगी को पूर्ण लाभ भी प्राप्त होगा। इस प्रकार पथ्य अपथ्य की उपयोगिता को देखते हुए इस शोधलेख का चयन किया गया है।

अतिसार में पथ्य : उपवास करना, निद्रा, पुराने शालि चावल से बनी पिटठी, विलेपी खीलों का मांड, अरहर की दाल का रस, गौ/बकरी के दूध और दही से निकला हुआ मक्खन केले के फल, शहद, जामुन का फल, अदरक, सौंठ कमलकंद, कुटज की छाल, धनिया, जायफल, बकायन, जीरा, हाउफबेर संपूर्ण प्रकार के कषाय द्रव्यों के रस, संपूर्ण प्रकार के अग्निसंदीपक और हल्के भोजन तथा पीने के द्रव्य देने चाहिए प्रियगु, मुलेठी, अनार के अंकुर इन सबको पीसकर दही में डालकर पतली यवागु अतिसार रोग में पथ्य है।

अतिसार रोग में अपथ्य : अभ्यंग, स्वेदन कर्म, सुरमा लगाना, अत्यन्त जल पीना, नहाना, मैथुन करना, रात्रि जागरण, धूम्रपान, नस्य मलमूत्रादि के वेगों को रोकना, गेंहूँ, उड़द, जौ, आदि अन्न बथुआ, मकोय, कन्द के साग, मीठा सहिजना, आम, सुपारी, पेठा, लोकी, बैर, भारी अन्न, और जल ताम्बुल, ईख, गुड़, मध, पोई, का साग अमलवेत लहसुन आंवला, दही का तोड़, नारियल संपूर्ण प्रकार के पत्तों का साग, ककड़ी, अति नमक, अम्ल, क्रोध आदि अतिसार पीड़ित मनुष्यों के लिये अपथ्य या अहितकर होते हैं।

ग्रहणी रोग में पथ्य: वमन करना, उपवास, पुराने शालि चावल, शाठी चावल खीलों का मांड, मसूर, अरहर, गौ के दूध का निकला हुआ मक्खन, तिल का तैल, सुरा, शहद दोनों प्रकार के अनार, नई वैलगिरी, सिंघाड़ा चांगेरी, भांग, कैथ, कुटज छाल, जीरा, छाछ, जायफल, जामुन, धनिया, बकायन सभी प्रकार के कसैले द्रव्य ग्रहणी रोग में पथ्य होता है।

ग्रहणी रोग में अपथ्य – रात्रि में जागरण, अत्यन्त जल पीना, स्नान करना, स्त्री संसर्ग करना, मलमूत्रादि के वेगों को रोकना, स्वेदन कर्म करना, धूम्रपान करना, परिश्रम करना, विपरीत भोजन करना, धूप सेवन करना, गेंहूँ, मटर, उड़द, जौ अदरक, लौबिया, पोई का शाक, बथुआ, मकोय, लौकी, लहसुन, सुपारी, कांज्जी, सौबीर, तुषोदक, दूध, गुड़, दही का तोड़, नारियल, बांस के अंकुर सब प्रकार के पत्तों के शाक, दूषित जल सब प्रकार दस्तावर द्रव्य, दाख, तथा लवण रसयुक्त द्रव्य, भारी अन्नपान सभी प्रकार पुआ-पूरी आदि ये सब द्रव्य ग्रहणी रोगी में अपथ्य होते हैं।

अर्श रोग में पथ्य— रक्तमोक्षण, क्षार कर्म, अग्नि कर्म, शस्त्र कर्म, पुराने लाल शालि चावल, साठी चावल, जौ, कुलत्थ, परवल जिमीकन्द, लहसुन, चित्राक, बथुआ, जीवन्ती, जम्बीरी नींबू, इलायची, हरड़, मक्खन, मट्ठा, कंकोल, आंवला, बैंगन का शाक, कांज्जी, विचौरा नींबू, कैथ, घी, दूध, भिलावा, सरसों का तैल, तुषोदक जो भी अन्न या पान वातनाशक तथा अग्निवर्धक है ये सभी अर्श रोगी के लिये हितकर होते हैं।

अर्श रोग में अपथ्य – तिल की खली, पिठी, उड़द, करीर, बेल, लौकी, पोई का साग, पका हुआ आम, आलू, कब्ज करने वाला भारी पदार्थ, धूप में उठना बैठना, जल पीना, बास्ति कर्म, मलमूत्रादि के वेगों को रोकना, स्त्री संसर्ग, घोड़े आदि की पीठ पर सवार होकर चलना, कष्टदायक आसन में बैठना प्रत्येक दोष के अनुसार दोषों को पैदा करने वाला अन्न अर्श रोग में अपथ्य होता है।

मन्दाग्नि रोग में पथ्य : कपफ से उत्पन्न हुए रोग में वमन कराये, पित्त रोग में हल्का विरेचन करावे, वातज रोग में स्वेदन कराते हैं तथा अवस्था के अनुसार जो कर्म जिस समय हितकारी हो उसे करना चाहिए। अनेक प्रकार के व्यायाम, अग्निवर्धक औषधियां, हल्का भोजन, पुराने शालि चावल, विलेपी खीलों का मांड, मूंग की यूस, बथुआ, कच्ची मूली, लहसुन, केले के कच्चे फल, सहजन, परवल, बैंगन, कागजी नींबू, करेला, नारंगी, अनार, जम्बीरी नींबू, शहद, मक्खन, दही, घी, मठा, कटु तैल, हींग, अजवायन, काली मिर्च, मैथी का शाक, करेला, दाड़िमफल, धनिया,

जीरा, दही, गर्म जल, कटु-तिक्त रस प्रधान द्रव्य मन्दाग्नि में पथ्य होता है।

मन्दाग्नि रोग में अपथ्य – विरेचनकर्म, मल मूत्रो और आधे वायु के वेगों के रोकना, भूख न होने पर भी भोजन करना, रात्रि में जागरण। कभी ज्यादा कभी कम या असमय में खाना, अधिक जलपान मिट्टी के बने पदार्थ, जामुन, सभी प्रकार के कन्द, दुग्ध शर्बत, दूषित जल, विरुद्ध तथा असात्म्य अन्न और जल, विष्टम्भी और भारी पदार्थ ये सब अग्निमांघ और अजीर्ण में त्याग देना चाहिए।

अरुचि रोग में पथ्य— दोषों के अनुसार बस्ति कर्म, विरेचन और वमन कराते हैं, कवल धारण करना चाहिए। नीम करंज आदि तिक्त वृक्षों की टहनियों का दातुन करनी चाहिए, गेंहूँ, मूँग, लाल शालि चावल, साठी चावल, नई कच्ची मूली, बैंगन, सहिजन, केला, अनार, परवल, आम, नींबू, कांजी, दही, मट्ठा अदरक, खजूर ताड़ की गुठली की मज्जा, हरड, अजवायन, काली मिर्च, हींग अम्ल और तिक्त द्रव्य, स्नानादि से देह को शुद्ध रखना ये सब अरुचि रोग में पथ्य होते हैं।

अरुचि रोग में अपथ्य— कास, डकार, भूख और आंसू इनके उपस्थित वेगों को रोकना, “दय के लिये अहितकार अन्न के सेवन क्रोध, लोभ, भय, शोक करना, दुर्गन्धों का सूँघना, कुत्सित रूप वाले पदार्थों को देखना ये सब अरुचि रोग में अपथ्य होते हैं।

छर्दि रोग में पथ्य— विरेचन, वमन, लंघन, स्नान, शरीर की शुद्धि, लाज्जिमण्ड पुराने साठी, चावल, पुराने शालि चावल, मूँग, मटर, जौ, शहद, यूष, षाठव (खटटा अचार), (खट्टी मीठी चटनी), धनिया, नारियल, जम्बीरी नींबू आवला, आम, बैर, दाख, हरड, अनार, जायपफल नेत्रवाला, नीम, अडूसा, मिश्री, सोंये, नागकेसर, मन को प्रसन्न करने वाले हितकारी भक्ष्य पदार्थ भोजन के बाद मुख पर ठंडे जल का परिषेक मन को प्रसन्न करने वाले सुगन्धित द्रव्यों का शरीर पर लेप फलों का सेवन आदि वमन (छर्दि) से पीड़ित रोगियों के लिये पथ्य होता है।

छर्दि रोग में अपथ्य— नस्य, बस्तिकर्म, स्वेदन कर्म, तैल, घृतादि स्नेहपान, दातुन करना, द्रव्य पदार्थों का सेवन, भय, उद्वेग, उष्ण अत्यन्त स्निग्ध, असात्म्य अहृद तथा विरुद्ध भोजन, प्रियंगु, कुन्दरू, कडवी तुरई, महुआ के फूल, इन्द्रायण, इलायची, सरसों, वमन करने वाली वस्तुएं छर्दि (वमन) रोग में अपथ्य होती हैं।

शूल रोग में पथ्य— वमन, स्वेदन, लंघन, गुदवर्ति, बस्तिकर्म, निद्रा, पाचन, द्रव्य, विरेचन, एक साल पुराने शालि चावल, जौ का मांड, गर्म दूध, परवल, सहिजन, करेला, बैंगन, पका हुआ आम, अंगूर, कैथ, काला नमक, चिरोंजी समुद्र नमक व सौंघर नमक, हींग, सौंठ, विड नमक, सौंप, लहसुन, एरण्ड का तैल, गर्म जल, जम्बीरी नींबू का रस, कूठ हल्के क्षारों का चूर्ण सभी प्रकार के शूल रोग में पथ्य होता है।

शूल रोग में अपथ्य— विपरीत स्वभाव वाले अन्नपान का सेवन, रात्रि जागरण, विषम भोजन, रुक्ष तिक्त, कषाय रस के द्रव्यों, ठंडे और भारी पदार्थों का सेवन, मध, दाल, नमक, तिल मलमूत्रादि के वेगों को रोकना आदि शूल रोग में अपथ्य होता है।

गुल्म रोग में पथ्य— स्नेहन कर्म, स्वेदन कर्म, विरेचन कर्म, बस्ति कर्म, लंघन करना, अभ्यंग स्नेहपान, पुराने लाल शालि चावल, कुलत्थी का यूष, गाय/बकरी का दूध, मुनक्का, फालसा, खजूर, अनार, आवला, नारंगी, मठा, एरण्ड तैल, बिजौरा नींबू, सौंठ, मारिच, पीपली और जौ अन्न, स्निग्ध, उष्ण, पुष्टिकारक, लघु पाकी, अग्नि संदीपन और वातानुलोमक कारक ये सब गुल्म रोग में पथ्य होते हैं।

गुल्म रोग में अपथ्य— वातकारक, सभी प्रकार के अन्न, विरुद्ध अन्न पान, मछली या मांस, मूली, मधुर फल, सूखा साग, शमीधान्य (उड़द, मटर आदि) विबन्ध कारक और गुरुपाकी पदार्थ, अधेवायु, मलमूत्र, श्रम श्वास और अश्रु के वेगों को रोकना आदि गुल्म रोग में अपथ्य होते हैं।

कृमि रोग में पथ्य— आस्थापन वस्ति, कायविरेचन, शिरोविरेचन, धूम्रपान, कफनाशक द्रव्य, देह को शुद्ध करने वाले द्रव्य, लाल शालि चावल, परवल का शाक, लहसुन, बथुआ, आक के पत्ते, सरसों, कच्चा केला, कटेरी के फल,

तिक्त, शहद, घी, हींग, क्षार, अजमोदा, खैर, कुटज छाल, नींबू रस, केला, अजवायन, देवदार, अगर, शीशम का रस या सार तिक्त, कषाय कटु रस वाले द्रव्य कृमि रोगियों के लिये पथ्य होते हैं।

कृमि रोग में अपथ्य—वमन करना या उपस्थित वमन के वेग को रोकना, विपरीत भोजन करना, दिन में सोना, द्रव वस्तु, पिट्ठी के पदार्थ, अजीर्ण करने वाले पदार्थों का सेवन करना, घी, शहद, दही, पत्तों का साग, दूध, खटे मीठे रस ये सब कृमि रोगियों के लिये अपथ्य होते हैं।

निष्कर्ष— इस प्रकार उपरोक्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि आयुर्वेद ग्रंथों में विभिन्न रोगों के पथ्य और अपथ्य का विस्तृत वर्णन किया गया है यदि चिकित्सक सभी रोगों की चिकित्सा करते समय इस बात पर भी ध्यान दें कि अमुक रोग में कौन कौन से पथ्य अपथ्य का प्रयोग किया जाना है और रोगी को स्पष्ट रूप से पथ्य अपथ्य के बारे में बताया जाये और रोगी भी अपने खान पान में चिकित्सक द्वारा बताये गये पथ्य अपथ्य का पालन करे तो रोगी को किसी भी रोग से शीघ्र स्वास्थ्य लाभ हो सकता है और औषधि पर खर्च किये जाने वाले व्यय को घटाया जा सकता है।

संदर्भित ग्रंथों की सूची

- चरक संहिता सूत्र स्थान — लेखक—रविदत्त त्रिपाठी
 चरक संहिता — चिकित्सा स्थान लेखक रविदत्त त्रिपाठी
 सुश्रुत संहिता — चिकित्सा स्थान लेखक प्रो० अनन्तराम शर्मा
 अष्टांग "दय — लेखक लाल चन्द्र वैद्य
 अष्टांग संग्रह — लेखक वैद्य श्री गोवर्धन शर्मा
 भैषज्य रत्नावली — लेखक अम्बिकादत्त शास्त्री
 भाव प्रकाश — लेखक डा० के०सी चुनेकर



समकालीन सन्दर्भों में आधी दुनिया की चुनौतियाँ

डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव

एसोसिएट प्रोफेसर—हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग

डॉ० शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ० प्र०

भारत में महिलाओं की वर्तमान स्थिति की पूर्ण रूपरेखा की पड़ताल ऐतिहासिक दस्तावेजों की परख के बिना अधूरी मानी जाएगी। अतः भारतीय संस्कृति का लिखित स्रोत ही इसकी पृष्ठभूमि बनने में सहायक है। इस परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो वैदिक काल नारी उत्कर्ष का चरमोत्कर्ष काल रहा, जबकि उत्तर वैदिक काल उत्कर्ष काल लेकिन अपकर्ष काल की शुरुआत इसके बाद ही शनैः—शनैः होने लगती है, जिसकी अनुभूति क्रमशः पुराण, उपनिषद, मौर्य, शुंग, कुषाण इत्यादि कालों से ही होने लगती है। इसका पूर्ण आभास गुप्त काल तथा गुप्तोत्तर युग में होता है, जिसकी पूर्णाहुति आगे चलकर राजपूत युग के हवन कुंडों में होती है। रामधारी सिंह दिनकर ने भी 'संस्कृति के चार अध्याय' में इसकी पुष्टि की है। दिनकर जी के शब्दों में कहें "नारी रत्न मानी जाती थी और रत्नों का संचय कुठौर से भी करना आर्यों के यहाँ सत्कर्म माना जाता था। वेदों की कई ऋचाएँ नारियों की रचनाएँ हैं, फिर भी यह कैसे हुआ कि नारी और शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं रहा?"¹ "जब आर्य लोग इस देश में आये होंगे तब स्वभावतः ही, उनके साथ स्त्रियों की संख्या कम रही होगी, इसीलिए आर्येतर जाति की कन्या ग्रहण करने में इन्हें आपत्ति नहीं रही होगी। अंत में इन आर्येतर जाति की स्त्रियों की संख्या ही कम हो उठी होगी और उनकी प्रवृत्ति भी पतिकूल के यज्ञ—यज्ञादि की अपेक्षा पितृकुल की पूजा—पद्धति की ओर ही अधिक रही होगी। इसलिए वे स्वयं भी, शायद यज्ञादि कृत्यों में विशेष उत्साहशील नहीं रहीं होंगी। इसलिए स्त्री और शूद्र को एक ही श्रेणी में डाल दिया गया होगा।"²

दुनिया की प्रत्येक सभ्यता और संस्कृति ने स्त्री पर अगाध सृजन किया है। संसार भर के साहित्य में स्त्री के बारे में इतना लिखा गया कि शब्द कम पड़ गए। स्त्री के इतने प्रतिरूप इतनी छवियाँ रची गईं कि इनकी माया में स्त्री का वास्तविक आकार ही धुंधला पड़ गया। फिर बहुत बाद के वर्षों में पुरुषों के लिए चिंतन, सृजन यह इतिहास के अंधेरे युग में खोए वजूद को तलाशने का प्रयत्न था — "ताकि जिंदगी मुकम्मल हो सके, अर्थ पा सके, सही दिशा में बढ़ सके। पृथ्वी पर स्त्री का होना सहज स्वाभाविक हो सके।"³

स्त्री अपने अस्तित्व का एक नया अर्थ लेकर बीसवीं सदी में आई। नए सिरे से स्त्री ने खुद को पहचानना शुरू किया। आत्मबोध की यह यात्रा जीवन को नए अर्थ देने लगी। स्त्री ने संसार को एक नई रोशनी में देखा और संसार खूबसूरत था। इस संसार में स्त्री खूबसूरत थी। यह एक अलग तरह की सुंदरता थी— पुराने जमाने के दैहिक सौंदर्य से अलग यह व्यक्तित्व तलाशती स्त्री का नया रूप था। जिसमें मानवीय भावों और अनुभूतियों की वास्तविकताएँ थीं।⁴

वर्तमान के वैश्वीकरण के युग में आज सामाजिक ढाँचे में परंपरावादी सोच के प्रति प्रतिकार, प्रतिवाद और प्रतिरोध के स्वर स्पष्टतः सुनायी दे रहे हैं, लेकिन इस स्वर से हमारी सांस्कृतिक अधिसंरचना की बुनियाद प्रभावित होकर हिलने लगी है। महिलाओं की सोच भी इन स्थितियों में नये वैचारिक विमर्श की ओर बढ़ती जा रही है, जिसने नये अन्तर्विरोध को जन्म दिया है। इस कारण स्त्री घर और बाहर दोनों ही मोर्चों पर अपने जीवन को संघर्ष की स्थिति में पा रही हैं। लेकिन इसका दूसरा पहलू नवीन विचारों को जन्म देने और क्रान्तिकारी परिवर्तन हेतु समाज को नये रूप प्रदान करने में निहित हैं। इस वैचारिक दृष्टिकोण ने महिलाओं के सभी वर्गों—जागृत शक्ति सम्पन्न वर्ग, मध्यम वर्ग और मेहनतकश तबके की स्त्रियों—को नये चिंतन के अवसर प्रदान किये हैं।

देश की स्वतन्त्रता के पश्चात समाज में जो उल्लेखनीय परिवर्तन हुए हैं उनमें से स्त्री समाज की सापेक्षिक मुक्ति भी एक है। बदलती हुयी अर्थिक स्थिति के कारण स्त्रियों की शिक्षा एवं नौकरी की दिशा में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। आर्थिक स्थिति कमजोर होने पर अथवा आत्मनिर्भर और समर्थ बनने के लिये स्त्रियों को घर से निकलकर बाहर की दुनिया के कर्मक्षेत्र में पदार्पण करना पड़ा है।

समकालीन महिला लेखन में स्त्री-चेतना का यह जो परिदृश्य सामने आता है उसमें पश्चिम के नारीवाद की अनुगूँज स्पष्ट दिखाई देती है। भारतीय समाज की परिस्थितियों के अनुरूप स्त्री समाज की जो समस्याएँ हैं, वे उनमें पूर्ण रूप से चित्रित नहीं हो पाती हैं। इनके लेखन में सुशिक्षित आज की नारी स्वातंत्र्य-अर्जित करने 'घर' से बाहर निकलती हैं। बाहरी दुनिया की कठोर प्रकृति से वह अपने कोमल स्वभाव का तालमेल बिठाने का भरसक प्रयास करती है किन्तु 'बाजार' के चक्रव्यूह में फँस जाती है। ऐसी स्थिति में जिस आजादी के पाने की चाह में घर से बाहर निकलती है, वही उसके गले का फंदा बन जाती है। जो स्त्री अर्थ-स्वातंत्र्य के साथ 'देह-स्वातंत्र्य' की बात करती है, वह परिवार के 'टूटन' से भी बेचैन होती है। ऐसी स्थिति में 'स्त्री-स्वतंत्रता' स्त्री सहित पूरे समाज के लिए सकारात्मक होने के बजाय खतरा बन सकती है। वहीं स्त्री छली जाती है और वह छला हुआ व्यक्तित्व लेकर महिला-रचनाओं में अवसाद ग्रस्त होकर जाती है। स्त्री-स्वतंत्रता का यह परिदृश्य न तो भारतीय समाज को मुक्ति का पूर्ण पक्ष प्रस्तुत करता है, और न ही भारतीय स्त्री समाज की मुक्ति का। कहने का आशय यह है कि प्रत्येक समाज की अपनी परिस्थितियाँ, उसके मूल्य, और उसकी संस्कृति, पश्चिम के समाज से अलग हैं। तब स्त्री स्वतंत्रता का ठीक वही स्वरूप भारत में कैसे लागू हो सकता है, जो पश्चिम में है। इसके बावजूद भी, वर्तमान समाज के 'महिला-लेखन' में स्त्री अपने जीवन का रास्ता खुद चुन रही है, वह पुरुष समाज के विधि-विधानों को टुकरा रही है, क्योंकि पुरुष समाज के बनाए गए सामाजिक मानदण्ड उसके पैर की बेड़ियाँ बुनकर उसकी आजादी में अवरोधक हैं। आज की नारी पुरुष की अनुचरी नहीं रह गई है, बल्कि वह 'जीवन-रागिनी' एवं 'सहयोगिनी' की भूमिका निभाना चाहती है।

नारी की सृजनात्मक शक्ति के कारण ही परिवार व्यवस्था एवं समाज का विकास हुआ है। किन्तु एक विरोधाभासी तथ्य यह भी है कि विकास के विभिन्न कालों में नारी की सामाजिक स्थिति पर अनेक प्रश्न चिह्न लगते रहे हैं। जिन पर चिंतन करना अति आवश्यक है। जहाँ प्रागैतिहासिक काल में स्त्री की स्थिति सम्मानजनक थी वहीं मुगलकाल में वह केवल वस्तु बनकर रह गई। आधुनिक नारी अपने अस्तित्व एवं विभिन्न बंधनों से मुक्ति के लिये आज संघर्ष कर रही है।

स्त्री विमर्श पर विगत दशकों में जो लिखा जा रहा है, उनका गहराई से आकलन करने पर नारी की वर्तमान अवस्थिति कल्पना से मिथक और यथार्थ बनने की गाथा ही प्रतीत होती है, जिसे प्रभा खेतान ने 'स्त्री उपेक्षिता' की भूमिका में कुछ इस प्रकार व्यक्त किया है, "नारीत्व का मिथक आखिर है क्या? क्या स्त्री को धर्म, समाज, रुढ़ियाँ और साहित्य-शाश्वत नारीत्व के मिथक के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। सीमोन विश्व की प्रत्येक संस्कृति में पाती हैं कि या तो स्त्री को देवी के रूप में रखा गया है या गुलाम की स्थिति में। अपनी इस स्थितियों को स्त्री ने सहर्ष स्वीकार किया, बल्कि बहुत-सी जगहों पर सह अपराधिनी भी रही। आत्महत्या का यह भाव स्त्री में न केवल अपने लिए रहा, बल्कि वह अपनी बेटी, बहू या अन्य स्त्रियों के प्रति भी आत्मपीड़ाजनित द्वेष रखती आयी है। परिणामस्वरूप स्त्री की अधीनस्थता और बढ़ती गयी।"⁵ वस्तुतः एक बात तो जोर देकर कही जा सकती है कि भले ही नारी सशक्तिकरण के नाम पर पाँच सितारा होटलों में बैठकर लेखन के द्वारा स्त्रियों को स्वतंत्र मानकर, हम कल्पना भर कर लेते हैं, परन्तु इसका दूसरा पहलू यथार्थ की जमीन पर उतरकर वास्तविक विश्लेषण करने पर ही प्राप्त होता है।

समाज की परम्परागत व्यवस्था को तोड़ने वाली स्त्री को जहाँ यही समाज प्रताड़ित करता है, वहीं पुरुष

को मंच पर क्रांतिकारी कहकर बैठाता है। प्रभा खेतान जी स्वयं स्वीकार करती हैं कि “संस्कृति अभिजात स्त्रियों को अधिक मिली है किन्तु इन्हीं सुविधाओं ने कहीं उनकी चेतना को और अधिक जड़ीभूत बना दिया है। अपनी कुलीनता के नशे में बेहोश है। भारतीय-मर्यादा की गलबहियाँ उन्हें बार-बार व्यवस्था के सम्मोहन की ओर धकेलती है तथा अपनी खुद की पीड़ा की नग्नता को देखने समझने के बजाय वे पुरुषों द्वारा प्रदत्त पीड़ा के रस में पगी रहती है”।⁶

हिन्दी साहित्य की गद्य की सबसे महत्वपूर्ण लेखिका ‘महादेवी वर्मा’ मानी जाती हैं। उन्होंने ‘शृंखला की कड़ियाँ’ नामक अपनी पुस्तक में ‘नारी-शोषण’, ‘विधवा-की दशा’ और आधुनिक नारी की ‘नई-चेतना’ का अपनी साहित्यिक भाषा में बड़ा हृदय-ग्राही विवेचन किया है। हमारे भारतीय-समाज में ‘विधवा-स्त्री’ की चिंताजनक स्थिति पर अपने स्त्री सम्बन्धी चिंतन में इस समस्या पर गम्भीर विचार किया है—समकालीन वरिष्ठ महिला लेखिका ‘प्रभा खेतान’ के शब्दों में—“हमारा समाज पुरुष प्रधान समाज है। यही पुरुष सत्ता है, उसकी ताकत जो स्त्री पर इतरलिंगी अवस्था को आरोपित करती है। इसी अवस्था के माध्यम से ‘पुरुष’ अपना शारीरिक, आर्थिक और भावनात्मक वर्चस्व स्त्री पर लागू कर पाता है। पितृ-सत्ता ने ‘समलिंगता’ को स्त्री के लिए असंभव माना, क्योंकि स्त्री-कामना की व्याख्या भी पुरुष सत्ता ने अपने अनुसार की है।”⁷

वर्तमान-परिप्रेक्ष्य में “स्त्री” भले ही बौद्धिक और आर्थिक दृष्टि से पुरुष से आगे हो, किन्तु पुरुष अपनी सामाजिक स्थिति को आज भी श्रेष्ठता में देखता है और स्त्री को हीनतर तथा निम्नतर समझता है। वरिष्ठ महिला लेखिका “ममता कालिया” का कहना है कि —“हम सब साथी सर्जक जो समानता, सुयोग्यता, और सम्पूर्णता अभिव्यक्ति के संघर्ष में साधनारत हैं, महिला होने की छूट का लाभ नहीं लेना चाहते।”

सृजन की स्पर्धा में अचानक “स्त्री-कार्ड” खेल डालना, वैसा ही है, जैसे चुनाव के समय “जाति-कार्ड” खेलना। जाहिर है इन हथकण्डों के मकसद मासूम नहीं होते। जीवन के जटिल प्रश्नों का अति सरलीकरण कर उन्हें हास्यास्पद व अप्रासंगिक बनाने का अभियान अन्ततः स्त्री-विमर्श और महिला-लेखन को उसी आदिम सम्यता में पहुँचा देगा, जहाँ सम्बन्ध नर नारी के बजाय “नर-मादा” के स्तर पर थे।⁸

महादेवी जी में यह भी दृढ़ विश्वास झलकता है कि अत्याधुनिक युग का पुरुष वर्ग नारी को बहुत समय तक अपनी पुरातन परम्पराओं और पद्धतियों की परिधि में बांधे नहीं रख सकेगा। वे लिखती हैं —“जिसे देखने का अवकाश तथा बुद्धि प्राप्त है, वह स्त्री देखती है कि उसके सहयोगी पुरुष के समय का अधिकांश बाहर ही व्यतीत होता है, वह भोजन या विश्राम के अतिरिक्त घर से और किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं रखता तथा बाहर अर्जित ख्याति को स्थिर रखने के लिए सन्तान और उनके पालन तथा अपने विनोद के लिए पत्नी चाहता है। इसके विपरीत स्त्री को इतनी ही स्वतन्त्रता मिली है कि वह बाहर के जगत् को केवल घर के झरोखे से कभी-कभी देख ले और मन में यही विश्वास रखे कि वह कर्मक्षेत्र उसकी शक्तियों के अनुरूप कभी नहीं था और न भविष्य में कभी हो सकेगा। इस तर्क प्रधान युग में ऐसी आशा करना कि सौ में से सौ स्त्रियाँ इस पर कभी आलोचना न करेंगी या इसके विपरीत सोचने का साहस न कर सकेंगी, भूल के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है।⁹ “स्त्री पुरुष के वैभव की प्रदर्शिनी मात्र समझी जाती है जैसे बालक के न रहने पर जैसे उसके खिलौने निर्दिष्ट स्थानों पर उठाकर फेंक दिये जाते हैं, उसी प्रकार एक पुरुष के न होने पर स्त्री के जीवन का कोई उपयोग नहीं रह जाता, न ही समाज या गृह में उसको कहीं निश्चित स्थान ही मिल सकता है।”¹⁰ “स्त्रियाँ सुरक्षा और सम्पत्ति के अधिकार चाहती हैं, तथा पुरुष प्रेम आनन्द और स्त्री देह पाने के बाद सिर्फ एक उत्तराधिकारी”।¹¹

इसी प्रकार स्त्री अधिकारों के प्रति प्रभा खेतान का उपन्यास ‘छिन्नमस्ता’ है। प्रभा खेतान का कहना है कि “स्त्री की अपनी संस्कृति है, इतिहास में इसे भिन्न माना गया, लेकिन इसे पहचान नहीं दी गयी।¹² क्योंकि अलग से ‘स्त्री शक्ति’ की सत्ता नहीं थी। इसलिए स्त्री सत्ता को अलग से पहचान नहीं दी गयी।

महादेवी जी की तो यह स्पष्ट मान्यता है कि “भारतीय नारी जिस दिन अपने सम्पूर्ण प्राण-प्रवेग से जाग सके, उस दिन उसकी गति रोकना किसी के लिए सम्भव नहीं है। उसके अधिकारों के विषय में यह सत्य है कि वे भिक्षावृत्ति से न मिले हैं, न मिलेंगे क्योंकि उनकी स्थिति आदान-प्रदान योग्य वस्तुओं से भिन्न है।”¹³

नारी की सर्वाधिक विरोधाभासी छवि आधुनिक काल में प्रस्तुत की गयी है। एक ओर हर क्षेत्र में नारी का प्रवेश और वैश्विक पहचान को दिखलाया गया है तो दूसरी ओर शिक्षा प्राप्ति के अवसरों में कमी, कुपोषण, बालिका भ्रूण-हत्या, दहेज-शोषण, और बलात्कार इत्यादि स्थितियाँ सभ्य कहे जाने वाले भारतीय समाज पर ऐसा कलंक है, जो अपने अमिट छाप से शोषणजनित व्यवस्था को नये आबोहवा में दिनप्रतिदिन नये कलेवर के साथ परोस रहा है। प्रसंगतः प्रश्न उठना लाजमी है कि क्या विकास की वेदी पर महिलाओं का हवन आधुनिक समाज की देन है? या नारी की वर्तमान स्थिति में पुरुषवर्चस्ववाद ही मुख्य कारण है? यदि यही मुख्य कारण है तो कार्य कौन है? इस कार्य-कारण सिद्धांत की नियति क्या हो सकती है? ऐसे ढेर सारे प्रश्न शोध के नये आयामों को सृजित करते हैं। क्योंकि भारतीय समाज में स्त्रियों की गुलामी सदियों पुरानी है। पिछले ढाई हजार वर्षों से वह भारतीय परंपराओं का लौह शृंखलाओं से घिरी पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था में बंधी हुई गाय सरीखी माँ, दादी, जाया, नानी इत्यादि हैं। सिमोन ने कहा था कि-स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि उसे बना दिया जाता है।¹⁴ हालांकि यह बात सिमोन ने दुनिया भर की औरतों के बारे में कही है लेकिन यह भारत में ज्यादा लागू होती है। इस पुरुष-प्रधान समाज में ‘अनारकली’ फिल्म का मशहूर डायलाग (अनारकली हम तुम्हें जीने भी नहीं देंगे और मरने भी नहीं देंगे) स्मृति में आने के बाद इसकी पुष्टि भी हो जाती है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में डॉ० राम मनोहर लोहिया इस संदर्भ में ‘स्त्री मुक्ति के मसीहा’ माने जाते हैं। यह अनुचित नहीं कि इसी कारण उन्होंने वर्णव्यवस्था के भीतर स्त्री को स्वतंत्र ‘पाँचवा वर्ण’ और वर्णव्यवस्था को परंपरा का ‘नासूर’ बताते हुए समाज के भीतर सबसे ज्यादा वंचित और दलित स्त्री को माना। उनकी सदियों से समाज में जो स्थिति और नियति दलित की रही है वही स्थिति स्त्री की भी रही है।¹⁵ दिल्ली विश्वविद्यालय में उर्वशी पर आयोजित एक संगोष्ठी में डॉ० धर्मवीर ने भी उर्वशी से कम्पिला की यात्रा में आये पड़ावों में पड़े ठहराव को महसूस करते हुए उचित ही कहा था कि, “दिनकर लौकिक नारी के पक्ष को नहीं छू सके, लेकिन इसमें उनकी गलती नहीं कही जा सकती क्योंकि वे जिस परंपरा से आते हैं उसमें नारी की गरिमा है ही नहीं। नारी को उसमें कामिनी के तौर पर देखा गया है। इसीलिए दिनकर ने भी गणिका उर्वशी को ही अपनी कविता का केन्द्र बनाया, जो एक वेश्या थी। अतः हिन्दी साहित्य में नारी की यात्रा नूरजहाँ, कामायनी, उर्वशी और कम्पिला के रूप में आती है। नारी को समझने के लिए इसे जानना बेहद जरूरी है। स्त्री-विमर्श इसके ईर्द-गिर्द घूमता है। इसी के बीच नारी समस्या का समाधान निकलता है।”¹⁶ इसी क्रम में वह कहते हैं कि-उर्वशी का वंश वेश्याओं में चला। ऐसा वंश भला देश की रक्षा कैसे कर सकता है? पुरुरवा भी बिना पिता के आया, उसका माँ के साथ केवल नाम आता है केवल-इला पुत्र। पुरुरवा राजपुरोहितों के हाथ का खिलौना था। यही इस देश की गुलामी की वजह है। इस प्रकार नारीवाद या स्त्री विमर्शों में गणिका का गला घोटना पड़ेगा।

अतः वर्तमान समय में नारीवाद संक्रमण के दौर में हैं। प्रभा खेतान भी सिमोन का अनुवाद ‘स्त्री उपेक्षिता’ शीर्षक से करके इसकी भूमिका में लिखती हैं कि “फ्रांस की जो स्थिति सन् 1949 ई० में थी, पश्चिमी समाज उन दिनों जिस आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था, वह शायद हमारा आज का भारतीय समाज है, उसका मध्यवर्ग है, नगरों और महानगरों में बिखरी हुई स्त्रियाँ हैं, जो संक्रमण के दौर से गुजर रहीं हैं।..... परिस्थितियाँ व्यक्ति की नियंता होती हैं। अलगाव में जीती हुई स्त्रियों का जिक्र नहीं कर रही हूँ, जो भाग्य से सुविधा सम्पन्न विशिष्ट वर्ग का है तथा जिन्हें कॉन्वेन्ट की शिक्षा मिली है। मैं उस औसत स्त्री की बात कर रही हूँ, जो गाय की तरह किसी घर के दरवाजे पर रंभाती है और बछड़े के बदले घास का पुतला थनों से सटाये

कातर होकर दूध देती है।" इस तरह पाश्चात्य समाज में भी नारियों की व्यवहारिक स्थिति भारतीय स्त्रियों के समतुल्य है इसे उदाहरण के तौर पर प्रभा खेतान के शब्दों को हम उद्धृत कर सकते हैं कि, "हममें से बहुतों ने पश्चिमी शिक्षा पाई है, पश्चिमी पुस्तकों का अध्ययन किया है, पर सारी पढ़ाई के बाद खुद मैंने अनुभव किया है कि भारतीय औरत की परिस्थिति सन् 1980 ई० के आधुनिक पश्चिमी मूल्यों से नहीं आँकी जा सकती।" क्योंकि सीमोन का साहित्य पश्चिम के कृत्रिम मिथकों का पर्दाफास करता है। पश्चिम में भी औरत देवी है, शक्तिरूपा है लेकिन व्यवहार में औरत की क्या हस्ती है? इसी कारण उन्होंने कहा कि—स्त्री कहीं झुण्ड बनाकर नहीं रहती। वह पूरी मानवता का हिस्सा होते हुए भी पूरी एक जाति नहीं। गुलाम अपनी गुलामी से परिचित है और एक काला आदमी अपने रंग से, पर स्त्री घरों, अलग-अलग वर्गों एवं भिन्न-भिन्न जातियों में बिखरी हुई हैं। इसमें क्रांति की चेतना नहीं क्योंकि अपनी स्थिति के लिए वह स्वयं जिम्मेदार है। वह पुरुष की सहअपराधिनी हैं। अतः समाजवाद की स्थापना मात्र से स्त्री मुक्ति नहीं हो जायेगी। समाजवाद भी पुरुष की सर्वोपरिता की ही विजय बन जायेगा।

वर्तमान हालातों को देखते हुए स्त्री अब मात्र दासी बनकर नहीं वरन सहेली बनकर जीना चाहती है। नारी शिक्षा ने नारी के हृदय में छिपी विद्रोहाग्नि को प्रज्वलित किया है। नारी ने घर में रहकर पारिवारिक एवं सामाजिक रुढ़ियों का विरोध किया। घर में रहकर नारी ने केवल पति को परमेश्वर के रूप में मानने का विरोध किया। वह अपने परम्परागत संकुचित परिवेश को लांघकर विस्तृत प्रांगण में प्रविष्ट होने लगी। पुरुष के कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने की लालसा के कारण वह स्वतन्त्रता संग्राम में योगदान देने लगी। वह आज पुरुष की दया नहीं चाहती है। वह निडरता के साथ सभी क्षेत्रों में आगे बढ़ रही है।

कुछ दृष्टियों में हाँलाकि वर्तमान समय में स्त्रियों की सामाजिक जागरूकता में काफी वृद्धि हुई है जिसके परिणाम स्वरूप स्त्रियों में पर्दा प्रथा के प्रति एक नया नज़रिया देखने को मिला है। आज स्त्रियाँ घर की चहारदीवारी के बाहर खुली हवा में साँस ले रही हैं। स्त्रियों के विचारों और दृष्टिकोणों में इतना अन्तर आ चुका है कि अब वे अन्तर्जातीय विवाह, प्रेम विवाह व विलम्ब विवाह को भी उचित समझने लगी हैं। जातीय नियमों और रुढ़ियों के प्रति महिलाओं की उदासीनता निरन्तर बढ़ रही है। आज वे रुढ़िवादी बन्धनों से मुक्त होने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील हैं। आज अनेक महिलाएँ महिला संगठनों और क्लबों की सदस्य हैं। कई स्त्रियाँ तो समाज कल्याण के कार्यों में भी लगी हुई हैं। पारिवारिक अधिकारों में वृद्धि होने के कारण उनकी स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ हुई है जिसके परिणाम स्वरूप उनकी स्थिति में काफी कुछ बदलाव आया है। किन्तु यहाँ विचारणीय तथ्य यह है कि उपर्युक्त प्रस्तुत विचार शहरी दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में तो सत्य हो सकते हैं पर आज भी ग्रामीण समाज की महिलाएँ इन कुप्रथाओं को नकार पाने में पूर्णतः सक्षम नहीं हैं। जागरूकता विचारों में जरूर दिखती है, परिवर्तन की ललक मन में अवश्य है, पर उसे ग्रामीण समाज के समक्ष प्रस्तुत करने की सक्षमता अभी इनमें नहीं है।

डॉ० राममनोहर लोहिया भारतीय राजनीति में पहले ऐसे समाज चिंतक थे जिन्होंने स्त्रियों की आजादी को खुले शब्दों में वकालत की। इसी कारण डॉ० राममनोहर लोहिया ने भी कहा था कि, "औरत को किस तरह की आजादी देना चाहते हो। मैं तो बिल्कुल गोली की तरह जवाब दे दूँगा। मेरा जवाब है कि मैं औरत को उस हद तक आजादी देना चाहता हूँ जितनी कि मर्द को देना चाहता हूँ।"

नारी की सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता, समानता एवं सहभागिता के इतने प्रबल समर्थक होते हुए भी वे नारी को एक मर्यादा में ही रहने के पक्षधर हैं। साथ ही वह यह भी चाहते हैं कि यह मर्यादा नारी पर जबरन न थोपी जाय बल्कि नारी उसे स्वयं सहर्ष स्वीकार करे। इस तथ्य को कवियत्री महादेवी वर्मा भी ने स्वीकार किया है—आपके अनुसार नारी को अपने और समाज के बीच शृंखला की एक कड़ी बने रहने का प्रयत्न करना चाहिए जिससे समाज में उसका गौरवपूर्ण स्थान अक्षुण्ण रह सके; उसको आदर—सम्मान दिया जा सके।¹⁷

असल में देखना यह है कि किस तरह स्त्री को वह सांस्कृतिक—सामाजिक भूमि मिले, जो सुदीर्घकाल में

पुरुषों को उपलब्ध है। स्त्री को वह अवसर मिले, जिसमें वह अपने अस्तित्व तथा परिवेश से जुड़कर अपने विषय में “सोचे” समझे और वैसे ही सरोकार उसके ‘लेखन’ में भी प्रतिबिम्बित हो। उसमें मौलिकता का, सजगकता का और दायित्व बोध का आन्तरिक अनुभूति का प्रस्फुरण होना नितान्त आवश्यक है। अपने मानसिक क्षितिज का विस्तार करने की प्रेरणा स्त्री स्वातंत्र्य की इच्छुक स्त्री को भीतर से मिले यह जरूरी है।

अंत में महात्मा गाँधी के शब्दों में कहें तो—“सैद्धान्तिक रूप से नर—नारी एक हैं, दोनों में समान आत्मा निवास करती है, दोनों में समान अनुभूति विद्यमान होती है, दोनों के जीवन की समान समस्याएँ होती हैं। अतः समाज के दोनों ही, दो शरीर—एक प्राण के रूप में आवश्यक अंग हैं।”¹⁸

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. संस्कृति के चार अध्याय—रामधारी सिंह दिनकर, लोकभारती प्रकाशन, पेपरबैक संस्करण : 2011, पृष्ठ—67
2. संस्कृति के चार अध्याय—रामधारी सिंह दिनकर, लोकभारती प्रकाशन, पेपरबैक संस्करण : 2011 पृष्ठ—62
3. अहा जिंदगी, अंक—7मार्च 2012, पृष्ठ 82—समय की रेखा पर बदलती औरतें—आलोक श्रीवास्तव, सुनाई पड़ती है उसकी आती पद्चाप
4. अहा जिंदगी—समय की रेखा पर बदलती औरतें—आलोक श्रीवास्तव, सुनाई पड़ती है उसकी आती पद्चाप—अंक—7मार्च 2012, पृष्ठ 82
5. स्त्री उपेक्षिता—प्रभा खेतान, प्रकाशन, हिन्दी नेक्स्ट डाट काम द्वारा मनीषा कुलश्रेष्ठ
6. मृदुला गर्ग—कठगुलाब, पृष्ठ संख्या— 40,44,60।
7. हंस, जन0—फर0 2000, पृ0 39
8. हिन्दी अनु0 भारतीय भाषा परिषद जून 2004 ममता कालिया, पृ0—8
9. महादेवी साहित्य — भाग—1, महादेवी, पृ0—452
10. शृंखला की कड़ियाँ — महादेवी वर्मा
11. मैत्रेयी पुष्पा— इदन्नमम्, पृष्ठ संख्या—221,222।
12. मैत्रेयी पुष्पा—चाक, पृष्ठ संख्या— 40,42,44
13. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ0—6
14. कथाक्रम, अ.—जू. 2011, पृष्ठ—38
15. उर्वशी पर दिल्ली विश्वविद्यालय में आयोजित संगोष्ठी, 9 दिसंबर 2011
16. स्त्री उपेक्षिता—प्रभा खेतान, प्रकाशन, हिन्दी नेक्स्ट डाट काम द्वारा मनीषा कुलश्रेष्ठ
17. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृ0—7
18. वूमेन एण्ड सोशल इन जस्टिस — महात्मा गाँधी



बाल श्रम एवं उदारीकरण की नीतियाँ (महिलाओं के परिपेक्ष्य में)

डॉ० संजू

वरिष्ठ प्रवक्ता-इतिहास

राजकीय महाविद्यालय अकबरपुर, कानपुर देहात

बच्चे देश का भविष्य होते हैं व घर-परिवार की खुशी परन्तु इसी खुशी में ग्रहण तब लग जाता है जब अधिकांश बच्चों को परिवार के सदस्यों का पेट पालने के लिए या किसी अन्य कारणों से छोटी उम्र में ही जोखिमपूर्ण कार्यों में लगाना पड़ता है और यहीं से शुरू होता है शारीरिक, मानसिक शोषण का अन्तहीन सिलसिला।

बाल मजदूर कौन ?

बाल श्रमिकों के मानक पर विश्व में मतैक्य नहीं है भारत के संविधान के अनुच्छेद 24 के अनुसार 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को किसी भी फैक्ट्री, खनन कार्य या किसी जोखिम वाले काम में नहीं लगाया जा सकता है। बाल मजदूरी निषेध अधिनियम 1986 के अनुसार वह बालक या बालिका जो 14 वर्ष से कम उम्र का हो बच्चा की श्रेणी में आएगा जबकि भारतीय जनगणना आयोग के अनुसार काम का तात्पर्य है – किसी आर्थिक उत्पादन क्रिया में भागीदारी। अतः किसी उद्योग कारखाने, होटल ढाबा आदि में कार्यरत 14 वर्ष से कम आयु के बच्चे बाल मजदूर के अन्तर्गत आते हैं। वह बाल मजदूर बालक हो या बालिका। जबकि विश्व के संविधानों में (अमेरिका/ग्रेट ब्रिटेन) 12 वर्ष तथा 13 वर्ष तक के श्रमिक को बाल श्रमिक माना जाता है।

भारत में बाल श्रमिकों की स्थिति :

बाल श्रम का व्यापक विस्तार, भारत के अनियमित क्षेत्रों की पहचान बन चुका है। भारत में काम करने वाले अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार यहाँ लगभग 9 करोड़ बाल श्रमिक हैं। हालांकि कुछ गैर सरकारी संगठन बाल श्रमिकों की संख्या इससे अधिक बता रहे हैं, भारत की वर्तमान जनसंख्या लगभग 1.22 बिलियन है। देश में 5-14 वर्ष की आयु वर्ग के श्रमिकों का भाग कुल जनसंख्या का 5% है इस आयु वर्ग के मात्र 14.07% बच्चों को ही स्कूल जाने का मौका मिल पाता है। 5-14 वर्ष के श्रमिकों की अधिकतम संख्या मिजोरम में है जो कुल जनसंख्या का 12.34% है तथा न्यूनतम संख्या लक्षद्वीप में है जो कि कुल आबादी का 0.19% है चौकोने वाली बात यह है कि भारत में कुल कार्यबल का 11% हिस्सा बच्चे हैं।

बालश्रम के प्रमुख कारण :

बालश्रम का मुख्य कारण गरीबी, बेरोजगारी व अशिक्षा है, व्यापारियों को बाल श्रमिकों से सहज और सस्ता साधन कुछ नहीं मिलता। उन्हें मदजूरी भी कम देनी पड़ती है व काम एक वयस्क मजदूर जितना मिल जाता है और कभी-कभी उससे भी ज्यादा। बालश्रम का सबसे घिनौना रूप बाल वेश्यावृत्ति है, एक अध्ययन के अनुसार 15 प्रतिशत वेश्याएँ 15 वर्ष से कम उम्र में ही वेश्यावृत्ति के पेशे में आ जाती हैं। बालश्रम एक सामाजिक, आर्थिक समस्या है गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा के साथ-साथ जागरूकता का अभाव। जनसंख्या विस्फोट आदि बालश्रम के मुख्य कारण हैं। अशिक्षित अभिभावक शिक्षा के महत्व को ना समझ कर उन्हें कम उम्र में ही काम पर लगा देते हैं।

बालश्रम के उन्मूलन के लिए कानूनों का प्रभावी रूप से लागू न हो पाना भी इस समस्या के लगातार विस्तार का एक प्रभावी कारण है। सरकारी व गैर सरकारी तौर पर किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि माचिक, पटाखा,

फैक्ट्री, हानिकारक रासायनिक कारखाने, बीड़ी, कारखाने, कालीन उद्योग, चूड़ी, शीशा उद्योग आदि फैक्ट्रियों में विस्फोटक सामग्री कानून तथा श्रम कानूनों का उल्लंघन किया जाता है। कुछ सर्वे यह दर्शाते हैं कि प्रबन्धकों के पास 8 से 10 वर्ष तक के बालकों के आयु सम्बन्धी फर्जी प्रमाण-पत्र उपलब्ध रहते हैं जिनमें उन्हें 15 वर्ष से अधिक आयु का दिखाया गया होता है। इतना ही नहीं कानूनी नियमों से बचने के लिए विभिन्न प्रकार के हथकण्डे अपनाए जाते हैं जिसमें घूस देना जैसे भ्रष्ट तरीके भी शामिल हैं। बालश्रमिकों का होना ही अधिनियमों व प्रावधानों में बरती जाने वाली लापरवाही स्वयं सिद्ध करता है। बालश्रम के लिए हमारा सामाजिक ढांचा भी जिम्मेदार है जिसमें निम्न वर्ग अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति को मजदूरी विरासत में मिलती है। इसके अलावा पारिवारिक सदस्यों की नशाखोरी की आदत, रूढ़िवादी रीति-रिवाज, बुरी संगत व पारिवारिक तनाव भी बाल मजदूरी के प्रमुख कारण हैं।

भारतीय संविधान में बच्चों के हितों से संबंधित कानूनी प्रावधान :

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 24 के अनुसार 14 वर्ष से कम आयु के किसी भी बच्चे को किसी फैक्ट्री में काम करने या किसी जोखिम वाले रोजगार में नियुक्त नहीं किया जा सकता है। अनुच्छेद 39(F) में बाल्यावस्था, किशोरावस्था को शोषण तथा नैतिक एवं भौतिक परित्यक्ता से बचाने का प्रावधान है। संविधान के अनुच्छेद (45) के अनुसार 6 वर्ष तक के सभी बच्चों को सरकार द्वारा निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा दिये जाने का प्रावधान है संविधान के अनुच्छेद 21 (क) के अनुसार संविधान के 86वें संशोधन 2002 के माध्यम से 6-14 वर्ष के बच्चों को शिक्षा का मौलिक अधिकार प्रदान किया गया है। कारखाना अधिनियम 1948 के अनुसार बच्चों को अस्वस्थ कर परिस्थितियों में श्रम पर नहीं लगाया जा सकता है। किशोर न्याय अधिनियम 1986 बच्चों के हित के लिए तथा उपेक्षित एवं अपचारी बच्चों की देखभाल, विकास तथा पुनर्वास के (यथा संशोधित 2000) साथ-साथ समुचित न्याय व्यवस्था सुनिश्चित करने हेतु प्राथमिक कानून बनाया गया है। इन सभी प्रयासों से एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि अगर इन कानूनों को प्रभावी रूप से लागू किया जाये तो आने वाले समय में इस समस्या से निजात पाया जा सकता है।

बालश्रम के हानिकारक प्रभाव :

बालश्रम न केवल एक सामाजिक बुराई है, अपितु इसके अनेक कुप्रभाव भी बच्चों पर पड़ते हैं अत्यधिक श्रम के कारण इन बच्चों का सर्वांगीण विकास अवरूद्ध हो जाता है। परिणामस्वरूप उनकी कार्यक्षमता कम हो जाती है प्रतिदिन 12 से 15 घंटों थका देने वाला श्रम उन्हें शिक्षा से वंचित कर देता है, जिससे उनका बौद्धिक विकास नहीं हो पाता है और जीवनभर मजदूर बनकर ही रह जाते हैं। अत्यधिक अवसाद व कुण्ठा के कारण आज बच्चों की आत्महत्या व अन्य जघन्य अपराधों की सख्या में इजाफा हुआ है। निरन्तर बढ़ते हुए बाल अपराध इसी बात का सबूत हैं कि हमारे देश में सख्त कानूनों के अभाव में असामाजिक तत्व फायदा उठाते हैं व महज चंद पैसों के लालच में या जबरदस्ती उनसे गैर कानूनी काम करवाते हैं। बालक मजदूर की अपेक्षा बालिका मजदूर की स्थिति और भी दयनीय है। जोखिमपूर्ण तथा खतरनाक उद्योगों में कार्यरत बच्चों के स्वास्थ्य पर तो कुप्रभाव पड़ता ही है साथ ही माचिस, पटाखा, कांच जैसे उद्योगों में दुर्घटना की अत्यधिक सम्भावना के कारण इनके अपाहिज हो जाने का खतरा भी बना रहता है। कांच उद्योग में काम करने वाले बच्चों को तो 104 डिग्री सेंटीग्रेड तक तापमान में काम करना पड़ता है तथा कारखानों में कार्यरत बच्चे टी.बी. के भी शिकार हो जाते हैं, क्योंकि ईट की दीवारों पर जो कालिख जमी होती है उससे हवा प्रदूषित हो जाती है। ये भट्टियाँ 1400 डिग्री सेल्सियस तापमान पर जलती हैं। कारखानों के मालिक, आर्सेनिक और पोटैशियम जैसे खतरनाक रसायनों का प्रयोग करते हैं जो बच्चों के फेफड़ों पर सीधा असर डालते हैं। इन कारखानों में काम करने वाले बच्चे भी कई प्रकार की बमारियों से ग्रसित हो जाते हैं। उसके बाद मिल मालिक इन्हें धक्के मारकर बाहर निकाल देते हैं तथा इलाज के अभाव में ये बच्चे

असमय ही काल के ग्रास हो जाते हैं। माचिस व पटाखा उद्योग में काम करने वाले बच्चों को सॉस की दिक्कत तथा विस्फोट का खतरा सदैव बना रहता है। जबकि पत्थर खदान, स्लेट, कांच उद्योग में काम करने वाले बच्चों को सिलिकोसिस तथा जल जाने के खतरों का सामना करना पड़ता है। अत्यधिक शोर वाली मशीनों के कारण प्रायः ये बच्चे बहरे हो जाते हैं तथा हथकरघा उद्योग में फाइब्रोसिस तथा कालीन उद्योग में धूल रेशों के कारण फेफड़ों की बीमारी, गठिया, जोड़ों में दर्द आदि होने की अत्यधिक सम्भावनाएँ हैं।

बालश्रम रोकने के व्यवहारिक उपाय :

विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों व सरकारी व गैर सरकारी उपायों के बाद आज भी हम बालश्रम को रोकने में असफल रहे हैं। यदि हम गरीबी को इसका मूल कारण मानते हैं तो हमें उनके माता-पिता के सामने आये बढ़ाने के विकल्प पेश करने होंगे। भारत की आर्थिक व सामाजिक व्यवस्था को सुधारे बगैर अनिवार्य व मुफ्त शिक्षा की बात बेईमानी होगी। कानून एक जरूरी उपाय जरूर है किन्तु केवल कानून बनाने से समस्या का समाधान नहीं हो जाता है यह भी ध्यान देना जरूरी है कि क्या वह कानून यथार्थ के धरातल पर सही है। कानून बनाने के साथ उन बच्चों के पुनर्वास व जीविका के अन्य वैकल्पिक साधनों को भी दिया जाना जरूरी है। साथ ही बच्चों में भी इतनी अधिक जागरूकता फैला दी जानी चाहिये कि वे स्वयं भी अपने मौलिक अधिकारों को जान सकें तथा अपने साथ होने वाले शोषण व अन्याय के खिलाफ आवाज उठा सकें। इसके आलवा स्वयंसेवी संगठनों, मीडिया व बुद्धिजीवियों के माध्यमों की भूमिका भी प्रोत्साहित की जानी चाहिये। देश के प्रत्येक बच्चे तक शिक्षा पहुँचाई जानी चाहिये। शिक्षित समाज ही समाजिक बुराईयों को समाप्त कर सकता है। बालश्रम से एक भावी नागरिक का विकास अवरुद्ध होता है। परन्तु उससे भी अधिक भयावह है जो सफेद पोश सामाजिक ठेकेदारों द्वारा चलाये गये उद्योग व उन सबके पीछे कार्यरत बाल मजदूरों के लिये इनकी मंशा। एक आंकड़े के मुताबिक बाल वेश्यावृत्ति एक बड़ी समस्या के रूप में विकसित हो रहा है।

उदारीकरण :

उदारीकरण के इस दौर में जो बदलाव (मशीनीकरण या तकनीक का इस्तेमाल, वैश्वीकरण, सूचना तकनीक के माध्यम से जानकारी का त्वरित प्राप्त होना व दायरा भी बढ़ना) समाज में परिलक्षित हो रहा है उससे महिलाएँ भी अछूती नहीं हैं। लेकिन अनौपचारिक अर्थव्यवस्था से जुड़ी महिलाओं को नुकसान भी हुआ है। (औपचारिक अर्थव्यवस्था में लगी महिलाएँ यानी लघु उद्योग से जुड़ी कामगार महिलाएँ, कपड़ा, बीड़ी बनाने या अन्य लघु उद्योग से जुड़ी कामगार महिलाएँ) दूसरी तरफ मिडिल इकोनामी का कुशल, अर्थव्यवस्था से जुड़ी महिलाओं को उदारीकरण से काफी लाभ मिला है। उदारीकरण ने कई महिलाओं को उद्यमी बनने का मौका दिया है। ग्लोबल विलेज होने की वजह से एक दूसरे देशों में आयात-निर्यात बढ़े हैं। इस कारण फैशन तकनीक या हस्तशिल्प उद्योग से जुड़ी महिलाओं को स्थानीय बाजार तो मिला ही साथ में विश्व बाजार भी मिला। लेकिन उदारीकरण का पूरा लाभ महिलाओं को क्यों नहीं मिल सका। जबकि इस दौर में देश की अर्थव्यवस्था ने तेजी से प्रगति की। असल में, हमारे यहां महिलाओं को दृष्टि में रखकर उदारीकरण की नीतियां ही नहीं बनीं। अनौपचारिक अर्थव्यवस्था से जुड़ी महिलाओं के लिए वैकल्पिक रोजगार की व्यवस्था नहीं की गई। उनकी आर्थिक सुरक्षा को ध्यान में रखकर योजना नहीं बनाई गई है। बढ़ती आर्थिक हिंसा और दहेज अर्थव्यवस्था दोनों की मार महिलाओं पर पड़ी है। सबसे बड़ी दिक्कत उस पुरुष वर्चस्वादी मानसिकता की है जो महिलाओं को हमेशा हाशिये पर देखना चाहती है।

यह कहना बिल्कुल गलत होगा कि उदारीकरण से महिलाओं को सिर्फ नुकसान हुआ है। सच्चाई यही है कि स्व-रोजगार के क्षेत्र में महिलाएँ आगे आई हैं और उन्होंने अपना लघु उद्योग भी खोला है मगर जरूरत यह है कि उदारीकरण की पहुंच सिर्फ एक खास वर्ग की महिलाओं तक न हो। संयुक्त राष्ट्र और वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम जैसे मंच भी यह मानते हैं कि उदारीकरण ने बेशक महिलाओं को फायदा पहुँचाया है मगर अनौपचारिक

अर्थव्यवस्था से जुड़ी महिलाएँ इसमें काफी पीछे छूट गई हैं। इसलिये उन्हें मुख्य अर्थव्यवस्था में शामिल करने के लिए हमें खास इंतजाम करने होंगे।

संदर्भ ग्रन्थ

1. बाल श्रम कल और आज एवं निराकरण : डा० डी० सी० चतुर्वेदी
2. समाचार पत्र
3. प्रतियोगिता दर्पण विशेषांक
4. सर्वे रिपोर्ट — निदेशक सेन्टर फॉर सोशल रिसर्च।
5. भारत में बाल श्रम : डा० एम०एन० राय।
6. भारतीय महिला अर्थव्यवस्था (कल, आज और कल) : सामाजिक सर्वे रिपोर्ट



पांचाल का ऐतिहासिक भूगोल

राज्यश्री शुक्ला

प्रवक्ता इतिहास

राजकीय बालिका इण्टर कालेज, गोमती नगर, लखनऊ

वैदिक काल में सिन्धु से गंगा बेसिन का विशाल भूभाग सप्तसैन्धव प्रदेश आर्यों की 'यज्ञिय भारती' संस्कृति का मूल लीलाधाम रहा है। आर्यों के अनेक कबीलों में सबसे अधिक प्रभावशाली तूत्सुओं का पुरु (कुरु) या भरत रूप में राज-नैतिक प्रभाव सप्त सिन्धु की सीमायें लांघकर उत्तरवैदिक काल में पूर्व तथा दक्षिण पूर्व में सरस्वती-दृष्टती नदियों के बेसिन ब्रह्मावर्त से भी आगे गंगा जमुना के दोआब 'ब्रह्मर्षि देश' तक बढ़ गया था। वैदिक कालीन दाशराज युद्ध के विजेता महान् यज्ञकर्त्ता तुत्सुराज पैजवन सुदास 'वोतहव्य' का एक छत्र शासन इसी यज्ञिय स्वर्गोपम क्षेत्र में था, जिसका परवर्ती वैदिक साहित्य में 'पंचाल' नाम से समुल्लेख हुआ है।

नामकरण एवं स्वरूप की पौराणिक पृष्ठभूमि— पंचाल विषयक पौराणिक साहित्य की मान्यता के अनुसार महाराजा भद्राश्व अथवा हर्यश्व के पाँच पुत्रों (मुद्गज, जय, बृहदिषु, यवीनर तथा कम्पिल) के द्वारा एक साथ विजित शासित एवं संरक्षित होने के कारण इस राज्य का अभिधान पंचाल प्रचलित था। कहीं इन नामों में अन्तर पाया जाता है। भद्राश्व के स्थान पर मित्रेयु के पाँच राजपुत्रों (च्यवन, सुदास, सहदेव, जन्तु, सोमक) से विजित क्षेत्र "पंचाल" तो कहीं कवि, तुवंश, केशिन, संजय तथा सोमक नामक पाँच जनसमुदाय से शासित होने से यह नाम-करण हुआ।

महाभारत के शान्तिपर्व में पंचाल नामक राजर्षि का वर्णन हुआ है, जिसकी वंश परम्परा पंचाल राज्य से परवर्ती काल में प्रवर्तित हुई थी, "पंचालेन क्रमः प्राप्तस्तमाद् भूताद् सनातनात् ।।' अतएव पंचाल नाम आदि शासक के नाम पर अथवा उपर्युक्त उल्लिखित पाँचों राजपुत्रों द्वारा शासित होने के कारण व्यवहृत होने लगा।

सीमा स्वरूप एवं क्षेत्र विस्तार — महाकाव्य कालीन मध्यप्रदेश अथवा आर्यावर्त के 16 महाजनपदों में पंचाल की हृदयवत् महत्वपूर्ण स्थिति थी जिसकी क्षेत्र विस्तार दक्षिण में चर्मण्डल या चर्मण्वती (चम्बल) नदी के उत्तर में हिमालय (उत्तरगिरि) अर्थात् 26°30' से अक्षांश 30°30' अक्षांश तक तथा पश्चिम में कुरु राज्य सीमा 78 अंश पूर्वी देशान्तर से कौशल राज्य की सीमा 80°50' पूर्वी देशान्तर तक निर्धारित किया जा सकता है। कुरु राज्य से जहाँ इसकी सीमा रेखा की संक्षिप्तता होने से कुरु पंचाल युग्म रूप में अभिहित है वहीं क्रिवियों से भी कहीं-कहीं पंचालों की अभिन्नता व्यक्त हुई है —

“त्रिवय इति पुरा पंचालानाचक्षते ।”

हिमालय (उत्तरगिरि) उपत्यका से चर्मण्वती (चम्बल) नदी तक के ऊँचे टीलों खंडों को छोड़कर पथरीली कंकरीली भूमि के साथ ही उक्त मैदानी धरातल को समुद्र तट के ऊँचाई 150 से 300 मीटर है जिसका ढाल पूर्व तथा दक्षिण है। पूर्व को प्राकृतिक प्रवाह प्रणाली (नदियों) के बहाव के आधार पर परिलक्षित होता है।

प्राचीन पंचाल की प्राकृतिक सीमाएँ पर्वत, नदियों एवं वनों से दुर्गम होने के कारण उसे शत्रुओं से सदैव सुरक्षित रखती थी। उत्तरी अलंसूय सीमा में हिमालय का जहाँ उत्तरीगिरि अभिधान अप्रत्यक्ष रूप में पाया जाता है, वहाँ दक्षिण में (चम्बल) नदी अपनी दुर्गम गहरी वनैली घाटियों से पंचाल की आदर्श सीमा निर्धारित करती थी—

दक्षिणांश्चापि पंचालान् यावच्चर्मण्वती नदी ।

(महा. आदि 137/74)

जमुना, चम्बल तथा उसकी सहायक क्वारी की गहरी घाटीयुक्त यह वन्य क्षेत्र त्रिगर्त के रूप में भी जाना

जाता था।

यद्यपि रामायण में प्रत्यक्षतः पंचाल का नामोल्लेख नहीं है, तथापि इसमें इस राज्य के अनेक महत्वपूर्ण स्थलों की प्रसंगतः प्रस्तुति हुई है। जिनसे पंचाल की प्राकृतिक एवं राजनैतिक स्थिति का स्पष्ट आभास होता है। महाभारत के भीष्म पर्व में इसकी उत्तरी-दक्षिणी सीमा के अतिरिक्त पश्चिमी पूर्वी सीमा का भी स्पष्ट उल्लेख हुआ है। पश्चिम में कुरु एवं दक्षिण में दक्षिण पश्चिम जंगली क्षेत्र, जंगल शूरसेन एवं मतस्य दक्षिण में कुरु एवं दक्षिण में दक्षिण पश्चिम जंगली क्षेत्र, जंगल शूरसेन एवं मतस्य दक्षिण में चर्मण्डल (चम्बल) नदी घाटी क्षेत्र तथा पूर्व में कोसल राज्य उल्लेखनीय है। आधुनिक मानचित्र में बिजनौर, बदायूँ, बरेली, रामपुर, मुरादाबाद, शाहजहाँपुर, पीलीभीत (आधा भाग), एटा, मैनपुरी, फर्रुखाबाद, इटावा, कानपुर जिले के अधिकांश भू-भाग से पंचाल क्षेत्र को प्रदर्शित किया जा सकता है। जिसमें अधिकांश सहेलखण्ड क्षेत्र सम्मिलित है।

प्रतीत होता है कि पंचाल प्रारम्भ में एक केन्द्रीय या चक्रीय राज्य रहा था, किन्तु कालान्तर में कौरव-पाण्डवों के गुरु द्रोणाचार्य से राजा पृषत के पुत्र पार्षत यज्ञसेन 'द्रु पद' का अपमान-मूलक वैर-भाव होने के कारण उन्हें विवश होकर पंचाल का विभाजन करना पड़ा था।

गंगा नदी विभाजक रेखा बनी। गंगा से हिमालय पर्वत पर उत्तरी पंचाल क्षेत्र (अहिक्षेत्र विषय) द्रोण के अधीन हुआ, जबकि गंगा से दक्षिण चर्मण्वती नदी तक। दक्षिण पंचाल द्रुपद द्वारा शासित हुआ, जिसकी प्रमुख राजधानी काम्पिल्य थी तथा माकन्दी भी द्वितीय राजनगर रहा।

“राजाडसि दक्षिणे कूले भागीरथ्यामहमुत्तरे,
सखायम् मां विजानीहि पंचाल यदि मन्यसे।
माकन्दीमथ गंगायास्तीरे जनपदायुताम्।।
सोऽध्यवसद् दीनमनाः काम्पिल्यं च पुरोत्तमम्।। (महा. आदि. 137/70-73)
पुत्रंजन्मं अहिच्छत्रं च विषयं द्रोणः समभिपद्यत।
एव राजन्नहिच्छत्रं पुरीजनपदायुता।
युधि निर्जित्य पार्थेन द्रोणाय प्रतिपादिता ।। (महा. आदि 137/77)

पंचाल का प्राकृतिक भूगोल— हिमालय पर्वत (उत्तरगिरि) से चर्मण्वती नदी तक अधिकांश विशाल मैदानी भू-भाग रामगंगा भागीरथी गंगा इक्षुमती (काली) अरिन्द (रिन्द) ईशन, सेंगुर, यमुना, चम्बल जैसी प्रचुर जल वाली नदियों से बहाकर लायी हुई कंकरीली पथरीली मिट्टी के अतिरिक्त चिकनी रेतीली (मिट्टी से निर्मित है, जहाँ समुद्र तट से 150 से 300 मीटर ऊँचे धरातल पर उत्तरी पंचाल हिमालयीय तराई साधन वन युक्त हों वहाँ दक्षिण पंचाल भी यमुना चर्मण्वती नदियों की गहरी घाटी के सघन द्वैतवन से अपनी दक्षिणी सीमा को सुरक्षित किये हुए था। 60 से 80 की मानसूनी अनुकूल जलवायु में पर्याप्त वार्षिक वृष्टि से खेतों की मेड़ें या बाँध फूट जाते थे। गुरुभक्त अरुणि ने स्वयं भारी वर्षा में आश्रम के खेत की टूटी मेड़ पर लेटते हुए पानी के प्रवाह को रोक कर अपने गुरु ऋषि के प्रति उत्कट गुरु भक्ति की कठिन परीक्षा दी थी, जिसमें उत्तीर्ण होकर गुरुद्वारा उदक से उठाये जाते हुए 'उछालक' रूप में अभिहित हुए थे।

इस पर्याप्त दृष्टि से पंचाल प्राकृतिक वनस्पति समृद्ध था। यहाँ सघन वनों की नदियों के तटों से सटी हुई इतनी लम्बी चौड़ी श्रृंखला थी कि इन्हें पार करना तथा संचार पथ बनाना अत्यन्त कठिन था। वरणावत (मेरठ जिले के वरणाद या बड़ौत) के लाक्षागृह से निकलकर गंगा पार करते हुए कुन्ती मां सहित आपदग्रस्त पाण्डव सीधे दक्षिण की ओर पंचाल की पश्चिमी सीमा के धने जंगलों से होकर निकले थे। पंचाल की प्राकृतिक सुषमा सघन वनों सरोवरों, नदी, नदों से सुरक्षित सर्वत्र संलक्षित होती थी।

नैसर्गिक विशाल सरोवरों (झीलों) के आस-पास स्वतः एवं शालि धान्य उग जाते थे जिनसे मानव एवं पशु

पक्षी निर्जन अरण्य में भोजन पाते रहते थे। भूखे प्यासे पाण्डवों को भीम ऐसे ही एक रम्य “शलिहोत्तसर” के समीप ले गये थे। मैनपुरी आदि जिलों में पुरातन पंचाल के ऐसे अनेक विशाल सरोवर निगोह जैसी झील, झावर देखे जा सकते हैं। किन्हीं-किन्हीं सरोवरों में सुन्दर कमल खिले रहते थे। ऐसे कमल युक्त सरोवर समूह वाले अत्यन्त रम्य वन में “उत्पलारण्य” उल्लेखनीय है, जिसकी अवस्थिति दक्षिण पंचाल के ब्रह्मावर्त (बिटूर) क्षेत्र में मानी गयी है। दक्षिण पंचाल की वर्तमान इटावा जनपद की यमुना, चम्बल, क्वारी तीनों नदियों की काटी हुई गहरी घाटी त्रिगर्त, तथा यहीं यमुना-चम्बल का द्वैतवन पाण्डवों का प्रवासकाल में आश्रय स्थल बना था। एकचक्रा (वर्तमान चक्रनगर) के पास पराक्रमी भीम ने यमुनातटीय गह्वरवासी बकासुर का वध किया था जिसकी स्मृति में बकपुर (वर्तमान बकेवर बस्ती) आज भी विद्यमान है।

पंचाल के नैसर्गिक सुरम्य वन भी अन्तपुर के आमोद-प्रमोद पूर्ण विलास स्थल बन जाते थे। द्रुपद की रानी भोगवती की लीला विलास भूमि “भोगवन” दक्षिण पंचाल स्थित भोगवा (भोगाँव) से भिन्न नहीं है।

उत्तरी पंचाल में सीमावर्ती तराई की सघन वनराजि में नाना जीव जन्तुओं के अन्तर्गत हाथी अधिक पाये जाते थे। यही कारण है पंचाल की चतुरंगिणी सेना में गजसेना से अत्यन्त सशक्त और समृद्ध थी। महाभारत के अनेक सन्दर्भों में पंचाल की गजसेना की समृद्धि का सुन्दर चित्रण प्राप्त होता है।

पंचाल का सांस्कृतिक एवं मानव भूगोल—पंचाल के मानव जीवन के सांस्कृतिक समुत्कर्ष के सूचक धर्म, अधि, काम, तीर्थ केन्द्र रूप में उनके मनस्वी तत्त्ववेत्ता ऋषियों तथा राजाओं द्वारा संस्थापित आश्रम, तीर्थ, नगर, मन्दिर मार्ग, सेतु आदि हैं। यहाँ संक्षेप में इन धर्म अर्थ, काम तीर्थों का परिचय प्रस्तुत है जिनसे पंचाल का आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक भूगोल प्रकारान्तर से परिपुष्ट होता है।

प्रमुख धर्म तथा तीर्थ स्थल — पंचाल में धर्म, अध्यात्म एवं ज्ञान-विज्ञान के अधोलिखित प्रमुख केन्द्र उल्लेखनीय हैं — भरद्वाज आश्रम, रामायणकालीन, गंगा-संगम स्थल, सुदूर कुरु राज्य के उत्तर पूर्व में उत्तरी पश्चिमी पंचाल राज्य सीमा गंगाद्वार (हरिद्वार) के समीप गंगातट पर महर्षि भरद्वाज का पावन आश्रम अवस्थित था, जहाँ विविध शास्त्रों के साथ आयुध शास्त्र की भी शिक्षा दी जाती थी। पंचालराज पृथत महर्षि भरद्वाज के प्रिय मित्र थे। दोनों के पुत्रों क्रमशः द्रुपद (यज्ञसेन) और द्रोण ने यहीं शास्त्र(विशेषतः धनुर्वेद का) ज्ञान प्राप्त किया था।

धौम्य आश्रम — उपनिषदों में उल्लिखित उछालक आरुणेय के गुरु महर्षि धौम्य का आश्रम गंगा के तट पर काम्पिल्य से अनति दूर अवस्थित था इसी आश्रम से आत्म ज्ञान पाकर शास्त्रार्थ हेतु आरुणेय पंचालों प्रबुद्ध परिषद में पहुँचा था। महाभारत के अनुसार इस विख्यात विद्याकेन्द्र रूप आश्रम की स्थिति उत्कोचक 4 तीर्थ के अन्तर्गत रम्य भागीरथी तट के समीप थी, किन्तु डॉ. रत्नाकर शास्त्री ने इसका समीकरण यमुनातट वर्ती धैमनपुरा नामक नगले से किया है जो महाभारत पाठ को ध्यान में रखते हुए सर्वथा असंगत प्रतीत होता है। इसकी उपस्थिति अब फर्रुखाबाद जनपद में कम्पिल से लगभग 2 किमी दूर नैऋत्यकोण में धौम्यपुर धौपुरा के साथ संगत लगती है। क्योंकि इसके समीप भागीरथी गंगा का होना उल्लिखित है, यमुना का नहीं। अतः धौमनपुरा के स्थान पर फर्रुखाबाद के धौपुरा को धौम्याश्रम के रूप में ग्रहण करना चाहिये, जहाँ से पाण्डव धौम्य ऋषि को अनला पुरोहित मानकर द्रुपद के यज्ञवाट में गये थे। अतः पंचाल की राजधी नका धौम्य यज्ञस्थली के रूप में विशेष महत्व है। जहाँ ‘पुत्रेष्टियज्ञ’ के साथ धनुर्यज्ञ भी सम्पन्न हुए थे।

महर्षि अत्रि, आत्रेय पुनर्वसु दत्तात्रेय आरुणि नचिकेता, श्वेतकेतु उपमन्यु प्रभृति तत्त्वचवेता मनस्वी महापुरुषों के तीर्थकल्प आश्रम पंचाल राज्य में ही गंगा के पावन एवं सुरम्य तट के आस-पास अवस्थित है। आयुर्वेद के आचार्य ऋषि आत्रेय पुनर्वास ने जनपदों ध्वैसी (Epidemic) रोग होने के पूर्व लोक कल्याणार्थ औषधियों के संग्रह करने के लिये अपने शिष्य अग्निवेश को अपने आश्रम के आस-पास (पंचाल के राजकेन्द्र काम्पिला के समीप) गंगा के कछार में चलने का अनुरोध किया था।

उत्कोचकतीर्थ – धौम्याश्रम के आस-पास लगभग 5 किमी व्यास का पावन गंगा तटवर्ती क्षेत्र उत्कोचक तीर्थ कहा गया है जो काम्पिल से 2 मील दक्षिण पश्चिम की ओर था। पाण्डव अपने प्रवास काल में द्रौपदी धनुर्यज्ञ स्वयं वर के पूर्व यहाँ के धौम्य-आश्रम में पहुँचे थे। इससे ज्ञात होता है, यह पावन तीर्थ प्रसिद्ध सिद्धस्थल के रूप में विश्रुत था।

सोमाश्रायण तीर्थ-उत्कोचक तीर्थ के समीप यह तीर्थ स्थल भी पंचाल में गंगा के पावन तट पर विद्यमान था जिसका पाण्डवों ने एक दिन तथा एक रात चलकर अपने प्रवास काल में दर्शन किया था।

प्रमुख अर्थकाम तीर्थस्थल-वाणिज्य, शासन कला एवं संस्कृति केन्द्र रूप में अधोलिखित प्रमुख अर्थ और काम के केन्द्र नगर उल्लेखनीय हैं –

अहिच्छन्ना- उत्तर पंचाल की यह राजधानी परिचक्रा अहिच्छत्र, अहिच्छता अहिच्छेत्र, छत्रवती, संख्यावती आदि अनेक अभिधानों से अपनी धार्मिक राजनीतिक सांस्कृतिक ऐतिहासिक, पुरातात्विक महत्त्व के कारण लोक विश्रुत रही है। वर्तमान बरेली जिले के रामनगर गाँव के समीप टोलों में यह पुरातन राजनगर बिखरा पड़ा है जो आँवला स्टेशन से 10 मील दूर उत्तर की ओर अवस्थित है। रामनगर से लगभग 5 किमी. दूर अहिच्छत्रा के पुरातन दुर्ग के अवशेष दृष्टिगत हेतु हैं जिसे आदिकोट कहते हैं यहाँ पुरातात्विक महत्त्व की विपुल सामग्री (गुप्त कालीन मिट्टी के खिलौने, पुरातन यक्ष शिव, दुर्गा, जैन, प्रतिमाएँ यज्ञ वेदिकाएँ भी प्राप्त हुई हैं, जिससे इसकी यज्ञिय धार्मिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से उपादेयता बढ़ जाती है। हर्ष के बाँसखेड़ा के 628 ई. के ताम्र लेख में अहिच्छत्र-भुक्ति के अंग पश्चिम मार्ग से सम्बन्धित मर्कटसागर गाँव को भरद्वाज, गोत्रीय सामवेदी ब्राह्मण भट्ट बालचन्द्र तथा भद्रस्वामी को अग्रहार रूप में दान दिये जाने का उल्लेख हुआ है। बौद्ध एवं जैन प्रतिमाओं के अतिरिक्त पार्वती तथा शिव की अधिसंख्य प्रतिमाएँ प्राप्त होने से यह सनातन धर्म का भी प्रमुख केन्द्र प्रतीत होता है। यज्ञस्थली रूप में अनेक पुरातन वेदिकाओं से इसकी महत्ता बढ़ जाती है।

काम्पिलय – दक्षिण पंचाल का यह यज्ञिय श्रेष्ठ शासन केन्द्र यजुर्वेद महा-भारत पुराण साहित्य बौद्ध जैन ग्रन्थों में उल्लिखित है। फर्रुखाबाद जिले के बूढ़ी गंगा तट के समीप 27039, उत्तर अक्षांश तथा 79 0 30, पूर्वी देशान्तर पर फतेहगढ़ से लगभग 50 किमी. उत्तर पश्चिम में कायमगंज तहसील के अन्तर्गत अवस्थित है।

महाभारत के अनुसार यह पुरातन नगर गहरी परिक्षा से परिवृत्त याद्विक दुर्ग तथा स्कन्धावार से युक्त था। धनुर्यज्ञ रूप में द्रौपदी-स्वयंवर यहीं सम्पन्न हुआ था सांस्कृतिक ऐतिहासिक और पौराणिक घटनाओं से जुड़े अनेक स्मारक स्थल काम्पिल के आस पास बिखरे खेड़ी, टोली, नगलों-ग्रामों में देखे जा संकेत हैं, जिनमें द्रुपद का यज्ञस्थल (यज्ञवाट) (जजोटा) काम्पिल के पश्चिम में धौम्याश्रम या धौपुरा के समीप पाण्डु खबरों के पाण्डवों के छिपने के स्थल भेदकुण्डा (धौपुरा के समीप उत्तर में है) द्रुपद द्वारा पुत्र कामना से जहाँ यज्ञ में रुद्र पूजा वह यज्ञिय स्थल रुद्रायन। रुद्रायन काम्पिल से 5 किमी. दक्षिण पश्चिम शिखण्डी को जहाँ पुंसत्व प्राप्त हुआ था। वह स्थल मुण्डबन (मुण्डोन या मुण्डौल काम्पिल के पूर्व में पड़ी। सिद्ध स्थान से 6 मील दूर जहाँ स्थूल यज्ञ के मन्दिर को स्थूलश्रवाया सोन सरवा) कहा गया है, उल्लेखनीय है।

चीनी यात्री ह्वेनसांग ने इसे देखकर इसकी आर्थिक एवं सांस्कृतिक समृद्धि के साथ धार्मिक यज्ञिय महत्त्व का वर्णन किया है। जिसके अनुसार नगर से लगभग कुछ मील दूरी पर एक विशाल बौद्ध संघाराम था, जिसमें लगभग 100 बौद्ध साधक रहते थे।

यह नगर वैदिक यज्ञिय अध्यात्म दर्शन, आयुर्वेद बौद्ध एवं जैन धर्म वाणिज्य शासन संस्कृति, शिल्पकला का प्रधान केन्द्र रहा है। इसका प्रमाण यहाँ से प्राप्त पुराने सिक्के, मिट्टी के खिलौने, प्रस्तर प्रतिमाएँ यज्ञ-वेदिकायें आदि प्रचुर मात्रा की पुरातात्विक सामग्री प्रस्तुत करती है।

कान्यकुब्ज – रामायण में राजा गांधी एवं अपने वंशजों के शासन केन्द्र रूप में उल्लिखित है। पुरातन पंचाल

का गंगा तटवर्ती यह नगर पौराणिक अर्थ तीर्थ महोदय तथा सम्प्रति कन्नौज नाम से पूर्व मध्यकाल में वर्धन, मौखरि एवं गहड़वाल शासकों की राजधानी बनने पर शासन वाणिज्य कला तथा विद्या का प्रमुख केन्द्र बनकर विशेष गौरवान्वित हुआ। यहाँ अनेक पुरातन मूर्तियाँ, सिक्के, दुर्ग एवं मन्दिरों के ध्वंसावशेष प्राप्त हुए हैं। यह नगर पंचाल के प्राचीन काम्पिल्य संकाश्या (संकिसा) आदि नगरों से मार्गों द्वारा जुड़ा हुआ था।

संकाश्या – दक्षिण पंचाल का यह राजनगर रामायण के आदि काण्ड के 70 वें अध्याय में सीरध्वज जनक के भाई कुशध्वज के शासन केन्द्र रूप में वर्णित है, जिसकी अवस्थिति इक्षुमती (वर्तमान काली) नदी के उत्तरी तट पर थी।

वार्याफलकपर्यन्तां पिबत्रिक्षुमतीं नदीम्,

संकाश्यां पुण्यसंकाशां विमानमिव पुष्पकम्।

(रामा. बाल. 70/3)

इक्षुमती (काली) नदी से इसको आस-पास ईख (गन्ने) की खेती अधिकता अभिव्यंजित होती है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी (4/2/80) में संकाश्या नगर का उल्लेख किया है। फर्रुखाबाद एवं एटा, मैनपुरी जिलों की सीमा के समीप 200 200 300 अक्षांश तथा 790200 पूर्वी देशान्तर पर स्थित वर्तमान संकिशा से इसे समीकृत किया जा सकता है। यह मोटर, स्टेशन से 7 किमी. तथा पखना स्टेशन से दक्षिण पश्चिम को 11 किमी. दूर था। 'विमानमिव पुष्पकम्' रामायण के उल्लेख से इस नगर की ऊँचाई पर अवस्थिति अथवा उत्तुंग अट्टालिकाओं का होना ज्ञात होता है। इसकी वर्तमान धरती भी ऊँचे टीले पर लगभग 3.5 वर्गमील क्षेत्र में विद्यमान है, जिसमें 150000 वर्ग गज क्षेत्रफल का किले का स्थल विशेष ऊँचा है। चीनी यात्री फाह्यान ने मथुरा से तथा हेनसांग ने अतिरंजी से इस ऐतिहासिक नगर की यात्रा करते हुए आँखों देखा वर्णन रकिया है। यहाँ बौद्धों के 10 संघाराम, 10 देवमन्दिर यज्ञ वेदिका स्तम्भ, शिवलिंग, अभिलिखित मोहरें, चाँदी-ताँबे के पुरातन सिक्के, ब्राह्मी लिपि में अंकित पक्की ईंटे, देवमूर्तियाँ जैसी विपूल पुरातात्विक महत्व की सामग्री प्राप्त हुई है। कुशध्वज के शासन केन्द्र रूप में यह यज्ञिय केन्द्र के रूप में अपनी प्रमुख पहचान रखता था।

भरेह-चर्मण्वती-यमुना संगम स्थान पर श्रृंग ऋषि के समीप (संगरवंशीय) शाहदेव, भगवन्त देव आदि का पुरातन दुर्गयुक्त नगर है जहाँ मारशिवों के काल में पुराना भारेश्वर महादेव का मन्दिर है। महाराष्ट्रीय मीमांसक पंडित नीलकण्ठ भट्ट-कृत "भगवन्त भास्कर" में भरोसा का उल्लेख प्राप्त होता है।

आंशानगरी – (आशई) इटावा जिले में इकदिल से 5 किमी. दक्षिण को यमुना के उत्तर तटवर्ती विशाल खेड़े पर बसी विशाल यह नगरी दक्षिण पंचाल की पुरातन शासन स्थली थी। यहाँ अनेक प्राचीन सिक्के, प्राचीन मूर्तियाँ तथा पूर्व मध्यकाल का एक ताम्रपत्र तथा एक शिलालेख भी मिला है, जिसमें राजा जयचन्द्र के सेनापति विजेता वीर सेन के पुत्र की विजय का उल्लेख है –

“...सिद्धः। अथ विजय शाखा लिख्यते-श्री शाके ।।³

वैशाख सुदी श्री महीपाल वीरसेन सुत विजयो भये ।।”

पूर्व मध्यकाल में गहड़वालों में राजनैतिक उत्कर्ष के साथ ही इस नगरी का आर्थिक (व्यापारिक) और सांस्कृतिक उत्कर्ष भी उल्लेखनीय रहा है।

माकन्दी-राजा द्रुपद की दक्षिण पंचाल में काम्पिल्य से भिन्न गंगा तटवर्ती यह द्वितीय पुरातन राजनगरी कान्यकुब्ज के समीप स्थित ज्ञात होती है, क्योंकि आज भी कन्नौज से मिली बस्ती मकरन्द नगर माकन्दी के अवशेष रूप में विद्यमान हैं। अतः पटियाली से इसका समीकरण समीचीन नहीं प्रतीत होता है।

विलषढ-एटा जिले की अलीगंज तहसील 270230 उत्तरी अक्षांश और 79016 पूर्व देशान्तर पर दक्षिण पंचाल का यह प्राचीन नगर हेनसांग की यात्रा में ... अभिधान रूप में उल्लिखित है, जिसका परकोटा 2 मील का था तथा यह वैदिक यज्ञिय ब्राह्मण और बौद्ध धर्म का प्रमुख केन्द्र था।

यहाँ गुप्त सम्राट कुमार गुप्त- 1 (415 ए. डी.) से सम्बन्धित एक शिला- लेख के अतिरिक्त भिदारी से प्राप्त स्कन्दगुप्त के शिलालेख में विलषढ नगर के अतिरिक्त यहाँ महासेन, ध्रुव शर्मा प्रभृति ऐतिहासिक शासकों का भी उल्लेख हुआ है।

विलषढनिवासिनः स्वामिमहासेनस्थायायतनेडस्मि ।

कार्त्युगाचारसद्धर्मवर्त्मनुयायिनाध्रुवशर्मणा कर्ममहाकृतेदम् ।।

पंचाल के अनेक अर्थ कामतीर्थ रूप ऐतिहासिक नगरों में काम्पिल के समीप पटियाली कपित्थया अतिरंजी (अतिरंजियाखेड़ा) उरुहित, सोरों, मोजपुर, रपरी, सोहर, असोली, जुझौरा बिलराम, राजा का रामपुर, भरेह, कुदरकोट, चकर नगर, मुलानगर भीतरगांव, जाजमऊ शिवराजपुर, आंवला, बदायूँ आदि स्थानों के खेड़ों या टीलों पर बसी पुरानी बस्तियाँ उल्लेखनीय हैं।

अनुकूल दृष्टि और उत्तम सुरम्य जलवायु से समस्त पंचाल पशुपालन, कृषि, आवेट, व्यापार, शिल्प, मूर्ति आदि कला वंशानुगत उद्योग धंधों से अनेक राजाओं के शासन में सुसम्पन्न रहा। काम्पिल्य, अहिच्छत्रा, कन्नौज संकाशया जैसे राजकेन्द्र अनेक वाणिज्य (श्रेष्ठि) एवं शिल्प श्रेणियों या संघों में सम्मिलित होकर स्थल तथा नौका मार्ग से मिले रहते थे। उत्तरा पथ का प्रचलित वाणिज्य एवं जनमार्ग मध्य पंचाल के कान्यकुब्ज (महादेय) काम्पिल्य पटियाली आदि नगरों से होकर पश्चिम में तक्षशिला तथा पूर्व में पाटिलपुत्र और ताम्रलिपि से मिलाता था। इसी प्रकार मथुरा से उत्तर पूर्व में वाणिज्य मार्ग संकिसा, काम्पिल, अहि-च्छत्रा, आंवला आदि नगरों से होकर सावत्थी (श्रावस्ती) को जाता था। जातक ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि वैश्यों (श्रेष्ठियों) के अतिरिक्त ब्राह्मण सार्थवाह भी 5500 बैलगाड़ियों के काफिलों से तक्षशिला तक वाणिज्य हेतु निकल पड़ते थे। जहाँ मार्ग में यज्ञादि की बाधाएँ आ जाती थीं।

इस प्रकार उत्तर वैदिक काल से लेकर पूर्व मध्यकाल तक पुरातन यज्ञिय देश पंचाल के ऐतिहासिक भूगोल पर विहंगम दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं कि सूरदास के परवर्ती सहदेव, समर, आषाढसेन, बंगपाल, रुद्रगुप्त सूर्यमित्र, फाल्गुन-मित्र, भानुमित्र, भद्रघोष, अग्निमित्र अच्युत आदि के अतिरिक्त परवर्तीनन्द, मौर्य, शुंग गुप्त, वर्धन, मौरवरि, गहड़वाल आदि अनेक शासकों द्वारा इस महिमा मण्डित राज्य का यज्ञिय धार्मिक, आध्यात्मिक, आर्थिक सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं ऐतिहासिक महत्व चतुर्दिक् यज्ञस्तम्भ, पंचवैदिक अभिलेख आदि महत्त्वपूर्ण पुरातात्विक सामग्री प्रस्तुत करती है।

हमें इन पुरातन अवशेषों से पंचाल रको गौरवमयी यज्ञिय संस्कृति का गहन अध्ययन करते हुए इसके गौरवपूर्ण अतीत से सांस्कृतिक उत्कर्ष की प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये। भारतीय शासन को भी इसके पुरातन ऐतिहासिक एवं धार्मिक स्थलों का संरक्षण करते हुए इनके पुनरुद्धार की दिशा में ठोस प्रयास करना चाहिये। तभी हमारा उज्ज्वल अतीत समस्त विश्व के समक्ष साकार हो सकेगा। आशा है। 'अहिच्छत्र महोत्सव' इसी दिशा में अपनी रचनात्मक भूमिका के साथ ही प्रेरणा प्रद पृष्ठभूमि प्रस्तुत कर सकेगा।



स्वर और लय द्वारा रस सौन्दर्य

डॉ. सुषमा पाठक

एसोसियेट प्रोफेसर, अध्यक्ष-संगीत विभाग
जुहारी देवी गर्ल्स एवं पी.जी. कालेज, कानपुर

संगीत की परम्परा वेदों से ही प्रारंभ हो जाती है, शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर में संगीत के सन्दर्भ में सौन्दर्यशास्त्र के प्रमुख तत्वों के विषय में सामान्य संकेत सूत्र मिलते हैं संगीत कला की व्याख्या करते हुये शारंगदेव ने लिखा है, “गीतं, वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतं मुच्यते।” संगीत का आधार नाद और नाद में कला सौन्दर्य की सृष्टि का रहस्य है। विभिन्न स्वरों और श्रुतियों में अनुक्रम, तारतम्य तथा समन्वय स्थापित कर संगीतकार रागों की सृष्टि करता है।

संगीत का सौन्दर्य उस रस में निहित है जो रजोगुण एवं तमोगुण के समाप्त होने पर अन्तःकरण के सत्व गुण को उभारकर चेतना विशेष में परिणित कर देता है और उन क्षणों में मनुष्य काम, क्रोध, शोक, लोभ तथा चिंता इत्यादि से मुक्ति पाकर ब्रह्मनन्द सहोदर संगीत आनंद में अवाहन करने लगता है। ‘श्रीमद्भागवत’ के अनुसार नाद सौन्दर्य त्रियंक् योनि के प्राणियों को प्रभावित करने के साथ-साथ जड़ प्रकृति को प्रभावित करता है। संगीत का सौन्दर्य बोध, स्वर की उत्पत्ति, उसकी विशेषता, उसके प्रकार, समय, जाति, घनत्व, लय एवं गुण पर आधारित है।

सौन्दर्य के भी दो पक्ष हैं एक वाह्य और दूसरा आन्तरिक। वाह्य सौन्दर्य, इन्द्रियों को प्रभावित करने वाला होता है तथा आन्तरिक सौन्दर्य मन को, चेतना और आत्मा को सन्तुष्ट करता है। सौन्दर्य का बाहरी रूप अस्थायी और क्षणभंगुर है।

स्वर ही संगीत का प्राण है। उसी के आधार पर संगीत की सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण हुआ है। संगीत जगत में स्वर ही चेतना का प्रतीक है, वह संगीत का स्व (धन) है। सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त ‘समष्टि चेतना’ है।

यदि स्वर के सन्दर्भ में और चिन्तन करें तो स्वर अनन्त है। जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश अनादि अनन्त काल से विद्यमान है। सृष्टि के आरम्भ में ही प्रकृति में संगीत विद्यमान है, जिनसे श्रुति स्वरों का प्रयोग निहित है। ऋषि मुनियों ने कठिन साधना के पश्चात् इन स्वरों को आत्मसात किया है। समय के साथ साथ स्वरों का कृमिक विकास होता रहा है। वैदिक परम्परा में स्वर जिनके नाम प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, अतिस्वर और गन्धर्व परम्परा में सात स्वरों के नाम इस प्रकार से हैं— षड्ज, ऋषभ, गंधार, माध्यम, पंचम, धैवत, निषाद।

‘संगीत रत्नाकर’ में पं० शारंग देव ने स्वर की व्याख्या इस प्रकार से की है— जो ध्वनि श्रुति के अनन्तर उत्पन्न होती हो, संगीत परिजात में स्वर की परिभाषा इस प्रकार से दी गई है — “रजियति इति स्वरः” नाद जो अपने आप अथवा दूसरे की सहायता के बिना ही सुनने वालों के चित्तों को प्रसन्न करें, वह स्वर कहलाते हैं।

लय :

लयः शोणित रूपेण, मात्रा नाडी-स्वरूपतः।

द्याता अवयावाश्चैव तालो वै पुरुषाकृतिः॥

अर्थात्: ताल रूपी पुरुष का लय रक्त है, मात्राएं अनेक नाड़ियों के समान हैं और आघात अवयव है।

समय की समान गति को लय कहते हैं। अर्थात् लय की असमान गति को लय नहीं कहा जा सकता है। लय को व्यापक अर्थ में असमान और समान दोनों प्रकार की लय कही भी जा सकती है। गायन-वादन-नृत्य में कोई न कोई अवश्य लय होती है। लय के तीन प्रकार हैं—

विलम्बित लय : जिसकी लय बहुत धीमी होती है। उसे विलम्बित लय कहते हैं। जैसे गायन विधा में बड़े

ख्याल ध्रुवपद, धमार तथा तंत्र वाद्य में मसीत खानी गत आदि।

मध्यलय : जो लय न ज्यादा धीमी न ही द्रुत हो अर्थात् साधारण लय को 'मध्य लय' कहते हैं। इस लय में छोटे ख्याल, भजन, ठुमरी तथा वाद्य में रजारवानी गत और अधिकतर नृत्य में भी मध्यलय होती है।

द्रुतलय : जिसकी गति बहुत तेज हो अर्थात् द्रुत हो उसे द्रुत लय कहते हैं। यह लय मध्य लय से दूनी होती है। इस लय में अधिक तराना एवं तंत्र वाद्यों में झाला तथा नृत्य में ततकार में द्रुत लय होती है।

संगीत के माध्यम ध्वनि तथा गति ही संगीत के मुख्य तत्व भी है किन्तु भारतीय संगीत में सभी ध्वनियों तथा सभी गतियों का प्रवेश नहीं होता। संगीत के क्षेत्र में ध्वनि को नाद कहते हैं। भारतीयों ने नाद को दो प्रकार को माना है —

(1) अनाहत नाद (2) आहत नाद।

अनाहत नाद स्थूल या भौतिक नहीं है अस्तु बिना योगाभ्यास के मनुष्य की समान्य इन्द्रियां उसे ग्रहण नहीं कर पाती। यहाँ सर्वसाधारण के उपयोग में आने वाला आहत नाद ही संगीत का मूलधार है। नाद के व्यापक अर्थों में वह सभी ध्वनियां आती है जो किन्ही दो वस्तुओं के टकराने अथवा घर्षण से उत्पन्न हुई हो। इसलिये इसे आहत अर्थात् आघात द्वारा उत्पन्न नाद कहा जाता है। भारतीय परम्परा में नाद की उत्पत्ति अग्नि और वायु के योग से मानी गयी है।

मानव जाति के अंतःकरण में निवास करने वाली विशिष्ट भावनाओं के चरमोत्कर्ष को ही शास्त्रज्ञों ने रस कहा है अथवा जब कोई स्वाभाविक वस्तु कुछ परिवर्तित होकर मन के अंदर एक असाधारण नवीनता उत्पन्न कर देती है, तब उसे 'रस' कहते हैं।

साहित्य में नव रस माने गए हैं यथा:—

शृंगारहास्यकरुणारौद्रवीरभयानकः।

वीभत्सोद्भुत इत्यष्टौ रस शांतस्तथा मतः॥

1. शृंगार, 2. हास्य, 3. करुण, 4. रौद्र, 5. वीर, 6. भयानक, 7. बीभत्स, 8. अद्भुत और 9. शांत।

संगीत में केवल शृंगार, वीर, करुण और शांत, इन चार रसों में ही उपर्युक्त नव रसों का समावेश माना गया है। हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने प्राचीन सप्तस्वरों के रस इस प्रकार बताए हैं:—

सरी वीरेऽद्भुते रौद्रे धा वीभत्से भयानके।

कार्यो गनी तु करुणाहास्यशृंगारयोर्मपौ॥

सा, रे— वीर, रौद्र तथा अद्भुत रसों के पोषक हैं।

ध— बीभत्स तथा भयानक रसों का पोषक हैं।

ग, नि— करुण रस के पोषक हैं।

म, प— हास्य व शृंगार रसों के पोषक हैं।

पंडित भातखंडे जी ने 'हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति' में स्वरों के अनुसार रागों के जो तीन वर्ग नियत किए हैं, उन तीन वर्गों में पंडित जी ने रसों का समावेश इस प्रकार करने का सुझाव दिया है, यथा:—

रे, ध कोमल वाले संधिप्रकाश रागों में — शांत व करुण रस।

रे, ध तीव्र वाले रागों में — शृंगार रस।

ग, नि कोमल वाले रागों में — वीर रस।

यद्यपि प्राचीन ग्रंथकारों ने किसी एक स्वर से ही एक रस की सृष्टि बताई है, किंतु वास्तव में देखा जाय तो केवल एक ही स्वर से किसी विशेष रस की उत्पत्ति होना संभव नहीं।

षड्ज स्वर को वीर रस प्रधान बताया है तथा पंचम को श्रृंगार रस का स्वर माना है और प्रायः सभी रागों में षड्ज व पंचम स्वर अवश्य मिलते हैं, तो इसका यह अर्थ हुआ कि सभी राग वीर रस या श्रृंगार रस प्रधान होने चाहिए थे, किंतु वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। अनेक रागों से विभिन्न रसों की सृष्टि होती है। निष्कर्ष यही निकलता है कि एक स्वर अपने अन्य सहयोगी स्वरों के साथ मिलकर ही रसोत्पत्ति करने में सफल होता है। कोई वादी स्वर अपने संवादी, अनुवादी य विवादी स्वर के संपर्क से ही किसी रस की सृष्टि करता है। स्वर योजना के अनुसार निश्चित ऋतु में, योग्य वातावरण को देखकर श्रोताओं की मनोभावना को समझते हुए कोई राग जब किसी योग्य गायक द्वारा गाया जाय तथा उसके गीत का काव्य भी उसी रस के अनुकूल हो, तो रस की उत्पत्ति अवश्य होगी। इसमें कोई संदेह नहीं। इसके विपरीत यदि गायक वीभत्स रस की स्वरावली में शांत रस का गीत गाने लगे तो रसोत्पत्ति कदापि नहीं हो सकती है जहाँ केवल स्वरों द्वारा ही रसों की सृष्टि करनी है वहाँ गीत को छोड़कर केवल स्वर लहरी द्वारा भी रसोत्पत्ति की जा सकती है। स्वर और शब्दों से ही गीत निर्माण होता है और जब गीत में स्वर ही नहीं रहेगें, तो वह शब्दों की एक नीरस रचना मात्र रह जायेगी; जो बिना स्वरों की सहायता के रस की सृष्टि करने में सर्वथा असफल रहेगी। किसी एक ही शब्द द्वारा स्वरों की सहायता से विभिन्न रसों को उत्पन्न किया जा सकता है जैसे 'आओ' यह शब्द लीजिए। इसे जब करुण स्वरों में कहा जाएगा तो ऐसा मालूम होगा, मानो कोई सहायता के लिये पुकार रहा है; इस प्रकार करुण रस की सृष्टि होगी और जब इसी शब्द को श्रृंगारिक स्वरों में कहा जायेगा, तो ऐसा प्रतीत होगा मानो कोई प्रेमी अपनी प्रेमिका को बुला रहा है; यहां श्रृंगार रस की सृष्टि होगी। कठोरता के स्वरों में इसी शब्द को कहा जाये, मानो लड़ने के लिये दुश्मन को चुनौती दी जा रही है, तब इसी 'आओ' से वीर रस की सृष्टि होगी।

एक ही शब्द से विभिन्न रसों की सृष्टि केवल स्वर भेद के कारण हुई, अतः रसोत्पत्ति का मूल कारण स्वर ही माना जायेगा। काव्य द्वारा भी रुदन, क्रोध, भय, आश्चर्य, हास्य आदि भावों की सृष्टि तभी होती है, जबकि भिन्न शैली से उस कविता का उच्चारण हो और भिन्न शैली के उच्चारण में स्वरों का कुछ न कुछ अस्तित्व अवश्य ही होगा। वास्तव में देखा जाए, तो प्रत्येक उच्चारण का संबंध नाद, स्वर और लय से है। माधुर्य और आनन्द प्रधान स्वर ही रस हो सकता है।

संगीत की रसात्मक अभिव्यक्ति सूक्ष्मतम होती है। किसी भी कला का उपादान जितना सूक्ष्म है अभिव्यक्ति वैसी सूक्ष्म होगी, शिल्पी के उपादान, ईंट, पत्थर, छेनी अत्यन्त स्थूल हैं अतः शिल्प में भावों की सूक्ष्माभिव्यक्ति नहीं हो पाती है। मूर्तिकार के उपादान धातु, पत्थर आदि हैं। अपनी महीन छेनी से वह मूर्ति में झुरियां, उभार, उठान आदि के साथ, अनुभाव की अभिव्यक्ति अवश्य करता है परन्तु हृदय के भावों को प्रतिमा के माध्यम से पूर्णतः व्यक्त करना सम्भव नहीं हो सकता है। चित्रकार की तूलिकाएं रंग जैसे उपादानों द्वारा, रेखाओं, रंगों की मौन अभिव्यक्ति, सूक्ष्म भागों को मुखरित नहीं होने देती हैं। स्वर जैसा सूक्ष्म उपादान भावों की गहराई रहस्य को जैसा व्यक्त कर सकता है, अन्य उपादानों के लिये सम्भव नहीं है। यह रस की गहराई में जाता है अतः भावों की सूक्ष्मतम अभिव्यक्ति संगीत द्वारा सम्भव है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डा. रमाकान्त द्विवेदी, प्रथम-2004, संगीत स्वरित, पृ. सं. 36-415
2. उमेश जोशी, द्वितीय-1969, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ. सं. 5 -12
3. वसन्त, संगीत विषारद, पृ. सं. 187-188
4. प्रो. स्वतन्त्र शर्मा, प्रथम-2010, सौन्दर्य, रस एवं संगीत, पृ. सं. 53-55
5. डा. कन्हैयालाल अवस्थी, डा. अमित अवस्थी, प्रथम-2016, काव्यशास्त्र भारतीय एवं पाश्चात्य, पृ. सं. 92



बाल श्रमिकों की स्थिति का अध्ययन

(रीवा नगर के संदर्भ में)

डॉ० (श्रीमती) शाहेदा सिद्दीकी

सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र

शासकीय ठाकुर रणमत सिंह उत्कृष्टता महाविद्यालय एवं शोध केन्द्र, रीवा (म.प्र.)

बच्चे देश का भविष्य होते हैं। जिन बच्चों के कोमल हाथों में किताब, पेन होना चाहिए, उन हाथों में कुदाल, फावड़ा, पोछे का कपड़ा तथा पीठ पर स्कूल के बस्ते के स्थान पर सिर पर भारी भरकम बोझ प्रायः देखने को मिल जाता है। ये बाल श्रमिक क्यों श्रम कार्य करते हैं तथा इनकी क्या मजबूरी है? इस उद्देश्य को लेकर रीवा नगर के समग्र बाल श्रमिकों में से 50 बाल श्रमिकों को उत्तरदाता के रूप में चुना गया है। इनसे प्राप्त आँकड़ों को वर्गीकृत एवं विश्लेषित कर इस शोध पत्र में प्रस्तुत किया गया है।

मुख्य शब्द (Key words) –

बाल श्रमिक, कार्य स्थल, कार्य की दशाएं।

अवधारणात्मक विश्लेषण –

बच्चों को सामान्यतः ईश्वर का प्रतिरूप माना जाता है और उन्हें देश का भावी भाग्य विधाता कहा जाता है। मगर इन्हीं बच्चों के कोमल हाथों में कुदाल या फावड़ा, पोछे का कपड़ा, सिर पर भारी भरकम बोझ तथा आँखों में से निरन्तर बहते आँसुओं को देखकर भी हम प्रायः अनदेखा कर देते हैं। बच्चों की जो आयु पढ़ने और समझने की होती है, उसी अल्पायु में वह होटल, रेस्टोरेण्ट, दुकानों व गैराजों में मेजों की गंदगी साफ करते हैं या कि कठोर परिश्रम करते हैं। इन्हें हम बाल श्रमिक कहते हैं। कारखानों के दूषित वायुमण्डल में छोटी बड़ी मशीनों से वह जूझता है या अपने मालिकों की अर्दली में रहते हुए उसकी झिड़कियाँ सहता है। किसी भी राष्ट्र की भावी स्थिति का अनुमान वहाँ के बच्चों को देखकर लगाया जा सकता है, क्योंकि ये बच्चे ही देश के भावी कर्णधार हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा कार्यस्थल पर बच्चों के प्रति हिंसा पर किये गये हाल ही के अध्ययन के अनुसार विश्व में 20 करोड़ से अधिक बाल श्रमिक हैं और इनमें से अधिकतर हिंसा का शिकार होते हैं। हमारे आसपास भी बाल श्रमिक पाए जाते हैं।

शोध का उद्देश्य –

1. बाल श्रमिकों के बारे में जानकारी एकत्र करना।
2. बाल श्रम के कारणों को ज्ञात करना तथा उनके प्रभावों को प्रस्तुत करना मेरे शोध का उद्देश्य है।

अध्ययन का क्षेत्र व न्यादर्शों का चयन –

प्रस्तुत शोध का अध्ययन क्षेत्र म.प्र. का रीवा नगर प्रमुख रूप से है। रीवा नगर में चाय की दुकानों, होटलों, रेस्टोरेण्ट, सायकिल की दुकानों, गैराज व अन्य व्यावसायिक प्रतिष्ठानों तथा घरों/दुकानों में कार्यरत 50 बाल श्रमिकों को मैंने अपने अध्ययन हेतु विचारपूर्वक निदर्शन के माध्यम से जानकारी प्राप्त करने के लिए सूचनादाता के रूप में चयनित किया है।

शोध प्रविधि – प्रस्तुत अध्ययन में साक्षात्कार एवं अवलोकन पद्धति का प्रयोग किया गया है। मैंने स्वयं चयन किये गये बच्चों के पास जाकर तथा उन्हें अपने अध्ययन का उद्देश्य बताते हुए इस बात के लिए तैयार किया कि

वे स्वयं से संबंधित जानकारी मुझे प्रदान करें। उन्हें आश्वस्त किया कि उनके द्वारा दी गयी जानकारी पूर्णतः गोपनीय रखी जाएगी तथा इसका कहीं भी दुरुपयोग नहीं किया जाएगा। इस हेतु मैंने उन्हें धन्यवाद स्वरूप चाय भी पिलाई एवं बिस्कुट/टॉफी आदि भी दी। द्वितीयक समंक सामग्री संकलन हेतु समाचार पत्र-पत्रिकाएं, सरकारी आंकड़े व अन्य जानकारियों का सहारा लिया गया है।

उपकल्पना –

1. बाल श्रमिकों की शिक्षा का स्तर निम्न है।
2. मजबूरीवश बाल श्रमिक कार्य करते हैं। तथ्यों का एकत्रण, वर्गीकरण एवं विश्लेषण –
सबसे पहले मैंने पाया कि बाल श्रमिकों में लड़के और लड़कियां दोनों ही कार्य करते हैं। इसे सुविधा की दृष्टि से मैंने तालिका क्रमांक 01 में दर्शाया है

तालिका – 01

बाल श्रमिकों में लिंग अनुपात

क्र.	लिंग अनुपात	संख्या	प्रतिशत
1.	लड़के	35	70
2.	लड़कियाँ	15	30
	कुल योग	50	100

प्राप्त आंकड़े बताते हैं कि लड़कों के साथ-साथ लड़कियां भी बाल श्रमिक के रूप में कार्यरत हैं, जिनका अनुपात क्रमशः लड़कों का 35 (70%) तथा लड़कियों का 15 (30%) है।

बाल श्रमिकों की आयु को भी मैंने जानने का प्रयास किया तो प्राप्त आंकड़े बताते हैं कि कुल बाल श्रमिकों में से 10 से 12 वर्ष की आयु समूह के 12 अर्थात् 24 प्रतिशत बाल श्रमिक, 13 से 14 वर्ष की आयु वर्ग के 20 अर्थात् 40 प्रतिशत बाल श्रमिक तथा 15 से 16 वर्ष की आयु वर्ग के 18 अर्थात् 36 प्रतिशत बाल श्रमिक पाए गये। इसे मैंने तालिका क्र. 02 में बताया है

तालिका – 02

बाल श्रमिकों की आयु का विवरण

क्र.	आयु वर्ग	संख्या	प्रतिशत
1.	10 से 12 वर्ष	12	24
2.	13 से 14 वर्ष	20	40
3.	15 से 16 वर्ष	18	36
	कुल योग	50	100

तालिका – 03

बाल श्रमिकों की शिक्षा का स्तर

क्र.	शिक्षा का स्तर	संख्या	प्रतिशत
1.	शिक्षित	20	40
2.	अशिक्षित	30	60
	कुल योग	50	100

अर्थात् 20 यानि की 40 प्रतिशत बच्चे शिक्षित पाये गये, जिनमें से 12 पांचवीं पास हैं तथा 8 अध्ययनरत हैं। ये वे बच्चे हैं जो घर में झाड़ू-पोछा व बर्तन धोने का काम करते हैं और स्कूल के समय काम पर नहीं जाते हैं। 30 यानि की 60 प्रतिशत बाल श्रमिक कभी स्कूल ही नहीं गए अथवा एक या दो कक्षा तक स्कूल जाने के बाद पढ़ाई छोड़कर मजबूरीवश काम करने लगे।

मैंने बच्चों से पूछा कि – “आप काम क्यों करते हैं तो प्राप्त उत्तरों को मैंने तालिका क्रमांक 04 में दिखाया है।

तालिका – 04

काम करने के कारण संबंधी जानकारी

क्र.	काम करने के कारण	संख्या	प्रतिशत
1.	गरीबी/आय का अन्य साधन न होना	20	40
2.	पिता का न होना	20	40
3.	परिवार की सदस्य संख्या अधिक होना	10	20
	कुल योग	50	100

कमाई को कोई स्रोत न होने के कारण 20 प्रतिशत बाल श्रमिक कार्य करते हैं, पिता के न होने के कारण 20 प्रतिशत बच्चों को घर खर्च के लिए काम करना पड़ता है, वहीं 10 प्रतिशत बाल श्रमिकों के परिवार की सदस्य संख्या अधिक होने के कारण छोटी उम्र में काम करना उनकी मजबूरी है।

मैंने उनसे अगला प्रश्न पूछा कि – “आपके मालिकों का व्यवहार आपके साथ कैसा है?” प्राप्त उत्तरों को मैंने तालिका क्र. 05 में प्रदर्शित किया है –

तालिका – 05

मालिकों के व्यवहार संबंधी जानकारी

क्र.	मालिक का व्यवहार	संख्या	प्रतिशत
1.	अच्छा	15	30
2.	डॉट-डपट करते हैं	25	50
3.	मार-पीट करते हैं	10	20
	कुल योग	50	100

15 बच्चों का कहना था कि मालिकों का व्यवहार उनके प्रति अच्छा है। 25 बच्चे मालिकों की डॉट-डपट सुनते हैं व 10 बच्चे मालिकों की मार का भी शिकार होते हैं। अर्थात् कार्यस्थल पर बच्चों के साथ बहुत अच्छा व्यवहार सामान्यतः नहीं किया जाता है।

मैंने एक और प्रश्न बच्चों से पूछा कि – “बीमारी की दशा में मालिक आपके स्वास्थ्य व अवकाश का ख्याल रखते हैं?” तो प्राप्त उत्तर इस प्रकार हैं –

तालिका-06

अस्वस्थता की स्थिति में मालिकों द्वारा प्रदत्त सुविधाओं का विवरण

क्र.	बीमारी की दशा में अवकाश व इलाज का ध्यान रखा जाता है	संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	15	30
2.	नहीं	35	70
	कुल योग	50	100

यानि कि मात्र 15 बच्चों के मालिक ही बीमारी की दशा में उन्हें छुट्टी देते हैं व इलाज भी करवाते हैं, जबकि 70 प्रतिशत बच्चों को छुट्टी नहीं दी जाती है और काम पर न आने पर मजदूरी भी काट ली जाती है। यह बच्चों के साथ अमानवीय व्यवहार है।

मैंने उनसे एक और प्रश्न पूछा कि –“यदि आपको स्कूल जाने व पढ़ने का अवसर मिले तो पढ़ना चाहेंगे?” प्राप्त उत्तरों को तालिका क्र. 07 में दर्शाया गया है—

तालिका – 07

स्कूल जाने पर प्रतिक्रिया संबंधी जानकारी

क्र.	अवसर मिलने पर स्कूल जाना चाहेंगे	संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	35	70
2.	नहीं	15	30
	कुल योग	50	100

35 यानि 70 प्रतिशत बच्चे अवसर मिलने पर स्कूल जाना व पढ़ना चाहते हैं। उनका बाल मन भी इसके लिए ललचाता है। 15 यानि कि 30 प्रतिशत बच्चों ने स्कूल जाने के लिए इन्कार किया है, उनका कहना है कि कमाएंगे नहीं तो घर का खर्च कैसे चलेगा?

मैंने उनसे यह भी प्रश्न पूछा कि –“क्या आप जानते हैं कि बाल मजदूरी अपराध है व इसके विरुद्ध कानून बना है तो जो उत्तर प्राप्त हुए, वे इस प्रकार हैं –

तालिका – 08

बाल श्रम कानून की जानकारी संबंधी विवरण

क्र.	कानून की जानकारी है	संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	05	10
2.	नहीं	45	90
	कुल योग	50	100

45 यानि 90 प्रतिशत बाल श्रमिकों को कानून के बारे में कोई जानकारी नहीं है। मात्र 05 यानि कि 10 प्रतिशत बच्चे इसके बारे में जानते हैं, जो कि 15 वर्ष की आयु के हैं और शिक्षित हैं।

उपकल्पना का परीक्षण – अध्ययन से प्राप्त आँकड़े बताते हैं कि अध्ययन क्षेत्र के 30 अर्थात् 60 प्रतिशत बाल श्रमिक अशिक्षित हैं तथा 20 अर्थात् 40 प्रतिशत बाल श्रमिक ही शिक्षा-दीक्षा प्राप्त किये हैं। उनमें से भी 12 अर्थात् 24 प्रतिशत पाँचवीं तक पढ़े हैं और शेष अध्ययनरत हैं। (देखें तालिका क्र.-03) अतः आँकड़ों के द्वारा हमारी पहली उपकल्पना –“बाल श्रमिकों की शिक्षा का स्तर निम्न है।” परीक्षण के पश्चात् सत्य साबित होती है।

20 अर्थात् 40 प्रतिशत उत्तरदाता गरीबी तथा आय का अन्य स्रोत न होने के कारण श्रम करते हैं, 20 यानि कि 40 प्रतिशत सूचनादाता पिता के अभाव में तथा 10 अर्थात् 20 प्रतिशत उत्तरदाता परिवार की सदस्य संख्या अधिक होने के कारण श्रम कार्य करते हैं। 100 प्रतिशत सूचनादाता मजबूरीवश बाल श्रमिक बने हैं। (देखें तालिका क्र.-04)

अतः हमारी दूसरी उपकल्पना भी परीक्षण के पश्चात् सत्य साबित होती है कि “मजबूरीवश बाल श्रमिक कार्य करते हैं।”

निष्कर्ष —

1. लड़के व लड़कियाँ दोनों ही बाल श्रमिक के रूप में कार्यरत हैं। अध्ययन क्षेत्र में बाल श्रमिकों का लिंगानुपात है — 35 लड़के व 15 लड़कियाँ।
2. बाल श्रमिकों में 10 से लेकर 16 वर्ष तक के बच्चे कार्यरत हैं।
3. 20 प्रतिशत बच्चे शिक्षित हैं, जिनमें से 12 अर्थात् 24 प्रतिशत 5वीं तक, शेष अध्ययनरत हैं जबकि 30 अर्थात् 60 प्रतिशत बच्चे अशिक्षित हैं।
4. गरीबी के कारण 20 प्रतिशत, पिता के अभाव में 20 प्रतिशत व परिजनों की संख्या अधिक होने के कारण 60 प्रतिशत बाल श्रमिक कार्य करते हैं।
5. 30 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने मालिकों के व्यवहार अच्छा होने को स्वीकारा है, जबकि 70 प्रतिशत उत्तरदाता मालिकों की डाँट-डपट व मारपीट का शिकार होते हैं।
6. मात्र 30 प्रतिशत मालिक ही अस्वस्थता की दशा में उनका ख्याल रखते हैं, जबकि 70 प्रतिशत मालिकों द्वारा ऐसा नहीं किया जाता है।
7. 70 प्रतिशत बच्चे अवसर मिलने पर स्कूल जाना चाहते हैं और 30 प्रतिशत बच्चे घर खर्च चलाने की मजबूरी के कारण ऐसा कर पाने में खुद को अक्षम पाते हैं।
8. केवल 5 अर्थात् 10 प्रतिशत बच्चे बाल श्रम संबंधी कानूनों की जानकारी रखते हैं, जबकि 90 प्रतिशत इससे अनभिज्ञ हैं।

सुझाव —

1. बाल श्रम समस्या का बिना जन जागृति, जन सहयोग व जन क्रान्ति के समाधान संभव नहीं है। अतः जन चेतना आवश्यक है।
2. विविध संस्था, संघटना, समाज सुधारक, राजनीतिक दल, पत्रकार, शासन, सामान्य नागरिक इन्हें पहल करनी होगी।
3. परिवार की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करना अनिवार्य है।
4. प्राथमिक शिक्षा का अनिवार्य तथा वास्तविक बनाया जाना चाहिए।
5. दरिद्रता (गरीबी) मानव जीवन तथा समाज का सबसे बड़ा अभिशाप है। दरिद्रता को समाप्त करने के लिए सरकार को छोटे-छोटे गृह उद्योगों को प्रोत्साहन देना चाहिए, जिससे दरिद्र परिवार के व्यक्ति अपनी आमदनी को बढ़ा सकें।
6. जन मानस की इस सोच को बदला जाए कि गरीब का बच्चा है तो काम करेगा ही।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सुभाष 'बाल मजदूर' प्रकाशन संस्थान, पटना, पृ. 62
2. डॉ. घाटोले रा.ना. (2006) 'सामजशास्त्रीय संशोधन पद्धति' श्री मंगेश प्रकाशन, नागपुर।
3. डॉ. फड़िया बी.एल. (2004) 'भारत का संविधान' साहित्य भवन आगरा।
4. स्वयं के द्वारा सर्वेक्षण पर आधारित।



वैश्वीकरण एवं सूक्ष्म वित्त का भारतीय महिलाओं में शक्तिकरण एक विश्लेषण

जितेन्द्र कुमार रामटेके

शोधार्थी

स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स, देवी अहिल्या वि.वि., इन्दौर

महिलाएँ भारत की कुल आबादी का आधा है, संभवतः राष्ट्र के विकास के कार्य में महिलाओं की भूमिका और योगदान को पूरी तरह और सही परिप्रेक्ष्य में रखकर राष्ट्र निर्माण के कार्य को समझा जा सकता है, समूची सभ्यता में व्यापक बदलाव के एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में महिला सशक्तिकरण आन्दोलन 20 वीं शताब्दी के आखिरी दशक का एक महत्वपूर्ण राजनीतिक और सामाजिक विकास कहा जाना चाहिए। भारत जैसे देश में जहाँ लोकतान्त्रिक तरीके से काम करने की आजादी है या यँ कहें की एक सशक्त परम्परा है। जनमत जीवंत है और आधी आबादी के कल्याण में रुचि लेने वाला एक बड़ा वर्ग विद्यमान है।

देश की आबादी का लगभग 50% हिस्सा महिलाओं का है। विगत कुछ दशकों में महिलाओं की हिस्सेदारी में व्यापक वृद्धि हुई है। वर्तमान में महिलाएँ आत्मनिर्भर सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान हुआ है। किन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में विशेषकर आदिवासी महिलायें आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से आज भी पिछड़ी हुई दशा में हैं। आदिवासी ग्रामीण महिलाएँ मुख्य रूप से कृषि कार्य ही करती हैं। कम मजदूरी एवं अधिक श्रम के कारण इनकी आर्थिक व सामाजिक स्थिति दयनीय रहती है। समाज एवं राष्ट्र की प्रगति के लिए नारी शक्ति का विशेष महत्व है। देश का वास्तविक विकास महिलाओं के विकास पर ही निर्भर करता है। केन्द्र सरकार एवं की राज्य सरकारों ने महिलाओं के आर्थिक सुधार एवं सामाजिक विकास हेतु अनेक प्रयास किए हैं। देश में वित्तीय समायोजन के अर्न्तन्त स्वयं सहायता समूहों के स्थानपना एवं बैंक लिंकेज कार्यक्रमों के आधार पर ग्रामीण क्षेत्रों का आर्थिक विकास किया गया है। इसके अन्तर्गत “सूक्ष्म वित्त” एक महत्वपूर्ण प्रयास है।

सूक्ष्म वित्त सूक्ष्म बचतों, सूक्ष्म बीमा, सूक्ष्म विश्लेषण, सूक्ष्म पेंशन एवं आजीविका से संबंधित है। इसके सतत् विकास से ही भारत के ग्रामीण गरीबों का समुचित आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सशक्तिकरण हुआ है। सूक्ष्म वित्त के अंतर्गत महिलाएँ स्वयं आत्मनिर्भर होकर, स्वयं की अभिरुचि के अनुसार व्यवसाय संचालित करती है। सूक्ष्म वित्त वित्तीय सेवाओं की एक शाखा होती है, जो कि लोगों की व्यक्तिगत उपभोग, उत्पादन अथवा गतिविधि याँ, व्यवसाय आदि हेतु वित्त प्रदान करती हैं। देहा में सूक्ष्म वित्त के द्वारा विशेषकर ग्रामीण महिलाओं को “स्वयं सहायता समूह” के माध्यम से जोड़कर उनका आर्थिक एवं सामाजिक उत्थान किया गया है। सूक्ष्म वित्त के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में गैर कृषि व्यवसाय संचालित किए हैं। धार जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं का “सूक्ष्म वित्त संस्थाओं” के माध्यम से आर्थिक विकास किया गया है। स्वयं सहायता समूह एवं “बैंक लिंकेज कार्यक्रमों” के द्वारा महिलाओं को वित्तीय सहायता दी गई है।

महिला शिक्षा एवं अधिकारों प्रति जागरूकता – महिला सशक्तिकरण की शुरुआत संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 8 मार्च, 1975 को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस से मानी जाती है। फिर महिला सशक्तिकरण की पहल 1985 में महिला अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन नैरोबी में की गई। भारत सरकार ने समाज में लिंग आधारित भिन्नताओं को दूर करने के लिए एक महान नीति ‘महिला कल्याण नीति 1953 में अपनाई’। महिला सशक्तिकरण का राष्ट्रीय महिला उद्देश्य महिलाओं की प्रगति और उनमें आत्मविश्वास का संचार करना है। सर्वप्रथम 1926 में विधानसभा में एक महिला

का मनोनयन कर सदस्य बनाया गया परन्तु उस मत देने के अधिकार से वंचित रखा गया, इसके पश्चात् 1937 में महिलाओं के लिए सीट आरक्षित कर दी गई जिसके फलस्वरूप 41 महिला उम्मीदवार चुनाव में उतरी, 1938 में श्रीमती आर.बी. सुब्बाराव राज्य परिषद् में चुनी गई। उसके बाद 1953 में श्रीमती रेणुका राय केन्द्रीय व्यवस्थापिका में प्रथम महिला सदस्य के रूप में चुनी गई। आजादी के बाद महिला आरक्षण के माध्यम से महिला सशक्तिकरण की शुरुआत सबसे पहले 1996 में संयुक्त मोर्चे की सरकार के दौरान तब हुआ जब सरकार ने इस आशय का बिल पारित करने के संकेत दिये। यह संकेत इस मुद्दे पर आम विचार विमर्श के उद्देश्य से दिया गया। लेकिन उस समय से आज तक इस मुद्दे पर आम राय नहीं बन पा रही है। इसमें काफी विरोधाभास है। इसमें पहला सुझाव यह दिया गया कि कानून में संशोधन कर पार्टियों को ही यहाँ काम करने के लिए बाध्य कर किया जाए कि वह ही महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण दे लेकिन इसमें कोई दो राय नहीं। पार्टियाँ प्रत्यक्ष रूप से तो महिला आरक्षण की बात करती हैं। मगर उनमें अन्तर्विरोधी बहुत हैं। यह एक मानी हुई बात है कि महिला आरक्षण को कुछ देर तक टाला तो जा सकता है, परन्तु इससे मुह नहीं मोड़ा जा सकता है।

Literacy Rate : India 1981-2011

Year	Literacy Rate			Gap in Literacy
	Persons	Males	Females	
1981	43.6	56.4	29.8	26.6
1991	52.2	64.1	39.3	24.8
2001	64.8	75.3	53.7	21.6
2011	74.0	82.1	65.5	16.6

CENSUS OF INDIA 2011

Literacy rate by sex: Madhya Pradesh 1991-2011

Year	Literacy Rate			Gap in Literacy
	Persons	Males	Females	
1981	38.6	-	-	-
1991	44.7	58.5	29.4	29.2
2001	63.7	76.1	50.3	25.8
2011	70.6	80.5	60.0	20.5

CENSUS OF INDIA 2011

Decadal variation in Literacy Rate : India, Madhya Pradesh and neighbouring states 1981-2011

SL.NO.	India/State	Literacy Rate (Persons)			
		1981	1991	2001	2011
1	India	43.6	52.2	64.8	74.0
2	Madhya Pradesh	38.6	44.7	63.7	70.6
3	Maharashtra	55.8	64.9	76.9	82.9
4	Gujarat	52.2	61.3	69.1	79.3
5	Chhattisgarh	41.4	42.9	64.7	71.0
6	Uttar Pradesh	32.7	40.7	56.3	69.7
7	Rajasthan	30.1	38.6	60.4	67.1

CENSUS OF INDIA 2011

महिला सशक्तिकरण —

अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस मुख्य रूप से कामगार महिलाओं के लिए बनाया गया एक विशेष दिन है जिसे

वर्ष : 9, अंक 17-18, जनवरी-दिसम्बर 2016 (388) 'कृतिका' अन्तर्राष्ट्रीय अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका

प्रत्येक वर्ष 8 मार्च को मनाया जाता है। यह वैश्विक स्तर पर मनाया जाने वाला महिलाओं के लिए एक मात्र दिवस है जिसकी शुरुआत सब से पहले 19 मार्च 1911 को अमेरिकन सोशलिस्ट पार्टी द्वारा की गयी थी। बाद में औद्योगिक और आर्थिक असमानता से उत्पन्न कामगार वर्ग की स्थितियों पर निर्भर करने के लिए भी इस दिन को सामूहिक स्वीकृति मिली। रूसी क्रान्ति की शुरुआत भी महिला आंदोलन के साथ जोड़कर देखी जानी चाहिए। क्रांति के जड़ में भी महिला कार्यकर्ताओं ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया था। इतना ही नहीं धर्म और रूढ़िवादिता को लकर महिलाओं ने समाज के कई क्षेत्रों में क्रांतिकारी कदम उठाया जो विकासशील देशों की महिलाओं के लिए आज भी एक मिशाल है। विश्व की महान महिला लेखिकाएँ जैसे—सिमोन द बोउआ, बर्जिनिया उल्फ आदि ने महिलाओं के हक में बहुत पहले से ही कलम उठा लिया था।

भारत में लघु वित्त कार्यक्रम की प्रगति

वर्ष	वर्ष के दौरान नए SHGs			वर्ष के दौरान संघर्ष		
	संख्या लाख में	वृद्धि दर (प्रतिशत में)	संख्या (लाख में)	राशि (करोड़ में)	वृद्धि दर प्रतिशत में	बैंक ऋण (करोड़ रु. में)
2006-07	11.06	—	28.94	6570.39	—	12366.49
2007-08	12.28	11.00	36.26	8849.26	35.00	16999.90
2008-09	16.09	31.10	42.24	12256.51	38.50	22679.85
2009-10	15.87	-1.40	48.52	14453.30	17.90	28038.28

स्रोत — (नाबार्ड) भारत का आर्थिक सर्वेक्षण 2010-11 पृ. 106।

संवैधानिक प्रावधान

भारतीय संविधान में महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए संविधान के अनुच्छेद 14 से 18 में स्त्री और पुरुष को समानता का अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद 15 (1) तथा 15 (2) में धर्म मूल वंश जाति लिंग जन्म स्थान के आधार पर विभेद अमान्य हैं, इसमें महिला और पुरुष दोनों को समान रूप से जीविका का निर्वाहन हेतु पर्याप्त साधन उपलब्ध करने कि विवेचना कि गई है, लेकिन अनुच्छेद 15 (3) कहता है कि स्त्रियों की दैनिक स्थिति कुरीतियों के कारण होने वाले उत्पीड़न, बालविवाह तथा बहुविवाह आदि के कारण शोषण की स्थिति में राज्यों में राज्यों को उनके लिए विशेष प्रबंध तथा विशेष अधिकार दिया जाना चाहिए। स्पष्ट: जहाँ भी आदि आबादी को सामाजिक, पारिवारिक तथा स्वास्थ्य संबंधी सुरक्षा के प्रश्न थे। संविधान ने पूर्णतः उन्हें संविधान ने सुरक्षित किया है। वैसे महिला आरक्षण के मुद्दे पर सर्वसम्मति हो जाने के बावजूद भी खास स्तर पर विरोध जारी है।

73 वे और 74 संविधान संशोधन अधिनियम 1993 में पारित कर सरकार ने पंचायतों में आरक्षण देकर एक महत्वपूर्ण कदम उठाया है। इस आरक्षण के फलस्वरूप पंचायतों और नगर निकायों में भी महिलाएँ पंचायत प्रमुख और नगर परिषद अध्यक्ष जैसी महत्वपूर्ण पदों पर पहुँच पाई है। संविधान के अनुच्छेद 243 (घ) तथा 243 (न) द्वारा आरक्षित एवं अनारक्षित वर्ग कि महिलाओं हेतु 33 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था कि गई है। इस व्यवस्था के फलस्वरूप सभी प्रान्तों में ग्रामीण एवं शहरी पंचायतों सभी स्तर पर कई महिलाएँ जनप्रतिनिधि के प्रति अपनी सफलता का निर्वाह सफलतापूर्वक कर रही है। संपूर्ण निर्वाचित पंचाय सदस्यों में 10 लाख महिलाएँ हैं। जो महिला सशक्तिकरण के क्षेत्र में मिल का पत्थर साबित हो रही हैं पंचायतों में निर्वाचित महिलाओं की संख्या विश्व में निर्वाचित महिलाओं की संख्या से भी अधिक है। बिहार, मध्यप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, सरकार ने महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण पंचायतों में दिया है। इन राज्यों में महिलाओं ने अपने कार्यों के बल पर नये कीर्तिमान स्थापित किये है बिहार में तो पंचायतों में निर्वाचित महिला जन प्रतिनिधियों की संख्या 54 प्रतिशत तक जा पहुँची है।

पंचायतों में महिलाओं आरक्षण देने के फलस्वरूप जो महिलाएं जनप्रतिनिधि के रूप में चुनकर आए हैं वे अपने काम को इमानदारी पूर्वक अंजाम दे रही हैं। इससे यह साबित होता है कि महिलाएं असहाय एवं अबला नहीं हैं। आज नारी आरक्षण के कारण तीव्र गति से विकास की ओर अग्रसर हो रही है।

भारत में महिलाओं की स्थिति में एक बहुत बड़ा बदलाव आ रहा है। महिलाओं की मर्यादा और उनके लिए समान अवसर सुनिश्चित करने कि संवैधानिक गारंटी के साथ ही शिक्षा राजनीतिक खेल कूद आदि विभिन्न क्षेत्रों में उनकी सक्रिय भागीदारी लगातार बढ़ रही है। राष्ट्र निर्माण गतिविधियों में महिलाओं की भूमिका को ध्यान में रखते हुए सरकार ने वर्ष 2001 को महिला सशक्तिकरण वर्ष घोषित किया था और महिलाओं को सशक्त व स्वशक्ति प्रदान करने की राष्ट्रीय नीति अपनाई थी। महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, कानूनी और राजनीतिक रूप से मजबूत बनाने के लिए कई कानून बनाए गये हैं। देश के मेरुदण्ड ग्रामीण भारत की भूमिका को ध्यान में रखते हुए सरकार ने महिलाओं की सक्रिय भागीदारी के साथ पंचायती राज प्रणाली को शसक्त बनाने के लिए कई कदम उठाए हैं। इससे कई महिलाओं को लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में निर्वाचित होने का प्रोत्साहन मिला है। जो उनके राजनीतिक सशक्तिकरण होने का संकेत है। सात सूत्रीय महिला सशक्तिकरण कार्यक्रम वर्तमान में महिलाओं के प्रति नकारात्मक सोच को देखते हुए यह आवश्यक है कि समाज में उनके सम्मान, और सुरक्षा को स्थापित किया जाये यह तभी संभव होगा जबकि उन सभी दुविधाओं का जिनका सामना उन्हें करना पड़ता है पर सार्वभौमिक दृष्टि एवं सम्यक रूप से ध्यान रखा जाए। इसके लिए श्रेणीबद्ध एवं वृहत्तनर अभिगमन की दृष्टि से जीवन चक्र आधारित माननीय मुख्यमंत्री द्वारा बजट भाषण वर्ष 2009-10 में सात सूत्रीय कार्यक्रम की घोषणा की है। सुरक्षित मातृत्व, शिशु मृत्यु दर में कमी लाना, जनसंख्या स्थिरीकरण, बाल विवाहों की रोकथाम, लड़कियों का कम से कम कक्षा 10 वी तक अनिवार्य शिक्षा प्रदान करना, महिलाओं को सुरक्षा तथा सुरक्षित वातावरण प्रदान करना। स्वयं सहायता समूह कार्यक्रम के माध्यम से स्वरोजगार के अवसर प्रदान करते हुए आर्थिक सशक्तिकरण शामिल है।

भूमंडलीकरण में महिलाओं की बदलती स्थिति —

उदारीकरण के शुरुआत के करीब दो दशकों के बाद ग्लोबलाइजेशन के दौर में महिलाओं की स्थिति का आकलन करते हुए नौ बीन चले अड़ाई कोस की कहावत याद आती है। यानी यँ कहे कि मुक्त बाजार व्यवस्था ने महिलाओं को दिया काम कर लिया होगा। भूमंडलीकरण के आँधी ने जहां कुछ प्रतिशत महिलाओं को लाभ पहुंचाने का काम किया उससे कहीं अधिक प्रतिशत महिलाओं को विश्व व्यापार की शर्तों के थपेड़ों में उनकी पारम्परिक आजीविका के साधनों को छीनकर उन्हें अर्थव्यवस्था से बहार करने पर भी मजबूर किया है। पहले से ही सामाजिक असमानता के माहौल में जीती भारतीय महिलाओं पर भूमंडलीकरण का प्रतिकूल असर अधिक नजर आता है। हमारे देश की आर्थिक व्यवस्था में महिलाओं का सबसे अधिक योगदान कृषि के क्षेत्र में है। यहाँ अधिकतर खेतिहर कार्य महिलाओं द्वारा किये जाते हैं। महिलाओं का ज्ञान व निपुणता, खाद्य उत्पादन व फसलों की विविधता और खाद्य प्रक्रिया के लिए प्रयास किया जा रहा है। लेकिन विश्व व्यापार संगठन के समझौते के तहत: कृषि पर कार्पोरेट जगत का दबदबा बढ़ा है, जो खाद्य सुरक्षा महिलाओं के काम पर निर्भर करती है। उसे खाद्य संस्कृति ने पीछे हटा दिया है। वर्ष 2005 में राष्ट्रीय महिला आयोग ने भूमंडलीकरण के कृषि पर होने वाले प्रभाव पर कराये एक अध्ययन में कहा था कि विश्व व्यापार संगठन के तहत कृषि पर समझौता अनुचित और असमान है। और इससे कृषि में कार्यरत महिलाओं पर नकारात्मक बदलाव आया है।

कार्पोरेट आधारित कृषि में महिलाओं को उनकी खाद्य उत्पादन और खाद्य प्रसंकरण की जीविका से बेदखल करने का काम किया है। यह सही है, कि भूमंडलीकरण ने अनौपचारिक और असंगठित क्षेत्र में महिलाओं के रोजगार के असीम अवसर प्रदान किया है। जो महिलाएं परिवार कि देख-भाल में समय बिताती थीं, उन्हें श्रम प्रधान इन

ईकाइयों में काम करने का अवसर मिला लेकिन इस प्रक्रिया ने महिलाओं से उनके काम के बुनयादी अधिकार छीन लिए। 1990 से शुरू हुए एस.ए.पी. (ढाचागत समायोजन) कार्यक्रम के तहत कई विदेशी कंपनियों ने अपने निर्यात उद्योगों जैसे— कपड़ा, खेल का सामान, फूड प्रोसेसिंग खिलोनों की ईकाइयों को भारत में खोलकर महिलाओं को सस्ता श्रम मानते हुए उन्हें अधिक से अधिक काम पर रखा। लेकिन असुरक्षित माहौल और दम घोटू काम की स्थितियों ने महिलाओं को गुलाम वेतन भोगी बनाने का काम अधिक किया। नौकरियों मिली लेकिन ना तो युनियन बनाने के अधिकार और ना ही अपने अधिकारी के खिलाफ लड़ने या आवाज उठाने के अधिकार मिल सके। काम की उचित कल्याकारी सरकारी नितियों के अभाव में इन महिलाओं को बदहाल और गुलाम बनाने वाली कार्य स्थितियों में भी काम करने का आदी बना दिया। इस प्रक्रिया ने गरीबी के स्त्रीकरण को अधिक प्रोत्साहित किया है। एक अनुमान के मुताबिक विश्व के कुल काम के घन्टों में से महिलाएं दो तिहाई काम करती हैं। लेकिन विश्व की केवल 10 तिहाई आय अर्जित करती है। और विश्व की कुल 1 प्रतिशत सम्पत्ति की मालकिन हैं। भूमंडलीकरण के चलते आर्थिक और सामाजिक स्तर पर आगे बढ़ने के रास्ते खुलने का कुछ हद तक लाभ शहरों की शिक्षित अधिकार सम्पन्न महिलाओं को हुआ लेकिन यह भी फायदा उन्हीं महिलाओं को मिला जो संगठित क्षेत्रों की कंपनियों में बेहतर कार्य शर्तों पर काम करने की स्थिति में अधिक थीं। संचार माध्यमों के विस्तार सांस्कृतिक आदान—प्रदान मीडिया के विस्तार और विश्व स्तरीय संस्थाओं के भारत में खोलने से महिलाओं को समान अवसर और अपने अधिकारों के प्रति जाग्रत करने का काम किया है।

महिला सशक्तीकरण के संकेतक

	संकेतक	सकारात्मक	नकारात्मक	कुल प्रतिशत
अ.	मनोवैज्ञानिक			
	i. आत्म जागरूकता	66	34	100
	ii. आत्म सम्मान	75	25	100
	iii. आत्म विश्वास	80	20	100
	iv. जोखिम लेने की क्षमता	60	40	100
ब.	सामाजिक			
	i. बेहतर शिक्षा	68	32	100
	ii. बेहतर स्वास्थ्य	62	38	100
	iii. सार्वजनिक स्वच्छता	46	54	100
	iv. सार्वजनिक जीवन में भाग लेना	70	30	100
स.	आर्थिक			
	i. बचत की भावना का विकास	72	28	100
	ii. कर्ज में जाल से मुक्ति	55	45	100
	iii. आर्थिक स्वतंत्रता	60	40	100

स्रोत – सर्वेक्षण : उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि इस योजना ने ग्रामीणों के मनोवैज्ञानिक, समाजिक और आर्थिक विकास के मामलों में काफी लाभ पहुँचाया है, उनका सशक्तीकरण किया है।

सुझाव –

1. महिलाओं को स्वयं आगे बढ़कर अपने अधिकारों एवं सम्मान के लिए जाग्रत होना अति आवश्यक है।
2. महिलाओं में स्वतंत्रता एवं समानता के लिए सरकार द्वारा समय-समय पर ऐसे विभिन्न कानूनों को पारित किया गया है। लेकिन आज भी भारत में महिलाओं की स्थिति पूर्ण रूप सशक्त नहीं हो पाई है।
3. वैश्वीकरण के कारण भारतीय नारी में पश्चिमी सभ्यता के सामील होने से महिलाओं में जागरूकता तो आई है लेकिन वह पूर्ण रूप से नहीं आ पाई है।
4. ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं में आज भी अज्ञान, अशिक्षा के कारण शोषण की स्थिति बनी हुई है अतः इसे दूर करने के लिए हम सभी को मिलकर इसका निराकरण करना चाहिए।
5. सरकारी की नीतियों को ग्रामीण भारत के अन्तिम छोर पर बैठी महिला तक पहुँचाना आवश्यक है।
6. वित्त समायोजन के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में स्वयं सहायता समूहों की अधिकतम स्थापना की जानी चाहिए।
7. ग्रामीण महिलाओं को सूक्ष्म वित्त संस्थाओं के द्वारा उद्यम स्थापित करने हेतु विशेष प्रशिक्षण एवं शिविर आयोजित किये जाने चाहिए।
8. महिला उद्यमियों को सूक्ष्म वित्त संस्थाओं द्वारा आवश्यकता अनुसार पर्याप्त राशि दी जानी चाहिए।
9. उद्यम संचालन हेतु आवश्यक कच्चे माल की उपलब्धता स्थानीय स्तर पर एवं पर्याप्त मात्रा में की जानी चाहिए।
10. महिला उद्यमियों को प्रदान ऋण राशि को उचित उपयोग हेतु संस्थाओं के द्वारा प्रेरित किया जाना चाहिए।
11. प्रशासन को ग्रामीण क्षेत्रों में वित्त समायोजन एवं बैंक लिंकेज कार्यक्रमों की प्रगति करना चाहिए।

निष्कर्ष – निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि गरीबी उन्मूलन तथा ग्रामीण विकास के मूल उद्देश्य को प्राप्त करने में वित्तीय समावेशन के अंतर्गत लघु वित्त प्रभावी भूमिका निभा रहा है क्योंकि इसके द्वारा ग्रामीण भारत की 'जड़ों' तक साख व्यवस्था को पहुँचाया जा रहा है। इसके 90 प्रतिशत स्वःसहायता संगठन स्त्रियों के होने के कारण स्त्री शक्ति को बल मिला है। वास्तव में वित्तीय समावेशन में लघु वित्त की भूमिका को सुदृढ़ करने के लिए इस कार्यक्रम को और विस्तारित करना होगा, जनता को जागरूक करना होगा, ऋण राशि की मात्रा बढ़ानी होगी तथा बैंकों को और वित्तीय सहायता उपलब्ध करानी होगी। "सामाजिक शक्ति प्रदान करने तथा आर्थिक उत्थान के दृष्टिकोण से स्वःसहायता संगठनों की भूमिका ग्रामीण विकास के अन्य कार्यक्रमों की तुलना में कहीं अधिक कारगर रही है।"

वर्तमान शताब्दि में महिलाओं की स्थिति में आमूल-चूल परिवर्तन आये हैं। स्त्रियों की स्थिति में अधिक-से अधिक सुधार हो इसके लिए समाज का दृष्टिकोण बदला जाए। साथ ही महिलाओं में इसके लिए स्वयं में जागरूकता लाना होगा और पुरुषों को अपना दृष्टिकोण बदलने के लिए प्रेरित करना होगा। आधुनिक भारत में जो सर्वांगिक तात्त्विक परिवर्तन हुए इनमें से एक है परम्परागत व्यवस्था से महिलाओं की मुक्ति। यह मुक्ति भारतीय नारी को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, एवं कानूनी सुविधाएँ प्रदान किये जाने तथा उन्हें शिक्षा ग्रहण करने के क्षेत्र में एक विशेष पहल है। सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन के साथ शिक्षित कामकाजी महिलाओं ने अपने लिए एक नया स्थान व नयी भूमिका प्राप्त कर ली है। भारत में आज महिलाएँ आर्थिक आवश्यकता स्वयं ही कर रही हैं अब नारी अबला से सबला एवं असहाय से सशक्त होती जा रही हैं। इन सभी का संबंध किसी न किसी तरह से

भूमंडलीकरण से जुड़ा हुआ है। जिसके कारण आज नारी पूरे देश एवं विश्व के विभिन्न सर्वोच्च पदों पर स्थापित होकर सफलता की ओर अग्रसर हो रही हैं।

संदर्भ सूची

1. श्री निवास, एम.एन. (1956) सोशल चेन्ज इन मॉडर्न इंडिया।
2. सिंहा पी.सी. (2000) ग्लोबल सोर्स बुक ऑन ह्यूमन राइट्स।
3. हिन्दुस्तान टाइम्स 23 दिसम्बर 2011।
4. राजस्थान पत्रिका अगस्त 2009।
5. T.Chiranjeevulu, March (2003): Empowering Women through Self-Help Experiences in Experiment-Kurukshetra.
6. Gopalan Sarala (2002): Towards Equality – The Unfinished Agenda: Status of Women in India, National Commission for Women, New Delhi.
7. Kapadia Karin (2002), The Violence of Development- National Commission for Women, New Delhi.
8. नाबार्ड की Website
9. तथ्य भारती आर्थिक मासिकी, जनवरी 2012
10. M.L. Narasiah, 2004 Women and Micro Credit New Delhi.
11. www.nabard.org
12. Indian economics Survey 2011-12,
13. भारत 2011, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली।



उरांव जनजाति में महिलाओं की सामाजिक स्थिति

(बालाघाट के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ.एस.पी.पाण्डेय
प्राध्यापक-भूगोल
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह
महाविद्यालय, रीवा (M0प्र0)

मनोज द्विवेदी
शोध अध्येता-भूगोल
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह
महाविद्यालय, रीवा (M0प्र0)

जनजातीय लोग सम्पूर्ण मध्यप्रदेश में बिखरे हुए हैं किन्तु इनका सर्वाधिक समूहन दक्षिणी एवं पूर्वी जिलों में है। इन्दौर और जबलपुर सम्भाग के जिले इसमें शीर्ष पर हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार मध्यप्रदेश की कुल जनसंख्या में जनजातीय जनसंख्या का प्रतिशत 21.1 तथा अनुसूचित जाति का प्रतिशत 15.6 है। जनजातियों की जनसंख्या के मामले में 15316784 जनसंख्या के साथ मध्यप्रदेश भारत में शीर्ष जनजातीय आबादी वाला राज्य है। वर्ष 2011 की जनगणना के आंकड़ों के अनुसार राज्य के शीर्ष 10 जनजातीय आबादी वाले जिलों में से अधिकांश जिले दक्षिणी तथा पूर्वी मध्यप्रदेश में ही हैं। बालाघाट जिला कई जनजातीय समूहों एवं उपसमूहों का निवास क्षेत्र है किन्तु यहाँ गोंड, बैगा तथा उरांव जनजातियाँ प्रमुख रूप से निवासित हैं।

अध्ययन का उद्देश्य:- अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं-

1. उरांव जनजाति में बाल विवाह की स्थिति का अध्ययन करना।
2. उरांव जनजाति के बालाघाट में निवास की अवधि ज्ञात करना।
3. उरांव महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति का अध्ययन करना।
4. उरांव महिलाओं की आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना।
5. महिलाओं की पारिवारिक निर्णयों में भागीदारी ज्ञात करना।

अध्ययन की इकाई:- प्रस्तुत अध्ययन हेतु मध्य प्रदेश के बालाघाट जिले का चयन किया गया है। बालाघाट जिले के विकासखण्ड बिरसा के अलग-अलग ग्रामों में निवासरत उरांव जनजाति की 100 महिलाओं का यादृच्छ्यात्मक (रेण्डम) पद्धति से चयन किया गया। जिसमें 28 प्रतिशत महिलायें 20 से 30 आयु समूह की थीं। 20 प्रतिशत उत्तरदाता महिलायें 39 से 44 आयु समूह की जबकि 25 प्रतिशत उत्तरदाता महिलायें 60 वर्ष से अधिक आयु की हैं। इकाइयों से सूचनाओं के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची की सहायता ली गई है।

सामान्य परिचय:- उरांव या कुडुख भारत की एक प्रमुख जनजाति है। यह भारत की मध्यवर्ती उच्च भूमि एवं पूर्वी राज्यों में निवास करती है। यह भारत के संपूर्ण पूर्वी एवं मध्यवर्ती क्षेत्रों में फैली, गोंडों व संथालों के बाद देश की तीसरी सबसे अधिक जनसंख्या वाली जनजाति है।

अन्य जनजातियों की तरह उरांव जनजाति की उत्पत्ति को लेकर भी मतभेद हैं लेकिन सामान्यतः इन्हें दृविड़ जाति का वंशज माना जाता है। मूलतः यह जनजाति दक्षिण भारतीय है। भारतीय नृतत्वशास्त्रीय समिति के अनुसार कोंकड़ क्षेत्र उरांव जनजाति का मूल आवास है। कोंकड़ क्षेत्र से ही उरांव जनजाति ने उत्तर की ओर प्रवास किया और धीरे-धीरे विस्तृत क्षेत्र में फैल गई।¹ इनकी अधिसंख्य जनसंख्या झारखण्ड, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, बिहार तथा मध्यप्रदेश में निवासरत है।

सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि:- उरांव जनजाति के लोग जन्म से मृत्यु तक अपनी सांस्कृतिक परंपराओं

से बँधे हुए हैं। इनकी संस्कृति मुण्डा संस्कृति से बहुत मिलती जुलती है। इनकी भाषा का नाम कुडुख है। कुडुख द्रविड भाषा परिवार की बोली है किन्तु आधुनिक कुडुख पर हिन्दी, छत्तीसगढ़ी तथा सदरी का व्यापक प्रभाव है।

अन्य जनजातियों के समान उरांव जनजाति के लोगों के जीवन में नृत्य और गीत बहुत महत्व रखते हैं। अच्छी फसल की कामना के लिये सरना देवी की पूजा की जाती है। परंपरागत रूप से इस पूजा को बैगा संपन्न करवाते हैं। सरहुल उरांव जनजाति का अनुष्ठानिक नृत्य है। उरांव सरना देवी का निवास साल (सरई) वृक्ष में मानते हैं। वे प्रति वर्ष चैत्र मास कि पूर्णिमा पर साल वृक्ष की पूजा का आयोजन करते हैं और वृक्ष के आस-पास नृत्य करते हैं। सरहुल समूह नृत्य है जिसमें स्त्री एवं पुरुष दोनों भाग लेते हैं।

उरांव समाज गोत्रों में बँटा हुआ है। उरांव जनजाति में मुख्य रूप से पाये जाने वाले गोत्र इस प्रकार हैं—मिंडा, लकश, केरकेट्टा, तिग्गा, तिकी, टोप्पो, बेक, खल्को, कुजूर इत्यादि।¹ सामान्यतः इनके गोत्र टोटम से संबंधित होते हैं। इनके नाम पशुओं, पक्षी, मछली, पौधों तथा वृक्षों के नाम पर रखे जाते हैं।

उरांव जनजाति की एक महत्वपूर्ण विशेषता धुमकुरिया है। धुमकुरिया एक युवा गृह है। धुमकुरिया के मुखिया को धांगर महतो कहा जाता है। लड़कियों में वरिष्ठतम सदस्य जो प्रायः विधवा होती है, को मुखिया बनाया जाता है जिसे बारकिन धांगरिन कहा जाता है। धुमकुरिया में सभी अविवाहित युवाओं को सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोरंजन, वेशभूषा, नृत्यगान, अतिथि सत्कार, कृषि और जीविकोपार्जन, विभिन्न संस्कारों, धार्मिक विश्वासों और अनुष्ठानों की शिक्षा प्रदान की जाती है। उरांव समाज में युवागृहों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह संस्था एक पीढ़ी—से दूसरी पीढ़ी को संस्कृति का हस्तांतरण करती है। अब जनजातीय संस्कृति की संस्थाओं के अन्य समाजों से सम्पर्क तथा आधुनिकता के कारण विकृतियाँ आ गई हैं। अतः अब ये संस्थायें अपनी मौलिकता खो रही हैं।³

उरांव जनजाति में महिला एवं पुरुषों को बराबरी का अधिकार है। दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा नहीं है और न ही महिलाओं पर अत्याचार किये जाते हैं। उरांव जनजाति की महिलाएँ पुरुषों की तुलना में अधिक मेहनती होती हैं। वे घरेलू कार्यों को संपन्न करने के साथ-साथ जंगल से लकड़ी लाने, दूरस्थ स्थानों से पीने का पानी लाने, वनोंपज संग्रहण करने, उन्हें सुखाने, कूटने, टोकरियाँ आदि बनाने का कार्य भी करती हैं। वे पुरुषों के साथ कृषि कार्य में भी हाथ बंटाती हैं। प्रस्तुत लेख उरांव लोगों के जीवन में अतिशय महत्वपूर्ण स्थान रखने वाली महिलाओं का सामाजिक सांस्कृतिक, अध्ययन करने का एक प्रयास है।

शोध प्रारूप:—

(1).वैवाहिक स्थिति:— अध्ययन की गई कुल 100 उत्तरदाता महिलाओं में से 77 प्रतिशत उत्तरदाता महिलायें संयुक्त परिवार की सदस्य हैं जबकि केवल 23 प्रतिशत उत्तरदाता एकाकी परिवार की सदस्य हैं। उत्तरदाता महिलाओं में से 81 प्रतिशत उत्तरदाता महिलायें विवाहित हैं जबकि 19 प्रतिशत महिलायें विधवा हैं। उरांव जनजाति में दूसरा विवाह भी प्रचलित है। लेकिन 19 प्रतिशत विधवा महिलाओं में से किसी ने दूसरा विवाह नहीं किया है। सामान्यतः ओरांव जनजाति में तलाक या अलगाव प्रचलित नहीं है। इनमें तीन तरह की विवाह पद्धतियाँ प्रचलित हैं —

1. बूँदे — परंपरागत विवाह
2. ढूँकू — लड़की अपनी मर्जी से मनपसंद लड़के के घर बैठ जाती है।⁴
3. बन्दवा — राजी-बाजी विवाह जो लड़के-लड़की की इच्छा से होता है।

विवाह की आयु

तालिका क्रमांक 1
विवाह के समय आयु

विवाह के समय आयु	संख्या	प्रतिशत
25 वर्ष से अधिक	—	—
21 से 25 वर्ष	56	56
18 से 20 वर्ष	32	32
18 से कम	12	12
कुल योग	100	100

तालिका क्रमांक 1 के अनुसार 100 उत्तरदाता महिलाओं में से 56 प्रतिशत उत्तरदाताओं का विवाह 21 वर्ष से 25 वर्ष की आयु में हुआ है। 32 प्रतिशत उत्तरदाताओं का विवाह 18 से 20 वर्ष की आयु में हुआ है, केवल 12 प्रतिशत उत्तरदाता महिलाओं का विवाह 18 वर्ष से कम आयु में हुआ है। यह इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि सामान्यतः उरांव जनजाति में बाल विवाह प्रचलित नहीं है।

(2).निवास की अवधि :—

सालघाट ग्राम के आदिवासियों के अनुसार वर्ष 1968 में पहला उरांव परिवार बालाघाट के बिरसा विकासखण्ड के सालघाट ग्राम में जीविका की तलाश में आकर बस गया था। वर्तमान में लगभग 176 परिवार 8 अलग-अलग जनजातीय बस्तियों में बसे हुए हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं—गराटोला, देवगाँव, सालघाट, दमोह, छिंदाटोला, गोरखपुर, बोरखेड़ा और नक्का।

यहाँ निवासरत उरांव परिवार उत्तरी मध्य प्रदेश व छत्तीसगढ़ से आकर यहाँ बसे हैं। इनके प्रवास का मुख्य कारण गरीबी, जीविकोपार्जन के साधनों का अभाव, कृषि भूमि का अभाव, अकाल के समय भोजन संकट एवं छत्तीसगढ़ में विभिन्न खनन परियोजनाओं के कारण विस्थापन होना बताया गया है। सदियों से जनजातीय समाज हाशिये पर रहा है। औपनिवेशिक काल में ऐसे अनेक कानून बनाये गये जो जनजातीय लोगों को भूमि, वन और अन्य प्राकृतिक संसाधनों से वंचित करते थे। परिणामस्वरूप कई जनजातियों को अपने मूल निवास स्थान से पलायन करने के लिये मजबूर होना पड़ा।⁵ इसी प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विकास के नाम पर बाँधों के निर्माण, खानों में खुदाई, वन अभ्यारण्यों का निर्माण आदि कारणों से सम्पूर्ण भारत में बहुत बड़ी संख्या में जनजातियों का विस्थापन हुआ है।⁶

तालिका क्रमांक 2
निवास की अवधि

अवधि	संख्या	प्रतिशत
10 वर्ष से कम	2	2
11 से 20 वर्ष	2	2
21 से 30 वर्ष	10	10
30 से अधिक वर्ष	86	86
कुल योग	100	100

तालिका क्रमांक 2 से स्पष्ट होता है कि कुल 100 उत्तरदाताओं में से सर्वाधिक 86 प्रतिशत उत्तरदाता यहाँ 30 से अधिक वर्ष से निवास कर रहे हैं। 10 प्रतिशत उत्तरदाता महिलाओं को यहाँ रहते हुए 21 से 30 वर्ष हो

गये हैं, 2 प्रतिशत उत्तरदाता 11 से 20 वर्षों से निवासरत हैं जबकि केवल 2 प्रतिशत उत्तरदाता महिलायें ऐसी हैं जिन्हें यहाँ रहते हुए 10 वर्ष से कम हुआ है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि अधिकांश उत्तरदाता महिलाओं के परिवार 30 से अधिक वर्षों से यहाँ आ कर बसे हुए हैं।

बिरसा विकासखण्ड के लगभग 15 किलोमीटर के दायरे में निवासरत सभी उरांव परिवार यहाँ स्थानांतरित होकर आये हैं, इनमें से 88 प्रतिशत यहाँ इसलिये आये हैं क्योंकि उनके गृह क्षेत्र में उनके पास कृषि भूमि नहीं थी, 8 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार उनके गृहक्षेत्र में उनके पास आजीविका का कोई साधन नहीं था जबकि 4 प्रतिशत उत्तरदाता अपने रिश्तेदारों के साथ यहाँ आकर बस गये हैं।

(3).शैक्षणिक स्थिति:— राष्ट्रीय स्तर पर उराँव जनजाति भारत की कुछ सर्वाधिक साक्षर जनजातियों में गिनी जाती हैं। जबकि अध्ययन क्षेत्र में प्राप्त आँकड़े ज्यादा बेहतर नहीं रहे उराँव महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति के आँकड़े निम्नवत हैं —

तालिका क्रमांक 3
उत्तरदाताओं की शैक्षणिक स्थिति

शैक्षणिक स्तर	संख्या	प्रतिशत
निरक्षर	30	30
प्राथमिक	34	34
हाईस्कूल	20	20
स्नातक	16	16
कुल योग	100	100

तालिका क्रमांक 1 से स्पष्ट होता है कि उराँव जनजाति की 30 प्रतिशत महिलायें निरक्षर हैं। जबकि 34 प्रतिशत महिलाओं ने प्राथमिक स्तर तक शिक्षा प्राप्त की है, 20 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने हाई स्कूल तक शिक्षा प्राप्त की है, और केवल 16 प्रतिशत उत्तरदाता स्नातक स्तर तक शिक्षित हैं। उत्तरदाता युवतियों के अनुसार शिक्षा प्राप्त करने में उनके सामने आने वाली मुख्य बाधाएँ हैं—गरीबी, घर में छोटे भाई—बहनों की देखभाल करना एवं विद्यालयों की दूरी इत्यादि।

अध्ययन की गई सभी 100 प्रतिशत उत्तरदाता महिलाओं में से 78 प्रतिशत ईसाई तथा 22 प्रतिशत हिन्दू धर्म को मानती हैं। मानवशास्त्रीय अध्ययनों के अनुसार उराँव जनजाति पर हिन्दू समुदाय का प्रभाव अधिक है यद्यपि ईसाई धर्म प्रचारकों के कारण कई उराँव परिवार ईसाई धर्म को मानने लगे है।⁷

(4).आर्थिक स्थिति:— उराँव जनजाति की महिलाओं की आर्थिक स्थिति की जानकारी प्राप्त करने के लिये उनकी मासिक आय से संबंधित जो जानकारी प्राप्त हुई वह इस प्रकार है:—

तालिका क्रमांक 4
उत्तरदाताओं की मासिक आय

मासिक आय रुपये में	संख्या	प्रतिशत
रु. 800 से 1000	76	76
रु. 1000 से 2000	16	16
रु. 2000 से अधिक	08	08
कुल योग	100	100

तालिका क्रमांक 4 से स्पष्ट होता है कि अधिकांश उत्तरदाता महिलाओं में से 76 प्रतिशत महिलाओं के परिवार

की आय मात्र 800 से 1000 रुपये है जबकि 15 प्रतिशत परिवारों की आय 1000 रुपये से 2000 रुपये के बीच है। मात्र 9 प्रतिशत परिवार ऐसे हैं जिनकी आय 2000 रुपये से अधिक है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि अधिकांश उरांव महिलाओं के परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। उनकी कुल आय इतनी कम है कि इससे उनकी मूलभूत आवश्यकताओं का पूरा होना संभव नहीं है। इसका प्रमुख कारण यह है कि कटते जंगलों से उनकी जीविका पर संकट आ गया है। ये लोग कृषि कार्य, मुर्गी पालन इत्यादि के साथ तेंदूपत्ता, सरई बीज, महुआ तथा चिरोंजी इत्यादि एकत्र करके बेचकर लाभ कामते थे। किन्तु अब ज्यादा कमाई नहीं हो पाती है। दूसरी ओर अन्य लोगों की तरह उरांव युवा भी अब खेती में कार्य करना पसंद नहीं करते हैं। यहाँ के लगभग 70 प्रतिशत युवा घरेलू नौकर अथवा दिहाड़ी मजदूर के रूप में कार्य करने जबलपुर, नागपुर इत्यादि शहरों में चले जाते हैं जो सामान्यतः त्योहारों पर घर लौटते हैं। कुछ उरांव महिलायें बालाघाट की विभिन्न खदानों में मजदूर के रूप में कार्य करती हैं। जबलपुर में कार्य करने वाले मजदूर प्रतिदिन जबलपुर से बालाघाट के बीच चलने वाली छोटी लाइन की रेलगाड़ी से आते-जाते हैं।

तालिका क्रमांक 5

मुख्य व्यवसाय

व्यवसाय	संख्या	प्रतिशत
कृषि मजदूर	90	90
दिहाडत्री मजदूर	04	04
घरेलू कार्य	04	04
शिक्षण	02	02
सरकारी नौकरी	00	00
कुल योग	100	100

तालिका क्रमांक 5 से स्पष्ट होता है कि 90 प्रतिशत उत्तरदाता महिलायें कृषि मजदूर के रूप में कार्य करती हैं, केवल 2 अर्थात् 4 प्रतिशत महिलायें दिहाड़ी मजदूर के रूप में कार्य करती हैं। इसके अतिरिक्त 4 प्रतिशत महिलायें ही ऐसी हैं जो घरेलू कार्य में लगी हैं और केवल 1 अर्थात् 2 प्रतिशत महिलायें शिक्षण कार्य कर रही हैं। कोई भी उत्तरदाता महिला सरकारी नौकरी नहीं कर रही है।

(4). पारिवारिक निर्णयों में भागीदारी:—प्राचीन काल से ही भारत की कई जनजातियाँ मातृसत्तात्मक रही हैं। जिनमें यह व्यवस्था नहीं थी उनमें भी परिवार में स्त्रियों की निर्णायक तथा महत्वपूर्ण भागीदारी थी। उरांव जनजाति भी उनमें से एक है। अध्ययन क्षेत्र में पारिवारिक निर्णयों में स्त्रियों की भागीदारी के आंकड़े बहुत अच्छे रहे जो निम्न हैं—

तालिका क्रमांक 6

पारिवारिक निर्णयों में भागीदारी

भागीदारी	संख्या	प्रतिशत
हाँ	86	86
नहीं	14	14
कुल योग	100	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि 86 प्रतिशत उत्तरदाता महिलाओं की पारिवारिक निर्णयों में पुरुषों

के साथ भागीदारी होती है, केवल 14 प्रतिशत महिलायें ही ऐसे हैं जिनकी पारिवारिक निर्णयों में कोई भूमिका नहीं होती।

निष्कर्ष :- उपर्युक्त अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि बालाघाट जिले के बिरसा विकासखण्ड के 10 से 15 किलोमीटर की परिधि में लगभग 176 उरांव परिवार निवासरत हैं। इनमें से अधिकांश परिवार लगभग 30 से अधिक वर्षों से यहाँ रह रहे हैं। यहाँ आकर बसने का मुख्य कारण उनके पूर्व निवास क्षेत्र में कृषि योग्य भूमि का न होना तथा आजीविका की समस्या थी।

यद्यपि वर्तमान निवास क्षेत्र में भी उनकी आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं है कि वे अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। यही कारण है कि उरांव युवा रोजगार हेतु विभिन्न शहरों में घरेलू कार्य एवं दिहाड़ी मजदूर के रूप में कार्यरत हैं। वे त्योहारों में वापस अपने घर आकर पुनः रोजगार हेतु लौट जाते हैं। अधिकांश उत्तरदाता महिलायें कृषि मजदूर के रूप में कार्यरत हैं।

उरांव जनजाति की 30 प्रतिशत महिलायें अशिक्षित हैं लेकिन वे अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति अब जागरूक हो चुकी हैं। उरांव जनजाति में बाल विवाह प्रचलित नहीं है। अधिकांश महिलायें पारिवारिक निर्णयों में भागीदारी रखती हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

1. Indian Anthropological Society (1986) Volumes-21-22, Page-21-22
2. निरगुणे, वसन्त, 'आदिवासी छत्तीसगढ़ की जनजातियाँ', महावीर पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, इन्दौर, 2004, पृ. 142
3. तिवारी, विजय कुमार, 'छत्तीसगढ़ की जनजातियाँ', हिमालय पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई, 2001, पृ. 56
4. निरगुणे, वसन्त, पूर्वोक्त, पृ. 145
5. संपादकीय, योजना- जनवरी 2014, पृ. 5
6. श्रीवास्तव सुखपाल, 'कुरुक्षेत्र', नवंबर 2010, पृ. 5
7. निरगुणे, वसन्त, पूर्वोक्त, पृ. 146

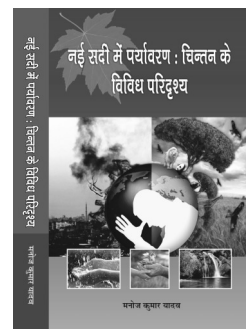


नई सदी में पर्यावरण : चिन्तन के विविध परिदृश्य

डॉ. विरेन्द्र सिंह यादव

एसोसिएट प्रोफेसर—हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग

डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ



पर्यावरणविद, राजनीति, संस्कृति एवं सामाजिक सरोकारों के प्रगतिवादी विद्वान लेखक मनोज कुमार यादव अपनी पुस्तक नई सदी में पर्यावरण : चिन्तन के विविध परिदृश्य के सम्पादकीय में लिखते हैं कि मानव के जीवन को पर्यावरण दो तरह से प्रभावित करता है। एक प्राकृतिक पर्यावरण कहलाता है, जबकि दूसरा पर्यावरण वह है जो मानवकृत होता है। मानवकृत पर्यावरण का दूसरा नाम ही सांस्कृतिक पर्यावरण है। मानव सभ्यता के आरम्भिक काल में मानव के पास न तो कोई विकसित प्रौद्योगिकी थी और न ही मानव एक विकसित संस्कृति का निर्माण कर सका था। इस दशा में मनुष्य के जीवन को प्रभावित करने में प्राकृतिक पर्यावरण का प्रभाव बहुत अधिक था। जैसे-जैसे मानव ज्ञान में वृद्धि हुई, मनुष्य ने एक विकसित प्रौद्योगिकी का निर्माण करके प्राकृतिक दशाओं पर अपना नियन्त्रण स्थापित करना शुरू कर दिया, मानव के जीवन पर प्राकृतिक पर्यावरण का प्रभाव कम होने लगा। आज मानव-संस्कृति इतनी विकसित हो चुकी है कि प्राकृतिक पर्यावरण का बहुत छोटा-सा भाग ही उसके जीवन को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर पाता है। यह सत्य है कि अधिकांश मानवीय व्यवहार, सामाजिक संस्थाएँ तथा समाज की सम्पूर्ण सामाजिक संरचना उन सांस्कृतिक विशेषताओं से प्रभावित होती है जो स्वयं मानव द्वारा निर्मित हैं।

मनोज कुमार यादव की पुस्तक नई सदी में पर्यावरण : चिन्तन के विविध परिदृश्य पैंतीस अध्याय एवं नौ खण्डों में विभाजित है। प्रस्तुत पुस्तक में पर्यावरण से सम्बन्धित विविध समस्याओं के समाधान सुझाये गये हैं। प्रस्तुत पुस्तक में सबसे आकर्षण का केन्द्र इसके उपशीर्षक हैं— पर्यावरण की अवधारणा एवं प्रदूषण के विविध धरातल, जलवायु परिवर्तन के विनाशकारी खतरे, साहित्य में पर्यावरण संरक्षण के विविध धरातल, नई सदी में पर्यावरण : दशा एवं दिशा, पर्यावरण संरक्षण में शिक्षा की भूमिका, जल संकट : वर्तमान सदी की गम्भीर चुनौती, पर्यावरण संरक्षण की चुनौतियाँ और समाधान की दिशाएँ, वैदिक संस्कृति में पर्यावरण का स्वरूप एवं संरक्षण के उपाय, वर्तमान का पर्यावरण : चिन्तन-चिन्ता के विविध आयाम आदि।

लेखक का मानना है कि आज पर्यावरण मानव जीवन के अस्तित्व के लिए एक गम्भीर अति प्रासंगिक एवं चुनौती का विषय बन गया है। प्राकृतिक पर्यावरण में असंतुलित परिवर्तन, तापमान का बढ़ना, जल संकट, खाद्यान्न संकट आदि अनेक ऐसे सामाजिक-आर्थिक एवं मानवीय पक्ष हैं जिस पर सार्थक पहल, बहस एवं गतिशील आन्दोलन की जरूरत है। वर्तमान की आवश्यकता है कि प्राकृतिक संसाधनों का दोहन निश्चित रूप से उचित अनुपात में करने की जरूरत है। ऊर्जा संकट, पृथ्वी के तापमान में निरन्तर वृद्धि, मानसून में असंतुलन, प्रकृति में असमय परिवर्तन कुछ ऐसे मौलिक प्रश्न हैं जिस पर सम्पूर्ण विश्व को व्यापक दृष्टिकोण एवं कार्य योजना बनाने की शिद्दत के साथ जरूरत है।

इस पुस्तक के सभी विद्वान लेखकों की राय है कि वर्तमान समय में जनसामान्य की पर्यावरण संरक्षण में सहभागिता एवं उसके प्रति बोधगम्यता आवश्यक है। जब तक आम आदमी इसके प्रति सजग नहीं होगा तब तक मात्र सरकारी मशीनरी के द्वारा इस मिशन में सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती है। प्रत्येक नागरिक यदि पर्यावरण को प्रदूषण से बचाने के लिए जिये, अपने घर से ही प्रयास करे तो यह पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से सार्थक कदम होगा। औद्योगीकरण के इस युग में यद्यपि लोगों का आर्थिक विकास हो रहा है, किन्तु इसके कारण पर्यावरण बहुत दूषित हो रहा है। कई शहरों के अनेक कारखाने पर्यावरण नियन्त्रण के मानकों की अवहेलना कर पर्यावरण को नुकसान पहुँचा रहे हैं।

वर्तमान समय में पर्यावरण के अनेक स्याह पक्ष होने के बावजूद इसके कुछ उजले पक्षों की समीक्षा करते हुए सम्पादक मनोज कुमार का मानना है कि पर्यावरण संरक्षण वर्तमान युग की सर्वोपरि आवश्यकता है। सरकारी मशीनरी एवं सामाजिक संस्थाओं के अतिरिक्त जनसंचार कान्ति के विभिन्न माध्यमों के द्वारा लोगों के हृदय में पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता उत्पन्न कराने की आवश्यकता है। यद्यपि विभिन्न समाचार पत्र अपने समाचारों व लेखों के द्वारा इस दिशा में प्रयास करते रहते हैं। दृश्य एवं श्रव्य माध्यम होने के कारण दूरदर्शन आम जन-मानस को अधिक प्रभावित करता है। दूरदर्शन प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड द्वारा प्रायोजित विज्ञापनों एवं प्रदूषण संरक्षण सम्बन्धी ज्ञानवर्धक कार्यक्रमों के द्वारा जन-मानस को प्रेरित करता रहता है। इसके अतिरिक्त जन-संचार माध्यम आकाशवाणी भी अपने प्रयासों से इस दिशा में सार्थक प्रयास कर रहा है। पर्यावरण को दूषित एवं प्राकृतिक संसाधनों का अनावश्यक दोहन, वातावरण को दूषित करने वाला आम जन-मानस ही है। अतः जन-मानस को व्यक्तिगत स्वार्थ की भावना को त्यागकर सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय की भावना से प्रेरित होकर पर्यावरण संरक्षण के लिये पूर्ण मनोयोग से कार्य करना चाहिये।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत पुस्तक में भारत के विभिन्न प्रान्तों के उच्च शिक्षा जगत से सम्बद्ध प्राध्यापकों, शिक्षाविदों, बुद्धिजीवियों, साहित्यकारों, समाजवादियों, भूगोलवेत्ताओं, मनोवैज्ञानिकों एवं वैज्ञानिकों के सार्थक चिन्तन, मनन एवं गम्भीर विचारों को रखा गया है। पर्यावरण में रुचि रखने वाले लोगों को यह पुस्तक अवश्य पसंद आयगी।

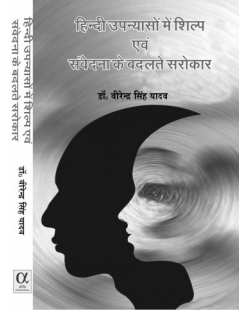
पुस्तक	—	नई सदी में पर्यावरण : चिन्तन के विविध परिदृश्य
लेखक	—	मनोज कुमार यादव
प्रकाशक	—	आराधना ब्रदर्स पब्लिकेशन्स, कानपुर
मूल्य	—	995.00, पेज — 424, संस्करण — 2016
ISBN	—	978-81-89076-87-0

हिन्दी उपन्यासों में शिल्प एवं संवेदना के बदलते सरोकार

मृदुला खुराना

असिस्टेंट-प्रोफेसर-भूगोल

एम.आर.सी.आर. महाविद्यालय, मैरवा, जिला-सीवान (बिहार)



आज संसार के महान् चिन्तक, मनीषी और साहित्यकार किसी ऐसे आदर्श दर्शन की खोज में लगे हैं जो इस युग की पथ-भ्रष्ट मानव-जाति को जीवन का वह सुदृढ़ आधार प्रदान कर सके जिससे सम्पूर्ण विश्व में परस्पर ऐक्य का भाव प्रस्थापित हो सके। वैदिक वाङ्मय से लेकर आधुनिक साहित्य में ऐसे अनेक उदात्त आदर्श भाव हमें देखने को मिल जाएंगे, जो आज के संघर्ष बहुल जीवन में व्यक्ति को व्यक्ति के प्रति सहानुभूति और संवेदनशील बनाने में समर्थ हैं। इन आदर्शों को अपनाकर मनुष्य में शोक-सन्तप्त तथा भयग्रस्त प्राणीमात्र के प्रति असीम करुणा और दया के भाव प्रतिष्ठित हो सकते हैं। डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव की प्रस्तुत इस सम्पादित पुस्तक के पीछे उनकी शायद यही भावना भी है कि आज की विघटनपूर्ण वातावरण में हिन्दी उपन्यास में उस योगदान का मूल्यांकन किया जा सके, जिसने अतीत में वर्णित समता, सहृदयता और स्नेह जैसे आदर्श को अपनाकर व्यक्ति की सुप्त उदात्तता और उदारता को जाग्रत कर, जीवन के उच्चतर मूल्यों की दिशा में अग्रसर होने की प्रेरणा मिले जहाँ जाति-पाँति और ऊँच-नीच के भेद-भाव मिटकर 'विश्व-बन्धुत्व' जैसे प्रबल उदार भावना को स्थापित करने में सहयोग प्रदान किया जा सके।

डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव की प्रस्तुत पुस्तक पच्चीस अध्यायों एवं चार खण्डों में विभाजित है। जिसमें विशेष आकर्षण का केन्द्र इस पुस्तक के उपशीर्षक हैं। खण्ड एक में हिन्दी उपन्यासों में शिल्प, समय एवं संवेदना के बदलते परिप्रेक्ष्य, खण्ड दो हिन्दी उपन्यासों में शिल्प के विविध विमर्श खण्ड तीन में हिन्दी उपन्यासों में आंचलिकता की दस्तक एवं खण्ड चार में हिन्दी उपन्यासों में मानवीय संवेदना के बदलते परिदृश्य इत्यादि की समीक्षा बहुत ही बारीकी के साथ गहराई से की है।

प्रस्तुत पुस्तक की सम्पादकीय में डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव ने उपन्यास के समकालीन परिवेश एवं स्थितियों के बारे में विश्लेषित करते हुए लिखते हैं कि आज का मनुष्य संशय, द्वेष, संत्रास और असुरक्षा के कारण अमानवीय जीवन जीने लगा है। वैज्ञानिक, यांत्रिक और औद्योगिक उपलब्धियों से प्राप्त सुखात्मक सुविधायें मानव जीवन के समसामयिक त्रासदी को और भी त्रासद बनाने लगी हैं। ऐसे परिवेश में व्यक्ति के व्यक्तित्व का विखण्डन तथा पारिवारिक मूल्यों का अवमूल्यन होता जा रहा है। परिवारों में व्याप्त प्रेम, सौहार्द, अपनत्व, भाई-चारा, दूटन, कुट्टन, घुटन एवं टकराहट में परिवर्तित हो गया है। यही नहीं भौतिकवादी सामाजिक व्यवस्था में परिवार के अन्य सम्बन्धों के साथ ही माता-पिता और बच्चों के सम्बन्धों में तेजी से बिखराव आता जा रहा है। पुत्र-पुत्रियाँ जब स्वावलम्बी हो जाते हैं, तब उन्हें माँ-बाप बोझ से लगने लगते हैं। इन सबका परिणाम पुस्तक में बहुत ही सूक्ष्मता से इन उपन्यासों के माध्यम से देखने को मिलता है।

संपादक डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव का मानना है कि इसमें कोई दो राय नहीं होना चाहिए कि आंचलिक उपन्यासों ने हिन्दी उपन्यास को नवीन दिशा दी और यह दिशा प्रगतिशील जीवन दृष्टि का परिचायक मानी जाती है क्योंकि उस क्षेत्र के लोक-जीवन, लोकधर्म, लोक संस्कृति, लोक साहित्य, लोककथा की संयुक्त परिकल्पना ही उसे आंचलिक रूप और आकार जो प्रदान करते हैं। इसमें वहाँ के पेड़ और पर्वत नदी, नाले, जंगल, जैविक किस्म की वनोपधियों भी आंचलिकता के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। स्वतंत्रता के बाद समाज में नव जागृति आई और सचेत उपन्यासकारों का ध्यान सबसे पहले देश के उपेक्षित, तिरस्कृत विस्मृत, दूरवर्ती अंचल जातियों के जीवन की ओर गया। कुछ साहित्यकारों ने उपेक्षित भू-खण्डों को पहचान कर इनके जीवन स्पन्दन की अनुभूति आंचलिक उपन्यासों में महसूस कर उसे प्रेमचन्द ने इस दिशा में कदम उठाया, किन्तु अंतर इतना रहा कि प्रेमचन्द ने ग्रामीण जीवन की समस्याओं का यथार्थ चित्रण बौद्धिक दृष्टि से किया, जबकि आंचलिक उपन्यासकारों ने ग्राम अंचल के जीवन का यथार्थ चित्रण कलात्मक दृष्टि से किया है। आंचलिक उपन्यासों का जन्म व्यक्तिवादी साहित्य में आने वाली जड़ता और स्थिरता की प्रतिक्रिया के कारण विद्रोही रूप में हुआ, फलस्वरूप लेखकीय दृष्टि व्यक्ति और उसके अंतर्मन के सूक्ष्म रहस्यों तक ही सीमित न रहकर गाँव के सरल, स्वच्छन्द, अपरिचित सभ्यता के दोषों से रहित, वहाँ के जन-जीवन व पिछड़ी जातियों की ओर गया। परिणामस्वरूप अद्भुत और विलक्षण जीवन प्रणालियों का उपन्यासकारों ने संधान कर नवीन उपलब्धियों के द्वार खोले। इस प्रकार आंचलिक उपन्यास यथार्थ की भूमि पर नई दृष्टि और संवेदना के वह गवाह हैं जिनसे प्राकृतिक सुखद वायु के झोंके आल्हादित और आनन्दित करते हैं। निश्चित ही यह कलाकृतियाँ साहित्यिक प्रवर्तन हैं जो एक नई दिशा में नई विधा की खोज हैं। हिन्दी आंचलिक उपन्यास साहित्य में फणीश्वर नाथ रेणु का नाम सर्वोपरि इसलिए है क्योंकि वे आंचलिक उपन्यास के पुरोधा माने जाते हैं। संपादक डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव का मानना है कि वर्तमान समय में आंचलिक उपन्यासों के लेखन का कार्य अल्प है इसलिए भविष्य के लिए आंचलिक उपन्यासों के लेखन कार्य में वृद्धि होना आवश्यक है।

डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा इस संपादित प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी उपन्यासों में शिल्प एवं संवेदना के बदलते सरोकारों में भारत के विभिन्न प्रान्तों के उच्च शिक्षा जगत से सम्बद्ध प्राध्यापकों, शिक्षाविदों, बुद्धिजीवियों, साहित्यकारों, समाजवादियों, भूगोलवेत्ताओं, मनोवैज्ञानिकों एवं वैज्ञानिकों के सार्थक चिन्तन, मनन एवं गम्भीर विचारों को रखा गया है। आशा है कि साहित्य से सम्बन्ध एवं रुचि रखने वाले लोगों को यह पुस्तक अवश्य पसंद आएगी। जो समकालीन उपन्यासों के बिन्दुओं एवं समस्याओं को समेटे हुए कुछ जिज्ञासाओं का समाधान करती नजर आती है। आशा है कि उपन्यास में रुचि रखने वाले शोध छात्रों एवं पाठकों को यह पुस्तक अवश्य पसंद आएगी।

पुस्तक	—	हिन्दी उपन्यासों में शिल्प एवं संवेदना के बदलते सरोकार
लेखक	—	डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक	—	अल्फा पब्लिकेशन्स ,4398/5 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
मूल्य	—	995.00
पेज	—	313
संस्करण	—	2014
ISBN	—	978-93-83292-94-3

भारत में चिन्तन की परम्परा एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य

डॉ. अनीता यादव

प्रवक्ता-शिक्षा शास्त्र

महाराज सिंह स्मृति महाविद्यालय, इटौली, औरैया, उ.प्र.

भारत में चिन्तन की परम्परा एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य के विस्तृत दायरों के बारे में विश्लेषण करते हुए डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव लिखते हैं कि सभ्यता के सोपानों पर आरुढ़ होता समाज, परिवर्तनों को स्वीकार करता हुआ विकास की राह पर अग्रसर होते समय न जाने कितना कुछ बुराइयों एवं अच्छाइयों को छोड़ता व जोड़ता चलता है। इसी शाश्वत क्रम में बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विश्व युद्ध के पश्चात् विश्व पटल पर नया बौद्धिक वातावरण निर्मित होना प्रारम्भ हुआ। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में समाज, संस्कृति, अर्थव्यवस्था, राजनीति, कला, संगीत, वास्तुशास्त्र, साहित्य और चिन्तन में जो परिवर्तन आये हैं उनको परिलक्षित करने वाला एक व्यापक सिद्धांत रूपी शब्द पैदा हुआ—जिसने पूरी व्यवस्था अर्थात् सामाजिक संस्थाओं जैसे विवाह, परिवार, जाति आदि को भी परिवर्तित करने में इस उत्तर आधुनिकता ने अहम् भूमिका निभाई है। आज परिवार के नये प्रतिमान उभर कर सामने आ रहे हैं। परिवार के आकार, प्रकार, सदस्यों के सम्बन्धों, प्रस्थिति एवं भूमिकाओं, अधिकारों एवं कर्तव्यों तथा परिवार के ढांचे को निर्मित करने वाले नियमों में वर्तमान में काफी परिवर्तन आये हैं। परिवार का आकार घटता जा रहा है। अब सीमित अर्थात् एकल परिवार की ओर समाज का झुकाव बढ़ता जा रहा है। सन्तति निग्रह या परिवार नियोजन से सम्बन्धित विभिन्न विधियों के प्रयोग ने परिवारों की सदस्य संख्या घटाकर दो, अधिक से अधिक तीन या चार तक सीमित कर दी है।

युवा आलोचक डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव की प्रस्तुत पुस्तक छब्बीस अध्यायों एवं आठ खण्डों में विभाजित है। मौलिकता की दृष्टि से इसके अध्याय विभाजन एवं उपशीर्षक हैं। ज्वलंत प्रश्न/अछूते सन्दर्भ, नई सदी में पर्यावरण के विनाशकारी खतरे, राष्ट्र निर्माण में अग्रज पीढ़ी का योगदान, समतामूलक समाज एवम् सामाजिक परिवर्तन के महापुरुष, हिन्दी साहित्य में विमर्श के विविध आयाम, हिन्दी साहित्य में हाशिए का विमर्श, भारतीय संस्कृति के बदलते परिदृश्य, भारत में चिन्तन—चिन्ता के विविध परिदृश्य इत्यादि को बहुत ही बारीकी से समीक्षित एवं परीक्षित किया गया है।

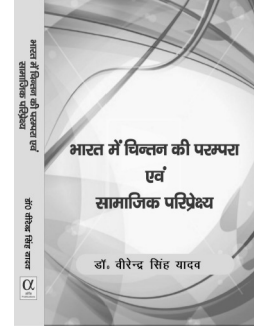
लेखक का मानना है कि हमारी मानवीय संवेदना का द्रुतिगत से बदल रहे हालातों एवं भूमंडलीकरण और बाजारवाद में सबसे अधिक क्षरण किया है। मानवीय दुर्घटना या प्राकृतिक कोई भी बड़ी से बड़ी खबर हमारी संवेदना को बहुत अधिक प्रभावित नहीं कर पाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि इलेक्ट्रॉनिक जनसंचार माध्यमों ने किसी भी वैयक्तिक, आत्मनिष्ठ और निजी सम्बन्धों को तेजी से प्रभावित किया है।

समकालीन परिवेश की उठापटक एवं परिवर्तन के बारे में युवा आलोचक डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव का मानना है कि संक्रमण काल से गुजरते वर्तमान परिवेश में मानवता खतरे में है। आज समग्र विश्व में भोगलिप्सा में व्यस्त मानव एक दूसरे के रक्त का प्यासा हो रहा है। व्यक्ति से व्यक्ति लड़ रहा है। एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय से आपस में संघर्षरत हैं। एक राष्ट्र से दूसरा राष्ट्र लड़ रहा है। आज असत्य, हिंसा, स्वार्थ, भोग, अनाचार, युद्ध, रक्तपात और विध्वंसक गतिविधियों से मानवता हिल उठी है। आज का मनुष्य अपने से असन्तुष्ट तो है ही है साथ ही औरों को भी दुख देता प्रतीत हो रहा है। क्योंकि आज भी आदिम काल के पाशविक सिद्धान्त लागू हो रहे हैं—सबल दुर्बल को मिटा देना चाहता है। शायद आज पशुओं से उतना भय नहीं प्रतीत होता है जितना मानव से। अनेक गुप्तचर एवं सुरक्षा एजेंसियों से लैस भारत में शीर्ष संस्थाओं एवं धार्मिक स्थानों को निशाना बनाकर उन पर सुनियोजित हमले जारी हैं। संसद भवन, गुजरात, वाराणसी, अक्षरधाम मन्दिर पर हुए निर्दोष लोगों की हत्या, होटल ताज व नरीमन हाउस पर आतंकवादी हमला इसी घृणित आतंकवादी गतिविधियों का ही प्रतिफल था। इस प्रकार की गतिविधियों से आम एवं खास सभी मारे जा रहे हैं तथा सभी अपने को असुरक्षित महसूस कर रहे हैं। ऐसे वातावरण में किसी का किसी प्रकार का विकास सम्भव होता नजर नहीं आ रहा है।

लेखक का मानना है कि दुनिया में भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ हर समस्या का समाधान भी देखने को मिलता है। वास्तविकता भी है कि विवेक से काम करना ही मानवता का आधार है। इसे जागृत करना मानव धर्म का जागरण है। पाशविक प्रवृत्ति पर दैवी भावनाओं की, यज्ञीयभाव की विजय ही मानवधर्म है। काश! धर्म के इसी सच्चे अर्थ को विश्व का जनमानस आत्मसात कर पाता तो विश्व का मानव 'आर्य' अर्थात् श्रेष्ठ गुणकर्म स्वभाव का व्यक्ति बन जाता। लेखक का मानना है कि मानवता विश्व का सर्वश्रेष्ठ धर्म है। यह हमें जीवन में प्यार, अहिंसा व परोपकार का पाठ पढ़ाता है।

वर्तमान में ऐसा नहीं कि सब कुछ नकारात्मक ही हो बल्कि इसके कुछ उजले पक्ष भी देखने को मिल रहे हैं। लेखक की मान्यता है कि आज के इस तनावपूर्ण एवं भययुक्त वातावरण से मुक्ति हेतु मानवतावादी इन्सानियत की महती आवश्यकता है। यदि हमें मानवता एवं चरित्र की उचित शिक्षा ग्रहण करनी है तो हमें वेदों की शरण में जाना होगा, क्योंकि वेद सर्वज्ञानमय हैं। हमारी सभ्यता और संस्कृति को उच्च कोटि तक पहुँचाने वाले रत्न ग्रन्थ हैं।

पुस्तक	—	भारत में चिन्तन की परम्परा एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य
लेखक	—	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक	—	अल्फा पब्लिकेशन्स, 4398 / 5 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
मूल्य	—	1495.00, पेज — 495, संस्करण — 2014,
ISBN	—	978-93-83292-14-1



हिन्दी साहित्य में हाशिए का विमर्श : संघर्ष और मुक्ति के अभिनव क्षितिज

नीलम यादव

शोधछात्रा-इतिहास विभाग

डी0एस0एम0एन0 पुनर्वास, विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ.प्र

हाशिए के समाज के उभरने के कारणों पर प्रकाश डालते हुए लेखक डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव का मानना है कि वैश्वीकरण एवम् आधुनिकता की बयार आने से वर्तमान में दलित मुस्लिम एवं स्त्री समुदाय में अपनी पहचान निर्माण की दिशा में नई चेतना का संवाहक बना है, यह समुदाय अब पूरे आत्मविश्वास के साथ अपने अतीत के अनुभवों को अपनी लेखनी द्वारा समाज में ला रहा है। ये लेखक/लेखिकाएँ व साहित्यकार अपने समाज पर होने वाले अत्याचारों व जुल्मों के प्रत्यक्ष गवाह हैं। इस पीड़ादायक अनुभव को ये लेखक अपने साहित्य द्वारा प्रकाश में ला रहे हैं। इनका लेखन तकलीफ का लेखन है, ये उस वर्ग की रचनाएँ हैं जिन्हें परम्परावादी समाज ने मूलभूत अधिकारों एवं शिक्षा से वंचित रखा था। समाज के ये सजग सामाजिक चिंतक एवं साहित्यकार सदियों से चली आ रही अपनी छवि को बदलने के लिए तत्पर हो उठे हैं, इस वर्ग की एक व्यावहारिक समस्या यह थी कि अब तक उन्हें एक वर्ग विशेष द्वारा थोपी गई दासता व पहचान के साथ जीना पड़ रहा था, परन्तु अब स्थितियाँ कालचक्र के अनुसार तेजी से इनके पक्ष में परिवर्तित हुई हैं। परम्परावादियों द्वारा स्थापित विश्वास व भ्रामक पहचान को तोड़कर हाशिए के लेखन ने आज एक नई पहचान निर्मित करने की चुनौती को स्वीकार कर लिया है।

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव की प्रस्तुत पुस्तक आठ अध्यायों एवं तीन खण्डों में विभाजित है। खण्ड एक में मुस्लिम विमर्श : मुकम्मल राह की तलाश अभी भी जारी है.... खण्ड दो में स्त्री विमर्श : फासले और भी हैं... खण्ड तीन में दलित विमर्श : ढेर सारी चुनौतियों के बीच कशमकश अभी भी इत्यादि।

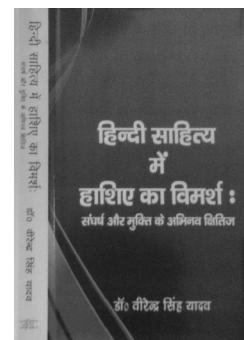
वर्तमान परिवेश की परिवर्तन प्रक्रिया के बारे में लेखक डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव की मान्यता है कि यह उत्तर आधुनिकता का ही परिणाम है कि आये दिन नये-नये जन आन्दोलन उभरकर सामने आ रहे हैं। गाँव और शहरों में धड़ल्ले से सूचना के अधिकार का प्रयोग किया जा रहा है। आरक्षण की नीति से अनुसूचित जाति व जनजाति, पिछड़े वर्ग के लोग तथा महिलायें अपने आपको शक्तिशाली समझने लगे हैं। यहां आये दिन नये राज्यों की मांग होती रहती है। इस विखण्डन ने छत्तीसगढ़ को बनाया, झारखण्ड को जन्म दिया और उत्तरांचल को पैदा किया। किसी के अधिकारों पर कहीं थोड़ा सा कुठाराघात कर देने पर वे तुरन्त सड़क पर आ जायेंगे। यह जनचेतना उत्तर आधुनिक समाज का पूर्वानुभव है। साहित्य में स्त्री, दलित एवं मुस्लिम विमर्श इसकी प्रतिक्रिया के रूप में उभरकर सामने आए हैं। इन सभी तथ्यों से स्पष्ट है कि भारत में परम्परावादी आधुनिक तथा उत्तर आधुनिक तीनों समाज की विशेषतायें पाई जाती हैं। पूरी तरह से किसी एक ही प्रकार के समाज में परिवर्तित होना भारत के लिए मुश्किल होगा।

वर्तमान में हाशिए पर उभरे हाशिए के समाज पर प्रतिक्रिया करते हुए डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव का मानना है कि दलित, आदिवासी, मुस्लिम एवं स्त्री विमर्श साहित्य के समाजशास्त्र का अत्यधिक संभावनाओं से भरा पक्ष है। वर्तमान साहित्य में इन ज्वलंत मुद्दों को लेकर कई प्रकार की समानान्तर विचारधारायें भी सक्रिय दिखती हैं। समाज के दलित, पिछड़े वर्ग के लोग भारत में लम्बे समय तक हाशिये पर रहे हैं और पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनका शोषण होता रहा है। इसकी प्रतिक्रिया किसी न किसी रूप में आनी स्वाभाविक है।

लेखक हाशिए के समाज के विकास एवं उनके भविष्य निर्माण की दिशा में आगे बढ़ने की प्रेरणा के बारे में लिखते हैं कि वर्तमान की आवश्यकता है कि हमें न सिर्फ सही दिशा एवं नीतियाँ अपनानी होंगी बल्कि हमें ऐसे उत्तराधिकारियों का भी चयन करना होगा जो आम-आदमी की नीतियों का ख्यालकर उनके हित की बात सोंचे। इसके साथ ही समकालीन साहित्य का प्रमुख स्वर जनवादी भावना भी होना चाहिए है। क्योंकि जन-जीवन ही ठोस विसंगतियों का एक खुला हुआ दस्तावेज है। ऐसा रचनाओं में देखा गया है कि जन-जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसे इन जनवादी लेखकों ने खुली आँखों से न देखा हो। मानवीय संवेदनाओं से सम्पन्न इनकी रचनाओं में मन को झकझोरने की अपार क्षमता है, जो पाठकों को कुछ सोचने के लिए विवश करती है। यही उनकी महत्वपूर्ण उपलब्धि है। साहित्य में इन्हीं सभी बिन्दुओं को समेटे हुए वीरेन्द्र सिंह यादव की यह पुस्तक हाशिए पर पड़े समाज एवं उनकी व्यक्तिगत विचारधाराओं के विविध आयामों को रेखांकित करती है।

प्रस्तुत पुस्तक में हाशिए पर पड़े समाज के समक्ष उत्पन्न विभिन्न महत्वपूर्ण राष्ट्रीय मुद्दों को उठाकर उसके समाधान की कोशिश करने का विनम्र प्रयास किया गया है। अपने इस प्रयास में लेखक कितना सफल हुआ है, इस हेतु आपकी प्रतिक्रिया उसके लिए प्रेरणास्रोत का कार्य तो करेगी ही, साथ ही साथ आप सब पाठक बन्धुओं के समीक्षापूर्ण विचार एवं सुझाव इस पुस्तक के अगले संस्करण के संसोधन में सहायक भी होंगे।

पुस्तक	—	हिन्दी साहित्य में हाशिए का विमर्श : संघर्ष और मुक्ति के अभिनव क्षितिज
लेखक	—	डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक	—	विस्टा इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, सी0-11, यमुना विहार, दिल्ली-110053
मूल्य	—	1295.00, पेज — 317, संस्करण — 2013,
ISBN	—	978-93-81604-55-7



वैचारिकता एवं विचारक की संवेदनशीलता के बीच उत्पन्न सर्जनात्मक तनाव के बीच से गुजरती महेंद्र भटनागर की कविताएँ

डॉ. शिवशंकर यादव

अतिथि सहायक आचार्य-हिन्दी विभाग

बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ

युवा आलोचक डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा संपादित कवि महेंद्र भटनागर पर प्रस्तुत पुस्तक मौलिक एवं समसामयिक कृति है। डॉ० वीरेन्द्र कवि महेंद्र भटनागर के हिन्दी में उनके उल्लेखनीय योगदान के बारे में अपनी सम्पादकीय में लिखते हैं कि हिन्दी साहित्येतिहास में कवि महेंद्र भटनागर की पहचान प्रगतिशील काव्य-धारा और गीति-रचना के अन्तर्गत स्पष्ट बन चुकी है। वे एक स्थापित कवि होने के साथ ही स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के यशस्वी हस्ताक्षर भी हैं। उन्हें प्रगतिवादी काव्य-धारा के द्वितीय उत्थान का केन्द्रीय कवि माना जाता है। सन् 1946 ई० के आसपास उन्होंने 'हंस' में लिखना प्रारम्भ किया। 'हंस' से उन्हें प्रगतिशील कविता की पहचान मिली। 'हंस' एवं अन्य तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में 'जनवाणी', 'रक्तार्ध', 'नया साहित्य', 'नया पथ', 'जनयुग' में कवि महेंद्र भटनागर प्रमुखता से प्रकाशित हुए। कवि महेंद्र भटनागर की प्रांजल काव्य-सृष्टि ने तत्कालीन लब्ध-प्रतिष्ठ कवियों और समालोचकों का ध्यान आकृष्ट किया। उनकी काव्य-सृष्टि के विविध पक्षों पर पर्याप्त विमर्श हुआ है। जो अनेक सम्पादित आलोचना-कृतियों में उपलब्ध है। हिन्दी के कवि और आलोचकों ने महेंद्र भटनागर की कविता पर जो विचार व मन्तव्य प्रकट किये वे विचारोत्तेजक हैं। इनसे उनकी लोकप्रियता का बोध ही नहीं होता बल्कि वे गहन व विस्तृत परीक्षण के लिए भी अन्वेषकों और प्रबुद्ध पाठकों को उकसाते हैं।

कवि महेंद्र भटनागर की प्रस्तुत पुस्तक दो खण्डों में विभाजित है— प्रथम खण्ड जिजीविषा का है जिसमें तैंतीस रचनाएँ हैं। जिसका रचनाकाल सन् 1948-56 ई० तक है। दूसरा खण्ड नई चेतना है जिसमें कवि की बयालीस कविताएँ हैं। जिनका रचनाकाल सन् 1950-53 ई० तक का है।

तरुण कवि के कविता के शिल्प विधान पर चर्चा करते हुए संपादक डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव लिखते हैं कि कवि वर्तमान युग के कष्ट, अंधकार, बाधाएँ, संघर्ष, प्रेरणा और विश्वास लेकर जन्मा है। उसके अनुरूप उसकी काव्य-शैली भी आधुनिक है। इस तरह वह 'तार-सप्तक' के कवियों की परम्परा में आते हैं। जिन्होंने सर्वप्रथम हिन्दी-काव्य की छायावादी प्रणाली को त्यागकर नवीन भावधारा के साथ-साथ नवीन अभिव्यक्ति शैली को स्वीकृत किया है। इस शैली की यह विशेषता है कि नवीन विषयों को लेने के साथ-साथ नवीन उपकरणों को और नवीन उपमाओं को भी लिया जाता है तथा काव्य को हमारे यथार्थ जीवन से संबंधित कर दिया जाता है। इसे हम वस्तुवादी मनोवैज्ञानिक काव्य कह सकते हैं। इस अत्याधुनिक के समीप और उसका भाग बनकर रहते हुए भी कवि की अभिव्यक्ति शैली में दुरुहता नहीं आ पायी। भाषा में रवानी, मुक्त छंदों का गीतात्मक वेग और अभिव्यक्ति की सरलता, काव्य-शास्त्रीय शब्दावली में कहा जाय तो माधुर्य और प्रसाद गुण महेंद्र भटनागर की इस संग्रह की कविताओं की विशेषता है। किन्तु सबसे बड़ी बात यह है, जो उन्हें पिटे-पिटाये रोमाण्टिक काव्य-पथ से अलग करती है।

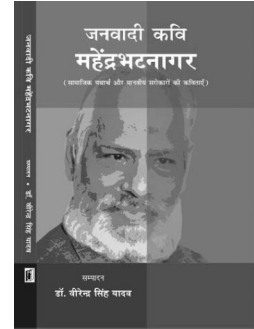
कवि महेंद्र भटनागर का काव्य सर्वजन सुखाय की प्रेरणा नौजवानों एवं समूची पीढ़ी को देता है क्योंकि कवि का सृजन सभी को भविष्य में आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त करता है। कवि महेंद्र भटनागर की रचनाओं में तरुण और उत्साही युवकों का आशावाद है, उनमें नौजवानों का असमंजस और परिस्थितियों से कुचले हुए हृदय का अवसाद भी है। इसीलिए कविताओं की सचाई इतनी आकर्षक है। यह कवि एक समूची पीढ़ी का प्रतिनिधि है जो बाधाओं और विपत्तियों से लड़कर भविष्य की ओर जाने वाले राजमार्ग का निर्माण कर रहा है।

कवि की रचना प्रक्रिया के बारे में आलोचक डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव का मानना है कि कवि महेंद्र भटनागर की कविता सामयिकता में डूबी हुई है। वह एक ऐसी जागरूक सहृदयता का परिचय देते हैं जो अशिव और असुन्दर के दर्शन से सिहर उठती है तो जीवन की नयी कोपलें फूटते देखकर उल्लसित भी हो उठती है। कवि के पास अपने भावों के लिये शब्द हैं, छंद हैं, अलंकार हैं। उसके विकास की दिशा यथार्थ जीवन का चितेरा बनने की ओर है।

कहना न होगा, महेंद्र भटनागर की कविता ने काव्य-मर्मज्ञों का ध्यान निरन्तर आकर्षित किया है। कवि महेंद्र भटनागर की कविता में एक संवेदनशील कवि की वैचारिकता एवं विचारक की संवेदनशीलता के बीच उत्पन्न सर्जनात्मक तनाव विद्यमान है। ...विष्णु नागर की एक काव्य-पंक्ति उधार लेकर कहें तो कवि महेंद्र भटनागर की कविता ऐसी 'अच्छी कविता' है, जो न केवल 'सबसे अच्छे दिनों में याद आएगी', बल्कि वह 'सबसे बुरे दिनों में भी पहचानी जाएगी'।

महेंद्र भटनागर-विरचित समाजार्थिक यथार्थ की कविताओं से उनके सामाजिक-राजनीतिक सरोकारों को समझा जा सकता है। आशा है, सुधी समीक्षक महेंद्र भटनागर की कविता का मूल्यांकन कवि-विकास और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखकर करेंगे। कविता एवं शोध में रुचि रखने वाले इस विषय के शोधार्थियों के लिए प्रस्तुत पुस्तक भरपूर सामग्री उपलब्ध कराएगी।

पुस्तक	—	जनवादी कवि महेंद्र भटनागर
लेखक	—	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
प्रकाशक	—	इंडियन पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, 166-डी, कमलानगर, दिल्ली-110007
मूल्य	—	295.00, पेज — 152, संस्करण — 2015
ISBN	—	978-81-89076-88-7



साहित्य के बदलते परिप्रेक्ष्य : दशा एवम् दिशा

नीलम यादव

शोध छात्रा – इतिहास विभाग

डी.एस.एम.एन. पुनर्वास, विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक वीरेन्द्र सिंह यादव की मान्यता है कि समय परिवर्तनशील है इसलिए समय के साथ-साथ मूल्य भी परिवर्तित होते रहते हैं क्योंकि मनुष्य सदैव कुछ न कुछ सृजन एवं अन्वेषण हेतु प्रयासरत रहता है। इसलिए मनुष्य के वैचारिक जगत की नव प्रियता ही नवीन मूल्यों को जन्म देती है। इन नवीन मूल्यों की छाप, समाज एवं साहित्य में एक लम्बे समय के बाद दिखालाई देती है। साहित्य में समाज की अभिव्यक्ति स्वतः ही हो जाती है, यह रचनाकार के वश में नहीं होता है। उसमें किसी काल विशेष की ऐतिहासिक स्थितियों, समस्याओं, जीवन के अनुभवों और विचारों की भी अभिव्यक्ति होती है। इसके साथ ही सामाजिक यथार्थ और सामाजिक चेतना का स्वरूप भी बनता है। अतः समाज से इस सम्बन्ध बोध के माध्यम से साहित्य के सामाजिक उद्भव एवं विकास का स्वरूप स्पष्ट होता है और साहित्य के परिवर्तन के साथ सामाजिक परिवर्तन की स्थितियों की पहचान भी होती है। इसलिये इसे समाज के परिवर्तन और विकास को प्रभावित करने वाली प्रेरक शक्ति के रूप में भी माना जाता है।

साहित्य में पाठकों के गिरते ह्रास की ओर इशारा करते हुए लेखक लिखते हैं कि वर्तमान में जिस प्रकार के साहित्य का सृजन हो रहा है, उससे पाठकगण सन्तुष्ट नहीं हैं। उनकी दृष्टि में समकालीन साहित्य जीवन को समग्रता के साथ रूपायित नहीं करता बल्कि जीवन मूल्यों से भटका हुआ है। पाश्चात्य प्रभाव एवं जीवन मूल्यों से अलगवर्ग के कारण पाठक के मन में उसके प्रति असन्तोष है। पाठक यह अनुभव करते हैं कि वह दिशा विहीन है तथा समस्याओं के समाधान में अक्षम है। स्पष्ट है कि जीवन और जीवन मूल्यों से भटका हुआ साहित्य पाठकीय मन में संतोष उत्पन्न नहीं कर सकता। पाठकों की धारणा है कि साहित्य में ठहराव सा आ गया है। कुछ समय पूर्व लोग अपना खाली समय पुस्तकें पढ़ने में व्यतीत करते थे। लेकिन आज के लोग फिल्म, टीवी, मोबाइल, इंटरनेट के प्रयोग में अपना अधिकतर समय बिता रहे हैं। दूसरी बात इंटरनेट पर आज सभी प्रकार की सामग्री उपलब्ध है। यहाँ तक कि साहित्यकारों, वैज्ञानिकों, अर्थशास्त्रियों एवं कलाकारों के ब्लॉग इंटरनेट पर उपलब्ध हैं। अतएव इससे साहित्य की पठनीयता प्रभावित हुई है। वर्तमान साहित्य जीवन की सच्चाईयों से मुंह मोड़ता हुआ दिखाई दे रहा है। सामान्य पाठक की रुचियों से किनारा करना ही साहित्य के लिए अशुभ संकेत है।

वीरेन्द्र सिंह यादव की प्रस्तुत पुस्तक चौबीस अध्यायों एवं सात खण्डों में विभाजित है। इस पुस्तक के उपशीर्षक इस प्रकार हैं। हिन्दी साहित्य के प्रमुख विमर्श—दलित, स्त्री एवं उत्तर आधुनिक विमर्श, हिन्दी साहित्य के उत्थान में अग्रज एवं अनुज पीढ़ी का योगदान, लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति के बदलते परिप्रेक्ष्य, नाटक/प्रहसन/व्यंग्य, कथा साहित्य के बदलते सरोकार, जनसंचार माध्यम : दशा एवं दिशा, बदलते सन्दर्भों में हिन्दी साहित्य : चिन्तन-चिन्ता के विविध परिदृश्य इत्यादि।

साहित्य में गुणवत्ता के गिरते कारणों की ओर इशारा करते हुए लेखक डॉ० वीरेन्द्र का मानना है कि वर्तमान समय में साहित्य का सृजन भले ही अधिक हो रहा है किन्तु गुणवत्ता की कमी है। आज मानव मूल्य, भारतीय संस्कृति, अस्मिता संकट के दौर से गुजर रही है। आज के युग में पाठक की रुचियाँ, परिवर्तित हो रही हैं। संचार क्रांति और भूमण्डलीकरण, बाजारवाद के फलस्वरूप सूचनाएं, जानकारीयाँ, रोचक ढंग से परोसी जा रही हैं। जबकि सत्य, शिव, सुन्दर का स्रोत माने जाने वाले साहित्य में अश्लीलता, क्षणिकता, दिशाहीनता का बोलबाला दृष्टिगोचर होने लगा है। आज साहित्यकार रचना धर्म से भटक गया है उसका मुख्य उद्देश्य अर्थ और सत्ता से जुड़ाव हो गया है। आज के अधिकतर साहित्यकार साहित्य सृजन नहीं बल्कि उत्पादन कर रहे हैं। साहित्य में स्वातः सुखाय का भाव निहित होता है। जब तक स्वातः के साथ परांतः नहीं होगा तब तक साहित्य की सार्थकता को संदेह की दृष्टि से देखा जाता रहेगा। वर्तमान साहित्य से लोकतत्त्व, देश व भाषा, लोकोक्तियाँ, मुहावरें, कहावतें, जैसे तत्व गायब हो गये हैं। यही कारण है कि जनसामान्य ने ऐसे रसहीन कृत्रिम साहित्य से दूरियाँ बढ़ा ली हैं। इन सबके बीच एक सुखद एवं आशा भरी बात यह है कि श्रेष्ठ और मूल्यपरक रचनाएं सदैव से ही पढ़ी जाती रही हैं। और आगे भी इनका महत्व कम नहीं होगा। इस दृष्टि से लेखक, प्रकाशक को एक बार पुनः सोचना होगा।

आज के युवावर्ग के भटकाव एवं समाज में व्याप्त अधिकांश बुराइयों का मूल कारण अध्ययन का मुख्य अभाव है और अध्ययन विमुख होने के पीछे श्रेष्ठ साहित्य की अनुपलब्धता है। अतः यह भटकाव स्वाभाविक है। आज अभिभावकों एवं शिक्षकों को इस दिशा में बेहतर प्रयास करने की आवश्यकता है जिससे श्रेष्ठ साहित्य के पठन-पाठन के प्रति लोगों में रुचि उत्पन्न हो सके। इसमें कोई दो राय नहीं कि सामान्य जन साहित्य के पठन की जहमत तभी उठाता है जब उसे आज की भागदौड़ भरी जिंदगी की घुटन, निराशा, कुण्ठा, संत्रास से मुक्ति मिले। जिसका आज के साहित्य में लगभग अभाव है।

साहित्य में गुणवत्ता एवं इसके गिरते ह्रास का समाधान बताते हुए लेखक की मान्यता है कि वर्तमान इक्कीसवीं सदी में पाठक और लेखक के बीच ऐसा संवाद होना चाहिए जो गहरी चिन्ता एवं मानवीय संवेदनाओं के साथ व्यक्त हो और उस पर औपचारिक भाषण छोड़ ईमानदारी से सोचें। हो सकता है कि हम साहित्य में समाधान नहीं निकाल पायें, यह जरूरी भी नहीं है लेकिन हम आम जन को होशियार कर सकते हैं। साहित्य से समाधान की उम्मीद भी नहीं करने चाहिए। लेकिन समाधान की ओर चलने की उम्मीद तो करनी ही चाहिए। जो इस ओर चलने का भी विरोध कर रहे हैं— वे स्वयं भी गलत दिशा में जा रहे हैं और अपने पाठकों को भी ले जा रहे हैं। साहित्य के इन्हीं कुछ बिन्दुओं एवं समस्याओं को समेटे हुए प्रस्तुत पुस्तक कुछ जिज्ञासाओं का समाधान करती नजर आती है।

पुस्तक — साहित्य के बदलते परिप्रेक्ष्य : दशा एवम् दिशा

लेखक — डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव

प्रकाशक — अल्फा पब्लिकेशन्स, 4398/5 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

मूल्य — 695.00,

पेज — 207,

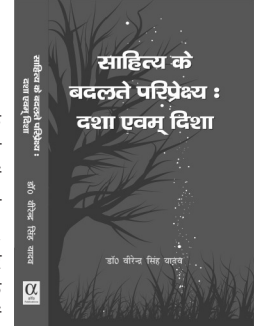
संस्करण — 2013,

ISBN — 978-93-82302-86-5

वर्ष : 9, अंक 17-18, जनवरी-दिसम्बर 2016

(405)

‘कृतिका’ अन्तर्राष्ट्रीय अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका



हिन्दी के व्यंग्य लेखन में शरद जोशी का योगदान

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

एसोसिएट प्रोफेसर—हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग

डॉ० शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

युवा लेखक एवं आलोचक डॉ० शिवशंकर सिंह यादव की प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी के व्यंग्य लेखन में शरद जोशी का योगदान में लेखक का मानना है कि व्यंग्य के क्षेत्र में शरद जोशी के योगदान पर अभी तक की यह पहली मौलिक कृति है। व्यंग्य साहित्य सामाजिक यथार्थ की व्याख्या का वाङ्मयी व्यवहार है। समाज से प्रेरणाएं ग्रहण करने, उसकी विसंगतियों एवं विकृतियों को अपना लक्ष्य बनाने तथा उसे शोषणमुक्त एवं सुन्दर बनाने की उद्देश्यता के कारण सामाजिक जीवन से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। व्यंग्य का उद्देश्य समाज में व्याप्त विसंगतियों एवं विद्रूपताओं के केवल अप्रकाशित अंश को प्रकाशित करना न होकर उसके गर्भ में छिपे सनातन मानवीय सत्य का उद्घाटन करना भी होता है और इस रूप में व्यंग्य साहित्य समाज को एक ऐसी दृष्टि प्रदान करता है जिससे सामाजिक चेतना का भाव प्रतिफलित होता है।

लेखक की मान्यता है कि शरद जोशी स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी जगत के प्रतिष्ठित व्यंग्यकार रहे हैं। उनके लेखन में अनुभव परिपक्वता है। उन्होंने कबीर की तरह दुनिया को जाँचा और परखा है। उन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक आदि विसंगतियों एवं विद्रूपताओं से साक्षात्कार किया है। उन्होंने आम आदमी के दर्द को अनुभव किया है और उसकी बेहतरी के लिए अपने ढंग से प्रयास शुरू किया। स्वतन्त्रता के बाद का समय यथार्थ ही शरद जोशी के व्यंग्य लेखन की जमीन है जिसमें अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार आतंकवाद, हिंसा, निर्दयता, बेरोजगारी जाति-भेद, इन्द्रिय लोलुपता, कुपोषण, मिलावट खोरी आदि सर्वव्यापी रूप ले चुकी थी।

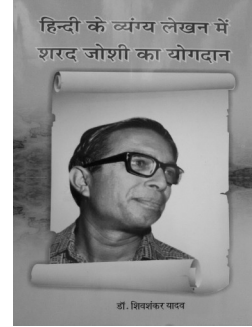
एक जनवादी व्यंग्यकार के रूप में शरद जोशी उन सभी स्थितियों, विश्वासों, तरीकों और कार्यों पर तीव्र व्यंग्य करते हैं जो समाज की सहज, स्वस्थ प्रगति में बाधक हैं और वे मानव द्वारा मानव के शोषण की प्रक्रिया को जारी रखने अथवा बढ़ाने का विरोध करते हैं। समाज का शायद ही कोई ऐसा पक्ष हो जिसकी विसंगतियों को उन्होंने अपने व्यंग्य लेखन का विषय नहीं बनाया हो। सामाजिक अन्याय, असमानता, रुढ़िवाद, जाति-प्रथा, वर्गभेद नारी-शोषण, विवाह, प्रेम, शिक्षा-व्यवस्था, धार्मिक कट्टरता, ढोंग, पाखण्ड, छल, प्रपंच आदि सभी पर शरद जोशी ने अपनी व्यंग्य लेखनी चलायी। सामाजिक यथार्थ के विश्लेषण पर उनकी गहरी समझ तथा मानवतावाद में गहरी आस्था शरद जोशी के व्यंग्य को मात्र ध्वंस का अस्त्र ही नहीं, अपितु नवनिर्माण का औजार भी बनाती है। जिसमें लोकमंगल अथवा लोक-कल्याण का भाव सन्निहित रहता है।

प्रस्तुत पुस्तक में युवा लेखक ने यह देखने का प्रयास किया है कि हिन्दी व्यंग्य लेखन की परम्परा को सुदृढ़ता प्रदान करने में शरद जोशी की अपनी हिस्सेदारी कितनी है, उन्होंने अपने से पहले के व्यंग्यकारों की विशेषता को कहाँ तक ग्रहण किया। व्यंग्य साहित्य को उनकी मौलिक देन क्या है, और अपने समसामयिक व्यंग्यकारों से वे किस तरह अलग हैं। इन्हीं सब प्रत्ययों को 'हिन्दी के व्यंग्य लेखन में शरद जोशी का योगदान' शीर्षक के अन्तर्गत दिखाने का प्रयास किया गया है एवं जिसे लेखक ने अपनी सुविधानुसार सात अध्यायों में विभक्त किया है।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रथम अध्याय 'व्यंग्य का स्वरूप एवं क्षेत्र', द्वितीय अध्याय 'हिन्दी व्यंग्य लेखन की परम्परा', तृतीय अध्याय 'हिन्दी के समसामयिक व्यंग्य लेखक', चतुर्थ अध्याय 'शरद जोशी का जीवन और साहित्य', पंचम अध्याय 'शरद जोशी का व्यंग्य लेखन', षष्ठ अध्याय 'समसामयिक व्यंग्य लेखन में शरद जोशी का योगदान' अन्तिम अध्याय 'उपसंहार' से सम्बन्धित है जिसमें प्रथम अध्याय से लेकर षष्ठम् अध्याय में शरद जोशी की दृष्टि से प्रतिफलित उपलब्धियों का संक्षिप्त विवरण निष्कर्ष रूप में दिया गया है।

समाज, साहित्य एवं राजनीति के गहरे अनुभवों को व्यंग्य की दृष्टि से परखने के लिए प्रस्तुत पुस्तक अति उपयोगी होगी।

पुस्तक	— हिन्दी के व्यंग्य लेखन में शरद जोशी का योगदान
लेखक	— डॉ० शिवशंकर सिंह यादव
प्रकाशक	— आराधना ब्रदर्स पब्लिकेशन्स, कानपुर
मूल्य	— 400.00
पेज	— 160.00
संस्करण	— 2016
ISBN	— 978-81-89076-88-7



कृतिका इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एंड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वाल्यूम : 17-18, वर्ष : 09, जनवरी-दिसम्बर 2016

रजिस्ट्रेशन ऑफ न्यूज पेपर्स रूल्स 1956 (सेन्ट्रल) के अन्तर्गत

‘कृतिका’ – हिन्दी अर्द्धवार्षिक के सम्बन्ध में स्वामित्व

तथा अन्य विवरण विषयक जानकारी

घोषणा-पत्र

(फार्म-4)

1. प्रकाशन स्थल : 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
2. प्रकाशन अवधि : अर्द्धवार्षिक
3. मुद्रक का नाम : डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
नागरिकता : भारतीय
पता : 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
4. प्रकाशक का नाम : डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
नागरिकता : भारतीय
पता : 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
5. सम्पादक का नाम : डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
नागरिकता : भारतीय
पता : 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
6. उन व्यक्तियों के नाम व पते : डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
जो समाचार पत्र के स्वामी हों : 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
तथा जो समस्त पूंजी के एक
प्रतिशत से अधिक के साझेदार
या हिस्सेदार हों।

मैं डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव एतद्वारा घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी तथा विश्वास के अनुसार दिये गये विवरण सत्य हैं।

दिनांक : जनवरी 2016

हस्ताक्षर

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

मुद्रक : महक कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स,
15, आजाद नगर, उरई (जालौन)

सम्पादक : डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव



सदस्यता पत्रक

देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

कृतिका इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमनिटीज एंड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वाल्यूम : 17-18, वर्ष : 09, जनवरी-दिसम्बर 2016

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

प्रधान सम्पादकीय कार्यालय — 303 तीसरा तल, टाईप फाइव, विश्वविद्यालय परिसर,
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, मोहान रोड, लखनऊ, उ.प्र. 226 017

पत्रांक—

श्रीमान सम्पादक, कृतिका

303 तीसरा तल, टाईप फाइव, विश्वविद्यालय परिसर,

डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, मोहान रोड, लखनऊ, उ.प्र. 226 017

महोदय,

दिनांक—

निवेदन है कि मैं या हमारा विश्वविद्यालय/महाविद्यालय कृतिका इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ हाफ इयरली "ह्यूमनिटीज एंड सोशल साइंसेज, ISSN : 0975-0002, RNI: UPHIN/2008/30136 (साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका) की वार्षिक संस्थागत सदस्य बनना चाहता है। मैं या हमारी संस्था सम्पादक कृतिका, के नाम व्यक्तिगत या संस्थागत सदस्यता शुल्क भारतीय स्टेट बैंक, मुख्य शाखा लखनऊ को ड्राफ्ट या खाता सं. 30358537228, में नकद जमा कर रहा हूँ या रही हूँ।

नाम एवं पद का नाम

संस्था का नाम

पत्र व्यवहार का पूरा पता पिन कोड सहित

फोन/मो. नं. EMAIL.....

स्थान एवं दिनांक

हस्ताक्षर

i/kku lEikndh; dk;ky;

Mk- ohjUn fl g ;kno

303 तीसरा तल, टाईप 5, विश्वविद्यालय परिसर,

डॉ. शकुन्तला मिश्रा विश्वविद्यालय,

मोहान रोड, लखनऊ, 226017

दूरभाष—07607782917, 09415924888

Email : dr.virendrayadav@gmail.com

Email : kritika_orai@rediffmail.com

i:cu/ku

vkjk/kuk cnll

(प्रकाशक एवं वितरक)

124 / 152—सी ब्लॉक, गोविन्दनगर,

कानपुर—208006, उ.प्र.

दूरभाष — 09935007102, 05122651490

Email : aradhanabooks@rediffmail.com

कृतिका पत्रिका की वार्षिक संस्थागत सदस्यता से तात्पर्य प्रिन्टेड उत्तरे मूल्य की प्रति या प्रतियाँ (किसी भी अंक की)

वर्ष : 9, अंक 17-18, जनवरी-दिसम्बर 2016

(408)

'कृतिका' अन्तर्राष्ट्रीय अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका

आराधना ब्रदर्स कानपुर के नवीनतम् प्रकाशन

A Journey Into Religious Freedom	Fr. Jerom Paul	400/-
The Permanent Synod of the East	Fr. Jerom Paul	400/-
Dalit Politics in Uttar Pradesh : A Study of Bahujan Samaj Party (B.S.P.)	Dr. Ravi Shukla	650/-
Khilafat Movement	Dr. Razia Nayab	500/-
Arun Joshi : An Exploration of the Self	Dr. Lt. Anjita Singh Thakur	500/-
Communication Skills & Higher Education	Dr. Sapana Pandey	750/-
Environmental Issues & Sustainable Development	Dr. Arvind Kumar Shukla	600/-
Environmental Concerns & Clean India Campaign	Dr. Arvind Kumar Shukla	595/-
Swachh Bharat Campaign	Arvind Kumar Shukla	595/-
(Administrative Perspectives Issues & Challenges)		
स्वच्छ भारत अभियान (मुद्दे-समस्यायें-संभावनायें)	डॉ. अरविन्द कुमार शुक्ला	595/-
स्वच्छ भारत अभियान : चुनौतियाँ एवं अवसर	डॉ. अरविन्द शुक्ला	650/-
उभरती पर्यावरणीय चिंताएँ एवं सतत् विकास	डॉ. अरविन्द शुक्ला	600/-
पर्यावरण एवं अक्षय विकास	डॉ. अरविन्द शुक्ला	650/-
नई सदी में पर्यावरण : चिंतन के विविध परिदृश्य	मनोज कुमार यादव	995/-
भारत में समावेशी एवं सतत् विकास	अरविन्द कुमार शुक्ला, डॉ. सपना पाण्डेय	850/-
भारत में उच्च शिक्षा दशा एवं चुनौतियाँ	उमेश शाक्य	600/-
राष्ट्रवादी एवं मार्क्सवादी इतिहास लेखन और महात्मा गांधी	सुप्रिया वर्मा	500/-
भारत का समाजवाद : दशा एवं दिशा	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	500/-
डॉ. राममनोहर लोहिया का समाजवाद एवं वैचारिक विमर्श	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. राममनोहर लोहिया का समाजवादी विमर्श	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. राममनोहर लोहिया का समाजवाद एवं सामाजिक समरसता	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. लोहिया का समाजवाद एवं अर्थ दर्शन	डॉ. यतीन्द्र नाथ शर्मा	500/-
डॉ. अंबेडकर : वैचारिकी एवं दलित विमर्श	डॉ. कालीचरण स्नेही	600/-
मॉरिशस की कहानियों में भारतीय संस्कार-जीवन मूल्य	डॉ. तनूजा चौधरी	300/-
साठोत्तरी लेखिकाओं का स्त्री-विमर्श	डॉ. तनूजा चौधरी	500/-
हिन्दी बाल साहित्य का अनुशीलन	डॉ. आनन्द बक्षी	850/-
हिन्दी बाल साहित्य का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन	डॉ. प्रणोति पाटिल	650/-
हिन्दी का बाल लोक साहित्य एक समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. मीना सिंह गौर	400/-
बाल सतसई प्रबोधिनी	स्वामी विजयानन्द	600/-
स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी बाल कविता में वैज्ञानिक चेतना	डॉ. डी.आर. राहुल	300/-
स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी बाल कविता में युगचेतना	डॉ. उमा सिरोनिया	600/-

बाल कविता में सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना	डॉ. शिरोमणि सिंह 'पथ'	400/-
हिन्दी बाल साहित्य में मनोरंजन एवं नैतिकता	श्री राम शर्मा	400/-
बाल समस्याएँ कारण और निदान	जयजयराम आनन्द	500/-
हिन्दी बाल कविता की प्रवृत्तियाँ	डॉ. उदय सिंह जाटव	500/-
मयंक का हिन्दी बाल साहित्य	डॉ. कंचनलता यादव	500/-
मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में नारी	डॉ. सविता मसीह	500/-
मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में नारी	डॉ. भारती	400/-
मैत्रेयी पुष्पा का कथा साहित्य	डॉ. प्रियंका रानी	400/-
भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में उत्तर प्रदेश की महिलाओं का योगदान	डॉ. संजू	400/-
मुकुट बिहारी 'सरोज' और डॉ. सीता किशोर खरे के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. प्रगति	600/-
चिड़ियाँ चुग गईं खेत (लघुकथा संग्रह)	डॉ. राज गोस्वागी	300/-
सुनहरी धूप (काव्य-धारा)	मंजू एस. सिंह	200/-
राजपूत कालीन सामाजिक विषमताएँ	डॉ. प्रशांत सिंह	500/-
गोंडवाना क्षेत्र की आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्थाएँ : एक ऐतिहासिक विश्लेषण	डॉ. दिलेश्वर प्रसाद	500/-
उ. प्र. के पंचायत चुनावों में महिलाओं की सहभागिता	डॉ. अनीता	400/-
सबके अपने अमित...	सं. डॉ. निरंजन कुमार	300/-
हिन्दी व्यंग्य लेखन में शरद जोशी का योगदान	डॉ. शिवशंकर यादव	400/-
सौन्दर्यबोध और भारतीय चिन्तन परम्परा	डॉ. पद्मा शर्मा	400/-
हिन्दी महिला उपन्यास लेखन में स्त्री आन्दोलन	डॉ. मुनेश यादव	500/-
शशिप्रभा शास्त्री के कथा साहित्य में नारी	डॉ. अनिता शर्मा	500/-
भारतीय राजनीतिक-सामाजिक समस्याएँ	डॉ.(श्रीमती) राजेश जैन	600/-
बंशी उठी पुकार	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह 'अमित'	250/-
यात्रा (परिधि से केन्द्र तक)	हरीराम गुप्ता 'निर्पेक्ष'	250/-
हिन्दी भाषा एक अबाध प्रवाह	डॉ. मीता, डॉ. सुमन	350/-
आधुनिक हिन्दी कविता में लोक चेतना	डॉ. मीता, डॉ. सुमन	350/-
रेणु का कथा साहित्य	डॉ. सुरेश चन्द्र मेहरोत्रा	500/-
रामचंद्रिका में वक्रोक्ति सिद्धांत का अनुशीलन	डॉ. ममता गंगवार	500/-
बुंदेलखण्ड के साहित्यकारों का साहित्यिक अवदान	डॉ. छाया राहुल	700/-
बुन्देलखण्ड की साहित्य सर्जना	डॉ. किरण शर्मा	350/-
आधुनिक बुन्देली काव्य	डॉ. कालीचरण स्नेही	300/-
जायसी और कबीर : सामासिक संस्कृति के संदर्भ में	डॉ. डी.आर. राहुल	600/-
समीक्षा रेखायें	डॉ. कामिनी	400/-
उरैन	डॉ. कामिनी	350/-

आलेख	डॉ. कामिनी	350/-
हाशिये पर (कहानी संग्रह)	डॉ. कामिनी	150/-
वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों में नारी	डॉ. रामप्रकाश जाटव	350/-
गुलदस्ता	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	350/-
प्रदोष नृत्य	डॉ. हरीशचन्द्र शर्मा	250/-
मृत्यु पर विजय	डॉ. हरीशचन्द्र शर्मा	300/-
रामाश्रय (खण्डकाव्य)	डॉ. हरीश चन्द्र शर्मा	500/-
प्रेमचन्द्र युगीन उपन्यास लेखिकाएँ और उनका रचना संसार	डॉ. संध्या शर्मा	150/-
हिन्दी यात्रा साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	डॉ. संध्या शर्मा	500/-
‘अंधेरे में’ आख्यान का स्वरूप	डॉ. आकांक्षा	200/-
पं. श्रीवर चतुर्वेदी : व्यक्ति एवं अभिव्यक्ति	डॉ. रामकिशोर यादव	500/-
जैनैन्द्र का कथालोचन	डॉ. वन्दना श्रीवास्तव	350/-
‘रामायण’ और ‘महाभारत’ में राजनीतिक विचार	डॉ. कान्ती शर्मा	500/-
विश्व पर्यावरण एवं राजनीतिक संघर्ष	डॉ. आर.के. त्रिपाठी	400/-
स्थानवाची नामों का समाजभाषाशास्त्रीय विश्लेषण	डॉ. कमलेश प्रजापति	350/-
संस्कार गीत और लोक जीवन	डॉ. सीताकिशोर, डॉ. कामिनी	200/-
प्रसाद नाट्य साहित्य में हास्य—व्यंग्य	डॉ. संगीता अग्रवाल	200/-
नयी कहानी : अस्तित्व एवं स्वरूप	डॉ. संगीता अग्रवाल	200/-
शिवानी के उपन्यासों में कूर्माचलीय लोक संस्कृति	डॉ. अलका मिश्र	300/-
महाप्राण निराला : पुनर्मूल्यांकन	डॉ. प्रदीप मिश्र	400/-
शृंगार शिरोमणि का रस—भाव विवेचन	डॉ. प्रदीप मिश्र	500/-
शिवानी के उपन्यासों के पात्र	डॉ. सुषमा पुरवार	400/-
कालजयी नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र	डॉ. मंजुला श्रीवास्तव	400/-
भारतीय नारी का धर्मशास्त्रीय अध्ययन	डॉ. पूजा श्रीवास्तव	300/-
तुम न आये सितारों को नींद आ गई	मंजुल मयंक	300/-
मेरी हम जिन्दगी मेरी हमशाइरी	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	200/-
गीत से नवगीत	डॉ. शुभा श्रीवास्तव	250/-
उर्वशी काव्य में नारी चेतना	डॉ. मीता अरोरा	200/-
उठी हाट के हम व्यापारी	रामस्वरूप	80/-
सबका अंतरिक्ष	डॉ. सीता किशोर	150/-
इस दौर से गुज़रे हैं हम	डॉ. सीता किशोर	200/-
सिर्फ रेत ही रेत	डॉ. कामिनी	100/-
सहमे सहमे अक्षर	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	300/-
अनाम सखे	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	150/-

नारी स्वर	ज्ञानचन्द्र गुप्त	200/-
पुरवा	मंजु सिंह	200/-
मनन और मूल्यांकन	डॉ. विश्वम्भरनाथ	250/-
साहित्यिक एवं सांस्कृतिक निबन्ध	डॉ. कैलाश नाथ द्विवेदी	150/-
स्थान नाम बोलते हैं	डॉ. कामिनी	75/-
जन्म जन्मान्तर	मंजु सिंह	200/-
महाकवि भवभूति के नाटकों में ध्वनि तत्व	डॉ. शिवबालक द्विवेदी	225/-
पं. बनारसी दास चतुर्वेदी व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. कालीचरण 'स्नेही'	400/-
वासुदेव गोस्वामी और उनका साहित्य	डॉ. श्रीमती गीता पाण्डेय	150/-
विचार-वीथी (निबन्ध-संग्रह)	डॉ. पुरुषोत्तम बाजपेयी	75/-
बुंदेलखंड की पूर्व रियासतों में पत्रपांडुलिपियों का सर्वेक्षण	डॉ. सीता किशोर	250/-
अपराधी कल्याण के विविध आयाम	डॉ. ए. एन. अग्निहोत्री	300/-
दतिया जिले में पत्र-पाण्डुलिपियों का सर्वेक्षण	डॉ. कामिनी	120/-
ग्वालियर संभाग में व्यवहृत बोली रूपों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन	डॉ. सीता किशोर	200/-
भदावरी बोली का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन	डॉ. श्यामसुन्दर सौनकिया	150/-
हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में नारी	डॉ. हरिशंकर शर्मा	140/-
संस्मरण और संस्मरणकार	डॉ. मनोरमा शर्मा	60/-
ब्रजनंदन व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. ओमप्रकाश सिंह	60/-

नोट : (1) हमारी संस्था महाविद्यालय/विश्वविद्यालय एवं सार्वजनिक पुस्तकालय हेतु समस्त विषयों में समस्त प्रकार की पुस्तकों की आपूर्ति आपकी माँग के अनुसार करती है।
 (2) पुस्तकों का आदेश भेजते समय अपना नाम, पता, पिनकोड व फोन नं. लिखें या मेल करें।

आराधना बुक्स प्रकाशक एवं वितरक

124/152-सी ब्लॉक, गोविन्द नगर, कानपुर-208 006 (उ.प्र.)

दूरभाष : 09935007102, 09889121111, 0512-2651490

दूरभाष : aradhanabooks@rediffmail.com

कृतिका परिवार

प्रमुख प्रवासी सम्पादकीय सलाहकार समिति

- डॉ. सरिता बुधु, अध्यक्ष भोजपुरी स्पीकिंग यूनिशन, मॉरीशस
- डॉ. भारतेन्दु श्रीवास्तव, 64 लांगसर्वड, ड्राइव, स्कारवोरो ओनटारियो, कनाडा, एम.आई.वी. 3ए. 3
- डॉ. अजीत सिंह राही, पो. बॉ. 119, हानउड 2680, एन.एस. डब्ल्यु, आस्ट्रेलिया
- डॉ. तिलकराज चोपड़ा, हाज़ल वेग 15ए 53340 मेकन्हाईम, जर्मनी
- डॉ. दिव्या माथुर, नेहरु सेंटर, 8 साउथ आउडली स्ट्रीट, लंदन-डब्ल्यु 1 के 1 एच.एफ.

मुख्य परामर्शदाता एवं मानद संरक्षक

- डॉ. अनीता यादव – प्रवक्ता – शिक्षाशास्त्र, महाराज सिंह स्मृति महाविद्यालय, इटौली, औरैया, उ.प्र.
- डॉ. आनन्द कुमार खरे, एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, डी. वी. कालेज, उरई (जालौन) उ.प्र.
- डॉ. रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, रामस्वरूप ग्रामोद्योग (पी.जी.) महाविद्यालय, पुखराया, कानपुर देहात (उ.प्र.)
- आदित्य कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, डी. वी. कालेज, उरई (जालौन) उ.प्र.

विशेष परामर्शदात्री समिति

- डॉ. हेमा देवरानी, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, बाबू शो. कला महा., अलवर, राजस्थान
- डॉ. ज्योति सिन्हा, प्रवक्ता, संगीत विभाग, महिला पी.जी. कॉलेज, जौनपुर (उ.प्र.)
- डॉ. सविता मसीह, सहा. प्रध्यापक-हिन्दी विभाग, शा. रत्ना. महाविद्यालय, सिवनी (म.प्र.)

संपादकीय परामर्शदात्री समिति

- डॉ. शशि त्रिपाठी, प्रो.-राजनीति विज्ञान, शास. ठा. रणमत सिंह स्वशासी महा., रीवा (म.प्र.)
- डॉ. बिनोद कुमार पाल, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार।
- डॉ. शारदा दुबे, विभागाध्यक्ष-समाजशास्त्र, शासकीय माता शबरी नवीन केन्सा, महाविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)
- डॉ. अलका द्विवेदी, वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, जुहारी देवी गर्ल्स कॉलेज, कानपुर
- डॉ. अंजु दुआ जैमिनी, 839ए सेक्टर-21 सी. पार्ट-2, फरीदाबाद (हरियाणा)
- डॉ. हरनिवास पाण्डेय, प्रवक्ता हिन्दी, जवाहर लाल नेहरू कालेज, पासीघाट (अ.प्र.)
- डॉ. शुभा जीहरी, शीखर, इतिहास विभाग, राष्ट्र संत तुमो नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर (मो)

- डॉ. आनन्द प्रकाश सिंह, प्रवक्ता समाजशास्त्र विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय गोपेश्वर, चमोली (उत्तराखंड)
- डॉ. आशा वर्मा, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डी. वी. एस. कालेज, कानपुर
- डॉ. अरविन्द शुक्ला, एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान, राजकीय महिला पी.जी. कालेज, बिन्दकी, फतेहपुर (उ.प्र.)
- डॉ. अशोक एम. पवार, हिंदी विभाग, गजमल तुलशीराम पाटील महाविद्यालय, नंदुरबार (महा.)

मुख्य सम्पादक मण्डल

- डॉ. सुरेश एफ. कानडे, प्लॉट नं. 48, साई बंगला, प्रोफेसर कॉलोनी, विजडम हाईस्कूल के पीछे, रामेश्वर नगर, गंगापुर रोड, नासिक-422013 (महाराष्ट्र)

विशेष सम्पादन सहयोग

- डॉ. अजय सिंह, शीखर, राजनीति विज्ञान विभाग, हडिया कालेज, हडिया, इलाहाबाद
मो.: 09415638535 – ई-मेल : drajaysingh@gmail.com
- डॉ. सियाराम, वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, तिलक महाविद्यालय, औरैया
मो.: 09219828316 – ई-मेल : siyaramhindi@rediffmail.com
- डॉ. रणविजय सिंह, प्रवक्ता-राजनीति विज्ञान विभाग, एल.डी. आर.एस.वाई. महाविद्यालय, उसरगाँव, कालपी (जालौन, उ.प्र.)
मो.: 09919123763 – ई-मेल : rajuranvijay@gmail.com

प्रधान सम्पादक

- मनोज कुमार यादव
पूर्व सदस्य
उ.प्र. माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड, इलाहाबाद
सम्पर्क : 09628824017
Email : aradhanabooks@rediffmail.com

सम्पादक

- डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
एसोसिएट प्रोफेसर – हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
उ.प्र. विकास उद्धार शं. कुन्तला मिश्रा विश्वविद्यालय
लखनऊ-226 017 (उ.प्र.)
सम्पर्क : 09415924888
Email : dr.virendrayadav@gmail.com
Email : virendra_kritika@rediffmail.com

प्रबन्धन

- आराधना ब्रदर्स
(प्रकाशक एवं वितरक)
124 / 152- सी ब्लाक, गोविन्दनगर, कानपुर-208006, उ.प्र.
दूरभाष - 09935007102, 0512-2651490
Email : aradhanabooks@rediffmail.com

देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

समाजवादी विमर्श-विशेषांक-2017

भारत में समाजवाद : दशा एवं दिशा

(भारत के भविष्य के लिए आम आदमी की चिन्ता)

- ▶ समाजवादी आन्दोलन की पृष्ठभूमि, इतिहास एवं परम्परा के बदलते प्रतिमान
- ▶ समाजवाद के प्रमुख सम्प्रदाय, प्रमुख सामाजिक विचारधाराएँ एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत
- ▶ समाजवाद ही क्यों ?
- ▶ वैश्विक समाजवाद के बदलते परिदृश्य : दशा एवं दिशा
- ▶ भारतीय समाजवाद : चिन्तन-चिन्ता के विविध परिदृश्य
- ▶ भारतीय राजनीति में समाजवाद की भूमिका, नया समाज, नयामन
- ▶ राष्ट्रीयता और समाजवाद, समाजवाद और हिन्दूवाद
- ▶ प्रमुख पाश्चात्य समाजवादी चिन्तक, आधुनिक भारतीय समाजवादी विचारक
- ▶ समाजवाद के आधार स्तम्भ एवं प्रमुख भारतीय समाजवादी चिन्तक / विचारक, जयप्रकाश नारायण, युसुफ मेहरअली, अच्युत पटवर्धन, अशोक मेहता, आचार्य नरेन्द्र देव, सम्पूर्णानन्द, डॉ० राममनोहर लोहिया
- ▶ राजनारायण का समाजवादी व्यक्तित्व
- ▶ भारतीय समाजवाद के नये क्षितिज, छोटे लोहिया कहलाने वाले जनेश्वर मिश्र
- ▶ चंद्रशेखर, मुलायम सिंह यादव व अखिलेश यादव
- ▶ नव समाजवाद की परिकल्पना एवं सप्तक्रांति
- ▶ मार्क्स गाँधी एण्ड सोसलिज्म
- ▶ समाजवाद और चौखम्मा व्यवस्था
- ▶ बहुआयामीय सांस्कृतिक क्रान्ति और समाजवाद

दुनिया को बेहतर और मानवीय बनाने तथा मानव अस्तित्व को नये विस्तार देने के उद्देश्य से समय-समय पर अनेक सिद्धांतकारों और सैद्धांतिकियों के सक्रिय हस्तक्षेप समाज में निरंतर विद्यमान रहे हैं, जिनका सारतत्व मानवीय गरिमा को स्थापित करने तथा समतामूलक समाज बनाने में रहा है, इस बुनियादी एकरूपता के बावजूद किसी एक दर्शन पर बात समाप्त नहीं हुई, बल्कि भिन्न-भिन्न सैद्धांतिकियों निर्मित होती रहीं जो सामाजिक संरचना के वैविध्य को तथा विचारधाराओं की गतिशीलता का प्रमाण है।

आधुनिक युग में समाजवाद एक ऐसा शब्द एवं ऐसी विचारधारा है, जिससे अधिकांश विचारक स्वयं को जोड़कर गौरवान्वित महसूस करते हैं। यह एक ऐसा सपना है जिसने बीसवीं सदी में दुनिया को सर्वाधिक आन्दोलित किया तथा वर्तमान सदी में भी इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये अलग-अलग ढंग से व्यक्ति, संस्थाएँ एवं सरकारें जुड़ा रही हैं। हालांकि समाजवादी आंदोलन का आरम्भ यूरोप से माना जाता है, किन्तु उसका देशी भारतीय संस्करण जयप्रकाश नारायण, युसुफ मेहरअली, अच्युत पटवर्धन, अशोक मेहता, आचार्य नरेन्द्र देव, सम्पूर्णानन्द आदि की भाँति डॉ० राममनोहर लोहिया भी भारतीय राजनीति के अन्य महान समाजवादी प्रणेताओं में से एक थे। यह सब महान स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी, निर्भीक वक्ता, लोकतंत्र के रक्षक, एवं आम आदमी की आवाज के यथार्थवादी प्रखर प्रवक्ता एवं चिन्तक थे, जो आजीवन एक सच्चे समाजवादी के रूप में जाने जाते हैं। यह सत्य है कि व्यक्ति का शरीर अवश्य समाप्त हो जाता है, किन्तु उसके शाश्वत विचार एवं कर्म अजर-अमर होकर प्रकाश स्तम्भ की भाँति जन-जन को आलोकित करते रहते हैं।

- ▶ कृपा उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख / लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।